आवरण-पृष्ठ पर चित्रित वनस्पतियां

●

आवरण पृष्ठ पर ३२ वनस्पतियों को चित्रित किया गया है, उन प्रत्येक पर क्रम-संख्या अंकित है, क्रम-संख्यानुसार उन वनस्पतियों के लैटिन एवं हिन्दी नाम यहां दिए जाते हैं।

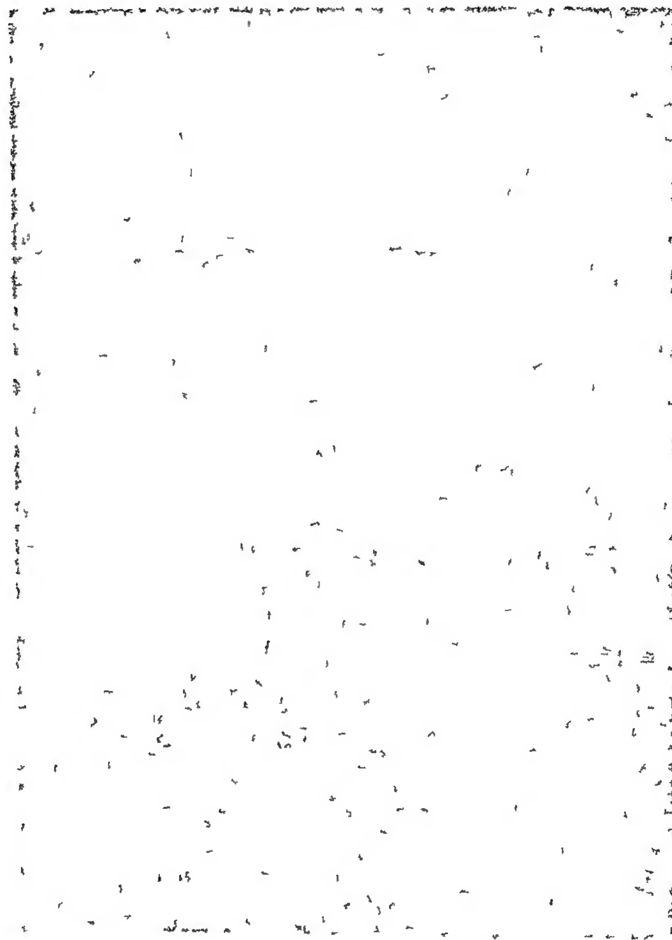
—सम्पादक।

1	Papaver Somniferum	—	अफीम
2	Aconitum Napellus.	—	वच्छनाग
3	Nymphaea Alba.	—	कुमुद
4	Acorus Calamus.	—	वच
5	Viola Odorata	—	वनफ्शा
6	Astragalus Alpinus	—	कतीरा-वृक्ष
7.	Polygonum Bistorta	—	अजुबार
8	Artemisia Maritima.	—	अजवायन किरमाणी
9	Hypochoeris Maculata	—	टेडलू
10	Sisymbrium Irio	—	खूबकला
11	Convolvulus Sepium	—	हिरनपदी
12	Limnanthemum Nympaeoides Link	—	कुए
13	Atropa Belladonna	—	अंगूरशेफा
14	Verbascum Thapsus	—	गीदड़ तम्बाकू
15.	Viscum Album	—	बांदा
16	Carum Carvi	—	स्याह जीरा
17	Trifolium Repens	—	अस्पर्क
18	Digitalis Purpurea	—	डिजिटेलिस (तिलपुष्पी)
19	Cichorium Intybus	—	कासनी
20	Allium Ampeloprasum	—	गन्दना
21	Equisetum Sylvaticum.	—	मात्ती
22	Pyrus Communis.	—	नासपाती
23	Rosa Eglanteria.	—	गुलसेवती
24	Oxalis Acetosella	—	तिनपतिया
25	Hyoscyamus Niger	—	खुरासानी अजवायन
26	Drosera Rotundifolia	—	चित्रा
27	Ranunculus Hederaceus.	—	लदकरी
28	Mentha Longifolia Huds	—	पोदीना
29	Doroniem Pardalianches.	—	दरूनज अकरबी
30	Polygonum Dumetorum	—	अजुबार रूमी
31	Ranunculus Ficaria	—	कविराज
32	Datura Stramonium	—	काला धतूरा



विशेष सम्पादक

वनौषधि-विशेषाङ्क के चित्र-प्रबन्धक



प्रकाशकीय निवेदन



भगवान धन्वन्तरि की असीम अनुकम्पा से पूर्व घोषणानुसार वनौषधि का तृतीय भाग धन्वन्तरि के पाठकों को कर कमलों मे समय पर भेंट करते हुए हमको महान प्रसन्नता है। हमको विश्वास है कि वैद्य समाज प्रथम एवं द्वितीय भाग के समान ही इस तृतीय भाग को भी अवश्य पसंद करेगा। इस साहित्य के लेखक श्री० पं० कृष्णप्रसाद जी B A आयुर्वेदाचार्य महान परिश्रम से यह अलभ्य साहित्य निर्माण कर रहे है। गत दो वर्षो मे इस तृतीय भाग का साहित्य उन्होंने पूर्ण किया है। इस दौरान मे एक बार वे अस्वस्थ होगये तथा उस समय उनके जीवन की आशा भी क्षीण हो चली थी लेकिन भगवान धन्वन्तरि की कृपा एव वैद्य समाज के आशीर्वाद ने उनके जीवन की रक्षा की। फिर भी उनके पर्याप्त निर्बलता है तथा लेखन कार्य अब धीमी गति से चल पाता है। इस तृतीय भाग मे च-वर्ग, ट वर्ग तथा त-वर्ग ('न' छोड कर) की सभी वनस्पतियो का वर्णन आ गया है। चतुर्थ भाग १९६७ में प्रकाशित करने का अवश्य प्रयत्न किया जायगा।

वनौषधि-विशेषांक प्रथम भाग ३ वर्ष पूर्व ही समाप्त हो गया था। अब वह पुन छप रहा है तथा आशा है जून माह के अन्त तक छप जायगा। द्वितीय भाग की कुछ प्रतियां अभी शेष है। नवीन ग्राहक द्वितीय भाग तुरन्त मगा लें। मूल्य ८ ५० है, कमीशन काट करके ६.३७ पोस्टव्यय १ १३ कुल ७ ५० मनिआर्डर से भेज कर मगा ले। समाप्त होने पर आगामी सस्करण होने तक प्रतीक्षा करनी होगी। प्रथम भाग तैयार होने पर बाद मे मंगा सकते है ।

इस विशेषांक मे **214** ...वनस्पतियो का वर्णन है। तथा चित्र-संख्या **159** ..है। आप इस साहित्य को पढेंगे और मनन करेंगे तो आपको प्रतीत होगा कि इसके लिखने एवं सकलन करने मे कितना अधिक परिश्रम एवं धन व्यय किया जा रहा है। गत ३८ वर्षो से 'धन्वन्तरि' वैद्य समाज की सेवा करते हुए आयुर्वेद प्रचार मे सलग्न है। इसने हजारो ही व्यक्तियों को वैद्य बनाया है। चिकित्सक इस मासिक-पत्र से अनुभवी वैद्यो के अनुभव प्राप्त कर अपने व्यवसाय मे उन्नति करते है। अस्तु धन्वन्तरि का अधिकाधिक प्रचार करना आयुर्वेद-प्रचार मे सहायक होगा। आप धन्वन्तरि के प्रचार मे निम्न प्रकार हमारी सहायता कर सकते हैं —

१ धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाकर। धन्वन्तरि की ग्राहक-सख्या जितनी अधिक होती जायगी हम 'धन्वन्तरि' भी उतना ही विशाल तथा उपयोगी बनाने का प्रयत्न कर सकेगे।

२ विद्वान् एव अनुभवी चिकित्सको को अपने सफल अनुभव धन्वन्तरि मे प्रकाशनार्थ भेजने के लिए प्रेरित कीजियेगा।

३ आप भी अपने सुझाव दें कि 'धन्वन्तरि' मे क्या नवीन स्तम्भ सम्मिलित करे तथा क्या परिवर्तन करें जिससे कि वह अधिक उपयोगी बन सके।

४, यदि आपने किसी कष्टसाध्य रोगी की चिकित्सा सफलतापूर्वक की है। तो उसका विवरण प्रकाशनार्थ अवश्य भेजे जिससे कि आपके सहयोगी भी आपके अनुभव मे लाभ उठा सके।

आशा है हमारे सभी ग्राहक धन्वन्तरि को अपना ही पत्र समझते हुए इसके प्रचार-प्रसार मे हमारी सहायता करेगे।

आगामी वर्ष का विशेषाक श्री गगाप्रसाद जी गौड "नाहर" के विशेष सम्पादकत्व मे "प्राकृतिक-चिकित्साक" प्रकाशित किया जायगा। इसका लेखन-कार्य प्रारम्भ हो गया हे तथा आवश्यक चित्रादि बनना शीघ्र प्रारम्भ किया जायगा। यह विशेषाक चिकित्सको तथा सभी पठित व्यक्तियो के लिए महान उपयोगी तथा अलभ्य ग्रन्थ प्रमाणित होगा इसमे सन्देह नही।

इस वर्ष का लघु विशेषाक श्री पद्मदेवनारायणसिंह M B B S. के सम्पादकत्व मे "विधि-विधानाक" प्रकाशित किया जा रहा है। इसके लिए उपयोगी सामग्री प्राप्त करने के लिए विशेष सम्पादक द्वारा पत्र-व्यवहार प्रारम्भ कर दिया गया है। इन विशेष सम्पादको के पते निम्नाकित है जो सज्जन इनको अपना सहयोग देना चाहे वे कृपया विशेष सम्पादक से सीधा पत्र-व्यवहार करे प्राकृतिक-चिकित्साक के विशेष सम्पादक—

—श्री डा० गगाप्रसाद गौड 'नाहर N D
रंजना निवास, आइना बीवी बाग, उदयगज
लखनऊ–१

विधिविधानाक के विशेष सम्पादक—

—श्री० डा० पद्मदेवनारायणसिंह M B B S
R K. I २१० पो० सिंदरी (धनवाद)

अभी तक विजयगढ मे बिजली नही थी तथा प्रेस की मशीने एजिन से चलाई जाती थी, जिनमे बडी परेशानी रहती थी तथा समय अधिक लगता था। हमको यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि अब यहा बिजली आगई है नया प्रेस की मशीने बिजली-मोटर से चालू हो गई ह। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि विशेषाक पूर्वापेक्षा शीघ्र प्रकाशित कर सके हैं। तथा आगामी अङ्क भी समय पर प्रकाशित कर सकेंगे ऐसी आशा हे।

एक बार पुन पाठको से निवेदन करते है कि वे शीघ्र ही धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाकर हमारी सहायता करने का प्रयत्न करे।

भवदीय
वैद्य देवीशरण गर्ग।

वनौषधि विशेषांक (तृतीय भाग)

की

विषयानुक्रमणिका

वनौषधि विशेषांक (तृतीय भाग)
की
चित्र-सूची



धन्वन्तरि
कार्यालय

चिकित्सा-साहित्य (प्राच्य-पाश्चात्य) के उत्कृष्ट मननीय ग्रन्थ—

प्रत्येक ग्रन्थ उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा संपादित है। वैद्यों तथा चिकित्सक-समुदाय को चाहिए कि इन ग्रन्थों की एक-एक प्रति मँगवा कर अवकाश के समय उनका अध्ययन कर अपने ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए अपने चिकित्सा-व्यवसाय में भी पूर्ण उन्नति कर यश के भागी बनें।

प्रत्येक ग्रन्थ पर भारत के मर्मज्ञ विशिष्ट विद्वानों, पत्र-पत्रिकाओं तथा शिक्षण-संस्थाओं द्वारा अनेकानेक उत्तम उत्तम सम्मतियाँ प्राप्त हुई हैं।

—सम्पादक

१ **अगदतंत्र**—डा० रमानाथ द्विवेदी। वैद्यों तथा विद्यार्थियों के लिए समान उपयोगी ग्रन्थ ०–७५

२ **अञ्जननिदानम्**—सान्वय विद्योतिनी हिन्दी टीका सहित। आयुर्वेद शास्त्र में निदान के लिए श्रेष्ठ ग्रन्थ १–००

३ **अभिनन्दनग्रन्थ** (सचित्र)—(कविराज श्री सत्यनारायण शास्त्री पद्मभूषण अभिनन्दन ग्रन्थ) १५–००

४ **अभिनव बूटी दर्पण**—(सचित्र) सम्पादक—वनस्पति-विशेषज्ञ श्री रूपलालजी वैश्य। सहज में पहचानने योग्य अनेकानेक चित्रों से विभूषित। वनस्पतियों से चिकित्सा का सर्वोत्तम ग्रन्थ प्रेस में

५ **अभिनव विकृति विज्ञान**—(सचित्र) आचार्य श्रीरघुवीर प्रसाद त्रिवेदी २२–००

६ **अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान**—(सचित्र) आचार्य प्रियव्रत शर्मा। परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण १०–००

७ **अष्टाङ्गसंग्रहः**—श्री गोवर्द्धनशर्मा छांगाणी कृत 'अर्थप्रकाशिका' हिन्दीटीका सहित। सूत्रस्थान ८–००

८ **अष्टाङ्गहृदयम्**—(गुटका) भागीरथी टिप्पणी सहित ४–००

९ **अष्टाङ्गहृदयम्**—विद्योतिनी हिन्दी व्याख्या विमर्श सहित। व्याख्याकार—श्री अत्रिदेवगुप्त विद्यालङ्कार। आचार्य वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय, द्वारा संशोधित परिवर्द्धित सटिप्पण तृतीय संस्करण १५–००

१० **आयुर्वेद की कुछ प्राचीन पुस्तकें**—आचार्य प्रियव्रत शर्मा १–००

११ **आयुर्वेद प्रदीप**—(आयुर्वेदिक-एलोपेथिक गाइड) संपादक—डा० गंगासहाय पाण्डेय १२–००

१२ **आयुर्वेदप्रकाशः**—आचार्य गुलराज शर्मा कृत संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या सहित। परिवर्द्धित संस्करण १२–५०

१३ **आयुर्वेदविज्ञानम्**—विद्योतिनी हिन्दी टीका परिशिष्ट सहित २–००

१४ **आयुर्वेद शिक्षा पर विचार**—डा० घाणेकर ०–४०

१५ **आयुर्वेदीयपरिभाषा**—गिरिजादयालु शुक्ल विरचित अभिनव प्रकाशिका हिन्दी टीका परिशिष्ट सहित १–२५

१६ **आयुर्वेदीय यन्त्र शस्त्र परिचय**—(Ayurvedic Surgical Instruments) ८५ चित्रों से विभूषित। आयुर्वेदाचार्य सुरेन्द्रमोहन १–७५

१७ **आसवारिष्टविज्ञान**—आचार्य पक्षधर झा। इसमें मद्य, सुरा, प्रसन्ना आदि का वर्गीकरण शास्त्रीय विधि से किया गया है ३–००

१८ **एलोपैथिक पाकेट प्रेस्क्राइबर**—(एलोपैथिक गाइड) डा० शिवनाथ खन्ना ५–००

१९ **एलोपैथिक मिक्श्चर्स**—डा० राजकुमार द्विवेदी २–००

२० **औपसर्गिक रोग**—डा० घाणेकर। इस आवृत्ति मे अनेक नये रोग समाविष्ट किये गये है। प्रथम भाग १०–००
द्वितीय भाग १२–००

२१ **औषधि परिचय विज्ञान क्रियात्मक**—श्री विश्वनाथ द्विवेदी प्रेस में

२२ Comparative Survey of Ayurveda Nosology by Dr Ghanekar 1–00

२३ **काकचण्डीश्वरकल्पतंत्रम्**—हिन्दी टीका सहित। द्वितीयावृत्ति २–००

२४ **कामसूत्रम्**—जयमंगला संस्कृत टीका तथा हिन्दी टीका सहित। आचार्य देवदत्त शास्त्री १६–००

२५ **काय चिकित्सा**—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय। इस ग्रन्थ में प्राचीन चिकित्सा-सिद्धान्तों के पूर्ण विवेचन के साथ व्यवहारोपयोगी अनुभवसिद्ध प्राच्य-पाश्चात्य उभय विध संपूर्ण सामग्री सगृहीत की गई है। चिकित्सकों के लिये यह मूर्तिमती सफलता है २५–००

२६ **काय चिकित्सा**—(आयुर्वेदीय चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त तथा उनका क्रियात्मक स्वरूप) आयुर्वेद बृहस्पति श्रीरामरक्ष पाठक। (द्वितीय भाग ज्वर चिकित्सा प्रेस मे) प्रथम भाग १२–५०

२७ **काश्यपसंहिता**—विद्योतिनी हिन्दी टीका, एवं राजगुरु हेमराज कृत संस्कृत-हिन्दी उपोद्घात सहित १६–००

२८ कौमारभृत्य (नव्य बालरोग सहित)—आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी । संशोधित द्वितीय संस्करण ८–००

२९ क्लिनिकल पैथौलोजी—(बृहत् मल-मूत्र-कफ-रक्तादि परीक्षा)। डा० शिवनाथ खन्ना १०–००

३० क्वाथमणिमाला—आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध समस्त क्वाथों का संग्रह । हिन्दी टीकासहित १–५०

३१ गर्भरक्षा तथा शिशुपरिपालन—डा० मुकुन्द स्वरूप वर्मा । गर्भरक्षा का उपाय, गर्भवती स्त्री की दिन-चर्या, गर्भकाल में उत्पन्न होने वाले रोगों से बचने के उपाय तथा नवजात शिशु के पोषण पालन आदि का विवेचन वैज्ञानिक ढंग से किया गया है ४–५०

३२ गूलरगुणविकासः—श्री चन्द्रशेखरधरमिश्र । गूलर के विविध गुणों के वर्णन चिकित्सा सहित १–००

३३ चक्रदत्त—नवीन वैज्ञानिक भावार्थसन्दीपनी भाषाटीका, विविध परिशिष्ट सहित। तृतीय साधारण संस्करण १०–००
सजिल्द संस्करण १२–००

३४ चरकसंहिता—भागीरथी टिप्पणी सहित । चिकित्सादि समाप्ति पर्यन्त द्वितीय भाग ३–००

३५ चरकसंहिता—'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या, विशेष विमर्श परिशिष्ट सहित । सम्पादकमंडल :
चरकाचार्य राजेश्वरदत्त शास्त्री, वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय, डा० गंगासहाय पाण्डेय प्रभृति ।
भूमिका लेखक : कविराज श्री सत्यनारायण शास्त्री पद्मभूषण । इन्द्रिय स्थान पर्यन्त प्रथम भाग १६–००
चिकित्सादि समाप्ति पर्यन्त द्वितीय भाग २०–००, सम्पूर्ण ग्रन्थ १–२ भाग ३६–००

३६ चरकसंहिता का निर्माण काल—श्री रघुवीरशरण शर्मा । अग्निवेश, जतूकर्ण आदि के जीवनकाल के निर्णय के द्वारा चरकसंहिता तथा काश्यपसंहिता का निर्माणकाल प्रस्तुत करने से यह ग्रन्थ आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास बन गया है २–००

३७ चिकित्साशब्दकोश—(Chowkhamba Medical Dictionary) प्रेस में

३८ चिकित्सादर्श—वैद्य राजेश्वरदत्तशास्त्री । औषधव्यवस्था लेखन या नुसखानवीसी का अनुपम ग्रन्थ
१–३ भाग १७–५०

३९ जीवाणु विज्ञान—डा० घाणेकर । इस पुस्तक में तृणाणु (Bacteria) कीटाणु (Protozoa) विषाणु (Virus) इत्यादि जीवाणुओं की विभिन्न श्रेणियों का विवरण उनके प्रकार उनसे उत्पन्न होने वाले रोग और उनकी सम्प्राप्ति तथा चिकित्सा इत्यादि विषयों का समावेश किया गया है प्रेस में

४० तापमापन (थर्मामीटर)—डा० राजकुमार द्विवेदी । ०–२५

४१ तुलसीविज्ञान—विविध रोगों पर तुलसी के ३४३ सफल सुलभ प्रयोगों का संग्रह ०–७५

४२ दोषकारणत्वमीमांसा—आचार्य प्रियव्रत शर्मा १–००

४३ द्रव्यगुण मंजूषा—आचार्य शिवदत्त शुक्ल । प्रथम भाग २–००

४४ द्रव्यगुणविज्ञान—आचार्य प्रियव्रत शर्मा । १–३ भाग । प्रथम भाग में द्रव्यखण्ड, कर्मखण्ड एवं कल्पखण्ड के विषयों का एवं द्वितीय भाग में औद्भिद तथा जंगम द्रव्यों का और तृतीय भाग में पार्थिव द्रव्यों का सुविस्तृत विवेचन किया गया है १८–००

४५ नव परिभाषा—कविराज श्री उपेन्द्रनाथदास कृत हिन्दी टीका सहित १–७५

४६ नव्य-चिकित्सा-विज्ञान—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा । इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में संक्रामक रोगों एवं द्वितीय भाग में पाचनतंत्र के रोगों के कारण, तज्जन्य विकृति लक्षण, परीक्षा करने पर मिलने वाले चिह्नों, आवश्यक प्रायोगिक परीक्षाओं तथा चिकित्सा का विशद विवेचन किया गया है।
प्रथम भाग ८–०० द्वितीय भाग ८–०० १–२ भाग १६–००

४७ नव्यरोगनिदानम् (माधवनिदानपरिशिष्टम्) ०–७५

४८ नाड़ीपरीक्षा—श्री ब्रह्मशंकरमिश्र कृत वैद्यप्रिया हिन्दी टीका सहित ०–३५

४९ नाड़ीविज्ञानम्—आचार्य प्रयागदत्त जोशी कृत विद्योतिनी विस्तृत हिन्दी टीका सहित ०–३५

५० नेत्ररोग विज्ञान—(सचित्र) श्रीविश्वनाथ द्विवेदी । इण्डियन मेडिसिन बोर्ड द्वारा पाठ्य स्वीकृत १०–००

५१ पञ्चभूत विज्ञान—कविराज उपेन्द्रनाथदास कृत हिन्दी टीका सहित ४–००

५२ पञ्चविध कषाय कल्पना विज्ञान—डा० अवधविहारी अग्निहोत्री १–५०

५३ पदार्थ विज्ञान—डा० वागीश्वरदत्त शुक्ल । इस ग्रन्थ में पदार्थ-विज्ञान जैसे जटिल विषय का अत्यन्त सरल हिन्दी में विवेचन किया गया है तथा हिन्दी विवेचन का प्रामाणिक स्रोत संस्कृत उद्धरण भी फुटनोट में उपन्यस्त किया गया है १०–००

५४ **पदार्थविज्ञानम्**—वैद्य सम्राट, पद्मभूषण, कविराज श्री सत्यनारायण जी शास्त्री ३-००
५५ **परिभाषा प्रबन्ध**—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल। परिभाषा सम्बन्धी सभी विषयों का तुलनात्मक विवेचन २-५०
५६ **पेटेण्ट प्रेस्क्राइबर या पेटेण्ट मेडिसिन्स**—डा० रमानाथ द्विवेदी। संशोधित, परिवर्धित तृ० संस्करण ८-००
५७ **प्रत्यक्ष औषधि निर्माण**—आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी। ओषधि निर्माण का अपूर्व ग्रन्थ ३-००
५८ **प्रसूति विज्ञान**—(सचित्र) [A Text book of Midwifery] डा० रमानाथ द्विवेदी १०-००
५९ **प्रारम्भिक उद्भिद् शास्त्र**—वनस्पति विशेषज्ञ प्रोफेसर बलवन्त सिंह। ४-५०
६० **प्रारम्भिक भौतिकी**—श्री निहालकरण सेठी। भौतिक विज्ञान की पाठ्य स्वीकृत सर्वोत्तम पुस्तक ५-५०
६१ **प्रारम्भिक रसायन**—प्रो० श्री फूलदेवसहाय वर्मा। यह उन प्रारम्भिक पुस्तकों से है जिनके द्वारा हिन्दी माध्यम से 'रसायन-विषय' का पठन-पाठन किया जाता है। सभी कालेजों में पढ़ाई जाती है ४-५०
६२ **प्लीहा के रोग और उनकी चिकित्सा**—कविराज ब्रह्मानन्द चन्द्रवंशी ०-३५
६३ **फलसंरक्षण विज्ञान (Fruit Preservation)**—डा० युगलकिशोर गुप्त १-००
६४ **वस्तिशलाकाप्रवेश (एनिमा और कैथेटर)**—पुस्तक छात्रों तथा वैद्यों के लिए समान उपयोगी है ०-४०
६५ **बीसवीं शताब्दी की औषधियाँ**—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा ८-००
६६ **भारतीय रसपद्धति**—कविराज अत्रिदेव गुप्त। धातुओं आदि के शोधन मारण का सरल पथप्रदर्शक १-५०
६७ **भावप्रकाशः**—मूल मात्र। पूर्वार्द्ध ३-०० मध्यमोत्तर खण्ड ७-०० संपूर्ण १०-००
६८ **भावप्रकाशः**—(शोधपूर्ण नवीन संस्करण) नवीन वैज्ञानिक 'विद्योतिनी' हिन्दी टीका परिशिष्ट सहित १-२ भाग २६-००
६९ **भावप्रकाश-ज्वराधिकारः**—नवीन वैज्ञानिक विद्योतिनी हिन्दी टीका परिशिष्ट सहित ४-००
७० **भावप्रकाशनिघण्टुः**—(नवीन संस्करण) सम्पादक-डा० गंगासहाय पाण्डेय। इसमें प्रत्येक वनौषधि की सभी उपजातियों का परिचय, गुण-धर्म एवं आमयिक प्रयोगों का वर्णन तथा औषधियों के अनेक भाषाओं में प्रसिद्ध नाम, उत्पत्तिस्थान तथा आकृति आदि का विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है ९-००
७१ **भिषक् कर्मसिद्धि**—डा० रमानाथ द्विवेदी। चिकित्सा क्षेत्र में नित्य व्यवहार में आनेवाली औषधि तथा अनुभूत योगों का विस्तृत संकलन इस ग्रन्थ मे प्राप्त होता है २०-००
७२ **भेलसंहिता**—श्री गिरिजा दयालु शुक्ल कृत टिप्पणी सहित। शोधपूर्ण संस्करण १०-००
७३ **भैषज्यरत्नावली**—(शोधपूर्ण द्वितीय संस्करण) 'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या, विमर्श सहित १६-००
७४ **भैषज्यकल्पनाविज्ञान**—डा० अवधविहारी अग्निहोत्री। इस पुस्तक में आयुर्वेदीय तथा आधुनिक मान, यन्त्रोपकरण, मूषा, पुट, कोष्ठी, मुद्रा, पञ्चविधकषायकल्पना, अवलेह, गुटिका, वटी, वर्ति, स्नेहपाक. आसवारिष्ट आदि की कल्पना समन्वयात्मक सिद्धान्तों के अनुसार लिखी गयी है ५-००
७५ **मदनपालनिघण्टुः**—मूल। टिप्पणी सहित १-००
७६ **मर्म-विज्ञान**—(सचित्र) आचार्य रामरक्ष पाठक। १०७ मर्मो की सचित्र व्याख्या की गयी है ३-५०
७७ **माधवनिदानम्**—वैद्य उमेशानन्द शास्त्री कृत सुधालहरी संस्कृत टीका सहित प्रेस में
७८ **माधवनिदानम्**—सर्वाङ्गसुन्दरी हिन्दी टीका सहित ४-५०
७९ **माधवनिदानम्**—'मधुकोष' संस्कृत टीका तथा 'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या, विमर्श सहित। इसकी हिन्दी व्याख्या में 'मधुकोष' टीका की भी वैज्ञानिक एवं तुलनात्मक सविमर्श हिन्दी व्याख्या की गई है। परिशिष्ट में नवीन रोगों के भी निदान, चिकित्सा आदि का विशद वर्णन सानुवाद श्लोकबद्ध किया गया है। १-२ भाग १४-००
८० **माधवनिदानम्**—मधुकोष संस्कृत व्याख्या, मनोरमा हिन्दी टीका सहित ६-००
८१ **मूत्र के रोग**—डा० घाणेकर। (Diseases of urine, urinary system and allied diseases) मूत्रविज्ञान सम्बन्धी सर्वश्रेष्ठ नवीन प्रकाशन ६-००
८२ **यकृत के रोग और उनकी चिकित्सा**—वैद्य श्री सभाकान्त झा २-००
८३ **योग-चिकित्सा**—अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार। रोग की कौन सी अवस्था में, कौन-कौन सी ओषधियाँ किस अनुपान से किस समय व्यवहार की जा सकती हैं यह इस पुस्तक का विषय है ३-५०

८४ योगरत्नाकर—मूल। गुटका संस्करण ६–००

८५ योगरत्नाकर—विद्योतिनी हिन्दी टीका सहित। कायचिकित्सा में जिन-जिन बातों का ज्ञान आवश्यक है उन विषयों की आश्रय निधि इस ग्रन्थ में भरी पड़ी है १८–००

८६ रतिमञ्जरी—गद्य-पद्यात्मक हिन्दी अनुवाद सहित ०–४०

८७ रक्त के रोग—डा० घाणेकर। नवीन आवृत्ति १०–००

८८ रसचिकित्सा—कविराज प्रभाकर चट्टोपाध्याय। इस ग्रन्थ में पारद के १८ संस्कार तथा पारदभस्म, हरितालभस्म, स्वर्णवटित मकरध्वज निर्माण प्रकार, शोधन-मारणविधि तथा विविध प्रकार के रोगों की चिकित्सा विधि भी लिखी गई है ६–००

८९ रसरत्नसमुच्चयः—अम्बिकादत्त शास्त्री कृत सुरत्नोज्वला हिन्दी टीका सहित। अभिनव संस्करण १०–००

९० रसरत्नसमुच्चयः—मूल। टिप्पणी सहित। मूल्य सुलभ संस्करण ३–०० उत्तम संस्करण ३–७५

९१ रसादि परिज्ञान—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल। षट् रसों के संबन्ध में गवेषणात्मक विवेचन २–५०

९२ रसाध्यायः—संस्कृत टीका सहित। यह रसशास्त्र का अतिप्राचीन छोटा किन्तु उपयोगी अद्‌भुत ग्रंथ है १–००

९३ रसायनखण्डम् (रसरत्नाकर का चतुर्थ खण्ड)—रसायन तथा वाजीकरण का अपूर्व ग्रन्थ ०–७५

९४ रसार्णवं नाम रसतन्त्रम्—भागीरथी बृहद् टिप्पणी एवं विशेष विवरण से युक्त ३–००

९५ रसेन्द्रसारसंग्रह—बालबोधिनी-भागीरथी टिप्पणी सहित प्रेस में

९६ रसेन्द्रसारसंग्रहः—(सचित्र) नवीन वैज्ञानिक रसचन्द्रिका हिन्दी टीका विमर्श परिशिष्ट सहित ८–००

९७ रसेन्द्रसारसंग्रहः—(सचित्र) गूढार्थप्रदीपिका संस्कृत व्याख्या सहित। व्याख्याकार-अम्बिकादत्त शास्त्री ५–००

९८ राजकीय ओषधियोग संग्रह—आचार्य श्री रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी ए. एम. एस. ७–००

९९ राष्ट्रियचिकित्सासिद्धयोगसंग्रहः—आचार्य श्री रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी। इसमें सिद्ध, कषाय, चूर्ण, तैल, घृत, अवलेह, गुटिका, रस आदि के गुण, अनुपान और निर्माण का पूर्ण विवरण है १–५०

१०० रोगनामावली कोष—वैद्य दलजीतसिंह। आयुर्वेदीय, यूनानी, डाक्टरी रोगोंके नाम और परिचय सहित ३–५०

१०१ रोगनिवारण—(Treatment) डा० शिवनाथ खन्ना १४–००

१०२ रोग परिचय (Clinical Medicine)—डा० शिवनाथ खन्ना। इसमें रोगों की व्याख्या वर्णन, कारक, मरक-विज्ञान, निदान, चिकित्सा आदि का वर्णन किया गया है। परिवर्धित द्वितीय संस्करण १२–७५

१०३ रोगि-परीक्षा विधि—(सचित्र)। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ६–००

१०४ रोगी परीक्षा (Physical Examinations)—डा० शिवनाथ खन्ना। पुस्तक में नवीन वैज्ञानिक-पद्धति के आधार पर रोगीपरीक्षा की विधियों का चित्रों तथा तालिकाओं द्वारा वर्णन है ६–००

१०५ रोगी-रोगविमर्श—डा० रमानाथ द्विवेदी। रोगी और रोग की परीक्षा किन-किन विधियों का अनुसरण करते हुए की जाय यही इस ग्रंथ का मुख्य विषय है २–००

१०६ वनौषधि चन्द्रोदय—इस विशाल निघण्टु ग्रंथ में भारतवर्ष में पैदा होने वाली समस्त वनस्पतियों, खनिज-द्रव्यों, विष-उपविषों के गुण-धर्मों का सर्वाङ्गीण विवेचन है। प्रत्येक वस्तु के भिन्न-भिन्न भाषाओं में नाम, उत्पत्तिस्थान, आयुर्वेद, यूनानी और आधुनिक चिकित्साविज्ञान की दृष्टि से उनके गुण-धर्मों का वर्णन, भिन्न-भिन्न रोगों पर उसके उपयोग, उस वस्तु के मेल से बनने वाले सिद्ध प्रयोगों का विवेचन बहुत ही सुन्दर तथा विस्तार से किया गया है। अपने विषय का अद्वितीय ग्रंथ है। पृथक्-पृथक् प्रत्येक भाग का मूल्य ५–०० तथा सम्पूर्ण ग्रंथ १–१० भाग का मूल्य ४०–००

१०७ वनौषधि दर्शिका—प्रो० बलवन्त सिंह। लगभग २०० वनौषधियों का विवरण दिया गया है २–५०

१०८ विषविज्ञान और अगदतन्त्र—डा० युगलकिशोर गुप्त एवं डा० रमानाथ द्विवेदी। इसमें उन विषैले द्रव्यों का वर्णन है जिनका आत्महत्या या परहत्या के लिए व्यवहार किया जाता है १–७५

१०९ वैद्यक परिभाषाप्रदीप—आयुर्वेदाचार्य प्रयागदत्त जोशी कृत प्रदीपिका हिन्दी टीका सहित। द्वितीय संस्करण १–५०

११० **वैद्यकीय सुभाषितावली**—डा० प्राणजीवन माणेकचन्द मेहता। वेद से लेकर वैद्यजीवन ग्रंथ तक में आये हुए आयुर्वेदिक सुभाषितों का संग्रह। मूल संस्कृत, अंग्रेजी अनुवाद सहित २–००

१११ **वैद्यजीवनम्**—अभिनव सुधा हिन्दी टीका टिप्पणी सहित। टीकाकार—श्री कालिकाचरणशास्त्री १–२५

११२ **वैद्यसहचर**—आयुर्वेदाचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी। लेखक के ४० वर्षों के लाभप्रद सिद्धयोगों का संग्रह ३–००

११३ **व्यवहारायुर्वेद-विषविज्ञान-अगदतन्त्र**—डा० युगल किशोर गुप्त एवं डा० रमानाथ द्विवेदी ५–००

११४ **शल्य प्रदीपिका**—(सचित्र) डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा। शल्यविज्ञान की उत्तम पुस्तक १२–५०

११५ **शल्य तन्त्र में रोगी परीक्षा** (Clinical Methods in Surgery)—डा० पी. जे देशपाण्डे ७–००

११६ **शार्ङ्गधरसंहिता**—नवीन वैज्ञानिक विमर्शोपेत सुबोधिनी हिन्दी टीका सहित। परिष्कृत नवीन संस्करण ५–००

११७ **शालाक्य तन्त्र (निमितन्त्र)**—इस पुस्तक के ५ भागों में क्रमश. नासिका, शिर, कान, मुख एव आँखों के रोगों के हेतु, निदान, सम्प्राप्ति आदि की विस्तृत विवेचना की गई है ९–००

११८ **शिलाजीत विज्ञान**—शिलाजीत का परिचय, शोधनादि तथा अनुभूत योगों का विशद वर्णन है ०–७५

११९ **सचित्र-इन्जेक्शन**—डा० शिवनाथ खन्ना। इन्जेक्शन देने मे जितनी सावधानी, विज्ञता और कुशलता की अपेक्षा होती है, उन सभी विषयों का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत पुस्तक का विषय है १०–००

१२० Surgical Ethics in Ayurveda by Dr G. D Singhal and Pt Damodar Sharma Gaur. 5–00

१२१ **सामान्य रोगों की रोकथाम**—डा० प्रियकुमार चौबे। इसमे सभी सामान्य रोगों का परिचय, लक्षण तथा उनसे बचने के उपायों का सचित्र विवेचन किया गया है ३–५०

१२२ **सिद्धभेषज संग्रह**—आचार्य युगल किशोर गुप्त तथा डा० गगासहाय पाण्डेय। राज सस्करण ९–०० उत्तम सस्करण ८–०० सुलभ सस्करण ७–००

१२३ **सुश्रुतसंहिता**—आयुर्वेदतत्त्वसंदीपिका हिन्दी टीका वैज्ञानिक विमर्श सहित। टीकाकार–कविराज अम्बिकादत्त शास्त्री। टीकाकार ने मूल संहिता के भावों को सरल भाषा में नवीन विज्ञान के साथ तुलना कर विषयों को अधिक स्पष्ट एव बुद्धिग्राह्य बना दिया है। १–२ भाग सपूर्ण ग्रंथ २४–००

१२४ **सुश्रुतसंहिता**—सुदामा मिश्र कृत सुधा सस्कृत टीका सहित प्रेस में

१२५ **सुश्रुतसंहिता शारीर स्थान**—नवीन वैज्ञानिक 'प्रभा'–'दर्पण' हिन्दी व्याख्या सहित ३–५०

१२६ Sushruta Samhita With a full and comprehensive Introduction English translation and different readings etc, with plates By Kaviraj Kunjalal Bhishagratna. 3 Vols Complete. 60–00

१२७ **सूचीवेध विज्ञान**—डा० राजकुमार द्विवेदी। परिष्कृत द्वितीय सस्करण २–००

१२८ **सौश्रुती**—डा० रमानाथ द्विवेदी। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों मे इस विषय की यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री को क्रमबद्ध एव आधुनिक विज्ञान से आलोकित सरल भाषा मे प्रस्तुत किया है। द्वितीय संस्करण ८–५०

१२९ **स्टेथिस्कोप तथा नाडी परीक्षा**—(सचित्र) इस पुस्तक में स्टेथिस्कोप की बनावट, परीक्षा, ध्वनिवर्णन आदि तथा नाडीपरीक्षा संबन्धी सभी ज्ञातव्य विषयों का वर्णन है ०–७५

१३० **स्त्रीरोग-विज्ञान (सचित्र)**—डा० रमानाथ द्विवेदी ३–५०

१३१ **स्वास्थ्यविज्ञान और सार्वजनिक आरोग्य**—डा० भास्कर गोविन्द घाणेकर ७–५०

१३२ **स्वस्थवृत्त समुच्चय**—चरकाचार्य श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री कृत हिन्दी टीका सहित ६–५०

१३३ **स्वास्थ्यसंहिता**—हिन्दी टीका सहित। लेखक–कविराज नानकचन्द वैद्य शास्त्री। स्वास्थ्य विज्ञान के सभी सम्भावित प्रश्नों का विवेचन इस पुस्तक में किया गया है २–५०

१३४ **स्वास्थ्यशिक्षापाठावली**—डा० भास्कर गोविन्द घाणेकर। आयुर्वेद संहिता ग्रन्थों से दैनिक आहार-विहार तथा चिकित्सा के लिये उपयोगी श्लोकों का सानुवाद सग्रह इसमें किया गया है ३–५०

१३५ **हैजा (विसूचिका) चिकित्सा**—इससे हैजा का इतिहास, लक्षण, निदान, चिकित्सा और उससे बचने के उपाय तथा कुछ अनुभूत नवीन पेटेंट ओषधियों का भी वर्णन किया गया है ०–७५

स्वास्थ्यविज्ञान और सार्वजनिक आरोग्य

डा० भास्करगोविन्द घाणेकर

इस सपरिष्कृत परिवर्धित चतुर्थ संस्करण में मन.-स्वास्थ्य और मनोविकार-प्रतिबन्धन जैसे महत्त्वपूर्ण नये विषयों का समावेश तथा अंग्रेजी-हिन्दी कोष का रूप बदलकर हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोष कर दिया गया है।

मूल्य ७–५०

बीसवीं शताब्दी की औषधियाँ

डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा

बीसवीं शताब्दी ने चिकित्सा-प्रणाली में जो युगान्तर उत्पन्न कर दिया है वह सब इस पुस्तक में देखने को मिलेगा। इसमें उन सभी नवीन औषधियों का वर्णन किया गया है जिनका प्रयोग अभीष्ट फलदायक होता है। प्रत्येक औषधि की उत्पत्ति, उसके रासायनिक रूप, लाभ, हानि तथा उपयोग पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। ८–००

नव्य-चिकित्सा विज्ञान

डा० मुकुन्द स्वरूप वर्मा

इस ग्रन्थ में नवीनतम वैज्ञानिक मतों के अनुसार संक्रामक रोगों एवं पाचकतन्त्र के रोगों के कारण, तज्जन्य विकृति-लक्षण, परीक्षा करने पर मिलने वाले चिह्नों, आवश्यक प्रायोगिक परीक्षाओं तथा चिकित्सा का विशद विवेचन किया गया है। प्रथम भाग (संक्रामक रोग) ८–००

द्वितीय भाग (पाचक तंत्र के रोग) ८–००

रोगि-परीक्षा-विधि (सचित्र)

आचार्य प्रियव्रत शर्मा

इस ग्रन्थ में आयुर्वेदिक और एलोपैथिक दोनों पद्धतियों से रोगी-परीक्षा का पूर्ण विवरण दिया गया है। प्रायः सभी स्थलों पर चित्रों को देकर विषय को और भी सरल तथा स्पष्ट रूप से समझाया गया है। मूल्य ६–००

शार्ङ्गधरसंहिता

'सुबोधिनी' हिन्दीटीका, विमर्श, परिशिष्ट-सहित।

इसकी हिन्दी टीका तथा टिप्पणी में ग्रंथ के भावों को विशेष प्रयत्नों द्वारा सुरक्षित रखा गया है। विमर्श द्वारा ग्रंथ की गूढ ग्रंथियों को भी सरलतापूर्वक स्पष्ट किया गया है। मान आदि के सम्बन्ध में ऐसे मत का संग्रह किया गया है कि प्रत्यक्ष क्रियाओं में कहीं कोई बाधा न हो। मूल्य ५–००

सचित्र इन्जेक्शन

डा० शिवनाथ खन्ना

इस पुस्तक में इन्जेक्शन देने की सब विधियों का तथा साधारण इन्जेक्शन के अतिरिक्त एनिमा (Enema) लगाना, प्लूरा (Plura) से पीप निकालना, आदि चिकित्सक के प्रतिदिन की आवश्यक क्रियाओं का विस्तार पूर्वक चित्रों सहित वर्णन, इन्जेक्शन देने की औषधियों का तथा पेटेन्ट (Patent) औषधियों की प्रकृति, प्रयोग, योग, विषाक्तता, विषाक्तता की चिकित्सा, मात्रा आदि का वर्णन तथा लगभग १०० प्रमुख रोगों की चिकित्सा का आधुनिक विधि (Allopathy) से वर्णन है। मू० १०–००

भैषज्यरत्नावली–विद्योतिनी टीका

(शोधपूर्ण परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण)

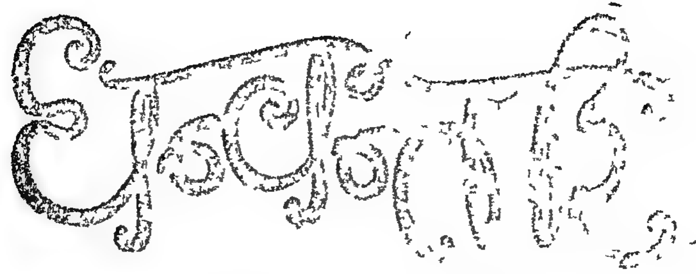
इस ग्रन्थ के प्रमुख सम्पादक आयुर्वेदबृहस्पति पंडित राजेश्वरदत्तजी शास्त्री ने अपने अध्यापनानुभव तथा चिकित्सानुभव के अनुरूप इस द्वितीय संस्करण की सविमर्श व्याख्या में आमूल संशोधन-परिवर्तन कर दिया है। इस संस्करण के परिशिष्ट में 'अनुभूतयोगप्रकरण' नामक एक मौलिक ग्रन्थ ही जोड दिया गया है, जो भैषज्यरत्नावली का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। अनुभूतयोगप्रकरण में जितने योग दिये गये हैं वे पं० राजेश्वरदत्त शास्त्रीजी के स्वतः अनुभूत सिद्धयोग हैं। इन पद्यबद्ध योगों की हिन्दी व्याख्या भी दी गयी है। नवीन, प्राचीन तथा पाश्चात्य-मतानुयायी चिकित्सकों के लिए भी यह 'अनुभूतयोग-प्रकरण' संग्रहणीय है। मूल्य १६–००

भावप्रकाशः

(शोधपूर्ण परिवर्द्धित नवीन संस्करण)

नवीन वैज्ञानिक 'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या

इसमें गर्भप्रकरण के ऊपर डाक्टरी तथा आयुर्वेदिक मतानुसार समन्वयात्मक परिशिष्ट तथा निघण्टुप्रकरण में सभी वनौषधियों का विस्तृत परिचय, नवीन वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत गुण धर्मों एवं प्रयोगों का विस्तृत वर्णन तथा उपलब्ध वनस्पतियों की असली-नकली की पहचान, सभी भाषाओं में उनके नाम आदि सभी ज्ञातव्य विषयों का विवरण किया गया है। चिकित्सा-प्रकरण में प्रत्येक रोग की डाक्टरी मतानुसार निदानादि के साथ चिकित्सा तथा आयुर्वेदिक और डाक्टरी मतों की समन्वयात्मक टिप्पणी भी दी गई है। मूल्य पूर्वार्द्ध १२–००, उत्तरार्द्ध १५–००



के विशेषांक मंगाओं

धन्वन्तरि के विशेषांक विषय के विद्वान अधिकारी विशेष सम्पादक द्वारा सम्पादित तथा अपने विषय के सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य होते हैं इन विशेषांको ने आयुर्वेद–साहित्य मे एक क्रांति उत्पन्न की है। सभी पाठक इनकी भूरिभूरि प्रशंसा करते है। ये विशेषांक जिस-जिस वर्ष मे प्रकाशित हुए उन वर्ष के ग्राहकों को धन्वन्तरि के वार्षिक मूल्य मे ही भेंट स्वरूप दिये गए थे। वर्ष समाप्त होने पर इन विशेषांको को पुस्तकों के अनुरूप मूल्य पर बिक्री किया जाता है। लगभग ५५ विशेषांक प्रकाशित किए जा चुके हे लेकिन इस समय निम्न विशेषांक ही शेष है। इनमे से अधिकांश का शीघ्र समाप्त हो जाना निश्चित हे। ऐसी दशा मे पाठको को चाहिए कि जो विशेषांक उनके पास न हो तुरन्त पत्र डालकर मगाले। धन्वन्तरि के ग्राहकों को नीचे दिये मूल्य पर २५%कमीशन दिया जायगा। पोष्ट–व्यय ग्राहक को पृथक देना होगा। शीघ्रता करें।

शिशु रोगांक

इस विशेषांक मे शिशुओं के खासतौर से होने वाले प्रत्येक रोग का विस्तृत विवरण दिया गया है। इस विशेषांक के लेखन मे ११३ विद्वानो का सहयोग प्राप्त हुआ है। इसकी पृष्ठसंख्या लगभग ५५० है। पाठक इसके विषय को आसानी से समझ सकें इसके लिए इस विशेषांक मे १३९ चित्र दिये हैं। इस विशेषांक के सभी विषयो पर विद्वानो एव अनुभवी व्यक्तियो से अनुभवपूर्ण लेख प्राप्त करने, उनसे सम्बन्धित चित्रो का निर्माण करने तथा उन लेखो को विषयानुसार क्रमबद्ध लगाने मे बहुत परिश्रम किया गया है। इस विशेषांक मे शिशु के गर्भाशय स्थित जीवन, प्रसवोपरान्त नवजात शिशु का पोषण, शिशुओं के रोगो की परीक्षाविधि, बालको के औषधि मात्रा का विचार, बालग्रह (सभी ग्रह रोगो का निदान, लक्षण एवं उपचार), बालकों के दांत निकलते समय होने वाले रोग एव उनका विवरण, शिशुओं मे पाचन-विकार व निवारण, अस्थिविकार तथा फक्क रोग, बालकों मे सर्वाधिक पाया जाने वाला सूखा रोग, उसका निदान, लक्षण एव चिकित्सा सहित विशद विवेचन, बालकों को बहुत परेशान करने वाली काली खासी, कृमि रोग, गुदभ्रंश रोग, गले के रोग, मोतीझरा, न्यूमोनिया, खसरा, पित्ती उछलना, रात्रि को डरना, बालको का मिट्टी खाना, मुखपाक, बालकों को सर्दी लगना, हकलाना या तुतलाना, बालको को सर्वत्र एव सर्वाधिक होने वाली यकृत वृद्धि, बालको का सर्वाधिक भयकर रोग डिपथीरिया, जैसगीय अङ्गघात आदि रोगो पर चित्रो सहित विशद विवेचन किया गया है। प्रत्येक विषय पर उस विषय के विद्वान द्वारा ही लेख लिखा जाने से यह विशेषांक किसी एक व्यक्ति द्वारा लिखित पुस्तक की अपेक्षा बहुत उपयोगी है। विशेषांक के अन्त मे एक लगभग ८० पृष्ठ का "परीक्षा" अध्याय दिया है जिसमे कि शिशुओं से सम्बन्धित ज्ञातव्य सभी सामग्री दी है। मूल्य ८ ५०

इस विशेषांक की, भारत की चोटी के आयुर्वेद विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। हम उनमें से तीन पत्रांशों को क्रमशः उद्धृत करते हैं—

(१) श्री [illegible] गोस्वामी, सम्पादक—'[illegible]' [illegible] ([illegible])

'धन्वन्तरि' का 'शिशु रोगांक' प्राप्त हुआ धन्यवाद। भारत मे [illegible] से [illegible] होने वाले शिशुओं की।

संख्या अत्यधिक है। आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति बड़ी महगी है। आपने आयुर्वेदिक-पद्धति से जड़ी बूटियों के सहारे शिशुरोगों के शमनार्थ अनेक उपाय इस अङ्क में दिये हैं। कम मूल्य में उपयोगी वृहदाकार अङ्क देकर आप भारतीय-समाज एवं आयुर्वेद की अभूतपूर्व सेवा कर रहे हैं। बधाई। शेष भगवत्कृपा।

(२) श्री वैद्य मणिराम शर्मा भिषगाचार्य, आयुर्वेदाचार्य प्रिन्सीपल-आयु० विश्वभारती, सरदारशहर

आपके द्वारा भेजा हुआ शिशु रोगांक प्राप्त हुआ एतदर्थ धन्यवाद। मैंने इसके कई स्थल देखे। इसमें दन्तोद्भेद क्रम प्रकरण, बालशोष, कृमिरोग, बाल यकृत एवं बाल पक्षाघातादि रोगों पर विद्वान वैद्यों के दिये हुये लेख अतीव महत्वपूर्ण हैं। ये व्याधियां बालकों के लिए अतीव दुख दायी समझी जाती हैं। इस अङ्क में लिखित प्रयोगों द्वारा इन व्याधियों का निराकरण होगा।

(३) कविराज श्री प० दीनदयाल सौभरि एच पी ए (जामनगर), भिषगाचार्य (आनर्स) प्रभाकर अनुसधान म० (चिकित्सा) शिक्षा मत्रालय, दिल्ली—६

आपका भेजा हुआ 'धन्वन्तरि' का शिशुरोगांक प्राप्त हुआ। पहले तो उसकी जिल्द को देखकर ही अति प्रसन्नता हुई। जब खोल कर लेख पढ़े तो पाया कि वास्तव में पहले विशेषांकों के समान ही इस अङ्क ने शिशुओं के रोग-निदान व चिकित्सा के क्षेत्र में समयानुकूल साहित्य की पूर्ति की है। हिन्दी की अभिवृद्धि में निरत मेरे जैसे चिकित्सकों को तो इस साहित्य से अपने कार्य के पूरक व सहायक होने से प्रसन्नता है ही, किन्तु आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए भी यह लाभप्रद सिद्ध होगा।

मूल्य—८ ५० रु०

वनौषधि विशेषांक प्रथम व द्वितीय भाग

आचार्य श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी द्वारा लिखित एवं सम्पादित यह विशेषांक वानस्पतिक विवेचन का अभूतपूर्व ग्रन्थ है। इसके प्रथम भाग में 'अ' से 'क' तक की सभी वनस्पतियों का सचित्र वर्णन किया गया है। [illegible] वर्णित होने के कारण सभी आयुर्वेद के जानकार इन्हें आसानी से [illegible] हैं। अनेकों सन्दिग्ध [illegible] होने के कारण यह सर्वथा सराहनीय है। जो वैद्य एकौषधि-चिकित्सा के द्वारा रोग-निवारण की रीति प्रशंसनीय बताते हैं उनके लिये तो यह ग्रन्थ सोने में सुगन्ध ही है। रोग-विशेष नामोल्लेखन-पूर्वक वानस्पतिक चिकित्सा पूर्णरूपेण जैसी इस विशेषांक में लिखी है। वैसी अन्यत्र किसी ग्रन्थ में नहीं लिखी, यह कहने का साहस पाठक गण स्वयं पढ़कर ही कर सकेंगे। प्रथम भाग समाप्त होगया है पुन छप रहा है। मूल्य १० रु.

इसके द्वितीय भाग में 'क' वर्ग की समस्त वनस्पतियों का सचित्र वर्णन सन्निहित है। विशेषांक सम्पादक श्री प कृष्णप्रसाद जी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य ने अपने महान अनुभवों के आधार पर इस विशेषांक में वर्णित औषधियों की शास्त्रसम्मत विवेचना की है सन्दिग्ध औषधियों का विशद विवेचन पाठकों को सतुष्ट किये बिना न रहेगा। रोगानुसार वनस्पतियों के प्रयोग चिकित्सा-जगत में सर्वत्र ख्याति प्रदान कर वनस्पति शास्त्र की उपयोगिता सिद्ध करते हैं। यह तो निर्विवाद सिद्ध ही है कि एकमात्र वनौषधि-चिकित्सा प्राचीन भारत की विभूति रही हैं। आज भी वनस्पतियों के सफल उपायों के परीक्षण-हेतु वनस्पति-चिकित्सा का प्रचार सुविज्ञजनों द्वारा करणीय है। अतएव ऐसे वानस्पतिक विवेचन पूर्ण विशेषांक का समादर सभी का आवश्यक कर्तव्य है। अनेक विद्वानों ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर हमें आभारी किया है। मू० ८ ५० रु

संक्रामक रोगांक

श्री कविराज मदनगोपाल जी द्वारा सम्पादित यह विशेषाङ्क सक्रमण जनित रोग-विषयक एक पूर्ण साहित्य है। सक्रमण से होने वाले प्राय सभी रोगों का पूर्णरूपेण वर्णन कर उनसे बचने के सरल उपाय विज्ञान की दृष्टि से समझाये गये हैं। उपदश, फिरंग, अभिष्यन्द, विसूचिका, कुष्ठ, ज्वर, शोथ और प्लेग आदि विविध विषय इस विशेषांक के विवेच्य अङ्ग हैं। जो चिकित्सकों एवं आयुर्वेद प्रेमियों के लिये अवश्य पठनीय विषय है। सक्रमण का काल, सक्रमण की मर्यादा एवं सक्रमित दशा में उपयोज्य विषयों के यथावत् प्रतिपादन के द्वारा सम्मान्य लेखकों ने इसमें गागर में सागर भर दिया है आधुनिक चिकित्सक की वर्ग रोगों का कारण कीटाणुसक्रमण ही सिद्ध करता है तथा प्राचीनवैद्य भी इसको स्वीकार करने में सदेहपूर्ण नहीं

थे। अतएव रोगो के संक्रमण का सम्यक् परिज्ञान दोनो ही प्रकार के वैद्यो के लिये ज्ञातव्य विषय है। इस विशेषाक मे वे सभी विषय परिपूर्ण है। जो आजकल सर्वथा ग्रहण करने योग्य हे। भारत के गणमान्य विद्वानो ने अपने प्रशसा-वचनो द्वारा इसे अति प्रशस्त वना दिया है। मूल्य ४०० रु०

गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क (चतुर्थ भाग)

इस विशेषाङ्क मे उन वैद्यो के सफल गुप्त प्रयोग हैं। जो वे किन्ही व्यक्तियो पर प्रकट न कर अपने पास ही गुप्त रूपेण अपनी प्रतिष्ठा-वृद्धि के लिये रखते थे। धन्वन्तरि के व्यवस्थापको ने बहुत धन व्यय कर उन वैद्यो से विनम्रता प्रदर्शित करके उन्हे धन्वन्तरि मे प्रकाशनार्थ बाध्य करवाया है। इसमे वर्णित एक एक योग चमत्कार पूर्ण है। इसका अनुभव अनेक विद्वानो ने करके हमे प्रकाशन हेतु प्रशंसा-पत्र प्रदान किये हैं। कुछ प्राचीन वैद्यो की यह परम्परा रही है कि वे अपने प्रयोग किसी भी प्रकार दूसरो से नही प्रकट करते थे। किन्तु अपने ही पास उन्हे रख कर चिकित्सा मे चमत्कारिता दिखा देते थे। ऐसे ही अनेक वैद्यो से आग्रहपूर्वक विनय के परिणाम स्वरूप गुप्त सिद्ध प्रयोग दान यह विशेषाङ्क है। चिकित्सक-वर्ग के लिये हर समय इसकी आवश्यकता है। इसे पढकर इसके प्रयोगो द्वारा अनेक कष्टसाध्य रोगो पर विजय प्राप्त करते हुये यशोपार्जन सरलता से किया जा सकता है। भाषा सर्वसाधारण के समझ सकने योग्य होने के कारण सामान्य गृहस्थ पुरुषो के लिये भी उपादेय हैं। मूल्य ८ ५०

मधुमेह अक

मधुमेह रोग-विषयक यह लघु विशेषाङ्क अनेक तद-विषयक विद्वान लेखको के सहयोग द्वारा सुलिखित प्रशसनीय साहित्य है। मधुमेह की उत्पत्ति, कारण पूर्वरूप व चिकित्सा आदि विषय इसमे विवेचात्मक रूप से वर्णित हैं। सम्प्रति मधुमेह से ग्रसित अनेको रोगी दृष्टिगत है। अतएव मधुमेह विषयक पूर्णज्ञान के हेतु इसका अध्ययन अनिवार्य है। जिमसे इसके विषय मे जानकारी करके इससे वचने के उपायों का आश्रय लिया जाये। निदान-परिवर्जन प्रशंसनीय चिकित्सा प्रणाली है। इसे पढ़कर मधुमेह के कारणो से अपने को प्रथक रखा जा सकता है। ऐसे योग जो मधुमेह पर अव्यर्थ है पाठको के लिये योग्य विद्वानो द्वारा अर्पण किये गये हैं। विशेषाङ्क सभी दृष्टि से सग्रहणीय है। मूल्य १०० रु०

कल्प एवं पंचकर्म विज्ञानांक

वमन, विरेचन, नस्य, स्थापन, निरुहण इन पचकर्मो का विशद विवरण करके इसे आयुर्वेदज्ञ जनो के लिये उपयोगी वनाया गया है। पच कर्म किसे अनिवार्य हैं किस अवस्था मे उनके प्रयोग साधनीय है किन अवस्थाओ मे नही। पच कर्मो के प्रथम साधनीय उपकरणो की विस्तृत व्याख्या एव पश्चात् तद्गतृव्या पत्तियो की विशद विवेचना ही इसमे मुख्य विषय है। अङ्क सर्वथा सग्रहणीय है। कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी काव्य-व्याकरण साख्य तीर्थ इसके विशेष सपादक हैं। इन्होने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का प्रदर्शन इस विशेषाक मे करके पाठको को उनके तृप्त होने के लिये प्रचुर सामग्री दी है। साथ ही साथ इस अंक की यह भी एक विशेपता है कि कल्पचिकित्सा जो अपने यहा की प्राचीन चमत्कारिक चिकित्सा है उसके सम्यक सिद्धान्त सर्वसाधारण के समझ सकने योग्य दर्शाये गये हैं। श्री० प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी०ए० आयुर्वेदाचार्य लिखित 'पचकर्म रहस्य' नामक लेख अत्यन्त ही सारगर्भित है। मूल्य ४००

काय चिकित्साङ्क

आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद जी त्रिवेदी द्वारा संपादित यह अकृत पूर्व विशेषाङ्क चिकित्सा-जगत के लिये अपना एक विशिष्ट स्थान रखने वाला चिकित्सा-ग्रन्थ है। प्राय सभी व्यापक रोगो के निदान-लक्षण पूर्वक पूर्ण श्रेष्ठ तत्तद्विद्वानो द्वारा दी गई चिकित्सा जन मात्र के लिये परमोपकारक है। एक एक कायिक रोग पर कई कई योग्य विद्वानो द्वारा लिखे गये लेख सर्व साधारण की समझ मे आ जाने के कारण अति सरल हैं। श्री मुकुन्दीलाल जी द्विवेदी द्वारा लिखा हुआ प्रवाहिका का लेख परम प्रशंसनीय है। इसमे प्रवाहिका के उपचार सहित उनके उपयोगो का सजीव वर्णन पाठक गण पढ करही ज्ञात कर सकते है। गुलराज शर्मा मिश्र ने कल्प-चिकित्सा की उपयोगिता पर जो प्रकाश डाला है उसका मूल्याकन पढने वाला ही कर सकता है। रक्त दवाव या रौधिर मद डा० परमानन्द शास्त्री द्वारा लिखित लेख

विज्ञान-समन्वित होने के साथ ही साथ आयुर्वेद की प्रशंसा से भी परिपूर्ण है। देश के विभिन्न विद्वानों ने इसकी प्रशंसा करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी है। मू ८ ५०

माधव निदानांक

श्री आचार्य दौलतराम सोनी आयुर्वेदरत्न द्वारा सम्पादित यह माधव निदानांक रोगों के परिपूर्ण वर्णन की परिपूर्णता के लिए परम प्रसिद्ध है। माधव-निदानान्तर्गत सभी रोगों के निदान, पूर्वरूप, रूपोपशयादि जो वर्णन किये है उनका विस्तृत वैज्ञानिक रूपेण वर्णन विद्वान सम्पादक ने करके इसमे चार चाद लगा दिये है। पं० सीताराम मिश्र जी द्वारा लिखित ग्रहों से रोगनिदान ज्ञानज्योतिष से सम्बन्धित अपने विषय का सर्वाङ्गपूर्ण लेख है। कायिक रोगों के अतिरिक्त शल्य व शालाक्य से सम्बन्धित रोगों का विवेचन भी शास्त्र दृष्ट्या करके इस विशेषांक को भी आधुनिक रूप दे दिया गया है। योग्यतम वैद्यों से सर्वथा सराहनीय होने के कारण यह विशेषांक परम प्रशस्त सिद्ध हो चुका है। मूल्य ८ ५०

यूनानी चिकित्सांक

श्री वैद्यराज हकीम दलजीतसिंह जी आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद वृहस्पति द्वारा सुसम्पादित यह चिकित्सांक यूनानी चिकित्सा का एक अनुपम अङ्क है। यूनानी चिकित्सा सदा से ही भारतीयों द्वारा समादृत रही है और आज भी उसके चमत्कार न्यूनता को प्राप्त नहीं है। ऐसी सुखद और श्रेष्ठ चिकित्सा का ज्ञान आयुर्वेदज्ञों के लिये एक अनिवार्य विषय है। इसी ध्येय से धन्वन्तरि के व्यवस्थापकों ने प्रचुर धन एवं परिश्रम के द्वारा इस अङ्क के प्रकाशित होने की योजना बनाकर उसे कार्यरूप मे परिणत किया। एकमात्र इसके पठन से ही यूनानी चिकित्सा मे पूर्ण रूपेण प्रवेश पाया जाना सम्भव है। विविध यूनानी चिकित्सा-सुविज्ञों में निष्णात लेखकों के लेखों द्वारा इसकी कमनीय काया परिपुष्ट की गई है। परिशिष्ट में यूनानी औषधियों के चित्र दिए गए है तथा रोगों के नाम भी यूनानी के अनुसार देकर इसे और भी सुन्दर कर दिया गया है। विशेषांक सभी दृष्टि से संग्रहणीय है। ऐसे सुन्दर सुबोधगम्य इस अङ्क का मूल्य ८ ५० रु० है।

चिकित्सा समन्वयांक

आयुर्वेदाचार्य श्री पं० ताराशंकर जी मिश्र वैद्य द्वारा सम्पादित यह समन्वय-प्रणाली का अनोखा अङ्क है। प्रस्तुत अङ्क मे आयुर्वेद की ही शाखाओं एलोपैथी होमियोपैथी आदि को आयुर्वेद का ही एक प्रमुख अङ्ग मानकर उन सभी का समयानुसार आश्रय लेते हुए चिकित्सा-प्रणाली को श्रेष्ठ बताकर उनका विशद रूपेण वर्णन किया गया है। फिरङ्ग, नपुंसकता, कुष्ठ व अन्य दुःसाध्य रोगों के विवेचन पाठकगण पढकर ही उनके श्रेष्ठत्व का मूल्यांकन कर सकेंगे। आयुर्वेद के अतिरहस्यमय विवेचन 'प्रज्ञापराध' का विस्तृत वर्णन सुयोग्य लेखक श्री वैद्यनाथशर्मा द्वारा लिखा हुआ सभी के पढने योग्य है। तदन्तर्गत बेरी-बेरी (वातबलात्मक) रोग का विषय भी किसी भी दशा मे पाठकों को संतोषप्रदान करने मे कमी नही रख सकता। इस संग्रहणीय अङ्क का मूल्य प्रथम भाग ४.०० रु तथा द्वितीय भाग २ ००

लघु-विशेषांक

निम्न लघु विशेषांक भी अति महत्वपूर्ण है। इनमे विभिन्न अनेक विद्वानों के विवेचनात्मक एवं अनुभवपूर्ण लेख, सफल चिकित्साविधि तथा अनेक सफल प्रमाणित प्रयोगों का वर्णन है।

पञ्चकर्म विज्ञानांक	१ ००
सूखा रोगाङ्क	१ ००
श्वास अंक	१ ००
श्वास अङ्क (थीसिस)	१ ५०
पायरियारोगाङ्क	१ ००
कासरोगाङ्क	१.००
शूल-रोगांक	१ ००

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि के
ग्राहक बनने के नियम

१ धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य पोस्टव्यय सहित ६.५० है।

२. इसी वार्षिक मूल्य मे ग्राहको को एक विशाल विशेषाक भी मिल जाता है। वर्ष १९६५ के ग्राहको को "वनौषधि विशेषाक" तृतीय भाग दिया जायगा।

३. वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है तथा ग्राहक भी जनवरी से दिसम्बर तक के लिये पूरे एक वर्ष को ही बनाये जाते है। जो सज्जन आगामी महीनो मे ग्राहक बनते है उनको उस समय तक के प्रकाशित अङ्क एक साथ भेजकर जनवरी से ही ग्राहक बना लिया जाता है।

४. वार्षिक मूल्य मनियार्डर से भेजे या वी० पी० से मंगाये, खर्चा बराबर ही होगा।

५. केवल विशेपाक का मूल्य ८.५० होता है। लेकिन ग्राहक बन जाने पर वह विशेपाक अन्य अङ्को के साथ साथ वार्षिक मूल्य मे ही मिल जाता है। अस्तु "धन्वन्तरि' के स्थायी ग्राहक बन जाना ही उचित है।

६. विशेपाक की कुछ प्रतिया उत्तम ग्लेज कागज पर भी छापी जाती है। यदि आप ग्लेज कागज पर छपा विशेपाक प्राप्त करना चाहे तो आपको १.०० अधिक अर्थात् ७.५० भेजना होगा।

.... यहा से काटे ....

आदेश-पत्र

व्यवस्थापक—"धन्वन्तरि"
विजयगढ (अलीगढ)

प्रिय महोदय

मे "धन्वन्तरि" का ग्राहक जनवरी १९६५ से बनना चाहता हूँ।

१ वार्षिक मूल्य ६.५०/७.५० मनियार्डर से भेजा है। इस वर्ष का विशेपाक 'वनौषधि-विशेपाक' तृतीय भाग साधारण/ग्लेज कागज पर छपा, अन्य प्रकाशित अङ्को के साथ भेज दे।

२. इस वर्ष का विशेषांक "वनौषधि-विशेषाक तृतीय भाग ग्लेज/साधारण कागज पर छपा अन्य प्रकाशित अङ्को के साथ वार्षिक मूल्य ६.५०/७.५० की वी० पी० मे भेज दे। मै वी० पी० शीघ्र छुटा लूंगा।

नोट—न० १ या न० २ मे जो अनावश्यक हो उसे काट दे

पता ____________________

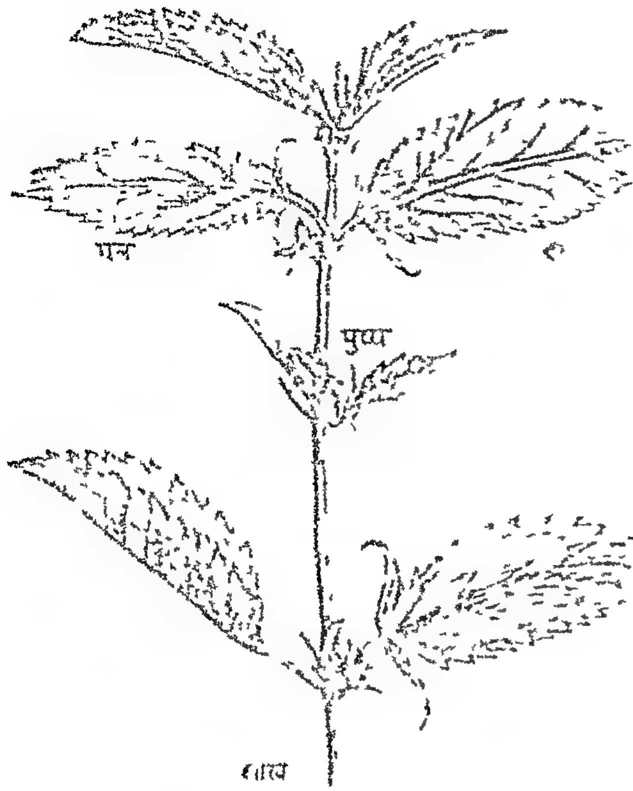
____

____

यहां से काटे | यहां से काटे

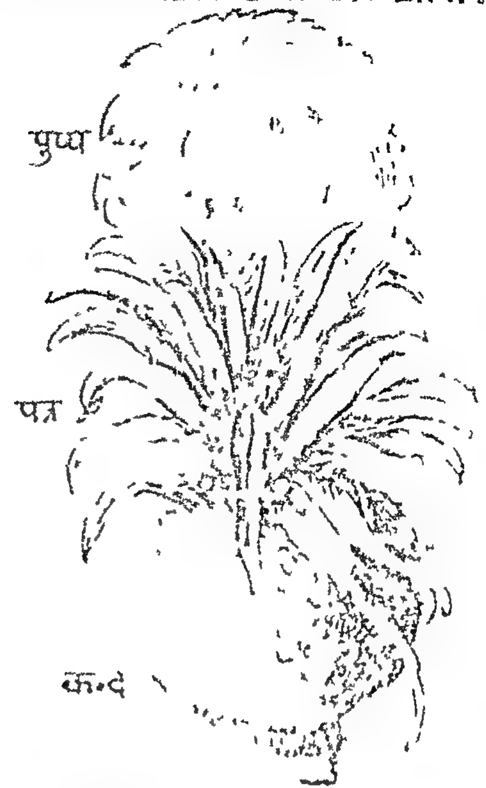
.... यहा से काटे ....

चान्चु (चेंच)
CORCHORUS OLITORIUS LINN



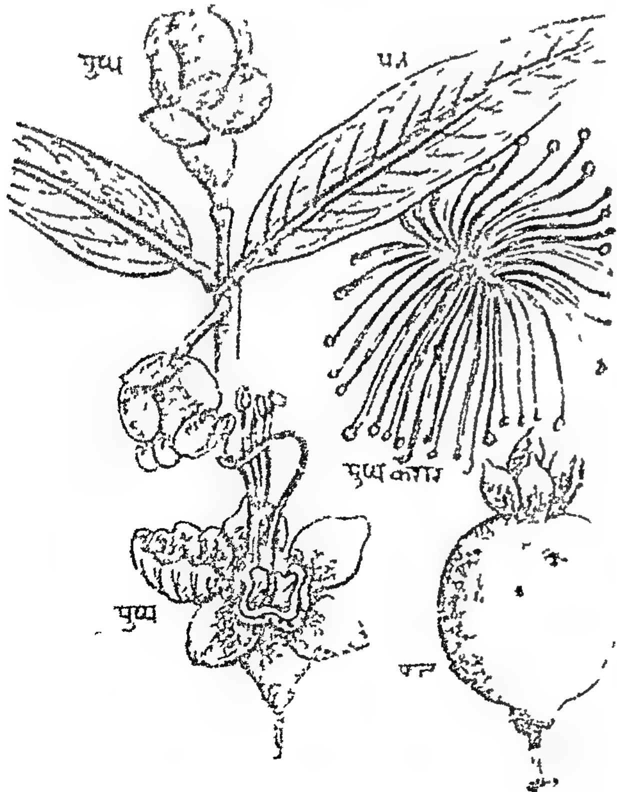
विवरण पृष्ठ १२२ पर देखें।

जोगीपादशाह
SAUSSUREA SARCA LINN.



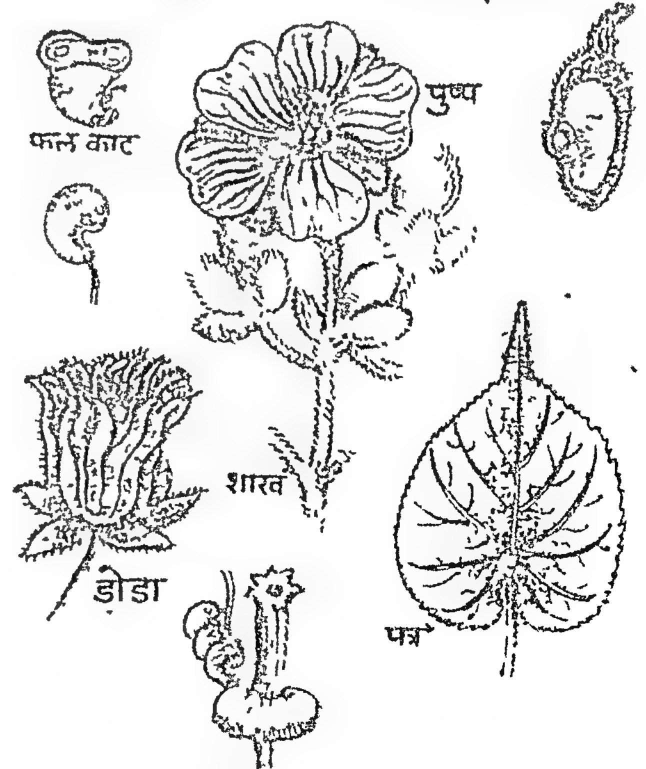
विवरण पृष्ठ २५४ पर देखें।

गुलाब जामुन
EUGENIA JAMBOS LINN

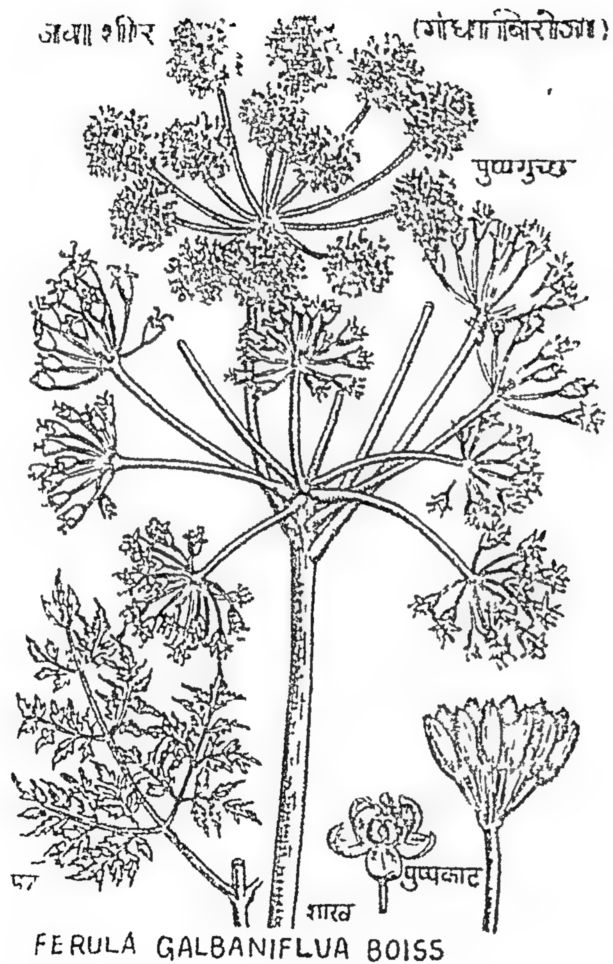


विवरण पृष्ठ २१७ पर देखें।

जयन्ती - जैत
ABUTILON AVICENNAE GAERTN.



विवरण पृष्ठ १५८ पर देखें।



FERULA GALBANIFLUA BOISS

विवरण पृष्ठ २१२ पर देखें ।



धीवोन वा गुयारा (आमगुल)
ELAEAGNUS LATIFOLIA LINN

विवरण वनौषधि-विशेषांक (प्रथम भाग) में पृष्ठ २६६ पर देखें ।



धन्वन्तरि

धन्वन्तरयेनमः आयुर्वेद का सचित्र मासिक

धत्ते भरं कुसुमपत्र फलावलीनां घर्मव्यथां वहति शीतभवां रुजं च ।
यो देहमर्पयति चान्य सुखस्य हेतोस्तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमस्ते ॥

—भवभूति

भाग ३८	वनौषधि–विशेषांक	फरवरी
अङ्क २	([illegible])	१९६५

वनौषधि-प्रशस्ति

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ।
धन्या महीरुहा येभ्यो निराशां यान्ति नार्थिनः ॥

जो किसी भी याचक को निराश नही करते, तथा सबके जीवन मे काम आते है, ऐसे परमार्थी वृक्षो का जन्म ससार मे सार्थक, श्रेष्ठ तथा धन्य है ।

नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि ।
अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशिनी ॥

—यजु० १२ । ९७

हे औषधे ! तू कफ रोग एवं बढे हुए अर्श रोग की नाशक है । इसी प्रकार शोथ, राजयक्ष्मा आदि अन्य विविध प्रकार के रोगो को तू दूर करती है । अर्थात् वनौषधियो मे अनेक दुःसाध्य एव कठिन रोगों के नाश करने वाली शक्ति है ।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥

—यजु० १२ । ७६

हे मातः ! तुम्हारे सैकडो उत्पत्ति स्थान है, और हजारो अकुर है । अतः सैकडो कार्यों को पूर्ण करने वाली हे वनौषधे ! तुम मेरे इस शरीर को रोग रहित करो ।

लेखक का—

विनम्र निवेदन



वनौषधि-रत्नाकर जो अब सुप्रसिद्ध धन्वन्तरि के विशेषांक के रूप में संशोधित हो प्रकाशित हो रहा है उसका यह तीसरा भाग आपकी सेवा में समर्पित है। मुझे खेद है कि चाहते हुए भी, वृद्धावस्था तथा शरीर के बहुत कुछ जर्जर होने के कारण मैं अब लगातार लिखने में असमर्थ होगया हूँ। फिर वनौषधियों के विषय में बहुत कुछ छान-बीन करने में बहुत समय व्यतीत हो जाता है। इसीलिये प्रति-वर्ष इसके भाग नहीं प्रकाशित हो पाते।

मैं चाहता था कि इस भाग में च और ट वर्ग के साथ त वर्ग—की भी (त से न तक के वर्गों से प्रारंभ होने वाली) समस्त बूटियों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन दिया जाय, किंतु उन सबका वर्णन इसमें नहीं आ सकता। जितना कुछ इसमें समावेश हो सका उतना आपके समक्ष प्रस्तुत है। संभव है कि इस वर्ग की आगे की बूटियों का वर्णन इसके चतुर्थ भाग में आजाय।

मेरे साग्रह निवेदन पर ध्यान देकर कई महानुभावों ने अपने अपने अनुभव प्रकाशनार्थ प्रेषित कर मुझे अनुगृहीत किया है। विस्तार भय से उनका केवल आवश्यक सारांश ही इसमें दिया जा सका है। उनके विस्तृत लेखों का अनावश्यक अंश निकाल देना पड़ा है। वे मेरी इस धृष्टता के लिए क्षमा करेंगे।

इस भाग में हकीम मौलाना मुहम्मद अब्दुला साहब की लिखी हुई पुस्तकों से बहुत कुछ ग्राह्यांश लिया गया है। मैं उनका आभारी हूँ। आशा है, उदार भाव से वे भी मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे।

वनौषधि के विषय में महत्वपूर्ण एवं उपादेय विषयों का जितना उल्लेख आवश्यक है, उतना ही संक्षेप में किया गया है। किंतु प्रत्येक बूटी के प्रयोग जिनके कुछ अनुभव मेरे समक्ष आये, तथा जो कुछ अन्य महानुभावों ने सूचित किए उन सबको उनके शुभ नाम सहित देने का भी प्रयत्न किया गया है अतएव कहीं कहीं अधिक विस्तार हो गया है। मेरा विशेष ध्यान बूटियों के महत्वपूर्ण प्रयोगों की ओर है। जितने कुछ सफल प्रयोग प्राप्त हो सके, उन्हें इस ग्रन्थ रूप विशेषांकों के द्वारा प्रकाश में लाया है। अतः सुविज्ञ कृपालु पाठकों से पुनः विशेष आग्रहपूर्वक प्रार्थना है कि वे आगे इसके भागों के लिए अपने अपने सफल प्रयोगों को भेज कर हमें कृतार्थ करेंगे। तथा साथ ही साथ जनता के कृपाभाजन बन, उनकी तथा आयुर्वेद की सेवा में मेरा हाथ बटावेंगे। प्रेषक महोदय के शुभ नामों सहित ही उनके प्रयोग प्रकाशित किए गये हैं।

अन्त में निवेदन है कि इसमें जो त्रुटियां या दोष हों, (जो होना स्वाभाविक है) उन्हें कृपया सूचित करें जिससे आगे के लिए यथोचित संशोधन किया जा सके।

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्न निर्दोषं न निर्गुणम्।
विवृणुध्वमतो दोषानावृणुध्वं गुणान्बुधाः॥

— [illegible] विनम्र निवेदक

[illegible]प्रसाद [illegible]

च

चगेल—देखिये—खुब्बाजी। चचू (चेचुना, चेचुक)=चेच (बहुफली या हिरनखुरी)। चंदन=चन्दन। चंपा=चम्पा। चबेली=चमेली। चदमरवा=सर्पगन्धा। चद्रस=कहरवा। चवना=लोबिया। चमूर=हालो। चकवड—देखिये—पवाड। चकशोनी—देखिये—काकजघा। चकसू—देखिये—चाकसू।

चकोतरा (Citrus Decumana)

फलादिवर्ग एवं जम्बीर कुल (Rutaceae) के बिजोरा जाति के इसके वृक्ष, बिजोरा नीबू के वृक्ष जैसे ही छोटे आकार के सदा हरे-भरे रहते है।

पत्र—कागजी नीबू के पत्र जैसे ही किन्तु उनसे अधिक चौडे, बिजोरा के पत्र से छोटे, अग्रभाग मे नुकीले, व पृष्ठभाग मे मृदु रोमयुक्त होते हैं।

पुष्प—वसत ऋतु मे श्वेत वर्ण के, वडे ४ पखुडियो से युक्त एव सुगधित होते है। पुष्पो को बहार नारज या गुलकरना कहते है।

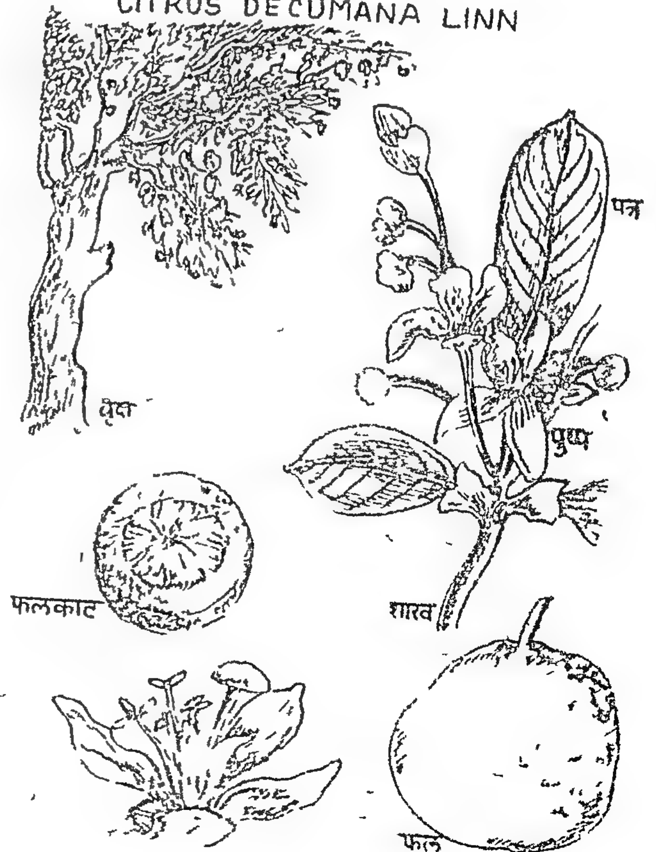
फल—शरद ऋतु मे, वडे आकार के, वडे गोल खर्बूजे या ताड के फल जैसे, मोटी खुरदरी त्वचा या छाल से युक्त, कच्ची अवस्था मे हरे, स्वाद मे कडुवाहट लिये-हुए खट्टे, तथा पकने पर पीले, एव मधुराम्ल हो जाते है। फल के भीतर सतरे की भाति किन्तु बडी-बडी श्वेत रग की फाकें होती है, तथा बीज बिजौरा के बीज जैसे ही, किन्तु उनसे कुछ छोटे होते है।

वास्तव मे यह मलयद्वीप पुज एव खास कर बटाविया (Batavia) देश का निवासी है। इसीलिये इसे बतावी नीबू भी कहते है। किन्तु भारतवर्ष मे भी यह आज कई वर्षो से, खास कर उष्ण प्रदेशो तथा विशेषकर बगाल और दक्षिण के प्रदेशो के बाग-बगीचो मे बहुतायत से लगाया जाता है और खूब होता है।

नोट—ध्यान रहे चरक ने हृद्य, दीपनीय एव श्वास हर गणो में—जिस अम्लवेतस की गणना की है, तथा सूत्र स्थान अ. २७ मे जिसके विषय मे "अम्लवेतसो भेदनीय दीपनीयानुलोमिक वातश्लेष्म हराणाम्" ऐसा कहा है. यह चकोतरा ही है, अम्लवेतस नहीं है। यद्यपि इसके भी गुणधर्म वैसे ही है। इसके विषय में वनौषधि विशेषांक के प्रथम खण्ड में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अम्लवेत के अभाव मे इसे ले सकते है।

नाम—

सं०—करुण, मधु कर्कटी, शतवेधी (अपनी तीक्ष्णता से गला देने वाला, यह लोहे की सुई एवं मास को भी बहुत शीघ्र गला देता है)।



हि०—चकोतरा, करैना या कन्ना नींबू, बतावी नींबू, महाफल, नारंज, गलगल इ०।

म०—महा नींबू, गोंप महालुंग, पोपनस इ०।
गु०—चकोतरा पपनस। बं०—बताबि लेबू।
अ०—पोमेलो (Pomelo)। लै०—साइट्रस डेक्युमाना।

रासायनिक संघटन—फल मे—साइट्रिक एसिड, गंध कारून एवं शर्करा, तथा फल की छाल मे—एक सुगन्धित उड़नशील तैल होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, फल का छिलका, पत्र, फूल आदि।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु रूक्ष, तीक्ष्ण, अत्यम्ल, विपाक मे अम्ल, शीत-वीर्य (वस्तुतः यह उष्ण वीर्य है)—कफवात शामक, पित्तवर्धक, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, भेदन, हृदयोत्तेजक, सुगंध, तामदोष हर, तथा अरुचि, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विदग्ध, गुल्म, प्लीहा, रक्तपित्त, कास, श्वास, श्रम, यकृत्-वृद्धि हिक्का, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त, मेद आदि नाशक है।

[illegible] रस मे शक्कर मिलाकर लेने से पित्त-प्रकोप की शान्ति, रक्तष्ठीवन मे कमी, एवं मदात्यय की निवृत्ति होती मन प्रसन्न होता है। नजला तथा कास पर—फल के अन्दर की फांको के ऊपरी श्वेत छिलके को निकाल एवं बीजो को दूर कर, ऊपर थोड़ी खांड बुरक कर, आग पर सेक कर चूसते हैं। चिन्ता या कामना जन्य उन्माद पर—इसका रस नित्य प्रातः पिलाते हैं। उरःशूल, कटिशूल [illegible] पर—इसके रस मे जवाखार व [illegible]।

नोट—[illegible], इसका रस शीघ्र ही बिगड़ जाता है। अतः इसे ताजा ही काम में लाना चाहिये। इसे अधिक समय तक सुरक्षित रखना हो तो—रस को कुछ देर तक पड़ा रहने दें। जब उसका जम जाने वाला हिस्सा पृथक् हो जाय, तब ऊपर से स्वच्छ बोतल में गले तक भर कर थोड़ा [illegible] डाल दें। अथवा बोतलों को [illegible] पानी में [illegible] मिनट तक रखकर फिर उनमें कार्क लगा [illegible]। अथवा मंदाग्नि पर [illegible] पानी [illegible] रस को गाढ़ा कर लें। अथवा रस [illegible] पर रखें, जिससे उसका जलीयांश जम जाय तथा अर्क मात्र रह जाय। इस प्रकार गुण में यह पहले से भी बढ़ जाता है। (ग्रा० वि० कोष)

प्लीहा पर—फल की फांकों का अचार बनाकर खाते हैं। खुजली पर—इसके रस मे बारूद मिलाकर लगाते है।

फलो का ऊपरी छिलका—दीपन, उदर-कृमि, उदर-शूल एवं वात नाशक और वेदना-स्थापन है।

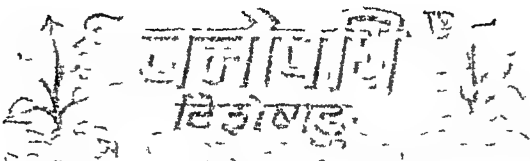
आमाशय के विकारों पर—छिलकों के टुकड़े कर सिरके मे अचार मुरब्बा बनाकर सेवन करने से आमाशय सबल होता है, व शूल आदि की निवृत्ति होती है। वातज सिर पीड़ा पर—छिलकों को पीस कर लेप करते है। आन्त्रकृमियो के उत्सर्गार्थ—छिलको को महीन पीस कर उसमे जैतून का तैल मिला गरम जल से पिलाते है।

हृदयोद्वेष्टन (हृद्देश मे—पीडा एवं जलन हो, तो)—छिलको को गरम जल मे पीस छानकर पिलाते हैं। यह हृल्लास एवं वमन पर भी उपयोगी है।

प्रतिश्याय तथा हृल्लास (मिचली) पर—छिलको का शुष्क चूर्ण पानी के साथ थोड़ा-थोड़ा दिन मे कई बार पिलाते हैं। छिलको का शर्बत शांतिदायक है।

फूल—भबके द्वारा केवल फूलो का ही अर्क खीच लें। इसे अर्क बहार कहते है। अथवा—अर्क बहार की पूर्ण विधि इस प्रकार है—इसके पुष्प ५ सेर, गुलाब पुष्प १ सेर, सौफ, मुनक्का बीज रहित और अंगूर १५-१५ तो०, ऊद, बहमन लाल, गकाकुल मिश्री १-१ तो० इन सबको २५ सेर पानी मे २४ घटे भिगोने के बाद, १२ सेर तक अर्क खीच लें। अर्क खींचते समय अम्बर १ माशा ६ रत्ती की पोटली, अर्क-नाली के अन्त मे बाध देवें। मात्रा—६ तो० तक सेवन करे—यह उष्ण, रूक्ष, सौमनस्य जनन, मस्तिष्क-दौर्बल्य एवं हृद्रोग नाशक, क्षुधावर्धक, कामोद्दीपक, छाती की पीडा, वातजन्य उदरशूल, मूर्च्छा, तृषा आदि मे अत्यन्त उपयोगी है। (यू० चि० सा०)

प्रतिश्याय मे—फूलो को सूंघते रहने से लाभ होता है।



कपड़ों को कीड़ों से बचाने के लिये इसके फूलों को या छाल के टुकड़ों को उनमें रखते हैं।

पत्र—इसके पत्ते—आक्षेप-शामक एवं संज्ञास्थापन हैं, पत्र-स्वरस—मूर्च्छा, कम्प, आक्षेप आदि वात विकारों पर तथा प्रतिश्याय में भी सेवन कराते हैं।

बीज—इसके बीज कृमिघ्न तथा विषनाशक हैं। कीटादि जंगम विष-निवारणार्थ बीज-चूर्ण १ माशे तक पानी के साथ पिलाते हैं।

मूल—इसके पेड़ की जड़ की छाल का क्वाथ पिलाने से ज्वर दूर होता है।

नोट—मात्रा—फलों का रस ३ मा० से ५ तो० तक। छिलका ३ से ५ मा० तक। पत्र-स्वरस ६ मा० से १ तो० तक।

खाली पेट इसके सेवन से यकृत निर्बल तथा, आमाशय कमजोर होता है। हानि निवारणार्थ के लिये—शक्कर, नागर ... और शहद देते हैं।

विशिष्ट योग—तैल नारंज—नारंगी के ताजे पीले छिलकों को या फूलों को तिल तैल में डालकर धूप में रखें। ७ दिन बाद उन्हें निकाल कर पुनः नये फूल या छिलके उसी तैल में डाल रखें। इस प्रकार तीन सप्ताह तक रखने के बाद तैल को छान रखें।

मात्रा—१ माशे तक पीने तथा ऊपर से मालिश करने से शीतल जंगम विष उतर जाता है।

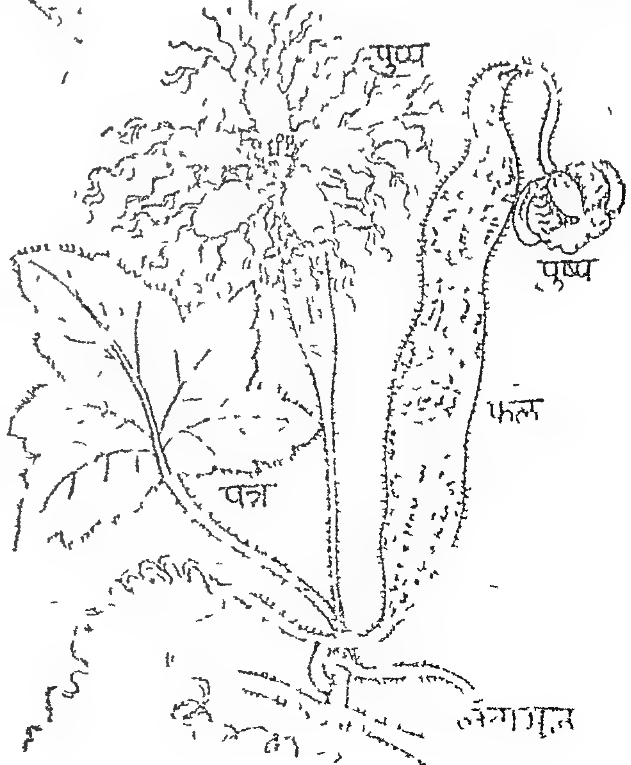
(आ० वि० को०)

(चगोर देखिये=चुव्वाजी)

चचेंड़ा (Trichosanthes Anguina)

शाकादिवर्ग एवं कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की इसकी लता, तुरई-लता जैसी, वर्षायु तथा बहुत फैलने वाली होती है। पत्र—पंचकोण विभिन्न, हृदयाकार, खुरदरे, दोनों पृष्ठों पर रोमयुक्त, पुष्प—वर्षा ऋतु में, पीतवर्ण के, पांच पंखुड़ी वाले, छोटे-छोटे; पंखुड़ियों के अग्र भाग पर सूक्ष्म तन्तुओं के गुच्छे से होते हैं। फल—१-४ फुट तक लम्बे, १॥-२ इंच व्यास के, बेलनाकार चमकीले, सर्प सदृश, कच्ची दशा में हरे श्वेत धारियों से युक्त तथा पकने पर नारंगी रंग के हो जाते हैं। फल भी वर्षाकाल में लगते हैं। कच्चे फलों का शाक उत्तम स्वादिष्ट एवं पथ्य होता है। जैसे उत्तर भारत व बंगाल में परवल पथ्य मानते हैं, वैसे ही महाराष्ट्र और गुजरात में इसे पथ्य माना गया है। किन्तु परवल की अपेक्षा यह कुछ हीन गुणों वाला है (किंचित् गुणैर्न्यून पटोलत — भा० प्र०)। बीज—करेले के बीज जैसे होते हैं।

यह है तो दक्षिण-पूर्व एशिया का मूल निवासी, किन्तु भारत में न्यूनाधिक प्रमाण में सर्वत्र बोया जाता है। दक्षिण के प्रदेशों में तथा गुजरात में अधिक होता है।



नोट– यह मीठा और कडवा (जगली) भेद से दो प्रकार का है। प्रस्तुत प्रकरण मे मीठे का वर्णन है। कडवा या जंगली चचेंडा आगे के प्रकरण मे देखिये।

नाम--

स०--चिचिराट श्वेतराजि, सुदीर्घफल, गृहकूलक। हि०--चचेंडा, चिचिंडा, गलरतोरी। म०--पडवल (गोड), दर काकडी। गु०--पडोलु। बं०--चिचिडा, होपा। अं०--स्नेक गोर्ड (Snake gourd) ले०--ट्रायकोसेंथिस एंग्विना।

रासायनिक सघटन–इसमे जल ९५, खनिजपदार्थ ०७, प्रोटीन ०६, वसा १३, कार्बोहाइड्रेट ४.४, कैलशियम ००५, फासफोरस ००२, तथा प्र० श० ग्राम लोहा १.३ मिलीग्राम, विटामिन ए १६० इ० यू०, व विटामिन सी नाममात्र होता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, विपाक मे मधुर, शीतवीर्य तथा–रोचन, दीपन, पाचन, हृद्य, अनुलोमन, वृष्य, पथ्य, कफपित्तशामक, रक्तशोधक, ज्वर, अरुचि, अग्निमांद्य, आमदोष, विबन्ध, रक्तविकार, कास, कृमि, शोथ आदि नाशक है। क्षयरोग, ज्वर, कुष्ठ एव रक्तविकारो मे पथ्य रूप से यह सेवन कराया जाता है।

रेचनार्थ—इसके पके फल का प्रयोग तथा कृमि रोग पर इसके बीजो का प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—स्वरस–१-२ तो० तथा बीज चूर्ण १-२ माशे तक। इसके पत्ते–पित्तशामक हैं। पचाङ्ग-कफघ्न, तथा मूल-रेचक है।

नोट—इसका सेवन अधिक प्रमाण मे करने से यह विशेषत शीत प्रकृति वालो के आमाशय को विकृत कर उदर, मस्तिष्क एव कामेन्द्रिय को निर्बल कर देता है।

चचेंडा (जंगली) [Trichosanthes Cucumerina]

गत प्रकरण के चचेडा का ही यह एक जगली भेद है। इसकी लता भी उसी प्रकार की होती है, किंतु पत्ते कुछ छोटे, तथा फल बहुत ही छोटे १-३ इंच लम्बे परवल जैसे होते हैं। ये फल कडवे होने से ये कटु परवल कहलाते हैं। इसकी लता मे एक प्रकार की उग्र गन्ध आती है। फूल व फल-वर्षा से शीतकाल तक होते हैं। यह प्राय समस्त भारत के जगलो मे विशेषत दक्षिण के मलाबार प्रान्त मे तथा बंगाल मे भी पाया जाता है।

नाम--

स०–कटुपटोल। हि०--चचेंडा जगली, कडुवा चचेंडा, कडुवा परवल। म०--रान (कटु) पडवल। गु०--कडवी पडोल, कडवी पटोल। बं०—बनचिचिंगा, बन पटोल। ले०–ट्राइकोसेन्थिस क्युकुमेरिना।

गुण धर्म, प्रयोग

विरेचक, वामक, रक्तप्रसादक है। रक्त–विकार जन्य रोगो मे तथा अफारा या अजीर्ण मे–कच्चे फलो का शीत निर्यास या क्वाथ बनाकर मिलाकर देते है।

पत्र—स्वरस वामक है। बालो के झडने या गज रोग पर पत्र-स्वरस लगाया जाता है। पैत्तिक ज्वर मे–पत्र-चूर्ण व धनिया का क्वाथ बनाकर पिलाते है। यकृत्–विकार एव परावर्तित ज्वरो (विषम ज्वरो) मे पत्र रस का मर्दन यकृत स्थान पर व समस्त शरीर पर किया जाता है।

पञ्चाङ्ग–इसका पचाग हृद्य, पौष्टिक धातुपरिवर्तक एव ज्वरघ्न है।

हठी या प्रबल ज्वर मे– इसके पचांग चूर्ण तथा धनिया का शीत निर्यास, प्रात साय मधु के साथ पिलाया जाता है। अथवा-पचाग-चूर्ण के साथ सोठ, चिरायता मिला, क्वाथ सिद्ध कर मधु मिला सेवन कराते है।

बीज–कृमिघ्न, ज्वरहर, आमाशय विकृति नाशक है।

मूल–इसकी ताजी जड का स्वरस ५ तोला तक की मात्रा मे देने से आतो मे ऐठन सहित विरेचन होता है।

मात्रा–स्वरस ५ तोला तक, अधिक मात्रा मे देने से वमन होता है।

चटरी=मटर। चतरोई=दारुहल्दी। चनसुर=हालो।

चना (Cicer Arietinum)

धान्यवर्ग एव शिम्बीकुल के अपराजितादि–उपकुल (Papilionaceae) के इसके छोटे २ सुन्दर वर्षायु क्षुप १ फुट तक ऊंचे, अनेक शाखायुक्त, चिपचिपे, मृदुरोमश, तथा सघन होते है। पत्र–लगभग आधा इंच लम्बे, गोल, कगूरेदार, पुष्प—पत्रकोण से निकले हुये, बारीक, गुलाबी रग के श्वेताभ, फली–लगभग १॥ इंच लम्बी, अण्डाकार, नुकीली होती हैं। बीज या चना–प्रत्येक फली मे १ या २ बीज, हरे पीले, श्वेत, भूरे या काले रंग के छिलको से युक्त होते हैं।

यह द्विदलधान्यों मे श्रेष्ठधान्य खेतो मे प्राय कार्तिक मास मे बोया जाता है। जिस क्षेत्र मे यह बार बार बोया जाता है वहा की भूमि मे क्षारांश की वृद्धि हो जाती है।

इसका क्षार द्रव और शुष्क दो रूपो मे प्राप्त किया जाता है—द्रवक्षार–शीतकाल मे इसके क्षुपो पर रात्रि समय झीनी स्वच्छ चादरों को डाल देते है। प्रात. सूर्योदय के पूर्व ही वस्त्रो को निचोड़-निचोड कर इस-क्षार को शीशी में भर लेते हैं–इस चणकाम्ल (क्षार) में आक्जलिक (Oxalic), एसेटिक (Acetic), ओलीक (Oleic) तथा मालिक (Malic) आदि एसिडो का मिश्रण रहता है। इस क्षार मे कोई भी बीज (खेतो-मे बोने योग्य) भिगोकर बोने पर वह शीघ्र ही उग आता है। औषध रूप मे इस क्षार का विशेष उपयोग होता है।

शुष्क क्षार–इसके क्षुपो को सुखाकर कूट पीसकर ४ गुने जल मे भिगो छानकर लोह–कड़ाह मे पकाकर श्वेतक्षार तैयार किया जाता है। इसका उपयोग उक्त द्रव क्षार के स्थान मे किया जाता है। गुणधर्म व प्रयोग आगे देखिये

ध्यान रहे उक्त शुष्क-क्षार म केवल क्षार पोटेशियम कार्बोनेट) ही रहता है, इसमे अम्लता नही रहती. पर इसे चणकाम्ल नहीं कह सकते। आगे जो गुणधर्म है वे आगे के है।

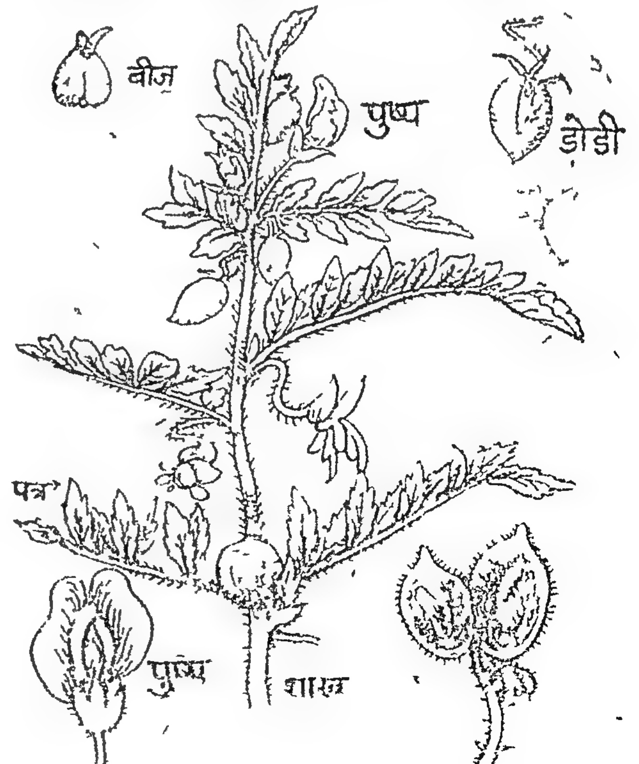
नाम–

सं०–चणक, हरिमन्थ, सकल प्रिय। हि०–चना छोला, बूट, रहिला, रोहिला। म०—हरबरा, चणे। गु०–चणा। बं०–छोला, बूट, कलाई। अं०–Gram (ग्राम), Chicken pea (चिकेन पी)। ले०—सायसर एरिटिनम

रासायनिक सघटन—

बीज मे प्र.श ५९ स्टार्च, २० अल्बुमिनाइड (Albuminoids), ४ वसा, १ तन्तु, २ राख तथा फास्फोरिक एसिड १, और जल ११ होता है।

श्वेत, बडे दाने वाले काबुली चने मे द्रवाश १० ३६, इथर एक्ट्रेक्ट (ether extract) ४ २२, अल्बुमिनोइड २२.८१ (इसमे नाइट्रोजन भी ३ ६५,) कार्बोहाइड्रेट



५७ ४८, तनु (Fibre) १ ३९ तथा राख ३ २० प्रतिशत क्रमश होता है।

पत्तों मे मलिक एसिड विशेष होता है। तथा द्रवांश ६० ३, खनिजपदार्थ ३ ७, प्रोटीन ८ २, वसा ० ५, कार्बोहाइड्रेट ७७ २, कैलशियम ० ३१, फासफोरस ० २१ प्रतिशत क्रमश, एवं प्र ति ग्राम २८ ३ मिलिग्राम लोहा और विटामिन ए ६७०० इ यू पाया जाता है।

बंगाल की ओर के चणक-पत्रो मे द्रवांश अधिक होता है तथा उक्त शेष द्रव्यो की कुछ न्यूनता होती है।

गुण धर्म, प्रयोग--

लघु (किन्तु इसका पिष्ट गुरु), रूक्ष, कसैला, विपाक मे मधुर, शीत-वीर्य, वातकारक, विष्टम्भी तथा रक्तपित्त-कफ, ज्वरादिनाशक है (केवल अङ्गारो पर भूने हुए या घृत मे भूने हुए चने मे ये गुण हैं) पानी मे भिगोये हुए या भिगोकर भूने हुए चने--बलवर्धक एवं रुचिकर होते है। भिगोये हुए चने-लघु, कसैले, ग्राही, शीतवीर्य, वातवर्धक, पित्तशामक, शुक्र को गाढा करने वाले होते है।

साफ किये हुए चनों को रात्रि के समय चौगुने जल मे मृत्पात्र, काच पात्र या चीनी मिट्टी के पात्र मे भिगोप्रात काल शारीरिक अग्निबलानुसार, जितनी मात्रा मे सरलता से हजम हो जाय उतनी मात्रा मे खूब चबाते हुए खाने से बल वीर्य की प्रचुर वृद्धि होती है। इसे खाने से पूर्व थोड़ी कसरत या व्यायाम कर लेना और भी उत्तम होता है। अधिक मात्रा मे सेवन न करें अन्यथा क्षुधा-मन्द होने की सम्भावना है। इसे ३ तोला से ५ तोला तक की मात्रा मे ही नियमित रूप से प्रात सेवन करना ठीक होता है। यदि और भी उत्तम गुणो की आवश्यकता हो तो--

रात्रि मे भिगोए हुए चनो को प्रात एक वस्त्र मे बाध कर किसी आर्द्र स्थान पर रखें। दो दिन बाद इसमे जो अङ्कुर निकल आते है, उनमे विटामिन 'सी' की प्रचुरता रहती है। इन अंकुरित चने उक्त चना से अधिक गुणकारी होते है। जिन्हे प्रात नाश्ते मे दूध [illegible] साथ सेवन करने से चना प्रत्यक्ष [illegible]

पीने की आदत हो, वे उक्त भिगोये हुए या अंकुरित चनो पर दूध पी सकते है।

जिन्हे दुपहर मे कुछ नाश्ता करने की आदत हो, उन्हे भिगोकर भूने हुए चने ५ से १० तोला तक अच्छी तरह चबाकर खाकर पानी पी लेना ठीक होता है। इनमे नमक आदि सौम्य मसाला भी मिलाया जा सकता है।

चणक रसायन--उक्त भिगोए हुए चने का प्रयोग शक्तिदाता रसायन के रूप मे इस प्रकार किया जाता है--प्रथम मास मे नित्यप्रात उक्त भिगोए हुए चने (अंकुरित नही) केवल ५ तोला तक खावें। फिर अगले दो महीने मे दोपहर के बाद भी ५ तोला तक लिया करे। चना खाने के पूर्व हलका सा व्यायाम कर ले तथा पश्चात् थोड़ा सा दूध भी पी ले। तीन मास के बाद केवल इन चनो पर ही रहे अन्य कोई भोजन न ले। दिन मे ३-३ घंटे पर अंकुरित चने से लिया करे। प्रत्येक बार उन्हे खूब चबाना न भूले, इसके बाद दूध भी थोड़ा पी लिया करे। इस समय फल या फलो का रस भी लिया जा सकता है। ब्रह्मचर्य से रहना जरूरी है। छ महीनो के बाद तो शरीर वज्र के समान मजबूत हो जाता है। इस कल्प के प्रयोग मे काबुली चने लेना और भी उत्तम होता है। यदि कभी भूख न लगे तथा पेट फूलने सा लगे तो हिंग्वष्टक चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

--श्री आचार्य नित्यानन्द जी

(सचित्रायुर्वेद से साभार)

भिगोये हुए चने के जल मे (चना निकाल लेने के बाद जो जल रह जाता है) मधु मिलाकर सेवन करने से नपुंसकता मे लाभ होता है। इस मधु मिश्रित जल के सेवन से कास मे भी लाभ होता है, स्वर-शुद्धि होती तथा मूत्र भी खूब खुल कर होता है। आगे विशिष्ट योग मे चणक रसायन देखें।

देशी काले चने--शीतल, मधुर, रसायन, बल्य, कास, श्वास, पित्तातिसार, प्रमेह, कोष्ठबद्धता, मूत्रकृच्छ्र एवं पित्तप्रकोप नाशक है।

प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र नाशार्थ एवं रक्तशुद्धि के लिए सायंकाल मे काले चने २०० नग उत्तम चुने हुए लेकर

मृत्पात्र मे १५ तोले जल मे भिगो दें, उसमे त्रिफला चूर्ण भी १।।तो. डाल दे । प्रातः शौच आदि से निवृत्त हो धीरे धीरे ८-६ वजे तक १-१ दाना करके चबा लें, जो पानी शेष रहे उसे फेंक दें । और उसीमे पुन. २०० चने उसी प्रकार त्रिफला के साथ भिगोकर १२ घंटे बाद चबावे । इस प्रकार ४-५ दिन इसके सेवन से लाभ होने लगेगा, तथा ४० दिन सेवन कर लेने से कब्ज, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, या किसी रोग के कारण वीर्य पतला पड़ गया हो, पेशाव के पूर्व श्वेत पदार्थ गिरता हो या पूयस्राव होता हो तो पूर्ण लाभ होगा । दस्त खुलासा होगा, भूख लगेगी, इन्द्रिय, गुदा एवं योनि के कई रोगो की निवृत्ति होगी, धातु पुष्ट होगी । विशेषत पित्तप्रकृति वालो के रक्त विकार मे यह अपूर्व लाभकारी है । (भा. ज. वू) ।

विशिष्ट योगो मे—चणक योग देखें ।

श्वेत बड़े दाने वाले (काबुली) चने—गुरु, शीतवीर्य मधुर, अतिरुचिकर, वातकर, पित्त-नाशक, एव वल वर्धक हैं ।

पीले, भूरे तथा ताजे हरे या कच्चे चने—कसैले, किंचित् कटु, तृप्तिकर, वीर्योत्पादक तथा दाह, तृषा, अश्मरी व शोष नाशक है ।

चने का हिम (जो चन्द्र की शीतल चादनी मे रखकर प्रस्तुत किया गया हो) प्रात सेवनीय है । यह मधुर, पौष्टिक, पुष्टिकारक, तृप्तिकर, सौमनस्यजनन तथा सर्व रोग नाशक है ।

चने का छिलका—यह छिलका आधा सेर एक घडे मे डाल पानी भर दे, घडे की तलैठी मे छेद कर सीके लगा, तिपाई पर रख दें । नीचे पात्र मे टपकने वाले जल को थोडा थोडा पीते रहने से दाह व अतिसार मे लाभ होता है । यह जल कामला के रोगी को भी लाभ कारी है ।

चने की कच्ची दाल—शुष्क, मलावरोधक एव उदर में वातकर है ।

धातुपुष्टि के लिए—इसकी दाल और शक्कर १-१ तोला रात्रि मे शयन करते समय १ मास तक खाकर ऊपर जल न पीवे ।

अर्धावभेद मे चने की दाल को सेहुण्ड के दूध में भिगो शुष्क कर महीन पीस ले । इसकी नस्य से लाभ होता है । इसमे भूने हुए चनो का सेंक भी करना तात्का लिक लाभ देता है ।

—श्री ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी शास्त्री, वाराणसी ।

चने का कोल (यूप)—तथा सूप (पकाई हुई दाल या दाल का पानी)—रुचिकर, लघु, दीपक, पौष्टिक, वात-वर्धक होने से दोषो मे क्षोभकारक, तथा कास, श्वास, प्रतिश्याय, वमन, थकावट आदि नाशक है ।

चने का आटा या बेसन—स्वादिष्ट, लघु, मलाव-रोध नाशक, अधिक सेवन से वातकर है । बेसन की कढी ताजी गरमागरम प्रतिश्याय, कफ प्रकोप, मलाव-रोध नाशक है । इसे गेहू के आटे मे मिलाकर अथवा गेहू के साथ चना को एक साथ पिसवा कर बनाई हुई मिस्सी रोटी विशेष रुचिकर तथा विष्टम्भ-नाशक है, मल को साफ करती है । जिन्हे भोजन मे पौष्टिक पदार्थ उपलब्ध नही होते उन्हे भोजन मे उबले हुए चने या इसके बेसन का उपयोग करना हितकर है ।

त्वचा की रूक्षता तथा खुजली पर—इसके आटे मे थोडा पानी मिला शरीर पर उबटन जैसा मर्दन कर स्नान करने से त्वचा साफ होकर, खुजली दूर होती, एव पसीने की दुर्गन्ध मिटती है । यदि त्वचा मे विशेष रूक्षता हो तो इसके आटे मे थोडा दही मिलाकर मालिश करें ।

नपुंसकता पर—इसके आटे का हलुवा बनाकर सेवन कराते हैं ।

वात प्रधान श्वास रोग मे भी यह हलुवा लाभकारी है, यह निजानुभूत है । किन्तु इसके सेवन काल मे पकाया हुआ पानी पीना चाहिए । रोगी को यह हलुवा दूसरे तीसरे दिन भूख के अनुपात से चतुर्थांश ही देना चाहिए, शेष हलके सुपच पदार्थ उदर-पूर्ति के लिए दिये जा सकते है । —श्री ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी शास्त्री सी के ७/९६ सिद्धेश्वरी वाराणसी

सुजाक पर—इसके मोटे आटे का हिम बार बार पिलाने से मूत्र साफ होकर मूत्रमार्ग शुद्ध होता है ।

सूखा भुना हुआ चना—अतिरूक्ष, उष्णवीर्य, रुचि-

कर, वात प्रकोपक, मलावरोध, तृषावर्धक, वल्य, कांति-प्रद, तथा कफ, आम, शैत्य, स्वेद एव थकावट को दूर करता है। त्वचारोग या रक्त विकार की दशा मे इसका अधिक सेवन हानिकर है, कुष्ठप्रकोपक है। किन्तु पानी मे पकाया हुआ अलोना चना या चने की रोटी कुष्ठादि रक्तविकार नाशक है। लोक कहावत मे कहा गया है कि—

"चना—चून को नून बिन, चौसठ दिन जो खाय। दाद, खाज अरु सेहुआ, जरा मूर से जाय॥" अर्थात्—चना के आटे की रोटी बिना नमक के ६४ दिन तक खाने से दाद, खाज, सेहुआ जड से चला जाता है। (कुष्ठ रोग, उपदंश, फिरगादिक रक्तदोष मे यह कल्प लाभदायक सिद्ध हुआ है (धन्वन्तरि—कल्प एवं पचकर्म चिकित्साक) ध्यान रहे इस कल्प के सेवन के पूर्व साधारण विरेचनादि से शरीर-शुद्धि करा लेना विशेष आवश्यक लाभप्रद होता है। तभी यह कफ, पित्त एव रक्तविकार नाशक होती है। इसके साथ थोडा घृत लेना भी आवश्यक है, अन्यथा यह रूखी गुरु,विष्टम्भकरी, तथा नेत्रो को अहित कर होगी।

प्रतिश्याय पर—ताजे भुने चने रात्रि मे सोते समय खाकर ऊपर से जल न पीवे। गर्म दूध पी सकते है। अथवा—

भुने हुए गरम चनो की पोटली बना गले को खूब सेके,पश्चात् उन्ही को खायें, अन्य कुछ न लें, पानी भी न पीवे। यह उपचार दिन भर उपवास करने के बाद रात्रि मे सोते समय करें। प्रात प्रतिश्याय दूर हो जायेगा। कफ प्रकृति वालो को यह रामबाण है।

—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री-वाराणसी।

ज्वरावस्था के अतिस्वेद पर—भुने चनो को महीन पिसवा अजवायन और वच का चूर्ण मिला मालिश करते है।

बहुमूत्र विकार मे भी भुने चनो का प्रयोग किया जाता है।

हृदय रोग पर—आयानी एस.एन. मेडिकल के डा के. एन माथुर ने जाहिर किया है कि रक्त में कोलेस्टेरोल के प्रमाण की वृद्धि से जो हृदय रोग होता है वह चना के खाने से दूर होता है। तथा कोलेस्टेरोल का प्रमाणकम हो जाता है। बाजार मे इनकी जो पेटेंट औषधिया मिलती हैं वे बहुत मंहगी होती है। अत चना खाना हृदय रोग के लिये हितावह है। (सुश्रुत मासिक)

पत्र—इसके कोमल पत्रो का शाक या भुजिया अम्ल रुचिकारक, दुर्जर, कफवातकर, मलावरोधक, पित्तशामक ज्वरहर तथा दंत-शोथ नाशक है। यह अश्मरी पर हित-कारी नही है।

अतिसार पर—कोमल पत्र १० तोला को गोघृत १ तोला, हीग १ रत्ती का छोंक देकर उसमे सेधा नमक, छोटी पिप्पली ३-३ माशा, जायफल, कालीमिर्च व सोठ १-१ माशा तथा धनिया व कतरी हुई अद्रक ६-६ माशे ये मसाला डाल, थोडा पानी भी डाल कर शाक पकालें। तैयार हो जाने पर उसमे खट्टे अनार का रस १ माशे डाल कर चावल के या चावल मूग की खिचडी के साथ या ज्वार की रोटी से सेवन करे।

—अनुभूत योगमाला से

हिक्का पर—पत्तो का चूर्ण चिलम मे भर कर धूम्र-पान करने से आमाशय—विकृति एव शीतजन्य हिक्का मे लाभ होता है। लू लगने पर एक कुल्हड में जल डाल कर उसमे लगभग १० तोला शुष्क पत्र सायँ भिगोकर प्रात छान कर जल पिलावे। पीसकर छाती पर लेप करे। और आम के पना का सेवन करावे।

मोच तथा संधि-भग पर पत्रो को पानी मे उबाल कर गरमागरम बफारा देकर पत्तो को बाधते हैं।

पचांग—इसके ताजे क्षुप को कूट कर पानी मे उबाल कर बफारा देने से ज्वर तथा मासिकधर्म-विकृति मे लाभ होता है।

क्षार-चना—अम्ल, नमकीन, अति उष्ण वीर्य, दीपन, रुचिकर, तथा अजीर्ण,उदरशूल, आध्मान, मला-वरोध, पित्त-ज्वर, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त, अतितृषा, कठशोष, लू लगना, दाह आदि नाशक है।

मात्रा—द्रव-क्षार ५-१० बूद तथा शुष्क क्षार २-८ रत्ती, जल के साथ २-२ घटे से २-३ बार, उदरशूल, आध्मान, विबन्ध आदि उदरविकारो पर दिया जाता है। अजीर्णजन्य श्वासावरोध या श्वास के दौरे पर या कण्ठा-रोध पर भी यह उपयोगी है। अश्मरी व मधुमेह मे इसका

चन्दन (Santalum Album)



कर्पूरादि वर्ग एवं अपने चन्दन (Santalaceae) का यह प्रसिद्ध वृक्ष सदा हरा भरा २०-३० फुट ऊंचा होता है। छाल–बाहर से धूसर कृष्णाभ, लम्बे चीरो से युक्त एव भीतर से रक्ताभ भगुर, पत्र–विपरीत, नीमपत्र जैसे मुलायम, नुकीले १-३ इच लम्बे, निर्गन्ध, पुष्प–गुच्छो मे जामुनी रंग के कुछ पीताभ, निर्गन्ध, फल–मासल, गोल ½ इंच व्यास के, कृष्णाभ बैंगनी रंग के होते हैं। वर्षा मे शीतकाल तक पुष्प तथा बादमे फललगते है। इसके वृक्ष प्राय २० वर्ष के बाद ही पक्व दशा मे आते हैं। प्राय ४०-६० वर्ष की आयु का यह वृक्ष उत्तम प्रकार से परिपक्व हो जाता है। तब ही इस के अन्दर के काण्ठ या सार-भाग मे–उत्तम अति-सुगन्ध आती है, जब वह कडा एव तैल युक्त हो जाता है, तब ही काटा जाता है। जबसे यह ज्ञात हुआ है कि इसकी जड मे अधिक तैल होता है, तबसे इसे अच्छी तरह खोद कर जड मूल से बाहर निकाल कर अलग-अलग टुकड़े करते हैं। परिपक्व व अपरिपक्व चदन के काण्ठ, वर्ण, तैल तथा सुगध मे भी पार्थक्य होता है।

(१) श्वेत और पीत चदन—भावप्रकाश के कथनानुसार पीत चंदन को लोक मे कलम्बक तथा सस्कृत मे कालीयक, पीताभ, हरिचदन आदि कहते हे। गुणधर्म मे यह रक्तचन्दन के समान ही होता है, तथा विशेषत व्यग (मुख की झाई) को यह दूर करता है।

आधुनिको के शोधानुसार इस पीत चदन का कोई स्वतन्त्र वृक्ष नही पाया गया है। किन्तु भावप्रकाश तथा धन्वन्तरि निघटु मे उत्तम श्वेत चन्दन (जिसका वर्णन प्रस्तुत प्रसग मे किया जा रहा हे) के विषय मे लिखा है कि घिसने इत्यादि पर जो पीत वर्ण का हो वह उत्तम श्वेत चन्दन है[1]। तथा श्वेत उत्तम चन्दन भी मलय पर्वत का कहा गया है—"मलयोत्थम् पीत काष्ठम् चतुर्थं हरिचन्दनम्" ध० नि०। अत' दोनो का एक ही उत्पत्ति-स्थान तथा घिसने पर पीत वर्णता इन निदर्शनो से ज्ञात होता है कि–उत्तम श्वेत चन्दन के ही बाह्य किंचित् श्वेत वर्ण के काण्ठ-सार को श्वेत चन्दन और भीतर के पीतवर्णा के काष्ठ सार को पीत चन्दन मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है।

अब रही गुणधर्म व प्रयोग की बात, सो चन्दन के प्रयोग के सम्बन्ध मे अर्वाचीन शास्त्रोक्त कथन है कि–उक्ते चन्दन शब्दे तु गृह्यते रक्त चन्दनम्। चूर्ण स्नेहासवा लेहा साध्या धवल चन्दनै.॥ कषाय लेपयो प्रायो युज्यते रक्त चन्दनम्॥ अर्थात् योग मे सामान्य चन्दन शब्द से रक्त चन्दन का ग्रहण करे। चूर्ण, तैल, घृतादि, आसवारिष्ट एव लेह में श्वेत चन्दन लेवे। अत पीत चन्दन (श्वेत चन्दन के भीतर के काण्ठ सार) का प्रयोग भी रक्त चन्दन के जैसे हो सकता है। गुणधर्म मे भी कोई विशेष भेद नही है। आगे रक्त चन्दन (चन्दन लाल) का प्रकरण देखिये।

(२) चरक के–दाह-प्रशमन, अगमर्द-प्रशमन, तृष्णा-निग्रहण, वर्ण्य, कण्डूघ्न, एव तिक्त स्कन्ध मे, तथा सुश्रुत के सालशारादि, पटोलादि, सारिवादि, प्रियंग्वादि, गुडूच्यादि एव पित्त–सशमन गणो मे चन्दन लिया गया है।

सुश्रुत के सालसारादिगण मे कुचन्दन व कालीयक का भी उल्लेख है। डल्हण ने सालसारादिगण एवं पटोलादिगण मे कुचन्दन का अर्थ रक्त चन्दन किया है। तथा–कुचन्दन से ध० नि० के अनुसार पतग भी लिया जाता है। यथा स्थान पतग का प्रकरण देखिये।

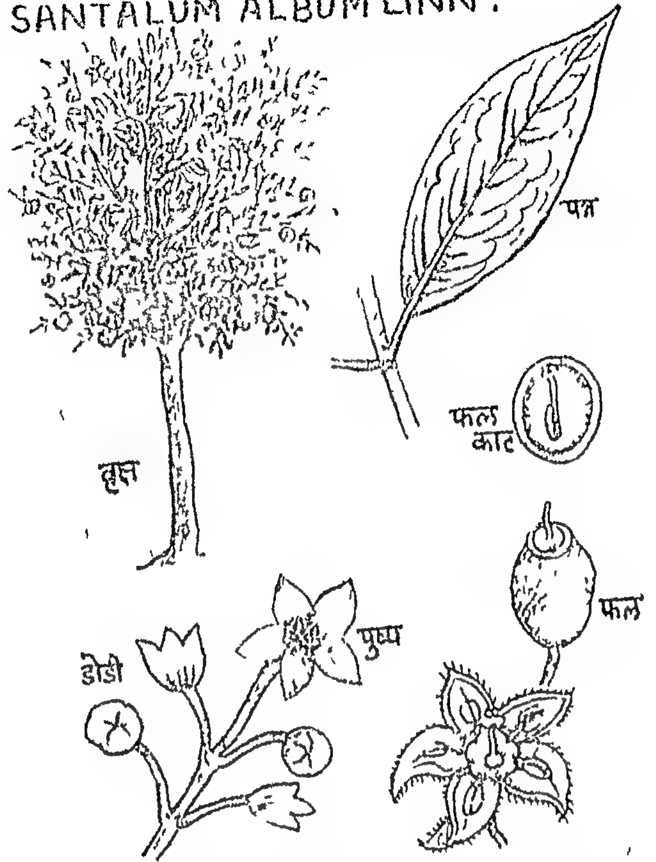
इस प्रकार चन्दन शब्द से शास्त्रीय प्रयोगो मे भिन्न-भिन्न अर्थों का ग्रहण करना विसगत सा जान पड़ता है। चूर्णादि मे चदन से श्वेत चदन तथा कषायादि मे रक्त-

[1] स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम्। ग्रन्थि-कोटर सयुक्त चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते॥ (भा० प्र०)

चन्दन ग्रहण करना चरकादि ऋषि-सम्मत नहीं ज्ञात होता। अत: जहां, जैसा, जिस रोग के लिये प्रयोग हो तहां वैसा ही रोगावस्था एवं देश कालानुसार बुद्धिपूर्वक विचार कर श्वेत या रक्त चन्दन ग्रहण करना ही ठीक जंचता है। रक्तपित्तादि रोगों में प्राय: रक्त चन्दन तथा कहीं-कहीं श्वेत चन्दन का भी प्रयोग किया जा सकता है। सुगन्ध के लिये तथा दाह प्रशमन एवं कृमि आदि नाशार्थ-श्वेत ही लेना चाहिये। यद्यपि रसादिकों में प्राय: सभी प्रकार के चन्दन समान ही होते हैं, उनमें विशेषता केवल गन्ध की ही रहती है, तथापि उनमें सर्व प्रथम मलयागिरी चन्दन ही गुणों में सर्वश्रेष्ठ होता है[1]।

(३) उत्तम श्रेष्ठ चन्दन के लक्षण—जो चन्दन स्वाद में तिक्त रसयुक्त, घिसने पर पीत वर्ण का, टुकड़े करने या काटने पर पीताभ लाल वर्ण का, ऊपर से देखने में श्वेत वर्ण का एवं गांठदार, कोटर (खोखरा) युक्त तथा अति स्निग्ध, भारी व सुगंधयुक्त हो वह उत्तम श्रेष्ठ माना जाता है। तथा इन लक्षणों से विपरीत हो तथा जिसमें सार भाग न हो और पाण्डु वर्ण का हो वह निकृष्ट है।

(४) यह भारत की ही खास उपज है[2]। यह मैसूर, कुर्ग और मलाबार में अधिक होता है। वैसे तो कई



स्थानों के बाग बगीचों में भी यह लगाया जाता है, किन्तु दक्षिण की पथरीली पहाड़ी भूमि में होने वाले इसके वृक्ष, अन्य उर्वरा भूमि में पैदा होने वाले वृक्षों की अपेक्षा उत्तम होते हैं। उनमें सुगंध तथा तैल की मात्रा अधिक होती है।

नाम—

सं०—चन्दन, श्रीखंड, भद्र श्री, गन्धसार, मलयज, चन्द्रद्युति इ०। हि०—चंदन सफेद। म०—चंदन। गु०—सुखड़। बं०—श्वेत चंदन। अं०—सेंडल वुड (Sandal Wood) ले०—सेन्टलम एल्बम।

रासायनिक संघटन और तैल—काण्डसार और मूल में प्र० श० ३–६ तक एक उड़नशील तैल होता है।

---

[1] चन्दनानि खु सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः। गन्धेन तु विशेषोऽस्ति पूर्वः (मलयजः) श्रेष्ठतमो गुणैः॥ (भा० प्र०)

[2] यद्यपि अन्य देशों में कुछ ऐसे वृक्ष पाये गये हैं, जिनसे भारतीय चंदन तैल जैसा तैल प्राप्त होता है, किंतु वह उतना अच्छा नहीं होता। पूर्वी जावा से चंदन जैसे वृक्ष से निकाला हुआ एक तैल (Macassar sandal oil) आता है, किन्तु उसमें यहां के चंदन-तैल जैसी सुगंध नहीं होती। एक (West Indian sandal oil) तैल अन्य वृक्ष (Fusanus Acuminatus) से, तथा एक तैल (East African sandal oil) किसी अन्य वृक्ष (Osyris Tenuifolia) से निकालते हैं। एक (West Australion sandal oil) तैल जो (Fusanus spicatus) वृक्ष से निकालते हैं, उसमें कुछ परिवर्तन कर भारतीय चंदन-तैल जैसा बनाकर स्वल्प मूल्य में बेचा जाता है। —(नाडकर्णी)

[illegible] की अपेक्षा मूल मे तैल की मात्रा कुछ अधिक होती है।

इसके सार भाग के टुकड़े को पानी मे भिगोकर [illegible] यन्त्रों मे परिस्रवण (Distilation) द्वारा यह तैल निकाला जाता है। प्राय १ मन चदन की लकड़ी से १० तो० उत्तम तैल निकलता है, जो पीताभ [illegible], कुछ गाढा चिपचिपा सा द्रव रूप मे, तीक्ष्ण [illegible] स्वाद में कटु तिक्त होता है। इसमे सेंटलोल (Santalol) नामक तत्त्व ९० प्र० श० होता है। इसे शीशियों मे खूब अच्छी तरह डाट बन्द कर, ठडे प्रकाश रहित [illegible] मे रक्खा जाता है। यह तैल पुराना होने पर भी सुगन्धयुक्त रहता है, उसमे विकृति नही होती। बाजार चन्दन तैल मे देवदारु तैल तथा रेंडी तैल आदि की मिलावट की जाती है।

प्रयोज्य अंग—काष्ठसार, तैल तथा छाल व [illegible]।

गुणधर्म व प्रयोग—

[illegible] के धोवन मे घिस कर मिश्री व मधु मिला पिलाते है, अथवा—इसका चूर्ण ८ रत्ती, मिश्री या खाड और मधु मे मिला, चावल के धोवन के अनुपान से सेवन कराते है। यह रक्तस्राव को भी दूर करता है। यदि इस प्रयोग को मूत्राघात, रक्तमेह एव सूजाक मे देना हो, तो उक्त मिश्रण मे मधु नही मिलाते।

(२) वमन पर—चन्दन चूर्ण ४ मा० तक, आमले के रस और शहद मे मिलाकर पीने से वमन शात होती है (वृ० भा०)—अथवा इसके साथ खस, सोठ व अडूसा पत्र समभाग लेकर कल्क करे, तथा मधु मिश्रित चावल-धोवन मे मिला पिलावे (भै० र०)। योग-रत्नाकर मे इस योग मे मृणाल (कमलनाल) भी समभाग मिलाया गया है।

(३) सुजाक (पूयप्रमेह) पर—उत्तम मलयागिरी चन्दन पानी मे घिसकर १ तो० कल्क निकाल ५ तो० शीत जल मे घोल दें, उसमे कलमी शोरा, जवाखार २-२ माशे पीसकर मिलादें। फिर मिश्री या शक्कर १ तोला मिला पिलावे। इस प्रकार दिन मे ३-४ वार पिलाने से मूत्र साफ खुलकर होता, दाह (चिनक) दूर होती एव पूय आना बन्द होता है। कुछ दिन के सेवन से सुजाक दूर हो जाता है।

(४) लू लगने पर तथा घोर तृष्णा पर—चन्दन घिसा हुआ २ तो०, शीतलचीनी १ तो०, कलमी शोरा ६ मा०, शक्कर १० तो० इनको आध सेर जल मे पीस-छान कर शर्बत बना ४ ५ वार मे थोड़ा-थोड़ा पिलाने से लू लगने का कष्ट दूर होता है।

घोर तृष्णा पर—इसके महीन चूर्ण को नारियल के पानी मे मिला कर पिलावे।

(५) प्रमेह पर—इसके साथ लाल चन्दन, मुलहठी, आवला, गिलोय, खस और मुनक्का इनका क्वाथ सिद्ध कर उसमे भुनी फिटकरी २-३ रत्ती मिलाकर सेवन से उपद्रवयुक्त प्रमेह, विशेषत रक्तमेह, हारिद्रमेह व माजिष्ठमेह समूल नष्ट होता है। (भै० र०)

(६) [illegible]—चन्दनादि [illegible] तैल—इसके साथ [illegible], लोध, नीलोफर, फूल प्रियगु, [illegible], और मुलहठी इनके कल्क १ पाव मे दूध ४ सेर

तथा तिल तैल १ सेर मिला तैल सिद्ध करलें। व्रण पर लगाने से घाव भरने मे उत्तम गुणकारी है। (शु० सं० चि० स्था० अ० २)

(७) अपची (कंठमाला भेद) पर तैल—इसके साथ हरड़, लाख, बच और कुटकी ४-४ तो० ले इनका कल्क १ पाव बनाले, तथा इन्ही द्रव्यों का क्वाथ ४ सेर और तिल तैल १ सेर मे मिला तैल सिद्ध कर ले। इस तैल के मात्रा मे पान करने से अपची समूल नष्ट होती है। (च०द०)

(८) पित्तज शिर शूल—इसके साथ लाल चन्दन, कूठ, खस और केसर समभाग मिश्रित चूर्ण कर दूध और घृत मे मिला लेप करे। लाभ होता है। (ग० नि०)

(९) नेत्र विकारो पर—१ भाग उत्तम चन्दन के बुरादे के साथ सेंधानमक २ भाग, हर्रे ३ भाग, और ढाक का का गोंद ४ भाग मिला महीन चूर्ण कर आंखां मे लगाने से यह चन्दनादि चूर्ण शुक्र एव अर्मादि नेत्र-विकारो को नष्ट करता है। (व स)

सर्व प्रकार के तिमिर रोगो पर इस के साथ, त्रिफला, सुपारी और ढाक के गोंद को महीन पीस, थोडे जल के साथ गोलिया बना आखो मे आजने से यह चन्दनादिवर्ति शीघ्र तिमिर को नष्ट करती है। (भैं र)

यदि नेत्र मे सव्रण शुक्ल (फूली) हो तो इसके साथ गेरू, लाख और चमेली की कली समभाग लेकर जल से महीन पीसकर वत्तिया बना लें। इन्हे जल मे घिसकर आजने से लाभ होता है। इस योग को चन्दनाद्यजन या चतुर्भद्रिकावर्ति कहते है। (बं स.)

(१०) रक्ताल्पता पर—'सफूफ सन्दल' इसके साथ लाल चदन, रेवदचीनी, गुलाब पुष्प, गेहू का सत, व मुलैठी-सत प्रत्येक १५। मा, सावरशृंग (भस्म) व बबूल गोंद प्रत्येक ८॥। मा तथा कद्दू बीजगिरी व कतीरा प्रत्येक ५। मा, खीराककडी बीजगिरी १०॥ मा., कपूर और कहरुवा प्रत्येक ६ रत्ती सब द्रव्यो के महीन चूर्ण मे समभाग शक्कर मिला ले। मात्रा—७ मा ताजे जल से सेवन करे। रक्त का प्रसादन होता है तथा रक्ताल्पता मे लाभ होता है। (यू सि यो स)

(११) त्वचा के विकारो पर—इसे कपूर और गुलाब जल मे घिसकर लगाने से त्वक्शोथ, विसर्प, फोडे, फुसी कण्डू, एवं गर्मी की फुंसियो मे लाभ होता है। इससे अंगमर्द (शरीर की पीडा) शिर शूल भी दूर होता है।

(१२) शीतपित्त, मसूरिका आदि अन्यान्य विकारो पर—इसे गिलोय रस मे घिसकर मात्रा १॥-२ माशे बार-बार पिलाने से 'शीतपित्त' शमन होता है। 'मसूरिका' के प्रारम्भ मे इसे हुलहुल के रस मे पीसकर पिलावे (वृ. नि. र)। 'तृषा पर' इसे घिस कर २ तोला की मात्रा मे नारियल जल मे मिला पिलाते है। 'हिक्का पर' इसे स्त्रीदुग्ध मे घिसकर नस्य देते है। दुर्गन्धयुक्त दोनो प्रदर और प्रमेह पर इसका क्वाथ देते है। ग्रीष्म ऋतु मे शीतल, आल्हादक पेय के रूप मे इसका शर्वत सेवन करे। आगे विशिष्ट योगो मे शर्वत चन्दन तथा ज्वर पर वस्ति प्रयोगार्थ चन्दनादि तैल देखिये।

चन्दन का तैल—उष्णवीर्य, वृक्कोत्तेजक, उत्तम मूत्रमार्ग शोधक, कृमिघ्न, त्वग्दोषहर, स्नेहन एवं कफनि:सारक है। नये या पुराने सुजाक के लिये यह परम लाभकारी है। सुजाक पर जो सलव्हर्सन (Salvarsan) नामक प्रसिद्ध जर्मन औषधि है वह इसी तेल के आधार पर निर्मित है ऐसा कहा जाता है। इस तेल के प्रयोग से वृक्क को कोई हानि नही पहुंचती है। इसका उत्सर्ग मूत्र-जननेन्द्रिय सस्थान एव फुफ्फुसो द्वारा होता है। उस समय इन अवयवो के स्रावो की वृद्धि एव दूषित कृमियो का नाश होता है। इसका प्रयोग सुजाक, वस्तिशोथ, जीर्णकास, विषम ज्वर एव पामा, खुजली आदि पर तथा सुगधि के लिये विशेषरूप से किया जाता है। अधिक मात्रा मे सेवन से गले में खुश्की, प्यास, शूलवत् वेदना एव कटि-प्रदेश मे भारीपन मालूम होता है।

इलायची व वंशलोचन के साथ इसका सेवन उष्ण-वात (वस्तिशोथ), कास, जीर्णातिसार तथा मूत्राशय व वृक्क प्रदाह मे किया जाता है। वृटिश फार्मोकोपिया मे पहले इसके विशिष्ट प्रयोग पूयमेह (सुजाक) की उग्रावस्था एव चिरकालिक अवस्था मे बहुत किये जाते थे, किन्तु अब उतने नही किये जा ते अब भी—

(१३) नये अथवा पुराने सुजाक मे— इसको ५ से १५ या २० बूंदो तक दिन मे ३ बार बताशो पर डाल

कर या दूध के साथ लेने से बहुत लाभ होता है। यदि जलन अधिक हो तो इसे ५--१० बूंद की मात्रा मे प्रत्येक घन्टे पर देते हैं। पूयस्राव के बन्द हो जाने पर भी लगभग १४-१५ दिनों तक इसे देते रहने से रोग की पुनरावृत्ति नहीं होने पाती। यह प्रयोग--इलायची व वंशलोचन के साथ अथवा सौंठ या अजवाइन के फाट के साथ विशेष लाभकारी है। इससे मूत्रदाह एवं वस्ति शोथ मे भी लाभ होता है।

अथवा--वंशलोचन तथा छोटी इलायची के बीज १-१ तोला दोनो का महीन चूर्ण कर उसमे उत्तम चंदन का तैल मिला कर छोटी २ सुपारी जैसी गोलिया बना ले। प्रात साय १-१ गोली ४ तोला शीत जल मे घोलकर उसमे ६ मा. मिश्री चूर्ण मिला पिला दें। इससे शीघ्र ही ६ पहर के अन्दर पूयप्रमेह की जलन शात होगी, तथा ७ दिन में सुजाक तथा स्त्रियो के प्रदर पर भी पूर्ण लाभ होता है। (व गु)

(१४) जीर्ण-वस्तिशोथ (Cystitis), गवीनीमुख शोथ (Pyelitis), मूत्र कृच्छ्र, तथा वस्ति के राजयक्ष्मा-उपसर्ग से बार-बार पेशाब होता हो, तो इसके तैल की मात्रा बताशे मे डाल कर दूध के साथ सेवन कराते हैं।

(१५) जीर्ण कास मे--दुर्गन्धयुक्त कफ निकलता हो, तो इसकी २-४ बूंदे बताशे पर डाल सेवन कराते हैं।

(१६) नाक की फुन्सियो पर---इसके तैल मे दुगना सरसो तैल मिला फुरहरी से लगाते हैं। खुजली, पामा आदि पर इसे नीबू के रस मे मिलाकर लगाते है। वैसे ही कर्णशूल, दन्तशूल एवं शोथ आदि अनेक चर्मरोगो पर भी इसका स्थानिक उपयोग किया जाता है।

बीज---चन्दन के बीज उष्ण है। गर्भपात या गर्भ-स्राव के लिये पिचुवर्ति के रूप मे योनिमार्ग मे इनको धारण कराते हैं।

छाल---वृक्ष की छाल को पीस कर विसर्प, खुजली आदि त्वग्रोगो पर लेप करते हैं।

विशिष्ट योग---

चन्दनादि अर्क (हिस्टीरिया पर)---इसका उत्तम बुरादा, मुनक्का बीज रहित, गाजर लाल रग की (इसके अन्दर के श्वेत भाग को निकाल दे), लाल कमल, नाग (पलास की या नीम की), ब्राह्मी (नई सूखी), शंखपुष्पी, ब्रह्मदंडी, जटामासी और जवाखार २०-२० तो० लेकर चूर्ण कर ३० सेर जल मे शुद्ध मटके मे भरकर २४ घंटे बाद भवके से अर्क खींच ले। अर्क खींचते समय कस्तूरी १॥ मा० और केसर ३ मा० इन दोनो को नाल के मुंह पर बाध देना चाहिये, जिससे वाष्प-जल टपकते समय इन दोनो द्रव्यो से युक्त हो पात्र मे टपके। फिर शीशी मे भरकर रख दें।

मात्रा--१ से ५ तो० तक प्रात साय देवें। इससे योषापस्मार (हिस्टीरिया) अवश्य दूर होता है। पथ्य मे दूध भात देवे, तथा स्नान टब के जल मे बैठकर करें। (धन्वन्तरि प्रयोगाक मे)

नोट--शुक्रमेह, पूयप्रमेह एवं पौष्टिक चन्दनासव के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह मे देखें। अथवा अन्य ग्रन्थों मे देखें।

(२) चन्दन पाक या खमीरा सन्दल (पित्तविकार-नाशक)---चन्दन चूर्ण १० तोले थोड़े गुलाबजल के साथ सिल पर अच्छी तरह पीस कर उसमे आध सेर गुलाब-जल मिला २४ घन्टे तक ढाक रक्खे। फिर मन्द आंच पर पकावे। आधा जल शेष रहने पर छान कर उसमे ६० तो० मिश्री मिला, पक्की चाशनी होने पर पाक जमा दें, अथवा गुलकन्द जैसा खमीरा हो जाय तो उतार कर शीशी मे भर रक्खें।

मात्रा--१ तो० से २ तो० तक प्रात सायं सेवन कर, ऊपर से दूध पीवें। इससे मूत्र साफ होता एवं पित्त-विकार शात होकर मस्तिष्क को परम शाति प्राप्त होती है। शरीर मे किसी प्रकार का दाह, उष्णता नही रहने पाती, तृषा व घबराहट शीघ्र दूर होती है। सुजाकग्रस्त रोगी के लिये विशेष लाभदायक है।

यदि उक्त प्रयोग खमीरा जैसा बन जाय तो मात्रा ७ मा० से १ तो० तक अर्क गावजवा १२ तो० के साथ सेवन करने से हृदय की धड़कन, हृदय का डूबना, हृदय की कमजोरी पर यह विशेष लाभकारी होता है।

नोट--पाक के अन्य उत्तमोत्तम प्रयोग 'बृहत्पाक-सग्रह' में देखिये।

(३) शर्बत-सन्दल—श्वेत चन्दन चूर्ण १० तो० को १ सेर अर्क गुलाब में भिगोकर १२ घंटे बाद पकावें. तिहाई भाग रहने पर छान कर १ सेर खाण्ड मिला कर शर्बत की चाशनी तैयार करलें। मात्रा २ तो०। खफकान, यकृत तथा आमाशय के विकृत पित्त को नष्ट करता है। इसकी २ तोले की मात्रा, अर्क गावजवान १२ तो० के साथ सेवन से यह हृदयोल्लासकारी, हृदय को बल देने वाला तथा उष्ण शिर शूल में परीक्षित है।
(यू० चि० सा० तथा यू० सि० सं०)

(४) चन्दनावलेह—(ग० नि०)—श्वेत चन्दन वंशलोचन, धनियां, सारिवा, कंकोल, खस, केसर, सतावर का चूर्ण तथा गिलोय सत १-१ तो० एकत्र खूब खरल कर रक्खें। फिर बिजौरा नीबू-रस १ सेर तथा अनार-रस, नारियल का पानी (हरे नारियल को तोड़ने से जो पानी निकलता है) तथा मिश्री आधा-आधा सेर लेकर एकत्र पकावें, जब अवलेह जैसा गाढा हो जाय तब ठंडा होने पर उसमें उक्त चूर्णों के मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—१ से १॥ तो० सेवन से हृद्रोग, भ्रम, मूर्च्छा, वमन और भयंकर दाह का अवश्य नाश होता है।
(गा० सं० र०)

नोट—वंध्या स्त्री, बालक एवं विशेषतः वृद्ध के लिये हितकर 'चन्दनाद्यवलेह' का पाठ हारीत-संहिता में देखिये।

(५) चन्दनादि घृत—श्वेत चंदन, चित्रक, कटेरी, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सोंठ, कुटकी, त्रायमाणा (इसके अभाव में वनफशा लें), आमला, खस, तथा दोनों प्रकार की सारिवा २-२ तो० लेकर एकत्र थोड़े जल में पीस कल्क कर लें। फिर घृत २॥ सेर, दूध ४ सेर और जल ५ सेर एकत्र कर उक्त कल्क के साथ, घृत सिद्ध कर ले। यथोचित मात्रा एवं अनुपान के साथ सेवन से विषम-ज्वर (चौथिया, तिजारी आदि), उन्माद, कास, श्वास तथा सर्व प्रकार के अपस्मार नष्ट होते है। (वं० से०)

नोट—पित्तज ग्रहणी-रोग पर चन्दनादि घृत का पाठ भी वंगसेन से देखिये।

(६) चन्दनादि तैल (ज्वर पर वस्ति-प्रयोगार्थ) श्वेत चन्दन, कमल, गम्भारी फल, मुलहठी और अगर ४-४ तोले का कल्क कर तिल तैल १ सेर तथा जल ४ सेर मिला तैल सिद्ध कर ले। इस तैल की वस्ति लेने से सर्व प्रकार के ज्वर दूर होते हैं। (वं० से०)

नोट—चन्दनादि तेल, महाचन्दनादि तेल, चन्दनबला लाक्षादि तेल के विस्तृत प्रयोग भावप्रकाश, योगरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली आदि ग्रन्थों में देखिये।

चन्दन लाल (Pterocarpus Santalinus)

कर्पूरादि वर्ग एवं शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) का यह वृक्ष, सिरस के वृक्ष जैसा १५-३० फुट ऊंचा बड़ा होता है। छाल-कृष्णाभ-धूसर वर्ण की, पत्र—संयुक्त, १॥—३ इंच लम्बे, अण्डाकार, अग्रभाग में कुछ गोल, प्रत्येक सींक पर प्रायः ३-३ होते हैं। पत्रक-अग्रभाग की ओर गोलाकार तिल पत्र जैसे, पुष्पदण्ड—कुछ लम्बा, जिसके चारों ओर अल्प पीताभ श्वेत वर्ण के पुष्प होते हैं। फली—२-३ इंच लम्बी, टेढ़ी सी, वृन्त की ओर कम चौड़ी एवं वृन्त बहुत छोटा होता है। बीज—फली में गुंजा जैसे लाल रंग के बीज होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में पुष्प और फली लगती हैं।

काण्ठ—बाहर की ओर श्वेत वर्ण का तथा भीतरी काण्डसार कृष्णाभ लाल रंग का होता है। औषधि-कर्म आदि में यही प्रयुक्त होता है। यह अति कड़ा, वजन में भारी, रेशेदार, स्वाद में कसेला तथा निर्गन्ध होता है, उत्ताप देने से इसमें हलकी सुगन्ध आती है। इसका बुरादा भी बाजार में बिकता है। ब्रिटिश फार्मेसी में इसका उपयोग लवेंडर के कम्पौण्ड टिंचर्स में रंग देने के लिये प्रायः किया जाता है।

इसके वृक्ष दक्षिण भारत के जंगलों में, विशेषतः तामावार प्रदेश में अधिक पाये जाते हैं।

नीम-पत्र को दूध मे या शीत जल मे पीस कर लेप करते हैं। दाह पर—इसे ७ माशे तक चावल के धोवन मे पीस कर मिश्री मिला पिलावें। बालको के उदर मे रक्त-ग्रन्थि हो तो इसके साथ समुद्र फल को जल मे पीसकर पिलावे। अग्निदग्ध व्रण पर—इसके साथ, वंशलोचन, गेरू और गिलोय को खूब महीन पीस घृत मिला लेप करते हैं। तारुण्य पिटिका (मुहासो) पर—इसके साथ हल्दी को भैंस के दूध मे पीस कर लेप करते है।

चन्दरस-देखिये—कहरुवा। चन्दलोई शाक—देखिये माठ (लाल साग)। चन्द्रजीत—देखिये—दन्ती वटी। चन्द्रजीत लाल—देखिये—दन्ती वटी। चन्द्रमूला—देखिये वच (सुगन्ध)। चपरी—देखिये बेमारी।

चमेली (Jasminum Grandiflorum)



पुष्पवर्ग एव पारिजात–कुल (Oleaceae) की इसकी खूब फैलने वाली लता होती है। इसका काण्ड मोटा नही होता, किन्तु पतली-पतली शाखाए बहुत लम्बी बढ जाती है। इन्हे यदि सहारा न मिले तो ये भूमि पर ही खूब फैल जाती है। ये शाखाए कडी एव धारीदार, पत्र–अभिमुख, सयुक्त, २-५ इच लम्बे, नोकदार, छोटे-छोटे गोल, अग्रभाग का पत्र कुछ अधिक लबा, पुष्प–वर्षाकाल मे, पत्रकोण से, या शाखा के अन्त मे मजरी मे, बाहर से गुलाबी आभायुक्त श्वेत वर्ण के, ५ पंखुडीयुक्त १-१॥ इच व्यास के, ३/४–१ इच लम्बे होते हैं। यह भारत में प्राय सर्वत्र ही बागो मे पुष्पो के लिये बोया जाता है। पुष्प दीखने मे तो सुन्दर नही होते, किन्तु सुगन्ध अति मनोहर एव दूर तक फैलने वाली होती है।

नोट—श्वेत और पीत पुष्प भेद से इसके दो प्रकार है--यहाँ श्वेतपुष्प वाली चमेली का वर्णन किया जा रहा है। पीत पुष्प या पीताभ श्वेत-पुष्प वाली को पीली चमेली (स्वर्ण जाति) कहते हैं। इन दोनों के गुण-धर्म मे कोई विशेष भेद नहीं है। पीताभ श्वेतपुष्प वाली को कहीं-कहीं जुही भी कहते हैं। चमेली, जुही और मालती इन तीनों में बहुत घोटाला हो गया है। इन तीनों के गुण धर्म प्राय: एक समान ही हैं। किंतु जुही जो उक्त पीताभ पुष्प वाली चमेली से भिन्न है, उसके पुष्प चमेली से छोटे होते हैं। यथा स्थान 'जुही' का प्रकरण देखिये। मालती के पत्र कुछ लम्बे, फूल बहुत ही बारीक तथा कुछ टेढ़े से होते हैं, यह प्राय ग्रीष्म ऋतु मे सुपुष्पित होती है। यथा स्थान 'मालती' का प्रकरण देखिये।

चरक के कुष्ठघ्न गण मे इसका उल्लेख है जंगली चमेली का वर्णन घुरहर प्रकरण मे देखिये।

नाम—

सं०---जाति, सौमनस्यायनी (मन को प्रसन्न करने वाली), चेतिका, हृद्यगंधा, मालती (भावप्रकाश मे मालती और चमेली को एक ही माना है) इ०। हि०---चमेली। म०---चमेली, जाई। गु०---चमेली। बं०---चामेली, जाति, जुई। अं०--- स्पेनिश जेस्मीन (Spanis jasmine)। ले०--जेस्मिनम ग्रेंडी फ्लोरम।

रासायनिक संघटन—इसके पत्रो मे–राल, वेतसाम्ल (Salicylic acid), जेस्मिनीन (Jusminine) नामक क्षार तत्व तथा कुछ कषाय द्रव्य होते है।

प्रयोज्य अंग—पत्र, पुष्प और मूल।

गुणधर्म व प्रयोग---

श्वेत और पीत दोनो चमेली लघु, स्निग्ध, मृदु, तिक्त कषाय, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य है। ये त्रिदोष-शामक, अनुलोमन, रक्तप्रसादन, मूत्रल, वाजीकरण, आर्त्तवजनन तथा कुष्ठ, कडू, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, नपुसकता, मुखरोग एव मस्तिष्क और नेत्ररोगो मे लाभकारी है। श्वेत चमेली पीत की अपेक्षा कुछ अधिक उष्ण और खुश्क होती है।

पत्र—कडुवे, व्रणशोधक, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, मुखरोग नाशक, दातो को दृढ करते है। मुख-रोगो मे इसके क्वाथ से कुल्ले कराते, दन्तशूल तथा दंतदौर्बल्य मे पत्रो को चबाते है।

कण्डू, कुष्ठ आदि त्वग्दोषों पर पत्र और पुष्पों का लेप करते हैं। कर्णशूल एवं दुर्गन्धयुक्त कर्ण-पूय में पत्रों से सिद्ध तैल को कानों में डालते हैं। यह तेल व्रणशोधन एवं रोपण के लिये लगाते हैं। व्रणों को पत्र-क्वाथ से धोते हैं। मूत्राघात तथा रजोरोध में पत्र व पुष्पों का लेप वस्तिप्रदेश पर करते हैं। मुखपाक में सिरावेध तथा ऊर्ध्वजत्रुगतविकारों के विरेचन के समय इसके पत्रों को चबाना हितकर होता है[1]। व्रणरोपणार्थ—पत्रों की पुल्टिस बनाकर भी बांधते हैं। उदर कृमि पर पत्रों को पानी में उबालकर पिलाते हैं, इससे मासिकधर्म भी साफ होता है। पैरों की फटी हुई बिवाई पर पत्रों का ताजा रस लगाते हैं।

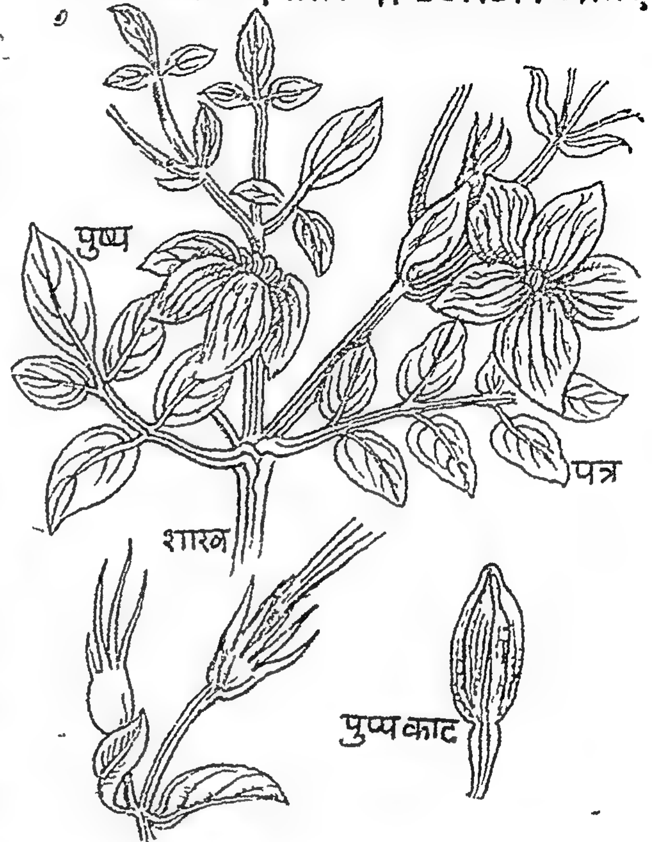
(१) मुख पाक में—(जातीपत्रादिक्वाथ)—इसके पत्ते मंजीठ, दारुहल्दी, सुपारी, शमी वृक्ष की छाल, आमला और मुलैठी इनका क्वाथ कर शहद मिला गण्डूष (मुख में धारण कर कुल्ले) कराने से (मुखव्रण, मुख के छाले) कण्ठ रोगों[2] में उत्तम लाभ होता है (व से)—अथवा—

इसके पत्र, गिलोय, मुनक्का, धमासा, दारुहल्दी और त्रिफला के कुल्ले करने से भी लाभ होता है। (व से)

साधारण मुखपाक पर—पत्तों को चबा-चबाकर थूकते रहने से भी लाभ होता है, मुख के क्षतों की वेदना एवं मसूढों की सूजन दूर होती है। अथवा इसके पत्ते, दारुहल्दी और त्रिफला इनके क्वाथ का गण्डूष धारण करें।

(२) दांतों के विकारों पर (जातीपत्रादि चूर्ण)—इसके पत्ते, पुनर्नवा की जड, गजपीपल, पियाबासा, कूट, वच, सोंठ, अजवायन, हरड और तिल समभाग लेकर खूब महीन चूर्ण कर थोडा थोडा चूर्ण मुख में रखने या दांतों पर मलने से दंतपीडा, दांतों का हिलना, दुर्गन्ध, मसूढों की सूजन, दर्द, दांतों की खुजली, कीडे एवं घाव नष्ट होते हैं। (यो र.)

चमेली
JASMINUM GRANDIFLORUM LINN.



(३) उपदंश पर—इसके कोमल पत्तों के स्वरस २ तोले में गाय का घृत १ तोला (अथवा गो दुग्ध २ तोले) और राल का चूर्ण ३ माशे तक मिला प्रातःकाल पीते रहने से शीघ्र ही ५ प्रकार के उपदंश रोग दूर होते हैं (यो० र०)

पत्र के क्वाथ से मूत्रेन्द्रिय के व्रणों को धोते रहें तथा निम्न जात्यादि तैल को लगाते रहें—

इसके पत्ते, हल्दी, दूधी (छोटी गोल पत्रों वाली जो जमीन पर फैलती है), इन्द्रायन की जड और मुलैठी ४-४ तोला लेकर पानी में पीस कल्क करें। फिर उसमें १ सेर तिल तेल तथा उक्त द्रव्यों का ४ सेर क्वाथ मिलाकर तैल सिद्ध करलें। (ग० नि०) रोगी को पथ्य में गेहूँ की रोटी, घृत शक्कर या दूध भात का ही सेवन करना आवश्यक है।

(४) आर्तव-शूल पर—पत्तों को पीसकर नाभि के

---

[1] मुखपाके सिरावेध: शिर:कायविरेचनम्।
कायं चवद्धाचि?त्य जातीपत्रस्य चर्वणम्॥ (भा० प्र०)

[2] अथवा कण्ठरोध (जब कंठ में मसूरिका के दाने निकल आवें) को भी यह दूर करता है। (भै० र०) यह क्वाथ विशेषतः मसूरिका में होने वाले मुख पाक में उत्तम है।

नीचे बांधने तथा यदि गलावरोध हो तो मृदु विरेचन देने से लाभ होता व मानसिक-वर्ग की रुकावट दूर होती है।

(५) वमन पर—पत्र-रस में थोड़ी पीपल और काली मिर्च का चूर्ण तथा शक्कर व शहद मिला २ ३ बार १-१ घंटे में चटाने से पुराना वमन-विकार दूर होता है। (ग नि)

(६) सन्निपात-ज्वर में जात्यादि क्वाथ—इसके पत्ते, आमला, नागरमोथा, और धमासा इनका क्वाथ सन्निपात ज्वरनाशक है। ज्वर में दोष विबद्ध हों, रुके हुए हों, तो इस क्वाथ में गुड़ (क्वाथ से चतुर्थांश) मिला पिलावें। (च चि अ १)

(७) कास पर (जात्यादि धूम्रपान)—इसके पत्ते, मैनसिल, राल और गूगल समभाग लेकर, बकरी के मूत्र में पीस कर गोली बना चिलम में रखकर या अन्य किसी प्रकार से इसका धूम्रपान करने से खांसी नष्ट होती है। इसके धूम्रपान से कफ निकल जाता व हृदय तथा कंठ का अवरोध दूर होकर कास-श्वास में लाभ होता है। अथवा—

इसके पत्ते और जउ तथा बेरी के पत्ते, मयूर, मैनसिल व गूगल समभाग पीसकर बत्ती बनावें। इसे बेरी के कोयलों की आग पर जला कर धूम्रपान करावें। (यो०र०)

(८) रतौंधी (नक्तान्ध्य) पर जातिपत्र-रसायन—इसके पत्रों का रस, शहद, हल्दी, रसौत और गाय का गोबर (गोबर का रस) समभाग लेकर चूर्ण-योग्य द्रव्यों (हल्दी व रसौत) का महीन चूर्ण कर सबको एकत्र मिला खूब खरल करें। इसे नेत्रों में आजन से रतौंधी दूर होती है (व से)।

(९) नेत्र की फूली (शुक्ल) पर इसकी कोंपल व मुलैठी के चूर्ण को घृत में भून कर मन्दोष्ण जल में पीस छान कर उसमें किंचित् कपूर घिसकर इसकी बून्दें नेत्र में टपकाने से फूली नष्ट होती है। (व से)

इसके पत्तों को रेंडी पत्रों में लपेट उसपर मिट्टी का एक अंगुल लेप कर, पुटपाक कर इसके पत्रों का रस कांसे के पात्र में लेकर उसमें समुद्र फल को घिस आंजने से आंख का फरकना, खुजली, अधिमंथादि विकार नष्ट होते हैं। (वो. च)

पुष्प—शीतल, मस्तकशामक, शोथघ्न, नाड़ीशामक, मूत्रल, आर्तव जनन हैं। नेत्र रोगों में—पुष्पों का लेप करते तथा उनका स्वरस नेत्रों में डालते हैं। सिर पीड़ा में—फूलों के रस को, या फूलों को कुलंजन के साथ पीसकर नस्य देते हैं। स्तम्भन के लिये—फूलों को पीसकर शिश्न पर लेप करते हैं। मुख की झांई या व्रण पर—फूलों को पीसकर लेप करते हैं। गर्भाशय से या मुख से रक्तस्राव होने पर फूलों का रस १ से २ तोले तक ३ दिन पिलावें। नेत्र की फूली पर—फूलों की पंखुड़ियों को थोड़ी मिश्री के साथ खरल कर लगाते हैं।

(१०) नेत्र के विकारों पर—(जाति पुष्पादि गुटिका) पुष्पों की कलियां, जवाखार और लाल चन्दन समभाग पानी के साथ पीसकर गोलियां बनावें।

इसे पानी के साथ पत्थर पर घिसकर नेत्रों में आंजने से काच, तिमिर तथा पटल नाम के नेत्र रोग नष्ट होते हैं। (भा. भै. र)

पित्तज और रक्तज नेत्र-रोगों पर—(जात्यादिवर्ती)—इसके पुष्प, जवाखार, शंख-चूर्ण, त्रिफला, मुलैठी और खिरैंटी-मूल समभाग चूर्णकर आकाश जल में पीस कर बत्तियां बनालें। इसे आकाश-जल में घिसकर आंजने से लाभ होता है। (व से)

नेत्रपाक (आंख दुखने) पर—इसके फूल, सेंधानमक, सोंठ, पीपल के बीज (छोटी पिप्पली को रात्रि के समय दूध में भिगोकर प्रातः हाथों से मलने पर उसके छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं) और वायविडङ्ग का सत (विडंग को कूटकर १६ गुने जल में पकावें, चौथाई शेष रहने पर छानकर पुनः पकावें गाढ़ा हो जाने पर उतार कर शुष्क करलें) ये सब समभाग महीन पीस, खरलकर सुरमा जैसा बनालें। इसे शहद में मिलाकर आंजने से अवश्य लाभ होता है। (भा भै र)

तन्द्रानाशार्थ—इसके फूल और कोंपल, कालीमिर्च, कुटकी, वच व सेंधानमक समभाग का चूर्ण कर, बकरे के मूत्र में घोटकर आंख में लगाने से तन्द्रा का नाश होता है। (यो० र०)

(११) योनि-दुर्गन्ध पर (जात्यादि घृत)--इसके फूल,

मुलैठी तथा आम, जामुन, कैथ, विजोरा और बेल के पत्ते समभाग लेकर, खूब महीन पीस, चार गुना गौ–घृत में मिला, धूप मे रक्खे। ८-१० दिन बाद शीशी मे भर कर रख ले। इस को लगाने एवं मालिश से योनि की दुर्गन्ध नष्ट होती है। (भा भै र)

गर्भ-निरोधार्थ–ऋतुकाल मे इसकी १ कली जल के साथ निगलने से गर्भ नही रहता।

(१२) व्रण पर (जातिपुष्पादि लेप)–इसके फूल मैन-सिल, स्नुही (थूहर) का दूध, कसीस और चित्रक-मूल समभाग, पानी मे पीस कर लेप करने से मृदु और उन्नत मासवाले व्रणो का ऊपर उठा हुआ मास दब जाता है (व से)

व्रणो पर 'जात्यादि घृत' आगे वि. योगो मे देखो।

मूल-वर्ण्य, वाजीकरण, वेदनास्थापन, विरेचन, कफनि सारक, कृमिघ्न, निद्राप्रद, और विषघ्न है।

वर्ण या कातिवर्धनार्थ—इसकी जड को उबटन मे मिला कर या अकेले ही पीस कर मर्दन करते है। 'शिर शूल' या अन्य शूलो मे मूल का क्वाथ कर परिषेक या लेप करते है। 'पक्षाघात, अर्दित' आदि वात विकारो मे मूल का लेप करते तथा तैल का अभ्यग करते हैं। 'दाद, छाजन' पर इसे पीस कर लगाते है।

(१३) मूत्रदाह पर---इसकी जड को बकरी के दूध मे पीस छान कर पिलाते तथा इसके फलो को, पीस कर मूत्राशय पर बाधते है।

(१४) जीर्णज्वर पर--मूल ६ मा कुचल कर दूध और पानी १-१ पाव मे मिलाकर पकावे। दूध शेष रहने पर दिन मे २-३ बार पिलावे।

(१५) ध्वजभग आदि पर– 'ध्वजभंग पर' मूल का लेप शिश्न पर करते है।

उदावर्त्त और आनाह पर–मूल का क्वाथ पिलाते हैं। इस क्वाथ से कुष्ठ मे भी लाभ होता है।

पचाङ्ग–इसके पंचाङ्ग के क्वाथ का सेवन करने से मासिक धर्म साफ होता तथा प्लीहा एवं यकृत की क्रिया मे सुधार होता है।

नोट —मात्रा–क्वाथपचांग-२-५ तोला क्वाथ पुष्प २ तोला तक। पत्र-रस ५-१० बूंद चूर्ण-पुष्प-१-२ मा.। अधिक मात्रा से उष्ण प्रकृति वालो के लिये अहित कर है। हानि–निवारणार्थ, गुलाब पुष्प, गुलबनफशा। यदि इसके सेवन से सिर दर्द पैदा हो, तो गुलाब का तैल और कपूर का लेप करें।

विशिष्ट योग––

(१) रोगन चमेली—(चमेली का तेल) तिलो को इसके पुष्पो मे बसाकर, कोल्हू मे पेर कर तेल निकाला जाता है। यह तेल कडवा, वृद्धो के लिये हितकर, प्रदाहशामक, त्वचामृदुकर, मस्तिष्क के लिये पौष्टिक, कामोत्तेजक, कृमिघ्न है। कर्णपीडा, और व्रणो पर लाभ कारी है। पक्षवध, अर्दित, आमाशय एव गृध्रसी मे इस की मालिश करते हैं। सिर मे लगाने से मस्तिष्क को तरावट तथा शक्ति देता है। किन्तु इसके अधिक लगाते रहने से केश श्वेत होने की सभावना है। भ्रम, मूर्च्छा आदि मे तेल को सिर पर मलते है।

(२) जात्यादि तैल—दन्त-व्रण-नाशक–इसके पत्ते, मैनफल, कटेली, छोटे गोखुरू, मजीठ, लोध, खैर और मुलैठी के क्वाथ के साथ (क्वाथ के लिये प्रत्येक द्रव्य १० तोला पानी एक सेर मे चतुर्थाश क्वाथ सिद्ध करे) आधा सेर तिल तेल मिला पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रक्खे। इस तेल की कुछ बूदे दोनो ओर मसूडो पर लगाने से दातो का नाडी व्रण दूर होता है। तथा पायोरिया मे भी यह लाभप्रद है। (व. से)

चमेली के पत्तो के रस मे उससे चौथाई तैल मिला कर पकाले। इसे कान मे डालने से पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है। (व से)

नोट—जात्यादि तैल के अन्य प्रयोग, भावप्रकाश, शार्ङ्गधर आदि ग्रन्थों में देखिये। एक और उत्तम चर्म-रोग नाशक इसके तैल का प्रयोग इस प्रकार है—

इसके पत्तो के साथ समभाग--नीम-पत्र, पटोल-पत्र, करंज-पत्र, मोम मुलैठी, कूठ, हल्दी, दारु हल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माक, लोध, हरड़, नील-कमल, तूतिया, अनन्तमूल और करंज बीज इन सबको पानी में पीस कल्क करे। फिर इस कल्क के समभाग काले तिल का तैल तथा उससे चौगुना इसके (चमेली) के पत्तों का रस

एकत्र मिला मंद आँच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रक्खें। इसके लगाने से सर्व प्रकार के जहरी घाव, खाज, खुजली, अग्निदग्ध की दाह, मर्मस्थान के व्रण, आदि में शीघ्र लाभ होता है। (व० चं०) किन्तु इस तैल की अपेक्षा निम्न जात्यादि घृत और भी श्रेष्ठ लाभदायक है।

(३) जात्यादि घृत——उक्त तैल के प्रयोग के ही सब द्रव्य (केवल करजपत्र, कूठ, पद्माक, लोध और हरड को छोडकर) १–१ तो० लेकर (मोम को अलग रख) कल्क कर गोघृत ६५ तो० और पानी या इसका पत्र-रस घृत से चौगुना एकत्र पकावे, घृत मात्र शेष रहने पर छानकर रख ले। इसका मलहम बनाना हो, तो उक्त मोम को पिघला कर घृत में मिला दें यह जात्यादि मलहम बन जावेगा। उक्त प्रयोग में चमेली-पत्र रस के लिये, पत्रों को पानी के साथ पीस-छानकर रस निकाल लेना चाहिए।

यह घृत या मलहम, मर्म-स्थानों के व्रण, पूययुक्त घाव तथा गहरे, पीडायुक्त और जिनका मुख छोटा हो ऐसे व्रण एवं नाडी व्रण (नासूर) को शुद्ध कर भर देता है। (भै० र०)

चम्पा (पीला) Michelia Champaca



पुष्प-वर्ग एवं अपने चम्पक कुल (Magnoliaceae) का यह मझले या बडे कद का, सदैव हरा रहने वाला, सुन्दर वृक्ष बाग-बगीचों में लगाया जाता है। शाखाएं खडी, फैली हुईं तथा पास-पास होती हैं, छाल—बाहर से धूसर, भीतर रक्ताभ, पत्र—एकान्तर, ८-१० इंच लम्बे, २-४ इंच चौडे, चिकने, चमकीले, तीक्ष्णाग्र, पत्रवृन्त—छोटे व मोटे, पुष्प—वसन्त, वैसाख मास से लेकर वर्षा-काल तक, फीके या गहरे पीतवर्ण के, २-३ इंच लम्बे, १-२ इंच व्यास के, महीन केशर युक्त ४-५ या अधिक पखडी वाले, भ्रमर नाशक, मन्द उग्र सुगन्धयुक्त (इसकी मादक गन्ध के कारण कहा जाता है कि भौंरा इसके पास नहीं जाता), फल—गोल-गोल छोटे-छोटे, फलों का एक सगठित गुम्बजाकार गुच्छ सा पुष्प-कोषों से अलग निकलता है। कई वृक्षों में फूलों के झड जाने के बाद अत्यधिक फल आते हैं। ऐसे वृक्षों में फिर कई वर्षों तक पुष्प नहीं आते। ये फल प्रायः शीतकाल में पक जाते हैं। इन फलों में श्यामाभ लाल वर्ण के गोल बीज तन्तुओं पर लटके हुए होते हैं; वृक्षों की उत्पत्ति इन बीजों से ही होती है। बीजों से जो तेल निकाला जाता है, वह गाढा होता है।

इसके वृक्ष बंगाल, आसाम, ट्रावणकोर, नीलगिरी, नेपाल, बर्मा में अधिक होते हैं। और भी कई स्थानों में ये लगाये जाते हैं, विशेषतः मालवा में ये पेड अधिक देखे जाते हैं।

इसके कई भेद हैं, जैसे श्वेत (पीला) चंपा (Michelia Niligarica), अंग्रेजी में हिल चंपा (Hill Champa) आदि। यह ऊंचे पहाडों पर, दक्षिण भारत के पश्चिमी घाटों, नीलगिरी तथा सीलोन के पहाडों पर अधिक होता है। इसका पत्ता पतला, श्वेत रंग का। शाखाएं और पत्ते उक्त पीले चंपा जैसे। फूल—श्वेत फीके रंग के। इसकी फलियां लम्बी और मुलायम लगती हैं, तथा बीज लाल होते हैं।

इसमें एक उडनशील तथा स्थिर तैल, चरपरी राल, टेनिन, शर्करा, स्टार्च, कैलशियम आक्जलेट (Calcium Oxalate), एक कटु तत्त्व आदि पदार्थ पाये जाते हैं। इसकी छाल के फाण्ट या क्वाथ का प्रयोग, उक्त पीली चंपा के जैसा ही ज्वरनाशनार्थ किया जाता है। शेष गुण धर्म भी वैसे ही हैं।

इसका ही एक भेद कनकचंपा और होता है, जिसे शायद लेटिन में माइकीलिया-हीडी (M Rheedi) कहते हैं। इसके भी पेड उक्त चंपा जैसे, तना पतला, पत्ते का निम्न पृष्ठ-भाग झालरदार एवं रोमयुक्त, फूल लगभग ५ इंच लम्बे, पांच सकरी (विशेष चौडी नहीं)

पंखुड़ी वाले, श्वेत रंग के होते है। फूल के खिलने पर ये पांचो पखुडिया पृथक होकर पीछे की ओर मुड जाती हैं। फल–पाच उभरी हुई धारियो से युक्त, ऊपरी छिलका नसवारी रंग का होता है, पक कर फटने पर उसमे से कुछ बडे धूसर वर्ण के बीज बाहर आ जाते हैं। गुणधर्म अधिकाश मे उक्त चपा जैसे ही है। विशेपता यह है कि इसके पत्तो के निम्न भाग की रोमावली को ताजे व्रण पर लगाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। छाल की की राख चेचक के व्रणो के रोपणार्थ प्रयुक्त होती है। फूल, पौष्टिक है, तथा शोथ, व्रण, कुष्ठ एव ग्रन्थि-रोगो पर प्रयुक्त होते हैं। इसके पेड हिमालय की उपत्यका एव पहाडियो पर लगभग ४ हजार फुट की ऊंचाई तक होते हैं। ये काली चिकनी मिट्टी की भूमि मे खूब उगते है।

एक माइनीलिया किसोपा (M kisopa) तथा एक माइनीलिया एक्सेल्सा (M. Excelsa) लेटिन नाम के भी इसी की जाति के पेड़ होते है। छाल इनकी धूसर वर्ण की, तथा पत्ते फूल आदि उक्त चंपा जैसे ही होते है। ये प्राय: हिमालय की उपत्यका मे ही पाये जाते हे। गुण-धर्म उक्त चंपा जैसे ही हैं। एक लालचपा भी होता है, इसके पुष्प श्यामाभलाल होते हे।

एक सुलतान चम्पा भिन्न जाति का होता है। वर्णन 'पुन्नाग' के प्रकरण मे देखे।

नाम—

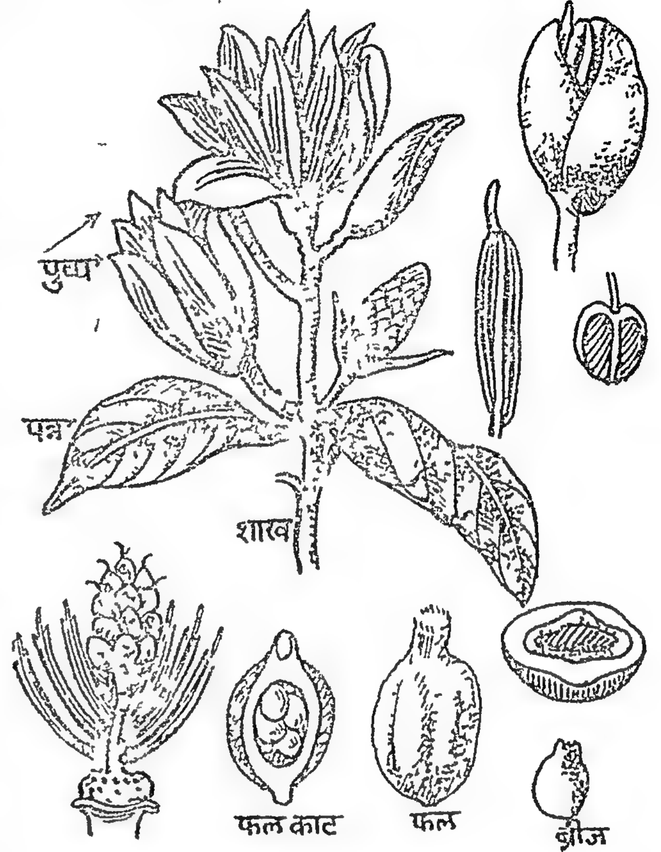
सं.—चम्पक, हेमपुष्प, चाम्पेय इ.। हिं.—चम्पा, नागचम्पा, चामोटी इ.। म.—सोन चांफा। गु.—पीली चंपा। बं-चम्पक। अ.—गोल्डन चम्पा (Golden Champa) ले—माइनीलिया चम्पक।

रासायनिक संघटन—छाल मे एक उड़नशील तथा एक स्थिर तेल, राल, टेनिन, पिच्छिल द्रव्य, स्टार्च, शर्करा आदि, फूल मे एक उडनशील सुगन्धित तेल होता है।

प्रयोज्य अ ग—छाल, पुष्प, पत्र, बीज तथा दूध।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, कषाय, मधुर, विपाक मे कटु, शीतवीर्य, तथा कफपित्त शामक, रोचन. दीपन,



आम-पाचक, अनुलोमन, दाहप्रशमन, त्वग्दोषहर, कफघ्न, रक्तशोधक, मूत्रल, बल्य, विषघ्न, हृद्य, व्रणशोधन रोपण है। यह रक्तपित्त, कास, कृमि, कुष्ठ अरुचि, अग्निमाद्य, शूल, आध्मान, उपदश, गडमाला, शोथ, आमवात आदि नाशक है।

छाल और मूल—कडवी, कसैली, चरपरी, विपाक मे मधुर शीतवीर्य, शोथहर, गर्भाशय-उत्तेजक, रसायन, व्रण-शोधन, कृमिघ्न, व ज्वरघ्न है। इसकी क्रिया चोवह-यान (Guaicum officinalis) जैसी होती है। यह चोवेहयान के प्रतिनिधि रूप मे ली जा सकती है। नियतकालिक ज्वर मे तथा कण्डू, कुष्ठ चर्मरोग, व्रण, शिर. शूल आदि मे इसकी छाल का फांट, क्वाथ, चूर्ण, व लेप आदि का प्रयोग किया जाता है। यह हृद्य एव त्रिदोषघ्न है। गठिया की पीडा पर इसका लेप करते है। वहुमूत्र पर–छाल का क्वाथ देते है। शुष्क कास मे–छाल

के चूर्ण को मधु से चटाते हैं। अतिसार में—इसकी छाल और अतीस के चूर्ण का मिश्रण थोड़ी २ मात्रा में जल के साथ देते हैं। दिन में ३-४ वार देने से ज्वरसहित आमातिसार तथा पक्वातिसार में भी लाभ होता है।

(१) विषम ज्वर पर—छाल २॥ तो० जौकुट कर १०० तोले पानी में पकावे। आधा शेष रहने पर छान कर, इसे ज्वर के पूर्व ५-७ तो० तक पिलावे। इस प्रकार २-२ घंटे से, देने पर नियतकालिक मियादी ज्वर नष्ट हो जाता है। (डॉ मुहीन शरीफ)

अथवा—छाल के मोटे चूर्ण का फाण्ट वनाकर सेवन करावे या इसका महीन चूर्ण ५ से १५ रत्ती की मात्रा में जल के साथ देते रहें। जीर्ण ज्वर में भी यह प्रयोग दिया जाता है। फाण्ट की विधि वि० योगों में देखें।

कुष्ठ आदि चर्म रोगों पर—छाल चूर्ण ३ माशे तक दिन में ३ वार जल के साथ, २ से ६ मास तक सेवन करने से रक्तशुद्धि व कीटाणुनाश होकर सब प्रकार के त्वचा-रोग दूर हो जाते हैं। दाद, व्युची, पामा, कच्छू, सिध्म, किलास (श्वेत कुष्ठ), विचर्चिका, चर्मदल (हाथ पैरों के तलवों में जलनयुक्त खुजली), विपादिका आदि विकार दूर होते हैं। यह सामान्य औषधि होते हुये अति दिव्य गुणकारी है। (गा० औ० र०)

(३) कंठ की ग्रन्थि-शोथ पर—वृद्ध मनुष्यों की ग्रसनिका-ग्रन्थियों (Tonsils) की वृद्धि हो जाने पर, छाल चूर्ण मुख में रखकर रस निगलते रहें। छाल की मात्रा पूरी देवे, जिससे १-२ दस्त लग जाय तो अच्छा है। जिस प्रकार बालकों की उक्त ग्रन्थियों की वृद्धि में वच्छनाग गुणकारी है, वैसे ही वृद्धों के लिये चंपा की छाल हितकर है। (गा० औ० र०)

मूल एवं मूल की छाल—विरेचन, आर्त्तवजनन, गर्भाशयोत्तेजक है। नारू पर—मूल को पानी में पीस-छानकर पिलाते हैं।

(४) कष्टार्त्तव पर—मूल-छाल की चाय (फांट) वनाकर पीने से आर्त्तव साफ हो जाता है। थोड़ी मात्रा में पीवें, अन्यथा विरेचन या अतिसार होने की सम्भावना है।

(५) व्रण पर—सूखी जड़ या इसकी छाल के चूर्ण को दही में मिला, पूयवत् फोड़े पर बांधने से वह अच्छी तरह पक जाता, या बैठ जाता है।

(६) [illegible] पर—मूल और इसके पुष्प को बकरी के दूध में पीस छान कर पिलाते हैं।

पुष्प—कटु, दीपन, मूत्र-निस्सारक, आमवात-नाशक, उत्तेजक, आक्षेप निवारक, पित्त-विकार-नाशक, हृद्य, कफ निस्सारक, कण्डु, कुष्ठ, नाड़ीरोग और व्रण में लाभकारी है। मूत्रकृच्छ्र तथा पूयमेह में इसका प्रयोग करते हैं। दाह-प्रशमन होने से दाह पर पुष्पों का लेप करते हैं। कर्ण-पीड़ा पर—पुष्प रस, किंचित् गरम कर कान में डालते हैं। मुख या चेहरे की झांई, खरोंच पर फूलों की कलियों को पानी या नींबू-रस में पीस कर लगाते हैं। मूत्रकृच्छ्र में—फूलों को पानी के साथ पीसकर ठंडाई की तरह पिलाते हैं। सिर-दर्द पर—पुष्प-तैल (वि० योग में देखें) को सिर पर लगाते हैं। संधिवात पर—पुष्प-तैल की मालिश कर ऊपर इसके पत्ते बांधते हैं। उदर-पीड़ा पर—फूलों का क्वाथ पिलाते हैं। चित्तोन्माद में—ताजे फूलों को पीसकर शहद से चटाते हैं। व्रण पर—फूलों के कल्क की पुल्टिस बना बांधने से वह फूट कर शीघ्र सुधर जाता है।

(७) सुजाक (पूयमेह) पर—फूलों का फाण्ट दिन में ३ वार पिलाते रहने से, मूत्र की जलन दूर होती व कीटाणु नष्ट होकर भीतर का घाव भर जाता है। रोग दूर होने पर भी कुछ दिनों तक इसका सेवन करें। फिर गिलोय, गोखुरू व आंवलों के चूर्ण (रसायन चूर्ण) का सेवन ४–६ मास तक करते रहना चाहिये, क्योंकि सुजाक की जड़ शीघ्र दूर नहीं होती।

(८) उदर-कृमि पर—फूलों का स्वरस शहद मिलाकर दिन में २ वार देते रहे। इससे कृमि निकल जाते हैं और भावी उत्पत्ति रुक जाती है। (गा० औ० र०)

(९) वाजीकरणार्थ—पुष्प-तैल की मालिश शिश्न पर करते तथा चम्पक-पाक का भी सेवन करते हैं। तैल और पाक की विधि—वि० योगों में देखिये।

(१०) प्रतिश्याय में—वि० योगों में 'चम्पकासव' देखें।

(११) वात-प्रकोप पर---वात-प्रकोप की दशा मे जब शरीर के कई स्थानो पर रह-रह कर शूल, वेदना एवं शून्यता हो, तो इसके फूलों के तैल को कुछ गरम कर मालिश कराते तथा फूलो का फाण्ट दिन मे ३ बार देवें।

पत्र---शीतल, मूत्रल, कफ, कास, पित्त-प्रकोप, मूत्र-कृच्छ्र, रक्त-विकार एवं कृमि मे लाभकारी हैं। उदर-शूल में---पत्र-चूर्ण या पत्र-स्वरस मधु के साथ देते हैं।

(१२) उदर-कृमि पर---ताजे कोमल पत्तो का रस २ तो० मे थोडा शहद मिलाकर पिलाते हैं।

(१३) प्रसूता के उन्माद एवं प्रलाप पर---पत्तो पर घृत चुपड कर उस पर जीरा चूर्ण बुरक कर प्रसूता स्त्री के शिर पर बांधते हैं। ऐसे दिन-रात में ४ बार बांधते रहने से लाभ होता है।

(१४) नेत्रो के धुधलेपन पर---कोमल पत्रों को पीसकर थोड़ा जल मिलाकर छान लें, तथा नेत्रों मे दिन मे २ बार टपकावें। नेत्र-ज्योति निर्मल होती है।

बीज---इसके बीजो को कोल्हू मे पिरवा कर तैल निकाल लें। यह तैल मूत्रल, उदर-वात-नाशक है तथा हाथ पैर की त्वचा पर लगाने के काम आता है।

(१५) उदर वात या पेट मे गैस (gas) के होने पर---इसके तैल की मालिश पेट पर करे तथा ऊपर से इसके पत्ते कुछ गरम कर बांध देवें। ऐसा बार-बार करने से पूर्ण लाभ होता है।

(१६) पैरो की पाद दारी या बिवाई पर---उक्त तैल की मालिश करते या बीजो को पीसकर लेप करते हैं।

दूध---इसके वृक्ष के तने को छेदने से या पत्तो को तोडने पर जो कुछ दूध सा निकलता है, वह स्फोटक है।

(१७) इस दूध को न फूटने वाले फोडे पर या पच्यमान विद्रधि पर लगाने से वह शीघ्र फूट जाती है। फिर उस पर उसके फूलो की पुल्टिस बांधते रहने से शीघ्र आराम हो जाता है।

नोट---मात्रा-पुष्प चूर्ण १-२ मा०। पत्र-स्वरस---१ से १॥ या २ मा०। छाल चूर्ण-५ से १५ रत्ती। छाल क्वाथ-२-५ तो०। छाल-रस--१-२ मा०। बीज-तैल- १०-२० बून्द।

विशिष्ट योग---

(१) चंपक-फाण्ट---इसकी छाल के मोटे चूर्ण २॥ तो० को उबलते हुए पानी मे डाल नीचे उतार कर उसीमे मिला कर ढाक देवे। शीतल होने पर छान लें। मात्रा-२ से ५ तो० तक दिन मे २-३ बार देने से विषम ज्वर, कफ-प्रकोप, मूत्रावरोध, कण्टार्त्तव, सुजाक मे लाभ होता है। यह त्रिदोषशमन एवं रक्त-प्रसादन है।

(२) चम्पकादि चूर्ण---(पाडु, प्रमेहादि नाशक) चंपा फूल, श्वेत चंदन, पित्तपापडा, पद्माक, मजीठ, अतीस, मोचरस, अडूसा, इन्द्र जौ, छोटी पीपल, नागकेशर, धाय फूल, पाठा, मोथा, सोठ, वेलगिरी, नीलोफर, अनारदाना, जामुन की गुठली, दालचीनी, कूठ, इलायची, लाल चन्दन, उर्द, रसौत व तालीसपत्र १-१ भाग, खस २ भाग तथा मिश्री सबसे चौगुनी लेकर सबका चूर्ण करले। मात्रा-६ मा० तक, (रोग की उग्रावस्था मे १ तो० तक) उचित अनुपान के साथ देने से-हारिद्रक, पाडु रोग, प्रमेह, रक्तपित्त, कास, श्वास, हिक्का एवं भयंकर मूत्रकृच्छ्र मे लाभ होता है। (यो० त०)

(३) चम्पकादि चूर्ण (ज्वर आदि नाशक)--- चपे की छाल, गिलोय, अतीस, सोठ, चिरायता, कालमेघ, (अभाव मे हरा चिरायता), नागरमोथा, छोटी पीपल, जौखार और कसीस समभाग महीन चूर्ण। मात्रा-१ से २ मा० तक, ३ बार पानी के साथ लेने से मलेरिया ज्वर, यकृत, प्लीहा वृद्धि, पाडुरोग, अग्निमांद्य, अरुचि आदि मे लाभकारी है।

(४) चम्पक-पुष्प-तैल---पुष्पो को १६ गुने तिल-तैल मे मिला, चीनी मिट्टी या काच के पात्र मे डालकर मुख मुद्रा कर ७ दिन तक धूप (सूर्यताप) मे रख, निकाल कर निचोड ले,. फिर उस तैल मे पुन दूसरे ताजे पुष्प मिलाकर, मुख-मुद्रा कर धूप मे ७ दिन रखने के बाद छानकर तैल को बोतलो में भर रक्खे।

कोई-कोई केवल १२ घंटे ही पात्र को धूप मे रख, निचोड कर छान लेते है। यह उक्त तैल की अपेक्षा सौम्य होता है।

यह तैल मस्तिष्क के विकारो पर, नेत्रशोथ, नाक

से दुर्गन्धित मल एवं कफ के विपुल प्रमाण में निकलने पर, गठिया, सन्धिवात, मूर्च्छा आदि में मर्दन के काम आता है। वाजीकरणार्थ या शिश्न को सशक्त करने के लिए इसकी मालिश शिश्न पर की जाती है।

(५) चम्पा-पाक—इसके २१ फूलों को, खौलते हुए पानी में धोकर, महीन पीस कर गोदुग्ध दो सेर में मिला पकावें। खोया जैसा हो जाने पर, नीचे उतार कर उसमें कौंच-बीज, बादाम-बीज, चिरोंजी, मुनक्का, पिस्ता महीन कतर कर २-२ तो० तथा तमाल-पत्र, छोटी पीपल, जावित्री, इलायची, मालती, गोखुरू, रूमीमस्तगी और लौंग १-१ तो० सब का महीन चूर्ण कर उक्त खोये में अच्छी तरह मिला दें। फिर १ सेर शक्कर की चाशनी में सब को मिला, उसमें ५ तो० घृत और १ तो० अफीम का चूर्ण मिला खूब घोटकर नीचे उतार लें, तथा कस्तूरी ३ मा०, भीमसेनी कपूर ८ रत्ती, केशर ६ मा० और पंजाबी सालम मिश्री का चूर्ण ५ तो० मिला, २ मा० के मोदक या गोलियां बनालें।

प्रतिदिन स्वबलानुसार प्रातः-सायं गोलियों का सेवन कर ऊपर से धारोष्ण गोदुग्ध पान करने से प्रबल काम-शक्ति की जागृति होती है, शरीर पुष्ट होता तथा चाहे जितना परिश्रम करें थकावट नहीं होती है। (जंगल की जड़ी-बूटी, व० चं० से साभार)

नोट—पाक के अन्यान्य उत्तमोत्तम प्रयोग 'बृ० पाक संग्रह' में देखिये। उक्त पाक की पूर्ण विधि भी उसमें देखिये।

(६) चम्पकासव—इसके छाया शुष्क फूल २॥ सेर को १३ सेर जल में पकावें। ७ सेर क्वाथ शेष रहने पर, छान कर शुद्ध मटके में भरें। ठंडा हो जाने पर उसमें मधु ४ सेर, धाय फूल १ पाव तथा अतीस, काकड़ासिंगी व छोटी पीपल का चूर्ण ४-४ तो० मिला, सन्धान कर १५-२० दिन सुरक्षित रक्खें। फिर छान कर बोतलों में भर रक्खें। मात्रा—१ से २॥ तो० सेवन से जुकाम, सर्दी, कोष्ठबद्धता दूर होती है, क्षुधावर्धक है।

अन्य योग—बृ० आसवारिष्ट संग्रह में देखें।

चम्पा (श्वेत) (Plumeria Acutifolia)



कुटज-कुल (Apocynaceae) के इसके वृक्ष छोटी जाति के, साधारण ऊंचे, तथा बहुत कमजोर होते हैं, शाखाएं थोड़े ही झटके से टूट जाती हैं, एवं प्रायः सर्वांग में दूध जैसा रस होता है। शाखा की अण्टीकलम (गुट्टी) जमीन में गाड़ देने से ही वह लग जाती है, वृक्ष पैदा हो जाता है। छाल—मटियाली भूरे रंग की, पत्र—आम्र-पत्र जैसे किंतु अधिक लम्बे दलदार, हरे रंग के, फूल—वसंत ऋतु में, दलदार ५ पंखुड़ीयुक्त, ऊपर से श्वेत, कुछ लाल आभायुक्त, किसी-किसी में लाल आभा भी नहीं होती है। भीतर से सुन्दर कुछ पीले वर्ण का होता है। फूलों को सूंघने से हल्की मीठी सुगन्ध आती है। इसके पुराने वृक्ष में क्वचित् कहीं-कहीं फलियां लगती है।

इसके वृक्ष की कलम भारत में प्रायः सर्वत्र बागों में लगाई जाती है। दक्षिण भारत के समुद्रतटवर्ति प्रदेशों में ये वृक्ष प्रचुरता से पैदा होते हैं।

नोट—इसी के कुल का, इसकी ही एक जाति, तथा रूप रंग एवं गुणधर्म में इसके समान ही एक और चम्पा (P Acuminata) होता है इसे लेटिन में प्लुमेरियाआलवा (P Alba) भी कहते हैं।

सं०—क्षीरचम्पक श्वेत चम्पक। हि०—सफेद चम्पा, गुलाचीन, गुलचीन, खुरचम्पा, गोबरचम्पा, इ०। म०—पौढरा चम्पा, खुरचम्पा। गु०—हाट चम्पा। बं०—गोरुर चांपा, गरुड़ चांपा। अं०—जसमाईनट्री (Jasmine tree) ले०—प्लुमेरिया एक्युटि फोलिया।

रासायनिक संघटन—इसमें अगोनियाडिन (Agoniadin) नामक एक कड़ुवा ग्लुकोसाइड, उड़नशील तैल, प्लुमेरिक एसिड (Plumeric acid) आदि पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग-

कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण वीर्य, सारक एवं कंडू, कुष्ठ, व्रण, शूल, वातदोष, उदर, शोथ तथा आध्मान आदि नाशक है।

छाल—कडवी, तीक्ष्ण, तीव्र विरेचक, मूत्रल, शोथ, वात एवं पार्यायिक ज्वर-प्रतिबन्धक है। रक्तविकार जन्य रोग तथा उपदंशादि मे—छाल का क्वाथ पिलाते है। इसके क्वाथ से प्रारभ में दस्त अधिक आते है, फिर पेशाब खुलकर होने लगता है। जड़ की छाल तीव्र विरेचक है। अत्यधिक विरेचन हो एव शरीर में गर्मी मालूम हो तो, छाछ (तक्र) पिलाने से शांति-प्राप्त होती है। विरेचनार्थ—छाल के चूर्ण को नारियल की गिरी के साथ खिलाते हैं, तथा विरेचन की शाति के लिये घृत और चावल खिलाते या तक्र पिलाते है। छाल का क्वाथ—जलोदर में पिलाते है। वदगाठ और शोथ पर—छाल को पीसकर, लेप या प्लास्टर जैसा लगाकर ऊपर इसके गरम पत्ते बाधते हैं, या पत्तो का सेक वा वफारा देते है। छाल का उपयोग सुजाक मे भी किया जाता है।

गलत्कुष्ठ पर—ताजी छाल १ तो० व ११ या १५ कालीमिर्च दोनो को खूब महीन पीस, ८-१० तो० जल मे घोल-छान कर प्रात पिलावें। प्रथम हृल्लास होकर वमन-विरेचन होंगे, वेग कम होने पर कोमल प्रकृति वाले को मूंग की दाल व पुराने चावल की खिचड़ी मे अधिक घृत मिलाकर खिलावें, या गेहूँ व चने का हरीरा अधिक घृत मिलाकर दें। और कुछ भी न दें। औषधि एक ही समय प्रात देवे। क्षुधा अति दीप्त होकर पाचन-क्रिया मे सुधार होता है। घृत १५ से ४० तो० तक पच जाता है। घृत की बाहुल्यता से औषधि का तेज वढ़ता व शरीर शुद्ध हो, कान्तिमान, तेजस्वी बनता है।

ध्यान रहे—यदि दोष-प्रावल्य शरीर के ऊर्ध्व भाग मे हो, तो इस वृक्ष की छाल जड़ की ओर से ऊपर की ओर छील कर उतारी हुई काम मे लावे, इससे विशेषत वमन द्वारा दोष-निवृत्ति होती है। यदि अधोभाग में दोष-प्रावल्य हो, तो ऊपर की ओर से जड की ओर छीलकर उतारी हुई छाल ग्रहण करे, विरेचन के द्वारा दोष दूर होंगे। यदि सर्वाङ्ग मे दोष-प्रावल्य हो, तो दोनो ओर से उतारी हुई छाल लेवे, जिससे वमन-विरेचन दोनो हो।

पचाङ्ग से तैल सिद्ध कर व्रणो पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है। इससे वनाई हुई रौप्य भस्म अति गुणकारी है।

—(रसतन्त्रसार सि० यो० संग्रह)

फूल—फिरंग (उपदंश) मे—फूलों का चूर्ण ९ माशे तक पानी के साथ, या फूलों को पानी मे पीस छान कर पिलाते है। मलेरिया या शीत ज्वर मे—फूल की कली डठल सहित पान के ३ वीडो मे रख कर, ज्वर-वेग के पूर्व १-१ घन्टे से खिलाने से ज्वर रुक जाता है। अथवा—खिले हुए पुष्पो की डठल अलग कर पान के वीडो मे खिलाते हैं।

दूध—वृक्ष का रस या दूध—दाहक, त्वचा पर लगने से जलन करने वाला, रेचन, कण्डू आदि नाशक है। इसका दूध ४-६ रत्ती तक शक्कर के शर्वत के साथ देने से पानी जैसे पतले दस्त होते हैं, तथा उन मे बहुत पित्त निकलता है। अत इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है। किन्तु यह दुग्ध महारोग (गलत्कुष्ठ पर) उत्तम लाभदायक है। दूध के घनसत्त्व की गोलिया, ४ से ६ रत्ती की मात्रा मे वना लें, और दूध के साथ प्रात. सेवन करावे। गुड, दही, मास व तैल के पदार्थ से परहेज रक्खें। नीम-पत्रो का आहार-विहार मे उपयोग करें तथा नीम-पत्रो के विछौने पर शयन करें। अवश्य लाभ होता है। (आयुर्वेद पत्रिका)

गठिया के दर्द पर—दूध को लगाते है।

दाद, खुजली पर—दूध मे चंदन का तैल मिलाकर अथवा नारियल-तैल और कपूर के मिश्रण मे मिलाकर लगाते है। शीतवात से शरीर का कोई स्थान सुन्न हो जाने या स्पर्शहीन हो जाने पर इसे लगाते हैं, अथवा इसके पत्तो का सेंक या वफारा देते है।

पत्र—व्रण पर—पत्तो को पीसकर पुल्टिस बनाकर बाधते है। कडे व्रण-शोथ पर—पत्तो को बाधने या लेप करने से वह पक जाता है (बैठ जाता है)।

फली—साधारण सर्प विष नाशक है। कहा जाता है कि इसकी फली को पानी मे ओटाकर पिलाने से या पानी मे पीस-छान कर पिलाने से सर्प-विष शीघ्र उतर जाता है। किन्तु ये फलियां बहुत ही कम मिलती है। अत ये यदि कही प्राप्त हो जाय तो इन्हे दूध मे उबाल कर रखने से बहुत दिन तक नही बिगडती। इस की फली पुरानी को पानी मे पीस कर पिलाने से भी विष दूर हो जाता है।

नोट—मात्रा-चूर्ण १-३ माशे तक।

यह उष्ण प्रकृति वालों के लिए अहितकर है। इस की हानि-निवारणार्थ—छाछ और मक्खन का सेवन कराते हैं।

चम्बा—दे—मोगरा मे। चरस—दे—भाग मे। चरेल—दे—चिलबिल। चवन्नी गाछ—दे—ममीरी।

चव्य (Piper Chaba)



हरीतक्यादि वर्ग एव पिप्पली कुल (Piperaceae) की इसकी बहुवर्षायु, पराश्रयी लता, काली मिर्च या पिप्पलीलता जैसी, किन्तु बहुत मोटी एवं विस्तृत होती है। काण्ड एव शाखाएं फूली हुई ग्रंथियों से युक्त कडी होती हैं। पत्र—खाने के पान (नागर पान) जैसे किन्तु छोटे, ४-७ इन्च लम्बे, २-३॥ इच चौडे, अडाकार, अनीदार, ऊपरी पृष्ठ भाग चमकीला, ३ सिराओ से युक्त, पुष्प दण्ड---पत्रकोण (पत्र तथा शाखा के मध्य भाग) से निकला हुआ, सीधा लाल रग के नन्हे २ फूल एव फलो के गुच्छो से युक्त होता है। पुष्पदण्ड मे कई शाखा प्रशाखाए होती है, जिस पर गुच्छे १॥ इच लम्बे एव चौथाई इच मोटे होते है। फूल व फल वर्षा के अन्त मे आते हैं।

फल—बहुत छोटे, गोल, इच के अष्टमाश भाग के व्यास के, कुछ सुगंधित एव कडवे (चरपरे) होते है। मालूम नही इन फलो को गजपीपल (पीपल जैसे किंतु उससे मोटे और लम्बे) कैसे कहा जाता है? सभव है इस पिप्पली की ही कोई अन्य जाति की लता हो, जिसे चव्य मानकर उसके मोटे, लम्बे पिप्पली सदृश फलो को गजपीपल कहते हो। आधुनिक वैज्ञानिको की गज पीपल का वर्णन गजपीपल के प्रकरण मे पीछे यथास्थान देखिये।

नोट—लता के काण्ड, मूल एव शाखाओं के छोटे २ धूसर रंग के टुकडों को ही चव्य कहते हैं। कोई २ काली मिर्च की जड को ही चव्य मानते हैं। चरक के दीपनीय, तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, शूलप्रशमन एव कटु स्कन्ध में तथा सुश्रुत के पिप्पल्यादि गण मे इस की गणना है। अन्य आचार्यों ने पचकोल और षडूषण[1] मे इसे लिया है।

इसका मूल निवास-स्थान मलाया द्वीप है, किन्तु भारत मे अति प्राचीन काल से विशेषत मलाबार, बगाल व कूचबिहार मे इसकी लताए पाई जाती हैं।

नाम—सं-चव्य, चविका, उपणा इ। हि--चव्य, चाभ, चवक इ। म—चवक, काकला, चावचिनी। गु--चवक। द—चई, चोई, चेअर। ले—पायपर चावा, पा आफिसिनारिम (pofficinarum)

गुणधर्म व प्रयोग—कफ वातशामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, आदि इसमे प्राय पीपलामूल के ही सब गुण है। इसमे अर्शोघ्न गुण की विशेषता है।

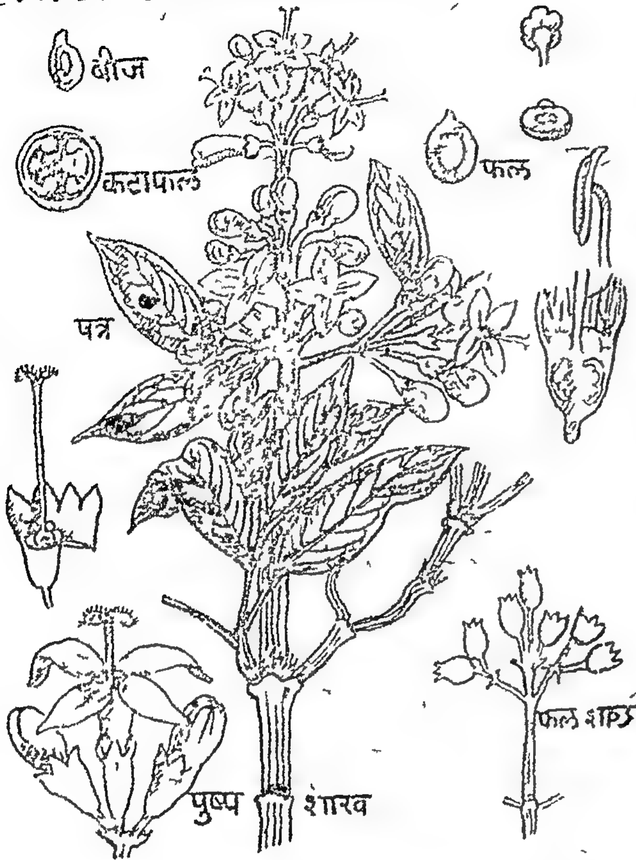
यह अरुचि, अग्निमाद्य, अजीर्ण, अतिसार, उदर-रोग, वृक्कव्याधि- कास, श्वास आदि मे प्रयुक्त होती है। अर्श या गुदजरोगो मे इसे (चव्य चूर्ण) सीधु (ईख के सिरके

[1] पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक व सोंठ के मिश्रण को पचकोल कहते हैं। यह रस व विपाक मे कटु, रोचक, तीक्ष्ण, उष्ण, पाचक, उत्तम दीपक, वातनाशक तथा गुल्म, प्लीहा, उदर-रोग, अफरा व शूल नाशक एव पित्त प्रकोपक है।

उक्त पचकोल (पचोषण) के द्रव्यो में कालीमिर्च मिला देने से षडूषण कहलाता है। इसमें उक्त सब गुण है। तथा यह अधिक रूक्ष, उष्ण और विष नाशक है।

चव्य

PIPER CHABA HUNTER.



या मधु) के साथ देते हैं। या चविकासव का प्रयोग करते हैं। प्रतिश्याय पर—इसका चूर्ण मधु के साथ या चाय मे डालकर सेवन कराते हैं।

(१)जलोदरादि उदर रोग पर—चव्यादि क्वाथ-चव्य, चित्रक, सोठ व देवदारु को गोमूत्र मे पकाकर छान कर उसमे निसोत चूर्ण मिला पीने से लाभ होता है। (वृ नि र)

(२) वमन व कफातिसार पर—चव्यादि क्वाथ-चव्य, अतीस, कूठ, कच्ची बेल-गिरी, सोठ, कुडा छाल, इन्द्रजी हरड का क्वाथ पिलाने से लाभ होता है (व से)

(३) कफजप्रमेह-चव्यादि क्वाथ-चव्य, अरणी, त्रिफला और पाठा के क्वाथ मे शहद मिला कर सेवन कराने से लाभ होता है (च. रा)

(४) मद्यविकार (पानात्यय) पर—चव्यादि चूर्ण-चव्य, कालानमक हीग, बिजोरा नीबू का गूदा (सुखाया हुआ) और सोठ के समभाग चूर्ण को मद्य (शराव) मे मिला कर पिलाने से लाभ होता है (यो. र)

(५) मेद-रोग पर (चव्यादि सक्तु प्रयोग) चव्य, श्वेत जीरा, सोठ, मिर्च, पीपल,हीग, काला नमक और चित्रक इनके मिश्रित १ मा. चूर्ण को जौ के सत्तू मे दही के पानी (मस्तु) के साथ अच्छी तरह मिला कर पीने से मेद (चरबी) कम होकर अग्नि प्रदीप्त होती है (भै र)

(६) सग्रहणी पर—चव्यादि चूर्ण-चव्य, चित्रक, बेल-गिरी- व सोठ समभाग मिश्रित चूर्ण की १॥ २ मा. की मात्रा मे तक्र के साथ सेवन से दुःख दायक सग्रहणी दूर होती है (वृ. नि र)

(७) क्षय रोग पर—चव्यादि चूर्ण-चव्य, त्रिकटु (सोठ, मिर्च, पीपल) और वाय विडग के चूर्ण को (३-४ मा. की मात्रा मे) मधु व घृत के साथ मिला कर सेवन करावे (व से)

पीपला मूल के अभाव मे चव्य का प्रयोग, तथा छोटी पीपल के स्थान मे इसके फलो का प्रयोग करते हैं।

फल—कटु, तीक्ष्ण, उत्तेजक दीपक तथा प्रतिश्याय, उदर-पीडा आदि नाशक है। अपस्मार मे इसके महीन चूर्ण का नस्य देते हैं।

(८) अग्नि दीपनार्थ तथा श्वास-प्रकोप पर—फलो के चूर्ण को अदरख रस व मधु के साथ दिन मे २ बार लेने से पाचन शक्ति बलवान होती है।

इसके चूर्ण को खाने के पान के रस के साथ या पान के बीड़े के साथ सेवन करने से नवीन कफोत्पत्ति नही होती, तथा श्वास-प्रकोप की शांति होती है।

(९) अतिसार पर—फलो के चूर्ण को आम की गुठली की गिरी के साथ पानी मे पीस छान कर पिलावे।

(१०) प्रतिश्याय पर—इसके चूर्ण को शहद के साथ अथवा चाय मे डाल कर पीने से शीघ्र लाभ होता है।

मूल—विषनाशक है। इसकी जड के रस मे काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पिलाने से वमन होकर विष की निवृत्ति होती है।

फूल—इसके पुष्प श्वास, कास, क्षय और विष-नाशक हैं।

अर्क--भवका (नलिका-यंत्र) द्वारा खीचा हुआ इसके पचाङ्ग का अर्क अति रुचिकारी तथा विशेषत अर्श आदि गुदज-रोग नाशक होता है।

नोट--मात्रा--चव्य चूर्ण १-२ माशा तथा फल चूर्ण--२ से ४ या ८ रत्ती तक।

विशिष्ट योग—

(१) चव्यादि घृत--चव्य, सोठ, काली मिर्च, पिप्पली, पाठा, यवक्षार, धनिया, अजवायन, पीपलामूल, काला नमक, सेधा नमक, चित्रक, बेलगिरी और हरड समभाग कुल १ सेर का कल्क कर, गोघृत ४ सेर, उत्तम जमा हुआ दही १६ सेर व जल १६ सेर मे एकत्र मिला, घृत सिद्ध करले। मात्रा—६ मा० से १ तो० तक, सेवन से मल व वात का अनुलोमन होता तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, गुदशूल, वक्षण-शूल आदि नष्ट होते है। (भै० र०)

चव्यादि घृत न० २—चव्य, पाठा, त्रिकटु, पीपलामूल, धनिया, बेल की छाल, जीरा, हल्दी, तुलसी, हरड व सेंधा नमक १-१ तो० लेकर सबका कल्क कर, उसमें गोघृत ५२ तो० तथा घृत से चौगुना जल मिला, यथाविधि घृत सिद्ध करले। मात्रा—१ तो० से १॥ तो० तक गर्म दूध के साथ सेवन करने तथा इस घृत की मालिश से अर्श के मस्से, वातरोग एव अश्मरी मे लाभ होता है। (हा० सं०)

चव्यादि घृत न० ३—चव्य, कुटकी, इन्द्र जौ, सोया और पाचो नमक (सेंधा, संचल, सामुद्र, काच, विड) ५ ५ तोला लेकर कल्क करें।

तथा उक्त द्रव्यों को १-१ सेर पानी लेकर, जोकुट कर ७२ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थांश क्वाथ शेष रहने पर, छानकर उसमे उक्त कल्क और ४॥ सेर घृत मिला, घृत सिद्ध करले।

१ से २ तो० की मात्रा मे सेवन से अर्श नष्ट होकर ग्रहणी दीप्त होती है—(भा० भै० र०)

नोट—श्वास, कास नाशक चव्यादि घृत का पाठ वाग्भट मे देखिये। गुल्म, प्रमेहादि नाशक चविकासव अन्य ग्रन्थों मे या हमारे बृ० आ० सग्रह मे, स्वरभेद, पीनसादि नाशक चव्यादि चूर्ण भै० र० मे तथा चव्यादि लौह रस ग्रन्थों मे देखिये।

चांगेरी (Oxalis Corniculata)



शाकवर्ग एव अपने ही चागेरी कुल[1] (Geraniaceae) की इसकी लता भूमि पर फैलने वाली, पत्र-काण्ड-भूमि से कुछ उठा हुआ लम्बा, जिसमे पत्र—प्राय तीन-तीन (कही चार चार भी) सयुक्त, गोलाकार के, पुष्प—नन्हे-नन्हे पीत वर्ण के पुष्पदण्ड पर होते हैं। फली—१-१॥ इंच लम्बी गोल (गावदुम जैसी), रोमावृत एवं इसके बीज छोटे-छोटे बादामी रग के होते है। पुष्प और फल शरद ऋतु मे आते हैं।

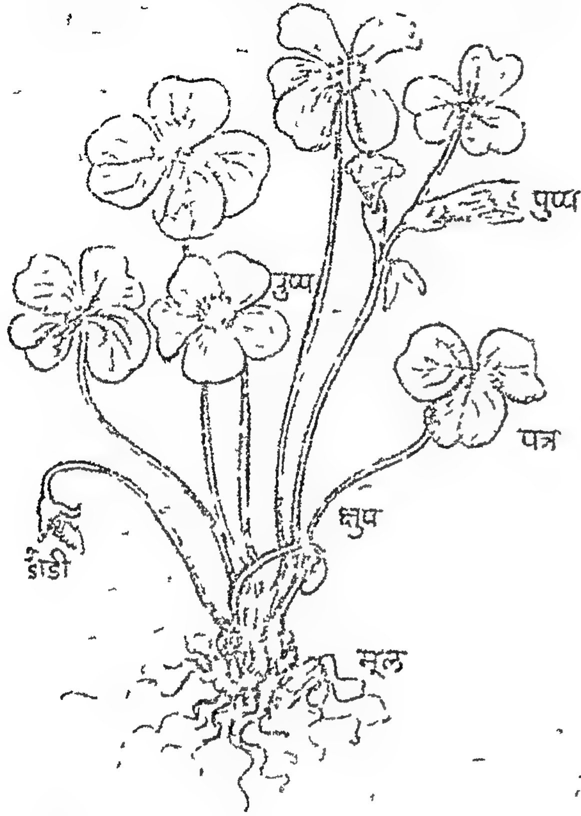
यह भारत में सर्वत्र प्राय उष्ण प्रदेशों की आर्द्र भूमि मे खडहर या घरो के आस-पास तथा छोटे छिछले पानी के या झरनों के किनारे प्रचुरता से पाई जाती है।

नोट--(१) चरक के अम्ल स्कंध मे इसका उल्लेख है तथा अतिसार, अर्श आदि के प्रयोगो मे ली गई है।

(२) इसकी एक बडी जाति होती है, जिसे बडी चागेरी (Oxalis Acetosella, Linn) कहते हैं। इसके पत्ते अपेक्षाकृत बडे, पत्रनाल बहुत लम्बे, इसका काण्ड रक्ताभ ग्रंथिल तथा पुष्प-दल श्वेत या हलके गुलाबी रंग

१ इस कुल की लता का पतला दुर्बल प्रणत तना होता है। जिसमें लम्बे-लम्बे पर्व एवं पर्व ग्रन्थियो से मूल निकलती है। यह तना पत्रकोण से निकल कर भूमि पर कुछ दूर तक फैल कर नयी आगन्तुक मूल पैदा करता है जो नये पौधे को जन्म देती है। इस प्रकार के कई ससर्पि (Runner) मानू पोधा से पैदा होकर चारो ओर फैल जाते हैं। दूर्वा, चूका, ब्राह्मी आदि मेभी यही प्रकार पाया जाता है, यद्यपि इनके कुल भिन्न-भिन्न है।

चांगेरी
OXALIS CORNICULATA LINN.



के होते है। इनका गुणधर्म एवं उपयोग प्रस्तुत चांगेरी जैसा ही है।

(३) अमरोला (अमरूल) जिसका वर्णन प्रथम खंड में आया है, वह इससे भिन्न अमलवेत का एक प्रकार है। चूका (चुक्र) भी इससे भिन्न है। चूका का प्रकरण देखिये।

नाम —

सं०--चांगेरी, अम्लपत्रिका इ०। हि०--चांगेरी, तिनपतिया, खटकल, अम्लोनिया इ०। म०--आंबटी, आंबोटी। गु०--खाटी लुणी, चांगेरी। बं०--आमरूल, त्रिपती। अं०--इंडियन सोरेल (Indian sorrel)। लै०--ऑक्जेलिस कॉर्निकुलेटा।

रासायनिक संगठन—

इसमें पोटासियम और आक्जेलिकएसिड पाये जाते हैं।
प्रयोज्य अंग-पञ्चांग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, अम्ल, किंचित कषाय, उष्णवीर्य (यूनानी मतानुसार शीत वीर्य) विपाक में अम्ल। यह कफवात शामक, पित्तवर्धक, रोचन, दीपन, यकृदुत्तेजक, ग्राही, कुष्ठ मारक, लेखन, वेदना-स्थापन, हृद्य, रक्तस्तंभक, दाह-प्रशमन, मूत्रल, संकोचक (सूक्ष्म धमनियों का संकोचन कर रक्तस्राव रोधक) है। मादकविष (विशेषत धत्तूर व अफीम विष) नाशक तथा अरुचि, अग्निमांद्य ग्रहणी, अर्श, रक्तातिसार, रक्त-प्रवाहिका, गुदभ्रंश, हृद्विकार, कामला, ज्वर (विशेषत चातुर्थिक ज्वर) आदि में इसका प्रयोग होता है।

व्रण-शोथ, शिर शूल आदि में तथा अर्म (नेत्र-श्वेत-भाग का रोग, एक त्रिकोणाकार या अर्ध चन्द्राकार प्रवर्द्धन जो शुक्लास्तर पर भीतरी नेत्र-कोण में पैदा होता है जिसे नाखूना भी कहते है), शुक्ल (फूली) आदि नेत्र विकारों में इसका लेप आदि करते है। मदात्यय में इसका स्वरस पिलाते है। बालकों के वमन, बेचैनी आदि में इसे देते हैं। धतूरा या अफीम के विष पर इसका स्वरस पिलाते है। त्वचा के मसे पर रस का मर्दन करते हैं। दाह पर--पत्र रस का लेप करते है। मसूढों के शोथ आदि विकारों पर पत्र-रस से कुल्ले करते है। वस्तिप्रदेश पर इसके लेप से मूत्र खुल कर हो जाता है। मौसमी बुखार में--पत्र पानी में पीस छान कर पिलाते हे।

१. उन्माद पर---इसके पत्ते १ पाव तक घृत मे छोंक कर केवल नमक डाल कर शाक पका कर पागल जितना खा सके उतना रोटी के साथ खिलावें। (यदि अधिक प्रमाण मे शाक बनाना हो, तो उक्त पत्रों के साथ ही बथुआ या पालक व चौलाई पत्र मिलालें)। फिर उसे एक कमरे मे बन्द करदे। और कोई दवा न दे। इस प्रकार २१ दिन तक केवल उक्त शाक व रोटी उसे खिलावे। उसके सिर पर तैल लगा सकते है। उसके कपडे आदि साफ सुथरे रक्खे। परीक्षित है।

—कविराज पं० विश्वनाथ त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य मु पो. सिघावे (रामकोला) जि. देवरिया
(धन्वन्तरि गुप्त सिद्धप्र योगांक से)

चागेरी का रस, काजी और गुड समभाग लेकर सबको अच्छी तरह मथकर तीन दिन पिलाने से भी उन्माद (पागलपन) नष्ट हो जाता है। (व० से०)

२ शिर शूल—पित्त-प्रकोप जन्य सिर-पीडा एवं सिर मे जडता हो, तो इसके पचाग को महीन पीस, पानी मे पका, उफान आने पर उसमे श्वेत प्याज का थोड़ा रस मिला, उतार कर ठडा होने पर लेप करे तथा इसी का सिर के तालु पर धीरे धीरे मर्दन करें। तत्काल लेप के सूखते ही शाति प्राप्त होती है। (व गुणादर्श)

३ शीत पित्त पर—इसके पत्र-रस मे कालीमिर्च का महीन चूर्ण और आग पर पतला किया हुआ घृत मिला शरीर पर मालिश करते है।

४ हैजे पर—इसके १ तोला स्वरस मे थोडा काली मिर्च का चूर्ण मिला १ पाव पानी मे पीस छानकर थोडा थोडा पिलाते हैं।

५ अग्निमाद्य पर—इसके ताजे पत्तो की कढी या चटनी बना कर सेवन करने से पाचन-शक्ति मे सुधार होकर-क्षुधा बढती है। पत्तो के साथ पोदीना, काली मिर्च व नमक मिलाकर चटनी बनाते है।

६ जीर्ण अतिसार पर—पत्तो को तक्र या दूध मे उबाल कर दिन मे २-३ बार देते है।

७ नेत्र के पुराने श्वेत दाग (फूली) जाला आदि पर इसके स्वरस का अ जन करते है। पत्रो कोपीसकर नेत्रो पर बाधना व पत्तो के पानी को आख मे टपकाना लाली को मिटाता व दर्द कम करता है।

८ उदर—शूल पर—इसके पत्तो के क्वाथ मे थोडी भुनी हुई हीग बुरक कर पिलाते हैं।

९ गुदभ्र श पर—इसके रस मे घृत को सिद्ध कर गुदा पर लेप करते है। सेवनार्थ-चागेरी घृत का प्रयोग विशिष्ट योगो मे देखिये।

१० व्रणशोथ पर—इसके पचाङ्ग को पीस कर पुल्टिस जैसा बनाकर बाधने से, पीडा व जलन दूर होकर शोथ बिखर जाती है।

११ अन्तर्दाह पर—इसके पत्रो को ठडाई की तरह पीस छानकर मिश्री मिला पिलाते है

नोट—मात्रा स्वरस ? माशे से १ तोला तक। यूनानी मतानुसार- फुफ्फुस विकार एवं शीत प्रकृति वालों के लिये यह हानिकर है। हानिनिवारणार्थ गरम मसाला देते है।

चागेरी घृत न. १—सोठ, पीपरामूल, चित्रक, गज-पिप्पली (अथवा चव्य), गोखुरु, पिप्पली, धनिया, बेल-गिरी, पाठा (पाढ) और अजवायन समभाग मिलित कल्क करे। कल्क से चौगुना गोघृत, घृत से चारगुना चागेरी स्वरस (अथवा जितना घृत लिया जाय उतना ही यह स्वरस लेवें) तथा स्वरस के बराबर ही दही एव उतना ही पानी मिला कर घृत सिद्ध कर लें। मात्रा—६ माशे। यह घृत दुष्ट वातकफ को तथा अर्श, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, प्रवा-हिका, गुदभ्रंश, आनाह आदि रोगो को दूर करता है। सग्रहणी मे जब आव आवे, बार २ टट्टी जाने से गुदा की वलिया निर्बल हो गई हों, टट्टी करते समय कु थन करना पडे एव कु थन करते २ गुदा का भाग बाहर निकले (काच निकले), पेट मे आध्मान, अरुचि हो तब इसको सेवन करावें। (भै. र) यदि अन्य कारणो से केवल गुदभ्र श हो, तो—

चागेरी घृत न २—चागेरी का रस जितना लेवें, उतना ही बेर का क्वाथ, उतना ही खट्टा दही और स्व-रस का चतुर्थांश घृत लेकर उसमे सोठ व यवक्षार का कल्क (घृत का चतुर्थांश) मिला घृत सिद्ध कर ले। मात्रा—६ मा सेवन से काच निकलने की पीडा दूर होती है (भै र) शूलयुक्त अतिसार मे भी इस घृत से लाभ होता है।

चागेरी घृत न० ३—(बालको के अतिसार और ग्रहणी-विकार पर)—चागेरी रस का समभाग पानी तथा चतुर्था श घृत व बकरी का दूध एकत्र करे उसमे—मजीठ, धाय के फूल, लोध, कैथ, नीलोफर, सेंधानमक त्रिकटु, कूठ, बेलगिरी व नागरमोथा इनका कल्क (घृत से चौथाई भाग) मिला घृत सिद्ध करले। इस घृत को दूध के साथ पिलाने से या वैसे ही बार बार चटाने से बच्चो का अतिसार एव ग्रहणी—विकार ठीक होता है। (व० से०) और भी चागेरी घृत के पाठ ग्रन्थो मे देखिये।

२ शर्बत—पत्तो को घोटकर शक्कर के साथ शर्बत बना, १ तोला सेवन से यह प्यास मिटाता, यकृत को बल देता व ज्वर कम करता है। मूत्राशय के शोथ को भी दूर करता है।

३. अवलेह—पत्ते घोटकर पकाने से गाढा होने पर शहद या शक्कर मिलाले। १।। से १ माशा तक सेवन से पाचन करता व जिगर की गरमी भी कम करता है।

४ क्षार—इसके पंचाग को जलाकर, राख पानी मे घोटें और निथार कर आग पर पकावें। क्षार हो जाने पर निकाल रखे। १-२ रत्ती देने से पाचक हो तृष्णा, शोथ, स्वप्नदोष-नाशक है।

५ रूमी शिगरफ (हिंगुल) भस्म—१ तोला हिंगुल कडछे मे धीमी आंच पर रख ऊपर से १ सेर तक इसके स्वरस का चोया देवें। फिर उसे काच के पतले पात्र (Glass Tlask) मे रख ऊपर से ५ तोला गधक-तेजाब भर कर कढाई मे रेतमे रख (बालुकायत्र) आच दे जब तेजाब उड जाय, धु वा बद हो जाय, तब आच बन्द करदें। उत्तम श्वेत भस्म प्राप्त होगी। मात्रा—१ चावल—उत्ताम शक्तिवर्धक योग है, ऊपर से घृत दुग्ध आदि का प्रयोग करें।

—श्री शेख फैय्याज खा आयुर्वेद-शास्त्री
भीनमाल (जालोर)

चाद [छोटा]—देखिये—सर्पगन्धा चादनी— दे० नगर। चाकवत—दे० चूका।

चाकसू (Cassia Absus)

शिम्बीकुल के पूतिकरंज उपकुल (Caesalpiniaceae) के इसके एक वर्षायुक्ष प १-२ फुट ऊंचे, चिपचिपे एवं रोमश होते हैं। पत्र-लम्बी सीको पर, सयुक्त, पमाडपत्र जैसे, पत्रक चार-चार १-२ इंच लम्बे, प्राय कुठिताग्र, तथा पत्रक द्वय के मध्य मे एक गन्थि से युक्त, पुष्प—हल्के पीले या लालिमायुक्त पीले, अति छोटे २ फली-१-१।। इच लम्बी, कुछ टेढी, जिसके भीतर ५-६ बीज चिपटे, कड़े चमकीले, काले भूरे रग के, सिरे पर किंचित् नुकीले, लम्बाई चोडाई मे $\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{8}$ इन्च के, ऊपर का छिलका मोटा, कडा तथा भीतर के दोनो दल हल्के पीतवर्ण के होते हैं।

नाम सं.—चक्षुष्या, अरण्य कुलत्थिका इ। हि—चाकसू, बनकुलथी, वानर इ। म—चिमड, चिनोल गु—चमेड, चिमेड। ले—केशिया एबसस।

रा: सघटन—वीजो मे क्षार प्रतिशत ३ से ७ तक और कुछ मेगनीज पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—बीज-रूक्ष, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, विपाक मे कटु एव कफ पित्तशामक, ग्राही, लेखन, आत्रसकोचक, कूछ मूत्रल, मेद—नाशक तथा नेत्रविकार, ग्रहणी, प्रवाहिका, रक्तातिसार (अधोग रक्तस्राव) मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, क्षत, व्रण आदि मे लाभकारी हैं। दृष्टिमाद्य, नेत्राभिष्यन्द, पोथकी नेत्रस्राव आदि नेत्र-विकारो मे सुरमा के रूप मे तथा पूययुक्त नेत्रशोथ पर अवचूर्णन रूप मे इसका प्रयोग करते हैं। क्षत, व्रणादि, विशेषत जननेद्रिय के क्षतो मे भी इसका उपयोग करते हैं। दद्रु आदि चर्मरोगो मे भी यह लाभकारी है।

शुद्धीकरण—बीजो को आटे की लोई के भीतर रख कर या प्याज के भीतर रख कर या तक्र मे उवाल कर, या नीम पत्र के साथ पानी मे उबाल कर, ऊपर का छिलका दूर कर अन्दर की मज्जा या दालो को अकेले या अन्य उपयुक्त द्रव्यो के साथ मिलाकर प्रयोग करते हैं।

(१) नेत्र-विकारो पर—नेत्रशोथ, पूययुक्त नेत्राभिष्यन्द मे जबकि आखें अति लाल, पूय कोने मे भरा हुआ, भीतर वेदना होती हो, उक्त प्रकार से शुद्ध की हुई (विशेषत तक्र मे उबाली हुई) इसकी गिरी के साथ किंचित् सेंधा नमक व तक्र मिला कल्क बनाकर

प्रातः सायं ५ तो० तक की मात्रा में सेवन करने से नेत्र के समस्त विकार शीघ्र शमन हो जाते हैं।

चाकसू-अंजन—(१) इसके शुद्ध बीज, फिटकरी भस्म (फिटकरी चूर्ण को गोघृत में मिला, रबड़ी जैसा बना लोहे की कड़ाही में, तीव्र आंच पर रखें, कड़छी से चलाते रहें, काली भस्म हो जाने पर उतार लें), जसद भस्म, अफीम, लोंग व छोटी इलायची बीज १-१ तो० और गोघृत ६ तो० सबको ताम्र-पात्र में नीम के डंडे से घोट कर अंजन तैयार करें। इसे रात्रि के समय लगाने से रोहे, नेत्र की लाली, अश्रुस्राव दूर होते हैं। (र० नं० सार)

(२) अंजन २—बीजों को पोटली में बांधकर गोमूत्र के स्वरस में दोलायन्त्र-विधि से स्वेदन करें, फिर छिलकों को साफ कर अन्दर की दाल को महीन पीस चूर्ण करें। इसे रात्रि के समय एक बार के लगाने से ही नेत्राभिष्यन्द में परम लाभ होता है।

नोट- पाक के अन्यान्य उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे वृ० पाक-संग्रह में देखिये।

चाक्तिक[1] (chaktik)



इस लघु क्षुप की ऊंचाई लगभग ४ इंच, श्वेत पीताभ वर्ण का, पृथ्वी में १ इंच तक गहरा गया हुआ इसका मूल तन्त्वाकार होता है। मूल के ऊर्ध्वभाग से ही पत्र-विहीन २-२॥ इंच की १५-२० उच्चतक लम्बी पतली शाखायें स्फुटित होती हैं। इन्हीं शाखाओं के अग्र-भाग पर नील वर्ण के पुष्प विकसित होते हैं। पुष्प लम्बाई में चौड़ाई से तिगुने होते हैं। शाखाओं के मूल में दो लघु पत्र होते हैं, जो पुष्प के विकसित होने पर प्रायः गिर जाते हैं।

उत्पत्ति, देश और काल—कुल्लू से लेकर लगभग १०० मील पूर्वोत्तर दिशा में, लाहौर प्रदेश में हिमालय के ऊंचे शिखरों पर यह बूटी प्राप्त होती है। शीतकाल के बाद ग्रीष्म में वहां पर अन्य जड़ी बूटियों के साथ यह भी दृष्टिगोचर होती है। यह बूटी कीलंग वाला, कीलंग तथा मोरचा नाला में तथा चिस्पा के ऊपरी प्रदेशों में प्रभूत परिमाण में प्राप्त होती है। ज्येष्ठमास में यह प्रादुर्भूत होती है, आश्विन मास के अन्त में हिमपात के कारण सब बूटियां लुप्त हो जाती हैं। लाहौर प्रदेश में इसे चाक्तिक कहते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह अति तिक्त, शीतवीर्य रक्तशोधक, पित्तशामक तथा विषम ज्वर नाशक है। जीर्ण विषम-ज्वरों में तो यह रामबाण सिद्ध हुई है।

एक माशे की मात्रा में सुखोष्ण जल से दिन में ३ बार देने से यह विषमज्वर को दूर भगाती है। ज्वर से पूर्व यदि इसका सेवन किया जाय तो ज्वर के वेग को भी रोकती है। ज्वर चाहे कितना ही तीव्र क्यों न हो इसका प्रयोग निस्संकोच किया जा सकता है। इससे कोई उपद्रव नहीं होता। जीर्ण विषम ज्वर में तो यह औषधि अव्यर्थ सिद्ध हुई है, विशेषतः जब कि प्लीहा बढ़ जाती है।

मैंने शतशः रोगियों पर इसका प्रयोग कराके इसके चमत्कार-पूर्ण प्रभाव को देखा है। कई रोगी जो विषम ज्वर से कई महीनों से पीड़ित थे, इस विलक्षण बूटी की ३-४ मात्राओं से ही नीरोग हो गये।

[1] जीर्ण विषमज्वर नाशक इस प्रभावशाली बूटी का वर्णन प्राचीन या अर्वाचीन किसी भी निघण्टुओं में नहीं मिलता। श्रद्धेय श्री कविराज हरदेव जी शर्मा वैद्य वाचस्पति ने इसका संशोधनपूर्वक स्वानुभूत वर्णन धन्वन्तरि भाग १८ अंक ११ में प्रकाशित किया था, उसी का सारांश यहां दिया जाता है।

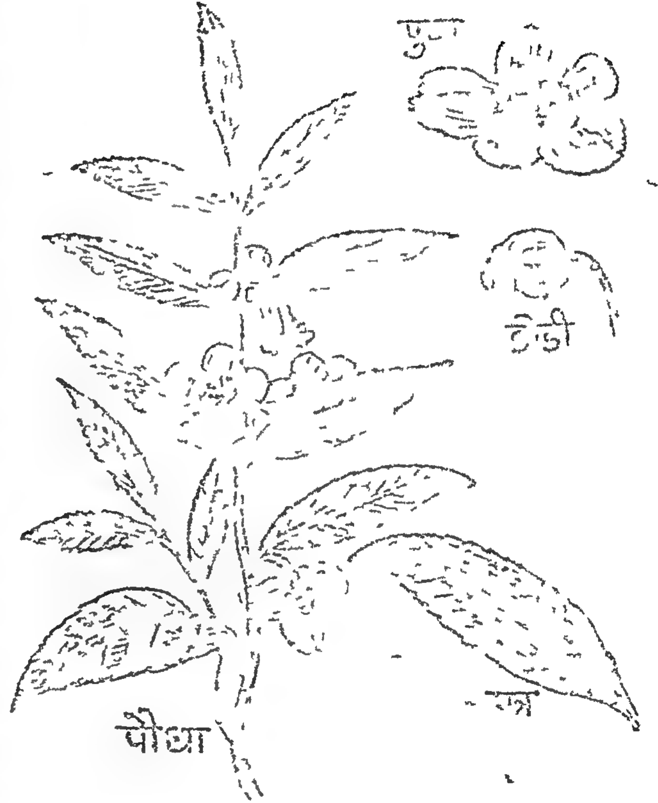
चान्दमाला—दे०—टगरपादुका। चाभ—दे०—चव्य।

चाय [Camellia Theifera]

चविका (चाय) कुल (Ternstroemiaceae) की प्रमुख, सर्व प्रसिद्ध औषधि है। इसके सदैव हरितक्षुप, चिकने किंचित् रोमश होते है। खेती की सरलता एव उत्तम चाय के उत्पादनार्थ ये क्षुप ऊपर से समय समय पर काट दिये जाते हैं, जिससे ये ४-५ फुट से अधिक ऊचे न बढने पावें। पत्र—२-६ इच तक लम्बे, १-१॥ इच चौडे कही कही इससे भी अधिक लबे व चौडे, लम्बगोल, नोकदार प्राय चिमडे, दन्तुर, ऊपर से चिकने, निम्न भाग मे किंचित् रोमश, सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र—युक्त (इन छिद्रो मे एक प्रकार का विशिष्ट गंध युक्त तैल द्रव्य होता है), पत्र-वृन्त-बहुत छोटा (इन पत्तो की ही चाय बनाई जाती है)। पुष्प १-१॥ इच व्यास के श्वेत, फल या डोडी ½ इंच व्यास की चमडे जैसी ३-५ खडवाली, जिसमें हलके भूरे रग के गोल, कडे छिलके वाले बीज होते है।

इसका मूल स्थान मलाया, चीन और जापान है। अब तो गत ३०० वर्ष से भारत मे—आसाम, बगाल नीलगिरी, बिहार, उडीसा, मद्रास, पंजाब, त्रावणकोर दार्जिलिंग, नेपाल, देहरादून आदि प्रांतो मे तथा सीलोन मे इसकी खूब खेती होती है। इङ्गलैंड, अमेरिका आदि में भी इसकी खेती की जाती है। किंतु ससार मे अब सबसे अधिक चायोत्पादक देश भारत ही है। सब देशों की अपेक्षा अधिक इसका निर्यात भारत से ही होता है दूसरा नम्बर सीलोन का है।

नोट—१ भारत में चाय का प्रचार १७ वीं शताब्दी मे इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा हुआ। इस कम्पनी ने ही इसकी विभिन्न स्थानो मे खेती करवाने तथा इसके उत्पादन से लाभ उठाना प्रारंभ किया। तबसे इसके उत्पादन मे धीरे धीरे प्रगति एव सुधार होता गया। सन् १६०७में भारत की चाय अन्य देशों की चाय से अधिक श्रेष्ठ मानी गई, तथा इसका प्रचार खूब प्रचुरता से बढने लगा। अब तो यह एक मात्र सर्व श्रेष्ठ सर्वप्रिय पेय, सब पेय पदार्थों की सार्वभौम सम्राज्ञी बन गई। प्रचार द्वारा यह इतनी सर्व सुलभ कर दी गई है कि अन्य देशो की



बात अलग रही। भारत से अब शायद ही ऐसा कोई स्थान हो, जहा इसका पान न किया गया हो, या इसके आदी न होगये हो।

२. चाय के प्रकार—पत्तों को पौधों से तोडने के बाद शुष्कीकरण-प्रणाली द्वारा जो शीघ्र ही शुष्क कर लिये जाते है, वे कुछ हरे रहने से हरी चाय (Thea Viridis), तथा देर से शुष्क किये हुए पत्ते कुछ काले, श्याम वर्ण के रहने से काली चाय (Thea Bohea) कहलाते है। बाजारो मे हरी चाय के इम्पीरियल, हायसिन, यग हायसिन, टॉनिक, स्किन व गन पाउडर ये भेद, तथा कालीचाय के कंगू, पिको, सुचाग और उलग नाम के भेद पाये जाते हैं। इनमें इंपीरियल चाय (Imperial tea) सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। यह शीतकाल में होती है,

पत्र कोमल होते है। किन्तु जो पत्ते वसंत के बाद ग्रीष्म में तोडे जाते हैं। वे कुछ कुछ कडे होते हैं। इन सब पत्तों को शुष्क कर विधिपूर्वक वाष्पीकरण विधि से सेंककर-मोटे पत्र, छोटे पत्र, मोटा चूर्ण, बारीक चूर्ण, अति महीन चूर्ण आदि को पृथक् कर डिब्बों आदि में विक्रयार्थ भेजते हैं। हरी चाय में तथा उसके इस शाही (Imperiall) भेद मे चाय-पत्रो का प्रभावकारी उड़नशील तैल ही अधिक प्रभावशाली एवं उत्तेजक होता है।

इसके अतिरिक्त नींबू, गुलाब, चमेली आदि अन्यान्य पुष्पो के सयोग द्वारा भी चाय सुगंधित कर प्रस्तुत की जाती है।

आजकल तो भिन्न २ वृक्षो की पत्तियों मे भिन्न २ रगो की पुटे देकर निर्माण की हुई अनेक प्रकार की कृत्रिम चाय की भी बाजारो मे भरमार है। इस प्रकार की कृत्रिम चाय-निर्माण की कला मे चाइनीज लोग बडे प्रवीण है। किंतु इन भिन्न २ वृक्षो की पत्तियो द्वारा निर्मित चाय मे असली चाय के केफीन (Caffeine) आदि प्रभावशाली तत्वो का नितान्त अभाव होता है। अत यह कृत्रिम चाय, असली चाय-पत्रो के साथ मिश्रण कर, डिब्बो मे भर कर बाजारो मे भेजी जाती है। (नाडकर्णी)

नाम—

हि०—चाय, चाह, चा। सं०—चहा। गु० बं०—चा। अं०—टी (Tea)। ले. केमेलिया थीफेरा के. थी. (C Thea)

रासायनिक संघटन—

इसमे मुख्य द्रव्य केफीन या थीइन Caffeine or Theine) प्र श ३ २२ से ४ ६० तक तथा टैनिक एसिड २६ २५ तक, उड़नशील सुगंधित तैल ½ से १ तक। स्थिर तैल ४ तक, तथा यूरिक एसिड शर्करा, गोंद, वसा, काष्ठ के अ ग आदि द्रव्य पाये जाते हैं। केफीन प्राय अधिकाश मे चाय के द्वारा ही विक्रयार्थ प्राप्त किया जाता है।

नोट—शीतकाल मे तोडे हुए इसके पत्रो मे टेनिन (टेनिक एसिड), ग्रीष्म काल में तोडे हुए पत्रों की अपेक्षा कम होता है, अत यह उत्तम तथा कुछ महगी (तेज-मूल्य मे) मिलती है। कम मूल्य वाली अर्थात् अधिक टेनिन वाली चाय, विशेषतः उसके बारीक चूर्ण में अत्यधिक टेनिन होने से स्वास्थ्य के लिये महान हानिकर होती है।

चाय पत्र के बडे टुकडो की अपेक्षा, इसकी धूल या मोटे चूर्ण (Dust) मे टेनिक एसिड अधिक और अति सूक्ष्म चूर्ण (Powder flower) मे तो अत्यधिक होता है। होटलो मे कम खर्च मे अच्छा रग लाने तथा अधिक दूध का भास कराने के लिए प्राय पाउडर-टी ही उपयोग मे ली जाती है। यह सबसे अधिक हानिकर है।

गुणधर्म व प्रयोग—

चाय-पत्र-तिक्त, कषाय, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, कफहर, वातवर्धक, पाचक, सारक, प्रमाथी, उत्तेजक आदि गुणविशिष्ट है।

दुग्ध मिश्रित, यथोचित विधि से बनाई हुई चाय (फाट) स्वादु, कुछ स्वेदल, कफहर, किंचित् उत्तेजक, कामोत्तेजक, शीत-निवारक, श्रमहर, मूत्रल, जडता-नाशक तथा ज्वर, प्रतिश्याय, सिर दर्द मे लाभकारी एव पक्षवध, कास, कृच्छ्रश्वास, रक्ताल्पता आदि निवारक है। मूत्रल होने से कामला, मूत्रावरोध और जलोदर मे भी कुछ लाभ करती है।

किन्तु ध्यान रहे—उक्त गुणो की यथायोग्य प्राप्ति तभी होती है जब असली चाय-पत्रो मे अवस्थित केफीन और टेनिन नामक घटको की मात्रा अत्यधिक सेवन मे न आने पावे।

इसमे जो केफीन द्रव्य है उसके कारण यह उत्तेजक एव स्फूर्तिदायक प्रतीत होती है। उसके पीते ही कुछ समय के लिये नाडी-सस्थान या स्नायुओ मे एक चेतन-शक्ति सी दौड जाती, एव स्फूर्ति सी मालूम देती है। चाय के इस केफीन नामक घटक द्वारा शरीर की सज्ञावाहक एव चेष्टावाहक नाडियो पर तुरत ही अप्राकृतिक प्रभाव पडने से, ये नाडिया कुछ समय के लिए अधिक कार्य करने लगती है, इसी को हम स्फूर्ति समझ लेते है। किंतु इस अल्पकालीन स्फूर्ति से हमारी प्राकृतिक ऊष्मा तथा नाडियो की कार्य-क्षमता का, निरतर चाय के सेवन से शनै शनै ह्रास होता जाता है। वे शिथिल होती जाती है, तथा उन्हे सतेज करने के लिए बार बार चाय पीनी

र डती है। परिणाम वही होता है, जो एक परिश्रम से थके हुए भार-वाहक घोडे को बार-बार हंटरों या चाबुक के मारने से होता है। अत ध्यान रहे, चाय का यह स्फूर्तिप्रद तत्व (कैफीन) थोडे ही परिमाण मे शक्तिसंचारक व कुछ लाभकारी अर्थात् श्रमहर, आनन्द-दायक एवं उक्त गुणो का प्रदर्शक होता है। अधिक मात्रा मे यह हृदय, मस्तिष्क एव वातनाडियो की विकृति-उत्पादक होकर अरुचि, वमन, आध्मान, हस्त-पाद कम्पन, मुख विवर्णता, नाडी क्षीणता, मत्तता (Hallucinatin), स्वप्नदोषादि भयकर रोगो को पैदा कर देती है।

चाय-पत्र मे जो टेनिन है वह क्षुधा एवं पाचन-शक्ति का ह्रास-कारक है। तथा इस घटक का प्रमाण भी चाय पत्र मे अधिक होने से, यह हमारे शरीर के, स्वास्थ्य को अत्यधिक हानिप्रद है। पाचन-संस्थान पर इसका बहुत बुरा असर होता है। चाय-पान के समय इस टेनिन के प्रमाण और दूषित प्रभाव को न्यून करने के लिए जो उपाय काम मे लिए जाते है, उनमे से एक यह है कि उबलते हुए गरम पानी को आग से नीचे उतार कर चाय-पत्र डाल कर अधिक से अधिक ५ मिनिट तक ढाक कर छान लें। पत्ती को पानी मे अधिक देर तक उबालने से टेनिन का अंश अधिक आ जाता है। तथा चाय अत्यधिक स्वास्थ्य-नाशक हो जाती है। जिससे सग्रहणी, कोष्ठबद्धता आदि भयंकर रोगो का शिकार होना पडता है।

दूसरी स्मरणीय बात यह है कि शीत प्रधान देशों मे चाय जन्य उक्त कृत्रिम ऊष्मा अधिकाश मे लाभदायक होती है तथापि वहा के लोग भी इसके सेवन से होने वाली विकृतियो से बचने के लिए साथ मे अधिक मात्रा मे असली मक्खन, डबलरोट आदि पुष्टिदायक, तरावट पहुँचाने वाले द्रव्यो का व्यवहार करते है। इसके विपरीत उष्ण प्रधान भारत देश मे केवल शीत ऋतु मे ही नही, अपितु बारहो मास सदैव कोरी चाय ही पी जाती है। नाम मात्र को थोडा दूध (वह भी नकली पाउडर वाला)। किंचित् शर्करा या गुड मिलाकर लिया जाता है। इस प्रकार की चाय पीने मे आन्त्र-क्रिया मे क्षोभ होकर आमाशय मे विकृति एव पाचन-क्रिया का विनाश होता है। इतना ही नही इस प्रकार की चाय का अत्यधिक सेवन, भार की वृद्धि, मस्तिष्क-दौर्बल्य, स्वप्न-दोष, शुक्रतारल्य, पुंस्त्व शक्ति-नाश, आदि भयंकर विकारो को पैदा कर देता है।

ऊपर भारतीय एव पाश्चात्य वैज्ञानिको के मत का जो प्रतिपादन किया गया उसका तथा अन्य विद्वानो के अनुभवपूर्ण कथन का निष्कर्ष यह है कि—

[१] श्रम-परिहारार्थ इसे थोडी मात्रा मे ही पीना ठीक होता है। अधिक पीने से हृदय, मस्तिष्क, वातनाडी या पाचन-संस्थान की क्रिया मे विकृति हो जाती है। [२] यद्यपि यह पाचन व दीपन है, हाइड्रो-कार्बन या हाइड्रोजन युक्त आहार को पचाती है। तथापि टेनिन के कारण यह मलावष्टम्भक है। अधिक एव बार-बार इसके सेवन से पाचन-क्रिया मे मन्दता होती है। [३] इसके अधिक सेवन से हृदय की धड़कन बढकर ज्ञान-तन्तुओ मे क्षोभ, तथा उनमे ही किसी स्थान पर तीव्रशूल [न्यूरलजिया], चक्कर, आना [व्हर्टिगो] एवं आक्षेप जैसे लक्षण उत्पन्न होते है। [४] इसमे जो कैफिन द्रव्य है [यद्यपि यह काफी की अपेक्षा इसमे कम होता है] वह मूत्रल, हृदयोत्तेजक एवं रक्ताभिसरण मे भी उत्तेजना निर्माण करने वाला है। तथा वृक्क और मूत्रनलिकाओ को निर्बल कर देता है। [५] दाह, उन्माद, निद्रानाश, अम्लपित्त, अतिसार, हिस्टीरिया, प्रवाहिका, अर्श, धडकन, शुक्रतारल्य, अग्निमाद्य, शुष्क कास, वृक्कप्रदाह इन रोगो से पीडितो को तथा बालको को चाय नही देनी चाहिए। बालको को चाय पिलाना, शराब पिलाने से भी अधिक हानिकर है। [६] काफी की अपेक्षा चाय मे टेनिन नामक कषायाम्ल की अधिकता होने से वह विशेषत आन्त्र-स्रोतसो को अवरुद्ध करता एव अवष्टम्भकारक है।[1] [७] वास्तव मे चाय का कुछ

[1] आधुनिक जापानी वैज्ञानिकों ने चाय के इस टेनिन के एक विशिष्ट गुण का नूतन आविष्करण किया है। उनका कथन है कि परमाणु बम के विस्फोट से होने वाले भयंकर दुष्परिणामो को यह अधिकाश में दूर कर

भी शरीर पोषणावश्यक मूल्य [Caloric value] नही है। चाय-पान यह एक साधारण संस्कारित जल-पान है। इसका उपयोग एक पेय औषधि स्वरूप मे ही इस प्रकार करना ठीक होता है।

चाय-पत्र या चूर्ण २ से ३ माशे तक किसी वस्त्राच्छादित उत्तम पात्र के ऊपर वस्त्र पर रख, उस पर २० तोला तक उबलता हुआ पानी, २॥ तोला दूध और १ तो. शक्कर का मिश्रण डाल कर सब को छान ले। अथवा उक्त जल के डालने पर ४-५ मिनट तक ढाक कर फिर उसमे दूध और शक्कर मिलावे।

ध्यान रहे दूध और शक्कर के अधिक मिलाने से कफविकार अग्निमांद्य एवं मलावष्टम्भ प्राय. होता है।

(क) पित्त-प्रकृति वालो को, जिन्हे उष्णता सहन नही होती उन्हे यदि चाय लेनी भी हो, तो उक्त प्रमाण से कुछ अधिक दुग्ध, शर्करा मिलाकर, चाय को ठडी करके या किंचित् उष्ण रहते हुए कुछ नाश्ता करने के बाद, साथ ही स्निग्ध खाद्य का सेवन करते हुए पान करना चाहिए। वातप्रकृति विशिष्ट व्यक्ति को तो इसका सेवन करना ही उचित नही है। किन्तु अपरिहार्य दशा मे दुग्ध और १ तो. तक घृत मिलाकर लेना ठीक होता है। कफ विशिष्ट व्यक्तियो को तथा मन्दाग्नि वालो को तो इस मे दुग्ध और शक्कर मिलाना ही ठीक नही है। यदि कुछ मिलाना ही हो, तो अर्ध कप चाय मे किंचित् अजवाइन या सोठ तथा किंचित् सेंधा और काला नमक मिला कर लेना हितकर है।

(ख) धूप मे जाकर आने पर चाय-पान करना अहितकर है। रात्रि मे सोते समय चाय-पान से निद्रानाश होना सभव है। रात्रि के समय कार्य करने वालो को या जागरण करने वालो को चाय-पान करना ही हो, तो केवल १ या २ बार ४ या ६ घन्टे के अन्तर से, उस मे थोडा घृत मिला कर लेना ठीक होता है, अन्यथा मलावष्टम्भ हो जाया करता है। जहा तक हो सके होटेल का चाय-पान करना टालना चाहिये। शारीरिक कष्ट करने वालो को क्षुधा-शाति के लिये चाय-पान करना मानो वात-रोगो को आमत्रण देना है।

साराश यह है कि चाय का उपयोग एक संस्कारित पेय-रूप औषधि की दृष्टि से ही करना ठीक होता है। यह रुचिकर, स्वादिष्ट एव कम खर्चीला पेय होते हुए भी नित्य सेवनीय नही है। बीमारी की दशा मे भी पित्त-विकार या वात-विकार हो तो जहा तक हो सके चाय-पान से बचना चाहिये। कफ-विकार में कोरी चाय (दुग्ध शर्करा रहित) लेना ठीक होता है।

चाय के कुछ विशेष प्रयोग—

(१) ज्वर एव प्रतिश्याय मे—ज्वरावस्था मे उक्त बातो का ध्यान रखते हुए इसके सेवन से मल-मूत्र की शुद्धि होकर, उदर का भारीपन दूर होता, तथा स्वेद द्वारा बहुत कुछ ज्वर का दूषिताश बाहर निकल जाता है। शरीर की उत्तेजना, व उत्ताप मे कमी होती है।

इसी प्रकार शीत के कारण या वर्षा मे भीगने से जो प्रतिश्याय हो, शरीर की उष्णता कम हो गई हो, कम्प हो, कठ मे भारीपन हो, तो इसका सेवन हितकर है।

(२) श्रम या थकावट की दशा मे इसे थोडी मात्रा मे लेने से लाभ होता है। अधिक मात्रा या बार-बार लेने से जो हानि होती है उसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

(३) अग्निदग्ध पर—आग से, अति उष्ण जल से, गरम तैल आदि या तेजाब से शरीर का कोई स्थान झुलस गया हो, तो चाय मिश्रित उबलते हुए पानी या क्वाथ मे, कपडे की पट्टी भिगो कर उस स्थान पर रखने तथा बार-बार उस पर उसी क्वाथ को थोड़ा २ टपकाते रहने से (इस प्रकार २-३ घन्टे तक इस क्रिया के सहन पूर्वक धीरज के साथ करते रहने से) फफोले नही पडने पाते तथा त्वचा मे दाग आदि कोई विकार भी नही होनेपाता।

(४) नेत्राभिष्यन्द पर—चाय के फाट की कुछ बून्दे प्रात.-साय नेत्रो मे डालते रहने से २-३ दिन में पूर्ण लाभ हो जाता है।

देता है। किन्तु इस आविष्कार की अभी पूर्णतया पुष्टि नही हुई है। यदि यह बात ठीक हो तो आधुनिक परमाणु बमों के काल मे इससे बहुत कुछ लाभ होने की सभावना है।

(५) ग्रन्थि तथा अर्श पर––चाय-पत्र को पकाकर पी सकर लेप करने से ग्रन्थि या गोथ बिखर जाती है, तथा अर्श की वेदना दूर होती है।

(६) कंठ-क्षत पर–आमाशय की विकृति से व उष्ण दाहक द्रव्य के अति सेवन से कंठ मे क्षत हो तो, चाय के क्वाथ से, दिन मे २-३ बार कुल्ले (गण्डूप-धारण) करते रहने से क्षत का रोपण हो जाता है। यदि नाक, आख या दातों से पूय निकल कर कंठ मे क्षत हुआ हो, या उपदश के उपद्रव स्वरूप तालुव्रण हो या पूयमय कफ के गले मे रुकने से क्षत हुआ हो, तो मूल रोग का भी उपचार करना चाहिये। (गावो० औ० र०)

नोट––शीत, वर्षा ऋतु में चाय-सेवन से विशेष हानि नही होती, किंतु शरद और ग्रीष्म काल में अधिक हानि होती है। अनिद्रा, रूक्षता आदि विकारों को पैदा कर देती है। हानि निवारणार्थ दूध और शर्करा का प्रयोग करें। उष्ण प्रकृति वालों को खाली पेट चाय पीने से, मुख की खुश्की, शरीर में खुजली, श्वास, शुष्क-कास, अग्निमांद्य आदि विकार होते है। हानि-निवारणार्थ सुपारी पाक का सेवन बकरी के दूध के साथ करें। यदि प्रकृति शीत प्रधान हो, तो कस्तूरी अथवा दालचीनी, सोंठ आदि का प्रयोग करें।

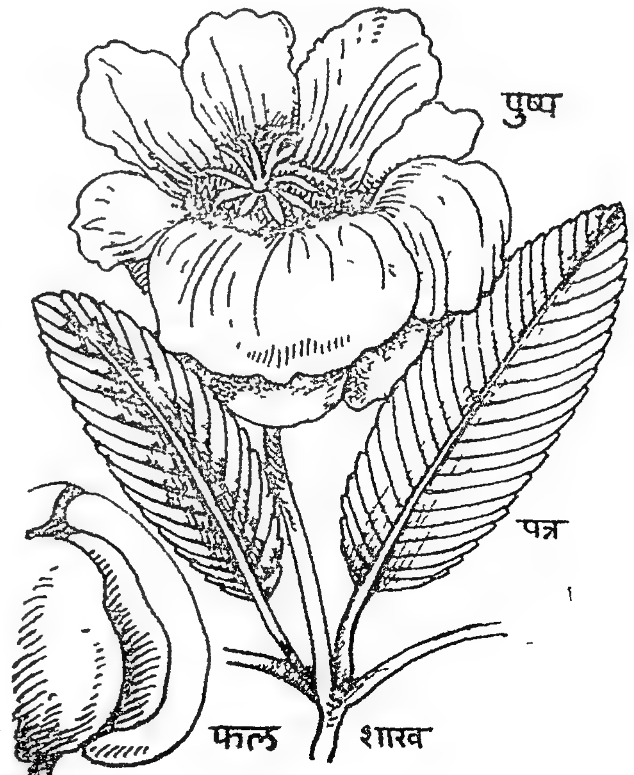
चायतृण=तृणचाह (सुगंधी तृण)

चालटा (Dillenia Indica)



यह अपने ही भव्य-कुल[1] (Dilleniaceae) का प्रमुख, सदैव हरित, सुन्दर एक मध्यमाकार का वृक्ष है। छाल–धूसरवर्ण की, दालचीनी जैसी, पत्र–सघन, १०-१२ इंच लम्बे, आरे जैसे कटे हुए तीक्ष्ण दतुरकिनारों से युक्त, पुष्प–ग्रीष्म काल मे, श्वेत वर्ण के, ६-७ इंच लम्बे गोल, सुगन्धित, सुन्दर भव्य (इसी से संस्कृत मे शायद इसे भव्य कहते हैं), फल–शीतकाल मे, गोलाकार, छोटे नारियल जैसे, कठोर छिलका वाले, लगभग ५-६ इंच व्यास के, नतोदर पुट-पत्रो से ढके हुए या पुष्प-बाह्य कोष के ही अधिकाश भाग से आच्छादित, अनेक रोमश बीज युक्त होते है।

ये वृक्ष दक्षिण भारत, कोंकण आदि मे, तथा बंगाल के जंगलों और बागो मे और बिहार, सहारनपुर व देहरादून के बागो मे लगाये हुए, आसाम, नेपाल और



[1] इस कुल के वृक्ष--सपुष्प, द्विबीज वर्ग, विभक्त दल, अधःस्थ बीजकोष, पत्र एकान्तर, सादे, बड़े, प्राय दंतुर, चर्म-सदृश, पुष्प-बाह्य कोष के दल ५, पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल ४ से ५ पूर्वपाती, परागकोष अंतर्मुख, पुंकेशर संख्या अनियमित। (द्र० गु० वि०) इस कुल में यही मुख्य वृक्ष है। दूसरा १ करमल (कांगल) नाम का है। किंतु वह अप्रख्यात है।

सीलोन के जगलों और बागों मे पाये जाते हैं।

नोट—कुछ लोग कमरख (कर्मरंग) को भव्य फल मानते हैं। किन्तु वास्तव में चरक व सुश्रुत का भव्य फल यही चालता या चिकता है। वनौषधि-दर्शिका के रचयिता श्री ठा० बलवंतसिह जी इसे ही भव्य फल मानते हैं। चरक व सुश्रुत के सूत्र स्थानों में इसी के गुणधर्म कहे गये हैं।

नाम-

सं०--भव्य। हि०--चालटा, चिलता, रामफा, गिरनार। म०--करम्बल, मोठा करमल। गु०--कारमबेल, ओटफल। बं०--चालता। ले०--डिल्लेनिया इंडिका, डि० स्पेसियोसा [D Speciosa]।

रा० सघटन—फल मे टेनिन, ग्लुकोज और मेलिक एसिड (Malic acid), प्राय ये ही द्रव्य छाल मे भी होते है। बीजों मे पिच्छिल द्रव्य अधिक होता है।

प्रयोज्याग—छाल, फल और पत्र।

गुणधर्म और प्रयोग—

कच्चा फल—कषाय, तिक्त, पका फल—गुरु, मधुर, अम्ल, कषाय, विपाक मे अम्ल, शीत वीर्य, वातशामक, कफपित्त कारक, रोचन, विष्टंभी, ग्राही, (फल के अधिक खाने से प्रथम विष्टंभ होकर, अतिसार होने की सभावना है) हृद्य, कफनि सारक, ज्वरघ्न, मुख-शोधक एव मुखरोग, अरुचि, तृष्णा, हृद्दौर्बल्य मे उपयोगी है।

पैत्तिक विकारों तथा ज्वर मे—फल के गूदे मे पानी शक्कर मिला पानक बनाकर पिलाते है। कास मे—फूल का स्वरस देते हैं, (कफ पतला होकर शीघ्र निकल जाता है।) ज्वर मे—इसका पानक या रस देने से ज्वर की शाति होती व तृष्णा आदि उपद्रवों का शमन होता है।

छाल—ग्राही संकोचन है। बाल-रोग पर—किसी-किसी बालक के पैदा होते ही, गर्भान्तर्गत ऊष्मा के कारण त्वचा झुलसी हुई होती है। ऐसी दशा मे—इसकी छाल का रस, चमेली-पत्र-रस, श्वेत कत्था चूर्ण २-२ तो० शंख-जीरा (संग जराहत), चूर्ण १ तो०, सिंदूर व मुलहठी सत (रूबेसूस) ६-६ मा० तथा गाय का मक्खन ८ तो० सबको एकत्र घोटकर मलहम बना रुई की फुरेरी से बालक के शरीर पर दिन मे २ बार, ३ दिर बराबर लगावे, चौथे दिन दुग्ध और घृत का मिश्रण शरीर पर लगा सुखोष्ण जल से स्नान करावे पूर्ण लाभ होता है (व० गुणादर्श)

पैरों मे ऐंठन या जकडन हो, तो छाल के रस मे काली मिर्च चूर्ण एकत्र महीन खरल कर लेप करे, तथा इसके पत्तो को ऊपर से बाध दे। एक या दो बार मे ही लाभ होता है। अतिसार मे छाल को दही मे पीसकर देवें। (व० गु०)

पत्र-ग्राही व सकोचक है। पत्र-रस को अतिसार मे दही के साथ सेवन कराते है। प्राय रक्तातिसार मे शीघ्र लाभ होता है।

चालमोगरा नं० १ (*HYDNOCARPUS WIGHTIANA*)

यह अपने तुवरक कुल[1] (Tlacourtiaceae) का एक प्रमुख, सदा हरा भरा २०-३० फुट ऊंचा वृक्ष होता है। छाल-भूरे रंग की, कडी, मोटी, पत्र—सरीफा [सीता फल] पत्र जैसे, किंतु कुछ लम्बे ४-६ इ च लम्बे, ३-४

[1] इस तुवरक या कटुकपित्थ कुल का लेटिन नाम डा० देसाई ने अपने औषधिसंग्रह में बिक्सिबी (Bixinae) दिया है। शायद यह इस कुल का प्राचीन नाम हो। इसका नूतन नाम उक्त फ्लेकोर्टियासी है।

इस कुल के वृक्ष—सपुष्प, द्विबीजपर्ण, विभक्तदल अधस्थबीजकोष, पत्र एकान्तर, पुष्प वाह्य एवं आभ्यतर कोष के दल ४ से ५, पु केशर ५ होते है। इस कुल मे तुवरक के ही लगभग २६ जातियों के वृक्ष है, जिनमें प्रमुख प्रस्तुत प्रसग के नं० १ तथा नं० २ और ३ हैं। नं०२ और ३ का वर्णन आगे के प्रकरणों में देखिये। इनके अतिरिक्त

इच चौडे, चिकने, चमकीले, लम्बी नोकवाले, दन्तुर किनारे वाले, कडे पुष्प-प्राय वसन्तऋतु मे, गुच्छो मे या एकाकी श्वेत वर्ण के, पुष्प वाह्य एवं आभ्यन्तर-कोष के दल ५-५, फल—छोटे सेव जैसे, गोल, ऊपरी छिलका कडा, ऊबड-खाबड, कैथ फल जैसा, वृन्त-कैथ फल के वृन्त जैसा ही मोटा, बीज—फल के भीतर के श्वेत गूदे के बीच मे कोनयुक्त, पीताभ अनेक बीज, कुछ बादाम बीज जैसे ही, मृदुरोमश, होते हे।

[२] बीज तथा उनका तेल कुष्ठादि रोगो पर विशेष रूप से व्यवहृत होता है। सुश्रुतोक्त तुवरक संभवत यही है। जिसका प्रस्तुत प्रसग मे वर्णन किया जाता है। इसके बाजारु तैल मे बहुत मिलावटें होती है, अत. यह तैल पहले के वैद्यगण घर मे ही निकाल लिया करते थे। आगे इसकी विधि देखिये।

कहा जाता है कि इसके वृक्ष मूलत. फिलीपाईन-द्वीपकल्पो के निवासी हैं, किंतु भारत मे तो सुश्रुत के समय से या उनके भी पहले से दक्षिणी पश्चिमी घाटो की पहाड़ियों पर तथा कोकण, मलावार, गोवा, ट्रावनकोर के पहाड़ी जंगलो मे प्रचुरता से पाये जाते हैं। बंगाल, देहरादून आदि के बागों मे भी ये लगाये हुए देखे जाते हैं।

नाम—

स०—तुवरक (रोगों को नष्ट करने वाला), कटु कपित्थ, कुष्ठवैरी। हि०—चालमोगरा, कड़वा कैथ। म०—कडु कवठ, जंगली बदाम। ब०-चौल मुगरा। अं०-जंगली आलमण्ड (Jangli almond)। ले०—हिडनोकार्पस वाइटियाना।

रासायनिक-संगठन—

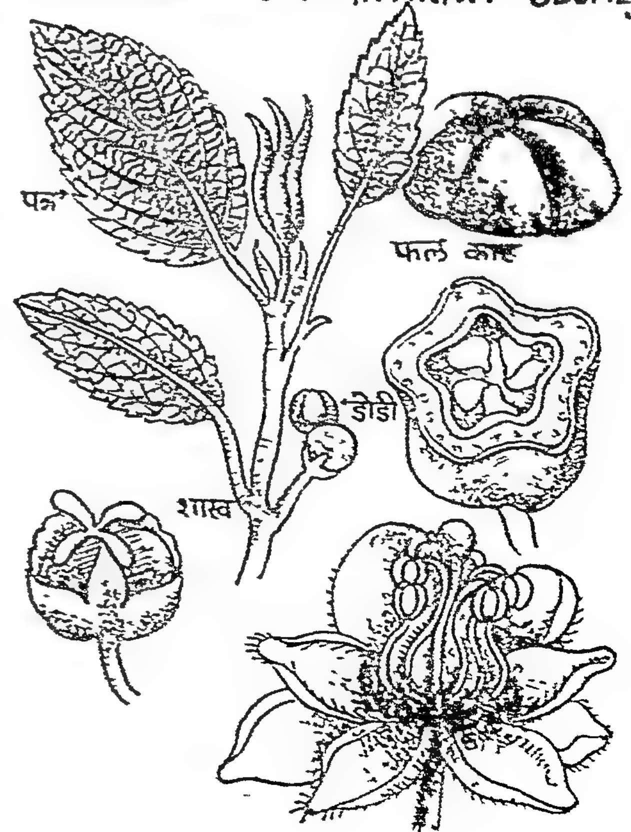
बीजो मे लगभग ४४ प्र. श. स्थिर तैल, जिसमे हिड्नोकार्पिक एवं चालमोगरिक (Hydnocarpic and Chaulmugric acids) क्षारतत्व तथा अल्पमात्रा मे

और भी कुछ नगण्य वृक्ष इस कुल में हैं।

संस्कृत में इसका तुवरक (तवीति हिनस्ति रोगान् इति) नाम महर्षि सुश्रुत का दिया हुआ है हिन्दी व अंग्रेजी में चालमोगरा नाम शायद बंगला के चौलमुगरा का ही रुपान्तर है। चरक में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। सुश्रुत में इसका संक्षिप्त वर्णन यथा कुष्ठ, मधुमेह एवं नेत्र-विकारों पर स्पष्ट प्रयोगात्मक वर्णन मिलता है। सुश्रुत के पश्चात् हजारों वर्षो तक, परिस्थितवश औषधि-अन्वेषण की परम्परा टूट जाने से, अन्यान्य कई महत्वपूर्ण बूटियों के साथ ही इसका भी ज्ञान विस्मृत एवं विलुप्त सा होगया। इसी लिए प्रमुख निघण्टु ग्रन्थों में इसका कोई वर्णन नहीं। बौद्धकाल में जब बौद्धधर्म का एशिया खड में चारों ओर दौर-दौराया, ब्रह्मदेश के बौद्धों को इस बूटी का पता लगा, तथा उन्होंने इसके विषय में अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ में उल्लेख किया। पश्चात् पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा उक्त बौद्ध-इतिहास ग्रंथ के आधार पर अनुसन्धान एवं प्रयोगात्मक विश्लेषण कर इस बूटी को विशेष प्रकाश में लाया गया है।

[२] कुछ लोग इसके तथा नं० २ व ३ वाले चालमोगरा बीजों को भ्रमवश पपीता कहते हैं। वास्तव में पपीता इनसे भिन्न कुचले की जाति का है। पपीता प्रकरण देखें।

चालमोगरा
HYDNOCARPUS WIGHTIANA BLUME



पामिटिक एसिड (Palmitic acid) पाया जाता है।

इसका यह तेल अन्य चालमोगरा (नं० २ और ३) के तैलो की अपेक्षा श्रेष्ठ माना जाता है, कुष्ठ के लिये यह अप्रतिम विशिष्ट प्रभावशाली (Specific) है। इसके बीज, तेल-निष्कासनार्थ सरलता से ताजे प्राप्त किये जा सकते है। अन्य जाति के वृक्ष प्रायः घने जंगलो मे होने से उनके ताजे बीज सहज प्राप्त नहीं होते। इसके श्रेष्ठत्व का दूसरा कारण यह भी है कि इसके तैल मे समगतिशील शक्ति [Rotation value] अन्य जाति के वृक्षों के तेलो की अपेक्षा ५-५ डिग्री अधिक उच्चकोटि की है। (नाडकर्णी)

प्रयोज्याङ्ग—तैल और बीज ।

गुणधर्म व प्रयोग-

इसका तेल लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, तिक्त, कटु, कषाय, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, कफवात-शामक, वामक, रेचक, रक्तप्रसादन, वेदना-स्थापन, लेखन, व्रणशोधन-रोपण, तथा कुष्ठ, कण्डू आदि चर्मरोग, आमवात, वातरक्त, उदर-रोग, नाडी—शूल, प्रमेह [मधुमेह], कृमि आदि नाशक है।

तैल-संग्रह एवं सेवन-विधि--

वृक्ष के फल पकने पर आते ही उन्हे वृक्षो से उतार ले, अन्यथा जंगली जानवर फलों की गिरी को चट कर जाते तथा नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। फिर उन फलो को धान के तुष मे ७ ८ दिन दबा रक्खे। सब फल अच्छी तरह पक जाने पर अन्दर की मीगी निकालकर शुष्ककर उनके ऊपर का पतला छिलका दूर कर गिरियो को कोल्हू मे पेरवाकर तैल निकालें। ८ सेर बीजो मे लगभग १ सेर से कुछ अधिक तेल निकलता है । गोवा की ओर ग्रामीण लोगों की यही प्रणाली है। यह तेल हलके पीले रग का होता है। जहा कोल्हू सुलभ नही होता, वहा गिरी को ओखली मे कूटकर पानी मिलाकर आगपर रख उबालने से जो तैल पानी के ऊपर निथर आता है, उसे हाथो से या रूई से धीरे धीरे उतार कर, पुन. धीमी आच पर रख जल रहित उस शुद्ध तेल को शीशी मे भर लिया जाता है। फिर इसकी शुद्धि और प्रभाव वर्धनार्थ इसी शीशी को अच्छी तरह चारो ओर से सम्पुटकर शुष्क गोवर या उपलो को ढेर मे १५ दिन तक दबा कर रखदे। फिर निकाल कर औषधि-व्यवहार मे लेवे।

अथवा उक्त तैल को, उपलो मे दबाने के पूर्व, तीन गुणा खदिर-क्वाथ मे मिला, तैल—पाक—विधि से तैल सिद्ध कर, फिर उसे शीशी में भर सम्पुट कर उपलो के ढेर मे १५ दिन दबा कर काम मे लावे ।

बूटी-दर्पण के एक लेख मे लिखा है, कि जो इसके शुद्ध तैल-बीज को मगाना चाहे 'इरना कुलम ट्रेडिंग कम्पनी, इरना कुलम (मलाबार)' इस पते से मगा सकते है। इसके अभाव मे हिंगोट (इगन, इगुदी) के तेल का भी सफल व्यवहार किया जाता है ।

चालमोगरा नं. २ और ३ के बीजो की तैल-निष्कासन-विधि इस प्रकार है-फलो को तोड़कर, मीग को अलग कर, धूप मे शुष्क कर, जौकुट कर केन्विस की थैलियो मे भर या टाट मे बाधकर, कल मे या साचो मे दबाकर तैल निकालते है। इसमे जो प्रथम तैल निकलता है वह निर्मल, शुष्क घास के जैसे रग वाला होता है' तथा पीछे का निकला हुआ तैल मटमैला होता है। इस प्रकार ४-५ मन बीजों से १ मन तैल निकलता है (बू. द) इस तैल का विशेष भेद नं २ वडके प्रकार मे देखे।

चालमोगरा नं० १ के तैल का प्रयोग—

क्षयजन्तुजन्य गडमाला, नाड़ीव्रण, अस्थि—व्रण आदि पर इस तैल का उदर-सेवन तथा वाह्य मर्दन कराते हैं। इसी प्रकार गृध्रसी आदि वात रोगो मे भी इसका आन्तर और वाह्य सेवन कराते है। आमवात, वातरक्त या सुजाक जन्य सधिवेदना, साधे रह जाना या मुड़ जाना आदि पर इसकी मालिश विशेष लाभदायक है। फुफ्फुस—विकार विशेषत जीर्ण श्वासनलिका-दाह या पूयात्मक कफ-कास मे, इसके सेवन से दुर्गन्ध दूर होकर धीरे २ कफ कम हो जाता है। इसका आभ्यतरिक प्रयोग बलकारक, तथा वाह्य प्रयोग उत्तेजक होता है।

सुश्रुत मे, इसके प्रयोग द्वारा मधुमेह तथा विशेपत

कुष्ठ मे सफल उपयोग देख कर डा मोअर्ट (Dr mourt) ने सन् १५५४ मे इसका प्रवेश यूरोप मे किया। तब से आज तक पाश्चात्य औषधि-सभार की यह कुष्ठ-नाशक अधिकृत (Official) प्रधान औषध रही है।

(१) सुश्रुतोक्त सेवन-विधि साथ ही साथ आधुनिक सेवन-विधि सक्षेप मे इस प्रकार है—(रोगी के वलावलानुसार) स्नेहन, स्वेदनादि (साधारण पच कर्म) द्वारा रोगी की शुद्धि कर पेया, विलेपी के सेवन से लगभग १५ दिन बाद वल की प्राप्ति होने पर, शुक्ल पक्ष के शुभदिन प्रात काल. तैल को मत्र[1] से अभिमन्त्रित कर, १ तोला की मात्रा मे (प्रथम दिन ५ बू द की मात्रा) प्रात. सायं, गौ के ताजे मक्खन या दूध की मलाई के साथ देवे। फिर प्रति चौथे दिन ५-५ बू द बढाते हुए २०० बू द तक, या सहन हो वहा तक बढावे। मात्रा अधिक हो जाने से उबकाई, वमन, रेचन आदि होने लगते हैं, ऐसा हो, तो मात्रा घटादे। प्रात खाली पेट न दे। रोगी को पथ्यान्न या चावल दूध खिलाकर १५ मिनट बाद इसे देवे। वमन, विरेचन द्वारा (यह वमन विरेचन तब ही होते है, जब कि सुश्रुत की मात्रा मे यह देवे) रोगी के दोष एक साथ बाहर निकलते हैं—फिर रोगी को प्रतिदिन सायकाल स्नेह और लवण रहित (या अल्प स्नेह लवण-युक्त) शीतल यवागू पिलावे। इस विधि से ५ दिन (या १ मास तक ४-४ दिन के अन्तर से वृद्धि-ह्रास क्रम से) प्रात सेवन करे। इस प्रकार फिर १५ दिन बन्द रख कर पुन सेवन करे इस प्रकार एक (या दो) मास तक आलस्य रहित, क्रोधादिका त्याग कर सयम पूर्वक इसके सेवन तथा मू ग के यूष के साथ चावल का भोजन करने से (प्रात साय केवल दूध, दोपहर को मोसम्वी, मीठा अनार, सेव, केला, मीठा अ गूर आदि मीठे फल ले) (दूध और फलो के बीच ३ घन्टे का या अधिक का अन्तर रखखें। यदि यह पथ्य पालन न हो सके, तो पुराने चावल का भात, तथा जौ या गेंहू की रोटी दूध के साथ लेवें। अम्ल, लवण और चरपरे पदार्थ बिल्कुल न ले।) रोगी शीघ्र ही कुष्ठ से मुक्त हो जाता है। (रोग की विशेष दशा मे कभी २ इसका सेवन ६ मास या कुछ अधिक दिनों तक पथ्य-पालन पूर्वक, कराना आवश्यक होता है) साथ ही साथ इस तैल की मालिश करते (या इस तैल मे कपडा भिगो कर व्रणो पर बाधते) रहना चाहिए। इससे व्रण भी शीघ्र ही भर जाते है। जिस कुष्ठ-रोगी का स्वर-भेद हो, नेत्र लाल हो, मास गल गया हो, कीडे पड गये हो वह भी इस प्रयोग से सुधर जाता है। इस प्रकार यह प्रभावशाली तुवरक कुष्ठ एव प्रमेह को नष्ट करने मे उत्कृष्टतम है।

नोट—ध्यान रहे--इसका प्रयोग अत्यधिक मात्रा में करने से-रक्तकणों का विनाश, वृक्कों में उग्रता, रक्तप्रमेह, नेत्र-प्रदाह, क्षुधानाश, छाती में वेदना, उदरशूल, ज्वर, त्वचा पर रक्त-विकार के ददोरे, संधि-प्रदाह, वृषणप्रदाह, प्रवल वमन, विरेचन आदि लक्षण होते हैं। अतः इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिए।

कुष्ठ पर—

(१) आधुनिक प्रयोग, कर्नल डॉ० जी० डी० वर्डवुड के अनुसार—इसका तैल ५ बूंद, उत्तम गोंद का पानी व शर्बत ४-४ मा० तथा स्वच्छ जल १। तो० इस दो तोले मिश्रण की १ मात्रा, नित्य भोजन के बाद पीवें। धीरे-धीरे मात्रा बढाते जावे।

(२) इसका तैल ५ बू द, काडलिवर आइल ३० बूंद, गोद का पानी ४ मा० और स्वच्छ जल २।। तो० एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) दिन मे ३ बार देवें।

(४) बाह्य प्रयोग—इसका तैल ४ मा० तथा सादा वैसालिन २।। तो० एकत्र फेंट कर, कोढ-खाज पर लगाया करें। अथवा—इस तैल मे समभाग नीम का तैल मिला लगाते रहे।

(५) इ जेक्शन—इसका हाइपोडर्मिक (मासपेशियो मे) इ जेक्शन विशेषत. मद्यार्क लवण रूप से और अम्ल

---

[1] मज्जसार महावीर्य सर्वान् धातून् विशोधय। शंखचक्र गदा पाणि स्त्वामाज्ञापयते ऽच्युतः॥ अर्थात् हे प्रभावशाली मज्जसार! सभीधातुओं को शुद्ध करो। शख,चक्र व गदा को हाथों मे धारण करने वाले अच्युत भगवान तुम्हें आज्ञा देते है। उनकी आज्ञा का पालन करो। सुश्रु त'चि स्थान अ.१३

रूप (Ethylesters Hydnocarpic and Chaulmogric acids) से होता है। ये कम प्रदाहक होते हैं। किन्तु इनकी भी मात्रा अधिक होने या प्रकृति-विरुद्ध होने पर अधिक वेदना, स्थानिक व्रण, समीप की लसिका ग्रन्थियों का प्रदाह एव चक्कर आना, ज्वर, अनिद्रा आदि उपद्रव होते है।

नोट-ध्यान रहे, यह तैल सांग्राही होता है। अत. इसके सेवन काल मे रोगी के मल विसर्जन मे रुकावट न हो इसका ध्यान रखना आवश्यक है। अन्यथा क्षुधामांद्य एवं तज्जन्य अन्य विकार होने की सम्भावना है। अतः अग्निमांद्य वाले रोगी को इस की मात्रा प्रथम १-२ बूंद से ही प्रारम्भ करना ठीक होता है।

यह तैल यक्ष्मा के कीटाणुओं का भी नाशक है। जो चाल मोगरा न० २ का तैल गाइनोकार्डिया आइल नाम से विकता है, वह यद्यपि इस तैल के अभाव मे प्रयोजित होता है, किन्तु उससे महाकुष्ठ मे विशेष लाभ नही होता।

(६) खसरा, खुजली, फोडा, फुन्सी आदि पर—इस तैल के साथ रेंडी तैल, गधक कपूर, सिंदूर और नीबू का रस मिला लगावें। अथवा—केवल सुहागे की खील के साथ खरल कर लगावे; अथवा—इसका तैल दो भाग, बावची तैल और चंदन तैल १-१ भाग मिला लगाने से भी विशेष लाभ होता है।

साथ ही इस तैल का १ से ५ बूंद तक दूध या केले के साथ सेवन भी कराना ठीक होता है।

(७) सिर के गज पर--विशेषत छोटे बच्चों के सिर पर, उष्णता के कारण जो फोडे हो जाते हैं, उस पर भी—इसके तैल मे चूने का पानी मिला (लकडी से हिलाते रहने पर जब मक्खन जैसा श्वेत हो जाय तब) नित्य दिन मे ४ बार लगाते रहने से, ३ दिन मे लाभ हो जाता है।

बीज—

(८) उपदश के चट्टों पर—इसके बीजों के साथ समभाग मुगवन (जगली मूंग) के बीजों को जौकुट कर, भागरा के रस मे ३ दिन भीगने दे। चौथे दिन महीन पीस, उसमे थोडा चन्दन तैल या नारियल तैल या आवला तैल मिला, उवटन जैसे मर्दन करे, फिर ३-४ घटे बाद स्नान करे। शीघ्र ही लाभ होता है।

(व० गु०)

(९) कुष्ठ पर--बीजों की मीगी १ तो० और शुद्ध कुचला १ मा० दोनों को खूब खरल कर इसमे अमलतास, नीम व सतौना (सप्तपर्ण) के रस की भावनाए देकर, ४-४ रत्ती की गोलिया बना, प्रातः साय जल के साथ सेवन करने से कुष्ठ, वातरक्त, शीतपित्त आदि मे लाभ होता है।

अथवा—इसके बीजों की मीगी का चूर्ण मात्रा—२ रत्ती दिन मे ३ बार, घृत और मधु (असमान) मे मिलाकर या केवल जल के साथ सेवन कराते है।

(१०) नेत्र-रोगों पर—बीजों की मीगी को खरल कर, उसमे इसी के तैल की कुछ बून्दे मिला पुन. अच्छी तरह घोट कर, मटकी मे बन्द कर, शराव सम्पुट कर कडों की आच मे रख दें। फिर अन्दर की राख निकाल, उसमे समभाग काला सुरमा, और थोडा सेंधा नमक मिला, खरल कर रखले। इसके लगाते रहने से, आजने से, वर्त्म गलने का रोग, परवाल, नेत्रव्रण, श्वेत व नीला मोतियाबिन्दु, रतौंधी, तिमिर आदि मे लाभ होता है।

(११) मधुमेह पर—मीगी का चूर्ण, मात्रा २ माशे तक, दिन मे २ या ३ बार जल के साथ सेवन कराते है।

(१२) खसरा, खुजली आदि पर—बीजों को गोमूत्र मे पीस कर लगाते है।

चाल मोगरा नं. २ और ३

TARAKTOGENOS KURZII AND GYNOCARDIA ODORATA



चालमोगरा न.१ के ही कुल के ये दोनो मध्यम कदके सदा हरित वृक्ष हैं। छाल—चिकनी, चमकीली, कुछ

चालमोगरा नं. २
TARAKTOGENOS KURZII KING.



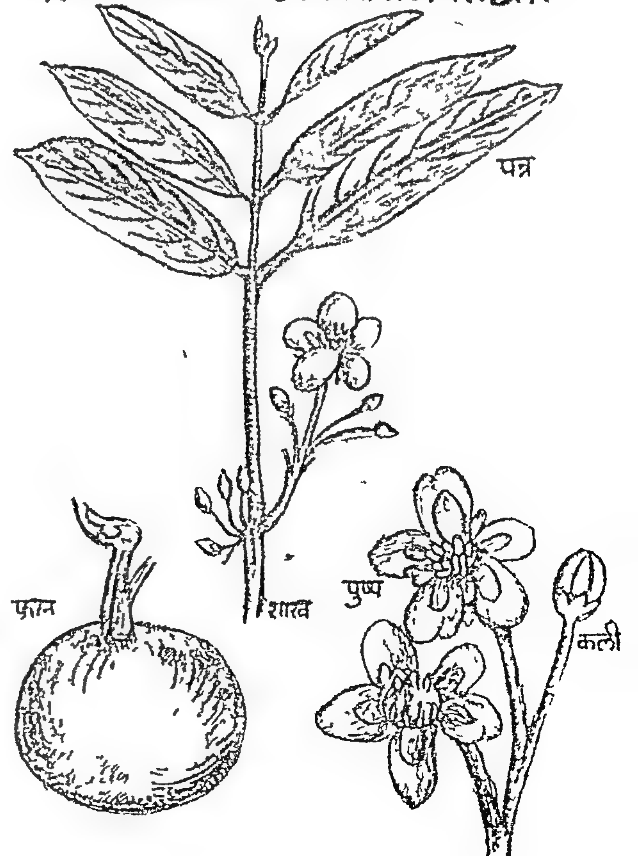
धसर वर्ण की, पत्र—सरलधार वाले, लगभग ६-१० इंच लम्बे, ३-४ इंच चौडे, भालाकार, निम्न भाग की शिरायें बहुत स्पष्ट, पुष्प-हलके पीले रग के सुगधित, फल—नारगी या वेल फल जैसे, गोल, ३-६ इंच व्यास के मटमैले रग के, फल का गूदा—ताजी दशा मे वाहर से काला, भीतर पीताभ-श्वेत, कुछ समय पर यह कृष्णाभ पीत, स्वाद और गध रहित हो जाता है। बीज[१]—गूदे के भीतर १-१॥ इंच लम्बे, मखमली मृदु-रोमश, फीके लाल या भूरे रग के किंचित् त्रिकोणाकार

१ कोई इन बीजों को पपीता कहते हैं। किन्तु पपीता इससे भिन्न कुचले की जाति का विषैला होता है। आगे यथास्थान पपीता का प्रकरण देखिये। इसे पहाडी पपीता कह सकते है।

तथा बीजो का छिलका पतला, भगुर (सहज ही मसलने से दूर होने वाला) (चालमोगरा न०१ बीजो का छिलका कडा, सहज मे दूर नही होता), व खाकी रग का होता है।

इन बीजो मे जो तेल निकाला जाता है उसे चाल-मोगरा–ग्यानोकार्डिया (Gynocardia oil) तेल कहते है। यह तैल थोडी ही शीत मे चर्बी जैसा जम जाता है। ग्रीष्म-काल मे यह तेल द्रवावस्था मे तथा शीत-काल मे सर्दी के अनुसार जमी हुई या कुछ द्रव अवस्था मे पीले रग का या भूरापन लिये हुए पीत वर्ण का तथा जमने पर श्वेत रग का होता है। इसमे एक प्रकार की विशिष्ट गध, विगडे हुए मक्खन जैसी होती व स्वाद मे किंचित् कटु होता है।

चालमोगरा नं. ३
GYNOCARDIA ODORATA R.BR.



नोट—(१) आधुनिक सल्फोन-समुदाय की औषधियों के आविष्कार के पूर्व, चालमोगरा नं० १ तथा प्रस्तुत प्रसंग के चालमोगरा नं० २ या ३ के तेल का प्रयोग पाश्चात्य वैद्यक में कुष्ठ आदि की विशिष्ट औषधि के रूप में किया जाता था। इनके सादे तेल (Crude oil) का व्यवहार स्थानिक बाह्य प्रयोगार्थ मालिश आदि के लिये, तथा सार्वदैहिक प्रभाव के लिए इन तैलों में एसिड (हिड्नोकार्पिक एसिड एवं चालमूग्रिक एसिड) के एथिल ईस्टर्स ही इंजेक्शन रूप में व्यवहृत किये जाते हैं। इंजेक्शन के लिए इसका ई. सी. सी. ओ. योग बहुत अच्छा है। इस योग का प्रारम्भ ० २५ मि. लि (या चौथाई सी. सी.) से किया जाता है। इंजेक्शन सप्ताह में दो बार दिए जाते हैं। प्रत्येक बार मात्रा चौथाई सी.सी से बढ़ाकर २ से ५ मि. लि. तक लाई जाती है। इस प्रकार ५-६ मास के चिकित्साक्रम में प्राय. सभी स्थानिक लक्षण नष्ट होकर रोगी सार्वदैहिक लाभ का अनुभव करता है। किन्तु आजकल कुष्ठ की चिकित्सा में प्रधान औषधि के रूप में तो सल्फोन्स का व्यवहार किया जाता है तथा उक्त तैलों का व्यवहार केवल सहायक औषधि के रूप में ही होता है। तथापि केवल सल्फोन्स के प्रयोगों से कुष्ठार्बुदों (Lepromate) एवं कुष्ठज गिल्टियों (Induratedareas) का विलयन नहीं होता। इसके लिए अब भी ये तैल विशिष्ट औषधि हैं। (पाश्चात्यमेटिरिया मेडिका)

(२) इन दोनों (न० २ और ३) के वृक्ष प्रायः एक ही स्थान में उत्तर पूर्व भारत के बंगाल, आसाम आदि प्रान्तों के घने जंगलों में पाये जाते हैं। अतः इन्हें उत्तर भारतीय तुवरक (चालमोगरा) तथा नं० १ के तुवरक को दक्षिण भारतीय कह सकते हैं।

इन दोनों के बीजों की तेल-निष्कासन-विधि नं० १ के प्रकरण में दे आये हैं।

नाम—

सं०—तुवरक, कुष्ठजित्। हि.—चालमोगरा, चालमुगरी, कलव। म.-पेटारकुडा। गु.—चोल मोगरा। बं०— चौलमुग्रा। अं०—Chaulmogra। ले०—टेरेक्ट्रो जेनस कर्जाई, हिड्नोकार्पस कर्जाई (Hydnocarpus Kurzi) गायनो कार्डिया ओडोरेटा।

रासायनिक संघटन—

न० १ के अनुसार--

गुणधर्म व प्रयोग—

न० १ के अनुसार--

चालता=चिलता।

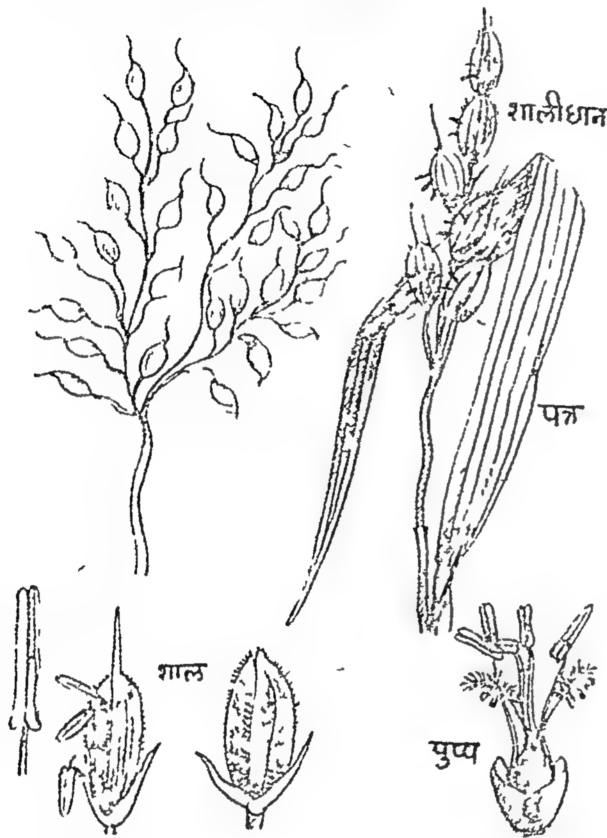
चावल (Oryza Sativa)

धान्यवर्ग एवं यवकुल (Gramineae) के इस धान्य या धान[1] की खेती भारत में प्राय सर्वत्र न्यूनाधिक प्रमाण में, विशेषत सजल एवं उष्ण प्रदेशों में होती है। बंगाल में उत्तम दर्जे का महीन चावल होता है, जो इंग्लैंड, यूरोप आदि देशों को अधिक निर्यात होता है।

चावलों के शालि, रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगधक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काचनक, हायन, लोध्रपुष्पक आदि कई भेद भा० प्र० निघण्टु में कहे हैं। ये सब भिन्न-भिन्न देशों में उत्पन्न होते हैं। इनमें कलम या कलमा धान वह है, जो एक स्थान में बोया जाय तथा दूसरे स्थान में उखाड़ कर लगाया जाय। इसे ही जड़हन कहते हैं। मगध आदि देशों का कलमाधान प्रसिद्ध है। काश्मीर में इसे महातण्डुल कहते हैं।

[1] सर्व प्रकार के अन्न धान्य ही कहे जाते हैं। किंतु सर्व साधारण के व्यवहार में चावल तुष सहित को धान या जिन चावलों का ऊपरी मोटा, कड़ा, कुसयुक्त छिलका नहीं निकाला गया है उन्हें धान कहते हैं। तुष रहित को चावल, चांवल, चाउर हिन्दी में, म०--तांदुल, साली, भात, गु०--चोखा, डांगर, बं०--चाल, चाओल; अं०--राईस Rice (तुष सहित को प्याडी Paddy) तथा ले०--ओरिजा सारिवा कहते हैं।

चावल
ORYZA SATIVA LINN



धान्यो के भेद–शालि धान्य, व्रीहिधान्य, शूक धान्य (जो, गेहू आदि), शिम्बी धान्य (मूग, उडद, अरहर आदि), और क्षुद्र धान्य या कुधान्य या तृणधान्य (कंगुनी, सांवा आदि) ये ५ मुख्य भेद है। प्रस्तुत प्रसग मे हमे केवल शालिधान्य एव व्रीहिधान्य का ही विचार करना है—

(१) शालिधान्य––जो भूसी रहित, श्वेत हो अर्थात् विना काडे, कूटे ही जो श्वेत होते हैं, एव हेमत ऋतु मे उत्पन्न होते है[1] उन्हे शालि धान्य, जड़हन या मुडिया कहते हैं। इसके रक्तशालि, कलमा आदि कई भेदोप-भेद है।

इनमे से गुणधर्म सहित कुछ धानो के लक्षण––
(अ) जो जली हुई मिट्टी से पैदा होते है (भाषा मे अगहनी चावल[2] कहते हैं) वे कसैले, लघु पाची (पचने मे हल्के), मूत्र-मल को निकालने वाले, रूक्ष एव बढे हुए कफ को कम करने वाले होते हैं।

(आ) जो केदार (जुते हुए खेत) मे उत्पन्न होते है। वे कसैले, गुरु, वातपित्त-नाशक थोड़ी मात्रा मे मल को निकालने वाले, वल्य, मेधाशक्ति को हितकर एव कफ और शुक्र-वर्धक होते है।

(इ) जो स्थलज (विना जुती हुई भूमि मे उत्पन्न) होते है––वे मधुर, किंचित् तिक्त रसयुक्त, कसले, विपाक मे कटु, पित्त कफ-नाशक तथा वात व जठराग्नि-वर्धक होते है।

देवधान––(जगली धान) इसी का एक भेद विशेष है। पौधा घास की तरह होता है। इसे स०–अरण्य धान, मुनि धान्य, निवार, तृण धान्य, लेटिन मे–हायग्रोरिझा-एरिस्टाटा (Hygroryza Aristata) कहते हैं। इसका चावल मधुर, कसैला, स्निग्ध, सुपाच्य, शीत वीर्य, पित्त-नाशक व विबन्धकारक होता है।

नोट—बोये हुए धानों के चावल—मधुर, कसैले, वीर्यवर्धक, वल्य, गुरु, शीतल, पित्तनाशक, कफजनक एव अल्प मल निकालने वाले होते है।

बोये हुए धानो की अपेक्षा विना बोये हुए धानो का चावल अल्प गुण वाला होते हुए भी, शीघ्र पचने वाला होता है। बोये हुए धानो के चावल यदि नये हो, तो वह वीर्य वर्धक, पुराने हो तो हल्के होते हैं। जो धान एक बार फसल के कट जाने पर पुन उसी क्षुप मे पैदा होतेहै, वे शीतल, रूक्ष,वल्य, पित्त-कफ-नाशक, मल-रोधक, कसैले व किंचित् कड़वे एव हल्के होते है।

[1] इन्हे ही राजशालि (वासमती चावल) कहते है। अन्य चावल तुष छुडाने के बाद कूटकर या मशीन पर साफ किया जाता है, किन्तु यह विना कूटे ही श्वेत एव साफ बारीक, सुन्दर और उत्तम होता है। यह लघु, दीपन, बल्य, कांतिजनक, धातुवर्धक एव त्रिदोष-नाशक है। इसका क्षुप २-३ हाथ तक ऊचा, पत्र–साधारण धान के पत्र जैसे, किन्तु कुछ बड़े और चिकने होते हैं।

[2] जैसे ईख आदि के कट जाने पर, उस क्षेत्र मे घास फूस आदि फैलाकर जला देते है। वैसे ही धान की भूमि को भी जला देते हैं। फिर उसे जोतकर या विना जोते ही, वर्षा के प्रारम्भ में धान बिखेर देते है।

रक्तशालि—यह शालिधान का ही भेद विशेष है। इसे हिन्दी मे लाल चावल, दाऊदखानी चावल, बंगला मे दाऊदखानी कहते हैं। उक्त बासमती शालिधान के समान यह भी सजल खेतो में उत्पन्न होता है। क्षुप के आकार प्रकार साधारण धान के क्षुप जैसी ही हैं। मगध देश मे इसकी अधिक खेती की जाती है।

यह शालिधान्यो मे श्रेष्ठ, बल्य, वर्णकारक, त्रिदोष-नाशक, नेत्र-हितकर, मूत्रल, कंठस्वर का उत्तम करने वाला, शुक्रजनक, दीपन एव तृष्णा, ज्वर, विष, व्रण, श्वास, कास, दाह आदि नाशक है।

शालिधान्य के अन्य भेद महाशालि, पाण्डुक, आदि इस रक्तशालि की अपेक्षा स्वल्प गुण वाले है।

(२) व्रीहिधान्य—ये भी प्राय वर्षा के प्रारंभ मे रोपण किये जाते हैं, तथा वर्षा के अन्त, आश्विन तक पक कर काटने योग्य हो जाते हैं। ये ओखली मे कूटने, छटने से सफेद होते है, देर मे पकते है। इसके उपभेद—(अ) कृष्ण-व्रीहि—इसकी भूसी और चावल दोनो कुछ काले से होते हैं, (आ) पाटल—इसका वर्ण पाटल (पाटल) के पुष्प जैसा कुछ लाल होता है। (इ) कुक्टाण्डक—आकार मे यह चावल मुर्गी के अण्डे जैसा अर्थात् कुछ मोटा, गोल और लम्बा होता है। (ई) शालामुख—इसके शूक (धान के मुख पर रहने वाला सूक्ष्म, लम्बा काटा) और चावल दोनो काले रग के होते है। (उ) जतुमुख—इसका मुख लाख जैसा कुछ लाल रग का होता है।

गुणधर्म—व्रीहिधान के चावल-पाक मे मधुर, शीत-वीर्य, किंचित् अभिष्यदि, मल को बाधने वाले, पौष्टिक तथा अन्य गुणों मे षष्टिका (साठी) के समान हैं। इन व्रीहियो मे कृष्ण-व्रीहि सर्वोत्तम है।

(ऊ) षष्टिका (साठी) यह व्रीहि धान का एक मुख्य भेद है। यह भी वर्षा ऋतु मे ही पककर तैयार हो जाता है। किंतु यह गर्भ मे ही अर्थात् बाली के भीतर ही (बाली के फूटे बिना ही) पक जाता है। अच्छी तरह संभाल की जाय तो यह ६० दिन मे ही पक कर काटने योग्य हो जाता है। इसी से यह साठी (षष्टिका) कहलाता है। इसके पौधे साधारण धान के ही समानहोते है।

इसके भी शतपुष्प, प्रमोदक आदि कई भेद है। इसमें व्रीहि धान्य जैसे ही (वर्षा-काल मे पक कर तैयार होना आदि) लक्षण होने से यह व्रीहि के ही अन्तर्गत माना गया है। कृष्ण और श्वेत भेद से यह दो प्रकार का है। कृष्ण की अपेक्षा श्वेत अधिक गुणकारी है।

साठी के गुण धर्म—यह चावल लघु, स्निग्ध, मधुर कोमल, ग्राही, बल्य, त्रिदोष-शामक, ज्वर-नाशक, एव रक्त शालि के सदृश गुण वाले हैं।

इसके जो अन्य भेद हैं उनमे इसकी अपेक्षा अल्प गुण हैं, वे केवल मधुर, शीतल, लघु, मल बाधने वाले एव वात-पित्त-शामक होते हैं, तथा अन्य गुणों मे शालि-धान्य के समान ही हैं। इसके भात को ठडाकर, उसमे शहद मिलाकर खाने से पुरानी वमन व तृष्णा शमन होती है।

—व मा.

नोट—नये और पुराने चावलो के गुणो मे भेद होने का कारण यह है कि चावलो के ऊपर जो पीला, हलका सा आवरण होता है,जिसे काष्ठोज (Celulose) कहते हैं। [जो चावल के सत्व का रक्षक किन्तु आन्त्र-शक्तिका किंचित् अवरोधक है, वह नये चावलो मे पूर्ण या कूटने पर भी अधिकांश में कायम रहने से] उससेनया चावल सदैव गुरु, तथा देर से पचने वाला होता है। किन्तु पुराने चावलों का उक्त आवरण नष्ट हो जाने से वे लघु, शीघ्र पचने वाले होते है।

ध्यान रहे मशीन से साफ किये हुए पालिशदार चावलो की अपेक्षा ओखली मे डालकर हाथो से कूटकर साफ किए हुए (बिना पालिश के) चावल दीखने मे तो सुन्दर नही होते है। किन्तु स्वास्थ्य के लिए विशेष लाभ दायक एव पौष्टिक होते है। क्योकि इसमे शरीर धातु-वर्द्धक प्रोटीन कुछ खनिज द्रव्य एवं स्टार्च भी अधिक होती है।

रासायनिक संघटन—

चावल मे जलीयाश प्र० श० १२, मासवर्धक भाग ७।, चर्बी २, मैदा ६ तथा तैलाश २ होता है (पालिशदार चावलो मे मासवर्धक भाग बहुत कम रह जाता है तथा तैलांश तो नष्ट हो ही जाता है) एव इसमे विटामिन्स बी (B) की न्यूनता से, यह बेरी-बेरी नामक

रोगोत्पादक हो जाता है।

आमयिक प्रयोग—फेफडो के विकार, क्षय, वक्षस्थल के रोग, एव रक्तमिश्रित कफ-स्राव में यह लाभदायक है। चावलो का पानी ज्वर तथा आन्त्र-प्रदाह मे शाति-दायक है।

१. पकाया हुआ चावल (भात)-

चावलो को अच्छी तरह बीनकर, साफकर तथा पानी से धोकर पाचगुने खौलते हुए पानी मे डालकर पकाने तथा सीज जाने पर उन्हे नीचे उतार कर उनका माड निथार कर, हलकी आच पर रखदे। पूर्ण रूप से पकाने पर यह भात कहलाता है। ताजा भात गरमागरम विशद गुणयुक्त अग्निवर्धक, पथ्य, तृप्तिदायक रुचिकर एव हल्का होता है। यदि यही भात विना धोये और विना माड निकाले सिद्ध किया गया हो एव ठडा हो गया हो तो वह भारी, अरुचिकर तथा कफवर्धक होता है। किन्तु माड के निकाल लेने से चावल के खनिज, प्रोटीन एव व्हिटामिन आदि निकल जाते हैं। ऐसा नि-सत्व भात रोगियों को भले ही हितकर हो, किन्तु स्वस्थो के लिए हितकर नही।

चावल पकाया हुआ रक्तोत्पादक, मेदा-वर्धक आध्मानकारी है। यह शक्कर के साथ खाने से शीघ्र हजम होता है। मठे के साथ खाने से उष्णता, तृष्णा, जी मिचलाना, तथा पित्त के दस्तो मे लाभ होता है। यह अतिसार या पेचिश मे उत्तम पथ्य है। लाल चावल विशेप लाभकारी होते है। यह मूत्रविकार, तृष्णा शरीर की जलन को दूर करते है। इन्हे पकाकर इनका पानी निथार कर पीने से पेशाव साफ आता है। चावलों को भूनकर रात भर पानी मे भिगो, प्रात उस पानी को पीने से मेदे के कीडे नष्ट होते हैं। किंतु जिन्हे पथरी (अश्मरी) का रोग हो या मधुमेह हो उन्हे चावल हानि-कारक होते हे।

एक वर्ष का पुराना चावल त्रिदोप-नाशक, तीन वर्ष का कृमिनाशक तथा ओज-वर्धक है। प्रसूतिकाल मे स्त्री के लिए यह विशेष लाभकारी होता है।

चावलो का शोषण-ग्राही और मूत्रल होने से-सुजाक, अतिसार एव श्वेत प्रदर जैसी व्याधियो मे प्रयुक्त औष-धियो के अनुपान के रूप मे दिया जाता है। यह व्रणो को धोने के लिए भी उपयोगी है।

चावलो को पानी मे पकाने के वाद नीचे उतार कर उसमे दूध मिला १५-२० मिनट ढाक रक्खे। यह आहार रूप मे रोग-मुक्त अशक्त एव तरुणो के लिए, तथा जो वातिक अग्निमाद्य से पीडित हो उन्हे देना लाभकारी है। यदि अतिसार हो तो उस दशा मे चावलो के आटे को पानी मे पतला लेई जैसा पकाकर एवं दूध मिलाकर देवें। यदि आमाशय, आन्त्र या वृक्को मे विक्षोभ या दाह-युक्त शोथ हो तो चावल का माण्ड या काजी (१ भाग चावल या चावल के आटे मे ४० भाग पानी, थोड़ा नमक और नीवू रस मिला कर) वनाई हुई उत्तम शातिदायक पेय है। किंतु यदि कोई जठराश्रित आतरिक व्रण (Gastric ulcer) हो तो नमक व नीवू रस नही मिलाना चाहिए। यह पेय-चेचक, मसूरिका, रक्तकोपजन्य ज्वर एवं सर्व प्रकार के दाहयुक्त शोथ की दशा मे तथा सुजाक तथा सुजाक और दाह एव जलन युक्त मूत्र विकारो मे उत्तम लाभकारी है। ध्यान रहे, इन सव अवस्थाओ मे अन्य चावलो की अपेक्षा रक्तशालि (दाऊद खानी) विशेप हितकारी होता है। यह चावल प्लीहा एव यकृत की वृद्धि मे वैसे ही अर्श और भगदर-ग्रस्त रोगियों को (जब कि ज्वर न हो) पथ्य रूप मे देना उत्तम होता है।

(२) खिचडी-(कृशरा)—चावल और दाल (समभाग या २ भाग चावल व १ भाग दाल) मिलाकर अच्छी तरह धोकर पाच या आठ गुना जल मे पका कर तैयार की जाती है। यह नमक, अदरख, हीग, मिर्च, मसाला, घृत, आदि डाल कर और भी स्वादिष्ट वनाई जाती है।

खिचडी यदि ठीक तरह से पकाई गई हो, तो यह अशक्त एव रोगयुक्त निर्वलो के लिये दूध के समान ही पूर्ण आहार का काम देती है। इसमे शरीर-धातुवधक प्रोटीन, चर्वी, कार्बोहायड्रेट, विटामिन्स एव खनिज द्रव्य सम्यक् रूप से अवस्थित है। यह वीर्य एव वलवर्धक, भारी देर मे पचने वाली, वुद्धिवर्धक, तथा मल-मूत्र

लाने वाली है।

(३) यवागू—वैसे तो जव डाल कर पके हुए जल को यवागू (वार्ली वाटर) कहते हैं। किंतु आयुर्वेदानुसार यह चावल, मूंग, उडद, तिल आदि की भी रोगानुसार बनाई जाती है। यदि चावल की यवागू बनानी हो, (जहा यवागू के द्रव्य का उल्लेख न हो, वहा प्राय. चावल की ही यवागू बनाई जानी है) तो—रोगी जितना भात खाता रहा हो, या खा सकता हो उसके चौथाई चावल (यदि १ पाव भात खाता हो तो ५ तोला चावल) और २ या ३ सेर तक पानी एकत्र मिला पकावें। चौथाई शेष रहने पर छान ल। इसमे रुचि तथा रोग के विचार से स्वाद के लिये अनार रस, नमक, शक्कर आदि मिला सकते हैं।

(४) मण्ड, पेया और विलेपी—ये यवागू के ही तीन प्रकार है। (अ) मण्ड-१६ या १४ भाग पानी मिलाकर पके हुए चावल के घन भाग में से ऊपर का द्रव भाग छान कर निकाला जाय तो वह मण्ड कहलाता है। इसमे सोंठ और सैंधा नमक मिला कर पीने से-रुचिकर, पाचक एव दीपन होता है। जो मण्ड लाजा (धानो की खील) से बनाया जाता है, उसे लाज मण्ड कहते हैं। यदि धानो की खीलें प्राप्त न हो, तो चावलो को भून कर भी यह मण्ड बनाया जा सकता है। इसे धान्य मण्ड कहते है। यह लाजमण्ड कफ-पित्त-प्रकोप-नाशक, सग्रहणी एवं अतिसार में लाभकारी, मल को रोक कर गाढा करने वाला और ज्वरी की तृष्णा-शामक है। खीलो मे आधा दूध व पानी का मिश्रण मिला कर भी उबालते हैं। किंतु इसका माड नही निकाला जाता। चावलो के उष्ण मण्ड मे हीग व काला नमक मिला, पीने से विषमाग्नि सम और मंदाग्नि दीप्त हो जाती है।

उत्तम भुने हुऐ चावल २० तो. भुनी हुई मूग १० तो और तक्र ४० तोला एकत्र ४॥। सेर जल मे पकावे तथा उसमे आवश्यकतानुसार धनिया, सोंठ, हीग व तैल मिला कर मण्ड तैयार करे। यह क्षुधा-वृद्धि, वस्ति—शुद्धि, करती एव प्राणप्रद, रक्तवर्धक, ज्वरनाशक, कफ-पित्त नाशक व वातशामक है। —भा. भै. र.

अष्ट गुण मण्ड—८ या १० तो चावलों को किंचित् भूनकर उसके साथ अर्धभाग या समभाग मूंग मिला, १४ गुना जल मे पकावें। पकाते समय उसमे अन्दाज से थोडी धनिया, सोठ, काली मिर्च, पीपल, सेंधानमक और भूनी हुई हीग मिलावे (ये द्रव्य अन्दाज से ही मिलावे, जिसमे मण्ड अधिक नमकीन या कटु न होने पावे)। पक जाने पर माड को नियार या छान कर सेवन करें। यह त्रिदोषनाशक, दीपन, स्फूर्तिदायक, वस्ति—शोधक, रक्त वर्धक एव ज्वर-नाशक है।

(आ) पेया—छः गुने या १४ गुने जल मे चावल (या कोई भी द्रव्य जिसकी पेया बनानी हो) डालकर पतली, फेन जैसी किंतु कुछ गाढी लसदार चावल सहित औटी हुई (खूब पकाई हुई) चीज को पेया कहते हैं। (मण्ड या माड मे केवल द्रव भाग ही लिया जाता है, इस में पकाया हुआ द्रव्य भी लिया जाता है, यद्यपि द्रव भाग अधिक एव द्रव्य भाग कम रहता है। कही २ इसे भाषा मे पेज कहते है। यह पचने मे बहुत हल्की, मलमूत्रादिस्तंभक, धातु—पौष्टिक, बलवर्धक, कफनाशक तथा कण्ठ को हितकारक है। (इ) विलेपी, चावल (या जिस द्रव्य की विलेपी बनानी हो उसे) जौ कूट कर चौगुने पानी मे पकावें। अच्छी तरह खूब पक जाने पर यह लपसी जैसा पदार्थ विलेपी कहलाता है। यदि जौ कुट किये हुए चावलो को थोडे घृत मे तल कर यह विलेपी बनाई जाय तो अधिक स्वादिष्ट होती है। वैसे भी विलेपी बृंहणी (शक्ति-वर्धक), तृप्तिकारक ग्राही क्षुधानाशक, मूत्रल, हृद्य, मधुर व पित्तशामक होती है। यदि मीठी बनानी हो तो मिश्री व कालीमिर्च थोड़ी मिलाले। नमकीन की इच्छा हो तो इसी मे सेंधानमक जीरा व काली मिर्च मिला सकते है। यह ज्वर एव अतिसार पर भी लाभकारी है।

(५) लाजा (खील)—छिलके सहित शालिधान को भाड मे भुनवा लेने से खील प्रस्तुत होती है। ये धान लावा या खील-मधुर, शीतल, लघु, दीपन, मलमूत्र को कम करने वाली, रूक्ष, बल्य तथा पित्त, कफ, वमन, अतिसार, दाह, रक्तविकार, प्रमेह, एव तृषा पर लाभ दायक है।

उक्त खीलों को पीस कर सत्तू सा बना, उसमे गक्कर, शहद या दूध या केवल पानी मिला देने से 'लाज तर्पण' कहलाता है। यहदाह और अतिसार मे हितकारी है। खीलो के चूर्ण मे खजूर, अनार, अ गूर आदि का रस तथा शहद और शक्कर मिला कर जो पेया तैयार होती है, वह उत्तम तर्पण है, इससे ज्वर, दाह, मदात्यय आदि नष्ट होते हैं। वैसे तो पानी मे घोलकर जो सत्तू खाया जाता है उसे भी तर्पण कहते है।

चावलो को भूनकर बनाया हुआ सत्तू-दीपन, हलका, शीतल, मधुर, ग्राही, रुचिकर, पथ्य, एव बलवीर्य वर्धक है।

(६) चिपिटा-[चिउरा, चिरवा, चिरमुरा] चौला भूसी (तुष) सहित गीले धानो को, या तुष सहित धानो को भिगोकर गीले ही यदि भूनलिये जाय, तथा उनके सिकने के पूर्व ही उन्हे ऊखल मे कूटकर भूसी अलग कर दी जाय तो वे चिपिटे हो जाते हैं। इन्हे सस्कृत मे पृथुक चिपिटक तथा मरेठी मे-पोटे कहते है। ये गुरु, वातनाशक कफकारक हैं। दूध मे भिगोकर शक्कर मिलाकर सेवन करने से पुष्टिकारक, वृष्य, बलदायक एव मलभेदक(पतले दस्त लाने वाले) होते हैं। किंतु दही के साथ खाने से मलवन्धक है अत अतिसार में लाभकारी है ध्यान रहे चिउरा को उपयोग मे लाने के पूर्व पानी मे अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

(७) मुरमुरा—चावलो को रेत की सौम्य भट्टी मे भूनने से मुरमुरा (मुरी) बनता है। यह भी बहुत लघु (हल्का) आहार है। भात के स्थान मे रोगियो को यह दिया जाता है। यह अग्निमाद्य, एव अम्लपित्त नाशक है। ऐसी दशा मे प्रातः कलेऊ के रूप मे इसके साथ नारियल के महीन टुकडे थोडे प्रमाण मे मिलाकर खाने से लाभ होता है।

(८) पायस (खीर)— उत्तम चावल १० तोले को धोकर प्रथम घृत मे तलें फिर १ सेर या २ सेर दूध को औटाकर उसमें उन्हे डालकर पकावें इसमे अन्दाज से थोडा घृत, शक्कर, किसमिस, चिरौंजी आदि मिला दें। बस यही-दुग्ध-क्षीरिका, पायस या परमान्न है। यह पचने में ... स्निग्ध, बलवर्धक, मलावष्टम्भक, मेदवर्धक, एव रक्तपित्त, अरुचि, वातपित्त नाशक है।

नोट—चावलों से और भी कई प्रकार के खाद्य-पदार्थ—दुग्ध कूपिका, ताहरी, अकबरी आदि बनाये जाते है। जापान और चीन देश में चावलो से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है।

(९) चेहरे और शरीर की कांतिवर्धनार्थ—केवल चावलो को या इसमे अन्य उपयुक्त द्रव्यो को मिला उबटन जैसा बना कर चेहरे एव शरीर पर लगाते है।

चावलो को पानी मे भिगोकर, उस पानी से चेहरे को धोते रहने से चेहरे की झाई दूर होती हैं।

(१०) चावल के धोवन मे शक्कर और सोरा मिलाकर मूत्र-रेचनार्थ देते है, इस धोवन को भाग के नशा उतारने के लिये पिलाते हैं, तृषा-निवारणार्थ—इस धोवन में शहद मिलाकर पिलाते हैं। तथा कई औषधियो के अनुपान में यह धोवन दिया जाता है। बड़े-बडे व्रणो को इस धोवन से धोना लाभकारी है।

(११) भस्मक रोग (तीव्राग्नि) पर—लाल शालि चावल २ भाग, तिल और मूग १-१ भाग लेकर अलग-भून ले, तिलो को कूटकर सूप मे पछोड ले। फिर सबको मिला ४ गुने जल मे खिचडी पका ले। इसमे घृत मिलाकर अच्छी तरह पेट भरकर खिलाते रहने से भस्मक रोग दूर होता है। (हा० सं०)

रोग विशेष तीव्र न हो, तो यह खिचडी १-१ दिन छोडकर खिलावे। इसके सेवन-काल मे रोगी को प्रवाल-पिष्टी ६ रत्ती, वंशलोचन १ मा०, सोना गेरू ४ रत्ती और गिलोय-सत्व १॥ मा० (या गिलोय-स्वरस ४ तो०) मिला, दो हिस्से कर प्रात साय शहद के साथ देते रहने से अधिक लाभ होता है। (र० त० सार)

अथवा—चावल और श्वेत कमल इन दोनो को बकरी या भैंस के दूध मे पकाकर घृत मिला सेवन कराते रहने से भी भस्मक रोग मे लाभ होता है।

(१२) वमन पर—धान की खील (लावा) १ तो०, छोटी इलायची २-४ नग, लौंग २-४ नग, तथा मिश्री ३ से ६ माशे तक लेकर, सबको १ पाव (२० तो०) जल मे मिला ५-७ उफान आने तक आग पर उबाले। फिर उतार कर शीतल होने पर कपडे से छान ले। इस लाज-

मण्ड की मात्रा १-२ चम्मच थोडी-थोडी देर से, पिलाते रहने से वमन-निवृत्ति हो जाती है। यदि वमन हरी, पीली, कडुवी होती हो, तथा वमन होने पर कंठ मे दाह होता हो, तो उक्त मण्ड मे थोडा नीबू रस मिला दें। यदि इस मण्ड के पात्र को बर्फ पर रखकर शीतल कर उपयोग मे लिया जाय तो विशेष लाभ होता है। यह मण्ड वमन हिक्का और तृषा रोग पर उत्तम औषध एवं पथ्य है।

(श्री० स्व० प० यादव-जी त्रिक्रम जी आचार्य)

(१३) व्रणो पर-(चेचक के व्रणो पर)-चावलों का महीन आटा खूब अच्छी तरह बुरक देने से रोगी को विशेष शांति प्राप्त होती है। दाह, जलन मिट जाती है। इसी प्रकार यह आटा विचर्चिका आदि विदाह-कारक व्रणयुक्त शोथ पर भी बुरका जाता है।

अग्निदग्ध पर खौलते हुए पानी या भाप से जलने या झुलसने पर -तुरन्त ही इस आटे का उपयोग करें, इसको अच्छी तरह बुरक दें। जिसमे-स्तर सा जम जाय तथा अन्दर के दूषित दाहकारी जलांश को सोख ले और वाह्य वायु अन्दर प्रविष्ट न हो सके। जब यह आटे का सार कड़ा हो जाय, तो उसे हटाने के लिये, इसके आटे को ही पानी मे पकाकर पतला पुल्टिस जैसा लेप कर देवें। जमी हुई पपडी शीघ्र ही निकल जावेगी। फिर उस स्थान पर चूने के पानी मे तिल तैल या जैतून तैल मिला अच्छी तरह घोट कर, लगाते रहे।

मधुमेह के व्रणो पर—चावल के आटे मे, गाढा दही (जिसका जलांश बहुत कुछ निकाल डाला गया हो) मिला कर पुल्टिस बना लेप करे, अथवा दही के स्थान मे चन्दनादि तैल मिलाकर बनाई हुई पुल्टिस विशेष लाभकारी है। इसे दिन में ३-४ बार बदलते रहना चाहिए। यह चावलो की पुल्टिस प्राय. सभी प्रकार के व्रणों पर उपयोगी है।

निमोनिया आदि की दशा में भी इस पुल्टिस का प्रयोग करते है। ऐसी दशा मे प्रथम स्थान विशेष पर टर्पेन्टाइन लगा दिया जाता है।

अग्निदग्ध-व्रणों पर--चावलो की भूसी को जला-उसकी राख को छानकर, घृत मे मिला कर लगाते रहने से भी लाभ होता है।

(१४) मंथर ज्वर पर--चावलो की खील १ से २॥ तो० तक, १ सेर जल मे मिला, उसमे शुद्ध सुवर्ण का टुकडा या अंगूठी डाल कर, अष्टमांश क्वाथ कर रोगी को दिन मे दो बार पिलाते हैं। सुवर्ण को निकाल लेते है।

ज्वर आदि की दशा मे दाह हो, तो इसकी खील के साथ मिश्री मिला कर, क्वाथ कर थोडा २ बार २ पिलाते है।

(१५) अर्धावभस्तक शूल(अर्ध शीशी पर)-सूर्योदय के पूर्व ही, इसकी खील लगभग २॥ तो० तक शहद के साथ खाकर, सो जावे। ऐसा २-३ दिन करने से लाभ होता है।

(१६) गर्भ-निरोधार्थ—धान की जड को चावलो के धोवन साथ पीस, छानकर, मधु मिला पिलाते रहे।

नोट—चावलों का प्रयोग अश्मरी तथा उदर रोगियों के लिये हानिकारक होता है। हानि-निवारणार्थ—दूध, घृत शक्कर एवं शहद का सेवन कराते है।

चिउरा (*BASSIA BUTYRACEA*)

मधूक कुल[1] (Sapotaceae) के इसके वृक्ष ऊंचे मध्यम श्रेणी के होते हैं। छाल—कृष्णाभश्वेत या कुछ

[1] इस कुल के वृक्षों के पत्र एकांतर, सादे अखंड, चर्म-सदृश एवं उपपत्र रहित होते है। पुष्प-पत्रकोण से निकले हुए, दुग्ध जैसे रस से युक्त, तथा फल-मांसल होते है। इस कुल का प्रमुख वृक्ष मधूक (महुआ) है।

लाल वर्णयुक्त गहरे बादामी रग की, पत्र–शाखा पर दल-बद्ध, ६–१२ इ च लम्बे, ४-५ इ च चौडे अण्डाकार, ऊपर से हरे, चमकीले, नीचे की ओर रोमश, फूल–श्वेत वर्ण के, फल–अण्डाकार, हरे, चमकीले, चिकने १ इंच लम्बे, मीठे होते है। ये फल खाये जाते है। बीज–प्रत्येक फल मे १-३ तक होते हैं, जिनमे मक्खन जैसा गाढा तैल होता है।

ये वृक्ष हिमालय के दक्षिण भागो मे कुमाऊं से भूटान तक अधिक पाये जाते हैं।

नाम—

हि०–चिउरा, फलवारा, फुलेल, वेडली।
अं०–फुलवारा बटर, इ ंडियन बटर ट्री।
(Phulwara butter Indian butter-tree)
ले०—बेस्सिया ब्युटीरंसिया।

रासायनिक सगठन-

इसके बीजो की गिरी मे प्र ग ६० से ६५ तक श्वेत वर्ण की, मधुर गधयुक्त चर्बी प्राप्त होती है। यह मक्खन जैसा गाढा तैल कोकम के तैल जैसा उपयोगी है। इससे साबुन, मोमबत्तिया जैसी चीजें निर्माण की जाती हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसकी चर्वी मार्दवकर है। शरीर के किसी भी भाग पर लगाने से उसे मुलायम करती तथा इसकी वायु से रक्षा करती है।

सिर–दर्द, सधिपात, शोथ पक्षाघात आदि पर यह मालिश की जाती है। तथा खुजली एव शीतकाल के चर्म-विकारो पर भी यह उपयोगी है।

चिकरी–देखिये–पापरी मे। चिकाकाई–देखिये–शिकाकाई। चिचडा–देखिये–अपामार्ग और चचेडा।
चिचेडा–देखिये–चचेडा। चिडचिडी–देखिये–अपामार्ग।

चित्रक (श्वेत और रक्त)

(*PLUMBAGO ZEYLANICA, PLUMBAGO ROSEA*)

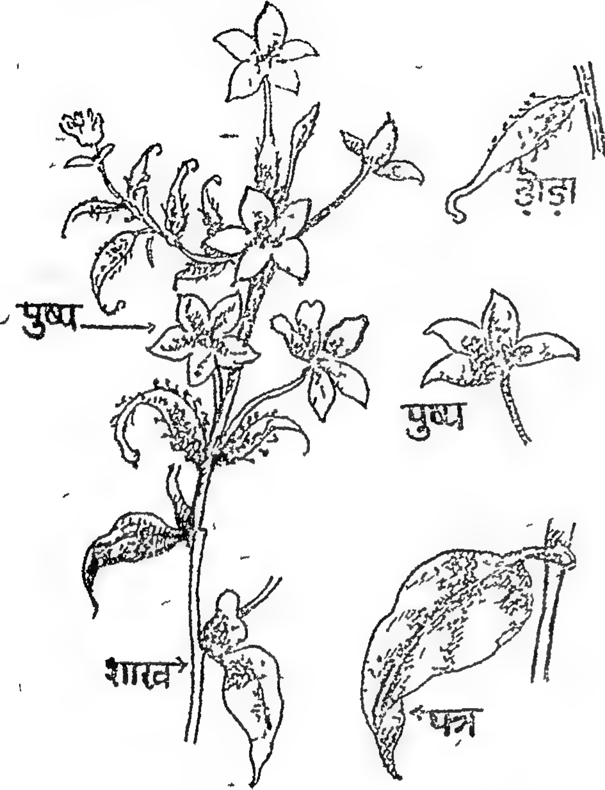
हरीतक्यादि वर्ग एव [1]चित्रककुल (Plumbaginaceae) के श्वेत और लाल चित्रक के क्षुप दो से ४ या ६ फुट तक ऊ चे, बहुवर्षायु एव प्राय सदैव हरे-भरे रहते है। पत्र–मकोय के पत्र जैसे, १॥ से ३ या ३॥ इंच लम्बे, १-१॥ इच चौडे, लम्बेगोलाकार, हरे, दलदार, चिकने, अनीदार, कही २ वेलपत्र जैसे तीन २ मिले हुए, कही डठल पर आमने सामने विषमवर्ती, एव पत्र-वृन्त श्वेत का श्वेत वर्णका तथा लाल का किंचित् लालवर्ण का बहुत ही छोटा ¾ इच तक लम्बा, पुष्प-दण्ड–४-१२ इच लम्बा, अनेक शाखायुक्त, जिन पर श्वेतवर्ण के चमेली पुष्पो-जैसे पुष्प, किंतु निर्गन्ध गुच्छो मे (लाल चित्रक के पुष्प-गुच्छ लाल रग के होते है) तथा इन गुच्छों मे अलग अलग विभाग से दिखाई देते है और प्रत्येक गुच्छे में १५ से ३० तक पुष्प कुछ अन्तर से शीतकाल मे

[1] इस कुल के क्षुपो के पत्र-अभिमुख या एकान्तर, सादे, पुष्प-वाह्यकोष के दल ५, नीचे से जुडकर नलिकाकार बने हुए, छोटी छोटी ग्रंथियो से युक्त, पुष्पाभ्यंतर कोश के दल ५, पुंकेशर ५, स्त्रीकेशर १, फल छोटे और कडे होते है।

इस कुल मे श्वेत पुष्प वाले तथा लाल फूल वाले, ये दो प्रकार के चित्रक ही प्रधान है। तथा ये दोनो व्यवहार में उपलब्ध है। निघण्टुओं में कृष्ण और पीत पुष्पों के भी चित्रकों का उल्लेख है। इनमें से कृष्ण (काला) चित्रक तो क्वचित् देखने सुनने मे आता है (बनारस कचहरी के पास योरोपियन क्लब के हाते में काले चित्रक का एक ही क्षुप नमूनार्थ रखा गया है--श्री गगासहाय पाडे, सम्पादक भा-प्र-नि), किंतु पीले का तो कही नाम निशान नही मिलता, शायद यह लाल चित्रक का ही कोई भेद हो।

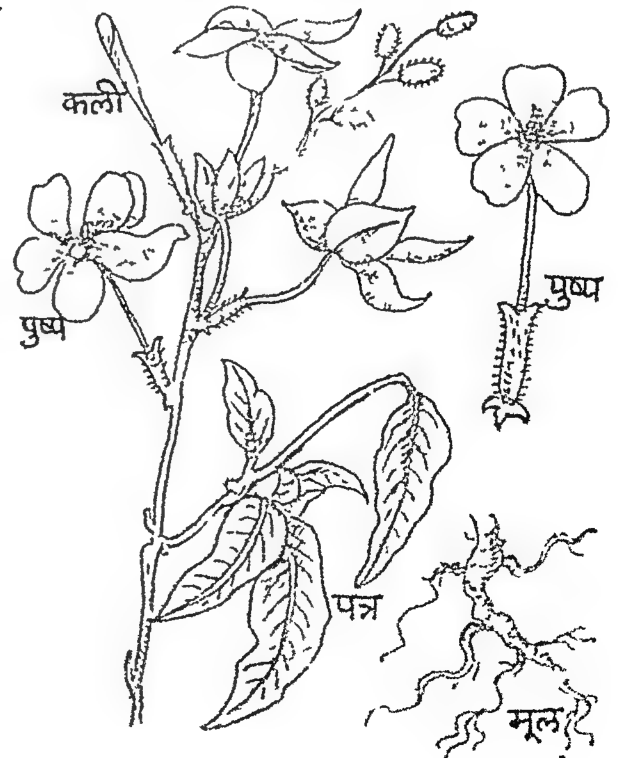
कृष्ण चित्रक का विवरण आगे के प्रकरण में देखिए।

चित्रक सफेद
Plumbago zeylanica Linn.



फूटते व खिलते है । पुष्प की पखुडिया प्रायः सख्या मे ३-५ तक निम्नभाग मे आपस मे जुडी हुई नलिका के आकार मे होती है उनमे मध्य की पखुरी कुछ लवी होती है । पुष्प-कोषो पर सूक्ष्म रोंए, मधु जैसी तरल वस्तु से सने हुए होते हे । मधुमक्खिया उन पर मंडराती रहती है । हाथ से छूने पर भी चिपचिपाहट सी मालूम देती है । बीजकोष (फल) और बीज-पुष्पो के ऊपरी भाग पर ही, जव के आकार के लम्बे, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर धूसर वर्ण के, सूक्ष्म एव चेपदार रोमयुक्त वीजकोष होते है । प्रत्येक वीजकोप मे प्राय १-२ घूसर या काले वर्ण के बीज निकलते है । इन्ही बीजों से ये पौधे उत्पन्न होते है । काण्ड (तना) और शाखायें—इसमे काढ तो क्वचित् ही होता है । मूल के अग्रभाग से ही पतली-पतली चिकनी हरितवर्ण की १-२ फुट लम्बी शाखायें, खड़ी उभरी हुई रेखायुक्त, गोल पतली, ग्रंथिल एव कोमल निकलती है । ऊपर की छाल कुछ कुछ काली भूरे रग की (लाल चित्रक की छाल कुछ श्याम लाल रंग की) होती है । शाखा को वीच मे से तिरछा काट कर देखने पर मध्य मे श्वेत वर्ण का (रक्त चित्रक मे कुछ श्याम वर्ण) सच्छिद्र भाग दिखलाई पडता है । मूल और छाल—मूल लम्वी, आडी टेढी, कनिष्ठिका ऊंगली से भी पतली, कोई कोई अंगुष्ठ जैसी आडी भी होती है । ताजी जड़ को काटने से पीला या राल जैसा रस या सत्व निकलता है, जिसे अंग्रेजी मे प्लम्वाजीन, (Plumbagin) कहते है । पुराने पौधो की जडो मे मे निकाला गया यह सत्व विशेष क्रियाशील होता है, तथा ताजी जडो मे यह अधिक मात्रा मे पाया जाता है । ऊपरी छाल धूसर वर्ण की तथा अन्दर से कुछ सफेदी लिये होती है (लाल चित्रक की जड मटमैली धसर एवं कुछ लालिमायुक्त होती है) वैसे तो सूखने पर चित्रक चाहे श्वेत, लाल या

चित्रक लाल
PLUMBAGO ROSEA LINN.



कृष्ण कोई भी हो, सब की जड एक समान ही होती हैं। उनमे कोई विशेष भेद दृष्टिगोचर नहीं होता। ग्रीष्म ऋतु मे इन जडो के कुछ भाग तथा उक्त शाखाओ को कटवाकर व्यापारी लोग सग्रह कर लेते है। वर्षा मे पुन नवीन शाखाये जमीन के अन्दर शेष बची हुई जडो से फूटकर निकलती हे। ये मूल तथा शाखाये स्वाद मे तिक्त, कटु, जीभ मे छेदन जैसी पीडादायक होती हैं। श्वेत चित्रक की अपेक्षा लाल चित्रक विशेष प्रभावशाली होता हे।

श्वेत चित्रक के क्षुप दक्षिण भारत, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बगाल, बिहार, एव कुमाऊ और सीलोन के प्राय उष्ण प्रदेशो की पथरीली जमीन एव झाडीदार जगलो मे अधिक पाये जाते है। वैसे तो प्राय पहाडी जमीन या पुराने जीर्ण शीर्ण किलो या टीलो पर भारत मे प्राय सर्वत्र ही ये क्षुप पाये जाते हैं।

किन्तु लाल चित्रक सर्वत्र नही मिलता। यह सिक्कम और खासिया पहाड़ो की तराइयो मे तथा विंध्याचल की तराई और कूच बिहार मे अधिक पाया जाता है। इसे प्राय बडी सावधानी से कही कही बाग बगीचोमे भी लगाते हैं। यह प्राय चिकनी एव कुछ रेतीली जमीन मे अच्छी तरह फलता फूलता है। अन्यथा शीघ्र ही नष्ट हो जाता हे।

नोट—चरक के दीपनीय, तृप्तिघ्न, शूल-प्रशमन, भेदनीय, अर्शोघ्न, लेखनीय, कटुक स्कन्ध आदि तथा सुश्रुत के पिप्पल्यादि, मुस्तादि, आमलक्यादि, मुष्ककादि वरुणादि तथा आरग्वधादि गणों के प्रसगों मे एव कई प्रयोगो मे इसका उल्लेख पाया जाता है।

(२) श्वेत और लाल इन दोनों चित्रकों के रासायनिक सघटनो में कोई विशेष भेद नही है। अतः कहा जाता है कि श्वेत चित्रक लाल चित्रक का ही एक रूपान्तर-मात्र है। दोनो के गुणधर्म में प्रायः समानता है।

रासायनिक सघटन—

इसमे जो प्लम्बाजिन (Plumbagin) नामक एक प्रभावशाली कटु, स्फटकीय, पीले वर्ण का सूच्याकार सत्व अधिक से अधिक ०.९१ प्र. श. पाया जाता है वह कुछ विषैला, निद्राजनक तथा त्वचा पर लगाने से तेजाब जैसा प्रभाव करता है। यह प्रभाव श्वेत की अपेक्षा लाल चित्रक के उक्त सत्व मे विशेष तीव्र रूप मे होता है। यह सत्व गरम खौलते हुए पानी मे घुलनशीलहोता है, तथा इसकी गध सुहावनी किंतु कुछ उग्र या तीखी सी होती है।

नाम—

स.—चित्रक, अग्नि (संस्कृत मे अग्नि के जितने नाम है, वे समस्त आयुर्वेदीय परिभाषानुसार इसे ही दे डाले गये है) तथा लाल को रक्त चित्रक, काल, अग्निदीप्य आदि। हि. चित्रक। चीता, चितउर (लाल चीता) आदि। म० चित्रकमूल (लाल को तम्बडी चित्रक)। गु० चित्रो, धोलो चित्रो, चित्रा पीत से (राती चित्रो)। ब० चितोगाछ, चित्रा(रक्तचितो, एडचितो)। अं० व्हाइट लेड वर्ट (white lead wort), सीलोन लेड वर्ट (Ceylon lead wort), लाल को रोज कलर्ड लेड वर्ट (Rose Coloured lead wort)। ले० प्लम्बेगो झिलेनिका (प्लम्बेगो रोझिया)

इसकी प्राय जड़ एवं शाखाओ की छाल, नई ताजी काम मे ली जाती है। पूनी होने पर यह गुणहीन हो जाती है।

यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य, दीपन, पाचन, पित्तसारक, ग्राही, कृमिघ्न, रक्तपित्त प्रकोपक,शोथहर, मूत्रल, कफघ्न, कण्ठ्य, रसायन, तीव्रगर्भाशय संकोचक, गर्भस्राव, स्वेदजनन,त्वग्रोगनाशक, ज्वरघ्न, लेखन विस्फोट जनन हे। तथा इसका प्रयोग—नाडी दौर्बल्य, वात व्याधि, अजीर्ण, उदरशूल, यकृद्विकार ग्रहणी, कृमि, शोथ (विशेषत यकृत, प्लीहा वा गुदा का शोथ), जीर्ण प्रतिश्याय, काम, रजोरोध, प्रसूति विकार, मक्कल शूल, ध्वजभग, कुष्ठ, श्वित्र, विसर्प, जीर्ण विषम ज्वर, कण्डू, पाडु, मेदा रोग, गुल्म, सधिवात, श्लीपद आदि मे किया जाता है। कटु होने से कफ का, तिक्त होने से पित्त का एव उष्ण होने से वात का नाशक है।

इसका सत्व (प्लम्बाजिन या प्लम्बेगो)—अल्प मात्रा मे लेने से केन्द्रिय स्नायु मण्डल को उत्तेजित करता है, तथा अधिक मात्रा मे यह शैथिल्यजनक एव मृत्युकारक

भी हो जाता है। इसके विषय मे आधुनिक अनुभव यह है, कि (१) यह तेज जलन पैदा करने वाला एव कृमिनाशक है। (२) इसका विशेष प्रभाव मज्जा-तन्तुओ पर होने से उचित मात्रा मे लेने से यह मज्जातंतुओ को साधारण प्रमाण मे उत्तेजित करता है, किन्तु अधिक मात्रा मे यह उन्हे शिथिल एव निष्क्रिय बना देता है, हृदय की संकोचक क्रिया की विशेष वृद्धि करता है, तथा पक्वाशय और गर्भाशय को भी विशेष संकुचित कर देता है (३)यह पसीना लाने वाला, मूत्रल, तथा पित्तोत्तेजक है (४) यह गर्भपातक है, इसके प्रयोग से गर्भ का बच्चा चाहे जीवित हो या मृतक शीघ्र ही बाहर आ जाता है।

जड की छाल का चूर्ण, क्वाथ आदि यदि रक्त चित्रक का हो, तो वह अधिक प्रभावशाली होता है। अल्पमात्रा मे सेवन करने से पचन-नलिका की श्लेष्मल त्वचा को उत्तेजना होकर आमाशय एवं उत्तर गुदा में रक्ताभिसरण की वृद्धि होती, पचन क्रिया बढती, यकृत को उत्तेजना मिलती है, पित्त का स्राव ठीक प्रकार से होता है। कभी कभी पित्तस्राव अधिक हो जाने से मल का रग विशेष पीला हो जाता है। बड़ी मात्रा मे यह दाहजनक एवं कुछ सज्ञानाशक, उत्क्लेशक, वामक, सारक, मूत्रकृच्छ्रकारक, तथा नाडी शिथिल होकर कभी कभी शरीर भी शीत हो जाता है। सगर्भा स्त्री को अधिक मात्रा मे देने से कटि के अन्दर की सर्व इन्द्रियों में दाह, साथ ही गर्भाशय से रक्तस्राव होकर इतनी तीव्र सकोचक क्रिया होती है कि ३ या ६ घटे के अन्दर ही गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है। मूढगर्भपातनार्थ इसे दिया जाता है। गर्भाशय के मुख पर इसका लेप किया जाता है। या इसके चूर्ण को मलमल के टुकडे मे पोटली मे बाधकर योनि के भीतर रखा जाता है।

इस प्रकार गर्भपात होने के बाद, यदि स्त्री की यथायोग्य सुश्रूषा एव चिकित्सा न की जाय तो उसके कटिप्रदेश मे घोर अभिताप उत्पन्न होकर वह मरणासन्न हो जाती है। लाल चित्रक का सत्व अपेक्षाकृत विशेष तीव्र होता है।

औषधि प्रयोग मे—मूल, छाल, सत्व एव प्रसग विशेष पर पत्र का व्यवहार किया जाता है। मूल या छाल की मात्रा २ रत्ती से १ मासा तक, सत्व की मात्रा १ चावल से १ रत्ती तक है।

ध्यान रहे–पित्तप्रकोप की दशा मे, पाचन नलिका के रोगो पर तथा गर्भिणी स्त्री पर इसका प्रयोग घातक होता है।

जड़ की छाल को पानी मे खूब महीन पीसकर त्वचा पर जिस स्थान पर फफोला उठाना हो, लेप करने से फफोला उठ आता है, किंतु त्वचा काली पड़ जाती है,तथा यथायोग्य सम्भाल न करने से यदि वहा व्रण हो जाय तो वह फिर शीघ्र रोपण नही होता। श्लीपद, श्वित्र आदि रोगो पर लेप करने से विस्फोट उत्पन्न होकर फूटने पर सावधानी से चिकित्सा करने से विकार बाहर निकल जाता है। आगे प्रयोग न० ६ देखे।

मुख्य औषधि प्रयोग—

(१) क्षुधानाश पर–मदाग्नि के कारण भूख न लगती हो, तो इसके मूल का महीन चूर्ण, मात्रा ४ रत्ती तक, नित्य प्रात शहद के साथ चाटने से ४-५ दिन में ही पूर्ण-लाभ होता है। अथवा–इसके चूर्ण के साथ समभाग सेधा नमक, हरड और पीपल का चूर्ण मिला मात्रा–३ माशे तक गरम जल मे सेवन करे।

अथवा–इसका चूर्ण २ मा. तक लेकर सोठ, काला नमक और पोदीना १-१ माशे इन सबको १० तोला जल के साथ पीस छान कर पीने से अजीर्ण का पाचन होकर भूख अच्छी तरह लगती है।

अग्निमाद्य एव अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, आध्मान आदि के बहुत काल तक बने रहने से यदि क्षय विकार की सभावना हो, तो इसके चूर्ण के साथ बायविडग और नागरमोथा इनका समभाग चूर्ण अच्छी तरह खरल कर शीशी मे भर रक्खे। हवा न लगने दें। यह त्रिमदचूर्ण है–मात्रा ३ रत्ती से १ माशे तक प्रात साय शहद के साथ सेवन करते रहने से अफरा दूर होता, दस्त साफ होने लगता, तथा पाचन शक्ति का सुधार होकर नियमित

भूख लगने लगती है, भोजन मे रुचि एवं मन मे प्रसन्नता उत्पन्न होती है।

(२) संग्रहणी पर—मूल या छाल के चूर्ण को १ मासा तक की मात्रा मे तक्र के साथ सेवन करने से लाभ होता है। इस चूर्ण के साथ हरड, और सोठ का भी चूर्ण मिला देने से कफ की संग्रहणी शीघ्र दूर होती है। इसे हरड, सेंधानमक और पीपलामूल के चूर्ण को मिला कर तक्र के साथ या वैसे ही जल के साथ भी दिया जाता है। उक्त प्रयोगो से बडी और छोटी आंतो की शिथिलता से उदर मे कभी कब्जी और कभी दस्त लगने की जो अव्यवस्था होती है वह दूर हो जाती है। अथवा—इसके चूर्ण के साथ हाऊबेर और हीग के चूर्ण को, या पचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक व सोठ) सहित इनके चूर्ण को तक्र के साथ पिलाना भी हितकर है। अथवा—इसके मूल के क्वाथ और लुगदी के द्वारा सिद्ध किये गये घृत का सेवन भी विशेष लाभकारी होता है।[1] शास्त्रोक्त चित्रकाद्यरिष्ट का सेवन भी पुरानी संग्रहणी, आमातिसार आदि पर उत्तम लाभदायक है।

(३) अर्श पर—इसकी जड के चूर्ण को दूध मे पका कर उसका दही जमा लेवें, अथवा—जड को पानी के साथ महीन पीस कर मटकी के भीतर लेप कर, लेप के सूख जाने पर उसमे दही जमा कर, तथा उसको उसी मे मथ कर, उस तक्र को पान करने एव उसी तक्र के साथ पथ्यान्न सेवन करने से अर्श मे विशेष लाभ होता है। अथवा—इसकी जड का महीन चूर्ण मात्रा ४ रत्ती से १ मासा तक नित्य ताजे तक्र के साथ (तक्र १ बार मे ५ से १० तोले तक लेवें) सेवन करते रहने से भी लाभ होता है, किंतु इस प्रयोग को लगातार ६ मास तक करना चाहिये। अथवा—इसके छायाशुष्क पत्रो को पानी के साथ घोट छान कर पीते रहने से वादी बवासीर दूर होती है, तथा कफ, कृमि और संग्रहणी पर भी यह लाभदायक है।

अर्शांकुरो पर—इसकी छाल का चूर्ण तथा सुहागा, हल्दी, और पुराना गुड समान भाग लेकर मरहम कर मस्सो पर लगाते रहने से वे नष्ट हो जाते है। (वृ. द.)

(४) यकृत, प्लीहा आदि विकारो पर—चित्रकमूल १ सेर जौकुटकर १६ सेर जल मे पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर उसमें १ पाव गुड मिला पुन. पकने देवें। घनीभूत हो जाने पर उसमे त्रिकुट, सौंफ, कूट, हरड, नागरमोथा, दालचीनी, वायबिडंग, इलायची, और चित्रक मूल का चूर्ण २-२ तोले मिला रक्खें। मात्रा—१ तो तक नित्य सेवन से अग्निदीप्त होती है, एवं यकृत, प्लीहा, गुल्म, अर्श रोग नष्ट होते हैं। (भा. भ.)

शास्त्रोक्त चित्रकाद्यरिष्ट, चित्रकादि क्षार, चित्रकादि लोह आदि भी यही कार्य करते हैं। अथवा—सरल प्रयोग त्रिमद (चित्रक, नागरमोथा और वायविडंग) का है, तीनों का समभाग महीन चूर्ण मात्रा १ मा प्रात सायं शहद से चटावे। १ महीने में प्लीहा एवं यकृत विकृति दूर होकर बार-बार आने वाला ज्वर नष्ट हो जाता है। तथा शक्ति की वृद्धि होती है। अथवा—

इसकी छाल के महीन चूर्ण को ग्वारपाठा के गूदे पर बुरक कर नित्य प्रात सेवन करने से विकृत प्लीहा वृद्धि पर शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—प्लीहा वृद्धि पर—इसकी जड की ताजी छाल ६ रत्ती खूब महीन पीस कर ३ गोलिया बनालें। प्रात केवल एक बार खाली पेट १ पके केले के गूदे मे तीनों गोलियो को लपेट कर खा जावें। इससे प्लीहा तथा अन्य उदर विकार शीघ्र नष्ट होते हैं।

नोट—वातज प्लीहा में चित्रक, पित्तज में हल्दी, कफज मे धात्री पुष्प तथा त्रिदोषज मे अर्क पत्र देते हैं। (भै. र.)

इन विकारो पर—इसके ताजे पत्तो का स्वरस फिल्टर-पेपर मे छान, मृतसंजीवनी सुरा मे मिला नित्य २० बूंद सेवन करते है। अथवा चित्रक के क्षार की मात्रा १ रत्ती तक शहद के साथ सेवन कराते है।

वाह्य प्रयोग—स्प्रिट योग से इसका तीक्ष्ण टिंचर

---

[1] यह घृत गुल्म, शोथ, उदररोग, प्लीहा, शूल व अर्श का भी नाशक है [च. द] आगे विशिष्ट योगों मे चित्रकोत्थित घृत देखें।

तैयार कर यकृत, प्लीहा आदि की सूजन पर लेप करने से अथवा इसकी जड को काजी में पीसकर प्रलेप करने से भी यथेष्ट लाभ होता है।

(५) गुल्म शोथ आदि पर—उक्त त्रिमद चूर्ण का प्रमाण इस प्रकार प्रयोग करें—इसकी मूल का चूर्ण ४ रत्ती, वायविड ग ६ रत्ती, और नागरमोथा १ माशा (यह १ मात्रा है) एकत्र चूर्ण को, ६ माशा बादाम तेल में मिला प्रतिदिन सेवन से गुल्म, शोथ, यकृत की सूजन, कोष्ठबद्धता, और बवासीर पर भी लाभ होता है।

उक्त चित्रक घृत विशिष्ट योगो मे देखें–(यह गोघृत के योग से सिद्ध किया हुआ हो) के सेवन से भी परम लाभ होता है।

बाह्य प्रयोग—इसकी जड़ को पानी मे पीसकर स्तन, कान या किसी स्थान की सूजन एव गिल्टी आदि पर लेप करते हैं। फफोला पडने पर बार बार घृत लगाते हैं। आगे प्रयोग न. ६ देखे।

(६) फफोला या छाला उठाना, तथा फोडा, व्रण आदि पर—यदि शरीर के किसी दूषित भाग पर फफोला उठाना अभीष्ट हो तो इसकी ताजी छाल को पानी और थोडे से चावल के आटे के साथ पीस कर कल्क कर, उसे वस्त्र पर रख, उस दूषित भाग पर २० से ३० मिनिट तक बाध देवे। पश्चात् निकाल कर उस भाग पर केवल चावलो की पुल्टिस बना बाध दे। १०-१२ घटे बाद खोलने पर उस स्थान पर गोल फफोला उठा हुआ दिखाई देगा। किंतु ध्यान रहे, इस प्रकार चित्रक के द्वारा जो फफोला उठता है, उसमे बडी तीव्र जलन होती है। अत: इस प्रकार फफोला उठाने का प्रयत्न अन्य साधनों के अभाव में ही किया जाता है, जबकि फफोला उठाने की अत्यन्त ही आवश्यकता हो, अन्यथा नही।

व्रणादि पर इसकी छाल को पीस कर लेप करने से फोडे और घाव आदि शीघ्र पक कर फूट जाते है। परिपक्व व्रणो पर इसका लेप करने से वे अच्छी तरह फूट जाते तथा फूट कर पीव बह जाती है।

फोड़ो पर—इसके पत्तो को गरम कर बाधने से वे बैठ जाते हैं।

(७) शरीर के दाग, फोडा-फुन्सी, खाज, दाद पर—इसकी जड को पुराने सिरके मे घिस कर लगाते रहने से शरीर के काले, श्वेत सब प्रकार के दाग दूर होते है।

मूल-छाल के चूर्ण को खूब महीन कर करज तैल मे पकाकर लगाने से फोडा-फुन्सी, खुजली आदि मे लाभ होता है। अथवा—

मूल-छाल को महीन पीसकर दो गुने मक्खन में मिला, कासे की थाली में थाली को टेढ़ी कर धूप मे रख दें। मक्खन पिघल कर नीचे की ओर सचित होने पर उसे सावधानी से शीशी मे भर रक्खे। इसे लगाने से खाज, दाद, फोडा-फुसी आदि शीघ्र दूर होते हैं। अथवा—

ताजी-मूल को कूट पीस कर (थोडा जल मिला लें) ५ तोले तक रस को वस्त्र मे निचोड लें। फिर ताजे नारियल के दूध आध सेर मे मिला मंदाग्नि पर पकावे। गाढा हो जाने पर शीशी मे भर रक्खे। इसके लगाते रहने से भी खाज, फोडा-फुसी पर उत्तम लाभ होता है। दाद पर तो केवल इसकी छाल को खूब महीन पीस कर घृत या व्हेसलीन मे मिला लगाने से भी लाभ हो जाता है।

चित्रक-मलहम—(व्रणो पर)—इसके पचाङ्ग २० तोले को जवकुट कर अठगुने जल मे पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर मलकर छान ले। फिर कलईदार कढाई में मदाग्नि पर पकावें। गाढा होने लगे तब उसमे राल, सफेदा, मुर्दासग, सिन्दूर तथा पारा-गंधक की कज्जली ६-६ माशे मिलाकर अच्छी तरह घोट कर रखले। घोटते समय इसमे १० तोले उत्तम मोम मिला लेना चाहिये। यह मरहम व्रणो को बहुत शीघ्र अच्छा कर देता है।

(८) उपदंश, वद आदि पर—उपदश के कारण शरीर मे फोडा, फुंसी आदि हो, अङ्गभङ्ग, तालू मे छेद, नासिका का बैठ जाना आदि विकार हो, तो प्रति-दिन इसके पचाग का क्वाथ, पथ्य परहेज के साथ सेवन करने से ३ माह मे पूर्ण लाभ होता है। ध्यान रहे, फिरंग या उपदश की द्वितीयावस्था मे यह अच्छा कार्य करता है।

उपदंश-जन्य वद (व्रध्न पिडिका) पर इसकी जड को नीबू रस मे पीसकर लगावे ।

(६) श्वेत कुष्ठ, मडल कुष्ठ आदि पर—इसकी जड की मात्रा १ माशा तक चूर्ण २॥ तो० ताजे छने हुए गोमूत्र (या पचगव्य) के साथ मिला प्रात नित्य १ बार ३ या ६ माह तक सेवन करते रहने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है । साथ ही वाह्य प्रयोगार्थ इसकी छाल को दूध, अंगूरी सिर्का या नमक और पानी के घोल के साथ पीस कल्क बना लेप करे ।

अथवा—जड की ताजी छाल १ तोला और बावची १० तोला दोनो का महीन चूर्ण कर काच की शीशी मे भर रक्खे । नित्य प्रात साय १ से २ मासे की मात्रा मे जल के साथ खिलावे, तथा उसी चूर्ण को श्वेत कुष्ठ के दागो पर जल के साथ खूब महीन घोट कर लेप करे और धूप मे वह स्थान जब-तक गरम न हो जाय तब तक बैठे । इस विधि को आलस्यरहित हो नित्य करें । पथ्य पूर्वक रहे, तैल आदि का सेवन न करे । लेप के लिये—इसकी ताजी पत्तियो को गोमूत्र मे पीस कर गरम कर लेप करते रहने से भी लाभ होता है ।

अथवा—इसकी जड छाल के चूर्ण को—भागरा (भृंगराज) के रस की ७ भावनाए देकर शीशी मे भर रक्खे । मात्रा—३ माशे तक चूर्ण, शहद १ तोला के साथ सेवन करे । तथा सरफो का (शरपुंखा) पचांग १ तो० जौकुट कर १ पाव पानी मे पकाकर ५ तो० रहने पर छानकर १ तो० शहद मिला पी लेवें । साथ ही उक्त चूर्ण को गोमूत्र में पीस कर श्वेत कुष्ठ पर लगावें, विशेष लाभ होता है । ध्यान रहे इसकी छाल या पत्ती के लेप से फफोला या दाने पड़ जाने पर घृत या मक्खन लगाते रहे । अथवा—

चित्रक तैल—चित्रक स्वरस १ सेर, अमलतास के पत्तो का रस १ पाव, तथा हल्दी, बावची, त्रिफला, अंजीर वृक्ष की छाल तथा अर्क मूल की छाल प्रत्येक २-२ तो० कूट-पीस कर मिलाले । उसमे १ सेर तिल-तैल मिला तैल सिद्ध करले । इस तैल की मालिश से कुष्ठ, श्वेत कुष्ठ, दाद आदि चर्मरोग शीघ्र नष्ट होते है ।

मंडल कुष्ठ पर—इसकी मूल को गोमूत्र या ताजे जल के साथ पीस कर लेप करने से, तथा फिर उसे ५ मिनिट बाद पोंछ कर उस पर सम्हालू या निर्गुण्डी के बीजों को पीसकर लगाते रहने से लाभ हो जाता है ।

(१०) वातरोगो पर—मूल-छाल का चूर्ण ४ से ८ रत्ती तक नित्य १ बार, तिल तैल १ तो० मे मिला सेवन करावें । १ माह मे वातरोग शमन हो जाता है ।

आमाशयगत वात-प्रकोप पर—इसकी मूल, इन्द्र जौ, पाठा, कुटकी, अतीस और हरड, प्रत्येक ४-४ मा० लेकर महीन चूर्ण बनालें (यह शास्त्रोक्त षड्धरण योग है) मात्रा—१॥ मा० से ३ मा० तक सुखोष्ण जल के साथ ६ दिन तक सेवन करने से यथेष्ट लाभ होता है । (भा० प्र०)

संधिवात पर—मूल को शराब (मद्य) के साथ पीस-कर, उसमे थोडा सेधा नमक मिला, वेदना-स्थान पर लेप करने से शीघ्र वेदना शात होती है । विशिष्ट योगों मे चित्रकादि चूर्ण देखे ।

यदि गठिया की विशेष पीडा हो, तो इसकी छाल को दूध के साथ पीस पुल्टिस बना बाध देवे । १०-१५ मिनिट बाद पुल्टिस को उतार देवे । शोथयुक्त वेदना दूर हो जावेगी ।

आमवात या शून्यवात पर—छाल को पानी मे पीस कर या इसके चूर्ण को तैल में मिलाकर लेप या मर्दन करे ।

(११) पाडु और कामला पर—मूल-छाल के चूर्ण को आमला-स्वरस की तीन भावनाएं देकर उचित मात्रा मे रात्रि के समय गोघृत के साथ सेवन कराने से पाडु रोग मे लाभ होता है ।

कामला व कुम्भ कामला हो, तो इसकी जड २ भाग तथा श्वेत अपामार्ग की जड १ भाग, दोनो का महीन चूर्ण कर रक्खे । मात्रा—१ से १॥ मा० तक गाय की छाछ के साथ सेवन करे । १५ दिन मे पूर्णतया लाभ होता है ।

(१२) कास, श्वास आदि कफ-विकारो पर—मूल का महीन चूर्ण १ मा० तक प्रतिदिन प्रात-सायं शहद

के साथ सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। अथवा—इसके पत्ते पर थोडा काला नमक रखकर चबाकर खाने से भी श्वास एवं कफ की खांसी मे लाभ होता है।

मूल-छाल का चूर्ण और सुहागे की खील समभाग खरल कर शहद से सेवन करने से कफ के प्रकोप मे शीघ्र लाभ होता है।

इसकी जड, पीपलामूल, पीपल और गजपीपल समभाग के चूर्ण को १॥ या २ मा० को मात्रा मे शहद से चाटने से कफज-कास नष्ट होती है।

(१३) मधुमेह पर—इसके पचांग का मोटा चूर्ण लगभग ६ मा० को ६ छटाक जल मे मिला मंदाग्नि पर (मिट्टी के पात्र मे) पकावें। १ छटाक शेष रहने पर छानकर कुछ ठडा हो जाने पर नित्य प्रात सेवन करें। २१ दिन सेवन से अवश्य ही मधुमेह और वहुमूत्र मे लाभ होता है। अथवा—

इसका पचाग और किसमिस १-१ तो० दोनो को जौकुट कर १ पाव पानी मे पकावे। १० तो० शेष रहने पर छानकर नित्य रात्रि के समय ४२ दिन तक सेवन करें। (ये दोनों प्रयोग श्री०के० शिवचन्द्र जी राजवैद्य हरिद्वार वालो के अनुभूत है।)

(१४) विषम-ज्वर पर—विशेषतः प्लीहा एवं यकृत की वृद्धि के कारण ज्वर न मिटता हो, तो इसके मूल की योजना त्रिकटु के चूर्ण के साथ करने से शीघ्र लाभ होता है। इससे रक्ताभिसरण क्रिया तेज होकर क्षुधा की भी वृद्धि होती है। ऐसी अवस्था मे इसकी मूल का क्वाथ नागरमोथा, खस आदि सुगधित पदार्थों के साथ सेवन करानें से भी यथेष्ठ लाभ होता है।

अथवा-इसका मूल-त्वक् चूर्ण १भाग और उत्तममद्य १२ भाग के मिश्रण से निर्मित टिंचर भी विशेष-लाभकारी है। आगे विशिष्ट योगो 'चित्रकासव' देखिए।

(१५) उन्माद आदि मानसिक विकारो पर—मूल चूर्ण के साथ ब्राह्मी और बच का महीन चूर्ण समभाग एकत्र खरल कर मात्रा १ से २ माशा तक, प्रात. सायं (या दिन मे ३वार) गौदुग्ध से देते रहने से उन्माद, योपापस्मार (हिस्टीरिया) आदि रोगो मे लाभ होता है। यदि कफ की अधिकता हो तो इस प्रयोग का सेवन शहद के साथ करावें।

(१) मेद रोग और श्लीपद पर—मूल का महीन चूर्ण १ से ४ रत्ती तक शहद के साथ चाटते रहने से शरीर की स्थूलता में लाभ होता है।

मूल की छाल और देवदारु दोनो को गोमूत्र मे पीस कर लेप करते रहने से हाथी पाव [श्लीपद] मे लाभ होता है।

(१७) शीत पित्त पर—अन्न का हाजमा ठीक न होने या विदग्धाजीर्ण के कारण पित्तप्रकोप होकर जो शरीर पर श्वेत या लाल वर्ण के खुजलीयुक्त चकत्ते उठ आते हैं तो त्रिमद चूर्ण (चित्रक, मोथा, विडग) प्रात सायं गौदुग्ध के साथ सेवन करने तथा पथ्य मे केवल दूध-भात का सेवन करते रहने से शीघ्र लाभ होता है। मिर्च गरम मसाले आदि की कोई चीजे नही खानी चाहिए।

(१८) जलन या दाह पर—अजीर्ण के कारण या गरम मसाला, लाल मिर्च आदि के सेवन से या विकृत हुए वात के कारण जो उदर, कण्ठप्रदेश या हाथ पैरो मे दाह हो, तथा स्त्रियो के श्वेतप्रदर की अवस्था मे जो पीठ एवं उदर आदि प्रदेशो मे दाह या जलन होती हो तो इसके मूल का हिम इसकी मूल और खस समभाग लगभग ६-६ माशे कूटकर १० या१५ तोला जल मे रात्रि के समय भिगोकर प्रात खूब मल एवं मोटे वस्त्र से छान कर दिन में दो बार पिलाने से शीघ्र ही लाभ होता है।

(१९) नेत्र के विकारो पर चित्रकादि क्वाथ—इसकी जड़, त्रिफला, पटोलपत्र और इंद्र जौ के क्वाथ मे घृत मिलाकर रात्रि के समय पीना नेत्रों के लिए हितकर एवं विशेषत तिमिर रोगनाशक है। [वं से]

(२२) बाल रोगों पर—यदि सूखा [बाल शोष] रोग हो तो छाल के महीन चूर्ण १ भाग में ८ भाग मृनसजीवनी सुरा या रेक्टीफाइड स्प्रिट मिला आसव या टिंचर बना रखे। मात्रा—२ से ५ बून्द मातृदुग्ध मे या जल मे मिला प्रात साय पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

डिब्बारोग [उत्फुल्लिका] हो, तो मूल का महीन चूर्ण मात्रा—आधी रत्ती, मातृदुग्ध और शहद के साथ

मिला पिलावें। अथवा इसकी मूल को माता के दूध मे घिसकर थोडा शहद मिला पिलावे। ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

जिस स्त्री के बच्चे इस रोग से मर जाते है, उस स्त्री को गर्भ रहने पर ८ मास के बाद ९ वें मास से प्रसव काल तक इसके फल का महीन चूर्ण अर्ध रत्ती से १ या २ रत्ती तक थोडा गुड मिला सेवन करावे और ऊपर से गोदुग्ध १ पाव तक पिलाते रहे, दिन मे केवल एक बार। बच्चा हो जाने पर यह प्रयोग ४० दिन तक चालू रखने से माता का दूध शुद्ध होकर बच्चा निरोग रहता है। बच्चे की बाल घुटी मे इसकी मूल और असगंध दोनो को थोडी २ मात्रा में घिसकर पिलाते रहना चाहिए। रक्तातिसार या आव रक्त का विकार हो तो इसका चूर्ण अर्ध रत्ती और लोध २ रत्ती शहद मे घिस कर चटावे।

(२१) स्त्री रोगो पर—सूतिका विकार प्रसव के पश्चात्-कई प्रसूता स्त्रियो का मुंह आ जाता है [मुख मे छाले आदि] तथा दस्त लगते है, योनिमार्ग मे शोथ, खुजली और क्षत एक साथ या एक एक करके होते हैं तथा अन्यान्य विकार होते हैं। ऐसी अवस्था मे इसके मूल चूर्ण को उचित मात्रा मे छाछ [तक्र] के साथ मिलाते रहने से, शीघ्र ही उक्त विकारो का जोर घट जाता है। अथवा इसके हरे ताजे पत्तो को छाछ के साथ पीसकर पिलाते हैं।

यदि सूतिका ज्वर हो तो इसकी मूल २ से ६ माशे तक तथा निर्गुण्डी [सम्हालु] के मूल की छाल १ तोला इन दोनों को जौकुटकर एक पाव जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर ठडा हो जाने पर उसमे १ तोला शहद मिला सेवन कराते है। इससे ज्वर हलका हो जाता है, शरीर मे उत्तेजना होती है तथा गर्भाशय उत्तेजित होकर दूषित आर्त्तव का स्राव होता, एव मक्कल शूल (After Pain) की सभावना नहीं रहती है।

मूढ गर्भ निस्सारणार्थ—यदि बच्चा गर्भाशय के भीतर ही मृत हो गया हो, तो उसे सरलता से बाहर निकालने के लिए—मूल छाल का महीन चूर्ण ४ से ८ रत्ती की मात्रा में निर्गुण्डी मूल के क्वाथ के साथ पिलाते हैं। तथा साथ ही साथ उक्त चूर्ण को मलमल वस्त्र के टुकडे मे पोटली बाधकर योनि मार्ग के अन्दर धारण कराते हैं।

गर्भाशय के मुखावरोध पर—गर्भाशय का मुख सकुचित हो जाने से गर्भधारणा नही हो पाती, ऐसी दशा मे बिना शल्य कर्म के भी चित्रक के उपचार से लाभ होता है—मूल छाल का क्वाथ कर ठडा हो जाने पर छानकर गर्भाशय के मुख पर पतलीधार से सिंचन [डुश] करते है। किंतु-इस तिक्त के प्रथम योनि की दीवारो मे घृत का लेपकर दिया जाता है। प्रयोग बहुत तीक्ष्ण है, अत थोडी सावधानी की आवश्यकता है। इस प्रयोग से गर्भाशय का मुख खुल जाता है।

वन्ध्याकरण योग—मूल छाल चूर्ण १ माशे की मात्रा में २० तोला कांजी मे मिला पकावें। अर्धावशिष्ट ५ तोले रहने पर रजोधर्म के बाद पिलावें। ३ दिन तक पिलाने से निश्चय ही स्त्री वन्ध्या हो जाती है।

—कुचिमार तन्त्र

(२२) चूहे के तथा सर्प के विष पर—मूल चूर्ण को तिल तेल मे पकाकर हाथ पैर के तलुवो तथा सिर के तालू पर मालिश करने से चूहे के विष पर लाभ होता है।

सर्प विष—चित्रक मूल ६ तोला, केतकी की जड [बूटी दर्पण काले बेल का कन्द १ कहा है] और कठूमर की जड ३-३ तोला एकत्र जल मे घोट छानकर [जल आध सेर से १ सेर तक] सर्पदष्ट व्यक्ति को थोडी थोडी देर से ३-४ बार मे पिला देवे, तथा उसे गोबर के ढेर पर बैठाकर, उसके सिर पर शीतल पानी की धार छोडे। ऐसा करने से १-२ प्रहर मे विष उतर जाता है, पश्चात् कालीमिर्च और घृत के मिश्रण को यथेच्छ [आध सेर तक] पान करावे।

विशिष्ट प्रयोग—

१ रसायन कल्प—चित्रक मूल का अथवा इसके छायाशुष्क पचाङ्ग का चूर्ण रक्खे। मूल चूर्ण की मात्रा २ से ८ रत्ती तक, तथा पचाग चूर्ण १ से ४ मा. तक गो घृत, मक्खन अथवा शहद के साथ [अथवा घृत के

यथायोग्य मिश्रण के साथ) अथवा गोदुग्ध या मक्खन-युक्त तक्र के साथ, रसायन रूप मे यथायोग्य सावधानी (पथ्य, सयम एवं ब्रह्मचर्य-पालन पूर्वक) कम से कम १ माह (अधिक से अधिक १८ माह) तक सेवन करने से शरीर मे बल, कान्ति, मेधा, स्मरण-शक्ति एवं आयु-वृद्धि होती है। जठराग्नि प्रज्वलित होती, नेत्रो की ज्योति बढती, बाल काले, दांत दृढ एव शरीर-आरोग्य होता है। पथ्य मे केवल दूध और भात का सेवन करना चाहिये।

वात रोग, श्वेत कुष्ठ और अर्श के नाशार्थ अनुपान-योजना क्रमश: तैल, गोमूत्र और तक्र की करनी चाहिये[1]।

कल्प-प्रयोग आषाढ, कार्तिक अथवा मार्गशीर्ष (अगहन) मास मे करना उत्तम होता है।

(२) चित्रक घृत–चित्रक का क्वाथ (घृत से चौगुना) एव चित्रक का कल्क (घृत से चतुर्थांश) लेकर यथाविधि घृत सिद्ध करले। ग्रहणी, गुल्म, शोथ, उदर, प्लीहा, शूल तथा अर्श आदि रोगो मे हितकारी है, जठराग्नि को वढ़ाता है। मात्रा–६ मासे।

चित्रक घृत नं० २ (उदर-रोग पर)—गोघृत १॥ सेर ८ तो, चित्रक मूल का कल्क ४ तो, यवक्षार ४ तो, जल ६ सेर ३२ तो और गोमूत्र ३ सेर १६ तो. लेकर यथाविधि घृत सिद्ध कर लें। मात्रा–१ से ३ मा. तक उदर-रोगी को सेवन करावे। (भै० र०)

चित्रकादि घृत के अन्य पाठ ग्रन्थो मे देखिये।

चित्रकोत्थितघृत–एक मटकी मे इसकी मूल को पीस कर लेप कर दे, तथा उसमे दूध (पकाया हुआ) भरकर जामन देकर जमादें। दही जम जाने पर मथकर घृत निकाल लें। फिर इस घृत को चौगुने तक्र एवं चतुर्थांश चित्रक मूल के कल्क से सिद्ध करले।

यह घृत शोथ, अर्श, अतिसार, वायु, गुल्म और प्रमेह का नाशक एव अग्नि-प्रदीपक है।

उक्त दही के मक्खनयुक्त तक्र से यवागू आदि आहार पदार्थ बना कर खिलाने से भी लाभ होता है। (वं० से०)

(३) चित्रकादिक्षार–चित्रक मूल, पीपल, सेंधा नमक, बच और घृत समभाग लेकर (जौकुट कर) एकत्र मिला, एक कढाव मे भर कर आग पर रक्खे। सब जल कर भस्म हो जाने पर (ठीक तो यो होगा कि सब वस्तुओ को कढाई मे डाल कर ऊपर से कोई पात्र ढक कर भट्टी पर चढादे। सब चूर्ण जल कर भस्म हो जाने पर नीचे उतार स्वाग शीतल होने पर महीन चूर्ण करे) शीशी मे भर मजबूत कार्क लगा कर रक्खे। मात्रा–१ मा तक, दूध, मद्य, या उष्ण-जल के साथ सेवन से प्लीहा, अर्श, शूल और गुल्म का नाश होता है। (भा० भै० र०)

(४) चित्रक-गुटिका–चित्रक ४ तो, निसोत २ तो, पीपल १ तो., गुड ३२ तो और हरड १६ तोला सब का महीन चूर्ण कर गुड मे मिला, कूट कर १० गोलियां बना ले। प्रति १० वे दिन १ गोली गर्म जल से लेने से मडल कुष्ठ, खुजली, अर्श और ग्रहणी–विकारो मे लाभ होता है। (ग० नि०)

नोट—हरड़ २० पल (८० तो०) डालने के लिये लिखा है।

(५) चित्रकादि–पाक–(परिणामशूल पर)–चित्रक-मूल, निसोत, दंतीमूल, वायविडग और त्रिकटु का समभाग चूर्ण कर, सब चूर्ण के समभाग गुड की चाशनी मे मिला पाक जमावे या मोदक बना ले। ३ मा से १ तो तक की मात्रा मे उष्ण जल से लेने से परिणाम शूल शीघ्र नष्ट होता है। (हा० स०)

नोट—पाको के अन्य उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृ० पाकसंग्रह ग्रन्थ मे देखे।

(६) चित्रकासव (ज्वर-नाशक)—मूल-छाल का चूर्ण १ भाग, तथा अत्युच्च नम्बर का मद्य १२ भाग एकत्र मिला, बोतल मे भर, अच्छी तरह मुख मुद्रा कर ४ दिन सुरक्षित रक्खे। फिर छान कर शीशियो में भर रक्खे।

१५ से ४० बूंद तक, १ तो० जल के साथ या मधु में मिला कर देने से विषमज्वरो को थोडी देर मे पसीना लाकर उतार देता है। ज्वर उतारने एव नष्ट करने तथा क्षुधा–वृद्धि मे विशेष गुणकारी है। यह फिना-

---

[1] तैलेन लीढो मासेन वातान्हन्ति सुदुस्तरान्।
मूत्रेण श्वित्र-कुष्ठानि पीतस्तक्रेण पायुजान्॥
(वा० भ० उत्तरस्थान अ० ३९)

स्ट्रीन आदि डॉक्टरी दवाओ की तरह कोई दुर्गुण नही मिलता।

नोट—आसव एव अरिष्ट के अन्य प्रयोग हमारे व० आसवारिष्ट संग्रह मे देखें।

चित्रकादि चूर्ण, चित्रकादि क्वाथ, चित्रकादि अवलेह, चित्रकादि तैल आदि आदि के प्रयोग-शास्त्रो मे देखिये।

चित्रक (काला या नीला) (*PLUMBAGOEAPENSIS*)



इसमे और लाल या श्वेत चित्रक मे केवल फूलो का रंग भेद है। इसके फूल नीले रंग के होते हैं तथा जड भी कुछ काली सी होती है, किन्तु जड की कलौंछ स्पष्ट-दृष्टिगोचर नहीं होती। शायद किसी की जड काली भी होती है। यह चित्रक आजकल दुर्लभ ही है। शायद ही किसी बाग मे यह लगाया हुआ हो जैसा कि ठा० बलवन्तसिंह एम एस सी अपनी वनौषधि दर्शिका मे लिखते है कि यह प्राय बागों मे लगाया हुआ मिलता है।

नाम -

सं०—कृष्ण चित्रक, श्याम चित्रक आदि।
हि —काला चीता, नीला चित्रक, कालाचितउर।

कहा जाता है कि जहा काला बछनाग होता है, उसी जगल मे यह भी होता है।

गुणधर्म—

कहा जाता है, तथा किसी निघण्टु मे लिखा है[1] कि शरीर के जिस स्थान के केश श्वेत हो, वहा इस चित्रक की जड को घिस कर लगाने से श्वेत केश सब झड जाते है, और फिर सदैव बाल काले निकलते है, किन्तु ऐसा करने से सूजन और दाह पैदा हो जाती है। ऐसी अवस्था मे उस स्थान पर घृत या मक्खन लगाते है। इसके खाने से भी बाल काले निकलते है।

इसकी जड को दूध मे डालने से दूध का रंग तत्काल काला हो जाता है। गौ इसके क्षुप को केवल सूंघ ले तो उसका दूध काला हो जाता है। अथवा जिस काले चित्रक को गौ ने सूंघ लिया हो, उसकी जड को लाकर यदि दूध मे डाला जाय तो दूध काला पड जाता है।

[1] केशाः कृष्णा प्रजायन्ते कृष्ण चित्रक भक्षणात्।
कृष्ण कृष्णा समस्पाच्य गोभिराघ्रातमेव वा॥
क्षीर मध्ये क्षिपेद्वापि क्षीर कृष्णा प्रजायते। इति

चिना—दे०—नागदौन। चिनगारी—दे०—भारगी। चिना (चीना)—दे०—चेना।

चिनाई घास (*GRACILARIA LICHENOIDES*)



जापानी इसिंग्लास (Jajanese Isinglass) आदि कहते हैं। यह जापान के तटवर्ती प्रदेशों मे विपुलता से होती है। प्रस्तुत चिनाई-घास की अपेक्षा यह गुणों में उत्कृष्ट होती है।

नाम—

हि०—चिनाई घास, लंका की घास, पाची (लंका की सिंहली भाषा मे अगर अगर)। अं०—सीलोन-मॉस (Cevlon mo..), सी वीड्स (Sea weeds)। ले०—

ग्रेसी लेरिया लायचेनोइडेस।

रासायनिक संघटन–इसमे वानस्पतिज खाद्यांश (Pectin or Vegetable-Jelly) प्र० श० ४० से ८० तक, लाईम सल्फेट व फास्फेट, वसा, लोह आदि पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

स्नेहन, पौष्टिक, अति लघु, पचने मे बहुत हलकी है। इस घास का शुष्क महीन चूर्ण बनाकर उसमें १०० गुना पानी मिलाकर पकावे। लपसी जैसा गाढा हो जाने पर उसमे नीबू-रस अथवा तेजपात या दालचीनी-चूर्ण और शक्कर तथा किंचित् मद्य मिश्रण कर रोगमुक्त निर्बल व्यक्ति को सेवन कराते है। इसे स्त्रियो के प्रदर एव अति रजस्राव आदि मे भी सेवन कराते है।

१ भाग उक्त चूर्ण मे ४० भाग पानी मिला कर सिद्ध किया हुआ क्वाथ, २॥ से ५ तो० की मात्रा मे, वक्षस्थल के विकार, तथा अतिसार, आमातिसार, संग्रहणी आदि आन्त्र-सम्बन्धी विकारो पर सेवन कराते है। क्षय के विकार मे भी यह लाभदायक है।

चिनार (*PLANTANUS GRIENTALIS*)

यह अपने ही चिनार कुल (Plantanaceae) का एक जंगली बहुत ऊंचा पेड है। पत्र—रेंडी के पत्र जैसे किंतु छोटे हाथ की हथेली जैसे स्वाद मे कडवे कसैले। पुष्प–पीत वर्ण के छोटे, फल—पीले, धूसर रंग के कुछ ललाई लिए हुए लम्बगोल, काष्ठमय होते हैं।

इसकी छाल श्वेत धूसरवर्ण की मोटी, स्वाद मे कडवी होती है। यह उत्तर पश्चिमी हिमालय एवं काशमीर मे अधिक होता है।

नाम--

हि०–चिनार, चनार [कश्मीर में बुइन, बुंज]
ले०–प्लेन्टेनस ओरिएन्टेलिस।

रासायनिक संघटन—

इसमे अलन्टोईन (Allantoin) तथा एस्परागीन (Asparagin) नामक दो मूल तत्व पाये जाते है।

गुण धर्म व प्रयोग--

शीत, रूक्ष, लेखन, संग्राही, वेदनास्थापन, शोथहर है।

दूषित व्रणो–छाल को जलाकर तथा महीन पीस कर दुर्गन्धयुक्त दूषित व्रणो पर बुरकते हैं। किलास कुष्ठ एव त्वचा के छिलके उतरते हों, त्वचा मे दरारे पडी हो तो छाल को पानी मे पीस कर लेप करते हैं।

कफज शोथ तथा सधिशोथ पर इसके पत्तो को पीस कर लेप करते है। यह पत्र-लेप व्रणों पर भी उपयोगी है, इससे व्रण शीघ्र भर जाता है।

दत-शूल तथा मसूढो की सूजन पर इसकी छाल को सिरका मे पकाकर कुल्ले कराते हैं।

नकसीर (नाक से रक्तस्राव) पर–फूल और फल को महीन पीसकर नस्य देते हैं।

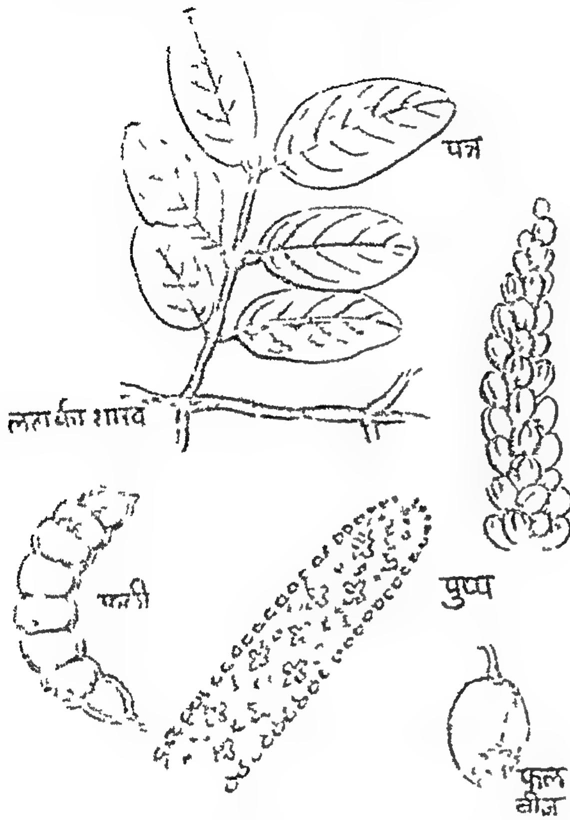
इसके फल तथा पत्तो का लेप नेत्राभिष्यन्द आदि नेत्र-रोगो पर साधारण लाभकारी है। छाल का क्वाथ अतिसार मे पिलाते है, किंतु यह फुप्फुस के लिए अहितकर है। इसके अभाव में खट्टे अनार का छिलका लिया जाता है।

चियन (*ENTADA SCANDENS*)

यह शिम्बी-कुल के बब्बूलादि उपकुल (Mimosaceae) की एक अडीन्लता है, जो वृक्षो पर चढी हुई जगलो मे पाई जाती है। काड-मोटा, टेढा धूसरवर्ण, शाखायें-चिकनी, पत्र-कुछ लम्बे से पत्र-दण्ड पर, पत्र–सयुक्त, पक्षाकार गोल, १-२ इंच लम्बे, गहरे हरे रग के; पुष्प आध इंच लम्बे कदुकाकार, ५ दलयुक्त वसत के अन्त मे, फली—

चियन (गारबीज)

ENTADA SCANDENS BENTH.



फली, [illegible], [illegible], ग्रीष्म के आरंभ में, [illegible]-गोल, २ इंच तक लम्बे चिपटे, कड़े, उज्ज्वल होते हैं। बीजों की [illegible], तथा [illegible] में [illegible] रहते हैं। औषधि-कार्य में [illegible] लिए जाते हैं।

यह [illegible] एवं [illegible] प्रदेशों में, पूर्वी बंगाल तथा उष्ण प्रान्तों के जंगलों में पाई जाती है।

नाम--

हि०--चियन, गारबीज, कठबेल इ.। म०--गिरंबी, गारबीज, गरडुल, आठोडी इ०। गु०- पीलापापडा। बं०--गिलगाछ। ले०--एन्टाडा स्कान्डेन्स, ए० पुसीठा [E Pusaetha], एकाशिया स्कान्डेन्स [Acacia scandens]

रासायनिक संघटन--

बीजों में एक प्रकारका चिपचिपा, गदला सा तैल प्र श ७ तथा किंचित् सेपोनिन (Saponin) ग्लुकोसाईड एवं कुछ क्षारीय तत्व पाये जाते है।

गुणधर्म व प्रयोग--

बीज--दाहकारक, वामक, एवं मछलियों के लिए मारक होता है। यह कटि एवं संधिशूल, ग्रंथिक शोथ आदि नाशक है।

काख-विलाई--(काख में जो दाहकारक ग्रंथिव्रण होता है) पर--बीजों का कल्क लेप करने से दाहयुक्त शोथ में शांति प्राप्त होती है। यह बीजों का लेप कटि-शूल, सन्धिशूल तथा हाथ पैरों की सूजन पर भी लगाते है। केशों को स्वच्छ करने के लिए बीजों को पानी में पीस कर लगाते हैं। प्रसूता स्त्री के शारीरिक शूल तथा शीत-वात-निवारणार्थ--फली को अन्य औषधियों के साथ पीस कर क्वाथ या शीत निर्यास पिलाया जाता है। यह ज्वर नाशक भी है। चर्म रोगों पर इसकी छाल का शीत निर्यास दिया जाता है। फोडों पर छाल का क्वाथ लगाते है।

चिरई गोड़ा (*VITEX PEDUNCULARIS*)



नोट---(१) इसकी अन्य कई जातियां हैं। जिसकी जड़ काली सी होती है, वह पीली जड़ वाली की अपेक्षा गुणधर्म में अधिक प्रभावशाली होती है।

(२) यद्यपि स्वरूप में, इससे और काकजंघा [illegible] में कोई साम्य नहीं है, दोनों का कुल भी भिन्न है। [illegible] गुणधर्म में किंचित साम्य होने से कोई कोई इसे भी एक प्रकार की काकजंघा ही

मानते हैं।

(३) इसके और वरुण (वरुन, वर्ना Crataeva Religiosa) वृक्ष के रूप मे कुछ साम्य होने मे कोई कोई इसे ही वरुन मानने का आग्रह करते है। किंतु वरुण और इसके कुल में तथा गुणधर्म में भी विशेष भेद है। यथा स्थान 'वरुण' का प्रकरण देखिये।

(४) इसके वृक्ष पूर्वी बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, आसाम, ओरीसा, खासिया पहाडी, तनासरीम आदि के जंगलो में विशेष पाये जाते हैं।

नाम--

हि०--चिरई गोडा, मिंजुर गोरवा, सिमजंवा मुरगीगोडा, नागफेनी, इ०। बं०--वोरूना गोडा। ले०--वाईटेक्स पेण्डुन्क्युलेरिस।

रासायनिक संघटन

पत्तो मे तथा छाल मे एक उडनशील तैल तथा अधिक मात्रा मे टेनिन एक पिच्छिल पदार्थ एवं कुछ ग्लुकोसाईड जैसा द्रव्य पाया जाता है।

औपध्रिकार्यार्थ इसके पत्र एव मूल-छाल का व्यवहार किया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग--

यह रस मे फीकी, (कडुवी नही है) ज्वरनाशक, वेदनास्थापन है।

मलेरिया जैसे विषम-ज्वरो में; विशेषत काला जार (Black-water fever) जिसमे रोगी का पेशाब काले रग का होता है, यह ज्वर अफ्रीका मे अधिक होता है) मे--इसके ताजे या छाया शुष्क पत्ते ५ तो० को १। सेर पानी मे १० मिनट उबाल कर, नीचे उतार कर १ घंटा अच्छी तरह ढाक रक्खें। फिर छानकर थोडी शक्कर मिला १० से २० तो० की मात्रा मे २४ घंटों मे कई वार पिलाये।

इस फाण्ट का रग व स्वाद चाय के फांट जैसा ही होता है। यह नशा लाने वाला, विषैला या शैथिल्य-कारक नही है। इसका निर्वाध सेवन किया जा सकता है। आधुनिक परीक्षणो से ज्ञात हुआ है कि यह साधारण विषम ज्वरो मे विशेष असरकारक नही है।

चिरचिटा--देखिये--अपामार्ग

चिरपोटी (*ZANONIA INDICA*)

कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की यह लता वर्षा ऋतु में प्राय पहाडी भूमि पर फैली हुई दिखाई देती है। पत्र--धत्तूर पत्र जैसे किंतु बहुत पतले, पुष्प--पीतवर्ण के; फल--छोटे वेर जैसे, चिकने होते हैं।

यह लता बगाल, आसाम, सीलोन एव मलावार के किनारे के प्रदेशो मे विशेष पाई जाती है।

नोट--चिरवोटी इससे भिन्न है, इसी प्रकरण के अन्त में देखिये।

नाम--

सं०--दीर्घपत्रा, कुंतली, पिण्डावली। हि०--चिरपोटी, झीपटा, पनसोखा। म०--चिरपुटी, चिरपोटा। अं०--वन्डोलियर फ्रूट (Landolier fruit) ले०--झेनोनिया इंडिका।

गुण धर्म व प्रयोग

इसके पत्र--वेदना-स्थापन, दाहशांतिकर, आनुलोमिक, भेदनीय, कोथप्रशमन, कृमिनाशक, शोधनीय तथा ज्वर एव पित्तप्रकोप मे लाभकारी है।

फल--चरपरे तथा रेचनीय है।

दाहयुक्त व्रण, सन्धिपीडा, कफ-प्रकोप, श्वास-प्रकोप की दशा मे छाती की पीडा और आक्षेप पर--इसके पत्तो के कल्क को दूध और मक्खन मे मिला लेप करते हैं।

खुजली, फोडा, फुन्सी व जलन पर--पत्तो को पानी मे औटाकर स्नान कराते है।

ज्वर के उपद्रवों पर--ताजे पत्रो का रस पिलाते है। छिपकली आदि विषैले जानवरों के विषनाशार्थ फलो का

ताजा रस लगाते हैं।

नोट—चिरनोटी—उक्त बूटी से भिन्न—कण्टकारी कुल (Solanaceae) के इस बूटी के वर्षायु पौधे २-३ फुट तक ऊंचे, वर्षा ऋतु मे पैदा होते हैं। इसे हिन्दी में—चिरपोटी, तुलसीपति। मराठी मे-चिरपोटी, थानमोडी। गु०-पोपटी, परपोटी, बं०-बुन्तेपरीय, तेकारी, और ले०-फिसीलिस इ डिका (Physelis Indica) कहते हैं।

इस बूटी के फल-स्वादिष्ट, खटमीठे, वेर जैसे ही लगते हैं। इसे अग्रेजी मे विंटर चेरी (Winter-cherry) कहते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग

यह मूत्रल, पौष्टिक तथा विरेचक है। इसके फलो का उपयोग वृक्क की प्रदाहयुक्त शोथ, मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, जलोदर एव कोष्ठवद्धता की दशा मे किया जाता है। बालको के कृमिजन्य शूल आदि उपद्रवो पर पत्तो का रस देते हैं।

स्तन शैथिल्य पर—इसके पचाग को चावलो के धोवन मे पीसकर लेप करते हैं। श्वास के दौरे पर इसकी जड का चूर्ण या कल्क सुहागे की खील के साथ शहद मिलाकर चटाते हैं।

चिरफल—देखिये—तेजवल में। चिरमिटी—देखिये—गुंजा

चिरवल (Hedyotis Umbelata)

मजिष्ठकुल (Rubiaceae) का इसका वर्षायु छोटा पौधा वर्षाकाल मे पैदा होता है। पत्र—छोटे, फल—लम्बगोल, तथा मूल—लम्बी कोमल, नारगी रग की होती है।

मूल से केशरिया रंग तैयार किया जाता है। अतः मूल के लिए ही इसकी काश्त (खेती) भारत के दक्षिण समुद्रतटवर्ति रामेश्वर आदि प्रांतों मे की जाती है।

नाम--

सं०—राजन। हि० और म०—चिरवल। बं०—सुरगुली ले०—हेडियोटिस अम्बेलाटा, हे० इडिका (H Indica) आल्डेनलेंडिया अम्बेलाटा (Oldenlandia umbellata)

गुण धर्म, व प्रयोग

पत्र—वामक, कफनिस्सारक। मूल—कफघ्न व ज्वरहर है।

श्वासरोग, कफप्रकोप, वातनलिका-प्रदाह, तथा क्षय की दशा मे इसके पत्र तथा मूल के साथ ब्राह्मी मिला, क्वाथ (१० गुना जल मे) सिद्ध कर ३ तोला तक की मात्रा मे पिलाते हैं। तथा रोगी को इसके पत्र-चूर्ण को आटे मे मिला रोटी बनाकर खिलाते है।

सर्प आदि विषैले प्राणियो के दश को इसके क्वाथ से धोते है।

उदरदाह या जलन पर—पत्र-रस को दूध व शक्कर मे मिला पिलाते है।

हथेली तथा तलुवों की जलन (विशेषत. ज्वर की दशा मे) मे—पत्र-रस का मर्दन करते हैं।

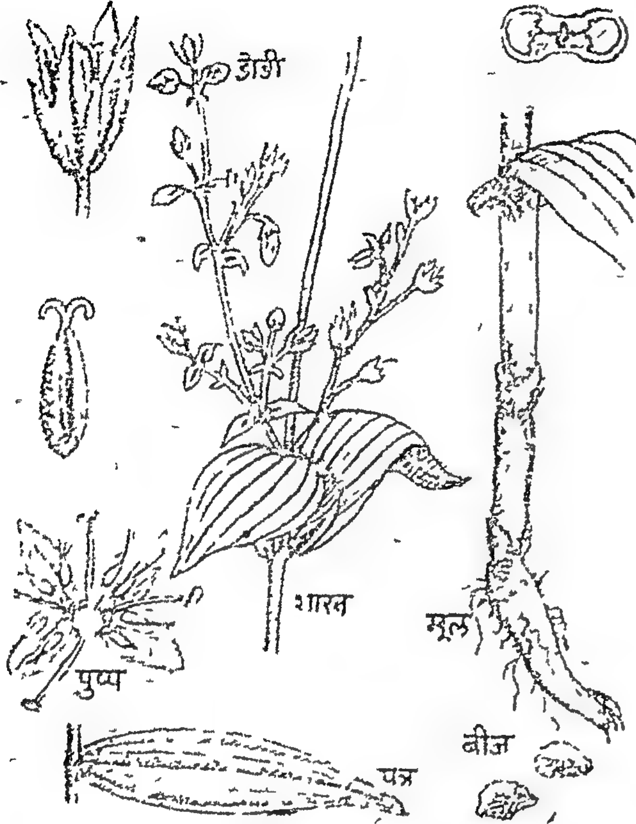
चिरविल्व-देखिये-चिलविल।

चिरायता (Swertia Chirata)

हरीतक्यादि वर्ग एवं भूनिम्ब कुल (Gentiaceae) के इसके वर्षायु या द्विवर्षायु क्षुप २-५ फुट ऊंचे काड—स्थूल ½ से १॥ मीटर लम्बे शाखायुक्त, लम्बगोल, ऊपर की ओर चतुष्कोण, श्यामाभ पीत वर्ण के, पत्र—विपरीत

चिरायता

SWERTIA CHIRATA HAM.



२-३ इंच लम्बे, आध-पौन इंच चौड़े, भालाकार, नीचे के पत्ते कुछ बड़े, ऊपर के छोटे, पुष्प-अनेक शाखा-प्रशाखा युक्त पुष्प-दंडो पर, हरीत, पीत, बेंगनी आभायुक्त, तुर्रेदार छोटे छोटे पुष्प, फली या डोडी, चौथाई इंच की तीक्ष्ण, अण्डाकार, बीज अति-सूक्ष्म व बहुत होते हैं।

शरद ऋतु में यह पुष्पित एव फलित होता है, तब भी औषधि-कार्यार्थ यह तोड कर सुखा लिया जाता है। यह असली कडुवा चिरायता, अपनी जाति के अन्य चिरायतों की अपेक्षा अधिक कडुवा होता है। यह मरेठी भाषा का काडी (काड) चिरायता है। पाला (पत्र) चिरायता कालमेघ है। कालमेघ का प्रकरण देखिये।

प्रस्तुत प्रसग का कडुवा चिरायता हिमाचल के समशीतोष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से भूटान तक खासिया पर्वतमाला एव नेपाल के मोरग प्रदेश में अधिक होता है। तथा मध्यप्रदेश और दक्षिण भारत मे भी विशेषत. पहाड़ी स्थानो पर पाया जाता हे। नेपाली चिरायता कुछ कम तिक्त(अर्ध तिक्त)होने से उसे ही मीठा चिरायता कहते है।

चिरायते के अनेक जातियो[1] मे से प्रस्तुत प्रसग के या नेपाली चिरायते का ही औषधि-कार्य मे विशेष उपयोग किया जाता है।

---

[1] अनेक जातियो में से कुछ जातियों का संक्षिप्त वर्णन--

(१) चि० मीठा (पहाड़ी चि०)--कांड चतुष्कोण, पंखयुक्त, १-३ फुट ऊंचा, पुष्प-नीलाभ श्वेत। पत्र-प्रकरे २-४ इंच लम्बे होते हैं। स्वाद में असली चिरायते की अपेक्षा कम कडवा है स्परशिया एंग्सटीफोलिया (S,Angusti folia) लेटिन नाम है। असली चिरायते में इसका व्यामिश्रण किया जाता है। प्रायः पंजाब और उत्तर प्रदेश में इसका व्यवहार किया जाता है। यह हिमालय मे चिनाव से भूटान तक पैदा होता है। इसका ही एक भेद--

(२) नीलगिरी, पश्चिम घाट, छोटा नागपुर आदि प्रान्तों मे होने वाला, छोटे सुन्दर-श्वेत फूल वाला दक्षिणी चिरायता (S A. Var-Pul chella) है। इसके पत्र प्रायः ३ इंच से अधिक लम्बे होते हैं। एक दक्षिणी चिरायता और होता है।

(३) इसका छोटा क्षुप दक्षिण के पश्चिमी भागों से (महाराष्ट्र, पश्चिम घाट और बम्बई मे इसी का व्यवहार होता है। इसे उधर कडु, कर्वी, शिलाजीत, साला रस तथा ले०—S Decussata कहते है) कांड—चतुष्कोणयुक्त, पत्र—वृन्त रहित, सयुक्त विशेषत. अक्ष के ऊपर परस्पर भेदन करने वाले, तथा पुष्प—सघन कलगी मे नीलाभ-श्वेत होते है। स्वाद मे अत्यन्त कडुआ एवं गुणों मे करू, कुटकी या त्रायमाणा (Gentiana Kurroo) के समान है।

(४) उक्त मीठे चिरायते का एक भेद—पीले फूल वाला काश्मीरी चिरायता (S Alata) है। काश्मीर से शिमला तक प्रायः इसी का उपयोग करते है। इसे काश्मीर मे बुई, पजाब मे चिरेता, हशन तूतिया आदि कहते है, इसके फूल—हरे, पीले, कुछ बैंगनी दाग वाले होते है। यह कडुवा नहीं होता।

(५) बैंगनी फूल वाला काश्मीरी चिरायता (S. Purpurescens) पश्चिमोत्तर हिमालय के उष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से कुमाऊं तक प्राप्त होता है। कांड—छोटे,

चरक के तिक्त स्कन्ध, स्तन्य-शोधन तथा तृष्णा-निग्रहण मे इसका उल्लेख है। इसमे ज्वरघ्न के अतिरिक्त

शाखाएं फैली हुई. पत्र—नालाकार ११×७ इंच. दल-पत्र एवं पुष्प हलके सुर्खी लिये बैगनी रंग के होते है।

(६) श्वेत पुष्प वाला कश्मीरी चिरायता (S Paniculata) काश्मीर से नेपाल तक होता है। प्रत्येक शाखा मे श्वेत छोटे-छोटे पुष्प होते है। यह तथा कालमेघ दोनों ही चिरायता के प्रतिनिधि है। किन्तु कालमेघ (Andrographis-Pani-Culata) इससे भिन्न कुल का है। कालमेघ का प्रकरण देख।

(७) बड़ा चिरायता (Exacum Bicolor) के क्षुप दक्षिण मे कोंकण प्रान्त मे वर्षा ऋतु में पैदा होते है। पुष्प-श्वेत, सुन्दर, दलपत्रो का अन्तिमभाग नीलाभ, डंडी-मुलायम, बादामी रग की, चमकीली होती है। यह पौष्टिक और अग्निवर्धक है।

(८) आवा चिरायता, तितखन चि० (E Tetragonum), मराठी मे-ऊद किराइत। यह उत्तर-प्रदेश के पहाडी प्रदेशो मे पैदा होता है। क्षुप १ हाथ ऊंचा, काड--चतुष्कोण, पत्र विपरीत, वृन्तरहित, भालाकृति किन्तु कुछ चौडे, १ अगुल लम्बे, पुष्प नीले होते है। यह दीपन एव कटु पौष्टिक है। प्रयोग--जीर्ण ज्वर और अजीर्ण मे किया जाता है।

(९) कोकणी या बारीक चिरायता (Erythraea Ro burghii), व०—गिमि, म०—लुन्तक । पुष्प गुलाबी, सुन्दर सितारो के समान होते है। गुणों मे कटु पौष्टिक, ज्वर एव अजीर्ण नाशक। इसे कहीं-कहीं कडुनाई भी कहते है। इसका छोटा क्षुप वर्षा काल के बाद कोकण मे, और बगाल मे विशेष उत्पन्न होता है, भारत मे प्राय सर्वत्र पाया जाता है।

(१०) चिरायता दोग (Eni costema Littorale) इसे मामेजवा भी कहते है। उसी का प्रकरण देखिये।

(११) चायनी चि०—(Swertia Chinensis)। इसका क्षुप छोटा २-१२ इंच ऊंचा, काड बहुत बारीक, स्वाद में अधिक कडुवा होता है।

नोट—इसके अतिरिक्त स्वर्शिया पेरेनिस (Swertia Perennis), स्व० कारिम्बोसा (S Corymbosa), स्व० आंगस्टिफोलिया (S [illegible]) आदि कई जातियां है, जो चिरायता के प्रतिनिधि रूप में व्यवहृत होती है जिनका व्यामिश्रण चिरायता मे किया जाकर बाजारो मे मिलता है। इसी प्रकार कुटकी (Gentian Kurroo) का भी बनी-[illegible] है, कालमेघ का प्रकरण देखिये।

दीपन, पाचन गुण होने से चरक ने ग्रहणी-विकार मे इसका विशेष उपयोग किया है। सुश्रुत के आरग्वधादि गण मे यह दिया गया है।

नाम--

सं०—किरात, किराततिक्त (ये नाम विशेष महत्ता के है, क्योंकि इसके अन्य सभी पर्याय अधिकाश मे इसी के अपभ्रंश मालूम होते हैं। किरात यह भारत की एक जगली जाति का नाम है। इस जाति के लोग मुख्यतः हिमालय के पहाडी प्रदेशों मे निवास करते थे। ये योग पहले से इस बूटी के तिक्त प्रभावो से परिचित थे एव औषध रूप मे इसका व्यवहार करते थे, अतः इसका किरात-तिक्त ऐसा प्राचीन नामकरण किया गया प्रतीत होता है)। भूनिम्ब इ०। हि०—चिरायता, चरैता। म०—किराईत, काडे किराईत। गु०—करियातुं। ब०—चिरेत, चिराता, नेपाली निम्ब। अ०—चिरेटा [Chiretta]। ले०—स्वर्शिया चिराटा, ओफेलिया चिराटा [Ophelia Chirata]।

रासायनिक सघटन—इसमे ओफेलिक एसिड (Ophelic acid) नामक तिक्त तत्व, एव चिरैटिन (Chiratin) नामक तिक्त, पीला ग्लुकोसाइड, यवक्षार, राल, गोद, पोटाश कार्बोनेट, फास्फेट, चूना, मेगनीसियम आदि पाये जाते हैं। टेनिन बिल्कुल नही होता।

प्रयोज्याग–पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु-विपाक एव शीतवीर्य, कफ-पित्तशामक दीपन, तृष्णानिग्रहण, आमपाचन, पित्त-सारक, अनुलोमन, कटुपौष्टिक, रक्तशोधक, व्रण-शोधन, कफघ्न, श्वासहर, स्तन्यशोधन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, वातवर्धक है तथा अग्निमाद्य, अजीर्ण, यकृद्विकार, कामला, पाडु, आध्मान (विवन्ध), कृमिरोग, रक्तविकार, शोथ, रक्तपित्त, अम्लपित्त कास, स्तन्यविकार, चर्म-रोग, गड-माला, जीर्ण ज्वर, विषम-ज्वर, मूत्रकृच्छ्र आदि नाशक है।

(१) ज्वरो पर—यह अपने कटुतिक्त एव विवन्ध-नाशक गुणो से विशेषत कफ-पित्त ज्वर पर उत्तम कार्य-कारी है। इसमे भी नेपाल का किरात कुछ उष्ण होने से वातिक एव सान्निपातिक ज्वर पर भी हितकर है।

यद्यपि यह ज्वर को शनैः-शनैः दूर करता है, तथापि इस से नष्ट हुआ ज्वर फिर कदापि जोर नही करता। यह ज्वर रूपी व्याघ्र को किरात (जंगली जाति विशेष) के समान नाश करता है, इसी से यह किरात कहा जाता है। जैसे राम की सेना ने दुष्ट रावण कुम्भकर्णादि को मारकर लकारूपी प्रकृति को निष्कण्टक एव सुखी किया, वैसे ही यह कुष्ठ, कण्डू, कास, श्वास आदि का नाश कर शरीरस्थ रस, रक्त, प्लीहादि का सुधार कर शारीरिक प्रकृति को स्वस्थ करता है, अत इसे राम-सेना भी कहते हैं।

जीर्ण विषम ज्वर मे जब कि अजीर्ण, अग्निमांद्य की विशेषता हो, ज्वर सदैव बना रहता हो, तब इसका उपयोग विशेष लाभकारी है। किंतु ध्यान रहे, इसका ज्वरघ्न गुण अति-मृदु-स्वभावी है, यह शीघ्र ही ज्वर को दूर नही करता। वैसे ही विषम ज्वरो को रोकने की शक्ति भी इसमे बहुत कम है।

आयुर्वेदोक्त 'सुदर्शन चूर्ण' मे इसकी प्रधानता होने से जीर्ण ज्वरो की यह उत्तम औषधि है। अथवा—

(२) चिरायते का फाण्ट इस प्रकार बनाकर दिया जाता है—उबलते हुए परिस्रुत जल (Boiling distilled water) ½ पाव मे इसका जौकुट चूर्ण २॥ तो० डालकर ढक्कन बन्द कर दें। १५ मिनट बाद छानकर मात्रा—१। तो० से २॥ तो० तक। यह फाण्ट १२ घन्टे तक प्रयोग के योग्य रहता है। इसका प्रयोग रोगोत्तर-कालिक दौर्बल्य निवारणार्थ उत्तम होता है। इससे क्षुधा-वृद्धि होती, एव आहार का पाक ठीक तरह से (दीपन-पाचन) होने लगता है।

(३) आम-ज्वर या नूतन ज्वरो में—सुदर्शन चूर्ण का फाट दिन मे २-३ बार देने से शीघ्र ही ज्वर शमन होता है। यदि रोगी को मलावरोध विशेष हो तो इस फाट में १॥-२ मा० कुटकी चूर्ण मिला कर देते है।

(४) धातुगत ज्वर या दीर्घ-कालीन मंद ज्वर पर—इसका चूर्ण ४ मा० सोंठ व डीकामाली ७-७ मा०, इन तीनो के मोटे चूर्ण को ५ तो० उबलते हुए पानी मे डालकर नीचे उतार कर ढक दे। आध घन्टे बाद छान कर प्रात तथा इसी प्रकार शाम को तैयार कर सेवन करते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

(५) अस्थिगत जीर्ण ज्वर पर—जिसमे प्रतिदिन ५–१० बार शरीर में साधारण फुरफुरी या शीतज्वर सा भास होता हैं—इसके साथ सोंठ, कुटकी, खजूर और कुडा-छाल मिलाकर क्वाथ सिद्ध कर मधु मिला सेवन कराते है।

(६) पुनरावर्तक (लौट लौट कर आने वाले) ज्वर मे—इसके साथ कटेकी, मोथा, पितपापडा और गिलोय मिला क्वाथ बनाकर सेवन करने से लाभ होता है
(च० स०)

(७) जीर्ण वात-कफ-ज्वर एव सन्निपात—की शाति के लिए दशमूल युक्त किरात तिक्तकादिगण (चिरायता, मोथा गिलोय व सोठ) का क्वाथ सेवन करे। यदि शोधन की इच्छा हो, तो उसी मे निसोत मिला लेवें।
(चक्रदत्त)

(८) वातपित्त ज्वर मे—इसके साथ, आमला, कचूर, द्राक्षा (मुनक्का) कालीमिर्च, सोठ व गिलोय समभाग लेकर क्वाथ सिद्ध कर, ठण्डा होने पर गुड मिला पीने से लाभ होता है। (भै र)

(९) पित्तज्वर मे—दोषो के पाचनार्थ इसके साथ, खस और आमला सम भाग लेकर शातकषाय बना मधु मिला पीने से लाभ होता है (ग. नि)

(१०) जीर्ण ज्वर मे—चिरायते का काढा—

५ तो०—चिरायते को कुचल कर रात के समय २ सेर जल में भिगो दे, उसी मे १॥ गज धुला हुआ मलमल का कपडा भी डालकर प्रात पात्र को मन्दी आच पर रख दे। ५-१० तो० जल शेष रहने पर, उतार कर कपड़ा निकाल विना निचोडे ही सुखा डालें। रोगी के शरीर के अनुकूल उसी कपडे की गजी (फतुही या बनियाइन) बना पहना देवें। ४-५ दिन बाद उसे साबुन से साफ कर, फिर वैसे ही चिरायते के काढे मे पकाकर पहना दे। इस प्रकार कुछ दिनो तक इसका व्यवहार करने से जीर्ण ज्वर, पित्तप्रकोप जन्य महीन फुंसिया,

कामला पीलिया, खुजली आदि चर्मरोग दूर होते है। रोगी के शरीर के अनुकूल कपडे मे कमी वेसी भी की जा सकती है।

—स्व पं चोखालाल जी मिश्र वैद्य
सिद्ध मृत्यु जय योग)

११ जीर्ण ज्वर मे—पाडु और कृशता की विशेषता हो, तो किरातादि तैल (आगे वि योगों मे देखें) का अभ्यङ्ग लाभदायक है।—

१२ जीर्ण ज्वर, आमवात तथा सर्व प्रकार के गरमी के विकारो पर—चिरायता चूर्ण ३ माशा रात्रि के समय, जल२ तोला में भिगोकर,प्रातः छानकरउसमें कपूर,शिलाजीत २ २ रत्ती तथा आध तोला मधु मिला, नित्य इसी प्रकार बनाकर सेवन करने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। अच्छी शक्ति आती है (व. गु,)

१३ अम्लपित्त पर—इसके २ माशा चूर्ण मे ४ रत्ती भाग मिला, १० तोला जल मे भिगोकर प्रात छानकर पीवें। इसी प्रकार प्रात भिगोकर साय पीवें। कुछ दिनों में यह रोग समूल नष्ट हो जाता है। अथवा—

इसके साथ समभाग भागरा लेकर क्वाथ सिद्ध कर उसमे मधु मिलाकर पिलाते हैं। किंतु आमाशय मे व्रण के कारण यह विकार हो तो ये प्रयोग काम नही देते।

१४ अतिसार पर—चिरायता, नागरमोथा और इन्द्रजौ समभाग लेकर क्वाथ बना, उसमे १ माशा रसौत चूर्ण तथा थोडा मधु मिला पीने से वेदनायुक्त पित्तातिसार नष्ट होता है (भैं० र०)

इस क्वाथ को इस प्रकार बनावें—रसौत सहित चारों द्रव्यों का समभाग मिलित चूर्ण २ तोले को को ३२ तोला जल मे पकावे। ८ तोला शेष रहने पर उसमे मधु मिलाकर पिलावें।—अथवा—उक्त चारो द्रव्यो का समभाग चूर्ण, मात्रा १॥ से ३ मासे तक मधु मिला सेवन करने से भी वेदना युक्त पित्तातिसार दूर होता है। (वृ० मा०)

१५ रक्तपित्त पर—चिरायता चूर्ण ३ मा० को ५ तो० पानी मे भिगोकर प्रात छानकर उसमे घिसा हुआ चदन ३माशा मिला पिलादें। इसी प्रकार प्रात भिगो- रात्रि मे पिलावें। भोजन मे दुग्ध आदि लघु पौष्टिक द्रव्य लेते रहे। अतिमिर्च, शराब, तमाखू आदि का त्याग करें। थोडे ही दिनो मे रोग की शाति हो जाती है।
(गा० औ० र०)

१६ हिक्का, गर्भिणी की वमन तथा शराबी की वमन पर—इसके चूर्ण या क्वाथ का प्रयोग मधु या शक्कर मिलाकर किया जाता है।

३ मा इसके चूर्ण को उबाले हुए जल मे भिगोकर ढाक दें। १० मिनट बाद छानकर उसमे थोडो मिश्री मिलाकर प्रात पिलावे। इसी प्रकार शाम को भी पिलाने से गर्भिणी की वमन (जो गर्भ-धारण के बाद आमाशय की उग्रता के कारण होती है, तथा कुछ भी खाने पर थोडे ही समय मे हो जाती है) शीघ्र ही शात होती है। इस प्रयोग मे प्रवाल या वराटिका-भस्म भी यदि मिलाली जाय तो और भी शीघ्र लाभ होता है।

ऐसे ही शराब के अति सेवन से आमाशय मे उत्तेजना बढकर वमन होती रहती हो, तथा दाह, निद्रानाश व्याकुलता आदि उपद्रव हो तो वे सब इसके फाण्ट (या हिम) के सेवन से शमन हो जाते है।

१७ उदर-कृमि पर—उदर मे छोटे छोटे कृमि हो जाने से निर्बलता, पाडुता, अग्निमाद्य आदि विकार हो, तो इसके हिम मे हरड़ चूर्ण ३-३ माशा मिलाकर दिन मे दो बार देते रहने से सब विकार शमन हो जाते हैं। यदि हरड के चूर्ण के साथ लोहभस्म १-१ रत्ती मिलाते रहे तो लाभ अधिक होता है। (गा० औ० र०)

१८ उदर-पीडा पर—इसके पत्र-रस मे कालीमिर्च, सेंधानमक एव थोडी हीग मिलाकर अपचन जन्य उदर शूल और अफरा, होने पर पिलाते हैं। शीघ्र लाभ होता है।

१९, स्तन्य-विकृति पर—इसके साथ अनन्तमूल, गिलोय, सतावरी व सोठ समभाग का क्वाथ-सिद्धकर प्रात, साय सेवन से माता के रक्त व दूध की शुद्धि होती व पाचन-क्रिया सुधरती है।

२० आंत्रकृमि शरीर की जलन व चर्म रोगों पर—

इसके साथ नीम-गिलोय, त्रिफला व आमाहल्दी मिला क्वाथ बनाकर देते रहने से लाभ होता है। इससे पित्त-ज्वर भी शांत होता है।

विशिष्ट योग—सुदर्शन, महासुदर्शन चूर्ण, षोडशाग चूर्ण, किरातादिक्वाथ, किरातादि तेल के योगो को भाव प्रकाशादि ग्रन्थो में देखिये।

आसवारिष्ट के प्रयोगो मे से एक प्रयोग—किराततिक्तासव-चिरायता ८तो. गिलोय ४तो. मुनक्का ६तो. अच्छी तरह जौकुट कर ८० तोले अल्कोहल या उत्तम देशी मद्य में मिला, शुद्ध चीनी मिट्टी के पात्र मे या काच के पात्र मे भर यथाविधि सधान कर १५ दिन सुरक्षित रखें। फिर अच्छी तरह दबाते हुए छानकर शीशियो मे भर लें।

मात्रा—२ से १५ बूंद तक, अनुपान जल-यह ज्वर एवं कोष्ठबद्धता नाशक, पौष्टिक, जीर्ण ज्वर, पित्तज्वर को दूर करते हुए यकृत-वृद्धि को कम करता है। मलेरिया ज्वर जिसमें अग्निमाद्य की प्रधानता हो उस पर विशेष लाभकारी है।

चिरतिक्तारिष्ट तथा चिरायते के अन्य आसवारिष्ट के प्रयोगो को हमारे 'वृहदासवारिष्ट सग्रह' ग्रन्थ मे देखिए।

नोट—मात्रा-क्वाथ—५-१० तोला। चूर्ण-१-२ माशा। फाण्ट-२॥ तोला तक।

ध्यान रहे—यदि इसका उपयोग दीर्घकाल पर्यन्त करना हो तो कम मात्रा मे करे। मात्रा अधिक होने पर आमाशय-प्रसेक (Catarrh of the stomach) उत्पन्न होजाता है।

दीपन-पाचन गुण के लिए इसका उपयोग भोजन के लगभग आध घंटा पहले करना विशेष हितावह माना जाता है। इसमे जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची आदि सुगन्धित द्रव्य मिला लेने से दीपन-पाचन गुण की विशेष वृद्धि होती है।

आमाशय पर कार्यकारी होने से अपचन एव मलावरोध होकर जो ज्वर आता है, उस पर यह विशेष उपयोगी है। तथा तीव्र ज्वर के पश्चात् की निर्बलता और अरुचि को यह शीघ्र दूर करता है। आमाशय की निर्बलता भी दूर करता है।

श्वासनलिका-शोथ एवं उसकी सकोच-विकास की विकृति से उत्पन्न श्वास-रोग मे यह उत्तम लाभकारी है।

नेत्र-ज्योति वर्द्धनार्थ—इसे पीसकर लेप करते हैं। अजगल्लिका (Impetigo Contagiosa) नामक फुंसियो (क्षुद्ररोग) पर सुदर्शन चूर्ण और टकण क्षार का बाह्य प्रयोग करते है।

चिरायता छोटा (Enicostema-Littorale)

भूनिम्बकुल (Yentianaceae) कुल के इसके छोटे-छोटे पर्वयुक्त, बहुशाखायुक्त क्षुप, सीधे खडे हुए या जमीन पर कुछ मुडे हुए चतुष्कोण या कुछ नलिकाकार, चिकने मूल से ऊपर तक पत्र युक्त काण्डवाले, २ से २० इच तक ऊचे होते हैं। पत्र आमने-सामने वृन्त-रहित, विशेषत रेखाकार, विविध आकार के, दोनों सिरो पर सिकुडे हुए चिकने, सर्प की जिव्हा या सनाय पत्र जैसे, १-३ इच लम्बे, ¼-१ इंच चौडे, पुष्प—वर्षाकाल मे, काड पर ही प्रत्येक पर्व पर, पत्र-कोण से निकले हुए गुच्छो मे प्राय ३-१ श्वेत वर्ण, के प्रायः दुपहर मे विकसित होने वाले होते है। फली या डोडी—लम्ब गोल, चमकदार खुरदरी, पहले हरी फिर भूरी, अनेक बीज युक्त, मूल—१-४ इच लम्बी, श्वेत भूरी होती है। यह बूटी बगाल व बिहार को छोडकर, भारत मे प्राय सर्वत्र आर्द्र भूमि पर, तथा विशेषत समुद्र किनारे के प्रान्तो मे, मद्रास, पश्चिम घाट, उत्तर-कोंकण, काठियावाड, सिन्ध, गुजरात आदि प्रदेशो मे, और कही २ राजपूताना व उत्तरप्रदेश मे भी पाई जाती है।

गुजरात और मद्रास मे इसका व्यवहार बहुत किया जाता है। वहा की ग्रामीण जनता की यह बेमोल की रामबाण क्विनाईन है। यह अत्यन्त कड़वी होती है। इसे प्राय भाद्रपद मास मे लाकर साफ कर, सुखाकर सग्रह कर लेते हैं। चिरायते के स्थान मे इसका व्यवहार किया जाता है।

नाम—

सं—मामज्जक, नागजिव्हा, कृमिहृत, तिक्तपत्रा हि—छोटा चिरायता, नाय, नाई, मामेजवा, बहुगुणी इ.।

म—मामिजवा, कडुनाई। गु—मामेजवा।

ले—एनिकोस्टमा लिट्टोरेल।

रा सघटन—इसमे एक तिक्त सत्व ग्लुकोसाइड के रूप मे होता है।

औषधिकार्यार्थ—मूल (मूल मे गुण अधिक होते है।) पत्र एव प्राय पचाङ्ग लिया जाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

लघु, तिक्त, विपाक मे कटु, शीतवीर्य, दीपन, कफ-वर्धक, पाचन, रुचिकर, सारक, पित्तशामक, रक्तप्रसादन, मूत्र एवं आर्तव-जनन है। तथा अपचन जन्य ज्वर, शीत ज्वर, विपमज्वर, अतिसार, उदरवात, दाह, तृषा, कास उदरकृमि, मधुमेह, चर्मरोग, व्रण, शोथ आदि नाशक है।

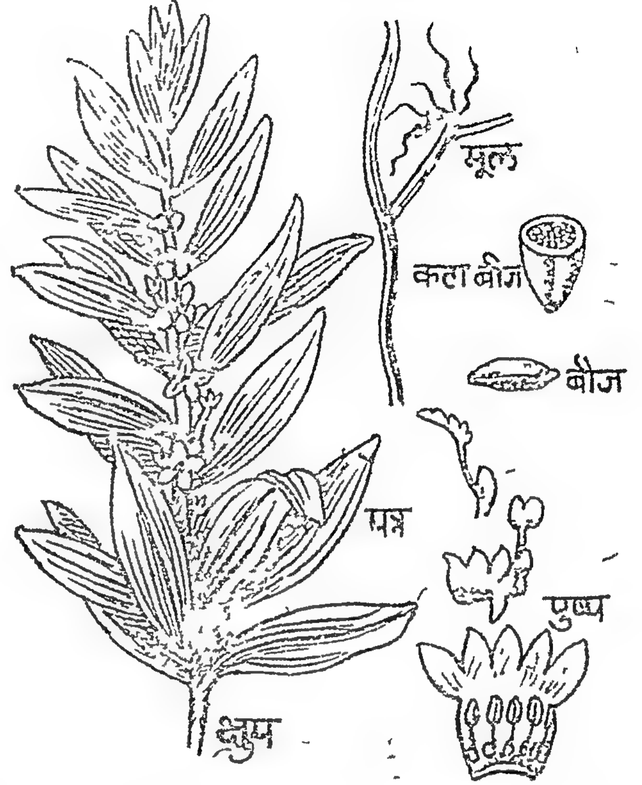
(१) ज्वरो पर—धूप मे घूमने, अपचन एव ऋतुदोष से आये हुए ज्वर, व्रण, विद्रधि के लक्षण रूप ज्वर तथा विपमज्वर पर इसके पचाग का क्वाथ कर कालीमिर्च चूर्ण मिला दिन मे २ बार, तीन दिन तक देने से ज्वर उतर जाता हैं। कई दिनो के विषमज्वर पर जहा क्विनाईन आदि तीव्र औषधिया असफल हो गई हो, यह लाभ पहुँचा देती है।

(२) जीर्ण ज्वर पर—पचाङ्ग चूर्ण ३-३ मा तथा कालीमिर्च चूर्ण ४-४ रत्ती मिलाकर दिन मे २ बार जल के साथ देते रहने से धातुगत ज्वर, मन्द-मन्द रहने वाला ज्वर अरुचि व निर्बलता दूर होती है।

यदि ज्वर की दशा मे अरुचि की विशेषता हो तो

चिरायता छोटा (कडुनाई मामेजवा)

Enicostemma littorale, Blume



इसके ताजे पत्तो को कतर कर नमक लगाकर भोजन के साथ खिलाया जाता है। या इसके मूल का अचार दिया जाता है।

(३) अतिसार पर—अपचन के कारण दिन मे ३-४ बार थोडा २ मल उतरता हो तथा उदर मे भारीपन एवं वातप्रकोप बना रहता हो। तो इसका चूर्ण, सेधानमक सेका हुआ जीरा और कालीमिर्च को मट्ठे के साथ दिन मे ३ बार देते रहने से शीघ्र ही पाचन क्रिया सुधरजाती व आत्र बलवान बन जाते हैं।

(४) मधुमेह—इसके पचाङ्ग का अर्क ५-५ तो. दिन मे २ बार ४-४ रत्ती शिलाजीत मिलाकर देते रहने से मूत्र में बढी हुई शक्कर घट जाती है, तथा नई उत्पत्ति नही होने पाती।

(५) बदगाठ पर—इसके ताजे पत्र १ तो० व नमक १ मा० मिलाकर चटनी जैसा पीसकर लेप करे। दाह होने पर थोडा जल छिडकें। कुछ देर मे फाला हो

जायगा। उसमें सुई लगाकर जल निकाल दें, तथा ऊपर घृत लगा दें। देहातो के वैद्य यह प्रयोग वदगाठ और कंठमाला पर सफलतापूर्वक करते हैं।

(६) सिरदर्द पर—विशेषत पित्तज्वर मे रक्त-दवाव की वृद्धि होकर सिर मे भारीपन, खिंचाव व वेदना हो, तो इसके पत्र सिर पर बाधे जाते हैं, तथा इसका क्वाथ पिलाया जाता है।

(उक्त सब प्रयोग गा० औ० र० से साभार लिये गये है।

विशिष्ट योग--

(७) मामेजवा घनवटी—इसके पचाग का घन-क्वाथ कर उसमे चौथाई भाग कालीमिर्च और कटकरज वीज का चूर्ण मिला, मूत्र घोट, पीसकर चना जैसी गोलियाँ बना लेते है। इन्हे ज्वर, कृमि और उदर शूल पर-२-२ गोली दिन मे २-३ बार शीत जल से देते है।

(८) मूत्र तथा आर्तव-प्रवर्तनार्थ—इसके पत्रो के साथ-जीरा, कालीमिर्च और लहसुन १ नग मिला सबको एकत्र पानी मे पीस छान कर पिलाते हैं।

नोट—मात्रा—पंचांग-चूर्ण १ से ३ मा० तक मूल-क्वाथ--२॥ तो० तक, दिन में २--३ बार जल के साथ देते हैं।

चिरायलु [Rhodendron-Campanulatum]

तालीशादि कुल[1] (Ericaceae) की इस बूटी के झाड़ीदार, सदा हरे भरे क्षुप होते हैं। पत्र—एकातर, तालीशपत्र जैसे; छाल-चिकनी, कुछ बादामी रंग की, पुष्प-भीतरी भाग मे गुलाबी बैंगनी रंग के- ऊपर से श्वेत होते है।

यह बूटी काश्मीर से भूटान तक हिमाचल प्रदेशों में पाई जाती है।

नाम

हि० चिरायलु, गागर, चराइला, सारगा, शिनवाला, सिमरंग इ०। लै०--रोडोडेन्ड्रान केपेनुलेटम।

गुण धर्म व प्रयोग-

उष्ण, वातनाशक है। इसके पत्र पुराने संधिवात, उपदश तथा गृध्रसी आदि वात रोगों मे प्रयोजित हैं। इसकी शुष्क शाखाओ का क्वाथ या फाण्ट-क्षयरोग, एव जीर्ण ज्वर मे दिया जाता है। प्रतिश्याय और आधाशीशी पर-- पत्तो को तमाखु के साथ मिला कर महीन चूर्ण कर सुंघाया जाता है।

नोट—इस बूटी का विशेष वर्णन तालीसपत्र नं० ३ की उपजाति मे देखें।

[1] इस कुल के पत्र—एकान्तर, उपपत्र रहित, अखंड या खडित, पुष्प—एकाकी या गुच्छो मे, पुष्प वाह्यकोष केवल ४ से ६ तक, आभ्यंतर कोष केवल ४-२०, पुंकेशर १०, तथा बीजकोष ५ कोष्ठयुक्त होता है।

चिरयारी (Triumfetta Rhomboidea)

परूषक कुल (Jiliaceae) के इस बूटी के पौधे ४ फुट तक लम्बे व इतने ही चौडे, खुरदरे, सूक्ष्म रोमश, पुष्प-छोटे छोटे पीत-वर्ण के, गुच्छो में; फल, छोटे, गोल, खुरदरे, तीक्ष्ण रोमश होते हैं, जो वस्त्रो मे चिपट जाते है। इसके फल, पत्र और पुष्प लुआवदार होते हैं। भेड पालने वाले (धनगर) फूलो को कूट कर पानी मे पका कर ऊनी कवलो पर लेई लगाते है।

यह बूटी वर्षाकाल मे उष्ण प्रदेशो की पहाडी भूमि



चिरचारी
TRIUMFETTA RHOMBOIDEA JACQ

पर प्राय सर्वत्र, किंतु बंगाल दक्षिण भारत और सीलोन मे विशेष पैदा होती है। मारोरान की पहाडो पर यह बहुत होती है।

नोट—यह गगरेन [बडी] की ही एक विशेष जाति है।

नाम—

सं०—पिच्छिला, गांगेरुकी। हिं०—चिरचारी, चिटकं, चिकटी। म०—तुपकडी, लोढंग, त्रिपंट, कुतरी इ०। गु०—झोपटो। बं०—बनोकरा। लें०—ट्रायफेटा रोमबायडी।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, कसैली, बल्य, शीतल, वीर्यप्रद, स्निग्ध, सकोचक तथा पित्त, कफ अतिसार, ज्वर, क्षत, रक्तपित्त एवं रक्तस्राव-निवारक है।

ग्रंथि, व्रण, फोडा आदि के शीघ्र फूटने के लिये मूल को जल मे पीसकर उसमे कबूतर की बीट मिलाकर लगाते हैं।

मूत्रातिसार पर—मूल-छाल का चूर्ण दूध और शक्कर के साथ देते है।

शस्त्राघात पर—तत्काल इसके पत्तो के रस को लगाने या पत्तो को पीसकर लगाने से रक्तस्राव बन्द होकर जखम शीघ्र ठीक हो जाता है।

हृद्रोग, श्वास, कास पर—मूल को गोदुग्ध मे पकाकर और छान कर पिलाते हैं।

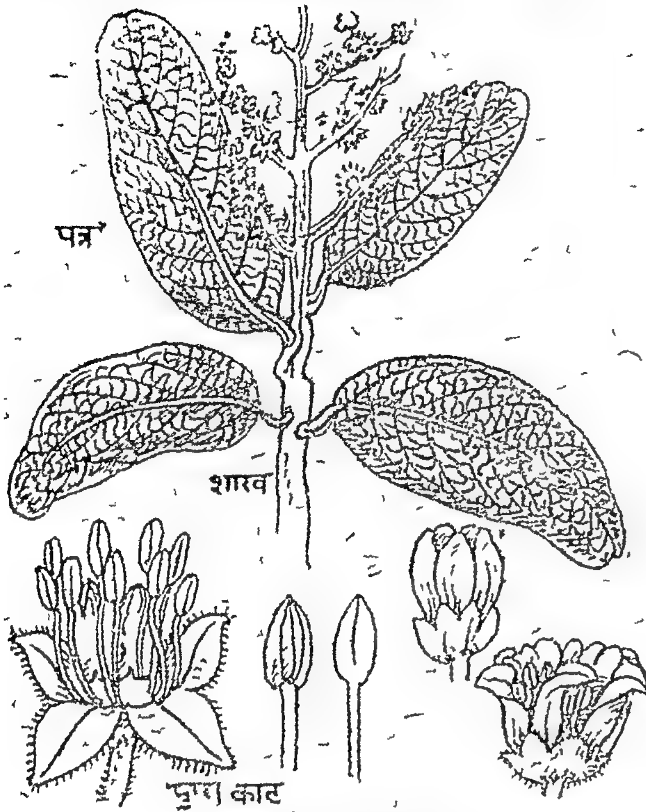
रक्तार्श, रक्तातिसार तथा फेफडो से कफ के साथ आने वाले रक्त को बन्द करने के लिए—मूल ६ मा० को पानी मे पीस छान कर, शक्कर मिलाकर पिलाते हैं।

शीघ्र-प्रसवार्थ—मूल का क्वाथ पिलाते हैं।

चिरौंजी (Buchanania Latifolia)

फलवर्ग एव आम्रकुल (Anacardiaceae) का यह वृक्ष सीधा मध्यमाकार का ४० से ५० फुट तक ऊचा, शाखाए चारो ओर फैली हुई बहुत कच्ची, छाल—१ इ च तक मोटी, धूसर, कृष्ण वर्ण की, पत्र—६-१० इ च लम्बे, ५-६ इ च चौडे, श्याम हरित वर्ण के, नोकदार, कडे, खुरदरे, कोमल रोमयुक्त, पत्रवृन्त—बहुत ही छोटा, पुष्प शाखाग्र मे ऊपर की ओर मंजरियो मे, छोटे २ नीलाभ श्वेत वर्ण के (यह पुष्प-मजरी मदिर के शिखर जैसी), फल—लम्बे सीको पर, गोल, छोटे कुछ चपटे, मासल कच्ची दशा मे हरे, पकने पर लाल, जामुनी श्याम वर्ण के लगते हैं। कच्चा फल खट्टा, किन्तु ग्रीष्म काल मे परिपक्व हो जाने पर, इसका ऊपरी गूदा-मृ,

चिरौंजी
BUCHANANIA LATIFOLIA ROXB.



रसीला, मधुराम्ल फालसे जैसा होता है। इसमे पुष्प और फल वसत ऋतु (फरवरी, मार्च) मे आते हैं। फल की गुठली को फोडकर जो गिरी निकाली जाती है, उसे ही चिरौजी कहते है।

इसके वृक्ष भारत के उष्ण-शुष्क, विशेषत उत्तर पश्चिमी प्रदेशो की पहाडी भूमि पर हिमालय, मध्यभारत उडीसा, छोटा नागपुर और वर्मा मे अधिक होते है।

नोट—चरक के उदर्दप्रशमन, श्रमहर, तथा सुश्रुत के न्यग्रोधादि गणों में इसकी गणना की गई है।

नाम—

स —प्रियाल (अपने रस से संतुष्ट रखने वाला, प्रियति स्वरसत्वात् इति प्रियालः), खरस्कन्ध (खुरदरे काड वाला), बहुल वल्कल (मोटी छाल वाला), तापसेष्ट (तपस्वियो को प्रिय) स्नेह-बीज, सन्नकद्रु (झुका हुआ वृक्ष), धनुष्पट (छाल से धनुष का कपड़ा बनाते है), राजादन, चार इ । हि —चिरौंजी, चिरोली। म व गु —चारोली चार। व —चिरोजी, पियाल। अ —कुड्डापा आलमण्ड Cuddapa almond। ले — बुकनानिया लेटिफोलिया।

रा सगठन—

इसकी गिरी (चिरौंजी) मे—प्रोटीन या मासवर्धक द्रव्य (Albuminoids) प्र श ३०, स्टार्च २½। स्थिर तैल ५७ ५ होता है। उत्तम पोषक उपयोगिता के कारण इसे बादाम के प्रतिनिधि रूप मे पाक, हलुवा मिठाई, पकवान आदि मे डालते हैं।

चिरोजी को पेर कर जो तेल निकाला जाता है, वह हल्का पीत रग का, मीठा होता है, बादाम-तेल का यह उत्तम प्रतिनिधि है।

वृक्ष की मूल, एवं कांड की छाल मे टेनिन प्र. श. १३ ४ तक पाया जाता है।

प्रयोज्य अङ्ग—बीज की गिरी, छाल, गोद मूल और पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग—

स्निग्ध, गुरु, सर, मधुर, विपाक मे—मधुर, शीत वीर्य, वातपित्त शामक, दुर्जर, विष्टभी, आमदोष वृद्धि-कारक, तृष्णा-शामक, वर्ण्य, रक्त-प्रसादन, हृद्य, कफ-नि सारक, मूत्रल, मूत्रमार्ग-स्निग्ध कारक, वृष्य, वाजीकर, दाह-प्रशमन, बल्य, बृंहण, तथा वात-व्याधि, शिर शूल, मूर्च्छा, शोथ, रक्त-विकार, हृद्दौर्बल्य, नपुसकता, कुष्ठ, उदर्द और जीर्ण ज्वर मे लाभकारी है।

इसके उष्णता गुण को छोडकर शेष गुण बादाम, अखरोट आदि के समान ही है (चरक)। इसका तैल—मधुर, भारी, कफवर्धक, तथा अति उष्ण न होने से वातपित्त-जन्य संयोगज व्याधियो मे हितकारी माना जाता है (चरक)। रस-ग्रन्थियो की वृद्धि तथा पालित्य पर केशरजनार्थ यह तैल लगाया जाता है।

कुष्ठ, कण्डू आदि चर्मरोगो पर इसकी गिरी का उद्वर्त्तन (उबटन) लगाया जाता है। इससे मुख की भाई आदि दागों पर भी लाभ होता है।

(१) कास और प्रतिश्याय पर—गिरी को पीसकर,

थोडे घृत मे छोक कर दूध मिला, आग पर रख दें। १-२ उवाल आने पर उसमे इलायची-चूर्ण व किंचित् शक्कर मिला, गरम-गरम पिलाने से लाभ होता है।

(२) गीली खुजली पर—गिरी १० तो०, समभाग गुलावजल मे खूब पीसकर उसमे १४ मा० सुहागा मिला लगाते रहने से २-३ दिन में बहुत लाभ होता है।

(३) वातजन्य सिरपीडा व मूर्च्छा पर—गिरी के साथ बादाम-गिरी, खजूर (बीज रहित), ककडी-बीज और तिल एक साथ पीसकर दूध अथवा जल के साथ, ८ मा० तक की मात्रा मे पिलाते है।

(४) भिलावे की सूजन पर—गिरी और काले तिल १-१ तो० लेकर, १ पाव गोदुग्ध मे पीस-छान कर मिश्री मिला-प्रात तथा इसी प्रकार साय पीने, और गिरी व काले तिलो को दूध मे पीसकर लेप करने से सूजन, खुजली आदि भल्लातक-विकारो की निवृत्ति हो जाती है।

(५) लूता (मकडी) के विष पर—गिरी को पीसकर तैल मिला मालिश करते है।

(६) शीतपित्त पर—गिरी ५ तो० तक खाने से शरीर पर उछली हुई पित्ती शात हो जाती है। साथ ही मे इसकी गिरी को दूध मे पीस, मालिश भी की जाती है।

(७) नपुंसकता-निवारणार्थ—इसे वाजीकर माजूनों मे या हलुवा मे मिलाकर खिलाते हैं। कृशता पर—गिरी को हरीरे में मिलाकर सेवन करावें।

गोद—इसके वृक्ष का गोद अतिसार-नाशक है। आन्त्र-शूल में—गोद को बकरी के दूध मे पीस कर पिलाते हैं।

मूल और छाल—कसैली, कफपित्त-शामक व रक्त-विकार नाशक है। रक्तातिसार पर इसकी छाल को दूध मे पीस छान कर मधु मिला पिलाते है। शिलाजीत की गुण-वृद्धि के लिये उसे छाल के क्वाथ मे भिगोते हैं।

नोट—मात्रा—गिरी १-२ तो०। छाल-क्वाथ ५-१० तो०। गिरी अधिक मात्रा में खाने से दुर्जर तथा आध्मान-कारी होती है। हानि-निवारणार्थ—सिरका में मधु मिला पिलाते हैं।

विशिष्ट योग—

चिरौंजी की वरफी—इसकी गिरी १० तो० को कडाही मे भून ले। फिर ½ सेर शक्कर की गाढी चाशनी कर, उसमे भूनी हुई गिरी मिला बरफी जमा लेवे। यह रुचिकर, स्वादिष्ट, बल एव पुष्टि-वर्धक है।

चिलगोजा (Pinus Gerardiana)

यह देवदारु कुल (Coniferae) के सरल, देवदारु या चीड के मादा वृक्षो का फल है। ये वृक्ष चीड वृक्ष के जैसे ही आकार-प्रकार के होते है। फल जिसे चिलगोजा कहते हैं लगभग १ इंच लम्ब-गोल, कुछ खिरनी जैसे ही, किन्तु एक ओर से कुछ चिपटे होते है। इनके ऊपर का छिलका धूसर वर्ण का पतला और भंगुर (उंगली से मसलने से निकल जाने वाला), तथा अन्दर की गिरी श्वेत, मधुर और स्निग्ध होती है।

ये वृक्ष पश्चिमोत्तर हिमालय के शुष्क प्रदेशो मे तथा अफगानिस्तान, ईरान, रोम, आजरबेजान, शीराज आदि प्रदेशों मे बहुत होते है।

नाम—

सं०—निकोचक। हि०—चिलगोजा, नेवजा, गोगा-जाल, मिरी, गुनोवर इ०। म०—चिलगोजे। गु०—चिलगोजा, गालगोजा, पहाडी नेजा। अ०—एडिबल पाईन (Edible pine), नेवजा पाईन [Neoza pine]। ले०—पाइनस जिरार्डियाना।

रा० संघटन—गिरी मे मासवर्धक द्रव्य (अल्बुमिनाइड) प्र० श० १३.६, स्टार्च २२.५ तथा स्थिर तैल ५१.३ तक होता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, मधुर, उष्णवीर्य, स्निग्ध, बल्य, बृंहण, वाजी-



PINUS GERARDIANA WALL

कर आदि इसके गुणधर्म प्राय. बादाम, पिस्ता या चिरोंजी जैसे ही है।

इसमे १ वर्ष तक वीर्य-प्रभाव रहता है। पुराना हो जाने पर यह हीन वीर्य एवं चिरपाकी हो जाता है।

इसकी गिरी को अन्य उपयुक्त द्रव्यो के साथ मिला माजून आदि बनाकर सेवन करने से शुक्र, बल की वृद्धि होती है। अथवा नित्य प्रात संयम पूर्वक इसकी गिरी १ या २ तो० अच्छी तरह चबाकर खाने से १ मास मे नपुंसकता का नाश होता है। पक्षवध, अर्दित, कटिशूल एव आमवात मे भी यह लाभकारी है। कास-श्वास मे--इसे अकेले ही या अन्य उपयुक्त औषधियो के साथ पीसकर शहद के साथ सेवन कराने से लाभ होता है।

नोट--मात्रा--आधा तो० से १ या २ तो० तक। अधिक मात्रा मे खाने से यह दुर्जर होता है। पेट मे अफरा होजाता है। हानि-निवारणार्थ सिकजबीन [सिरका और मधु का मिश्रण] या खट्टा अनार सेवन करते है।

चिलबिल (Holoptelia Integrifolia)



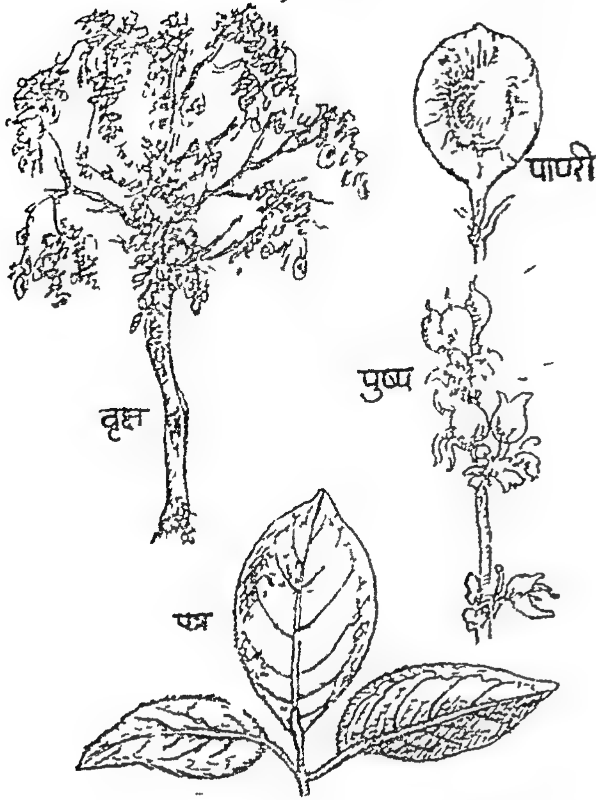
वटकुल (Urticaccae) के इसके वृक्ष करज वृक्ष जैसे ही मध्यम प्रमाण के २५-४० फुट तक ऊंचे, चारो ओर फैली हुई श्वेताभ शाखा-प्रशाखा युक्त, छाल-हल्की धूसर वर्ण की, गाठदार, दृढ़रेशे वाली, पत्र—एकान्तर दो कतारो मे निकले हुए ३-८ इच लम्बे, २-३ इंच चौडे, अण्डाकार सिरे सिकुडे नोकदार, पत्र-वृन्त छोटे २-३ इच लम्बे, हरे पत्तो मे पार दर्शक विन्दु, शुष्क पत्रो मे अधर पृष्ठ पर छोटे विन्दु जैसे उभार, पुष्प—वसतऋतु मे शाखाओ के अग्रभागो पर, गुच्छो मे, हरे पीताभ रग के छोटे, चरपरी, दाह व गंध युक्त, पुष्प-बाह्यकोष के दल ४ रोमश, पु केशर ८, परागकोष बेंगनी हरे रंग का, फल—हलके पीत वर्ण के, चपटे, चौड़े, पतले, लम्बगोल १ इच लम्बे, तथा प्रत्येक फल मे १-१ बीज चमकीले, चिकने ०२ से ०३ इच लम्बे होते है।

ये वृक्ष भारत के प्राय सर्वत्र छोटी पहाड़ियो के प्रदेशो पंजाब, उत्तर प्रदेश, अजमेर, गुजरात काठियावाड बुदेलखड, विहार, आसाम व मद्रास आदि मे पाये जाते है।

नोट—प्राचीन आचार्यों ने इसकी गणना करंज में ही की है। गुणधर्मों मे बहुत कुछ साम्य भी है। इसके बीजों मे से करज बीजो की अपेक्षा तैल बहुत कम निकलता है।

चरक के लेखनीय, भेदनीय गणो मे तथा उदावर्त्त रोग के स्थिराद्यघृत के प्रयोग मे और उदर-रोग मे भला-

चिलविल्ल (पापरी)
HOLOPTELEA INTEGRIFOLIA-PLANCH



वरोध-नाशार्थ इसके कोमल पत्रों का शाक खाने का विधान किया गया है। सुश्रुत के श्लेष्म-संशमन, अधोभाग-शोधन एवं वरुणादि गणो मे यह है। गुल्म, सान्निपातिक उदर-शूल मे इसके कोमल पत्रो का शाक खाने के लिए लिखा है, अर्शरोग के काशीशादि तैल मे इसे मिलाया है तथा क्षार या पानक सेवन का भी विधान है। लूताविष एव अन्य विषप्रकोप के प्रयोगों मे इसे लिया है। वैसे ही प्लीहोदर, श्लीपद, दुष्टव्रण, महाकुष्ठो के प्रयोगों मे भी इसे लिया गया है।

नाम

स०—चिरबिल्व, करंजी, पूतिकरज, उदकीर्य, इ। हि०—चिलबिल, चिरबिल, पापरी, कालीपपडी, गनचिड्का, रजू, वामन, चिल्लम, बिर्मैदा, चिलिल इ। म०—वावला, वावोली, पापरा। गु०—चरेल, कणजो। अ०—जगल कार्क ट्री Jungleeork tree। लै—होलीप्टेलिया इंटेग्रिफोलिया।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, वीज, मूल, पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफपित्तशामक, दीपन, अनुलोमन, भेदन, रक्तशोधक हैं तथा अग्निमाद्य, वातपीडा, उदररोग, शूल, कण्डू, गुल्म, शोथ, अर्श, कृमि, रक्तविकार, प्रमेह, मेद, कुष्ठ आदि चर्म-रोगो मे प्रयुक्त है।

छाल—लुआबदार, स्नेहन, उष्ण, दाहक, शोथघ्न, वेदना-शामक है।

१. आमवात या संधिवात की सूजन पर—छाल या मूल को पानी मे पीसकर या थोडे पानी मे उबाल कर जो लुआबदार रस निकले उसे निचोड कर लेप करने से वेदना-सहित शोथ दूर होती है। फिर लेप को हटा कर उस स्थान पर घृत या तेल लगा कर उन निचुडे हुए छिलकों को पीसकर, बाध देवें।

पक्वशोथ-प्रभेदनार्थ—इसकी मूल-छाल को पीस कर प्रलेप करते हैं।

२ मसूरिका—शीतला के प्रारंभ काल में मूल-छाल को बहुत थोडे प्रमाण मे, जल मे पीस छानकर पिलावे।

३ नारू पर—छाल को पानी मे पीसकर (यदि मिल जाय तो साथ मे पीले चपे की छाल भी मिला ले) गुनगुना कर बाधने से नारू का व्रण फूट कर बह जाता व नारू नष्ट होजाता है।

पत्र—लघु, भेदन, कटु विपाक, उष्णवीर्य वातकफ हर, शोथ, शूल, कृमि, कुष्ठ, दुष्ट व्रण, आदि नाशक हैं।

४ अपक्व-विद्रधि—कच्चे, फोडे, गाठ, और वद मे जब तक शूलवत् वेदना न हो, पाक न होने लगा हो, तब तक इसके पत्तो पर घृत लगा आग पर कुछ गरम कर बाध देने से उस स्थान का रक्त बिखर कर छोटी-छोटी फुसिया हो जाती हैं, जो आसानी से दूर हो जाती हैं। यदि भीतर पाक होना आरभ हो गया हो तो इस प्रयोग से (या उक्त न० १ के प्रयोग से) शीघ्र ही पाक होकर व्रण फूट जाता है।

(५) उदर-रोग—उदरशूल जो लम्बे समय तक रहता है। जिसमे वातज एव त्रिदोषज लक्षणों को

प्रधानता हो, (जैसे कि गुल्म, उदर मे कृमि व व्रण आदि मे हुआ करता है) तो इसके कोमल पत्तो का शाक, तैल मिला हुआ, खिलाते रहने से उदर-शुद्धि नियमित, होकर अग्निप्रदीप्त होती व वायु का शमन हो शूलोत्पत्ति वन्द हो जाती है।

प्लीहोदर, यकृतोदर हो तथा मलावरोध रहता हो तो उक्त शाक लाभकारी है।

उदर-कृमि मे–इसके पत्र-रस या मूल-रस मे शहद मिला, यथोचित मात्रा मे ३-४ दिन पिलाते रहने से कृमि नष्ट हो जाते व, उनकी उत्पत्ति वन्द हो जाती है।

(६) कृमियुक्त या दूषित व्रण पर—पत्तो को पीस, ४ गुना तिल-तैल या करंज-तैल मे मिला; उबालकर, छान लें। इसे लगाने से कृमि नष्ट होकर व्रण शुद्ध हो जाता है।

(७) श्लीपदपर—पत्ररस, बलानुसार २-४ तो० तक ६ मा शहद और थोडा सरसो तैल मिला कर पिलाते हैं। औषध-पान के पूर्व व पश्चात् २-२ मा. घृत चाटते हैं। जिससे दाहक असर नही होने पाता।

(८) श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) पर–इसके पत्तो के साथ आक, थूहर, अमलतास व जाई (चमेली) के पत्तों को मिला, गोमूत्र मे पीस, दिन मे ३-४ वार लेप करते है। कुष्ठ के श्वेत दाग, दाद, व्रण, दुष्टव्रण, एवं अर्श रोग मे भी लाभकारी है।

(९) महाकुष्ठ हो शरीर स्थान स्थान पर फूट कर वहता हो तो पत्तो को घोट पीस कर नित्य १० तोला तक पिलाते हैं। भोजन में चना या गेहू की रोटी, पर्याप्त घृत के साथ १४० दिन तक देते है।

(१०) अम्लपित्त पर—पत्राङ्कुरों को गोघृत मे भून कर, भोजन से पूर्व खिलाकर ऊपर से सुखोष्ण जल पिला कर वमन कराते हैं।

(११) मसूरिका–विशेषत कफपैत्तिक हो तो पत्तो का (या जड का) रस, आमला-रस, शक्कर, और शहद मिला सेवन कराते है। इससे शोथ भी दूर होता है। यह प्रयोग शीतला (चेचक) के प्रारम्भ काल मे ही कराया जाता है।

(१२) मुख-शुद्धि के लिये—इसकी कोमल टहनी की दतौन करने से मुख की चिपचिपाहट, दुर्गन्ध एवं कफ-निवृत्ति होकर मुख-शुद्धि होती है, दन्तकृमि नष्ट होते है।

बीज—उष्ण, वल्य, ज्वर, शोथ, कुष्ठ, जलोदर, रक्तपित्त, ऊरुस्तंभ, अण्डवृद्धि, व्रण, कृमि आदि नाशक है।

(१३) जलोदर पर—बीज-गिरी को काजी मे पीस पिलाते तथा ६ मा. गिरी को ८-१० लौग के साथ पीस कर ऊपर से उदर पर मर्दन करते हैं। जलोदर गत सूजन दूर होती है।

(१४) अण्डवृद्धि (मूत्रज) पर बीजो को पीस कर लेप करते, तथा ३ नग बीजो को आग की भूभल मे दबा कर, पक जाने पर अन्दर की गिरी को निकाल, चूर्ण कर रोगी को फकाते है। ७ दिन के उपचार से लाभ हो जाता है।

(१५) व्रण, फोड़ा, फुंसी आदि चर्म-रोगो पर—बीज की गिरी को गुलरोगन या तिल-तैल मे पकावे। जब वह जल जाय तब तैल छानकर शीशी मे भर ले। इसके लगाते रहने से दुष्ट एव गम्भीर व्रण ठीक हो जाता हैं।
उक्त तैल के मलने से (अथवा इसकी गिरी के चूर्ण को किसी तैल मे मिलाकर मलने से) फोड़ा, फुंसी, सूजन आदि चर्मरोगो मे लाभ होता है।

(१६) उदर-कृमि पर–गिरी को पीस कर गुड मिला कर खिलाने से सब कृमि नष्ट हो जाते है।

(१७) रक्तपित्त पर–गिरी के चूर्ण का सेवन घृत और शहद के साथ कराते हैं।

(१८) ऊरुस्तभ पर–गिरी और सरसो दोनो को गोमूत्र मे पीस कर लेप करते है।

(१९) दाद पर–बीजो को पानी मे घिस कर लगाते हैं। अथवा गिरी के चूर्ण को गोला (नारियल) के तैल मे मिला मर्दन करते है।

चिला–देखिये—तालीसपत्र।

चिल्ला नं० १ (Casearia Tomentosa)



गुडूच्यादि वर्ग-एव सप्तचक्रा[1] कुल (Samydaceae) के इसके छोटे २ गुल्माकार क्षुप, प्राय सर्वत्र पाये जाते हैं। शाल वनो के पास या झाडीदार जगलो मे बहुत होते है। शाखाएं समतल फैली हुई, छाल–मोटी, भगुर, पीताभश्वेत एव चौकोर टुकडो मे छूटने वाली, काष्ठ–पीताभ, श्वेत, कडा खुरदरा, पत्र–अण्डाकार या भालाकार, २-७ इच लम्बे, १॥।-३ इंच चौडे, दन्तुर किनारे वाले, अधर पृष्ठ की नसो पर मृदुरोमश, पत्र सिरायें-रक्ताभ, पुष्प–नूतन टहनियो पर हरिताभ पीतवर्ण के फल–मासल, रीठे की तरह, अंडाकार, मुलायम, चमकीले ¾ इंच बडे, ६ रेखाओ मे युक्त तथा स्वाद मे कडुवे होते हैं। फलो का चूर्ण पानी मे डाल देने से मछलिया मर जाती है। यह अयोध्या, पूर्व बगाल, मध्य दक्षिण भारत, व हिमालय प्रदेश में पाया जाता है।



नोट—इसकी दूसरी उपजाति (C Esculenta) सप्त रंगा के नाम से कही जाती है। इसका वर्णन आगे चिल्ला नं २ में देखिये।

नाम—

सं —चिल्हक। हि.–चिल्ला, चिलारा, बेरी, भेरा, इ। म —मस्सी, लेनजा, करी।

गु.–बोलोम, सुंकल। बं.–चिल्ला। ले.–केसिएरिया टोमेन्टोसा।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, उष्ण-वीर्य, मूत्रल, रक्तशोधक, कफवातनाशक व धातुपुष्टिकर है।

जलोदर पर–इसके फल के गूदे को खिलाते तथा छाल को पीसकर सारे शरीर पर लेप करते और फिर इसके पत्र-क्वाथ से स्नान कराते हैं।

अपरस, छाजन, चकवत, दाद पर–छाल को पीसकर लेप करते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

इसके दोष गुण धर्म चिल्ला न २ जैसे हैं।

---

[1] इस कुल के पौधो के पत्र–एकान्तर, सादे, जामुन पत्र जैसे किंतु कुछ बडे, दन्तुर, पारदर्शक, गोल या रेखाकृति ग्रन्थियों से युक्त होते हैं इस कुल में केवल यह पौधा तथा चिल्ला २ (सप्तचक्रा) प्रधान है।

चिल्ला नं० २ (Casearia Esculanta)



उक्त सप्त चक्रा कुल के इसके गुल्माकार क्षुप २-५ फुट ऊ चे, छाल–पीताभ श्वेत, पत्र–उक्त चिल्ला नं. १

के पत्र जैसे, पत्र वृन्त–असमान, पुष्प–हरिताभ श्वेत। फल–अण्डाकार १-२ इंच लम्बे, नारंगी रंग के, बहुबीज युक्त, बीज एक प्रकार के लाल आवरण से युक्त, मूल–बाह्य त्वचा सुनहले रंग की, काटने पर भीतर ७ चक्र दिखाई पडते हैं। अतः इसे सप्तचक्रा कहते हैं। ताजी जड मे इन्द्रधनुष जैसे भिन्न २ रंग दिखाई देते हैं। स्वाद मे कडवी व कसैली होती है।

यह मलावार तथा दक्षिण भारत के पहाड़ो पर, बम्बई से कुर्ग तक और सीलोन मे विशेष पाई जाती है।

नाम–

सं–सप्तचक्रा, स्वर्णमूला, सप्तरंगा। हिं-चिल्ला। चिढार, बौंर। म.—सप्तरंगी, सतकपी, कुलकुलटा, बोकस इ.।

बं.-चिल्ला। अं.—वाइल्ड कौरी फ्रूट wild cowrie fruit ले०—केसिएरिया एस्कुलेन्टा।

रासायनिक संघटन—

छाल मे टेनिन तथा कॅथर्टिक एसिड (cathartic acid) जसा एक तत्व और मूल मे एक उदासीन (neultral) स्फटकीय सत्त्व, धूसर पीतवर्ण की राल, टेनिक एसिड, व कुछ स्टार्च आदि पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कषाय, कटु विपाक, उष्ण-वीर्य, कफवात-शामक, पित्तनिसारक, दीपन, अनुलोमन, मृदुरेचक, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, वेदना-स्थापन, रक्त-शोधन, स्वेदापनयन है। अल्पमात्रा मे देने से कटु-पौष्टिक है। तथा अग्निमाद्य, विष्टंभ, यकृद्वृद्धि, पित्त-विकार, ज्वर, तृषा, अर्श, प्रमेह-पिडिका, शोथ, इक्षुमेह, अतिस्वेद व सामान्य दौर्बल्य आदि मे लाभकारी है।

यकृत के विकार एवं तज्जन्य मधुमेह और अर्श पर यह विशेष उपयोगी है। इसके प्रयोग से यकृत की वृद्धि, जडता आदि दूर होती है, पित्तयुक्त पतले १-२ दस्त होते है, आध्मान दूर होता है, प्रस्वेद बंद होता व पैरो का शोथ दूर होती और शक्तिवृद्धि होती है।

यकृत-विकृति-जन्य मधुमेह में यद्यपि केवल इसे ही देने से लाभ होता है, तथापि इसके साथ यदि जामुन की गुठली और लहसुन का उचित मिश्रण करके दिया जाय तो और भी उत्तम लाभ होता है। किंतु ध्यान रहे इसका प्रयोग लगातार कई दिनों तक न करे, अन्यथा उदर मे जलन होती और पेशाब मे पुन शर्करा आने लगती है। ८ दिन बद रक्खे, इस प्रकार सेवन करे। इसका प्रभाव स्थायी रूप से रहता है या नही यह निश्चित् नही कहा जा सकता।

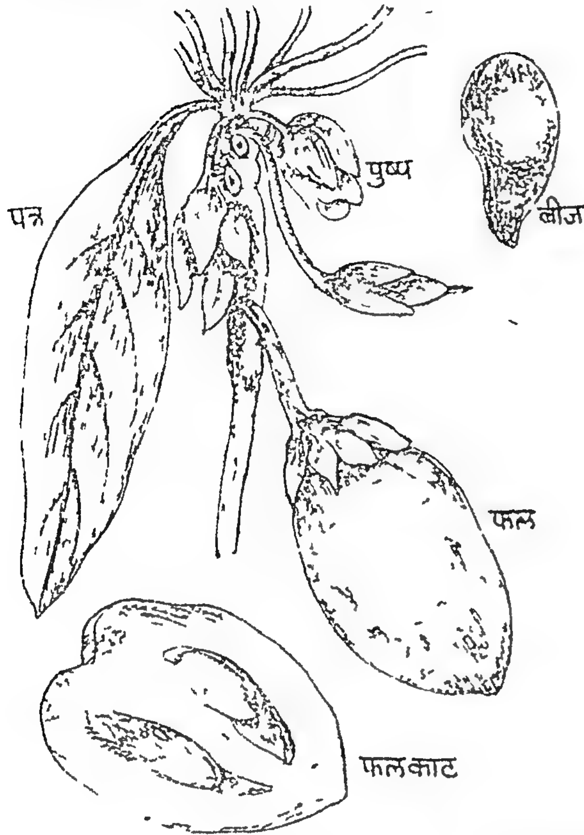
अर्श रोग में—इसका पत्र-रस घृत के साथ सेवन कराते रहने से, अथवा इसकी जड का चूर्ण ६ मा० की मात्रा मे मक्खन के साथ देते रहने से, और जड को शीत जल में पीस कर अर्शांकुरों पर लगाते रहने से उत्तम लाभ होता है।

नोट—मात्रा–छाल या मूल का क्वाथ--आधे से ढाई तो० चूर्ण—१-३ मा०, कटु पौष्टिक कर्म के लिये ४-१० रत्ती, पत्र-स्वरस ६ मा० से १ तो० तक।

चिल्ली–दे०–बथुआ विलायती। चिलौनी–दे०–माकिया।

चीकू (Achras Sapota)

अरिष्ट कुल (Sapindaceae) के, मध्यम आकार के ये छोटे सुन्दर, सदैव हरे-भरे वृक्ष, कहे जाते है कि अमेरिका के निवासी है। किंतु भारत मे भी ये बाग-बगीचो मे खूब लगाये जाते है। इनकी छाल भूरे रग की; पत्र–एकान्तर, बकुल (मौलसिरी) के पत्र जैसे लम्बे गोल, फूल–हलके श्वेत रग के, फल–तेंदू जैसे, बडे १-२ गुठलियो से युक्त, धूसर लाल वर्ण के, मासल एव पकने पर मधुर होते है।



ये वृक्ष वम्बई प्रान्त मे तथा समुद्र के किनारे के प्रदेशो मे विशेप होते हैं।

नाम—

हि०--चीकू, सपोटा। म०- चिकू। गु०--चीकूनु झाड। वं०--सपोटा। अं०--सेपोडिला प्लम (Sapodilla plum), सेपोटा (Sapota)। ले०--एक्रस सेपोटा।

रा० सं०—इसमे ग्लुकोसाइड, सेपोटीन (Sapotin) और कुछ क्षार तत्त्व पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसके फल—पित्तशामक, पौष्टिक, ज्वरनाशक, ज्वर रोगी को पथ्य, छाल—सकोचक, पौष्टिक, ज्वर नाशक, ज्वर मे इनकी क्रिया सिनकोना जैसी होती है। छाल का क्वाथ—जीर्ण ज्वर और अतिसार मे दिया जाता है। बीज—अधिक मूत्रल हैं। बीज-चूर्ण की मात्रा ३ रत्ती तक, पानी के साथ मूत्रकृच्छ, मूत्राघात मे देते हैं। अधिक मात्रा मे भेदक, विरेचक एव कुछ विषैला प्रभाव करते है।

चीड़ (Pinus Longifolia)



कर्पूरादिवर्ग एव देवदारु कुल (Coniferae) के इसके वृक्षविरकुल सीधे,सरल, वहुत ऊचे अधिक से अधिक १२५ फीट तक तथा कम से-कम ५० फीट तक होते है। काण्ड की परिधि लगभग ५ से १२ फीट तक; छाल—खुरदरी, वाहर से किंचित् लाल, धूसर वर्ण की, भीतर से गहरे लाल रग की; काष्ठ-भाग—वाहर से पीताभ-श्वेत, अन्दर से रक्ताभ धूसर, अति स्निग्ध, तीव्र गधी, पत्र—छोटी टहनियो के अग्र भाग। गुच्छो (३-३ के समूह) मे, ५-१२ इच लम्बे, कुछ त्रिकोणयुक्त, हल्के हरे रग के, सूच्याकार के, नीचे की ओर झुके हुए, देवदारु के पत्र जैसे (भेद इतना ही है कि देवदारु-पत्र छोटे, और इनके लम्बे—तिगुने शल्य के काम आने वाली सुई जैसे) होते है।

पुष्प—वसत ऋतु मे, ½ इच लम्वे, शखाकार, देवदारु के पुष्प जैसे, गुच्छो मे,फल—कुछ लम्ब-गोलाकार, ४—८ इच लम्बे, ३-५ इच मोटे, देवदारु के फल जैसे किंतु आकार मे कुछ वडे, तथा प्रत्येक उगली जैसे, कोठो मे २-२ कही-कही एक-एक ही वीज होते है। चैत्र-वैशाख मे फल फट कर वीज निकल पडते है और फल वृक्ष पर ही लगे रह जाते है। वीज—½-१ इच लम्वे, अण्डाकार, अग्र भाग पर तितली के पख जैसे पत्र-युक्त होते है।

इसके वृक्ष, समूह वद्ध, हिमालय-प्रदेश मे ३ से ६ हजार फाट की ऊचाई पर अफगानिस्तान से लेकर काश्मीर तक तथा पजाव, उत्तर प्रदेश से लेकर पूर्व मे

भूटान, नेपाल, गढवाल, अलमोडा, आसाम और ब्रह्मा तक बहुतायत से पाये जाते है।

नोट—(I) चरक के पुरीष-विरेचनीय गण मे तथा सुश्रुत के एलादि गण में इसकी गणना है।

(II) चीड़ की जो ४-५ उपजातियां भारत में पाई जाती हैं, उनमें से (१) चील या कैल या नीली चीड (Bluepine—Pinu Excelsa) नामक उपजाति, विशेषत पंजाब और उत्तर-प्रदेश मे पाई जाती है। इसके पत्र—नील हरित वर्ण के, प्रति गुच्छे में ५-६ सामूहिक होते हैं, तथा फल—गुच्छों से लम्ब गोल एवं बीज वाहक पत्रों के अग्र भाग बहुत मोटे नही होते। इन पेडों से जो निर्यास (गंधा बिरोजा) निकलता है। वह प्रमाण में तो बहुत कम निकलता है, किन्तु अधिक उत्तम होता है। कैल का प्रकरण देखिये। (२) चीड खासिया (P Khaya, Dingsa) के पेड खासिया व लुसाई पहाडों पर तथा चिटागांग, मर्तबान (बर्मा) आदि की पहाड़ियो पर पाये जाते हैं। इनसे भी जो निर्यास प्राप्त होता है, उससे तारपीन-तैल निकाला जाता है।

(III) चीड सनोवर (P Sylvestris) नामक इसी कुल का एक चीड वृक्ष होता है। इसके निर्यास को कतरान या चुडैल तैल कहते हैं। इसका वर्णन आगे के प्रकरण में देखिये।

(IV) गंधा विरोजा—(बिहरोजा, विरोजा, The Oleo resin of pine)

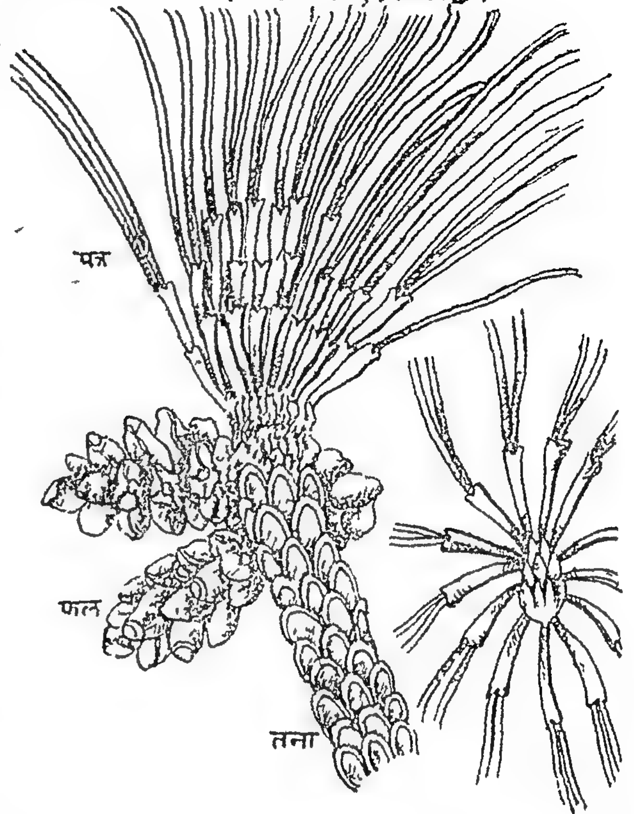
चीड वृक्ष के काण्ड या तने मे जड से दो फुट ऊपर को कटारी से क्षत कर, उसमे वर्तन लगा देते है। १-२ दिन मे वृक्ष का निर्यास निकल कर पात्र को भर देता है। इसे ही गधा-विरोजा, सरल-निर्यास, श्रीवास आदि कहते है। ताजी अवस्था मे यह श्वेत, कुछ पतला, गाढा होता है। फिर धीरे-धीरे यह अधिक गाढा, पीला और गहरा पीला हो जाता है यह गीला और सूखा दो प्रकार का मिलता है। गीला गधा-विरोजा चिपचिपा, मुलायम तथा उग्रगध युक्त होता है।

नोट—कहीं-कही जवाशीर (Galbanum) को भी गधाविरोजा कहते है। किन्तु यह इससे भिन्न है। यथा-स्थान आगे जवाशीर का प्रकरण देखें।

सस्कृत का श्रीवेष्टक नाम जो गधाविरोजा को दिया गया है, उसके विषय मे मतभेद है। आचार्य यादव जी ने इसे प्रस्तुत प्रसंग के चीड वृक्ष का ही निर्यास

चीड (सरल)

PINUS LONGIFOLIA, ROXB.



माना है। किंतु अन्य किसी निघण्टुकारो ने यह नाम चद्रस कहरुवा, को दिया है। सर्वमत से प्राय यह सिद्ध होता है कि चन्द्ररस कहरुवा को ही कहते है। उसे श्रीवेष्टक कहना एक भ्रम है। कहरुवा का प्रकरण देखे।

(V) तारपीन-तैल—उक्त गधाविरोजा से, वाष्प के साथ ऊर्ध्वनलिका यत्र द्वारा निकाले गये तैल को तारपीन-तैल, खन्ना का तेल, खन्नु तैल (Tirpentine oil) कहते है। गधाविरोजा से लगभग २० प्र० श० यह तैल प्राप्त होता है। शेष ८० प्र० श० भाग को रेझिन या कोलोफोनि (Resin, Colophony) कहते है। यह भाग पारभासक, हलके अम्बर के वर्ण का, चमकीला तथा आसानी से टूटने वाला घन पदार्थ है, इसमे तारपीन जैसी गध व स्वाद होता है। यह पुराने व्रणो मे लाभकारी है। इसका मलहम बनाया जाता है।

तारपीन तैल का उपयोग औषध-कार्य की अपेक्षा,

सुगंधित द्रव्य, कृत्रिम कपूर, तैलीय रंग एवं वार्निश आदि के उद्योगों में बहुत किया जाता है।[1] यह तेल स्वच्छ, रंगहीन, एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध से युक्त, स्वाद में कटु एवं कुछ तिक्त होता है। पुराना हो जाने पर इसके स्वाद व गंध में विकृति आ जाती है, वह अप्रिय हो जाता है। भारतीय व्यापारी तेल में कई पदार्थों का मिश्रण होता है। शुद्ध तारपीन-तेल को प्रकाशहीन ठंडी जगह में बन्द बोतलों में रखना चाहिये।

नाम—

सं०—सरल (इसका काण्ड सीधा होने से) पीत वृक्ष, सुरभिदारुक, धूप वृक्ष (लकड़ी का धूप कार्य में प्रयोग होने से), नमेरु (पत्रगुच्छ अवनत होने से), शीतदारु इ०। हि०—चीड़, चील, धूप सरल, इ०। म०—सरल देवदार। गु०—तेलियो देवदार, पीली बेरजा। बं०—सरल गाछ। अं०—लाग लीव्हड पाईन, चिर पाईन [Long leaved pine, Chir pine] लै०—पाइनस लांगि फोलिया।

रासायनिक संगठन—गंधा विरोजा और उसके तैल में पाइनिन (Pinene), लाइमोनिन (Limonene) केरीन (Carene) और लांगिफोलिन (Longifolene) नामक तत्त्व पाये जाते हैं।

प्रयोज्य अङ्ग—काष्ठ, निर्यास (गंधाविरोजा) और तैल (तारपीन)।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, मधुर, कटु विपाक, उष्ण-वीर्य तथा कफवात-शामक, दीपन, अनुलोमन, यकृदुत्ते-जक, कफ-निःसारक, श्लेष्म प्रतिरोधक, मूत्रल, जन्तुघ्न, रक्तोत्तेजक, रक्तस्राव स्तम्भक, व्रणशोधक, गर्भा-शय-शोथहर, शक्तिप्रद व नाड़ी-उत्तेजक है। वात-व्याधि, अग्निमांद्य, आध्मान, पित्ताश्मरी, जीर्ण कास, मूर्च्छा, यक्ष्मा, जीर्ण वस्तिशोथ, प्रमेह, सुजाक, श्वेतप्रदर, गर्भाशयिक व्रण, आन्त्र ज्वर, कुष्ठ, नासा कर्ण, कंठ एवं नेत्र सम्बन्धित विकारों पर प्रयोजित है। यह फुफ्फुस व श्वास-नलिका से रक्त-स्रवण को रोकना एवं रक्त-निष्ठीवन को बन्द करना है।

काष्ठ—इसकी लकड़ी दीप-विरोसरागी, शीत-जन्य शोथ-हर, वेदना-स्थापन है। इसका उपयोग अन्य यथो-चित औषधों के साथ, क्वाथ के रूप में—दाह, कास, मूर्च्छा, आध्मान, अपस्मार, अश्मरी, रक्तज्वर, कृमि, श्लेष्मातिसार, अर्दित, पक्षाघात आदि वातिक व्याधियों एवं वातज हिक्का पर किया जाता है। केवल इसी काष्ठ के क्वाथ में, गुदभ्रंश, गुदभ्रंश से पीड़ित रोगी को बैठालते रहने से भी लाभ होता है।

कंठमाला एवं प्रायः शीतजन्य शोथ को दूर करने के लिये इसका लेप लगाते हैं।

(१) कर्णशूल में—इसकी लकड़ी पर कपड़ा लपेट कर, तथा घृत में डुबोकर जलाने से जो तैल टपकता है उसे कान में डालने से लाभ होता है।

व्रण पर—व्रण-रोपण तैलों में इसका उपयोग किया जाता है तथा व्रण में इसकी छाल या बुरादा का धुआँ दिया जाता है।

(३) कफवातज या शीतजन्य शोथ पर—इसके काष्ठ के चूर्ण के साथ अगर, कूठ, सोंठ और देवदारु चूर्ण समभाग मिलित १ तो० लेकर गोमूत्र या कांजी में पीसकर पीने से लाभ होता है। (वृ० मा०)।

निर्यास (गंधा विरोजा)—कड़ुवा, कसैला, उष्ण, स्निग्ध, आध्मान-नाशक, वातकफ-शामक, कामदीपक, मूत्रल, कृमिघ्न, मंदाग्नि, व्रण, खुजली, प्रदाह, सिर-दर्द, वेदना (योनि, गर्भाशय आदि की वेदना) नाशक, मूत्रल, आर्तव-प्रवर्त्तक है।

---

[1] इस तैल का संसार भर की आवश्यकता का प्र० श० ६० भाग अमेरिका एवं प्र० श० २२ भाग फ्रांस पूर्ति करता है। इन देशों में इसके वृक्ष अत्यधिक हैं। भारत में भी यद्यपि इसके वृक्ष बहुत पाये जाते हैं, तथापि जंगली प्रदेशों में यातायात की कठिनाइयों के कारण अभी बहुत कम वृक्षों से यह तैल निकाला जाता है। भवाली, जाल्लो, तथा बरेली के पास चिन्तरबक गंज आदि स्थानों में इसके निकालने के कारखाने हैं।

अमेरिका व फ्रांस के तैल में प्रभावशाली पायनिन (Pinene) अधिक होने से, उससे कृत्रिम-कपूर निर्माण होता है। भारतीय तैल और भी कई कारणों से विदेशी तैल से हीन श्रेणी का समझा जाता है। किन्तु अन्य उद्योगों में इसका उपयोग होता है।

शुद्धीकरण—आभ्यन्तर सेवनार्थ इसको निम्न प्रकार से शुद्ध कर लेना चाहिये—एक पात्र मे दूध और जल समभाग लेकर अथवा केवल जल लेकर उसके मुख पर कपडा बाघ दे। फिर कपड़े पर विरोजा डालकर, पात्र को आग पर रख दे। पानी की भाप से ऊपर का विरोजा पिघल कर तथा कपड़े से छनकर पात्र के अन्दर चले जाने पर, पात्र को नीचे उतार कर, शीतल होने पर, तल भाग मे जमे हुए विरोजा को निकाल कर सुखा लेवे। इसे ही विरोजा-सत्व कहते है। अथवा पात्र को नीचे उतारने पर, जब पानी कुछ गरम ही रहे तभी विरोजे को निकाल, हाथो से, रेवडी की चाशनी की तरह खीच-खीच कर उसी गरम पानी मे डालते रहे, जिससे वह मुलायम बना रहे। इस प्रकार करने से वह रेशम जैसा श्वेत चमकदार और खस्ता हो जाता है। इस सत को १०-१२ घटे तक सूखने दे। फिर चूर्ण कर रक्खें। यह उत्तम विरोजे का सत्व होता है।

इसके सेवन से लालास्राव अधिक होता, उदर मे कभी-कभी गरमी व शीतलता की प्रतीति होती, डकारे आती, अपान वायु का निस्सरण होता, नाडी का वेग बढता, श्वासोच्छ्वास का प्रमाण बढता, शरीर मे गरमी पैदा होती, पेशाब अधिक मात्रा मे आता, आमाशय व मज्जा-तन्तुओ मे उत्तेजना होती है। यह रक्त मे बहुत शीघ्र मिल जाता, एव फिर श्वासोच्छ्वास की श्लेष्मल त्वचा के द्वारा, तथा मूत्रादि के द्वारा बाहर निकलता है। त्वचा से बाहर निकलते समय यह त्वचा की विनिमय-क्रिया को सुधारता व पसीना लाता है।

इसका विशेष उपयोग सुजाक मे गोली या चूर्ण के रूप मे किया जाता है। व्रणो के कृमिनाशार्थ तथा उनके रोपण के लिये इसका उपयोग मरहमो मे किया जाता है। कठमाला, ग्रन्थि आदि के विलयनार्थ इसका लेप लगाया जाता है।

(४) सुजाक (औपसर्गिक मेह) पर—शुद्ध विरोजा १ तो०, शुद्ध राल २॥ तो०, गूगल ५ तो०, रूमीमस्तगी २॥ तो०, तथा चन्दन तैल २॥ तो० इन सब को घोट कर १-१॥ मा० की गोलिया बनाले। दिन भर मे—२-४ गोला दारुहल्दी के क्वाथ से सेवन करने से पुराने सुजाक एवं वस्तिशोथ मे भी लाभ होता है।

अथवा—गीला विरोजा २० तो० एक कपडे की पोटली मे बाधकर, एक बडी हाडी मे ४ सेर गोमूत्र भर, उसमे दोला यत्र-विधि से पकावे। चतुर्थांश गोमूत्र शेष रहने पर, हाडी को उतार विरोजा को निकाल, एक परात मे २१ बार शीतल जल से धो डाले। फिर उसमे छोटी इलायची दाने और मिश्री का चूर्ण ५-५ तो० मिला लेवे। ३ से ६ मा० तक प्रात कच्चे दूध के साथ सेवन करने से शीघ्र ही नया सुजाक दूर होता है। रोग प्रबल हो, तो सध्या को भी इसे लेवे। सेवन-काल मे—खटाई, गुड, तैल, लाल मिर्च तथा गरिष्ठ भोजन न करे। ब्रह्मचर्य का पालन करे। साथ ही निम्न मूत्र-शोधक क्वाथ की पिचकारी से मूत्र-नलिका को दिन मे २-३ बार धोना चाहिये।

मूत्र-शोधक क्वाथ—सोनागेरू, मेहदी-पत्र, रसौत व सफेद सुर्मा २-२ तो०, जौकुट कर १॥ सेर पानी मे अर्धावशिष्ट क्वाथ कर, शीतल होने पर छानकर पिचकारी करे। (र० त० सार)

(५) मूत्रकृच्छ्र पर—शुद्ध विरोजा (विरोजासत) ४ तोला मे मकरध्वज या षडगुण-गधक जारित रस सिंदूर ८-८ माशा मिलाकर खरल करे। १-२ माशा दिन मे दो बार ताजे दूध, जल या मिश्री के साथ सेवन करने से नूतन मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) मे लाभ होता है। ८-१० दिन मे मूत्र-प्रसेक-नलिका के भीतर का घाव दूर होकर पीप आना बन्द होता एव मूत्रदाह का निवारण होता है। जीर्ण रोग मे अधिक दिन सेवन करना चाहिए।

इस योग मे मकरध्वज या रससिंदूर के अभाव मे शुद्ध विरोजा भी लाभ पहुँचा सकता है। (र त. सार) अथवा—

शुद्ध विरोजा २॥ तोला, छोटी इलायची दाने १० माशा और मिश्री ६ तोला तीनो के महीन चूर्ण का मिश्रण ६ माशे दूध जल की लस्सी या शीतल जल से प्रात साय सेवन करने से सुजाक एव तज्जन्य कष्टो का शीघ्र निवारण होता है।

(६) कच्छु कुष्ठ (पामा-भेद, तर खुजली Scabies) पर—शुद्ध विरोजा ५ तोले के साथ समभाग लोध, राल, कमीला, मेनसिल, अजवायन, व गधक का चूर्ण लेकर घृत २ सेर व पानी ८ सेर मे मिला, धूप मे रख दे। पानी के सूख जाने पर घृत छान ले। इस 'श्री वास घृत' की मालिश से घोर कच्छु भी नष्ट हो जाता है। (व से)

(७) व्रणो पर धूप (श्रीवासादि धूप)—गधा-विरोजा (अशुद्ध), गूगल, अगुरु, तथा राल की धूप देने से कोमल व्रण कठोर होकर उनकी स्राव व वेदना दूर हो जाती है। जिन व्रणो मे वायु का प्रकोप अधिक हो, स्राव विशेप हो, तथा अतिवेदना हो उनमे उक्त धूप अथवा विरोजा, जौ, घृत, भोजपत्र, मोम व देवदार के बुरादे की धूप देवे। अथवा केवल विरोजे की ही धूप देने से यथेष्ट लाभ हो जाता है। (भै र)

(८) कफ-प्रकोप-जन्य कर्ण शूल तथा सिर दर्द पर विरोजे को गुलरोगन (गुलाव के तेल) मे घोट कर कान मे टपकाते है। तथा सिर दर्द पर मालिश करते है।

तैल (तारपीन)—कटु, कुछ तिक्त, उष्ण, वातानुलोमन, आन्त्र एव आमाशय उद्दीपक, अल्प मात्रा मे सेवन से हृदय उत्तेजक, धमनियो को सकुचित कर रक्तस्तम्भक, मूत्रल, अधिक मात्रा मे हृदयावसादक, रक्तातिसार जनक होता है। वाह्यत यह त्वचा-पर रक्तोत्क्लेशक, कोथ-प्रतिवधक, सक्षोभजनक है। इसे मर्दन करने से प्रारम्भ मे त्वचा लाल होकर प्रक्षोभ उत्पन्न होता है, फिर नाड्यग्रो के अवसाद से शून्यता पैदा होती है, जिससे सूक्ष्म रक्त-वाहिनियो का सकोच होकर वाह्य (स्थानिक) रक्त-स्राव रुक जाता है। किंतु अधिक मर्दन से त्वचा मे स्फोट आदि भी उत्पन्न होते है।

तैल के तथा विरोजा के गुणधर्म लगभग समान ही है। आन्त्रिक ज्वर (टायफाईड) मे यह अपने वातानुलोमक प्रभाव से शोथ (Tympanitis) को दूर करता तथा रोगोत्पादक दण्डाणु की वृद्धि को वन्द कर प्रत्यक्ष रोग मे लाभकारी है। ऐसी दशा मे तल की मात्रा १५-३० बू द घण्टे घण्टे से कई वार देते है।

क्षत मे या कट जाने पर—तैल के लगाने से स्थानिक रक्तस्राव रुक जाता है और शीघ्र लाभ होता है। शुद्ध शल्यकर्म मे साधारण रक्तस्राव को रोकने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। चोट लग जाने पर इसकी मालिश से शीघ्र लाभ होता है। वैसे ही बिच्छू व बर्रे के दंश पर भी इसे लगाने से आराम होता है।

आमवात, कटिशूल, सधिपीडा एव वात-नाडी शूल मे यह लगाया जाता है।

(१) आध्मान एव तज्जन्यशूल, आन्त्रिक शोथ मे इससे स्वेदन किया जाता है, फलालैन और कपडे को उष्ण जल मे निचोडकर उन पर थोडा तैल छिडककर उससे सेका जाता है। देखिये प्रयोग ३।

(२) जीर्ण श्वसनी-शोथ (ब्राकाइटिस) मे इसके प्रयोग से कफ निकलने लगता है, तथा जीवाणुओ का नाश होने से दुर्गन्ध भी दूर होती है। रोगी के कफ मे तैल को छिडकने से वह श्वास मे जाकर अपना कार्य करता है। कफक्षय एव रक्तष्ठीवन मे भी इसे देते है, तथा सु घाते भी है। फुफ्फुसो के कोथ मे इससे विशेष लाभ होता है। इन विकारो पर—इसे तेल और मुलैठी के महीन चूर्ण समभाग २॥-२॥ तोले तथा शहद २ तोले सबको एक साथ घोटकर ३ माशा से ८ माशा तक की मात्रा मे सेवन कराते है।

(३) आध्मान जन्यशूल तथा स्फीत कृमियो (Tapeworms) पर—तेल को गोद के साथ घोट कर, थोडी शक्कर और जल मिला पिलाते हैं। आमाशयिक व्रण से या अन्य कारणो से आन्त्र से रक्त-स्राव होता हो तो इसके प्रयोग से लाभ होता है। तैल की वस्ति भी देते है। साधारण उदर-शूल पर—तेल की २ बू दे, एक चम्मच सौंफ के अर्क मे मिला पिलावे। वच्चो के लिए तेल-मात्रा १ बू द।

उक्त कृमि-रोग पर इस तेल की ३ माशा से १ तोला तक की मात्रा रेडी तेल के साथ भी दी जाती है, किंतु इसमे सावधानी की आवश्यकता है। तेल की वस्ति भी देते है।

जीर्ण कोष्ठवद्धता, आध्मान एव सूत्रकृमि पर—इसकी, ६०-१२० बू दे साबुन के लगभग ३ सेर घोल मे मिला

कर वस्ति देने मे विशेष लाभ होता है। अथवा—

तैल ५ तोले को कांजी या सिर्का ४० तोला मे मिला वस्ति देने मे शूल, मूर्च्छा, अपस्मार, संज्ञानाश एव प्रसवान्तर के दौरो मे लाभ होता है।

(४) पुराने सुजाक पर—इसे १ से ३ बूंद की मात्रा मे मिश्री चूर्ण और लस्सी के साथ सेवन करते है।

(५) फुंसियो पर—गरमी के कारण शरीर मे छोटी छोटी फुंसिया निकल आई हो तो यह तेल लगाकर ५ मिनट बाद धो देने से शीघ्र ही लाभ होता है। वैसे ही मुंह के मुंहासो (फुंसियो) पर इसे लगाकर धो डालने से वे दूर हो जाते हैं।

(६) बच्चों की पसली चलने पर—इस तेल मे समभाग सरसों तेल मिला कर धीरे धीरे पसलियो पर मालिश करते है।

(७) अन्यान्य उपयोग—हैजा, प्लेग, चेचक, मौसमी बुखार आदि संक्रामक रोगों से बचने के लिए—२॥ तोले तारपीन तेल, तथा ६ माशा कपूर, आध सेर हवन-सामग्री मे मिलाकर हवन करते रहने से दूषित कीटाणु नष्ट होते हैं, तथा रोगाक्रमण का भय नही रहता।

आध्मान या पेट फूल जाने पर यह तेल लगाकर धीरे धीरे मालिश करते हैं।

दाद, खुजली पर—इसके लगाते रहने से लाभ होता है।

अग्निदग्ध पर—तेल मे रुई को भिगोकर लगाते हैं।

चोट लगने या कट जाने पर—इसे लगा कर मालिश करते हैं। कटे हुए स्थान पर इसे लगाने से रक्त बन्द होकर लाभ होता है।

चूहे भगाने के लिए—तेल मे कार्क भिगोकर चूहो के बिलो पर रख देने से वे भाग जाते है।

विशिष्ट योग--

(८) मलहम गंधाविरोजा—विरोजा ४० तोलें को कटाही मे मंदाग्नि पर पिघलावें। मलहम के योग्य इसका पाक हो जाने पर, नीचे उतार कर तुरन्त कपडे मे छान, उसमे हिंगुल चूर्ण १ तोला तक थोडा थोडा करके डाल दें तथा चलाते रहे। शीतल हो जाने पर निकाल कर रख लें।

यह लाल मलहम शोधन, रोपण वेदनाहर तथा प्लीहा वृद्धि को भी दूर करने वाला है। पार्श्वशूल (उदरस्नोथ, प्लुरसी) या अन्य स्थानो की वेदना पर इसके लेप से लाभ होता है।

इसे जिस स्थान पर लगाना हो, उस स्थान के बराबर कपडे की पट्टी काटकर, उस पर एक छुरी को गरम कर उससे मलहम निकाल कर फैलावें और लगा दे और पट्टी पर कागज चिपका दे जिससे विरोजा पट्टी मे से बाहर न निकले। उस स्थान के बालो को प्रथक छुरे से निकाल डालना चाहिए। यदि कुछ बाल रह गये हों, और पट्टी निकालने मे कष्ट हो तो तारपीन तेल की कुछ बूंदे डालकर पट्टी को खोल दें। (र त सार)

(९) हरा मलहम—विरोजा ४० तोले मंदाग्नि पर गरम करदे। मलहम के योग्य बनने पर कपडे से छान कर उसमे जङ्गाल, साबुन, और पत्थर के कोयले २-२ तोले तथा पापड खार ३ तोले, इनका महीन चूर्ण मिला कर, मलहम शीतल होने तक हिलाते रहे।

यह मलहम व्रणो का शोधन व रोपण है तथा फोडो को पकाकर फोडने वाला (विदारण) है। यदि व्रण-शोथ पकजाने पर भी न फूटता हो तो इसकी पट्टी लगाने से शीघ्र फूट जाता है। इसके अतिरिक्त ओरियंटलसोर जिसे अकबरी फोडा भी कहते है, जो १ वर्ष की अवधि के विना नही मिटता उस पर ३ महीने तक इस मलहम की पट्टी बांधने से अवश्य आराम होता देखा गया है। (—र० तन्त्र)

(१०) तारपीन-मर्दन—(Linimentum Terebinthinae)—तारपीन—तेल ६५ औंस, कपूर ५ औंस, मृदु साबुन (Soft soap) ७॥ औंस और वाष्प-जल २२॥ औंस लेवें। कपूर को तारपीन तैल मे घोल ले, साबुन को जल मे घोल लें। फिर दोनो को थोडा-थोडा मिलाते हुए घोंटते जावे, जिसका एक गाढा इमलसन बन जावेगा।

यह मर्दन उत्तेजक, प्रत्युग्रता-साधक (Counter irritant) और चर्म-प्रदाहक (Rubefacient) है। चिरकारी वातरोग, गृध्रसीशूल, कटिशूल, जीर्ण आमवात

ऊरुस्तंभ, संधिवात और वातरक्त मे इस मर्दन का उपयोग होता है। सूतिका-रोग मे आक्षेप आने पर भी इसकी मालिश करायी जाती है।

१ अधिक मात्रा मे सेवन से महा-स्रोत मे प्रक्षोभ से तीव्र विरेचन, वमन, रक्तातिसार तथा तन्द्रा, सारे शरीर मे शैथिल्य, अवसाद, नाडी की मंदता, मूत्रदाह, मूत्र-रक्तता, सावेदनिक-नाडियो का घात, प्रत्याक्षेप-जनक वात एवं सन्यास आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते है। ये ही परिणाम अधिक मात्रा मे तारपीन के तेल के सूघने मे भी हो सकते है।

२ जलोदर-रोग यदि यकृत की विकृति से हुआ हो तो मूत्र की वृद्धि के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। किंतु रोगी के वृक्क (गुर्दे) निरोग होने चाहिए। अन्यथा हानि होती है।

३. तारपीन तैल की बाष्प (वायुमिश्रित) श्वास-मार्ग से ग्रहण करने पर श्लेष्म-निस्सरण क्रिया सरलता-पूर्वक होती है। अत कास रोग मे कफ अत्यधिक बढ जाने पर यह क्रिया हितकारी होती है।

चीड़ (सनोवर, कतरान) (*PINUS SYLVESTRIS*)

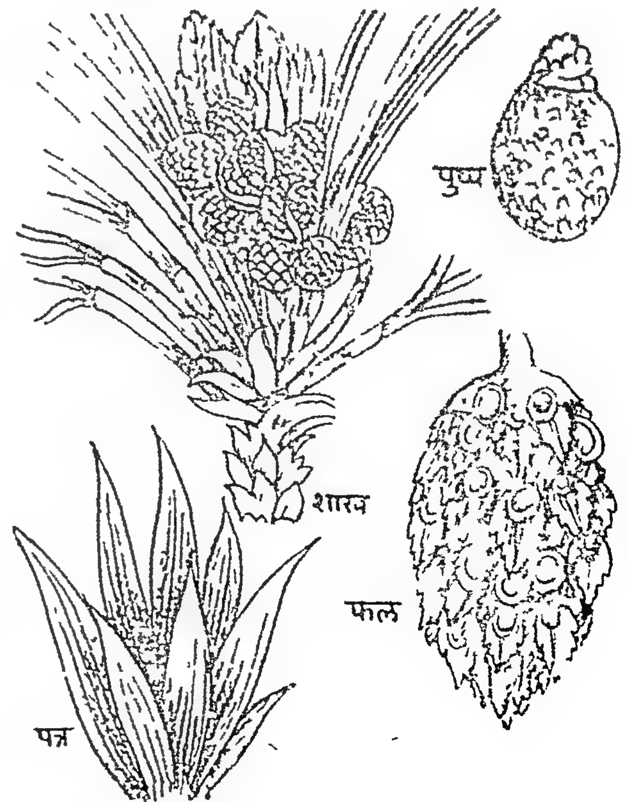
इसके वृक्ष सदैव हरे-भरे, ७० से १५० फुट तक ऊंचे, तने का व्यास १॥ से २॥ फुट, शाखायें-वर्तुलाकार, काष्ठ—पीतवर्ण का, पत्र-उक्त चीड पत्र जैसे ही, किंतु द्विविभक्त रूप मे, पुष्प-नर-पुष्प-ताल की जटा जैसे तथा स्त्री पुष्प-फलसमूह (Cones) के भीतर होते है।

इसके वृक्ष यूरोप के फ्रास, पोर्तुगाल, तथा एशिया के यूनान आदि उत्तर-प्रदेशो मे, एवं मलाबार के समुद्र तटवर्ती प्रदेशो मे अधिक पाये जाते हैं।

नोट—काला डामर या कतरान—किसी ऊंची जमीन या टीले पर गढ़ा खोदकर उसके भीतर चारों ओर पक्की ईंट और चूने की दीवार खडी कर नीचे एक नाली सी बना देते हैं। उस गढ़े में इस वृक्ष की लकडी तथा जडों के टुकडे कर भर देते हैं। गढ़े को बन्द कर चारो ओर आग जलाने से इसका रंग रहित, तैल नाली से बहकर निकलता है। उसे संगृहीत कर लेते हैं। यह तैल कुछ देर बाद लालिमायुक्त भूरा और फिर काला, सान्द्र हो जाता है।

इसे ही—कतरान, कातरान, चुडैल या चडियान का तैल या कील हिन्दी मे, पिक्स लिक्विडा (Pix Liquida) लेटिन मे, तथा वुड टार, पाईन टार, पिक्स पाईन (Wood tar, Pine tar, Pix pine) अंग्रेजी मे कहते हैं। यह कालापन लिये हुए भूरे रंग का, अलकतरे (डामर) जैसा विशिष्ट गंध युक्त होने से इसे ही काला डामर कहा जाता है।

ध्यान रहे अलकतरा या डामर दो प्रकार का होता है। एक तो वह है जो कोयले मे से निकाला जाता है,



इसे Pix Carbons Praeparata, Alkatara कहते हैं। इस खनिज कोलतार का केवल वाह्य उपयोग होता है। दूसरा वृक्षज डामर (Wood tar) या Pix Liquida है, जिसका प्रस्तुत प्रसग मे वर्णन किया जा रहा है। इसके मर्दन आदि वाह्य उपयोग के साथ ही अत्यल्प आन्तरिक,उपयोग भी होता है।

इस वृक्ष के लाल जटारूपी पुष्पों एवं फल-समूहो से वाष्पीकरण द्वारा तथा उक्त निर्यास (कतरान) से परिस्रावित कर एक स्थायी सुगंधित तैल निकाला जाता है, जो गृहो की शुद्धि एव कीटाणुनाशार्थ प्रयुक्त होता है, तथा दूषित व्रणो के रोपणार्थ मलहमो मे मिलाया जाता है।

नाम--

हि०–चीड-कतरान या सनोवर, डामर वृक्ष। अं०–स्काच पाइन, येलो पाइन (Scotch pine, Yellow pine)। पाइनस सिल्वेस्ट्रिस।

रासायनिक संगठन—कतरान का पृथक्करण करने पर—इसमे क्रियोजूट या क्रेसोल (Cresol); फेनोल नामक कार्बोलिक एसिड, तारपीन तैल, एसिटिक एसिड, पाइरो केटेकोल (Pyro Catechol), ग्यायाकोल (Guaiacol), टोल्यून (Toluene), झाइलोल (Xylol), एसिटोन (Aceton), मिथिलिक एसिड और रेझिन (राल जैसा पदार्थ) पाये जाते हैं। ये सब कीटाणुनाशक पदार्थ है।

गुणधर्म व प्रयोग--

इसका वाह्य उपयोग पूतिहर (Antiseptic), प्रदाहहर, रक्त-वाहिनियो का उत्तेजक, शोथ-प्रतिबंधक, रक्त-प्रसादक एव वातशामक है। इसकी मालिश या मर्दन से कभी-कभी प्रदाह युक्त पिडिकाए उभर आती हैं।

इसका आन्तरिक सेवन अपचन-निवारक है, किंतु अधिक मात्रा मे, यह कार्बोलिक एसिड सदृश वमन, उदर-पीडा, सिरदर्द आदि विष-लक्षणो को पैदा कर देता है। अत्यल्प मात्रा मे यह श्वसन-संस्थान की श्वास-नलिका आदि की श्लैष्मिक कला के प्रदाह को सफलतापूर्वक निवारण करता है, दूषित कफ की उत्पत्ति नहीं हो पाती, कफ सरलता से वाहर निकल जाता है। अत जाण कफकास, शीतकालीन कास, एव फुफ्फुस-प्रवाह (ब्राकाईटिस) मे इसका उपयोग—शर्बत, गोली या केपसूल के रूप मे होता है। प्रत्येक केपसूल मे ५ बूंद तक कतरान पडता है।

व्रणो के शोधन और रोपण के लिये यह मलहमो मे मिलाया जाता है। तथा इसे तिला मे मिलाकर शिश्न के स्फूर्ती करणार्थ मर्दन करते है। गर्भनिरोधार्थ इसे शिश्न पर लगाकर स्त्रीसंग करते हैं। गर्भपातार्थ इसे योनिमार्ग मे रखते हैं। आम-कृमिनाशार्थ इसे अल्प मात्रा मे गुदा के भीतर रखते हैं, अथवा अल्प मात्रा मे इसे गरम पानी में मिला वस्ति देते है। जलोदर पर इसे अल्प मात्रा मे सेवन कराते हैं। इसके मर्दन से जूए नष्ट होते हैं। शव या मृत शरीर पर इसे लगाने से मास विकृत नहीं होता। खुजली पर इसका लेप करते है।

इस कतरान के गुणधर्म प्राय तारपीन जैसे हैं, किंतु प्रभाव उससे कुछ कम है। इसके कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं—

(१) कास, कफ-विकार तथा क्षय पर—कतरान १ भाग, शक्कर १०० भाग और मद्यार्क १०॥ भाग और पानी २०० भाग लेकर, प्रथम शक्कर को पानी मे मिला शर्बत की चाशनी कर, उसमे कतरान मिला दे। फिर शीतल होने पर मद्यार्क मिलावे। मात्रा—१ से २॥ ड्राम सेवन कराने से शीतकालीन कास, क्षय की खांसी, तथा चिरकारी कफ-विकारो मे लाभ होता है।

(२) अर्क कतरान (Tar water)—कतरान १० भाग, वाष्पजल १०० भाग दोनो को मिलाकर फिल्टर कर लेवें। यह घाव तथा देर से रोपण होने वाले क्षतो को धोने के लिये एक उत्तम उत्तेजक धावन है। उदर-सेवन कराने पर पचन-क्रिया मे लाभ करता है। किंतु अधिक मात्रा मे देने से कार्बोलिक एसिड जैसे वमन आदि भयकर लक्षण होते है।

अथवा—कतरान १ भाग को समभाग मद्यार्क मे मिला, जो अर्क तैयार होता है, वह विचर्चिका तथा

निस्कारी शुष्क उकवत (पामा) पर लगाने से लाभकारी है। किंतु इसका उपयोग सावधानी से करना चाहिये।

चर्म-रोगो पर—५० भाग कसगन के साथ, १५ भाग असली मोम और पेट्रोलियम ३५ भाग मिलाकर मलहम बना, विविध चर्म-रोगों पर लगाया जाता है।

नोट—मात्रा—तैलनीय मात्रा १ से ४ रत्ती तक, दिन मे २ या ३ बार देते हैं। यह फुफ्फुस और शिरोरोगों में अहितकर है। हानि-निवारणार्थ-कतीरा बबूल का गोंद सेवन करावें।

चीता–दे०–चित्रक। चील–दे०–चीड़। चीना–दे०–चैना।

चुकन्दर (*BETA VULGARIS*)



शाकवर्ग के वास्तूक (बथुआ) कुल के (Chenopodiaceae) के इसके क्षुप रूप पौधे मूली या शलगम के पौधे जैसे; पत्र–मूली या शलगम के पत्र जैसे, कन्द–मूली कन्द से अत्यधिक मोटे और नाटे, गोलाकार के, रक्त और श्वेत भेद से दो प्रकार के होते हैं। ध्यान रहे, मूलक (मूली) व शलगम इससे भिन्न राजिकादि-कुल (Crucifereae) के हैं।

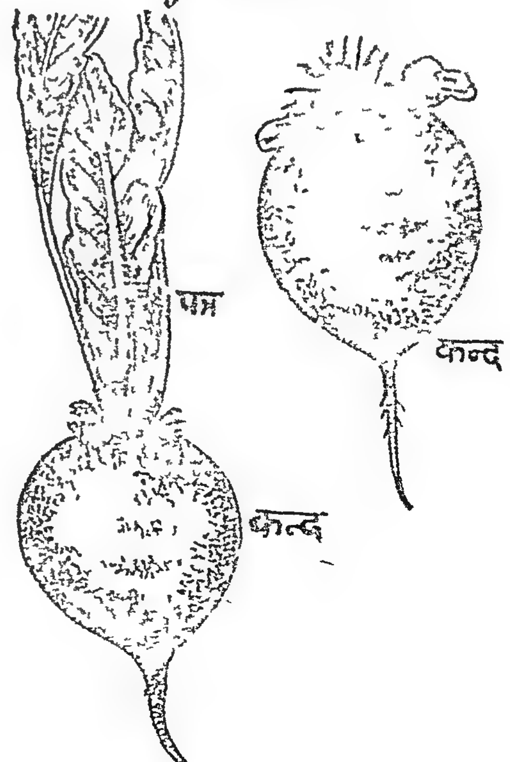
कन्द को तिरछा काटने से अन्दर चक्राकार चकत्ते से होते हैं। लाल कन्द से, काटने पर लाल रस निकलता है।

यूरोप और अमेरिका में इसका विशेष उत्पादन होता है। वहा शाकरूप मे तथा शर्करा-उत्पादन मे इसका अधिक उपयोग होता है और इसे Sugar beet (शक्करी-चुकन्दर) पुकारा जाता है। भारतवर्ष मे कई स्थानो के बागो मे यह पैदा किया जाता है।

नाम–

हि०–चुकन्दर। बं०–पलंग साग, बिट पालंग। अं०–कामन या गार्डन, या शुगर बीट (Common or Garden or Sugar-beet)। लै०–बेटा ह्वलगेरिस।

रासायनिक सं —इसमे प्र० श० १०७ प्रोटीन १३ ६ कार्बोहाइड्रेट, ० २० कैलशियम, ० ०६ फासफोरस, ० ८ खनिजपदार्थ, ८२ ८ पानी तथा प्र० श० गाम मे १ मिलीग्राम लोहा, ८८ मिलीग्राम ह्विटामिन सी, ७ इ० यू० ह्विटामिन बी १, और ह्विटामिन ए नाममात्र को रहता है। एक बीटीन (Betin) नामक इसमे प्रभावशाली सत्त्व भी होता है। इसमें शक्कर की मात्रा अधिक रहती है। किंतु गन्ने की शक्कर की अपेक्षा यह कम दर्जे की होती है। यह हृदय के लिये पौष्टिक नहीं है। किंतु यह शरीर मे गर्मी लाती एवं फुर्ती या उत्तेजना बढाती है।



प्रयोज्य अङ्ग—पत्र और कन्द ।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसका कन्द—मधुर, सारक, पुष्टिकर, रक्तवृद्धिकर एव मानसिक विकृति तथा शोथ आदि मे लाभकारी है ।

कन्द के रस का नस्य, अपस्मार आदि मानसिक विकृति एव आधाशीशी (आधे सिर के दर्द) पर देते है । दत-पीडा पर—इसके रस से कुल्ले कराते है । नेत्राभिष्यन्द पर—कन्द के रस को कनपटी पर मर्दन करते है । जीर्ण कोष्ठबद्धता और रक्तार्श पर—कन्द का क्वाथ १० से २० तोले तक प्रात भोजन के १ घटा पूर्व तथा रात्रि मे शयन के समय पीने से लाभ होता है । सिर की भूसी तथा जूए दूर करने के लिये इसके कन्द या पत्र के क्वाथ से सिर को धोते है ।

कन्द की तरकारी वाजीकरण एव कामेन्द्रिय की शक्ति को बढाती है । यह कच्चा भी खाया जाता है ।

नोट—लाल चुकन्दर विशेषत. ऋतुस्राव-नियामक और पुष्टिकर होता है। श्वेत चुकन्दर मृदुसारक एवं मूत्रल है। यकृत-विकृति पर कन्द विशेष उपयोगी है। इसका रस पिलाया जाता है ।

पत्र—सारक, लेखन, मूत्रल, तथा शोथ, पक्षाघात कर्ण-पीडा एव यकृत और प्लीहा के विकारो मे लाभदायक है ।

शोथ और मोच पर—पत्र-रस को शहद मिलाकर या केवल रस को ही लगाने से शोथ बिखर जाती है । मोच पर—ताजे पत्रो को पीस कर गरम कर बाधते है ।

अग्निदग्ध पर—पत्र-क्वाथ को ठडा कर दग्धस्थान पर डालते है ।

कर्ण-पीडा और शोथ पर—पत्र-रस को थोडा गरम कर कान मे डालते है ।

यकृत और प्लीहा के विकारो पर—राई और सिरके के साथ पत्तो को पकाकर खाते है ।

इन्द्रलुप्त या गज पर—पत्र को हल्दी के साथ पीस कर लगाते है । अथवा पत्र-रस को लगातार लगाते रहने से सिर के बाल पुन जम आते तथा वे सुन्दर, गुलायम होजाते है ।

दाद, व्यंग और झाई पर—पत्र-रस मे शहद मिला कर लगाते है । पाददारी या हाथ पैर के फटने पर—पत्र के क्वाथ मे उनको बार-बार रखते और धोते है ।

नोट—उष्ण प्रकृति वालों को इसकी तरकारी दही या तक्र के साथ हितकारी है। शीतप्रकृति हो तो गरम मसाले के साथ सेवन करें, यह प्लीहा-शोथ को भी दूर करता है ।

इसके अधिक सेवन से उदर मे शूल, अफरा, तथा मरोडा पैदा होता है । इसके निवारणार्थ गरम मसाला, सिरका, राई, खट्टे अंगूर का रस या नीबू का शर्बत देते है । इसका प्रतिनिधि शलगम है ।

इसके बीज—तिक्त, मूत्रल, कफनि.सारक, शान्तिकर, ऋतुस्राव-नियामक, आध्मान और शोथ मे लाभकारी है।

बुडैल दे—चीड (कतरान) मे चुनिया गोंद दे०—पलास मे ।

चुपरी आलू (Dioscore Alata)

शाक वर्ग एव वराहकन्द कुल (Dioscoreaceae) के इसके क्षुप खेतो मे, घरो मे, व बागो मे बोये जाते है। प्रकाण्ड—नुकीला, पत्र-आमने-सामने, चौडे, अण्डाकार, तीक्ष्णनोकदार होते है । इसके लम्बगोल, कण्टकित कन्द होते है, जो भीतर से श्वेत होते है । इसकी छोटी छोटी टोडियो मे रोमश बीज होते है ।

यह भारत के दक्षिण प्रान्तो मे विशेषत कोकण, बम्बई और गुजरात की ओर बागो मे अधिक बोया जाता है । इसके कन्द का शाक बनता है । यह पुष्टिवर्धक है ।

नाम–

हि.—चुपरी आलू, क्नम आलू। स.—खनफल, चोपरि आलू, पिंडालू इ.।

नोट-इसकी एक जातिविशेष, अधिकतर वगाल की ओर पाई जाती है। इसे पिंडालू[1] तथा हिन्दी व वंगाल में चोपरी आलू, गु०—कामोदियो, अं०—ग्लोबोसीयाम (Globaseyam) तथा ले०—डिस्कोशिया ग्लोवेसा (D Golbasa) कहते हैं। यह गुणधर्म में विशेषतः कृमिघ्न है, तथा इसका उपयोग आंत्रकृमि, कुष्ठ, सुजाक, अर्श, उदर-विद्रधि आदि पर किया जाता है। ये दोनों पुष्टिवर्धक हैं।

नोट एरण्डादि कुल (Euphorbiaceae) का पिंडार, पिंडालू (Trewia Nudiflora) इससे भिन्न है। पिण्डार, का प्रकरण देखिए।

[1] मजिष्ठ कुल (Ruciaceae) का पिंडालू इससे भिन्न होता है। उसका वर्णन, 'पिंडालू' के प्रकरण मे देखिए। उसे लेटिन मे (Randia uliginosa) कहते हैं।

चुरहर (Clematis Gournia)

वत्सनाभ कुल (Ranunculaceae) की इस जगल चमेली की लता मूर्वा जैसी खूब लम्बी, पत्र—एकान्तर, क्वचित् पुंकेशर अनियत, स्त्री केशर अनेक व असयुक्त, अभिमुख, पुष्प-प्राय ५ पखुडी युक्त मूरा—सूत्रवत्।

यह भारत के दक्षिण मे—नीलगिरी के आसपास के घने जगलो, तथा समुद्र-तटवर्ती प्रान्तो मे अधिक पाई जाती है।

नाम–

हि.—चुरहर, झुरहरी, वेलकुस। म.—रानजाई, मोरिएल। अं०—ट्रावेलर्स जाय (Travellers jo)ले॰—क्लेमेटिस गौरियाना।

गुणधर्म–

यह स्फोट-जनन, विषैली और ज्वरहर है।

मलेरिया ज्वर पर—इसके पत्ते, सोंठ और काली-मिर्च का योग सफलतापूर्वक दिया जाता है।

चुलमोरा—दे०—चूका मे। चुल्लू—दे०—जर्दालु। चुल्लू का वादा दे०—वदा।

चूका (Rumex Vesicarius[1])

शाकवर्ग एव चुक्रकुल[2] (Polygonaceae) के इसके गूदेदार वर्षायु क्षुप ६-१२ इन्च ऊंचे, पत्र—लगभग १-२इंच लम्बे, ३-५ सिराओ से युक्त, त्रिकोण अडाकार, स्वाद मे खट्टे, फूल—गोलाकार छोटे श्वेत रग के फल छोटे, श्वेत या रक्ताभ अत्यन्त छोटे छोटे काले चमकीले त्रिकोणाकार बीजो से युक्त होते हैं। बीजो को यूनानी मे 'तुख्म हुम्माज' या 'तुख्म' तुर्श कहते हैं।

इसकी पत्तियो का तथा कोमल डठलो का साग वनाया जाता है।

यह प्रसिद्ध खट्टा साग भारत मे प्राय सर्वत्र तथा विशेषत पार्वत्य प्रदेशो के तराई भागो मे अधिक बोया जाता है।

[1] यही लेटिन नाम अमलवेत का भी भूल से दिया गया है। वास्तव मे उसका नाम सायट्रस डेकुमाना (Citrus Decumana) होना चाहिये उसे ही चकोतरा हिन्दी में कहते है। चूका का चित्र अमलवेत के प्रकरण में देखिये।

[2] इस कुल के पौधों का काण्ड गोल, मांसल, पत्र एकान्तर सवृन्त, पुष्प, छोटे प्राय श्वेत, पुंकेशर ५-६ एक या दो चक्रों में—बीज—कोष—२-३ खण्डों वाला, ऊर्ध्वस्थ होता है।

नोट—१ इसकी कई उप जातियां उत्तर प्रदेश में मे मिलती हैं एक 'चुलमोरा' (Rumex Hastate) नामक इसकी मुख्य जाति प्रायः हिमालय के नीचे देहरादून आदि स्थानों में मिलती है। एक ऐसी उपजाति भी पाई जाती है, जिसके पत्र-स्वरस से बिच्छू-बूटी के स्पर्श से हुई वेदना शांत होती है। एक अन्य उपजाति को 'पथरचटा' कहते हैं, जो पत्थरों की चट्टानों पर उगती है, इसका पुष्प-गुच्छ मुरडी के सदृश मालूम होता है। (व. दर्शिका)

२ चूक-खट्टा अनार, इमली, नीबू, आदि खट्टे पदार्थों के रस को निकालकर गाढा कर लेने पर जो काले रंग का तरल या शुष्क पदार्थ तैयार होता है, वह चूक नाम से पुकारा जाता है। यह अत्यन्त खट्टा, उष्ण, दीपन, अति-पाचन, दस्तावर, तथा शूल, वातगुल्म, आम-वात, मलबन्ध, कफ, वमन, तृषा, मुख की विरसता, हृत्पीडा, अग्निमांद्य आदि नाशक है। (भा. प्रकाश)

३. कोई कोई चौपतिया (शिरियारी) को भी चूक कहते हैं। किन्तु वह इस से भिन्न है। कई लोग चांगेरी को ही चूका मानते हैं, किन्तु वह भी इससे भिन्न है। चांगेरी का प्रकरण देखें।

४. चरक में राजयक्ष्मा रोगी के अतिसार तथा रक्तार्श पर और मदात्यय रोगी की तृष्णा-शमनार्थ चूका का योग दिया गया है।

नाम--

सं०--चुक्र चुक्रिका, रोचनी, पत्राम्ल, शतवेधनी (तीक्ष्ण होने से) इ०। हि०--चूका, चूक, खटपालक इ०। म०—चाकवत, आंबट चूका। गु०—चुकोखाटी भाजी। बं०—चूक पालं। अ०—कंट्री सोरेल (Country Sorrol) ब्लेडर डाक (bladder dock) लै०-रुमेक्स वेसिकेरियस।

रासायनिक संघटन

इसके ताजे क्षुप में प्र. श ९२ जलांश, तथा शुष्क क्षुप में ४ ६२ ईथर एक्स्ट्रेक्ट, १६ २७ अल्ब्युमिनाइड (इसी में २.६२ नाइट्रोजन), ५७.८६ कार्वोहायड्रेट, १०.५० काष्ठ-भाग और १० ७५ क्षार भाग पाया जाता है। मूल या जडो मे रुमिसिन (Rumicin) व लेपाथिन (Latpathin) नामक दो तत्व मिलते है, जो गुणधर्म मे क्राइसोफेनिक एसिड के समान है।

प्रयोज्य अङ्ग—पचांग और बीज।

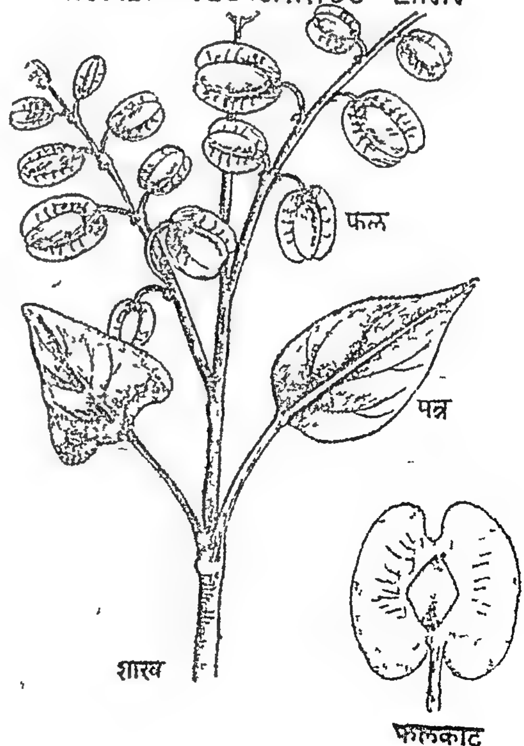
गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, अम्ल, मधुर, अम्ल-विपाक, उष्ण वीर्य, वातशामक, कफपित्त-कारक, रोचन, दीपन, यकृदुत्तेजक, भेदक, हृद्य, मूत्रल, मूत्रमार्ग-शामक, वेदनास्थापन, शोथ-हर, दाह-प्रशमन, धातुक्षीण-कारक, विषघ्न है, तथा वात-व्याधि, रेचन, वमन आदि पैत्तिक विकार, अरुचि, तृष्णा, हृल्लास, अग्निमांद्य, कामला, गुल्म, शूल, अर्श, एवं वृश्चिक-विष-नाशक है।

पत्र—शोथ, वेदना, दाह मे इसका लेप करते हैं। बिच्छू के विष पर पत्र का लेप तथा पत्र—स्वरस पिलाते है। दंत-शूल पर—पत्र-स्वरस के कुल्ले कराते है। कर्ण-शूल पर-पत्र—रस को कुछ गरम कर कान मे डालते है। हृल्लास (जी का मिचलाना) पर-पत्र रस मे सेंधा नमक मिलाकर पिलाने से आमाशय गत रस की उष्णता शमन होकर शान्ति प्राप्त होती है। कटि, ऊरु पृष्ठ, त्रिक-गत वात-व्याधि पर तथा गुल्म, शूल, गृध्रसी उदावर्त्त, हनुग्रह आदि पर पत्र-रस मे गुड मिलाकर सेवन कराते है। सिर-दर्द पर—पत्र-रस मे प्याज का रस मिला मस्तष्क पर मर्दन करते हैं।

चूका पालक

RUMEX VESICARIUS LINN



बीज–पिच्छिल, शीत, पित्तशामक, स्नेहन, ग्राही, दाह–प्रशमन हैं।

अतिसार, प्रवाहिका, आन्त्र-व्रण मे बीजो का, भून कर या बिना भूने सेवन, ईसबगोल के साथ करते है।

आमातिसार पर—भूने हुए बीजो का चूर्ण दिन मे २-३ बार देने से आम का पाचन होकर शीघ्र ही लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र, तथा मूत्रदाह मे, वैसे ही पित्तज-विकारो पर बीज विशेष गुणकारी है। किन्तु वृक्क और प्लीहा के लिये हानिकर है। हानि-निवारणार्थ सौफ और शक्कर का सेवन कराते है।

नोट--मात्रा स्वरस १-२ तोला, अधिक से अधिक ४तोला तक। बीज चूर्ण ३-४ माशा। इसका अधिक सेवन काम-शक्ति के लिए अहितकर है।

मूल या जड का प्रयोग-अतिसार, कामला, श्वेत या रक्त प्रदर पर किया जाता है।

चूहाकानी—दे० मूसाकानी।

चैंच (बड़ी) *COR CHORUS ACUTANGULUS*

शाकवर्ग एव परूपक कुल (Tiliaceae) के इसके क्षुप वर्षाकाल मे १-२ फुट ऊचे बहुतशाखा युक्त उगते व बाद मे सूख जाते है। पत्र—२-३ इच लम्बे, ½ से १½ इच चौडे, अण्डाकार, दन्तुर या कगूरेदार, पुष्प—पीतवर्ण के, १-३ की सख्या मे प्रत्येक पुष्प-दड पर, फली—शृङ्गाकार, पृष्ठभाग पर ६ रेखाओ से युक्त, तथा इसके अन्दर अनेक कोष्ठो मे काले पिच्छिल नन्हे-नन्हे बीज होते हैं।

पत्रो का साग बनाया जाता है। ये क्षुप भारत मे प्राय. सर्वत्र, विशेषत उष्ण-प्रदेशो मे अधिक पाये जाते हैं।

नोट--बहुफली इसी की एक छोटी जाति है। इसका वर्णन आगे चेंच [छोटी] के प्रकरण मे देखें।

एक कार्कोरस ओलिटोरियस (C Olitorius) इसी की जाति होती है। इसे हि०–कोष्टा, व०–नलित-पात कहते है। यह ज्वर और अतिसार मे उपयोगी है। इसका चित्र यहा देखे।

नाम

स०–चचु, चचुकी, चिचा इ०। हि०–चैच, चंचु, चेंचुना, चेचुक, खेतपाल। म०--सुंच, थोर चचु। गु०--छुंछरी। व०--चेचकी, बनपात। ले०--कॉर्कोरस ऐकुटैंगुलस, का० फेसिकुलारिस (C Fascicularis)।

प्रयोज्याग--पत्र और बीज।

गुणधर्म व प्रयोग--

गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, रोचक, कषाय, विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, त्रिदोषशामक, स्नेहन, अनुलोमन, मूत्रल, ग्राही, वृष्य, बल्य, बृहण, मेध्य, तथा–कोष्ठगत रूक्षता, उदरशूल, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, अर्श, रक्तपित्त, शुक्रदौर्बल्य, मूत्रकृच्छ्र आदि मे उपयोगी है। जतुघ्न और व्रणरोपण है। व्रणो पर लेप करते है।

बीज—कटु, उष्ण वीर्य, गुल्म, शूल, उदर-व्याधि, त्वग्दोष (कडू, कुष्ठ आदि), बल्य और मूषक-विष नाशक है।

नोट—इसके और छोटी चेंच के गुणधर्म प्राय एक जैसे होते है। शेष गुणधर्म और प्रयोग नीचे के प्रकरण मे देखिये।

चैंच (छोटी, बहुफली) *COR CHORUS ANTI CHORUS*

यह लत्ते की तरह जमीन पर फैली हुई उगती है। इसमे अर्ध चन्द्राकृति, छोटी-छोटी, बारीक बहुत-सी फलिया लगती है। इसी से यह बहुफली कहलाती है। [illegible] जिसका वर्णन प्रथम खण्ड मे हुआ है, इसकी ही [illegible] जाति विशेष है।

नाम--

स०–छु चंचु, भेदनी इ०। हि०–छोटी चेंच, बहुफली, भूफली। म०--लघु चचु। गु०–झीणकी छु छ, बहुफली। अ ०--Shrubby Jate (श्रबी जेट)। ले०--कार्कोरसएंटिकोरस।

गुणधर्म व प्रयोग–

शीत, रूक्ष, सशमन, पुष्टिकर तथा ग्राही है। शीघ्र वीर्यस्खलन, शुक्रतारल्य, शुक्रमेह और सुजाक मे इसके पचाग के चूर्ण मे समभाग मिश्री-चूर्ण मिला, दूध के साथ सेवन करते है। इसी कार्यार्थ इसका चूर्ण पुष्टिकर माजूनो एव पाको मे डाला जाता है।

नोट–उक्त दोनों प्रकार की चेंच मे तथा विशेषत. बहुफली मे पौष्टिक एव धातुवर्धक तत्वों की अधिकता होने से, यह धातु दौर्बल्य एवं तज्जन्य अन्य शारीरिक विकृति–हाथ-पैरों की जलन, सिर में चक्कर, छाती की धड़कन, स्मरण-शक्ति के ह्रास इत्यादि में उत्तम लाभ करती है।

(१) इसका सेवन उक्त प्रकार से मिश्री चूर्ण मिलाकर करे, अथवा—इसके ताजे पचाग को लेकर थोडे पानी के साथ पीस कर रस निचोड ले। उस चिकने रस को २॥ तो० की मात्रा मे, शक्कर या मिश्री १ तो० तथा छोटी पिप्पली-चूर्ण ६ रत्ती मिला, नित्य प्रात-साय सेवन करे। ताजे पचाग के अभाव मे शुष्क पचाग को लेकर कूटकर—लगभग १-२ घटे तक पानी मे भिगो, खूब ममल कर रस को निचोडते हुए छान ले। फिर उसमें शक्कर व पीपल-चूर्ण मिला उक्त प्रकार से सेवन करें। इस विधि से सेवन करने से स्त्रियो के प्रदर-रोग मे भी यह उत्तम लाभ करती है। तथा सुजाक में होने वाली जलन, संग्रहणी, अतिसार, अर्श आदि विकारो मे भी यह लाभकारी है।

ध्यान रहे यह ग्राही या सकोचक होने से दस्तो मे रुकावट या कब्जी विशेष करती है। अत इसके प्रयोग के साथ ही रात्रि मे त्रिफला-चूर्ण लेना आवश्यक है।

(२) वीर्य-पुष्टि के लिये—धातु-पौष्टिक चूर्ण—गोखुरू, छोटी पीपल, सतावरी, तज, तमाल-पत्र, इलायची, नागकेसर, सूखे आमले, लौंग, कमल का कन्द, तालमखाने के बीज, सफेद मूसली, वशलोचन, गिलोय-सत्त्व, सेमर की पतली जडे, तुलसी के बीज, ऊटकटारे के बीज ४-४ तो० तथा कोच बीज, विदारी कद ८-८ तो० और असगध १२ तो० इन सबका जितना चूर्ण हो, उस से आधा बहुफली का चूर्ण मिला, मजबूत काग वाली शीशी मे भर रक्खे। मात्रा—३ से ६ मा० तक, समभाग मिश्री मिला, प्रतिदिन १० तो० दूध के साथ सेवन से वीर्य की क्षीणता या शुष्कता, शुक्रमेह, हस्तमैथुन जन्य शिश्न की शिथिलता शीघ्र दूर हो वीर्य की वृद्धि होती है। जब तक यथेष्ट लाभ न हो, धैर्यपूर्वक २-४ मास तक इसका सेवन अवश्य ही करे, तथा खारे, खट्टे तीखे और तैल वाले पदार्थों का सेवन न कर ब्रह्मचर्य का पालन करे। (व० च०)

(३) त्वचा के रोग, खुजली, उदर-शूल तथा मूषिक (चूहा) के विष पर—बीजो का चूर्ण ३ मा० की मात्रा मे, प्रात-साय जल के साथ सेवन कराते है।

नोट–मात्रा–पत्र-स्वरस १-२ तो०। बीजचूर्ण–१-३ मा० (अधिक से अधिक ७ माशे तक)।

यह अनाहकारक एव चिरपाकी है, हानि-निवारणार्थ त्रिफला-चूर्ण शहद या शक्कर लेते है।

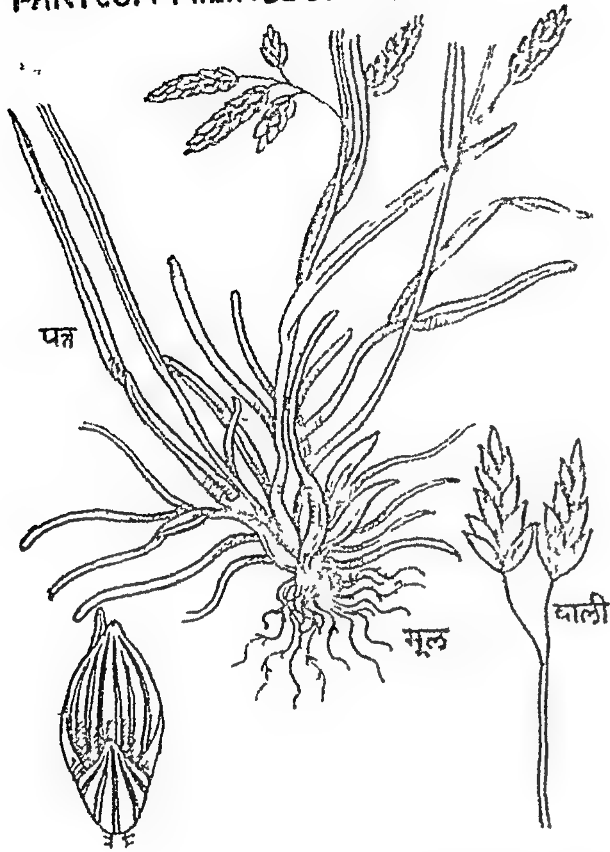
चेना (*PANICUM MILIACEUM*)

यह तृणधान्य या यवादि कुल (Gramineae) के सावा या कंगनी जाति का एक धान्य विशेष है। जहा यह पैदा होता है वहा के प्राय गरीब लोग इसी पर अपना निर्वाह करते है। यह धान्य चैत्र-वैशाख में बोया जाता व आषाढ मास मे काटा जाता है। इस के दाने पीले श्वेत या लाल तीन प्रकार के होते है।

यह उत्तर तथा पश्चिम भारत के प्रदेशो मे तथा मध्य प्रदेश और गुजरात मे भी बहुत बोया जाता है।

नाम–

स०–चीना, काककंगु। हि०–चेना, चीना, चेनक, वरी इ०। म०–रोले। गु०–चीणो। बं०–चेना, चीना। अ०–कामन मिलेट [Commonmillet]। ले०–पेनिकम



ले०–पॅनिकम मिलिएसियम, पं०-मिलेरी [P. Miliare]।

रासायनिक संघटन—इस [illegible] प्रकार में अलबुमिनाइड्स १२.६, श्वेतसार ६८.४ और तैल भाग ३.८ भाग होता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह गुणधर्म में कंगनी जैसा ही मधुर, कसैला, शीत-वीर्य, [illegible]कारक, रूक्ष, ग्राही, मूत्रल और दाहनाशक है।

इसकी रोटी बनाकर या चावलों की तरह पकाकर खाते हैं। इसे घृत या दूध के साथ खाने से दाह की जलन दूर होती व वीर्य बढ़ता है। यह जलोदर, प्लीहा व रक्तस्राव में लाभकारी है।

अतिसार—इसे भूनकर सत्तू बनाकर तक्र (छाछ) के साथ खाने से लाभ होता है।

चेनसुर–दे०—हालो। चोक–दे०–सत्यानाशी में।

चोपचीनी (*SMILAX CHINA*)



हरीतक्यादिवर्ग एव रसोनकुल (Liliaceae) की, वच की ही जाति विशेष की इसकी आरोही विस्तृत लता होती है। डठल बहुत कडा, गोलाई मे १॥ इच से कही-कही अधिक, पत्र–बडे, गोल, किचित् अण्डाकार ६–१८ इच तक लम्बे व चौडे, तेजपत्र जैसे, पुष्प–गुच्छो मे, श्वेत वर्ण के, फल–¾ इच से १॥ इच तक गोल, जिसमे १-२ बीज होते हैं। मूल–स्थूल, भारी, लम्बोत्तर, कुछ चपटी, ग्रन्थियुक्त, भूरे रग की छाल से युक्त, चिकनी, चमकीली, कोई-कोई खुरदरी, भीतर से गुलाबी-श्वेत, कडी, पिष्टमय, पिच्छिल, गधरहित, स्वाद मे फीकी होती है, इसे ही चोपचीनी कहते है। बाजारो मे छाल उतरे हुए, भारी, गुलाबी रग के इसके टुकडे प्राय मिलते है।

यह चीन व जापान की वनौषधि है। भारत मे भी यह आसाम, टेनासरिम आदि स्थानो मे होती है, किंतु इसका अधिक प्रमाण मे आयात चीन देश से ही होता है, अत संस्कृत मे इसे 'द्वीपान्तरवचा' कहते हैं। लेटिन मे स्माइलेक्स चीना (अनेक कटे हुए कांटेवाली चीन देशोत्पन्न एक लता) कहते हे। यह छोटी जाति की चोपचीनी है। यह अन्यो की अपेक्षा [illegible] गुण वाली होती हे।

नोट-१. (अ) बडी जाति की चोपचीनी को स्मा-इलेक्स गलेब्रा (Smilax Glabra), बं.-हारनाशुकचिन, म.-मोठी शूकचिन कहते है। यह भारतीय चोपचीनी है।

चौबचीनी

SMILAX CHINA LINN



इसकी झाडीदार बेल चिकनी, काटे रहित होती है। पत्र-नुकीले, अधोभाग मे हलके रंग के, पुष्प-श्वेत विदण्डिक तथा मूल-उक्त चोपचीनी की तरह होती है। यह बगाल के पूर्व भाग में विशेष पाई जाती है।

अन्य भारतीय चोपचीनीः

(आ) हरिया शुकचिन (हिन्दी चोपचीनी) ले. स्माइलेक्स लेंसिफोलिया (S Lanccacfolia) बं०-गुचिया शूकचिन। इसके पत्र नुकीले तथा उन पर ३ बड़ीशिरायें होती है। इसके भी कन्द उक्त जैसे ही होते है। इसकी लता भी पूर्व बंगाल मे पाई जाती है।

(इ.) जंगली, उशवा (S. Macrophylla) स्मा मेक्रोफाइला, बं०-कुमारिका, म.-घोटबेल, गु०-गुटी तथा लेटिन मे S. Oualifolia स्मा ओवेलीफोलिया भी कहते हैं। इसकी बडी काटेदारलता कोंकण एवं मलावार के जगलो मे अधिक पाईजाती है। विशेष वर्णन जंगली उसवा में देखिये।

(ई) उशवा मगरबो या सार्मापरिला [S Crnata] का वर्णन सारिवा मे देखें। इन सबका गुणधर्म प्राय. उक्त चोपचीनी जैसा ही है।

२. कहा जाता है कि इंग्लैण्ड के राजा पचम चार्ल्स का वातरक्त रोग चीन देशीय चोपचीनी के सेवन मे दूर हुआ था। और यूरोप मे इसकी कीर्ति चारों ओर फैलने मे ब्रिटिश फार्मोकोपिया मे इसे स्थान प्राप्त हुआ था किन्तु अब उसे वहां से हटा दिया गया है।

३, भारतीय प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है। मध्यकालीन भावप्रकाश ग्रंथ में इसका उल्लेख द्वीपान्तर वचा नाम से किया गया है। अतः मालूम होता है कि इसका प्रचार यूनानी हकीमों द्वारा ही यहां किया गया है।

नाम—

सं०-द्वीपान्तरवचा। हि.-म - गु.-चोपचीनी। बं०-तोपचीनी, शूकचिन। अं०--चाइना रूट (China root)। ले०-स्माइलेक्स चाइना, चाइनेन्सिस (Chinensis) स्म, सीडोचाइना (S Bcudo china)।

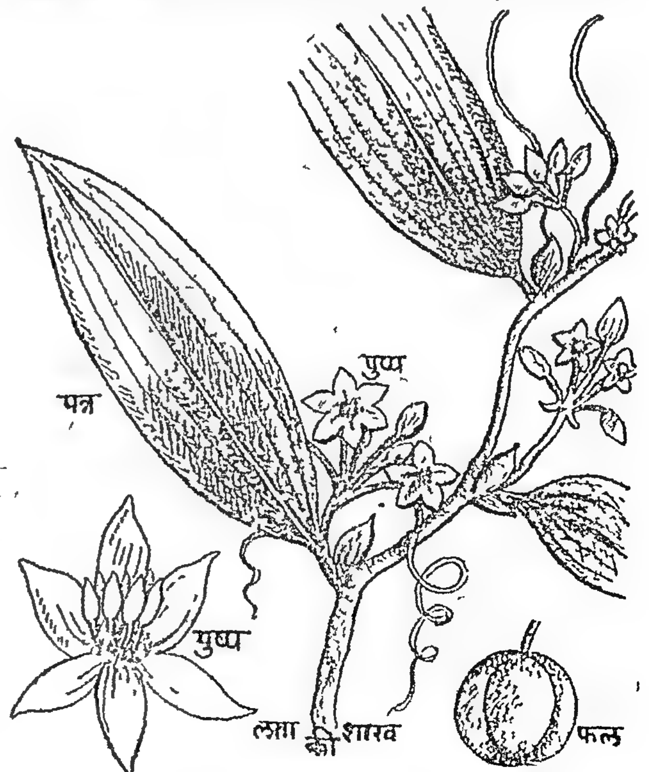
रासायनिक सघटन--

मूल मे—वसा, शर्करा, ग्लुकोसाईड, रजकद्रव्य, सेपोनीन (Saponin), गोंद और स्टार्च पाये जाते है।

प्रयोज्य अङ्ग—गांठदार मूल या कन्द।

चौबचीनी

SMILAX LANCEAE FOLIA, ROXB



यह ८–१० अंगुल लम्बा, आध-एक इंच मोटा गाठदर, वेरेशा, खुरदरा या चिकना भी, दृढ काष्ठ जैसा गुलावी या पीताभ श्वेत, किंचित् कालापन युक्त होता है।

ध्यान रहे, अधिक पुरानी होने पर इसमे प्राय घुन लगकर यह छिद्र युक्त दिखाई देती है। ऐसी घुनी हुई या गाठ-विहीन चोपचीनी का उपयोग औषधिकार्य मे नही करना चाहिये। वैसे ही जो वजन मे हलकी विल्कुल श्वेत रग की या एकदम काले रग की टेढी मेढी, अनेक ग्र थियुक्त हो वह भी अनुपयोगी है।

उत्तम चोपचीनी का सग्रह करना हो तो उसे शहद मे डुबोकर या शक्कर के बीच मे रखने से उसमे घुन नही लगता तथा गुणधर्म मे भी किसीप्रकार न्यूनता नही आती। इसे कपूर व कस्तूरी के ससर्ग से तथा धूप, धुवा, धूल-वर्षा, लू, शीतादि से वचाना चाहिये। अन्यथा इसका प्रभाव घट जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग--

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु, विपाक, उष्णवीर्य, त्रिदोषशामक, दीपन, अनुलोमन–मल-मूत्र-शोधक, वेदनास्थापन रक्त शोधक, वृष्य, शुक्र-शोधक, मूत्रल, स्वेदल, कटुपौष्टिक आदि इसके गुणधर्म प्राय असगध जैसे है। यह उन्माद, अपस्मार, अग्निमाद्य, आध्मान, शूल, विवन्ध, कृमि, शोथ, गण्डमाला, ज्वर, दौर्वल्य, पूयमेह एव तज्जन्य-सधि-शोथ, सधिजाड्य आदि उपद्रव रक्तविकार कुष्ठादि चर्म रोग, उपदश या फिरगरोग की द्वितीय व तृतीयावस्था एव तज्जन्य कुष्ठ, व्रण, भगदर, पक्षवध, अर्श, तथा निरकारी ज्वर आदि की दुर्वलता दूर करने के लिए व्यवहृत होती है। यह एक श्रेष्ठ रसायन है। क्रिया विशेषत त्वचा, सधिवधन तथा रस-ग्रन्थियो पर होती है। वाजीकरणार्थ एव शुक्र-विकारो पर इसे दूध मे उवाल कर देते है। शोथ एव वेदनायुक्त विकारो पर इसका लेप करते है।

(१) उपदश या फिरग रोग पर–जीर्ण फिरङ्ग रोग मे रक्तविकृत होकर सारे शरीर मे विस्फोट, सधियो की जकडन, खुजली, श्यामत्वचा, रक्तविकार के धव्वे आदि हो जाने पर इनका चूर्ण ३ माशा की मात्रा मे सारिवा के फाण्ट या दूध या शक्कर के साथ दिन मे २ वार १-२ मासतक, पथ्यपूर्वक सेवन कराया जाता है। अथवा–

इसके १६ तोले चूर्ण के साथ मिश्री ४ तोला तथा छोटी पीपर, पीपरामूल, कालीमिर्च, लोंग, अकरकरा, खुरामानी अजवायन, सोंठ वायविडङ्ग व दालचीनी १-१ तोला सवका चूर्ण एकत्र मिलाकर, मात्रा ६ माशा तक गरम पानी के साथ सेवन करे। अथवा—

इसके चूर्ण को या इसके शीत निर्यास को शहद मे मिलाकर सेवन करे। इससे त्वचा के समस्त विकार दूर होते है। अथवा—

इसके साथ मस्तगी, इलायची और दालचीनी का चूर्ण मिला, दूध मे पका कर सेवन करावे। इससे वातरक्त, जीर्ण वातविकार, दौर्वल्य आदि भी दूर होते है। कुष्ठ आदि चर्म-विकारो पर विशिष्ट योगो मे कल्प-प्रयोग देखे।

(२) सिर-दर्द पर—इसके चूर्ण का सेवन मक्खनमिश्री के साथ करने से, थोडे ही दिनो मे मानसिक श्रम, या जीर्ण ज्वरादि से आई हुई निर्वलता के कारण होने वाली सिर की पीडा दूर हो जाती है। पुराने सिर-दर्द पर इसे अनन्तमूल के क्वाथ के साथ सेवन कराते है।

(३) भगदर पर—इसका चूर्ण, शक्कर या मिश्री, और घृत २॥-२॥ तो० लेकर इसके दो मोदक वनाकर प्रात-साय १–१ लड्डू खाकर ऊपर से गाय का दूध पीवे। पथ्य मे–केवल गेहू की रोटी, घृत, शक्कर और दूध ही देना चाहिये। १४ दिन मे लाभ हो जाता है। यदि इस प्रयोग के सेवन से शरीर मे गरमी प्रतीत हो तो दवा की मात्रा कम करे, तथा पथ्य मे घृत दूध अधिक लेवे। (व० च०)

आगे विशिष्ट योगो मे मोदक-चोपचीनी देखे।

(४) शारीरिक निर्वलता पर—इसका चूर्ण २ से ६ मा० तक समभाग शक्कर के साथ सेवन कर ऊपर से दूध पीवे। दिन मे दो वार लेते रहने से थोडे ही दिन मे शक्ति वढती, स्वप्नदोष, व जीर्ण मलावरोध दूर होता है। वृक्क व मूत्राशय का शोधन होता एव उदर वायु गमन होती है।

अथवा—इसका महीन चूर्ण १० तो०, सूजी या गेहू का निशास्ता २० तो० व शक्कर २० तो०। प्रथम सूजी को अलग घृत मे भूनकर, फिर सबको एकत्र मिला, १ या २तो के लड्डू बना, प्रतिदिन प्रात १ लड्डू के सेवन से सुजाक-जन्य सधिवात २१ दिन मे दूर होता है। किंतु पथ्य मे ६ मास तक धनिया नही खाना चाहिये।

(५) कठमाला पर—इसका चूर्ण ४ मा० से १ तो० तक नित्य दो बार शहद के साथ चटाते हैं।

नोट-मात्रा-चूर्ण २-६ मा० तक। क्वाथ के लिये चूर्ण ६ मा० से १ तो० तक, ध्यान रहे क्वाथ की अपेक्षा इसका चूर्ण ही अधिक लाभकारी होता है।

यह उष्ण प्रकृति वालो को कुछ अहितकर है। कफ-सम्बन्धी विकारो मे भी इसका सेवन शीतकाल के प्रारम्भ मे या वसत ऋतु मे करना चाहिये। अत्यधिक शीत या गरमी मे सेवन ठीक नही होता। युवावस्था एव वृद्धावस्था के प्रारम्भ काल मे सेवन करने से बुढापे के शारीरिक कष्टो का निवारण हो जाता है।

पथ्यापथ्य—गेहू-चना के आटे की या जौ-चना के आटे की, या केवल गेहू की रोटी घृत व दूध के साथ एक बार भोजन करे। रात्रि मे क्षुधा लगने पर साबूदाना लेवे, धान की लाई और मुनक्का खाकर जलपान करे, तथा किसी उद्यान-भवन मे निवास करना विशेष हितकारी है। सूर्य भगवान की आराधना या हरिकीर्त्तन मे समय आनन्दपूर्वक बिताये। इसके सेवन काल मे नित्य गरम पानी पीना चाहिये।

नमक, खटाई, अचार, काजी, सिर्का एव क्षार-पदार्थो का सर्वथा त्याग करे। आग के सामने या धूप मे रहना, कडू तैल, शाक-भाजी, शीतल जलपान, परिश्रम, दिन का सोना, रात्रि-जागरण, लाल मिर्च, क्रोध, शोक, मादक पदार्थ आदि से बचना चाहिये। शरीर खुला न रक्खे, शीतल वायु से बचे रहे। स्त्री-प्रसग न करे, फिर कुछ दिन के अन्तर से नियमित स्त्री-सेवन करने से धातु का प्रवाह शात हो जाता है।

विशिष्ट योग—

(१) कल्प-चोपचीनी—प्रथम शरीर को पचकर्म से शुद्ध कर ले। यदि पचकर्म न हो सके तो विरेचन द्वारा कोष्ठ-शुद्धि अवश्य ही कर लेनी चाहिये। सेवन-काल से एक सप्ताह पूर्व नमक का खाना छोड देवे। स्वल्प मात्रा मे सेंधा नमक ले सकते है, किंतु फिर लाभ विलम्ब से प्रकट होता है। अत. लवण या क्षार पदार्थो का सर्वथा त्याग ही श्रेष्ठ है। उपरोक्त पथ्यापथ्य का ध्यान रखे।

कल्प-प्रयोग—इसका शुद्ध चूर्ण ३ मा० शहद उत्तम १ तो० गोघृत ६ मा० मिलाकर प्रात निराहार चाट कर ऊपर से निम्न चोपचीनी-क्वाथ का सेवन करे—

इसके चूर्ण ६ मा० को २ सेर जल मे पात्र का मुख बंद कर पकावे। चौथाई शेष रहने पर, छान ले। कुछ ठडा हो जाने पर ५ तो० की मात्रा मे पीवे। गरमी के दिनो मे इसमे मिश्री तथा शहद या शीतकाल मे शहद मिला सकते है। शेष बचे हुए क्वाथ को कुल्ला करने तथा वस्त्र आदि पोछने के काम मे लेवे।

यदि सर्वांग मे कुष्ठ आदि चर्म-व्याधि हो, तो उक्त सेवन प्रयोग के साथ ही साथ निम्न वाष्प (स्वेदन) का प्रयोग सर्वांग मे या जहा व्याधि-विशेष हो उस स्थान पर करे।

वाष्प-विधि—इसका जौकुट चूर्ण ५ तो० तथा समभाग निर्गुण्डी-पत्र (यदि निर्गुण्डी न मिले तो केवल उक्त चूर्ण को ही) ५ सेर पानी मे पात्र का मुख बन्द कर धीमी आग पर रख दे। लगभग आधा पानी शेष रहने पर नीचे उतार ले।

रोगी को नगा कर बिना बिस्तर की खाट पर लिटा कर या बेंतदार आराम-कुर्सी पर बैठा कर, उसके शरीर को कम्बल या चादर से अच्छी तरह ढक कर (मुख का भाग खुला रखे) उक्त पात्र को खाट या कुर्सी के नीचे रख, धीरे-धीरे पात्र का मुख खोलते जावे। बाष्प का निकलना बन्द हो जाने पर, पसीने को साफ वस्त्र से पोछ डाले, किंतु शरीर को ढका ही रक्खे, शीतल वायु न लगने पावे।

उक्त स्वेदन-विधि के पूर्ण हो जाने पर उक्त कल्प-प्रयोग का सेवन कर, उक्त क्वाथ के स्थान मे इसी वाष्प-पात्र मे बचे हुए क्वाथ को २ से ५ तो० की मात्रा मे

छान कर पिलावें। शेष क्वाथ को हाथ मुंह धोने आदि के काम मे लावे। इस क्रिया के बाद १घटे तक शीत से बचना चाहिये।

यह स्वेदन विधि सप्ताह मे १ बार करे, नित्य प्रति करने की आवश्यकता नही। यदि रोग अधिक हो तो दो बार देवे।

कुष्ठ मे घाव या गलित कुष्ठ हो तो निम्नलिखित मलहम का उपयोग करे। कल्प–प्रयोग, चूर्ण व क्वाथ की मात्रा रोगानुसार क्रमश बढाते और घटाते हुए, ८० दिन तक करें। इस प्रयोग की अवधि मे २॥ तो० या ५ तो० तक चनो को मिट्टी के पात्र मे १० तो० जल मे, शाम को भिगो, प्रात, शौचादि से निवृत्त हो प्रथम उन्हे खूब चबाते हुए खाकर- ऊपर से उन का पानी पी जावे, शौच के बाद गुदा–प्रक्षालन, हाथपाव धोना, कुल्ली करना आदि कार्यो मे, चोवचीनी के साधारण क्वाथ (१॥ या २ तो० चूर्ण को १०–१२ सेर पानी मे पका, आधा-शेष रहने पर छानकर) का उपयोग करे। इसी क्वाथ-जल मे कपडा भिगोकर शरीर को पूर्णतया पोछ ले। साधारण पानी से स्नान न करे। उक्त पथ्यापथ्य का पूर्ण पालन करे। कल्प–प्रयोग पूर्ण हो जाने पर भी ४० दिन तक तक उसी प्रकार पथ्य का निर्वाह करने से गलित–कुष्ठादि भयकर व्याधियाँ दूर हो जाती है। फिर क्रमश नमक आदि के खाने का थोडा थोडा अभ्यास बढाना चाहिये। ध्यान रहे, थोडा भी कुपथ्य हानिकारक हो जाता है।

मलहम–चोबचीनी—शुद्ध चूना (१० तो० पत्थर के चूने की कली को तीन पाव गरम पानी मे डाल दे। वह उबल कर शात एव शीतल हो जाने पर उसे थाली या परात मे छान ले। निथराने पर पानी को बहाकर चूने को सुखा ले) १ तो० मुरदासग ६ मा० चोवचीनी २ तो० मेहदी के फल ४ तो० इन सब के महीन चूर्ण को ८ तो० जैतून तैल मे खूब खरल कर रक्खें। अथवा-

चोबचीनी चूर्ण २ तो० तूतिया, मुरदासग और सफेदा १–१ तो० इन सब के सूक्ष्म चूर्ण को मोम २ तो० व बादाम तैल ७ तो० (पहले मोम को तैल के साथ गलाकर) मे मिला खरल कर मलहम बनावे।

त्रिफला और नीम की पत्ती के क्वाथ से घावो को धो पोछ कर मलहम की पट्टी लगाते रहने से कुष्ठ के व्रण, आतशक के क्षत,नासूर आदि मे शीघ्र लाभ होता है।

(३) अर्क–चोवचीनी–(उपदशादि नाशक रक्त-शोधक)–चोवचीनी और गोरखमुडी ४०–४० तो० मजीठ, गुलाव पुष्प,–मुनक्का और त्रिफला १०–१० तो० इन सब को जौ कुट चूर्ण कर २० सेर पानी मे; ३ दिन तक भिगो रक्खे। फिर भवके द्वारा अर्क खीच कर उस मे ४० तोला मिश्री मिला पुन अर्क खीच कर छान रक्खे। मात्रा–२–२ तोला० वलानुसार पीकर थोडा टहला करे।

अथवा—चोवचीनी १ सेर को महीन कूट कर २० सेर पानी मे ३ दिन तक भिगो रखने के बाद पात्र का मुख बन्द कर पकावे। लगभग ७ सेर पानी शेष रहने पर, भवके मे डाल अर्क खीच ले। मात्रा–१ से ५ तो० तक पीकर थोडा टहल लिया करे। इसी प्रकार दोनो समय, आरोग्यता लाभ होने पर्यन्त सेवन करते रहने से पुराने उपदश द्वारा उत्पन्न शरीर के व्रण, चकत्ते आदि दूर होते है, तथा कुष्ठ, गठिया, पीनस, एव व्रणादि सर्प-रक्त– विकार निर्मूल होते है।

आमवात गाठिया से पीडित रोगी को, प्रात–चोब-चीनी, पीपल और रास्ना का समभाग महीन चूर्ण मात्रा–१ तो० तक, मधु से चटा कर ऊपर से उक्त अर्क के पिलाने तथा नारायण तैल या विषगर्भ तेल की मालिश कराने से भयङ्कर गठिया शीघ्र ही दूर होती है। किंतु उक्त पथ्यापथ्य का पालन आवश्यक है। अथवा–

चोवचीनी ५७ तोला का मोटा चूर्ण, मीठा पक्व सेव ५० नग के छोटे छोटे टुकडे कर ले। और दालचीनी गुलाब पुष्प, रेहा के बीज ६-६ तोला, लोग, बालछड, तेजपात, छोटी इलायची, कपूर, बिल्ली लोटन, गावजवान के पुष्प, कतरा हुआ आबरेशम ३-३ तोला, श्वेत व लाल बहमन, श्वेतचन्दन, अगर, छडीला १॥-१॥ तो. मिश्री ६ तोला लेकर कूटने योग्य द्रव्यो का मोटा चूर्ण कर सब द्रव्यो को रात्रि मे अर्क गुलाब १ सेर मे भिगो

कर प्रात उसमे-१६ गुना जल मिला अर्क खीच ले। अर्क खीचते समय—केशर १० माशा रुमामस्तगी ७ माशा अम्बर ३॥ माशा व कस्तूरी १॥ माशा इनकी पोटली बाध कर नेचा के मुख पर भवके के भीतर लगा दे। जल का तीसरा भाग अर्क खीच कर शीशी मे भर रखे। मात्रा ५ तोला तक भोजनोपरात पीवे। यह अर्क बल एव पुष्टि को देता, व हृदय को प्रफुल्लित करता है, वाजीकरण व उत्तम पाचक है। यह उत्तम रक्तशोधक भी है, सर्व रक्त-विकारो को दूर करता है। (यू चि. सा)

(८) चोपचीन्यासव——इसका चूर्ण २॥ सेर, जल १५ सेर मे मिला, शुद्ध चिकनी मटकी मे भर, उसमे गुड ७ सेर, मुनक्का १ सेर तथा उसवा, स्यातरा, मुण्डी, ब्राह्मी, सरफोका, जवासा, धनिया, सोफ, मजीठ, लाल चदन, पतंग, उन्नाव, दारु हल्दी, नीम के फूल, बुरादा आबनूस, बुरादा शीशम, गुलाब के फूल, गुलबनप्सा, फूल गावजवा, ब्रह्मदण्डी और त्रिफला प्रत्येक का ५-५ तो० चूर्ण मिला, अच्छी तरह सधान कर १ मास तक सुरक्षित रक्खे। पश्चात् छान कर बोतलो मे भर रक्खे। मात्रा—२ से ४ तो०। यह उत्तम रक्तशोधक एव रक्त-विकार-नाशक है।

नोट--चोपचीन्यासव के वाजीकरण, उपदंशादि-नाशक एवं रक्तशोधक अन्य उत्तमोत्तम प्रयोगों को हमारे 'बृ० आसवारिष्ट संग्रह' मे देखें।

(५) पाक, मोदक, हलुआ, माजून चोपचीनी-पाक——इसके ४८ तो० महीन चूर्ण मे पीपल, पीपरामूल, काली मिर्च, सोठ, दालचीनी, अकरकरा व लौग का चूर्ण १-१ तो० मिलादे, फिर सब चूर्ण से दुगुनी खांड़ की चाशनी बना उसमे उक्त चूर्ण को मिला पाक जमा दे, अथवा १-१ तोला के मोदक बनाले। मात्रा—२ तो० तक, प्रात -साय सेवन कर, ऊपर से चोपचीनी-क्वाथ या उष्ण जल पीवे। उपदंश, व्रण, कुष्ठ, वात-व्याधि, भगदर, धातुक्षय से उत्पन्न खासी, जुखाम एव क्षय का नाश होकर शरीर पुष्ट होता हे। पथ्य मे—शाली चावलो का भात, अरहर की दाल, घृत, शहद, गेहू की रोटी, सहिजने की फली, कुदरू, तोरई, अद्रक, किंचित् सेधा नमक और मदोष्ण जल देना चाहिये। (यो० र०)

नोट--चोपचीनी के बलवर्धक, निर्बलता-नाशक, कामशक्तिवर्धक, वातादि व्याधि—नाशक, प्रमेह आदि नाशक कई उत्तमोत्तम पाकों को हमारे बृ० पाक-संग्रह मे देखिये।

मोदक——चोपचीनी, मिश्री और गोघृत ३२-३२ तो० तथा लोह भस्म व मैनसिल शुद्ध[1] ४-४ मा० लेकर सब को एकत्र मिलाकर ३-३ तो० के लड्डू प्रात एव रात्रि मे गोदुग्ध के साथ सेवन करने से भगदर, जीर्ण उपदंशजन्य उपद्रव रूप नाडीव्रण, रक्त-विकार, कुष्ठ आदि १ मास मे दूर होते है।

हलुवा——चोपचीनी का महीन चूर्ण १६ तो० तथा लौग, छोटी इलायची, कचूर, सोफ, सोठ, इन्द्र जौ, सुरजान मधुर, पिप्पली, पान की जड व नागर मोथा ३-३ तो० सब को एकत्र खरल कर रक्खे, फिर गेहू का आटा २॥ सेर को तैल-जैतून और घृत ४०-४० तो० मे भून कर-उत्तम २ सेर १० तो० शहद के पाक मे उत्तम भूने हुए आटे को एव मभज चिलगोजा, व महीन किया हुआ गोले (नारियल) का चूर्ण ४-४ तो० मिला हलुवा तैयार कर ले।

मात्रा——१ तो० खाकर ऊपर १ पाव दूध पीने से रक्तशुद्धि होती तथा वाजीकरण शक्ति बढती हे।

माजून या अवलेह——चोपचीनी १२भाग, दालचीनी, जावित्री, चित्रकमूल की छाल, लौग, अजमोद, बसलोचन, निसोथ, त्रिफला और पद्मज प्रत्येक २-२ भाग, तथा सब के चूर्ण से तीन गुणा शहद लेकर, शहद की चाशनी बना, सब के महीन चूर्ण को मिलाले।

मात्रा——१ तो० प्रात बिना भोजन किये सेवन (सायकाल भी ले सकते हैं) करने से सुजाक का कुरा, वायुगोला, दर्द गठिया मे विशेष लाभप्रद है। यह वीर्य को पुष्ट करता हे। (स्व० प० भागीरथ स्वामी)

नोट—माजून के कई बडे-बडे प्रयोग यूनानी ग्रन्थो मे देखने योग्य है।

---

[1] मैनसिल के चूर्ण को मोटे वस्त्र की पोटली मे बांध, दोला यंत्र विधि से बकरी के मूत्र में ३ घंटे मद आंच पर पकाकर फिर ३ घन्टे तक हल्दी के क्वाथ में उक्त विधि से पका, अदरख-रस मे ३ घन्टे खरल कर सुखाने से शुद्धि हो जाती है।

(६) मदन-सजीवन चूर्ण—चोपचीनी चूर्ण ४० तो० तथा जायफल, लौग, जायपत्री, पीपल, तज, तमाल-पत्र, इलायची, नागकेसर, बहुफली, पीपरामूल, अजवायन, कौच-बीज, असगध, सफेद मूसली, बलबीज, (खिरेटी के बीज), गोखुरू, समुद्र शोष के बीज, धतूरे के बीज, बसलोचन और मुलहठी प्रत्येक का १-१ तो० चूर्ण, इनको एकत्र महीन खरल कर रख ले।

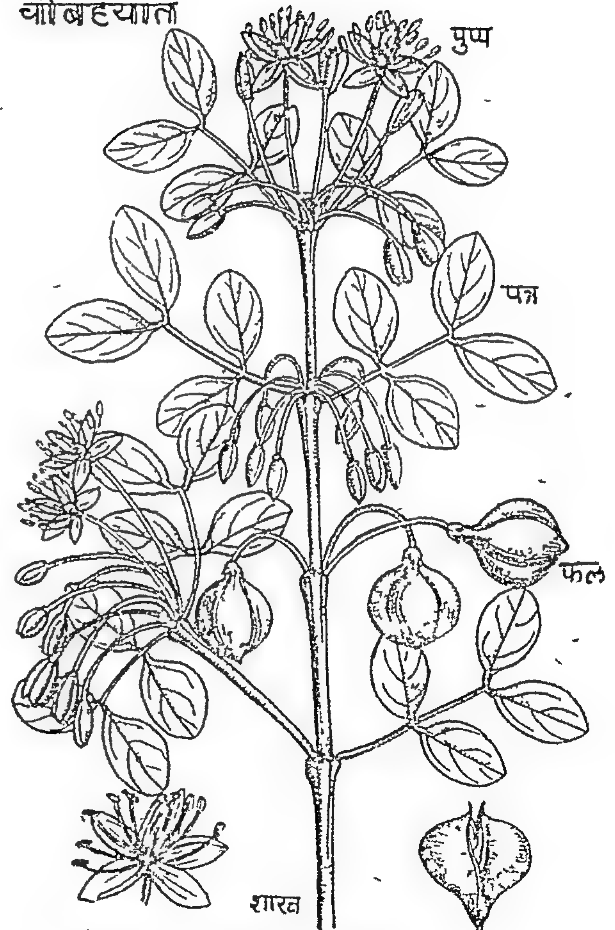
मात्रा—३ मा०, शहद ३ मा० और घृत ६ मा० एकत्र मिला, चाट कर ऊपर से गौदुग्ध पीवे। यह अत्यत कामोद्दीपक एव वाजीकरण है। (व० च०)

चोबहयात (Guaicum Officinalis)

गोक्षुर-कुल (Zygophylleae) का यह झाडीनुमा सुन्दर वृक्ष होता है। छाल-ऊबड-खाबड या अत्यन्त खुरदरी, पत्र—जोडे से, लकडी वजन मे भारी, लकडी का सारभाग ऊदे रग का बहुत कडा, जलाने से धूप जैसा सुगन्ध देने वाला स्वाद मे मसाले जैसा क्षोभक होता है, यही चोबहयात कहाता है। इसके पलग या तख्तपोश के पाये बनाते हैं।

औषधि-कर्म मे उक्त सार-काष्ठ और उससे निकला हुआ राल (Resin) लिया जाता है।

इसके वृक्ष विशेषत पश्चिमी भारतीय-द्वीपो के पहाडी प्रान्तो मे होते है। कहा जाता है कि बनारस, गोरखपुर और रोहतास के बागो मे कही-कही ये वृक्ष लगाये गये है।



GUAIOCUM OFFICINALIS

नाम—

स०—लौहकाष्ठ, अमृत दारु, इ०। हि०—चोब (चोबे) हयात, लोह-लक्कड। अ०—लिग्नम वायटी (Lignum Vito)। ले०—ग्वाएकम ऑफिसिनेलिस।

रासायनिक सघटन—

इसमे लगभग प्र० श० २०-२५ तक एक प्रकार का राल, खाकी रग का, सुगन्धित पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह उष्ण, रूक्ष, दीपन, पाचन, मूत्रल, स्वेदल, [illegible], हृद्य, वातानुलोमन, वेदनास्थापन, विषनाशक एव शोथ-हर है।

यह [illegible] की हालत मे विशेष उपयोगी है। स्त्रियो के मासिक धर्म को साफ करने वाला एव गर्भाशय का शोधक है। गले की ग्रन्थि के शोथ पर यह उत्तम लाभकारी है, इसका चूर्ण जीभ पर रख कर धीरे-धीरे गले मे उतारते है। या इसे थोडे से पानी के साथ धीरे-धीरे निगलते है। जीर्ण आमवात, सधियो की जकडन, गृध्रसी आदि वातरोगो मे इसे, शुद्ध गधक, सोरा, सोठ, और



और इसके तैल की मालिश करते है।

मात्रा—पत्र-रस -१से ४ मा । पत्र-शीतनिर्यास या फाट १ से २।। तो नथा पचाङ्ग का क्वाथ—३ तोला तैल २-५ बूंद,

चौपतिया (Marsilia Quadrifolia)

शाकवर्ग की इस बूटी को कई लोग वासक-कुल (Acanthaceae) के उटगन की ही एक जाति विशेष मानते है। तथा इसका भी वही लेटिन नाम (Blepharis Edulis) देते है। जो कि उटगन के लिए दिया गया है। किंतु वास्तव मे यह उससे भिन्न अन्य कुल (Marsileaceae) की एक ही जलज बूटी है। इस कुल की अन्य बूटिया अभी अज्ञात है। उटगन के गुणो मे इसके गुणो की अपेक्षा बहुत कुछ कमी है। उटगन के पत्रो मे कुछ अम्लता होती है, किन्तु इसके पत्तो मे नही होती।

वर्षाकाल मे इसके छत्ते जैसे क्षुप जलाशय के समीप के कीचड या पानी के ऊपर तैरते हुए दिखाई देते है। पत्र—प्रत्येक डडी पर ४-४ या प्रत्येक पत्र ४ भागो मे विभक्त १-१ इच लम्बा होता है। इसी से यह चौपतिया कहाता है। पत्र-वृन्त ६-१० इच लम्बा, कडा होता है। ये पत्र विविध आकार के कुछ श्याम वर्ण के होते है।

बीज कोष या फल— डडी के अग्र भाग पर श्वेत वर्ण के गुच्छो में इसके बीज-कोष होते है, जिन मे नन्हे-नन्हे चिपटे बीज होते है

नोट—(१) सुनिषण्णक और शितिवार नाम से चरक और सुश्रुत मे इसका उल्लेख है। चरक मे वातज कास विषपीडा, ऊरुस्तभ और वातरक्त से पीडित रोगी के लिए इसके शाक का विधान है। तथा मूत्रकृच्छ्र पर इसके बीजों को तक्र के साथ पीस कर पिलाने के लिये कहा है[1] सुश्रुत के शाकगणों मे इसके गुणों का उल्लेख है। तथा रक्तपित्त रोग में इसके पत्तो को घृत में भूनकर या पका कर खाने के लिए पथ्य कहा है।[1]

(२) एक लाल चौपतिया भी होती है। इसमें लाल रग के पुष्प आते है। इसे मराठी मे 'देवकुरडू' कहते है। प्रस्तुत प्रसग की चौपतिया के पुष्प, श्वेत होते है।

यह बगाल, विहार, आसाम तथा भारत के अन्यान्य जल-प्रचुर स्थानो पर बहुत होती है।

नाम—

सं–शितिवार, सुनिषण्णक,स्वस्तिक इ. । हि.–चौपतिया, शिरियारी। म —कुरडू। गु.–सुनिषण्णक। बं.–सुषणीशाक, शुनिशाक । ले–मारसीलिया क्वाड्रीफोलिया। पा.–मिन्युटा (P Minuta)।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर, कसैली, शीतल, ग्राही, अविदाही (दाहन करने वाली), रूक्ष, दीपन, वीर्यवर्धक, रुचिकारक हृद्य, मूत्रल, त्रिदोषशामक तथा मेद, ज्वर, श्वास, प्रमेह कुष्ठ, भ्रम, आदि नाशक है इसके बीज शीतल है।

पत्तो का शाक वातज कास, विषपीडा, ऊरुस्तभ, वातरक्त मे देने से लाभ होता है। रक्तपित्त मे इसका शाक घृत से सिद्ध कर आवलो के या अनारदानो के चूर्ण मिलाकर पथ्य रूप मे देने से लाभ होता है।

अश्मरी और मूत्राघात पर—इसके बीज १ मा. समभाग मिश्री के चूर्ण के साथ दिन मे २-३ वार देते है।

---

[1] तक्रेणयुक्तं शितिवारकस्य बीज पिबेत्कृच्छ्र विघातहेतो.।" (च चि, अ २६)

[1] पटोल शेलू सुनिषण्ण यूथिका वटाति · हितच शाकं घृतसंस्कृतं सदा, तथैव धात्री फल दाडिमान्वितम्॥ सु अ. ४५ अर्थात् परवल पत्र का शाक, लिसोडे के फलो का एवं सुनिषण्ण (चौपतिया) के पत्तों का शाक घृत से सस्कृत कर आंवले व अनारदाने के चूर्ण से कुछ खट्टा बना कर देना सदा (रक्तपित्त में) हितकारी है।

कफज मूत्रकृच्छ पर—इसके बीजो की पीस कर तक्र के साथ देने से लाभ होता है।

भाग या गाजे के नशे पर—इसकी जड को शीतल जल मे पीस कर बार-बार पिलाते है।

निद्रानाश पर—इसका पत्र-शाक हितकारी है।

चोलमुगरा दे०—चालमोगरा।

चौलाई (Amaranthus Polygamus)

शाकवर्ग एव अपामार्ग-कुल के (Amaranthaceae) इस उत्कृष्ट शाक के वर्षायु, बहुशाखायुक्त क्षुप १-२ फुट ऊचे, पत्र—तुलसी पत्र जैसे, किन्तु बडे लम्बगोल, कोमल, पुष्प और फल—डडियो के अग्रभागो पर गुच्छो मे बहुत छोटे-छोटे होते है। बीज—नन्हे-नन्हे गोल श्वेत या काले होते हे।

यह भारत मे सर्वत्र प्राय उष्ण प्रदेशो मे स्वभावत उत्पन्न होती है, तथा बागो मे भी लगाई जाती है।

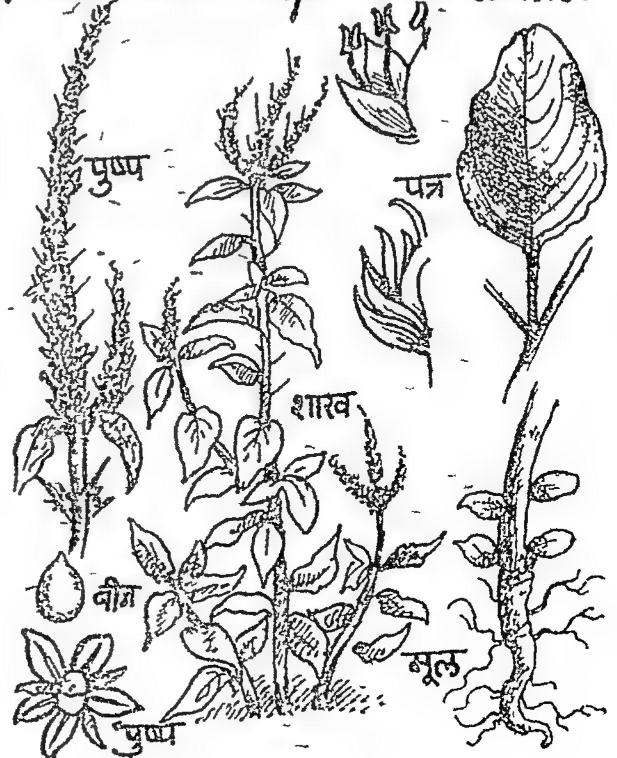
नोट-इसकी कई जातियां होती हैं।

(अ) मरसा (माठ) सस्कृत मे जिसे मारिष, हिन्दी मे—मरसा, लालनतिया, लालसाग, मराठी मे—मोठी चवली, रानचोली, माठ, गुजराती मे—अडवाड डाभो इसकी ही प्रस्तुत प्रसग की चौलाई एक छोटी जाति है। इसीलिए सस्कृत मे इसे अल्पमारिष कहते है।

मरसा के क्षुप ६ फुट तक ऊचे, पत्र—चौलाई की अपेक्षा बडे, पत्रपृष्ठ पर सिराबाहुल्य, पकने पर लाल रग के होते है। श्वेत और लाल भेद से यह दो प्रकार का होता है। ये दोनो प्राय भारत के सब प्रान्तो मे बोये जाते हैं।

श्वेत मरसा के क्षुप ४-५ फुट ऊचे, शाखा-हाथ के अगूठे जैसी मोटी, पत्र—२-६ इच लम्बे, १-३ इच चौडे, चौलाई पत्र जैसे किंतु उससे बडे, शाखाओ के अग्र-भाग पर चारो ओर फूल व फल के गुच्छे, बीज—बारीक काले रग के होते है। इसे हि—सफेद मरसा साग, नवडा नेवटा आदि, म— पोकलखाची भाजी, गु—डाभो, राजगरो, ब—श्वेत काटे नटे और ले—एमरेटस पेनिकुलेटस (A. Paniculatus) कहते है। गुण धर्म मे—यह मधुर, शीतल, विष्टभकारक, पित्तनाशक गुरु, वात तथा कफकारक, एव रक्तपित्त, विषमाग्नि-शामक होता है।

लाल मरसा के क्षुप २-३ फुट ऊचे, लाल रंग के, पत्र—उक्त श्वेत मरसा जैसे, किंतु हरिताभ या नीलाभ लाल रग के चमकदार, फूल व फल—शाखाओ के चारो ओर गुलाबी रग के सूक्ष्म गुच्छो मे, बीज—उक्त मरसा के जैसे ही होते है। इसे हि०—लाल मरसा, लाल नवडा, लाल साग; म०—माठाची भाजी, तावडा माठ, गु०—माटी चुलाई, ब०—रक्तकाटा, नटेरशाक, लाल काटा



नटेर और लेटिन मे—अमरेटस गेजिटिकस Amarantus Gangeticus कहते है। गुणधर्म मे यह किंचित् गुरु मधुर, पाक मे कटु, सारक, कफजनक तथा स्वल्प दोष वाला होता है।

श्वेत या लाल मरसा के पत्ते—मधुर, सकोचक, कफ-निस्सारक, ज्वरनाशक, व्रणपूरक, ऋतुस्राव-नियामक, वामक तथा दतशूल, शोथ, यकृतविकार एव दाह आदि पित्त-विकार-नाशक हैं। गले व मुख के छालो पर इसके क्वाथ से कुरले कराते है, इससे मुख का शोथ भी दूर होता है। फोडा शीघ्र फूटने के लिये—इसके डठलो को शुष्क कर तथा आग मे जलाकर, उसकी राख मे चूना मिलाकर लगाते है। मदात्यय पर—शराब का नशा उतारने के लिये लाल मरसा के डठलो का रस ४ तो० तक पिलाते है।

(आ) एक जल चौलाई (पानीय तण्डुलीयक) होती है।इस पानी या आर्द्र भूमि पर पैदा होने वाली चौलाई के पत्ते लम्बे-चौडे नोकरहित बर्छी जैसे होते हैं। डडियो के अन्त मे, डडी के चारो ओर बारीक पुष्पो के गुच्छे रहते है और बीज उक्त चौलाई के बीज जैसे की बारीक काले रग के होते है। यह तिक्त रसयुक्त, लघु एव रक्तपित्त तथा वातदोष-नाशक है।

(इ) काटा चौलाई (Amaranthus spinosus)—यह प्रस्तुत प्रसग की चौलाई की ही एक घनिष्ठ जाति-विशेष है। इसका क्षुप उसी प्रकार का, किंतु लाल रग का तथा पत्तो के मूल भाग मे तीक्ष्ण काटो से युक्त होता है। इसको कोई लाल साग कहते हैं। पत्ते—चौडे, लम्बगोल, दीर्घवृन्तयुक्त, पुष्प—डडियो पर बारीक चमकीले काले रग के गोल होते है।

इसके नाम—स०—बहुवीर्य तदुला, कुडेरा इ०। हि०—काटा चौलाई, कटे नतिया इ०। म०—काटे माठ, कटी भाजी, चनलई इ०। गु०—काटा डो टागो। ब०—काटा नतिया। अ०—प्रिक्ली अमरेथ Prickly Amaranth और ले०—एमेरेंथस स्पिनोसस है।

नाम—

प्रस्तुत प्रसग की चौलाई के—स०—तण्डुलीय, मेघनाद, अल्पमारिष इ०। हि०—चौलाई, चौराई। म०—तादुलजा, चवलाई, [illegible]। गु०—[illegible] इं०—[illegible], क्षुदेनटे। ले०—गमेंटस पोलीगेमस।

रासायनिक सघटन—

इसमे प्र० श० ८५.८ पानी, ३.? [illegible], ४.९ प्रोटीन, ०.५ वसा, ५.? कार्बोहाइड्रेट, ०.५ कैल्शियम, ०.१० फास्फोरस, तथा अल्प प्रमाण मे विटामिन बी० व सी० एव लोह पाया जाता है।

कटीली चौलाई मे कार्बोहाइड्रेट तथा लोह का प्रमाण कुछ अधिक होता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, मूल, बीज व पञ्चाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग

लघु, रूक्ष, मधुर, विपाक मे मधुर, विपाक मे मधुर, शीत वीर्य, कफपित्त शामक, रोचन, दीपन, अनुलोमन, सारक, हृद्य, मूत्रल, दाह-प्रशमन, व्रणरोपण, विषघ्न तथा अरुचि, अग्निमान्द्य, विबन्ध, हृद्रोग, रक्तपित्त, (रक्तातिसार, प्रदर, रक्तार्श आदि), पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र, शोथ आदि नाशक है।

कटीली चौलाई मे उक्त गुणो के साथ ही साथ स्तन व गर्भाशय की वेदना और अशक्ति, अत्यार्तव आदि नाशक गुणो की विशेषता है। विषघ्नता की भी इसमे अधिकता है।

कटीली और साधारण चौलाई के पत्र—पत्तो का साग स्वादु, रुचिकर, अग्निप्रदीपक एव शीतपित्त, रक्तविकार, कास, दाह, शोष, विषबाधा, चूहे का विष, नेत्ररोग, उदर-रोग, अतिसार, उन्माद, सग्रहणी, प्रदर, अर्श, यकृद्विकार, प्लीहा-वृद्धि, जीर्ण-ज्वर, जीर्ण उपदश, वातरक्त, त्वचारोग, सुजाक एव प्रसूता की अवस्था मे पथ्यरूप से हितकारी है। पथ्यरूप मे इसके साग मे तैल की योजना न करे। केवल थोडे जल मे उबाल कर घृत का छोक देवे।

ज्वर पर—इसे जल मे उबाल व निचोड कर, सेधा नमक, काली मिर्च व पीपल चूर्ण मिला ज्वरी को सेवन करावे।

पाडु-रोग पर—इसे उबाल व निचोड कर—लहसुन,

खाने का सोडा, हरडचूर्ण १-१ माशा, जवाखार ६ र०, गौतक्र १।। तो० मिला, १ पाव मे १ तो० घृत डाल, उसमे १ मा० नागकेशर चूर्ण व थोडी हल्दी का प्रक्षेप देकर पकाले। इस शाक को गेहू या जव की रोटी, या मूंग की खिचडी के साथ सेवन करे।

मूर्च्छा-रोग पर—आधा पाव पत्र उबाल कर, १ तो० घी व ६ मा० जीरा चूर्ण मे छोक दें। थोडा नमक व काली मिर्च चूर्ण का प्रक्षेप देकर, ६ मा० हरड़-चूर्ण मिला रोगी को जौ की रोटी या खिचडो के साथ सेवन करावे।

वातरक्त पर—उबले व निचुडे हुए आधा पाव पत्र को १ तो० घी व ३ मा० भूने हुए जीरा चूर्ण मे छोक कर, नमक १।। मा०, काली मिर्च १ मा०, श्वेत चन्दन-चूर्ण ६ मा० का प्रक्षेप देकर शाक बनाले।

—अ० यो० माला।

ध्यान रहे भस्म आदि रासायनिक औषधि के सेवन काल मे इसके साग का उपयोग नही करना चाहिए। अन्यथा सेवनीय रसायन औषधि का गुण न्यून हो जाता है। अश्मरी ग्रस्त रोगी के लिये यह साग बहुत हितकारी है।

रक्तपित्त पर—पत्तो का रस, कल्क, हिम, फाट, क्वाथ या शाक इनमे से किसी एक की योजना शहद मिलाकर प्रात साय करने से मुख, नाक, गुदा आदि से निकलने वाला रक्त बन्द हो जाता है।

शाक—आधा पाव पत्र उबाल एक पात्र मे गाय या बकरी का घी २ तो गरम कर उसमे एक मासा सौंफ डाल, पत्तो को छोक दे व अदरख, सेधा नमक, कालीमिर्च २-३ मा तथा अनारदाने का रस ६ मासा प्रक्षेप देकर शाक तैयार करे। इसे जौ की रोटी या पके हुए मूगो के साथ सेवन करे। (अयो माला.)

अथवा—पत्र-रस और शहद के मिश्रण मे फिटकरी फुलाई हुई ४ रत्ती मिला पिलावे। इसी प्रकार ३-३ घटे मे ५ मात्राए देने से लाभ हो जाता हे। रक्तातिसार आदि मे दी जाने वाली औषधि की योजना इसके पत्र-रस के अनुपान से करने पर अच्छा लाभ होता है।

नकसीर (नाक से रक्तस्राव होने) पर—पत्तो के साथ नीमपत्र पीस कर कनपटी पर लेप करें।

(२) मूत्रकृच्छ (सुजाक) तथा मूत्र- नलिका की जलन पर—२ तो ताजे पत्तो को, १० तो. जल मे, पीस छान कर दिन मे २-२ बार पिलाने से सुजाक की शाति होती है।

पत्तो को उष्णोदक मे भिगो, मसल, छान कर पिलाने से मूत्रनलिका की जलन दूर होती है। यदि अश्मरी के कारण मूत्रकृच्छ हो तो उक्त प्रयोग मे जवाखार १ मासा मिला दिन मे तीन बार पिलाते है।

(३) ग्रथि, विद्रधि, शोथ व लूताविष पर—पत्रो की पुल्टिस बनाकर बाधने से गाठ या विद्रधि पक कर शीघ्र फूट जाती है। तथा शोथ पर इसके पत्रो का लेप गरम-गरम करने से वह बिखर जाती है। लूता (मकडी) के विष पर—पत्र-रस को घृत के साथ मिलाकर लगाते है। शोथ पर शाक—उबले व निचुडे हुए आधा पाव पत्र मे लहसुन ३ मा अजवाइन १।। मा. सेंधानमक १।। मा काली मिर्च १ मा मिला एरण्डतैल २।। तो. मे जीरा डालकर छौक दे। इसे जौ की रोटी के साथ सेवन करे। —अ. यो माला

मूल-तृष्णा, कफनाशक, रक्तरोधक, रक्तपित्त, प्रदर, शूल आदि नाशक है। मूल के अभाव मे पत्र और टहनियो की योजना की जाती है। इसका क्वाथ वातोत्पन्न उदरनाशक है। दाह, व्रण तथा विषो पर मूल और पत्रो का लेप करते है। विषो पर मूल और पत्रो का लेप करते है। विषबाधा-निवारणार्थ मूल को पीस कर गरमजल से पिलाते हैं।

(४) रक्त तथा श्वेत प्रदर पर—कटीली चौलाई के जड का चूर्ण शहद के साथ चटाने तथा ऊपर से चावल के धोवन मे रसोन की मात्रा ४ रत्ती तक मिला कर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। इस प्रयोग से प्रसूता या सगर्भा स्त्री का रक्तस्राव भी बन्द होता हे।

अथवा—मूल २ तो. चावल के धोवन मे पीस छान कर उसमे मिश्री १ तो, श्वेत जीरा २ मा. पीस कर मिला इसी प्रकार प्रात साय सेवन करे। उष्ण काल

मे यह ठडा ही पिये, किन्तु शीत ऋतु मे इसे कुछ गरम कर पीना ठीक होता है। तथा इन दिनो मे चौलाई का शाक भी खाना हितकर है। रक्तप्रदर मे शीघ्र नाशकारी है।

श्वेतप्रदर पर—इसके रस मे हीराबोल मिलाकर पिलाते है।

रक्तातिसार पर—मूल को पानी मे पीस कर उसमे शहद और खाड मिलाकर पिलावे। अथवा—जड का स्वरस २ तो मे शहद ६ मा और मिश्री ३ मा मिला कर सेवन करावें। गुदमार्ग से रक्तस्राव बन्द होता है। आगे विशिष्ट योग मे उसका आसव देखे।

(६) नेत्र-पाक या नेत्रव्रण पर—मूल को स्त्री के दूध मे पीसकर या घिस कर नेत्रो मे टपकाने से दाह, जलन, वेदना, लाली और व्रण मे लाभ होता है।

रक्तार्श पर—मूल के रस मे ४॥ मा रसौत और १ मा नागकेसर चूर्ण मिला १-१ मा की गोलिया बना प्रति दिन १ गोली खाकर ऊपर से इसके मूल का ही शीत निर्यास १० तो तक पिलावे। पथ्यपूर्वक रहे। शीघ्र लाभ होता है। (यूनानी)

(८) अनार्त्तव मे रज प्रवर्त्तनार्थ—मूल के साथ गुलाब के पत्ते व तेलियागेरू प्रत्येक ६-६ मा कपास की जड १॥ तो और पुराना गुड (३ वर्ष का) २ तो लेकर सब को तीन पाव जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छान कर, नित्य ३ दिन तक, केवल प्रात पिलाने से मासिक धर्म की रुकावट दूर होती तथा गर्भाशय की शुद्धि होती है। ध्यान रहे मलावरोध की अवस्था मे उदरशुद्धि करावें। मासिकधर्म मे विकृति होने पर ३ दिन स्नान न करे, अन्यथा रज स्राव ठीक नही होता। आवश्यकतानुसार गर्भाशय व बीजाशय पर रेडी तैल लगा कपडा रखकर गरम जल की थैली से सेक करे, (प्रात साय २०-२० मिनट तक।) (रस तत्र सार)

सुजाक पर—मूल के साथ समभाग मुलहठी व अपामार्ग-मूल मिलाकर क्वाथ बना सेवन करने से मूत्र-कृच्छ्र सोजाक रोग की प्रथम व द्वितीय अवस्था मे विशेष लाभ होता है।

अथवा—कटीली चौलाई (किसी भी योग के लिये जहाँ तक हो सके काटे वाली चौलाई ही लेना ठीक होता है) की सूखी जड २ तो०, भागरा (भृङ्गराज) का शुष्क पचाङ्ग व मकोय (काकमाची) १-१ तो०, रेवन्द चीनी ६ मा० तथा पुराना गुड ६ मा० सबको जौकुट कर, मृत्पात्र मे ३ पाव पानी के साथ चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर प्रात पिलावे। पुन साय उसी औषधि के कचरे को आध सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर प्रात पिलावे। इस प्रकार ७-१४ दिन तक सेवन से नया या पुराना सुजाक दूर हो जाता है। किंतु प्रयोग-सेवन के पूर्व कोठे को मुलायम व शुद्ध कर लेवें।

(१०) चौलाई की जड के अन्य महत्त्व के योग—

वध्याकरण योग—मासिक धर्म होने के पश्चात् ३ दिन तक इसकी जड को चावलो के धोवन मे पीसकर पीने से स्त्री वध्या हो जाती है।

—यो० त० भा० भै० र० से०

नारू पर—इसके जड की पुल्टिस बनाकर बाधने से नारू जल जाता है।

गर्भपात या गर्भस्राव पर—जिस स्त्री को गर्भपात होते रहने की शिकायत हो, उसे रजोदर्शन के समय ४-५ दिन तक इसका क्वाथ पिलाने से लाभ होता है। अत्यार्त्तव पर यह अर्गट जैसी ही उपयोगी है। गर्भाशय-शूल तथा अति रक्तस्राव पर—मूल के साथ आवला, अशोक-छाल व दारु हल्दी मिला, फाण्ट बनाकर पिलाते है। गर्भ को स्थिर करने के लिये ऋतुकाल मे मूल को चावलो के धोवन मे पीस कर पिलाते है। इससे गर्भिणी व प्रसूता के रक्तस्राव मे भी लाभ होता है।

नासूर या नाडी-व्रण पर—मूल को पीस कर बाधते है।

अर्धशीशी पर—इसके और जटामासी के कल्क के साथ घृत को सिद्ध कर नस्य देवे।

अग्निदग्ध-व्रण पर—इसके रस का लेप करते है।

विष के विकारो पर—तण्डुलीयक घृत इसकी जड और घर के धुये (गृहधूम) के कल्क तथा दूध के साथ सिद्ध किया हुआ घृत पीने से समस्त विष-विकार

नष्ट होते है । इसकी जड के समभाग गृहधूम लेवे, उससे ४ गुना घृत तथा घृत से ४ गुना दूध मिला घृत सिद्ध करे । इस प्रयोग से प्राय. सर्व कृत्रिम विप दूर होते है ।

सर्प-विप पर—मूल २ तो० के साथ कालीमिर्च ६ मा० लेकर चावल के धोवन के साथ पीसकर बार-बार पिलाते है ।

विच्छू के दश पर—जड को पानी मे पीस लेप करते है। तथा इसके स्वरस मे शक्कर मिला पिलाते है। इससे सखिया तथा गुजा के विप पर भी लाभ होता है।

वच्छनाग (वत्सनाभ) के विप पर—इसके पचाङ्ग के रस मे गोदुग्ध मिला पिलाते है ।

पारा आदि कच्ची रसायन के सेवन से हुए कुप्रभाव के निराकरणार्थ—इसके रस को घृत के साथ ७ दिन पिलाते है ।

विपम ज्वर मे—मूल को सिर पर बाधते है। मुख या चेहरे की झाई पर—इसके पचाङ्ग की भस्म को जल के साथ मिला चेहरे पर लेप कर थोडी देर तक धूप मे बैठने से लाभ होता है ।

चूहे के विप पर—मूल का चूर्ण ३-३ मा० दिन मे २ बार शहद के साथ देते रहने से, थोड़े दिनो मे विप नष्ट हो जाता है । यदि विप का तीव्र प्रकोप हो, तो इसकी मूल १ तो० को जल मे घिस, कुछ गरम कर पिलाते है, फिर १५-१५ मिनट पर ३-४ बार पिलाने से वमन द्वारा विप निकल जाता है ।

नोट—पत्रस्वरस १ से १० तो० तक । मूल का रस १ से ५ तो० तक । मूल का क्वाथ २॥ से ५ तो० तक । चूर्ण—३-६ मा० तक ।

विशिष्ट योग—

तण्डुलीयासव—(रक्तातिसार-नाशक चौलाई की जड १ सेर जवकुट कर ३ सेर जल मे पकावे । ६ सेर शेप रहने पर, छानकर शुद्ध आसव-पात्र मे भर, उसमे १ सेर धाय-फूलो का चूर्ण, ३ सेर शक्कर और २ सेर शहद मिला, मुख बन्द कर २१ दिन तक सुरक्षित रक्खे । पुन छानकर बोतलो मे भरले ।

१ तो० से २॥ तो० तक, आधा जल मिला सेवन करने से अतिसार विशेषत रक्तातिसार मे शीघ्र लाभ होता है। शेष आसवारिष्ट के प्रयोग हमारे वृ० आसवारिष्ट सग्रह मे देखिये ।

नोट—एक वन चौलाई और होती है, जिसे मरेठी में रान तांदुलजा, तावडा माठ, तथा लेटिन में Amarantus Blitum एमरेंटस ब्लिटम कहते हैं । यह बम्बई प्रान्त में होती है । इसका क्षुप १-४ फुट तक ऊंचा, पत्र--चौलाई जैसे, किंतु छोटे, फूल--गुच्छों मे श्वेत व लाल रङ्ग के होते हैं ।

इसका साग आमाशय की उष्णता कम करता है, एव उत्तम पथ्य हे ।

अग्निदग्ध पर—इसके पत्तो के साथ दूर्वा मिलाकर पीसकर लेप करते हे । मुख के छाले या मुखपाक पर इससे कुल्ले करते है । यह ऋतुस्राव-नियामक, वामक, दाह आदि पित्त-विकार शामक, दतशूल-निवारक, यकृत-विकार व शोथ मे लाभकारी है । शेष गुण उक्त चौलाई के गुण जैसे ही हे ।

चौहार दे०—अजवायन—किरमाणी

छड़ीला (Parmelia Perforata)

कपूरादिवर्ग एव शैलेय, कुल (Lichenes) की यही एक मात्र मुख्य प्रधान अपुष्प बूटी है जो काई के समान जलाशय-समीपवर्ती पहाडो की चट्टानो, पुराने वृक्षो, मकान की दीवालो पर जमी हुई पाई जाती है। यह हरी, पेडो सी सचित होकर ग्रीष्म काल मे सूख कर छाल की तरह स्वयं उतर पडती है । इसे ही छार,छरीला, छडीला आदि कहते हे, तथा ठडे मसालो मे तथा औपधि कार्य मे ली जाती है । सूख जाने पर इसके ऊपर का

पृष्ठ भाग हरिताभ काला सा तथा भीतर का भाग श्वेत होता है। इसमे एक विशिष्ट गंध होती तथा स्वाद मे तिक्त कसैली होती है। जिसका भीतरी भाग अधिक सुगधित होता है, वही औषधिकार्य मे विशेष उपयुक्त होती है।

यह विशेषत हिमालय प्रदेश, पजाब, फारस आदि प्रदेशो मे बहुत पायी जाती है।

नोट—इसकी कई जातियों के लेटिन नाम नीचे की नामावली मे देखिये।

चरक तथा सुश्रुत मे वातज शोथ, नेत्ररोग, विष विकार, शीत ज्वर आदि के कई प्रयोगो मे यह (शैलेय) लिया गया है।

नाम—

स०—शैलेय (पथरीले पहाड़ों पर होने से), शिला पुष्प [चट्टानों पर पुष्प-सदृश होने से] इत्यादि। हि०—छडी [री] ला, भूरिछरीला, छारछरीला, पत्थरफूल इ.। म०—दगड फूल। गु०—छडीलो, पत्थरफूल। व०—शैलज। अ०—स्टोन फ्लावर्स [Stone flowers], यलो लिचेन [Yellow Lichen], रॉक मास [Roch moss] ले०—परमिलिया परफोरेटा. प०—परलाटा (P perlata) प-केरटस केडयाटिस [P Karatschadatis] प.-लायचिन ओडोरिफेरस [P Lichin odoriferous]

रासायनिक संघटन—

इसमे एक पीताभ, रवेदार रजक द्रव्य, गोद, शर्करा, तथा लाइचेनिन (Lichenin) नामक तत्व और क्राइसोनिक एसिड पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य, सौम्य एव प्रभाव मे हृद्य है। यह पित्तशामक, दीपन, ग्राही, कफनिसारक, शोथहर, रक्तविकार नाशक, व्रणरोपण, वेदना-स्थापन, कण्डूघ्न, मूत्रल, अश्मरी नाशक, दाह प्रशमन, कामोत्तेजक, ज्वर और कुष्ठनाशक है। कफपित्त-जन्य रोग, तृष्णा, वमन, अग्निमांद्य, अतिसार, प्रवाहिका, हृद्दौर्बल्य, शोथ, रक्तविकार, कास, श्वास, आदि मे इसका प्रयोग होता है।

व्रणशोथ, शिरःशूल, दाह, आदि विकारों मे इसका लेप किया जाता है। यूनानी मत से—इसे [illegible] को [illegible] उष्ण एवं बल्य, [illegible] प्रयोग करते हैं। व्रणों पर इसका चूर्ण बुरकते हैं। नेत्र-शक्ति की वृद्धि एवं नेत्र-स्राव पर इसे पीस कर आँखों में लगाते हैं।

१ मूत्रावरोध तथा अश्मरी पर—इसे ४ तोला लेकर क्वाथ या फाण्ट बना, मिश्री व जीरे का चूर्ण मिला कर पिलाने, तथा इसे गरम जल से पीसकर पेडू एवं उपस्थ पर बांधने से या इसे [illegible] तोला मिलाकर, पुल्टिस बना नाभि के नीचे बांधने से मूत्र की रुकावट दूर होती है।

२ शिर-दर्द पर—इसके वरक को गरम कर मस्तक पर लगाते है, गर्मी से होने वाला शिर-दर्द दूर होता है। इसे आग पर जलाकर धूम्र को नाक से खींचते रहने से भी लाभ होता है, मृगी, आधाशीशी तथा योषापस्मार मे भी यह धूम्र लाभकारी है।

३ कुष्ठ पर—इसके साथ कमीला, मुलैठी, सौराष्ट्री मृत्तिका (फिटकरी), राल, नीलोफर व मैनसिल सम-भाग, चूर्ण को मक्खन मे मिलाकर लेप करते रहने से स्रावयुक्त कुष्ठ नष्ट होता है। (वृ० नि० र०)

नोट—वातज-शोथ पर शैलेय-तैल प्रयोग चरक चि० अ० १७ मे देखिए।

शुद्धि—इसकी शुद्धि की विधि भैषज्य र मे इस प्रकार है—इसे काजी मे पकाकर, जल से धोकर, पञ्च-पल्लवक्वाथ से वाष्प-स्वेदन करे। फिर भूनकर गुड-मिश्रित हरड के क्वाथ से सेचन कर सुगन्धित पुष्पो-द्वारा सुवासित करे।

अथवा—इसे काजी मे अच्छी प्रकार-उबाल कर, धोकर छागमूत्र से और फिर सहिजन के क्वाथ से भावनाये देकर, शुष्ककर मधु से मर्दन करे। तदनन्तर अगर तथा राल से धूपन कर सुगधित पुष्पो द्वारा अधिवासित करे।

मात्रा—चूर्ण-६ से १२ रत्ती। क्वाथ—२-४ तोला।

छातवन (Alstona Scholaris)

वटादि वर्ग एव कुटज कुल (Apocynaceae) का यह वृक्ष ४०–५० फीट ऊँचा, निम्न भाग मे तना वहुत मोटा, छाल–श्वेत या भूरे रंग की, खुरदरी, स्थूल, भगुर, स्वाद मे अतितिक्त, छाल आदि वृक्ष के सर्वांग को काटने या छेदने से दुग्ध जैसा किंतु तिक्त स्राव होता है । पत्र–चक्राकार निकली हुई, वृक्ष की शाखाओ के प्रत्येक चक्र मे पत्र-गुच्छो मे ७-७ की सख्या में (इसी से इसे सप्त-पर्ण, अपभ्र श मे सतवन, सतोना, छतिवन कहते है) कही कही चार या पाँच पत्र ही होते है । ये पत्र ४–८ इच लम्बे, १ से १॥ या २॥ इच तक चोडे, ऊपरी पृष्ठ भाग स्निग्ध, हरिताभ पीत वर्ण का, चमकीला, निम्नपृष्ठ भाग श्वेताभ एव पत्तो का सर्वसाधारण आकार प्रकार सेमर (शाल्मली) पत्र जैसा ही होता है । पुष्प–गुच्छो मे हरिताभश्वेत वर्ण के छोटे-छोटे, ५ पखुडी-वाले, गज-मद के समान सुगधित, शरदऋतु मे आते है । फली–शीतकाल मे, लगभग १ फुट लम्वी, कुछ टेढी, चपटी, तथा वीज, श्वेत, छोटे, दोनो किनारो पर रोमश, फली के पक कर फटते ही ये वीज जमीन पर इधर उधर विखर जाते है । इन्ही वीजो से दूसरे पेड, तथा पेड की डाली लगा देने से भी पेड तैयार हो जाते है ।

इसके वृक्ष उष्ण एव समशीतोष्ण कटिवन्धीय प्रदेशो मे, जहाँ वृष्टि खूव होती है, विशेष पाये जाते है । हिमालय पृष्ठ पर ३ हजार फुटकी ऊँचाई तक, तथा वगाल, और दक्षिण भारत के कोकण प्रान्त मे व सीलोन मे भी अधिक पाये जाते है ।

नोट—चरक के तिक्त स्कन्ध, कषाय स्कन्ध, कुष्ठघ्न, उदर्द प्रशमन, शिरोविरेचन, एव सुश्रुत के आरग्वधादि, लाक्षादि तथा अधोभाग हर-गणो मे इसकी गणना की गई है ।

नाम-

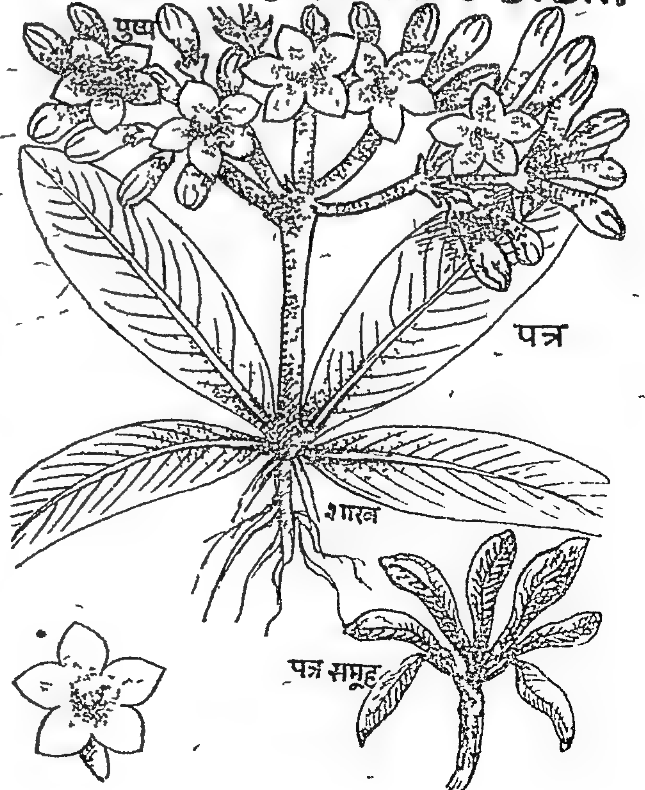
स---सप्तपर्ण, विशालत्वक, शारद, विषमच्छद आदि हि.-छितवन, सतोना, सतवन, शैतानी झाड इ । म.-सालवीण । गु -सातवण । व.-छातिम, छेतेनगाछ । अ.- डिटावार्क ट्री (Ditabark tree) । ले.-एलस्टोनिया स्कालरिस, ए कार्टेक्स (A Cortex)

रासायनिक संगठन--

इस वृक्ष की छाल मे डिटेमिन (Ditamine) एकिटेमिन (Echitamine), एकिटेनिन (Echitanine) एकिकाटचिन (Echicautchien) एकिसेरिन (Echicerin), एकिटिन (Echitin), एकिरेटिन (Echiratin), वसाम्ल तथा वसायुक्त रालमय पदार्थ पाये जाते है ।

प्रयोज्य अङ्ग—छाल, दूध, पुष्प, पत्रादि । औषधि-कार्यार्थ नयी छाल लेनी चाहिए, पुरानी छाल वेकार होती है ।

छतिवन (सतौना)
ALSTONIA SCHOLARIS B. BR.



गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्ण-वीर्य तथा त्रिदोषघ्न, विशेषत कफवातशामक, दीपन, अनुलोमन, मृदुरेचन, अन्य द्रव्यो के साथ देने मे स्तभन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, हृद्य, ज्वरघ्न (विशेषत विषम-ज्वर प्रतिबन्धक), स्तन्यजनन, कटुपौष्टिक एव कुष्ठघ्न है। इसका प्रयोग विशेषत कफवातज विकार, रक्त-विकार, हृद्रोग, कास, श्वास, कुष्ठ, उदर्द, ज्वरजन्य दौर्वल्य, आमवात, वात, चर्मरोग, जीर्णउदररोग, कफ जन्य सग्रहणी आदि मे किया जाता है।

विषमज्वरो मे यह कुनेन जैसा ही कार्य करता है, किन्तु उसके समान उपद्रवकारी नही है।

छाल—सकोचक, कटुपौष्टिक, धातुपरिवर्तक, कृमिनाशक, ज्वरघ्न एव ऋतुस्राव-नियामक है। इसका प्रयोग ज्वर, अग्निमाद्य, शूल, गुल्म जीर्णातिसार, प्रवाहिका, कृमि आदि मे अधिक किया जाता है।

प्रसूतावस्था मे छाल का प्रयोग अन्य सुगधित ज्वरनाशक द्रव्यो के साथ करने से अग्नि और बल की वृद्धि, ज्वर का प्रतिषेध एवं स्तन्य-वृद्धि होती है।

जीर्णातिसार व प्रवाहिका मे इसका क्वाथ देते है। जीर्णआमवात और सविशोथ पर—छाल का कल्क लेप करते हैं या पुल्टिस बनाकर बाधते है। कुष्ठ पर—ताजी छाल का अर्क दूध के साथ देते है। जीर्ण एव दूषितव्रणो पर—छाल को दूध के साथ पीस कर लेप करते हैं। रक्तपित्त मे—इसका घन क्वाथ, चोबचीनी-चूर्ण मिला दूध के साथ सेवन करते हैं।

(१) ज्वरो पर—विशेषत सतत विषमज्वर, जिसमे ज्वर एकसमान दिनरात बना रहता हो, कई दिनो तक रोगी ज्वर मे सतप्त हो, ज्वर कभी उतरता ही न हो तो इसकी छाल के साथ गिलोय, अडूसापत्र, पटोल पत्र, नागरमोथा, भोजपत्र, खैर की छाल, और नीम की अन्तरछाल समभाग जौकुट कर मात्रा–४ तो. को ६४ तो पानी मे अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर छान कर प्रात काल पिलावें, या इसकी ३ मात्रा कर दिन मे २-३ बार पिलादें। शीघ्र ही ज्वर उतर जाता है। अथवा केवल इसकी ही छाल का क्वाथ या फाट दिन मे २-३ बार पिलाते रहने से ज्वर शनै २ उतर जाता है। अन्ये शुष्क आदि विषम ज्वरो मे भी यह क्वाथ लाभकारी है। ज्वर के पश्चात् की अशक्ति के निवारणार्थ छाल के क्वाथ मे अदरख का रस मिलाकर सेवन कराते हैं।

अथवा—इसकी अ तरछाल का घन क्वाथ कर उसमे अतीस-चूर्ण की गोली बन सके इतना मिला, २-३ रत्ती की गोलिया बना, धूप मे सुखा लें। ३-३ घंटे से २-३ गोली ठंडे जल से देवें। विषमज्वर दूर होता है।

(सि. यो. सग्रह)—

नोट—छाल से निकाला हुआ डिटेनिन नामक सत्व, कुनैन के स्थान में सफलतापूर्वक दिया जा सकता है। कुनैन से होने वाली प्रतिक्रियायें इसके प्रयोग से नहीं होतीं किन्तु इसका असर कुछ समय वाद नही रहता। पुनः ज्वर आ सकता है।

ध्यान रहे छाल का क्वाथ या फाट, १२ घण्टे के पश्चात् पुन तैयार कर देना चाहिये। १२ घण्टे के वाद यह क्वाथ बेकार हो जाता है। जीर्णज्वर के साथ होने वाले अग्निमाद्य मे छाल का चूर्ण १० रत्ती की मात्रा मे, थोड़ी कालीमिर्च चूर्ण और सेधा नमक के साथ देते रहने से लाभ होता है।

कफज्वर मे—छाल के साथ गिलोय नीमछाल, और खजूर समभाग मिश्रित जौकुट कर ५ तो. चूर्ण को ४० तो. पानी मे पका दे। १० तो शेष रहने पर छान कर, उसमे २ तोला शहद मिला सेवन से लाभ होता है।

(भा. भै. र)

(२) मुख-पाक पर—इसकी छाल के साथ खस, पटोल नागरमोथा, हरड़, कुटकी, मुलैठी, अमलतास, और बाल चन्दन का क्वाथ सिद्ध कर सेवन करे।

(ग नि.)

(३) अश्मरी-जन्य मूत्रकृच्छ्र पर—इसकी छाल के साथ अमलतास, केतकी (केवडा), इलायची, नीम छाल, करज, कुटकी और गिलोय मिला कर क्वाथ सिद्ध कर शहद मिला सेवन करने से, अथवा ये क्वाथ द्रव्य

सम भाग मिलित २॥ तो. जल २ सेर मे पकावें, १ सेर पानी शेष रहने पर इस जल से यवागू बनाकर खिलाने से भी लाभ होता है। (व. से)

(४) हाथ पैर की जलन पर—छाल का रस २॥ तो मे समभाग मिश्री चूर्ण मिला प्रात साय शर्वत जैसा बना कर पीने से जलन दर होती है।

दूध—इस वृक्ष का दूध रेचक होने से विबन्ध तथा उदर-रोगो मे दिया जाता है। कर्णशूल पर इस दूध को तैल में मिलाकर डालने से लाभ होता है इस दूध को व्रण के शीघ्र रोपणार्थ व्रण पर लगाते है। सधिवात पर भी यह दूध लगाया जाता है।

पुष्प—शिरोविरेचनार्थ प्रयुक्त होते है।

बालको के पारिगर्भिक रोग (गर्भिणी का दूध पीने से हुआ शरीर-क्षीणता का विकार, अपर्याप्त एव हीन गुण दूध पीने से भी यह विकार बालको को होता है। यह एक प्रकार का गात्र-शोष या सूखा रोग है)पर—इसके फूलो के साथ कालीमिर्च, गोरोचन समभाग लेकर चावल के धोवन से पीस, दूध के साथ सेवन कराते है।

पत्र—व्रणो पर—इसके कोमल पत्रो को गर्म कर पानी मे पीस पुल्टिस बना दूषित व्रणो पर बाधने से लाभ होता है।

मूल—नहरुआ पर—इसकी जड का कल्क बना जल मे छान कर पिलाते तथा उसी कल्क का लेप करते है।

विशिष्ट योग—

१. सप्तच्छदादि तैल—

इसकी छाल के क्वाथ के साथ अडूसा का क्वाथ या स्वरस तथा नीम-पत्र या नीम-छाल का क्वाथ या स्वरस प्रत्येक समभाग २-२ सेर लेकर उसमे गोमूत्र ८ सेर तथा हल्दी, दारु हल्दी, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्र-जौ, मजीठ, खैरसार, जवाखार और सेधा नमक समभाग मिश्रित चूर्ण २० तो० का कल्क एव २ सेर तिल तैल मिला तैल सिद्ध करले।

यह तैल पद्मिनी कटक (एक क्षुद्ररोग—Papilloma of the skin), चिप्प (अंगुलीवेष्टक, इसमे नख के मास के भीतर वातपित्त-वेदना, दाह, पाकादि होते हैं Nail Matrix), कदर (ठेठ, घट्टा Corn), व्यङ्ग (झाई), नीलिका (मुख के अतिरिक्त अन्य स्थानो का व्यङ्ग, स्याह छीप) एव जालगर्दभ (एक प्रकार का विसर्प Herpes simplex) आदि त्वचा के रोगो को नष्ट करता है। (भै० र०)

२. सप्तपर्णघनादि वटी—

इसकी ताजी छाल को कूटकर ८ गुने जल मे उबाल, आधा जल शेष रहने पर, उतार कर, मसल छानकर, कलईदार पात्र मे पकाकर घन बनावे। कडछी लगने लगे तब उतार कर सूर्य-ताप मे सुखा ले। रबडी जैसा बनने पर ४० तो० लेवे। तथा कुटकी, चिरायता, कटकरज के भूने हुए बीजो का चूर्ण १५-१५ तो० कालमेघ १० तो०, शुद्ध कुचला व दालचीनी चूर्ण २॥-२॥ मा० मिला २-२ रत्ती की गोलिया बनाले।

यदि छाल सूखी हो, तो कूटकर ४ गुने जल मे पका, आधा शेष रहने पर, मसल कर छान ले। पुन चौथाई मे ४ गुना जल मिला अर्धावशेष क्वाथ कर मसल कर छान ले। फिर दोनो जलो को मिला उक्त विधि से घन बनाकर गोलिया बना ले।

२ से ४ गोली दिन मे ३ बार देने से, सतत, एकाहिक, चातुर्थिक आदि नये विषम-ज्वर, अपचन जनित ज्वर इत्यादि को नष्ट करती है। मलावरोध, अग्निमांद्य, उदर-कृमि, अरुचि एव निर्बलता को दूर करती है। ज्वर की किसी भी दशा मे यह दी जाती है। बढ़े हुए ज्वर को उतारती, तथा नये आने वाले को रोकती है। ज्वर-जन्य यकृत तथा प्लीहा-वृद्धि को भी यह दूर करती है। यह सामान्य औषधि होते हुए भी अच्छी लाभदायक सिद्ध हुई है।

—(रसतन्त्रसार)

नोट—छतिवन की छाल का चूर्ण ६-१२ रत्ती (अधिक से अधिक ६ माशे तक), क्वाथ-५-१० तो०। स्वरस-१-२ तो०। दूध-२-६ रत्ती। पुष्प-चूर्ण-४ रत्ती से लगभग ३ मा० तक। त्वचा-सत्व डिटेनिन की मात्रा-५-१० रत्ती तक। घन-सत्व-१॥-६ मा० तक।

छत्री (Polyporus Officinalis)



शाकवर्ग की सस्वेदज जाति एव छत्रक कुल (fungi) के इस शाक के क्षुप वर्षाऋतु मे स्वयमेव जमीन फोडकर या गोवर, काष्ठ, वृक्षादि पर पैदा हो जाते हैं ।यह ६–७ इच ऊँची, शाखारहित, केवल एक डण्डी से वाहर निकलती है, उस पर गोल छत्ते के आकार का एक छत्र होने से इसे छत्री या छत्रक कहते है । किसी किसी डडी पर गोल गु वज सा होता है, तथा उसमे काली भुरकी सी रहती है, इसे कृष्णच्छत्रक (Agaricus Compestris) कहते हैं ।दूसरे खण्ड मे कृष्णच्छत्रक का प्रकरण देखिये ।

छत्री की सु भ, ढिगरा, गुच्छीआदि कई जातियाँ हैं। जिनमे कुछ विपाक्त और कुछ निर्विप होती हैं। अनजान मे विपाक्त छत्री का शाक खा लेने से वेहोशा, उदराध्मान, वमन, उन्माद आदि लक्षण होते हे ।

इसकी एक विदेशी जाति होती हे, जिसे यूनानी मे गारीकून-सफेद हि०–जगली वलगर, कीआर्डन, अग्रेजी मे०–लार्च ऐगरिक (Larch Agaric) पर्जिग या व्हाईट ऐगेरिक purging or White Agaric) तथा लेटिन मे अगारिकस एल्वस (Agaricus Albus) कहते हे । गारीकून यह एक क्षुद्र पराश्रयी वनस्पति है। इसकी उत्पत्ति के विपय मे यूनानियो मे वहुत मतभेद हे। इसे कोई गूलर,अजीर आदि के पुराने वृक्षा का जडो मे पैदा होना, तथा कोई गार वृक्ष की जड या जढ मे पैदा होना इत्यादि मानते है ।

इसकी उत्पत्ति, दक्षिण और मध्य यूरोप मे पुराने चीड के वृक्षो पर होती है । ऐसा वहुमत है । वाजारो मे इसके चिकने, हलके, श्वेत रग के, ततुल एव स्पज जैसे टुकडे प्राप्त होते हैं। स्वाद मे ये प्रथम मधुर, पीछे कुछ कडवे एव चरपरे से मालूम देते है । जो श्वेत वर्ण के हलके (जल मे भी न डूवने वाले), मुलायम तथा स्वाद मे मधुर, तिक्त न हो, या काले रग के हो वे औपधि-कार्य मे नही लिये जाते, वे प्राय विपाक्त होते है।

सर्व साधारण छत्री प्राय सर्वत्र वर्षा काल मे पैदा होता हे । किन्तु उत्तम प्रकार की छत्री पजाव, काश्मीर आदि पहाडी प्रदेशो मे ही पाई जाती है ।

नाम

स०–भूमि छत्रक, सस्वेदज, शिलिंध्रक। हि०–छत्री, कुकुरमुत्ता, सांप की छत्री; खुमी, भुईं फोड, छतौना इ. । म०–भलम्वे । गु०–विलाडीनो टोप । वं०–कोडक छाता, छातकुड, छातोना,। अं०–मश्र म [Mushroom], फगाई [Fungai] । ले०–पोलिपोरस आफिसिनेलिस ।

रासायनिक संघटन–

इसमे (Resin) राल, तथा एक प्रभावशाली, अत्यत सूक्ष्म, श्वेत, चमकाला, रवेदार अगेरिकिन (Agaricin) नामक सत्व पाया जाता है । यही सत्व गारीकून मे भी होता है ।

प्रयोज्याङ्ग–पचाङ्ग ।

गुणधर्म व प्रयोग —

गुरु, स्निग्ध, मधुर, विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, वात पित्त-शामक, कफवर्धक, प्रतिश्याय-कारक, वाजीकर, वृहण, एवं वल्य है ।

पुआल मे उत्पन्न छत्रक-रस एव विपाक मे मधुर रूक्ष तथा दोप-नाशक है। ईख का जड मे उत्पन्न छत्रा मधुर, अनुरस मे कपाय, कटु व शीतल है । गोमय-गोवर जन्य छत्रक गुण मे उक्त इक्षुक-छत्रक जैसा ही किंतु उष्ण, कपाय तथा वातकारी है । वास लकडी से उत्पन्न छत्रक कसैला तथा वातप्रकोपक, और भूमि में उत्पन्न-भारी, विशेष वातल नही होता । भूमि के गुणानुसार ही इसके गुण धर्म होते है। (सु सू अ ४६)

वैसे तो सव प्रकार के सस्वेदज शाक–शीतल, दोषकारक, पिच्छिल, गुरु तथा वमन, अतिसार, ज्वर एवं कफ-सम्बन्धी रोगो को उत्पन्न करने वाले होते है। किन्तु जा छत्रक श्वेतवर्ण के पवित्र स्थान तथा पवित्र

गोबर, वास या काष्ठ पर पैदा होते है वे साधारण दोष-कारक होते हैं। विशेप विकार नही करते। शेप अन्य स्थानोत्पन्न, निन्दित एवं त्याज्य है। चरकाचार्य जी का कथन है—

सर्पच्छत्रक वर्ज्यास्तु वह्व्योऽन्याश्छत्रजातयः।
शीताः पीनसकर्त्र्यश्च मधुरा गुर्व्य एव च॥
(च. सू. अ. २७)

श्लोक का भावार्थ ऊपर के प्रसगानुसार ही है।

श्वेत रग के छत्रक विपाक मे गुरु, लालरग के अल्पदोपकारक, तथा काले रग के गुरु, मधुर और कुछ उष्ण होते हैं

शुक्रदौर्बल्य, क्षय, तथा शोथ आदि मे उत्तम गुणो वाली छत्री का क्षीरपाक दिया जाता है।

क्षय की अवस्था मे यह अ गूर की शराव के साथ दिया जाता है।

प्लीहा-रोग तथा अपस्मार मे इसे शहद और सिरके के साथ देते हैं। चेचक की प्रारम्भिक अवस्था मे इसका चूर्ण गरम पानी मे पीस छान कर पिलाते है, चेचक का विशेप प्रकोप नही होने पाता।

गारीकून के विशेप गुण धर्म इस प्रकार है—

यह ऊष्ण और रूक्ष है। सचित दोषो को मलमार्ग से निकाल देता है, आध्मान तथा वात की शोथ को दूर करता, पेशाव तथा स्त्रियो के मासिकऋतुस्राव को साफ करता है।

प्लीहा, शोथ तथा पाडु रोग मे—इसे सिकजवीन (शहद और सिरके) के साथ देते हैं।

श्वास तथा छाती की पीडा पर यह हरड और रूमामस्तगी के साथ दिया जाता है।

अपस्मार मे—यह ऊदसलीव के साथ दिया जाता है।

यकृत एव उदर विकारो पर—इसे उसारेरेवन्द के साथ देते है।

वृक्क की अश्मरी मे यह सौफ के अर्क के साथ दिया जाता है।

सर्व प्रकार के विष के असर को दूर करने के लिए इसे सिरके के साथ पीस कर पिलाते है। जयमविप पर यह शराव के साथ दिया जाता है।

जलोदर मे—यह तगर गगोडा (असारून) के साथ दिया जाता है।

भयकर उदरशूल (वातज) पर—यह शहद के साथ दिया जाता है।

गृध्रसी, गठिया, मलेरिया ज्वर तथा योपापस्मार मे इसे एलुवे के साथ देते है।

नोट—इसकी लाल, पीली या काली विपैली जाति के सेवन से जो उपद्रव होते है, उनकी शांति के लिये प्रथम वमन कराते, तथा गंध विलाव (जुन्दबेदस्तर) मात्रा-४ रत्ती से ८ रत्ती, पानी या दूध में घोलकर पिलाते हैं।

गारकून या साधारण छत्री अधिक मात्रा मे—कंठ-शोथ एव व्याकुलता-कारक है। तथा वृक्को मे विकृति करती है। इसके निवारणार्थ ताजा दूध तथा मस्तगी या जुन्दवेदस्तर दिया जाता है।

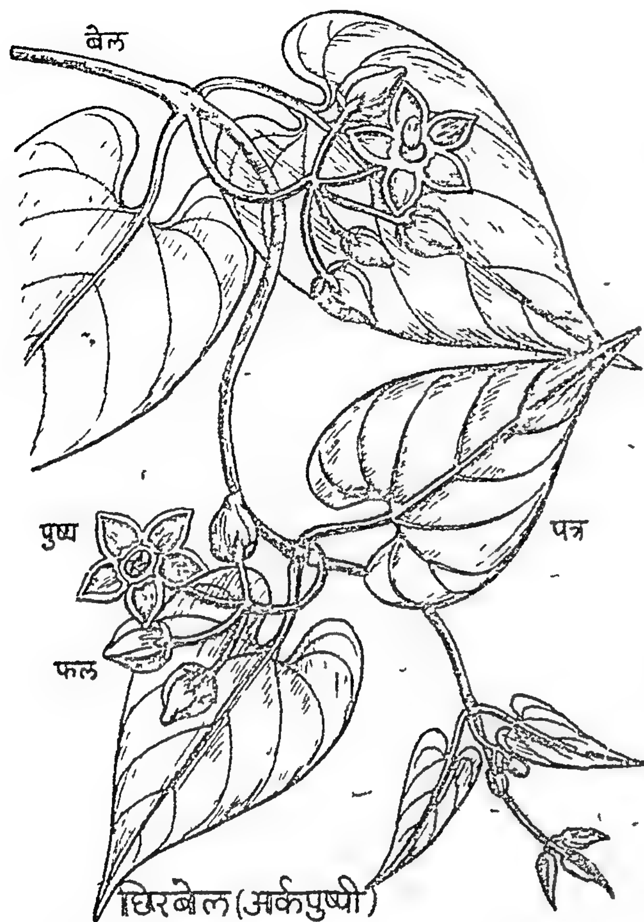
साधारण छत्री की मात्रा—१ से ६ मा० तक, तथा गारीकून की मात्रा—४ रत्ती से २ मा० तक है।

छानन—दे०—तिनिश। छालिया—दे०—सुपारी। छिडल—दे०—ढाक। छिकनी—दे०—नकछिकनी। छिकुर—दे०—छोंकर। छितवन—दे०—छतिवन। छिन्नरुहा—दे०— गिलोय। छिरछिटा—दे०—गगरेन।

छिरबेल (Holostema Rheedi)



अर्ककुल (Asclepiadaceae) की एक वडी जाति के क्षुप सदृश, श्यामवर्ण, चिकनी इस आरोही लता के काण्ड पोले; पत्र—विपरीत, ३-५ इञ्च लम्बे, २-३ इञ्च चौडे, गिलोय-पत्र जैसे गोल, कुछ मोटे, नोकदार, ऊपरी पृष्ठभाग चिकने, अधोभाग सूक्ष्म रोमश, पत्रवृन्त—१-२॥ इञ्च लम्बे, पुष्प—भीतर से लाल वर्ण तथा वाहर से



HOLOSTEMMA RHEEDII (SPR)

श्वेत या हलके गुलावी रग के, सुगधित, छत्री जैसे तुर्रेदार होते हैं। पुष्प का मध्य भाग मीठा होने से, बालक इसे खाया करते हे।

फली या डोडी—आक की डोडी जैसी, प्राय सयुक्त २-२ लगती है। नोकदार होती, तथा भीतर मुलायम कपास सा होता है, जो डोडी के पककर फूटने पर हवा मे चारो ओर उडने लगता है। डोडिया ४-५ इन्च लम्बी, आयताकार होती हैं। कच्ची, कोमल डोडियो का शाक बनाया जाता है। यह शाक दक्षिण भारत मे प्राय लोकप्रिय है। डोडी मे बीज पतले, लम्बे भूरे रग के होते हैं।

मूल या जडो की छाल मोटी खाकी रग की होती है।

यह लता भारत के दक्षिण प्रान्तो मे विशेपत कोकण, गुजरात आदि मे तथा हिमालय के प्रदेशो मे और वर्मा मे वहुत पैदा होती है।

नोट—इस लता के प्राय सर्वाङ्ग मे दूध होने से यह छिर (क्षीर) बेल कहाती है।

इस लता के ही सदृश और एक लता होती है, जिसे विप दोडी, भुईदारी आदि तथा लेटिन मे–टायलोफोरा फ्यासि क्युलेटा (Tylophora Fasci Culata) कहते है। यह जहरीली होती हे, तथा चूहो को मारने के लिये इसका प्रयोग होता है। छिरवेल के स्थान मे इस विषैली लता का प्रयोग न होने पावे, इसका ध्यान रखना आवश्यक हे।

नाम--

स०–अर्कपुष्पी, शीतला इ०। हि०–छिरबेल। म०–दुदुरली, शिरदोडी, तुलतुली, दुधोली इ०। गु०–सरणेर। ले०–होलोस्टेमा रेडी, एस्लेपियासएन्युलेरिस (Asclepias Annularis)।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, पत्र, दूध एव पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग

मधुर, शीतवीर्य, आन्त्र-सकोचक, धातुपरिवर्त्तक, मूत्रल, शोथनाशक, तथा प्रमेह, अश्मरी आदि मूत्र सम्वन्धी विकारो पर इसका विशेप उपयोग होता है।

(१) पूयमेह (सुजाक) पर—इसकी मूल का क्वाथ सिद्धकर उसमे जीरा तथा मिश्री का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से, मूत्रनलिका की जलन दूर होती, तथा मूत्र साफ होता है। अथवा—

इसकी ताजी जड या उसके शुष्क चूर्ण को ३ माशा की मात्रा मे गोदुग्ध मे पीस छानकर, दिन मे दो बार १४ दिन तक पिलाने से पूर्ण लाभ होता है।

(२) शुक्रमेह या स्वप्नदोप आदि वीर्य-विकारो पर—मूल के साथ श्वेत सेमर कद को पीसकर ६ मा० तक की मात्रा मे, दूध और शक्कर के साथ दिन में दो-बार ७ दिन पिलाते है।

(३) अश्मरी पर—मूल या इसके काण्ड को पीसकर गोदुग्ध के साथ नित्य प्रात ३ दिनो तक देने से दाहयुक्त पथरी विदीर्ण होकर निकल जाती है।

(४) विसर्प पर—मूल को दूध मे पीस कर पिलाते तथा लेप करते है।

(५) नेत्राभिष्यन्द तथा नेत्र-शोथ और अण्डकोष के शोथ पर—मूल को पीसकर लेप करते है।

(६) छोटे बालको के कास तथा तालु-सकोच पर—इसकी मूल को पत्थर पर घिसकर शहद से चटाने से लाभ होता है।

तालु-सकोच मे—इसके काण्ड या मूल के टुकडे कर पानी मे पकाकर, उस पानी से प्रात बच्चे को स्नान कराते, तथा तालु स्थान पर तिल-तैल लगाते है। इस प्रकार एक मास मे केवल ३ बार स्नान और तैल लगाने से लाभ हो जाता है। (व० गुणादर्श)

(७) बिच्छू के विष पर—मूल को पीस कर लेप करते तथा कुछ पीस-छान कर पिलाते भी है। भूतज्वर पर—मूल के टुकडे को कान पर बाधते है।

(८) कण्डू पर—इसके दूध को लगाते व मूल का क्वाथ पिलाते है, या इसके पत्तो के रस को ६ मा० की मात्रा मे, गोदुग्ध मे पिलाते है।

पत्र—

(९) गलशोथ एव गलग्रन्थि के दाह पर—पत्तो को पीसकर तैल मे मिला कर गले पर बाधते अथवा केवल पत्र-रस को ही लगाते है।

(१०) उदर-कृमि पर—पत्तो को उबाल कर या आग पर सेक कर, उदर पर बाध कर, ३ घटे बाद निकाल देते है। इस प्रकार २-३ बार करने से कृमि झड जाते है। (व० गु०)

(११) रक्तज एव पित्तज सिर के रोगो पर तथा प्रतिश्याय पर—पत्र-रस को सिर पर मर्दन करने से शिरोरोग मे लाभ होता है।

पत्तो को हथेली पर मसल कर सूघने से छीके आती हैं, और प्रतिश्याय मे शाति प्राप्त होती है।

(१२) नेत्रदाह पर—पत्र-रस को तालु-स्थान पर मर्दन करते तथा थाय के पत्र-रस मे वस्त्र भिगोकर नेत्रो पर रखते है। (व० गु०)

इसकी डोडियो से जो मुलायम कपास निकलती है, वह शीतगुण विशिष्ट है। उसे तकिया मे भर कर पित्त-ज्वरी के सिरहाने रखने से रोगी को शाति मिलती है।

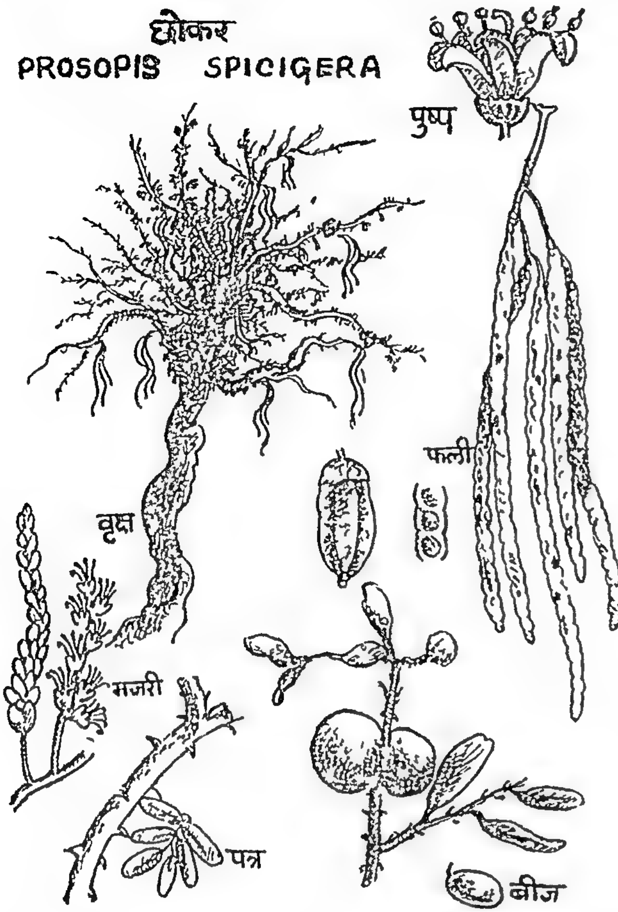
छिरेटा (छिलहिण्ट)—दे०—पाताल गरुडी। छुईमुई - दे०—लजालु। छुहारा (छोहारा)-दे०—खजूर।
छुहारी जवाईन—दे०—अजवायन किरमाणी। छेरहटा—दे०—पाताल गरुडी।

छोंकर (Prosopis Specigera)

वटादिवर्ग एव शिम्बी कुल (Leguminosae) के बब्बुलादि उपकुल (Mimosaceae) के ये वृक्ष मध्यमाकार के,कटकित, १५-३० फुट ऊचे होते है। शाखाये—पतली, झुकी हुई, धूसर वर्ण की, छाल—फटीसी, खुरदरी, बाहर से श्वेताभ, तथा भीतर से पीताभ धूसर, पत्र—बबूल के पत्र जैसे, किंतु छोटे, सयुक्त, एक-एक सीक पर १२ जोडे पत्रक, पुष्प—शीतकाल मे या ग्रीष्म मे, पीताभ श्वेत पुष्पो का घनहरा लगता है। फली—प्राय वर्षाकाल मे, ४-८ इञ्च लम्बी, आध इञ्च मोटी श्वेत वर्ण की, तथा इसमे धूसर वर्ण के बीज होते है। कच्ची फली को सागर, सागरी मारवाड मे कहते है, तथा इसका शाक बनाया जाता है। पकी फली को खोखा कहते है। यह मधुर होती है तथा बच्चे इसे खूब खाते है।

नोट—हवनीय द्रव्यों में इसकी लकडी ली जाती है। विजयादशमी को इसके वृक्ष की पूजा की जाती है। इसके क्षार को हरताल के साथ लगाने से केश झड जाते हैं - अत. इसी केश हन्त्री कहते हैं।

इसकी एक छोटी जाति होती है, जिसे शमीर या लघु-शमी कहते है। इसके वृक्ष राजस्थान, पजाब, सिंध, गुजरात आदि जागल प्रदेशो मे खूब होते है। पश्चिम



उत्तर-प्रदेश एव पजाव मे छोटीशमी (छोकर) ही विशेष होती है।

नाम–

सं-शमी (शामक गुण विशिष्ट होने से), तुंगा, केशहन्त्री, शिवाफला, मंगल्या इ । हि-छोकर, छिकुर, खेजड़ा, जाट, जड, सफेद कीकर, इ.। म.-शमी, सवंदड शवरी। गु.-खीजडो, समड़ी। व-शमी, शांई। अं-- स्पज ट्री (Spung tree) ले.-प्रासोपिस स्पेसिजेरा।

रासायनिक सघटन

इसकी फली मे पिच्छिल द्रव्य के अतिरिक्त केरोवीन (Carobin) केरोवोन (Carobone), केरोविक एसिड (Carobic acid) पाये जाते है। शाखाओ मे शर्करा सदृश एक पदार्थ, तथा वीज मे एक पीत रजक द्रव्य होता है।

प्रयोज्य अ ग—छाल, फली व पुष्प-पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग

गुरु (छोटी शमी लघु), रूक्ष, कषाय, मधुर, विपाक मे कटु एव शीतवीर्य, कफपित्त-शामक, रोचक, स्तभन या ग्राही (इसकी फली किंचित् उष्णवीर्य होने से रेचक होती है, किंतु यह भी प्रभाव से अतिसार-नाशक है) तथा भ्रम, मस्तिष्क-दौर्वल्य, अरुचि, अतिसार, प्रवाहिका (प्रवाहिका मे विशेष लाभ नही), अर्श, कृमि, रक्तपित्त, एव त्वचा के विकारो मे इसका प्रयोग होता है।

शमीर या छोटी शमी—कषाय, रूक्ष, शीत, लघु, रक्तपित्त, अतिसार, अर्श, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, श्वास और कफनाशक है।

फली–गुरु, पित्तजनक, तीक्ष्ण, रूक्ष, मेध्य बुद्धिवर्धक, केशनाशक है। कच्ची फली ग्राही होने से अतिसार रोगी को पथ्य है। इसका शाक अग्निदीपक एव रुचिकर होता है।

छाल–रूक्ष कषाय, कटु, चरपरी, शीतल, कृमिनाशक आमवात, अतिसार, वातनलिकाप्रदाह, श्वास, अर्श, मस्तिष्क-विकृति, मन्याकम्प आदि विकारो मे उपयोग होता है।

(१) विच्छू के दश पर–छाल को पीस कर लेप करते है।

(२) जगम-विष पर–छाल के साथ नीम की तथा वरगद (वट) की छाल पीस कर लेप करते है। सर्प-विष पर–अन्तर छाल का रस पिलाते है। वमन द्वारा विष निकल जाता है।

पत्र–ग्राही एव विवन्धकारी है।

(३) अतिसार पर—पत्तो के साथ इसकी अ तर-छाल और थोडी कालीमिर्च मिलाकर पीसकर १-१ मासे की गोलिया वना जल के साथ सेवन कराते है।

(४) मूत्रकच्छ्र या मूत्रावरोध पर—पत्रो को पीस कर लुगदी वना किंचित् गरम कर नाभि-स्थान पर वाधने से मूत्र प्रवृत्त हो जाता है। तथा रोगी को पत्र-रस मे जीरा-चूर्ण और मिश्री मिलाकर पिलाते है। ७ या १४ दिन मे गरमी के विकार दूर हो जाते है।

प्रमेह पर—इसके १ तोला कोमल पत्तो के साथ ३ मा जीरा मिला, महीन पीस कर १ पाव कच्चे ताजे गो-दुग्ध मे मिला छान कर उसमे गुडहल का जड आधा

तो. और मिश्री २ तोला मिला नित्य प्रात पिलाने से ७ या १४ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

गर्भवती के रज स्राव पर भी यह–प्रयोग लाभकारी है। (व गु)

(६) मूत्र के साथ वीर्यस्राव होता हो तो—इसके कोमल पत्तो का रस, गोघृत, जीरा, और शक्कर मिला कर देते है।

(७) दाह युक्त विसर्प पर–पत्तो को पीस कर, दही मिला कर लेप करने से शाति प्राप्त होती है। अग्नि-दग्ध स्थान पर भी इसके लेप से ठडक पड जाती है। पत्तो को आग पर डालने से जो धुआ उठता है वह नेत्र–विकारो पर लाभकारी माना जाता है।

नोट—मात्रा–फली का चूर्ण १-३ मासा तक। छाल का क्वाथ ५ १० तोला तक।

गर्भपात के भय निवारणार्थ –गर्भवती स्त्रिया इसके पुष्पो को शक्कर के साथ पीस कर शर्बत बना कर पीती है।

छोटा चिरायता (चिरेता) दे०–चिरायता छोटा।
छोटा मादा (वडा मादा) दे०–बादा
छोटी केरी (वडी केरी) दे०–दवी मे।
छोटा चाद दे०—सर्पगन्धा। छोला दे०–चना।
छोटी इलायची दे०–इलायची छोटी।
छोटी दधी दे०–दधी छोटी।

जङ्गली अंगूर (Vitis Indica)

द्राक्षा कुल (Vitaceae) की इसकी लता बागी अ गूर की लता जैसी ही तथा फल भी वैसे ही किंतु अत्यन्त खट्टे, और कोई कोई खटमीठे होते है।

यह भारत के दक्षिण के मलावार किनारे के तथा ट्रावनकोर के जगलो मे और हिमालय के निम्न प्रदेशो मे अधिक पाया जाता है।

नाम–

हि —जंगली अ ंगूर, पंजेरी। म –रानद्राक्ष, कोलेजन। अं–इ ंडियन वाईल्ड व्हाईन (Indian wild vine)। ले– व्हायटिस इ ंडिका।

गुणधर्म व प्रयोग–

शीतवीर्य, मूत्रल, धातु-परिवर्तक मृदुरेचक तथा रक्त एव व्रण शोधक है।

मृदुरेचनार्थ—इसकी जड को नारियल की गिरी के साथ, या केवल शक्कर के साथ पीस छान कर पिलाते है। धातुपुष्टि के लिए–मूल के क्वाथ मे रेचन कराते है। नेत्रविकारो पर–मूल के रस को तैल मे मिलाकर लगाते है। दूषित व्रणो पर–जड के रस को नारियल के दूध के साथ मिलाकर लगाते है।

जगली अ जीर दे०—गठगूलर।

जंगली अखरोट (*ALEURITES MOLLUCEANA*)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) का यह वडा वृक्ष, स्वरुप मे अखरोट के वृक्ष जैसा ही, पत्र–गोल वर्छी जैसे फल—अखरोट जैसे लम्वगोल, मोटे किंतु वहुत कडे होते है।

यह मलाया आर्चिपिलेगो देश का मूल निवासी, भारत के दक्षिण प्रान्तो के जगलो मे वहुत होता है। कर्नाटक मे ये वृक्ष लगाये भी जाते है।

इसका चित्र अखरोट मे देखे। टागतेल (A.



Fordii) नामक वृक्ष भी इसी की जाति का है। टाग-तेल का प्रकरण देखे।

नाम—

हि०-जंगली अखरोट, अपोला। म०-रान अक्रोट। वं०-अकोला। अ०-इंडियन वालनट (Inbian Walnut) फिलबर्टस (Filberts), क्याडल नट (Candle nut)। ले०-अल्यूराइटिस मोलुकाना, अल्यूट्रायलोवा (A (Triloba)।

रासायनिक संघटन—

फल की गिरी एव बीज मे—चर्वी, खनिज-द्रव्य, सेल्यूलोज (Cellulose), एक स्थिर तैल जिसमे ओलीन (Oleine), मिरिस्टिन (Myristin), पालमिटिन (Palmitin), स्टीरीन (Stearin) एव रेचक तत्त्वयुक्त चरपरा राल जैसा पदार्थ होता है। फल की राख मे—चूना, मेग्नेसिया, फास्फर आदि द्रव्य पाये जाते हे।

प्रयोज्याङ्ग—फल की गिरी, और तैल। तैल को काकमी या काकुने तैल कहते है।

गुणधर्म व प्रयोग—

गिरी मीठी, कसैली, शीतल, कामोद्दीपक, पौष्टिक, कफनि सारक, विवन्धकारक, क्षुधावर्धक, कफपित्तवर्धक, वातनाशक, तथा दाह, हृदय-रोग, यकृत-विकार मे उपयोगी है।

इसके तैल का गुण रेडी-तैल जैसा किंतु श्रेष्ठ है। इसमे दुर्गन्ध नही होती, सुस्वादु होता हे, तथा इसके विरेचन मे वमन की प्रवृत्ति नही होती, जी नही मिचलाता। विरेचनार्थ यह तैल २॥ से ५ तो० तक दिया जाता है।

अर्श पर—इसकी गिरी के कल्क को तिल-तैल मे मिला गुदा मे रखने से या गुदा मे लगाने से अर्श की पीडा दूर होती हे।

जङ्गलीअदरख (Zingiber Lassumunar)

हरीतक्यादि वर्ग एव हरिद्राकुल (Scitaminaceae) के इसके पौवे या क्षुप आमा हल्दा के क्षुप जैसे, पत्ते खूब लम्बे २॥ फुट तक, और ५-६ इञ्च चौडे, नोकदार होते ह। मूल या गठाने वागी अदरख या हल्दी की गठानो जैसी, जिसमे कपूर और जायफल के मिश्रण जैसी तीव्र गन्ध, स्वाद मे चरपरी, कुछ कडुवी, किन्तु सूखने पर स्वाद व गन्ध मे न्यूनता होता हे।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र होती है, तथा इसके उपयोग वागी अदरख जैसे ही होते ह। चित्र अदरख मे देखे।

नाम—

सं०-वन आर्द्रकम्, अरण्यार्द्रका। हि०-जगली अदरख, वन आदा। म०-रान आर्ले, मालावारी हलद, नसा। अं०-वाईल्ड जिंजर (Wild ginger)। ले०-जिजवर के सुमुनार, जि० परिपुरियम (Z Purpureum), जि० क्लिफारडाय (Z Cliffordii)।

रासायनिक संघटन—

इसकी गाठो मे, जगली हल्दी की अपेक्षा अधिक पिच्छिल द्रव्य एव शर्करा होती है। तथा एक उडनशील तैल, वसा मृदुराल, क्षार, स्टार्च, अल्व्युमिनाईडस आदि पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

दीपन, पाचन, क्षुधावर्धक, उत्तेजक, तथा अतिसार, शूलादि मे इसका विशेष उपयोग किया जाता है। अन्य गुणधर्म वागी अदरख जैसे ही है।

जीर्ण त्वग्विकारो मे इसे रीठा और गोमूत्र मे उवाल कर लेप करते और फिर स्नान करते हैं।

शरीर के किसी स्थान पर सज्ञाशून्यता होने पर इसे काली मिर्च के साथ पीस कर लेप करते है।

अतिसार पर—इसके साथ धनिया मिला क्वाथ वना कर सेवन कराते हे।

आध्मान पर—इसे आग मे भूनकर, नमक के साथ खिलाते है।

अपस्मार पर—इसके रस मे गुड मिलाकर नस्य देते है।

जगली अनारस–दे०–कन्टला । जगली अरण्डी–दे०–दती बडी मे । जगली आम–दे०–अम्बाडा (आमडा) जंगली आल–दे०–आल न० २ मे। जगली आलू–दे०– सूरण (जिमीकन्द) मे। जगली इन्द्रायण–दे०–इन्द्रायण छोटी। जगली उडद–दे०–वन उडद (मापपर्णी)।

जङ्गली उशवा (Smilax Macrophylla)

रसोनकुल (Liliaceae) की, एव चोबचीनी की जाति की तथा चोबचीनी की लता जैसी ही इस काटेदार आरोही लता के काण्ड–मजबूत, निम्न भाग मे कुछ मोटे से, पत्र–लम्ब गोल, अण्डाकार ६–१८ इञ्च तक लम्बे तथा उतने ही चौडे, मोटी सिराओ से युक्त, सूक्ष्म नोकदार, पत्रवृन्त १–१॥ इच लम्बे, पुष्प–छत्राकार गुच्छो मे, ग्रीष्म या वर्षाकाल मे, पुष्प की डण्डी–¾ इच लम्बी, फल–हेमन्त ऋतु मे, चना या मटर जैसे, किंतु गुच्छो मे. कच्ची दशा मे हरे पकने पर लाल, प्रत्येक फल मे १–३ वीज, मूल–अनेक उपमूल युक्त, रक्ताभवर्ण की होती है।

यह लता पहाडी प्रदेशो की आर्द्र–भूमि मे, कुमाऊ से आसाम तक, वगाल, ब्रह्मदेश तथा दक्षिण मे मध्य-प्रदेश, कोकण, मलावार, मद्रास और सीलोन, जावा आदि प्रदेशो मे विशेष पाई जाती है।

नोट—इस लता के विषय का सक्षिप्त नोट चोबचीनी के प्रकरण में देखें।

उशवा मगरबी जो दक्षिण एव मध्य अमेरिका का विदेशी द्रव्य है, उसके स्थान मे इस जगली उशवा का प्रयोग किया जाता है।

नाम—

हि०—जंगली (पहाडी) उशवा,जंगली चोबचीनी रामदातून इ०। म०–घोटवेल। गु०–गुटी । बं०–कुमारिका, सालसा। अं०–वाईल्ड सार्सापरेला (Wild Sarsa Parilla) ले०–स्माइलेक्स मेक्रोफीला, स्मा० ओवोलफोलिया (S.Ovalifolia), स्मा० झेलनिका (S-Zeylanica)

प्रयोज्य अग –मूल ।

गुण धर्म व प्रयोग-

इसके गुण धर्म चोबचीनी जैसे ही है। यह रक्त-शोधक, पौष्टिक, मूत्रल व स्वेदल है। यह अग्रेजी सार्सापरीला (उशवा मगरबी या सारिवा) केस्थान मे उपयोगी है।

फिरगोपदश की प्रथम व द्वितीयावस्था मे, तथा सुजाक के उपद्रवो मे, जीर्ण चर्मरोग, भगदर, नाडीव्रण, अस्थिप्रदाह, कठमाला एव अन्यान्य रक्तविकारो मे इसका चूर्ण, क्वाथ, शर्बत, माजून आदि दिया जाता हे।

मात्रा–चूर्ण–३-६ मा० यथायोग्य अनुकूल अनुपान के साथ, क्वाथ–५-१० तो०, शर्बत–२॥ तो०।

जगली कादा–दे०–जगली प्याज।

जंगली काली मिर्च (Toddalia Aculeata)

निम्बूक कुल (Rutaceae) के इसके सदैव हरे-भरे रहने वाले कटकित क्षुप से मजबूत आरोही, विस्तृत शाखाए निकली रहती है। काण्ड एव शाखाओ पर, नीचे की ओर झुके हुये काटे होते है। छाल–वादामी रग की, चिकनी एव हलकी, पत्र–लम्बे, अण्डाकार, प्राय १-३ पत्रको से युक्त, नोकदार, फूल–वसत ऋतु मे फीके हरे-

पीले रग के, फल—ग्रीष्मकाल मे, सम्भालोन, कमला-नीबू जैसे या बडी मटर जैसे, पाच गहरी सधियो एव कोषो वाले नारगी रग के, पकने पर साधारणत. काली मिर्च जैसे हो जाते है।

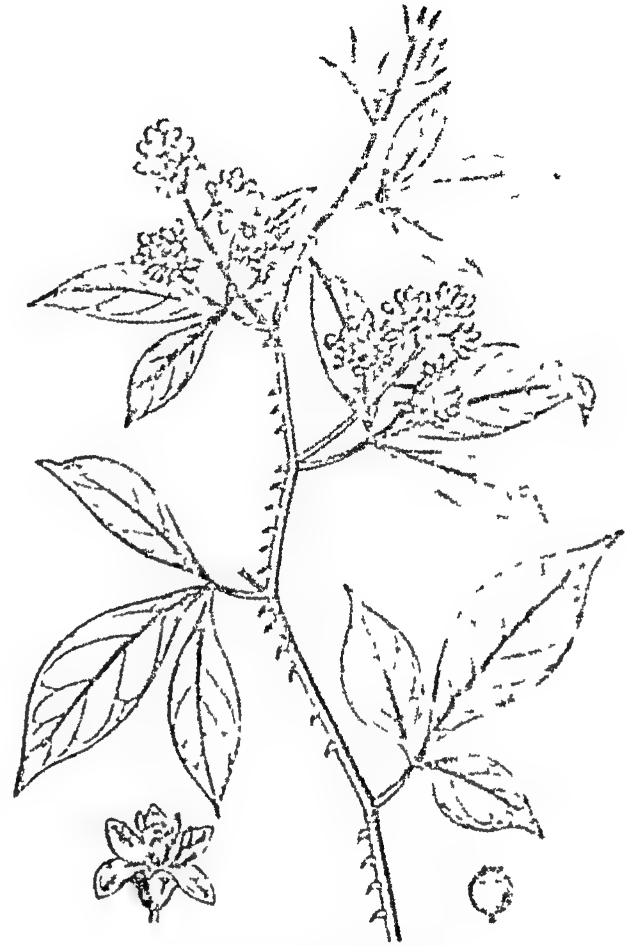
यह हिमालय के प्रदेशो मे ५ हजार फीट की ऊचाई पर, कुमाऊ, भूटान, खासिया पहाडी, तथा पश्चिम नीलगिरी एव दक्षिण भारत के कोकण, मद्रास, सीलोन आदि के झाडीदार जगलो मे विशेष पाया जाता है।

नाम—

स.—कंज, कांचन फल। हि.-जगली कालीमिर्च,कंज म.-लिमरी, मेंगर, रानमिरवेल। ब.-काचन, दाहन, कडातोडाली। ले.-टोडेलिया एक्युलियेटा, टो. एसियाटिका (T Asiat ca), टो. रुबिकालिस (T Rubicaulis) टो. नायटिडा T Nitida), स्कोपोलिया एक्युलोटा (Scopolia Aculeata)

रासायनिक सघटन—

दारुहल्दी मे पाया जाने वाला बरबेराइन (Berberine) नामक एक मुख्य प्रभावशाली कटु तत्व इसमें अल्प प्रमाण मे होता है, तथा राल, उडनशील तैल, नीबूकाम्ल (Citric acid) पेक्टीन (Pectin) स्टार्च आदि पाये जाते हैं। पत्रो का वाष्पीकरण यन्त्र द्वारा जो पीताभ हरित वर्ण का तैल निकलता है उसमे सायट्रान (Citron) जैसी तीक्ष्ण सुगन्ध होती है।



जगली काली मिर्च
TODDALIA ASIATICA LAM

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्णवीर्य, तिक्त, कटु, दीपन, उत्तेजक, वातनाशक स्वेदजनन, पार्यायिक (विषम) ज्वर-प्रतिबन्धक, सुगधित पौष्टिक है।

मूल की छाल और पत्र का फाट या टिंचर उत्तेजक, पौष्टिक, दीपन, वात एव आध्माननाशक, स्वेदल तथा ज्वरहर है। मलेरिया ज्वर मे यह कुनेन से भी बढिया कार्य करता है। अधिक मात्रा मे देने पर भी यह कुनेन जैसा कोई नुकसान नही करता।

इसके प्रयोग से जो पसीना आता है, उससे रोगी को थकावट या ग्लानि नहीं होती, प्रत्युत उत्तेजना प्राप्त होती है। इसके मूल का चूर्ण १॥ तो की मात्रा मे लेकर २५ या ३० तो उबलते हुए पानी में डालकर, ढाककर १० मिनट बाद छानकर, २॥ तोला से ५ तो की मात्रा मे दिन मे २-३ बार दिया जाता है।

सधिवात पर—इसके पत्तो के साथ इसकी मूल को पीस कर, तैल मे पकाकर मर्दन करते है।

आन्त्रपीडा पर—इसके ताजे कोमल पत्र चबाकर खाते हैं। या पत्तो की लुगदी मे शहद मिला कर सेवन करते है।

इसके कच्चे फलो का अचार बनाया जाता है। यह वातनाशक होता है।

जगली काहू दे०—काहू मे। जगली कासनी दे०—दुधल। जगली कुलथी दे०—चाकसू मे। जगली कु वार दे०—कण्टला। जगली केला दे०—केला मे। जगली खजूर दे०—खजूरी। जगली गाजर दे०—दुकू।

जङ्गली गूलर (Ficus Asperrima)

वट कुल (urticaceae) के ये वृक्ष कठगूलर वृक्ष जैसे; छाल–श्वेत, चिकनी; पत्र–समानान्तर पर ३-६ इंच लम्बे, गोल, किंतु कठगूलर के पत्तो की अपेक्षा सकरे व छोटे, लम्बे नोकदार, खररोमश, प्राय शाखा के अग्रभाग पर अधिक लगते है। पत्र-वृन्त–१½ इंच लम्बा, खुरदरा, फल–¾ इंच लम्बा व १-१¼ इंच व्यास का, कडे रोम युक्त, पकने पर हरिताभ पीला हो जाता है।

यह मध्यभारत, दक्षिण भारत, कोकण, दक्षिण गुजरात, ओरिसा, सीलोन आदि मे पाया जाता है।

नाम

सं-खरपत्री, मलयू। हि.--जंगलीगूलर, कालगूलर, कमलनौर। म.-च. वं.--खरवट, खोरेती। गु.-कालोउवरो, कलम्बर। ले.-फायकस एसपेरिमा।

रासायनिक संघटन–

इसमे विल्लोर जैसा स्वच्छ एव चमकीला एक तत्व होता है जो मद्य मे घुलता है, तथा अल्कलाईड, निरीन्द्रि-क्षार (Inorganic acid), श्वेत चूने के गुण वाला पदार्थ (Calcareous matter) राख आदि पाये जाते हैं (जलाने पर १८प्र. श राख मिलती है)

गुणधर्म व प्रयोग—

वातहर, रक्तशोधक, कीटाणुनाशक, शोथहर, व्रण शोधक है। एव उदर रोग, यकृतप्लीहावृद्धि, शूल, कष्टार्त्तव, गुल्म, वालको के डिब्बा रोग (पसली चलना) आदि मे उपयोगी है।

(१) यकृत एव प्लीहावृद्धि तथा कामला पर–इसकी मूल की छाल को गोमूत्र मे पीस छान कर, या छाल के महीन कल्क को गोमूत्र मे मिला और छानकर, नित्य प्रात ३ दिन पिलाते है। विकार दूर होकर उदर मुलायम एव हल्का होता है, शोथ भी दूर हो जाती है। इस प्रयोग से यदि विरेचन अधिक हो तो घृत व चावलो का भात अथवा इसी वृक्ष के फलो का चूर्ण, नारियल के पानी के साथ पिलाते है।

(२) वालको के डिब्बा आदि उदर-रोगो पर—इसकी छाल के साथ चित्रक मूल और अपामार्ग-मूल को गोमूत्र मे घिसकर, प्रात पिलावे। अधिक विरेचन हो तो दही-भात खिलावे।

यह डिब्बा रोग पुन न होने पावे, इसलिये महीने मे दो वार केवल इसकी छाल को ही गोमूत्र मे घिसकर देते रहे। (व० गु०)

(३) गुल्म-रोग पर—इसके शुष्क फल या छाल और नारियल का टोपर (ऊपर का कडा जटायुक्त भाग) इन दोनो को ६ मा० की मात्रा मे ५ तो० गोमूत्र मे घिसकर पिलावे। (व० गु०)

(४) रुद्धार्त्तव (स्त्री के मासिक धर्म की रुकावट) मे—इसके फलो का चूर्ण, नारियल के साथ, ३ या ७ दिन पिलाये। (व० गु०)

(किंतु शरीर मे पाण्डुता या रक्त की कमी हो, तो यह प्रयोग ठीक नही)।

(५) गर्दन पर दुष्ट व्रण हो, तो—इसकी छाल के रस (अथवा अष्टमाश क्वाथ) मे–वस्त्र की चौघडी पट्टी को भिगोकर रखते है, तथा वार-वार उक्त रस या क्वाथ को ऊपर से वूंद-वूंद टपकाते है। इस प्रकार ७ दिन तक पथ्यपूर्वक उपचार करने से लाभ होता है।

(६) दतशूल तथा दात हिलते हो तो—इसकी कोमल प्रशाखा से ३ दिन दातून करने से, शूल दूर होकर दात सुदृढ हो जाते है। इसकी छाल के चूर्ण का मजन करने से दात स्वच्छ होते व शूल दूर होता है।

पाददारी पर—हाथ-पैरो के फटने पर इसका रस लगाते है।

जगली गोभी—गोभी के प्रकरण मे पान गोभी देखे। इसके पत्र-रस की कुछ वूंदे कान मे टपकाते ही तत्काल सिर-दर्द (आधासीसी तथा सामान्य सिर की पीडा) वन्द हो जाती है।

—(प० भागीरथ स्वामी)

जंगली घुइयां (अरवी) (Colocasia Antiquorum)



सूरण कुल (Araceae) की इस घुइया के क्षुप, पत्रादि ग्राम्य घुइया के जैसे ही होते है। यह वर्षाकाल मे खूब पैदा होती है। यह भी श्वेत और काली भेद से दो प्रकार की होती है।



जंगली घुइयां
COLOCASIA ANTIQUORUM SCHOTT

नाम—

सं०-कच्छू। हि०-जंगली घुइया, काचू इ०। म०-रान आलू, सेरे अलू। बं०-कचू। ले०-कोलोकेसिया एटिकोरम।

गुण धर्म और प्रयोग—

अतिशीत वीर्य, रक्त-स्तम्भक, उत्तेजक, तृप्तिकर है। इसका रस त्वचा मे लगने से छाले व जलन पैदा होती है। काली ज० घुइया-रुचिकर, मुख-जाड्य-नाशक है। इसका रस मूत्र-विरेचक तथा अर्श पर हितकर है।

पशुओ के क्षत या व्रणो पर—मक्खी या कृमि के निवारणार्थ इसके कन्द को जल मे पीस कर लगाते है। यदि व्रण दूषित हो गया हो, तो कन्द को चारे मे मिला कर खिलाते है।

बिच्छू के दश पर—कन्द को पीसकर लगाते है।

जगली चिकोडा—दे०—कडवी परवल। जगलीचचेडा—दे०—चचेडा (जगली)। जगली चोपचीनी—दे०—जगली उगवा। जगली जमालगोट (जयपाल)—दे०— दन्ती।

जंगली जायफल (*MYRISTICA MALABARICA*)



जातीफल कुल Myristicaceae के जायफल की ही जाति का यह वृक्ष, जायफल के वृक्ष जैसा ही होता है। इसका फल जायफल की अपेक्षा मोटा और लम्बा होता है, किंतु इसमे सुगन्ध अत्यल्प तथा तैल भी थोडा होता है। इसे कोई-कोई रामफल कहते है। फल या बीज के ऊपर जो पीताभ-कृष्ण वर्ण का कोषावरण या छिलका होता है, तथा जो सूखने पर पृथक हो जाता है, उसे रामपत्री या बम्बई की जायपत्री कहते है। इस पत्री मे भी विशेष सुगन्ध या स्वाद नही होता।

ये वृक्ष कोकण, मलाबार तथा कनारा मे विशेष



जगली जायफल
MYRISTICA MALABARICA LAM

पाये जाते है। चित्र जायफल मे देखे।

नोट—कोंकण की ओर इसकी छाल को ही भ्रम से कायफल मानते हैं। कायफल के प्रकरण में नोट देखिये।

नाम—

सं०—कामुक, मालती। हि०, म०—जंगली जायफल, रामफल, रामपत्री। अं०-बाम्बेमेस या कन्ट्री या मलाबार नटमेग (Bobay mace or Coutry or Malabaro nutmeg)।

रासायनिक संघटन—

इसके बीज मे प्र० श० ४० तथा इसकी जायपत्री मे प्र० श० ६३ लाल रग की राल सदृश पदार्थ से युक्त वसा एव एक उडनशील तैल होता हे।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह वृहण, स्थानीय उत्तेजक, उष्णवीर्य है। इसके सब गुणधर्म प्राय जायफल जैसे ही है, किंतु कुछ कम प्रभावशाली हैं।

आमातिसार पर—इसे भूनकर, चूर्ण रूप से दिन मे २-३ बार देते हे।

निद्रानाश पर—इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाते है।

चिरस्थायी एव दूपित व्रणो पर—इसके तैल को तिल-तैल आदि अन्य तैलो के साथ मिलाकर, तथा पका कर लगाते हे।

जीर्ण गठिया वात पर—इसके उक्त तैल का लेप व मर्दन करते हे।

वात-पीडा पर—इसे पीसकर लेप करते है। इसकी रामपत्री का प्रयोग स्नायुमडल के उत्तेजनार्थ तथा वमन पर किया जाता हे। असली जायपत्री के स्थान पर इसका प्रयोग किया जाता है। यह सिर-दर्द पर भी उपयोगी है।

जगली जीरा–दे०–कालीजीरी। जगली तम्बाकू–दे० तम्बाकू मे। जगली तुलसी–दे०–तुलसी अर्जकी।
जगली तोरई–दे०–कडवी तोरई। जगली दाख–दे०– गोविल। जगली दालचीनी–दे०–दालचीनी मे।
जगली नील–दे०–नील मे। जगली पालक–दे०–पालक मे। जगली पिकवन–दे०–अनन्तमूल।

जंगली प्याज (Urginea Indica)

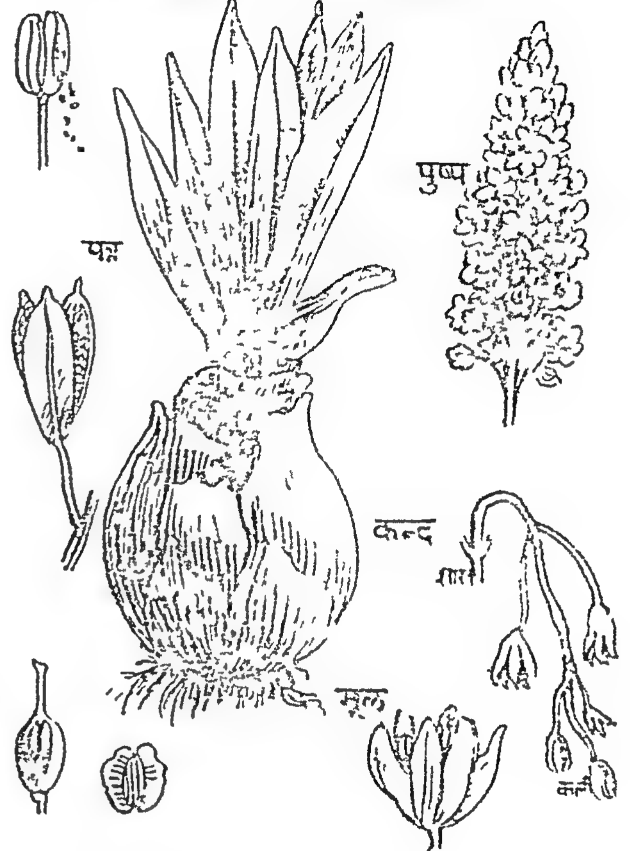
रसोन कुल (Litiaceae) के कन्दजातीय इसके वर्षायु क्षुप ग्राम्य या बागी प्याज के क्षुप सदृश ही होते है। जमीन मे जो इसका कन्द पड़ा रहता है। उसके मध्य भाग से वर्षाकाल मे प्रथम पुष्पदण्ड १ से ४ फुट तक ऊचा निकल कर, ग्रीष्म काल मे उसके अग्रभाग पर दूर दर हरिताभ श्वेत, लाल या भूरे रग के छत्राकार

पुष्प आते है। पश्चात् मूल स्थान मे ही इसके पत्र ६ से १८ इ च लम्बे, साधारण प्याज के पत्र से बडे, चौडे, चिपटे, रेखाकार एव नोकदार, एक इ च तक चौडे, गहरे हरे रग के आते है। पुष्प-वृन्त—१ से १॥ इ च होता है। बीजकोष या डोडी—वर्षाऋतु मे, ½ से ¾ इ च लम्बी, त्रिकोष्ठीय, अण्डाकार, दोनो ओर को क्रमश पतली, प्रत्येक कोष्ठ मे छोटे, गोल चिपटे, काले रग के ५ से १० तक बीज होते है।

कन्द—हलके रग का, २ से ४ इ च लम्बा, लट्वाकार, बल्ब जैसा, स्वाद मे अतिकडुवा होता है। ये भारतीय ज प्याज के कन्द विलायती प्याज (यह भूमध्य सागर के तटवर्तीप्रदेशो मे होता है) (urgineascilla) की अपेक्षा छोटा तथा बाहर से मटमैले रग का, भीतरी मासल छिलके मुडे हुए, चिपटे, विभिन्न आकार के ½ से २ इ च लम्बे, दोनो ओर को क्रमश पतले होते हुए, कभी कभी ३-४ एक साथ, काण्डक से चिपके हुए, हलके पीताभ बादामी या हलके पीले विभिन्न वर्ण के होते हैं। ये छिलके शुष्क अवस्था मे भगुर एव सहज ही मे चूर्ण बनाने लायक, किन्तु आर्द्र या गीले होने पर चिमडे एव लचीले होते है। इनमे कोई विशेष गन्ध नही होती, किंतु स्वाद मे अत्यन्त तिक्त होते है।

ये भारतीय ज प्याज के कन्द, उक्त विदेशीय वन पलाण्डु की उत्तम प्रतिनिधि औषधि हैं। औषधिकार्यार्थ प्रथम वर्ष के नीबू के इतने बडे कन्दो को लेना ठीक होता है। प्रथम वर्ष मे जैसे ही यह पुष्पित होता है वैसे ही उसी समय इसके कोमल कन्दो को निकाल कर तथा ऊपर के पतले छिलको को लेकर (तथामध्य भाग को दूर कर) टुकडे कर सुखाकर शुष्क स्थान मे, खूब अच्छी तरह डाट बन्द शीशियो मे रखना चाहिए। अन्यथा आर्द्र वायुमण्डल मे खुले रहने से ये टुकडे चिमडे हो जाते है, तथा चूर्ण की लुगदी बध जाती है।

इसके पौधे पश्चिमी हिमालय प्रदेश मे ७००० फुट की ऊ चाई तक तथा गढवाल, कुमायू, विहार, मध्य-भारत, छोटानागपुर, राजपूताना, गुजरात, काठियावाड, शिमला, सहारनपुर, पजाब, सीमाप्रात, बगाल एव



दक्षिण मे कोकण तथा कोरोमण्डल के बालुकामय समुद्री तटो पर, पश्चिमी घाट के किनारे किनारे रेतीली भूमि मे प्रचुरता से पाये जाते है।

नोट—उक्त प्याज की ही एक किस्म, जिसे हि०, व—सुफेदीखस; म.—भुईकांदा तथा ले—सिल्ला इ डिका (Scilla Indica) कहते हैं। कोंकण से दक्षिण की ओर समुद्र किनारे रेतीली भूमि मे पैदा होता है। इसे छोटा जं प्याज भी कहते हैं। इसके सदृश ही इसकी एक उपजाति सि होहेनचेरी (S Hohenacheri) पजाब मे मिलती है। इन दोनो के कंद श्वेताभ बादामी, परतदारबल्बजैसे, जायफल के इतने बडे, गोल अंडाकार बगल में कुछ दबे हुए से होते हैं। इनके मांसल छिलके बहुत चिकने तथा किनारे पर परस्पर ढके रहने के कारण एक ही मालूम देते हैं।

गुण की दृष्टि से उक्त सब ज प्याज एक समान है। बाजार मे इन सब का मिश्रण ही मिलता है।

नाम—

सं.—वनपलाण्डु, कोलकन्द (बड़े बेर जैसे कंद होने से)। हि.—जगली प्याज (कांदा), कंदरी, कांदरा, कोलीकांदा, पुटालु इ०। म०—रान कांदा, कोलकांदा। गु.—जं कांदो, पाणकंदो। बं.—कोलकादा जोंगली प्याज। अं—इंडियनस्क्विल (Indian Squill) ले.—अर्जिनियाइंडिका, अं.—मेरिटीमा A-maritima

रासायनिक सघटन—

इसमे एक निष्क्रिय और एक विपाक्त ऐसे दो प्रकार के ग्लुकोसाइड सिल्लिनिन (scillininc) नामक तथा दो तिक्त सत्त्व—सिल्लिपिक्रिन (scillipicrin) और सिल्लि-टाक्सिन (scillitoxin) पिच्छिलद्रव्य, शर्करा आदि पाये जाते है। जलाने पर जो इसकी प्र श. ५ राख होती है उसमे कैल्सियम आक्जलेट व साइट्रेट के स्फटिक होते हैं।)

प्रयोज्य अङ्ग—कन्द। एक वर्ष के अन्दर का ही कन्द औषधि कार्यार्थ लेना चाहिये। अधिक पुराना कन्द शक्तिहीन हो जाता है। कन्द के मध्यभाग को काटकर फेक देवे; शेष छिलको को काम मे लेवे। बाह्यप्रयोगार्थ पूरा कन्द उपयुक्त हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

तीक्ष्ण, लघु, कटु, तिक्त, विपाक मे कटु उष्णवीर्य, वातकफशामक, पित्तवर्धक, कफनि सारक, हृदयोत्तेजक, मूत्रविरेचक, स्वेदजनक, कृमिघ्न, शोथहर, क्षोभ, उत्क्लेश एव वमन कारक है।[1]

यह डिजिटेलिस (Digitalis) की अपेक्षा पाचन-संस्थान मे अधिक क्षोभकारक होने से हृल्लास, वमनकारी, रेचन है। किन्तु अल्प मात्रा मे इसकी क्रिया डिजिटेलिस की जैसी ही होती है, अर्थात् हृदय की गति कम होती एव हृदय का कार्य ठीक होने से हृदय को बल प्राप्त होता है। स्वेद-जनक, मूत्रविरेचक एव उत्तम कफघ्न व हृद्य होता है। अत्यधिक मात्रा मे अतिवमन, व विरेचन से मृत्युकारक है। साधारणत डिजिटेलिस (डिजि-टेलिस का प्रकरण आगे देखे) के स्थान मे यह दिया जाता है। किंतु विशेषत. फुफ्फुस के विकारो पर यह उपयोगी है। चिपचिपा कफ अतिमात्रा मे गिरता हो तब या श्वासनलिका के जीर्णशोथ पर यह अधिक व्यवहृत होता है। ऐसी अवस्था मे इसके साथ प्राय अर्कमूलत्वक् या एपिकाक मिला दिया जाता है। बालको के जीर्ण कफरोग मे यह अतिहितकारी है। बालको को इसका सिर्का या शर्वत (आगे विशिष्ट प्रयोग देखे) दिया जाता है। जीर्ण कफरोग मे यह हृदय की निर्बलता को दूर करते हुए, कफस्राव सत्वर कराता तथा आमाशय की पाचन-क्रिया को सुधारता है।

किन्तु ध्यान रहे कफ के नये आशुकारी रोगो पर तथा वमनार्थ भी इसका प्रयोग नही करना चाहिये। यदि पयोग करना ही हो तो इसके साथ डिजिटेलिस मिला (या वनपलाडुवटिका) (वि प्रयोग देखे) देना विशेप हितकर है।

ज्वरावस्था मे यदि कफप्रकोप हो तो इसके सिर्के का सेवन दिन मे २-३ वार लघुमात्रा मे कराते है।

ज्वर के चले जाने पर भी यदि कफसग्रह रह जाय तो इसके चूर्ण का सेवन पानी या शहद के साथ कराते है।

हृदय-शैथिल्य, चाहे किसी भी कारण से हो, इसको अल्प मात्रा मे देने से विशेप लाभ होता है। मूत्र-रेचन के लिये, मूत्रावरोध मे इसे ५ से १० रत्ती तक की मात्रा मे देते है। गठिया तथा चोट की सूजन पर—इसके कन्द को कूटकर पुल्टिस बनाकर बाधते है। श्वासावेग (श्वास का दौरा) के शमनार्थ इसके चूर्ण मे किंचित् अफीम व सेधा नमक मिला सेवन कराते है। आवश्यकतानुसार २—२ घटे से इसे देते है। पैर के तलुवो पर जो गोखुरू पाद-कटक (Corn) या कष्टदायक ठेठ पड जाती है, उकेस

---

[1] राजनिघन्टु तथा निघन्टु-रत्नाकर में कोलकन्द को 'वान्तिशमनकृत'लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि जंगली प्याज को कोलकन्द कहना ठीक नहीं। कोलकन्द वाराही या सूकरकन्द हो सकता है। अथवा—कोलनामक जंगली जाति के लोग हाथ से बुने हुए वस्त्रों पर ज प्याज की कांजी या माड़ी लगाते हैं, इसलिए इसे कोलकन्द कहते हों। किंतु यह हृल्लास व वमन कारक ही होता है, वमन शामक नहीं।

निवारणार्थ कन्द को कुचल कर तथा आग पर खूब गरम कर उस पर पैर रखकर जोर से दबावे। ऐसा २–४ बार करने से लाभ होता है। पैर के तलुवो की जलन दूर करने के लिये, ताजे कन्द को जलन-स्थान पर रगडते हैं। पादकटक पर यदि उक्त प्रयोग न किया जा सके तो इसके कद को पकाकर, पीसकर गरम-गरम बाध दिया करे। मस्सो (Warts) पर इसके चूर्ण को मलते हैं।

नोट—मात्रा-चूर्ण आधी से डेढ़ रत्ती। पानक या शर्बत ३०-६० वृन्द। सुरासव या टिंचर ५-३० वृन्द।

ध्यान रहे यह साधारण प्याज से अधिक वीर्यशाली है। विशेषत मूत्रजनन और कफनिसरण कार्य इससे अधिक होता है। तथापि यह उन समस्त विकारो मे गुणदायक है, जिनमे साधारण प्याज का उपयोग होता है। यह वैसे खाने के काम मे नही आता।

उष्ण-प्रकृति वालो को तथा अन्न-नलिका के क्षोभ की दशा मे, तीव्र वृक्क-रोग मे, तीव्र कास मे कफ के आशुकारी रोगो मे एव वमनार्थ भी इसका प्रयोग करना चाहिये। हानि-निवारणार्थ–मिश्री एव सिकजवीन दी जाती है।

विशिष्ट योग—

(१) सिर्का वनपलाडु—इसके १ भाग चूर्ण मे चौगुना सिर्का या १० भाग एसेटिक एसिड का घोल मिला कर ७ दिन बाद छानकर रख ले। मात्रा–५-१२ बून्द। एसिड एसिटिक १ भाग मे ४ भाग जल मिलाकर तथा ७ दिन बन्द रखकर छान लेने से यह घोल तैयार होता है। इस घोल मे १ भाग वनपलाण्डु का चूर्ण मिला देने से उत्तम सिर्का तैयार हो जाता है। यह कफघ्न है।

(२) शर्बत वनपलाडु—उक्त सिर्का वनपलाडु १७॥ भाग मे शक्कर ६५ भाग तथा पानी ७॥ भाग मिला १०० भाग पूरा कर शुद्ध लोह पात्र या एनेमल के पात्र मे, मदाग्नि पर शर्बत की चाशनी तैयार कर ले। या २॥ गुना शहद मिला ले। मात्रा–३० से ६० बून्द, या ½ से १ ड्राम तक, यह बालको के कफ-विकारो मे बहुत दिया जाता है। बच्चो के जीर्ण कास पर यह १०–१५ बूंद की मात्रा मे देते है।

(३) आसव या टिंचर वनपलाडु—इसके कन्द को शुष्क कर, जौकुट चूर्ण कर ८ तो० मे रेक्टिफाइड स्प्रिट ५० तो० मिला, ७–८ दिन तक या ३ दिन तक बन्द शीशी मे रक्खे। फिर फलालैन द्वारा खूब निचोडते हुए छानकर शीशियो मे भरकर रक्खे। मात्रा—१० से ३० बून्द तक बच्चो को ३ से १० बून्द। यह मूत्र साफ लाता है, कफप्रकोप एव मूत्रकृच्छ्र-निवारक है। कास, प्रतिश्याय, श्वास, जलोदर और क्षय पर भी लाभ-दायक है।

(४) अवलेह व० प०—कन्दचूर्ण, उपक-गोद (उपक का वर्णन व० वि० भा० १ मे देखे) २–२ तो० सेंधा नमक ४॥ तो० अर्क (आकडा) मूल-चूर्ण १॥ तो० और अफीम ७ मा० एकत्र खरल कर उसमे सबका ३ गुना शहद मिला रक्खे। मात्रा १ मा० उक्त सर्व विकारो पर दिया जाता है।

वटिका व० प०—कन्द पर गेहू का आटा लपेट कर, कण्डो की गरम भूभल मे रखे। पक जाने पर आटा उतार कर भीतरी नरम भाग निकाल ले, तथा उसके समभाग मटर का आटा मिलाकर पीस लें और थोडी मात्रा मे शराव मिला, गुलाब तैल के योग से टिकिया बना ले। दो मास वाद प्रयोग करे, किन्तु ४ मास के पश्चात् प्रयोग न करे। जलोदर, श्वास तथा विषो को नष्ट करता है। इसे 'कुरस असकील' कहते हैं—(यूनानी चि० सा०)

(५) डॉ० गुय की गोली या पिल्युसी डिजिटेलिस कम्पोजिटी (Pl Digit. Co)—इसमे कन्द का चूर्ण, डिजिटेलिस चूर्ण और पारद वटी कल्क इन तीनो को १–१ ग्रेन लेकर, गोली बनने लायक शर्वत मिला लेते हैं। यह १ गोली हुई। इस प्रकार गोलिया बना, मात्रा १ से २ गोली। यह हृदय-विकार-जन्य शोथ पर उत्तम कार्य करती है। मूत्रल है।

पारद-वटी-कल्क का योग इस प्रकार है—शुद्ध पारा १ भाग, गुलकन्द १॥ भाग तथा मुलैठी चूर्ण ½ भाग एकत्र खूब खरल कर रक्खे या गोली बनाले। मात्रा–४ से ८ ग्रेन (विशेषत विरेचनार्थ)। इस कल्क मे

किंचित् अफीम मिलाकर फिरग रोग पर देते है। यही कल्क उक्त गुय की गोलियो (Dr. Guy's-pills के प्रयोग मे लिया जाता है।

(गा० औ० र०)

(६) तैल वनपलाडु—इसके कद ५ तो० कुचल कर या इसका चूर्ण लेकर २० तो० तिल तैल के साथ, कलई-दार पात्र मे मदाग्नि पर पका, छान ले। वालको के सूखा रोग मे—सर्व शरीर (गर्दन से ऊपर का भाग छोडकर) पर इसकी मालिश प्रात सूर्योदय के पूर्व तथा शाम को सूर्यास्त के वाद करते रहने से लाभ होता है। यह तैल कर्ण-पीडा अण्डवृद्धि, गठिया तथा फोडा-फुन्सियो पर भी लाभकारी है।

एलोपैथी मे इसके कई प्रयोग है। विस्तार-भय से यहा नही दिये जा सकते।

जगली वलगर—दे०—छत्री मे।

जंगली[1] बादाम (*STERCULIA FOETIDA*)

मुचकुन्द कुल (Sterculiaceae) के इसके वडे वृक्ष ३०-४० फुट ऊचे, शाखा-प्रशाखायें चारो ओर गोलाकार फैली हुई, छाल—श्वेत वर्ण की पतली, कोमल; अन्दर की लकडी भूरे रग की, पत्र—शरद ऋतु मे, ७-८ पत्र सयुक्त शाखा के अग्रभाग पर, हस्तागुली जैसे, ६ इच लगभग लम्बे, २ इच चौडे, नोकदार, नूतन-पत्र मृदुरोमश, पत्र-वृन्त ३ इच लम्बे होते है। ये पत्र सेमल (शालमली) पत्र जैसे ही होते हैं। पुष्प—वसत मे—लाल, पीले या हलके वैंगनी रग के, वाह्य आवरण ५ भागो मे विभक्त, ½–¾ व्यास का, उभय लिंग विशिष्ट, पु केसर लाल वर्ण का, फल लम्वा, गोला कार, नोकदार, हेमन्त या शरद-ऋतु मे, पकने पर ये फल चमकीले लाल रग के एव दुर्गन्ध युक्त होते हैं। दुर्गन्ध तो फूलो मे भी होती है। फल—सूखने पर काष्ठवत् कडे हो जाते है। वीज—प्रत्येक फल मे १० या १५ काले रग के होते है।

ये वृक्ष भारत के दक्षिण के पश्चिमी घाट मे कोकण तथा मद्रास के समुद्र तट पर, तथा वगाल के कई स्थानो पर रास्ते के किनारे छाया के लिये उगाये हुए, और वर्मा, सीलोन एव मलाया द्वीप मे प्रचुरता से पाये जाते है।



जगली वादाम
STERCULIA FOTIDA LINN

नाम—

हिं०—जंगली वादाम। म०—गोल दारु, नगल-

---

[1] जगली वादाम यह नाम हिन्दी, मरेठी आदि भाषा का, वादाम पर्पटी (Canarium Commune) तथा वादाम देशी (Terminalia Catappa) को भी दिया गया है। आगे यथास्थान वादाम का प्रकरण देखें। चालमोगरा को भी दक्षिण में जंगली वादाम कहते हैं। प्रस्तुत प्रसंग का ज० वादाम इनसे भिन्न है।

औपधिकार्यार्थ इसे ताजी लेनी चाहिये वहुत दिनो की पुरानी वेकार होती है। एक तो यह वैसे ही ऊपर-ऊपर की खोदी हुई वाजारो मे मिलती है, फिर पसारियो के यहा वहुत दिन पडी रहने से भी वेकार हो जाती है। पहाडी लोग वर्फीली शीत के कारण इसे प्राय अच्छी तरह खोदकर नही निकालते।

गुण धर्म व प्रयोग :—

लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, तिक्त, कपाय, मधुर, कटु-विपाक, शीतवीर्य। प्रभाव—मानसदोपहर (भूतघ्न) है। यह त्रिदोपहर, विशेपत पित्तकफशामक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, शूल-प्रशमन, हृदयोत्तेजक, हृद्य, रक्तस्तम्भन, शोथहर, कफनिसारक, मूत्रल, वाजीकरण, आर्त्तवजनन, स्वेदल, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, वेदनास्थापन, वर्ण्य, सज्ञास्थापन, मेध्य है। तथा स्मृतिह्रास, शिर शूल, आमाशयशोथ, यकृच्छोथ, कामला, हृदय-शैथिल्य, रक्तपित्त, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, वस्तिशोथ, जीर्णप्रमेह, नपु सकता, रज कृच्छ्र, गर्भाशय-शोथ, विसर्पकुष्ठादि विभिन्न चर्म रोग और अपस्मार, अपतत्रक, मूर्च्छादि आक्षेपयुक्त व्याधियो (जिन मे भूतावेश जैसी चेष्टाए होती है) मे इसका विशेप उपयोग किया जाता है। इसका फाट २॥ से ५ तो० की मात्रा मे दिन मे ३ वार देते है। शोथ, व्रणशोथ, शूल, दाह, वर्ण-विकार आदि मे इसका लेप करते है। स्वेदाधिक्य पर अवचूर्णन करते हैं। हृदय-विकार (हृदय स्पदन, छाती मे वेचैनी आदि) मे इसे १ तो० लेकर ५ तो० उष्णजल मे ४–५ घण्टे भिगोकर, छानकर पिलाते है। इससे सर्वांगशोथ मे भी लाभ होता है

भूतावेश जैसी चेष्टाओ मे इसका ब्राह्मी-स्वरस, वच, और शहद के साथ सेवन कराते हैं।

हृदय की धडकन, कमजोरी तथा हृद्विकारजन्य उदर मे सचित दोप के निवारणार्थ इसे अन्य उपयुक्त सुगन्ध द्रव्य और नवसादर के साथ सेवन कराते है। इससे रक्त-वाहिनियो का सकोच होकर रक्तपित्त, विसर्प एव रक्तस्राव मे भी लाभ होता है।

विस्फोट एव व्रणो मे इसके लेप से जलन व पीड़ा की शाति होती है।

झाई–व्यङ्ग आदि त्वग्दोषो मे उवटन के रूप मे इस का व्यवहार करने से त्वचा की कान्ति वढती है।

शरीर के किसी भी भाग मे असह्य वेदना हो, तो इसके १ माशा चूर्ण को शहद के साथ दिन मे २-३ वार चटाते है।

दन्त–शूल मे—इसका मजन हितकारी है। मुख-दुर्गन्ध मे इसे चवाते हैं। वेहोशी मे इसे पीसकर नेत्रो पर लेप करते है।

दिल या हृदय की धड़कन के वढ जाने पर—इसे पानी मे पीसकर लेप करते हैं। यह लेप मस्तक तथा ललाट पर करने से सिर–दर्द मे लाभ होता है।

हृदय और कफ के विकारो पर इसका गाढा शर्वत या अवलेह वना कर चटाते है। कफ की वमन पर—इसे ६ रत्ती की मात्रा मे, पानी के साथ पीस छान कर पिलाते है। नाक से मल-स्राव अधिक होता हो, तो इस के चूर्ण का नस्य देते है। कफ या सर्दी के विकारो मे ६ तो. चूर्ण का १½ सेर जल मे अर्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर उसमे १ सेर तक मधु मिला, थोडा २ सेवन कराते है। पित्तज्वर मे इसके कल्क का लेप करते है। भूत, प्रेत पिशाचादि के उपद्रवो की शाति के लिये यह महेश्वरादि धूपो मे मिलाया जाता है।

फाण्ट-विधि—इसका प्रयोग फाण्ट या शीतनिर्यास रूप मे, क्वाथ की अपेक्षा ठीक होता है। क्वाथ करने से इसका प्रभावशाली तैलाश उड जाता है। वह विशेप लाभ-दायक नही रहता। अत —

इसके १ तो चूर्ण को ½ सेर तक खूब उवलते हुए जल मे डाल कर, ढाक कर भर रक्खें। प्रात जल छान कर, थोडा २ दिन मे ४-५ वार पिलावे। अपस्मार, योपापस्मार, उन्माद, चित्तभ्रम आदि मानसिक विकारो पर इसका सेवन लाभकारी है।

(१) योपापस्मार (हिस्टीरिया) पर—

इसका महीन चूर्ण १ से २ मा तक तथा श्वेत वच का महीन चूर्ण ४ रत्ती से १ मा तक मिश्रण कर शहद के साथ दिन मे ३ वार सेवन करा दे। इस प्रयोग से

मानसिक चचलता दूर होती है। स्त्री अशक्त हो एवं अति-श्रम व चिंता से यह रोग हुआ हो तो यह अधिक उपयोगी है।

यह प्रयोग वातजन्य उन्माद पर भी लाभदायक है। सर्वसाधारण अपस्मार पर इसके १० रत्ती चूर्ण मे कपूर १½ रत्ती, दालचीनी २½ रत्ती खूब खरलकर (यह १ मात्रा है) भोजन से पूर्व सेवन कराते रहने से लाभ होता हैं। वातिक गुल्म मे भी यह प्रयोग दिया जाता है।

सुश्रुत ने वातजन्य अपस्मार पर जो कुलत्थादि घृत का प्रयोग दिया है, उसमे जटामासी का योग विशेष महत्व का हे (देखिये सुश्रुत उत्तर तत्र अ ६१)

(२) वात विकारो पर—इसका चूर्ण ३मा० तथा दशमूल के (वेल, कुभेर, पाटल, अरनी, अरलू, सरिवन, पिठवन, दोनो कटेरी व गोखुरू) प्रत्येक मूल का चूर्ण ३–३ मा० एकत्र कर, आधसेर जल मे अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर, किंचित् शहद के साथ नित्य दो वार सेवन करते रहने से १५ दिन मे ही सर्व प्रकार के वात–विकार (आध्मान, शूल, उदर मे वात-सग्रह, शरीर के किसी भी स्थान मे फडकन, सिर दर्द आदि) मे लाभ होता हैं।

अथवा–इसके चूर्ण ४ भाग के साथ दालचीनी, शीतल चीनी, सोफ, व सोठ का चूर्ण १–१ भाग तथा मिश्री ८ भाग का एकत्र चूर्ण ३ से ६ मा० की मात्रा मे आध्मान, शूल एवं आक्षेपयुक्त व्याधियो मे देते हैं।

वच्चो के आध्मान, उदर–शूल, एव नाजुक प्रकृति की स्त्रियो मे मन्दशूल तथा कुपचन आदि पचन–सस्थान के विकारो मे इसके चूर्ण को नवसादर और सुगन्धित–द्रव्यों के मिश्रण के साथ देते है। इससे पित्त का स्राव ठीक होकर पाचन-कार्य मे सुधार होता है।

(३) स्त्रियो के मासिक-स्राव के विकारो पर–इसका चूर्ण तथा काले जीरे का चूर्ण १-१ मा० और काली-मिर्च चूर्ण ½ मा० एकत्र कर मिश्रण को दिन मे २ वार जल के साथ अथवा गोमूत्र के साथ सेवन करावे। १०-१५ दिन मे इसका गुण प्रकट होता है। इस चूर्ण को इसके फाण्ट के साथ भी देते है।

मासिक धर्म के समय रज स्राव होते समय पीड़ा होती हो, तथा स्त्रियो मे रजोनिवृत्ति के काल (४०-५०-वर्ष की अवस्था) मे जो कुछ विशिष्ट मानसिक एव शारीरिक अवसाद के लक्षण होते है। ऐसी अवस्था मे उक्त प्रयोग लाभ कारी है। अथवा केवल इसके फाण्ट या अर्क का सेवन करने से भी यथेष्ट लाभ होता हे।

(४) मानसिक उदासीनता (Melancholia) पर इसके ४ तो० चूर्ण के साथ, भुनी हीग २ तो० और लोहभस्म १ तो० मिला, जल के साथ अच्छी तरह खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ वना, १ से २ गोली, इसके फाण्ट या अर्क के साथ, या केवल जल के साथ, दिन मे २ वार, २–३ मास तक सेवन करने से लाभ होता हे। यदि रोगी को मलावरोध हो, तो आवश्यकतानुसार वादाम-तैल, रत्न ज्योति-तैल या अन्य सौम्य रेचन देकर, या वस्ति देकर, उदर-शुद्धि करते रहना चाहिये व मानसिक आघात से सम्हालना चाहिये। (गा०औ०र०)

(५) रक्त-विकारो पर—जौ कुट किया हुआ इसका चूर्ण २ तो० तथा मजीठ चूर्ण १ तो० दोनो से ४० तो० जल मे अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर दिन मे १ वार सेवन करे। १ मास मे कुष्ठ आदि रक्त-विकृतिजन्य रोग दूर हो जाते है। किन्तु-पथ्यापथ्य की सम्हाल अवश्य करनी चाहिये। अथवा—

इसके फाण्ट मे शहद मिलाकर प्रात. साय, या इसके चूर्ण को रात्रि मे भिगो कर प्रात, तथा प्रात जल मे भिगोकर शाम को, शहद मिला कर सेवन करते रहने से भी यथेष्ट लाभ होता है।

(६) अग्नि विसर्प या वातज विसर्प पर—इसके चूर्ण के साथ राल, लोध, मुलैठी, रेणुका (सभालू के बीज Piper Aurantiacum), मूर्वा, कमल, नीलोत्पल एव सिरस के फूल समभाग महीन चूर्ण कर, १०० वार धोये हुए घृत मे मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। (शा० स०)

अथवा उक्त प्रयोग के मूर्वा, कमल, नीलोत्पल और सिरस फूल के स्थान मे पित्त पापडा, मसूर, मूग, और शाली चावल लेकर सवका मिश्रित अथवा पृथक पृथक (चाहे जो) लेकर पीसकर उक्त प्रकार से घृत मे मिलाकर लेप करने से विसर्प नष्ट होता है। (ब० से०)

(७) बालो के झडने, पकने, रूक्ष होने आदि

पर इसके १ पाव (२० तोला) मोटे चूर्ण को १ सेर पानी मे रात के समय भिगो, प्रातं मन्द आच पर पकावे। चतुर्थांश पानी शेप रहने पर छानकर उसमे १ पाव तिल तेल मिला दे। फिर ५ तोला जटामासी का कल्क कर उसमे मिलाकर पुन पकावे। तेल मात्र शेप रहने पर छान कर रखे।

इस तेल को दिन मे २ वार लगाते रहने से बाल झडना रोग शीघ्र ही दूर होता है। जु ये भी नष्ट होते है इस तेल के प्रयोग से केश बढते, मुलायम रहते तथा काले व चमकीले होते हे।

शरीर पर लगाते रहने से सिध्म, स्याह दाग, झुरिया आदि दूर होकर शरीर का रग निखरता है। (बृ० द०)

अथवा—इसके चूर्ण को ४ गुना तिल-तेल मे ७ दिन तक भिगो रखे। पश्चात् पाताल यत्र से तेल निकाल ले। इसे लगाते रहने से भी वाल काले, लम्बे, तेजस्वी होते व उनका गिरना वन्द होता है।

आगे विशिष्ट योगो मे केश-विलास तेल देखे।

अथवा—मास्यादि लेप—इसके साथ खरेटी मूल, कमल, आमला और कूठ समभाग लेकर महीन चूर्णकर पानी के साथ इस मिश्रण का वालो पर लेप करते रहने से वालो का गिरना—वन्द होकर के स्निग्ध, लम्बे, घुंघुराले व काले होते हैं। (भा भै र)

पत्र-प्रयोग—

(८) श्वास पर—इसके पत्रो का महीन चूर्ण १।। से ३ माशा तक शहद से चटाते है। अथवा—इसके २ तोला पत्रो को पीसकर १५ तोले जल मे क्वाथ करे। २।। तोले शेप रहने पर छान कर पिलावे। इस प्रकार दिन मे २ या ३ वार देने से श्वास एव कफोल्वण सन्निपात मे विशेप लाभ होता है।

नोट—(१) मात्रा-चूर्ण आधे से २ या ३ माशे तक, फांट के लिये २ से ४ माशा या १ तोला तक।

छोटी मात्रा मे इसके सेवन से पाचन-क्रिया ठीक होती, क्षुधा वढती कोष्ठनद्धता नही होती, उद्गार शुद्धि होती शारीरिक उष्णता ठीक प्रमाण में रहती है—एव उचित स्वेद आता है। मूत्र की मात्रा वढती और नाड़ी यथास्थित सवल होती है। मन शात रहता व कार्य करने का उत्साह वढता है। वडी मात्रा लेने से वमन, पेट मे मरोड और रेचन होता व वृक्को में क्षोभ होता है।

हानि-निवारणार्थ—कतीरा, वशलोचन या गुल-रोगन का सेवन कराते है।

(२) शरावी को, वाव से या शस्त्र-क्रिया होने पर कभी कभी कम्प होने लग जाता है, तव इसका अर्क या टिंचर सेवन कराते है।

(३) अपस्मार, उन्माद, मस्तिष्क-विकार, स्मरण-शक्ति ह्रास, रक्तचाप की कमी, मानसिक परिश्रम या चिन्ता से मानसिक व्यथा या व्यग्रता आदि व्याधियों पर इसका प्रयोग अवश्य ही लाभकारी होता है। किन्तु इसका लाभ शीघ्र ही नही होता। कुछ काल के वाद होता है। अतः धैर्यपूर्वक अल्प मात्रा मे दीर्घकाल तक इसका सेवन करते रहना आवश्यक है। लाभ चिरस्थायी होता है।

(४) ब्रोमाइड के साथ मिश्रित जटमासी की वहुत सी पेटेन्ट औषधिया वाजार मे मिलती हैं, जो मूर्च्छा, दिल की धड़कन, अपस्मार आदि मे प्रयुक्त होती हैं। लाभ तो शीघ्र होता है, किंतु चिरस्थायी नहीं।

(५) जटामांसी से जो तैल निकाला जाता है, वह (Valerian Oil) पाचक, दीपक, अति उष्ण, अल्प मात्रा मे भी अन्तर्दाहकारक एव नाड़ी मण्डल पर शीघ्र प्रभावकारी है। किंतु अधिक मात्रा से यह नाडियों को मन्द कर देता है। मात्रा—आधे वून्द से २ वून्द तक।

(६) इसका सत (घन सत्व)—वातगुल्म, आक्षेप, हृदय की धडकन तथा कम्पवात मे विशेप लाभकारी है। मात्रा—आधी से एक रत्ती।

विशिष्ट योग—

(१) मास्यादि क्वाथ—

जटामासी १० भाग, दालचीनी, इलायची ८-८ भाग, कूठ या पोहकर मूल, लोग, कुलजन, श्वेतमिर्च नागरमोथा, सोठ ६—६ भाग, रोगनवलसा ५ भाग, केशर ४ भाग और चिरायता १० भाग इन सवका अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर मात्रा—२।। तो० से ४ तो० तक सेवन करने से अशक्ति एव वीर्य की कमजोरी दूर होती है। (नाडकर्णी)

क्वाथ न० २—चर्म-रोग पर—

जटामासी, लाल चदन, अमलतास, करज की छाल, नीमछाल, सरसो, मुलैठी, कुडाछाल और दारु हल्दी सम-भाग लेकर क्वाथ करे। यह कण्डू (खुजली) आदि

चर्म-रोगो को दूर करता है। (भा० भै० र०)

क्वाथ नं० ३—हिस्टीरिया योषापस्मार आदि पर—

जटामासी ८ तो०, असगन्ध २ तो० और अजवायन १ तो० सबको एकत्र जौकुट करें।

मात्रा—१।-१। तो० चूर्ण को १० तो० जल मे अर्धावशेष क्वाथ करे।

इसका सेवन हिस्टीरिया, आक्षेपक वात और बालको के नृत्य वात (Chorea) पर अकेले या बृहद् वातचिंतामणि या ब्राह्मीवटी या सर्पगंधादि वटी के साथ किया जाता है। (र० त० सार)

(२) मास्यादि चूर्ण—जटामांसी ४ भाग के साथ दालचीनी, कबाबचीनी, सौंफ, सोंठ १-१ भाग तथा शक्कर या मिश्री २ भाग लेकर सबका चूर्ण करे। मात्रा २ से ४ माशा तक, मेद रोग, वातशूल (भयङ्कर शूल) उदरशूल तथा आक्षेपक व्याधियो मे प्रयोजित है।

—नाडकर्णी

(३) शर्बत-जटामासी—जटामांसी १ सेर मे ८ सेर पानी मिला क्वाथ करें। १।। सेर तक जल शेष रहने पर छानकर उसमे शक्कर ३ सेर मिला शहद जैसी चाशनी बनाकर बोतलो मे भर रखे। मात्रा—१ बडा चम्मच। यह शर्बत श्वास, गलदाह, कंठशूल, शुष्क-कास, उर:पार्श्व-शूल आदि मे अधिक लाभदायक है। (स्वास्थ्य)

(४) आसव और टिंचर जटामासी—जटामासी २।। सेर जौकुट कर ४० सेर जल मे पकावें। आधा जल शेष रहने पर, छानकर, शुद्ध चिकने मटके मे भर, ठंडा हो जाने पर उसमे शहद ७ सेर मिश्री ४ सेर तथा वच और तज का चूर्ण १६-१६ तोला मिला, अच्छी तरह सधान कर १५ दिन सुरक्षित रखे। पश्चात् छानकर बोतलों मे भर रखे।

मात्रा—१ से ४ तोला तक। यह योषापस्मार को शीघ्र ही नष्ट करता है तथा प्रतिश्याय मे भी लाभ कारी है।

आसव या टिंचर नं० २—जटामासी के १ भाग चूर्ण को मद्य (४० से ६० प्रतिशत वाली) ५ भाग मे मिला काच या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर, अच्छी तरह सधान करे। ७ दिन बाद खूब निचोडते हुए छानकर शीशियो मे भर रखे।

मात्रा—आधे माशे से ६ माशे तक। उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक, क्षीण स्मृति आदि मस्तिष्क-विकारो मे लाभप्रद है। उक्त रोगो मे उपयुक्त ब्राह्मी आदि औषधियों के मद्यासवो (टिंचर) मे मिलाकर सेवन करने से इसकी और भी गुण-वृद्धि हो जाती है।

(५) तैल-केश-विलास—जटामासी १० तोला, फूलप्रियगु, कपूर कचरी २-२ तोला, तगर, अगर, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, इलायची, देवदारु और दोनो चन्दन प्रत्येक १-१ तोले लेकर सबको थोडे जल के साथ महीन पीस, कल्क बना ले। फिर उसमे तिल-तैल, आवले का अष्टावशेषित क्वाथ व गोदुग्ध २-२ सेर मिला कढाई मे मन्दाग्नि पर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी मे भर रखे। इसमे पकते समय यदि रतनजोत की जड ५ तोला चूर्ण कर मिला दे तो उत्तम लाल रग का हो जाता है। यह मस्तक-शूल, नेत्र-विकार को दूर करता है, तथा केशो की वृद्धि कर उन्हे काले, चिकने करता है।

जण्ड दे०—छोकर

जदवार (*DELPHINIUM DENUDATUM*)

वत्सनाभ कुल (Renunculaceae) के अनेक शाखायुक्त इसके वर्षायु या बहुवर्षायु क्षुप (ये क्षुप वर्षा के प्रारम्भ मे उगने तथा धीरे धीरे वसत के बाद सूखकर पुन वर्षा मे उगते हैं) खडे, कोमल, चिकने, ऊपर की ओर रोमश २-३ फुट ऊचे, नागरमोथा के क्षुप जैसे होते है। पत्र—धनिया के पत्र जैसे सख्या मे ५-६, पक्षाकार भागो मे विभक्त तथा मूलोद्भव पत्र या पत्रक का ऊपरी भाग हरित पीत वर्ण का पृष्ठ भाग पीताभ एव छोटे छोटे तिल जैसे चिन्हो से युक्त बहुत लम्बे चौडे होते है। पुष्प—वसतऋतु मे अल्प सख्या मे नीलाभ, रोमश, पुष्प बाह्य कोष के पत्र, तूलरोमश, लाल किनारीदार, बाहर से पीले, पखडी गहराई तक द्विविभक्त होती है। फल या

जदवार वछनाग से प्राय छोटा व पतला, स्वाद मे कडुवा व मधुर रंग मे- वाहर व भीतर से न्यूनाधिक भूरा या श्यामवर्ण का, गुण मे निर्विप तथा विपघ्न होता है। वछनाग को तोडकर जिह्वा पर रखने से जलन, सुन्नता या सनसनाहट सी पैदा होती है। इसके वाद जदवार घिसकर चाटने से उक्त वछनाग के दोप दूर हो जाते है।

जद्वार कुछ दिनो के लिये सग्रह कर रखना हो, तो उसे तैल मे या पारद के साथ रखते है। अन्यथा इसमे जन्तु लग जाते है।

नाम–

स.-निर्विपा, विषहा, विषभवा। हि.-जदवार, निर्विषी, पातली। म -गु -निर्विपी। ले -डेल्फिनियम–डेन्युडेटम।

रा सघटन—इसमे डेल्फिनिन (Delphinine) तथा स्टेफिसेग्रिन (Staphisagrine) नामक दो मुख्य क्षार–तत्त्व पाये जाते हैं।

प्रयोज्य अग—मूल या कन्द,

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, त्रिदोपशामक, दीपन, आमपाचक, पित्तसारक, अनुलोमन, लेखन, मूत्रल, विपघ्न, वेदनास्थापन, हृद्य, कफघ्न, उत्तेजक, कटुपौष्टिक, आर्त्तवजनन, नाडियो को वल्य, वातहर, ज्वरघ्न, शोथहर व रक्तशोधक है।

तथा–नाडीदौर्वल्य, पक्षाघात, अर्दित, आक्षेपक आदि वातव्याधि, अग्निमाद्य, आमदोप, कामला, उदर रोग, हृद्दौर्वल्य, उपदश, प्रतिश्याय, कास, श्वास, मूत्र-कृच्छ्र, अश्मरी आदि मे यह प्रयोजित है।

सर्पविप, वछनाग विप, डिजिटेलिस, मस्केरिन (Muscarine) आदि विपो का यह विशेष निवारक है।

शोथ, वर्णविकार, कुष्ठ व वेदना निवारणार्थ इसका लेप करते तथा उचित मात्रा मे सेवन भी करते हैं, दन्त-शूल मे–इसे चवाते है, तथा इसके चूर्ण का मजन करते है। जीर्णयकृत-वृद्धि–या जीर्ण कामला मे दीर्घकाल तक अल्प मात्रा मे सेवन करते है। नूतन या पुराने व्रणो पर–इसका चूर्ण वुरकते है। शीघ्र रोपण होता है। हृदय मे शीत के कारण शैथिल्य हो, तो प्रतिदिन इसे ६ से १२ रत्ती तक शर्वत-नीलोफर या गावजवा के अर्क के साथ सेवन करते है। शोथ पर–इसे जल या गौमूत्र मे घिस कर लेप करते, तथा शीत जन्य सूजन हो, तो काली मिर्च के साथ और गरमी की हो, तो धनिया के साथ घोट, पीस कर सेवन कराते है। सधिपीडा पर–इसे तेल मे पकाकर, उस तेल की मालिश करते है। पक्षाघात मे–इसे गावजवा के साथ देते है। यकृत्-विकृति जन्य जलोदर मे–इसे ४ रत्ती की मात्रा मे प्रतिदिन सिकंजवीन के साथ देते हे। वछनाग के विप पर–वमन कराने के वाद, इसे दूध मे घिस कर पिलाते है। सर्प विच्छू आदि के दशपर–इसे मद्य मे घिस कर लगाते तथा पिलाते भी है। वाह्य तथा आन्तरिक वेदना शमनार्थ—इसका लेप करते तथा ४ रत्ती की मात्रा मे, उपयुक्त औपधियो के साथ सेवन भी करते हे।

(१) वद, प्लेग, कठमाला आदि ग्रन्थि-रोग पर—तिल-तैल १६ तो और मोम १ तो दोनो को गरम कर छान ले, पश्चात् उसमे इसका चूर्ण १ तो तथा गधाविरोजा ४ तो का चूर्ण मिला मलहम वनाले। उक्त विकारो की ग्रन्थियो पर इस मलहम की पट्टी लगाने से रक्त विखर कर गाठ वैठ जाती है। यदि पकने पर हो तो शीघ्र पक कर फूट जाती है। फूटे हुए फोडे पर इसे लगाने से व्रण शीघ्र भर जाता है।

(२) वाल-रोगो पर—वच्चो को मृगी, धनुर्वात, आक्षेप आदि विकार हो, तो इसे दूध मे घिसकर थोडा-थोडा पिलाते है। गुदा मे चुन्ने लगते हो तो इसे पानी मे घिसकर, उसमे रुई को तर कर गुदद्वार मे रखने से कृमि मर जाते है, फिर पैदा नही होते। अर्श के मस्सो पर इसे लगाने से सूजन उतर जाती है।

वच्चा माता के पेट मे मर गया हो, तथा उसका जहर माता के शरीर मे फैल गया हो, अथवा वच्चा पैदा होने के समय, प्रसूता कमजोर हो गई हो, उसका खून अधिक गिर गया हो, तो ऐसी दशा मे इसे अल्प मात्रा मे गावजवा अर्क के साथ, या केवल दूध के साथ प्रात ७-८ दिन तक सेवन कराते है।

(३) मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी पर—इसके मोटे चूर्ण

को गोखुरू, मकोय, ककडी और खरबूजो के बीजो के मोटे चूर्ण के साथ, रात भर पानी मे भिगोकर प्रात मल-छान कर पिलाते है।

नोट—मात्रा-साधारण मात्रा ४ से ८ रत्ती तक; जलोदर आदि विशेष अवस्था मे ३ माशे तक तथा वाजीकरणार्थ २ मा० तक देते हैं।

अत्यधिक मात्रा मे देने से—सिरपीडा, आन्त्रव्रण आदि विकार होते हैं, तथा उष्ण प्रकृति वालो को यह हानिकारक है।

हानि-निवारणार्थ—धारोष्ण दूध, यवमण्ड, धनिया, कतीरा तथा सिकजवीन का सेवन कराते है।

विशिष्ट योग—

(१) निर्विष्यादि वटी—इसके चूर्ण के साथ समभाग जहरमोहरा खताई और चादी के वर्क मिलाकर गुलाव, केवडा तथा वेदमुश्क के अर्क मे एक दिन खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया वना ले। १ से २ गोली, दिन मे दो बार चन्दनादि अर्क के साथ सेवन करे। यह हृदय की धडकन, मस्तिष्क की उष्णता एव शारीरिक निर्वलता दूर करती व चक्कर आना, मुखमडल निस्तेज हो जाना, स्फूर्ति का अभाव, अग्निमाद्य, आदि विकारोको भी दूरकर शरीर को सवल वनाती हे। यह ओजवर्द्धक है। वृक्क एव मूत्राशय-शैथिल्य से मूत्र-शुद्धि न होती हो, रक्त मे विष-वृद्धि के कारण हृदय की धडकन मे वृद्धि व मस्तिष्क मे गरमी पैदा हो गई हो, तो यह विशेप उपकारक है।

विषमज्वर आदि रोग या अधिक मैथुन के कारण वीर्य मे उष्णता एव पतलापन आगया हो, तो ऐसी अवस्था मे वीर्य को शीतल तथा गाढा वनाने के लिये इसका उपयोग होता है। यदि मूत्र-सस्थान मे विकृति, सुजाक के लीन विप से हुई हो, तो इसे सारिवासव या चन्दनासव के साथ सेवन करावे। तम्बाकू के धूम्रपान आदि अति सेवन करने से उक्त विकार हो, तो इसे चन्दनादि अर्क के साथ देते हैं।

—(रसतन्त्रसार)

(२) वटी न० २—इसके चूर्ण के साथ, दरनज-अकरवी (Doronicum Pardalianches), दालचीनी और लौग ७-७ मा०, रूमी मस्तगी व जावित्री ३॥-३॥ मा० तथा कस्तूरी १ मा० सव का कपड-छान महीन चूर्ण कर शहद मे मिला १–१ रत्ती की गोलिया वनाले।

१ से २ तो० प्रात-साय देते रहने से श्वास, कास फुफ्फुस-कोपो का फूलना, हाफ चढना, जुकाम एवं हृदय की निर्वलता दूर होती व शरीर वढता हे।

—(गा० औ० र०)

(३) वटी नं० ३—इसका महीन चूर्ण ४ मा०, अम्बर ५ रत्ती और केशर २ मा० इन तीनो को एक साथ खरल कर, गुलाव जल मे घोटकर १ रत्ती से २॥ रत्ती तक की गोलिया वनाले। यह हृदय तथा मस्तिष्क-विकृति पर व वीर्यस्राव तथा कामेन्द्रिय की अशक्ति पर दी जाती है।

(४) जद्वार क्वाथ—इसका मोटा चूर्ण २० मा० (१ तो० ८ मा०), गावजवा ८ मा० इन दोनो का साधारण क्वाथ-विधि से क्वाथ कर नाडी-दौर्वल्य, वातमण्डल के विकार, पक्षाघात, साधारण ज्वर तथा जीर्ण यकृत के विकारो पर सेवन कराते हैं। क्वाथ की सेवनीय मात्रा—८ मा० से १ तो० तक।

—नाडकर्णी

जमरासी (*ELAEODENDRON GLAUCUM*)

ज्योतिष्मति–मालकगनी–कुल (Celastraceae) के इसके मध्यम ऊचाई के वृक्ष, रक्ताभ शाखायुक्त, तथा पत्र—आमने-सामने २-६ इच लम्बे कुछ गोल, आयताकार या लट्वाकार, लम्वी नोक वाले (हरड़ के पत्र जैसे) किंतु सरल या गोल दातो से युक्त धार वाले, चमडे जैसे चीवट, पुष्प—पीले, छोटे-छोटे झुमको मे, फल—वेर जैसे, पीतवर्ण के, और मूल—मोटी छाल वाली, स्वाद मे कसैली कडुवी होती है।

ये वृक्ष हिमालय की तलैटी के प्रदेशो मे, ६ हजार फीट की ऊंचाई तक विशेष पाये जाते है। काल्सी, सहारनपुर, बुंदेलखण्ड, विहार, मध्यप्रदेश, कोकण, पश्चिमी घाट, कर्णाटक आदि भारत के उष्ण प्रदेशो मे प्राय. सर्वत्र जगलो मे पाये जाते हैं।

नाम—

सं०—भूतांकुश। हि०—जमराशी, भूतराशी, कालामूका, वाकरा, मिरांड्ग, घेवरी, पतियाल, जमोग्रा इ०। म०—भूतकाराशी, भूतकसा, अरन, ताम्र ज, बुरकस इ०। ले०—एलियो डेन्ड्रान ग्लोकम; ए० राक्सवर्घी (E Roxburghii); ए० पेनिकुलेटम (E. Paniculatum)।

रासायनिक संघटन—

इसकी छाल मे एक क्षारतत्त्व तथा राल जैसा पदार्थ २ प्रतिशत, टेनिन ८ प्रतिशत, ग्लूकोज ५ प्रतिशत और जलाने पर जो राख १८ प्रतिशत होती है उसमे क्यालसीयम कार्वोनेट व क्यालसियम ग्राक्सलेट पाये जाते है।

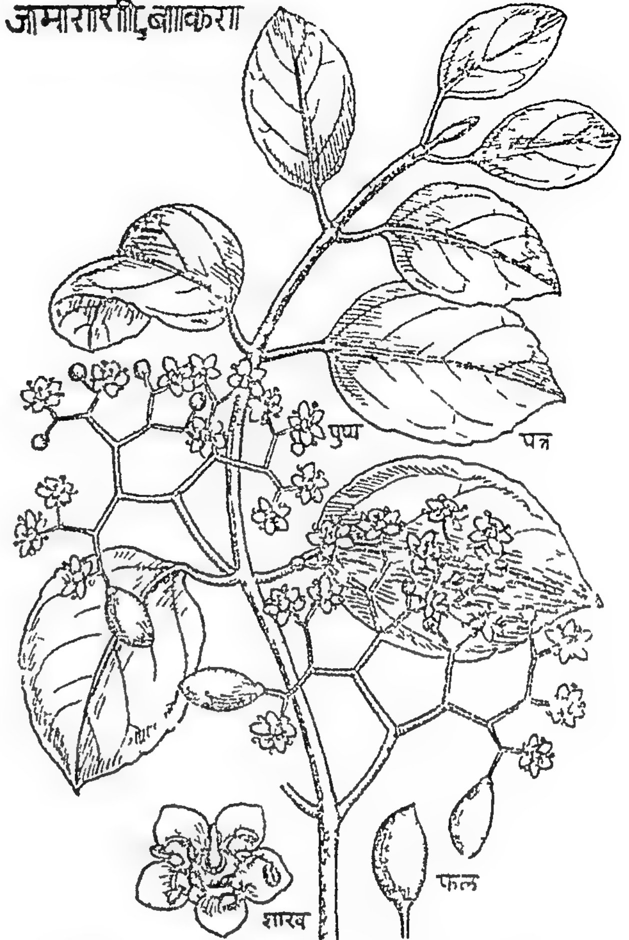
प्रयोज्य अग—पत्र, छाल और मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

कसैली तिक्त, उष्ण-वीर्य, तीव्र-गन्धी, कफवातनाशक, दीपन, सकोचक तथा भूतबाधा, ग्रहपीड़ा, श्वेत-कुष्ठ, कृमि आदि नाशक है।

पत्ते—तीव्र छींक लाने वाले एव नजला बहा देने वाले होते हैं। पत्तो को कुचल कर सुंघाने से छींके आकर प्रतिश्याय मे लाभ होता व सिर-पीडा दूर होती है।

स्त्रियो के वातगुल्म एव हिस्टीरिया जन्य मूर्च्छा को दूर करने के लिये पत्तो की धूनी या धूप दी जाती है। भूतबाधा, ग्रहपीडा कृमि का निवारण होता है।



ELAEODENDRON GLAUCUM PERS

छाल—तीव्र विषैली होती है।

प्राय सर्व प्रकार की सूजन पर—छाल को पानी मे उबाल, पीस कर गरम-गरम लेप करते है। निमोनिया मे इसका लेप छाती पर करते है।

मूल—सर्प-विष-निवारक मानी जाती है। इसे पानी मे पीस-छान कर पिलाने से वमन द्वारा विष निकल जाता है। अधिक मात्रा मे यह मृत्युकारक है।

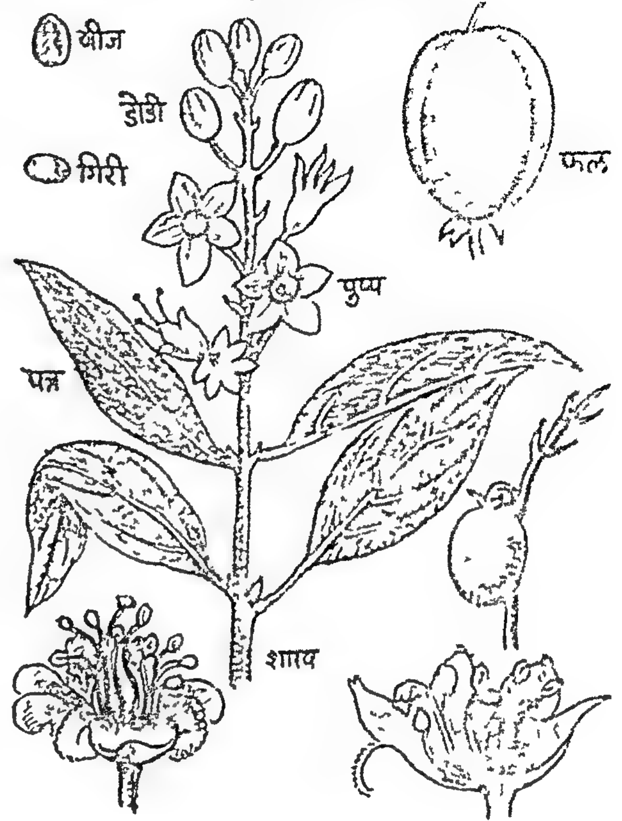
जमालगोटा (Croton Tiglium)

गुडूच्यादि वर्ग एव एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इसके सदैव हरित छोटे वृक्ष होते है। शाखाएं-रोमश छोटी-छोटी, छाल—मटमैली, पत्र—२-४ इंच लम्वे, कुछ गोल, पतले, अनीदार, चिकने, कुछ दन्तुर, ३-५ सिराओ से युक्त, सूखने पर पीताभ, पुष्प—ग्रीष्म काल मे हरित पीताभ, रोमश, मंजरी रूप मे, एक लिंगी, फल या वीज कोप—शीतकाल मे लगभग १ इंच तक लम्वे, श्वेताभ, गोलाकार, त्रिकोणयुक्त; वीज—लगभग ½ इंच

लम्बा ⅓ इंच चौडा, कुछ गोल, एरण्ड बीज जैसा, कृष्णाभ भूरे रग का होता है। इसे ही जमालगोटा या जयपाल कहते है [1]। बीज के भीतर पीताभ श्वेत मगज होता है, जिसके दो दल होते हैं। दोनो दलो के मध्य मे इसका बीजांकुर महीन पत्ती सा होता है, इसे पित्ता भी कहते है। बीज के मगज से प्र श ५० से ६० तक पीताभ या रक्ताभ भूरा, गाढा तेल निकाला जाता है, जो स्वाद मे तीक्ष्ण एव दाहकारक होता है।

पाश्चात्य वैद्यक मे उक्त तैल का ही अत्यधिक उपयोग किया जाता है। लेटिन मे बीजों को Crotonis-semen तथा अंग्रेजी मे Croton Seeds, तैल को Oleum Crotonis (Croton oil) कहते हैं।

लेख के शीर्ष स्थान मे दिया हुआ लेटिन नाम उसके वृक्ष का है। क्रोटन (Croton) शब्द यूनानी या ग्रीक शब्द से उत्पन्न है, जिसका अर्थ होता है Tick or bug (एक क्षुद्र कीट विशेष या खटमल)। वृक्ष का विशिष्ट नाम Tiglium) टिग्लियम भी यूनानी शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ होता है पतले दस्त लाने वाला (To have a thin stool)। इस पौधे के प्राय सभी अग पतले दस्त लाने वाले (विरेचन) हैं। बीज मे उस गुण की अत्यधिकता है।



आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा-पद्धति मे उक्त इसके तैल की अपेक्षा बीजो का और मूल का प्रयोग होता है, एव तद्घटित अनेक विशिष्ट योग प्रसिद्ध हैं। पाश्चात्य पद्धति मे भी पहले बीजो का ही प्रयोग होता था, किन्तु सम्प्रति केवल तैल का ही व्यवहार होता है।

ये वृक्ष चीन, तथा भारत मे भी प्राय सर्वत्र, किंतु पूर्व बगाल, आसाम, सीलोन तथा भारतीय द्वीप समूहो मे अधिक पाये जाते है।

नोट—(१) यहां प्रचलित जमालगोटा, जयपाल (दन्ती विशेष) का वर्णन दिया जा रहा है। प्राचीन जयपाल का वर्णन 'दन्ती' में यथास्थान देखिये।

(२) इसकी ही एक अन्य जाति नागदन्ती (C Oblongifolius) का वर्णन घनसर के प्रकरण में देखें।

(३) जगली जमाल-गोटा दन्ती के प्रकरण में देखें।

---

[1] आयुर्वेदीय बडी दन्ती (द्रवन्ती) C Polyandrum का ही एक भेद मात्र है। चरक सुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थों मे इसी छोटी व बडी दन्ती का उल्लेख है। राजनिघण्टु आदि अर्वाचीन ग्रन्थों में इस प्रस्तुत प्रसंग के जमालगोटा या जयपाल का विवरण मिलता है। काल के प्रभाव से हमारे ग्रन्थ नष्ट भ्रष्ट हो गये है। सम्भव है, किसी प्राचीन ग्रन्थ में भी इसका उल्लेख हो। 'दद' नाम से ईरानियों को इसका ज्ञान अति प्राचीन काल से था और कहा जाता है कि इन्हें इसका ज्ञान चीनियों से हुआ, क्योंकि इसका एक फारसी पर्याय 'दद चीनी' है। जयपाल का अरबी नाम 'दंदुस्सीनी' फारसी 'ददचीनी' का रूपान्तर मात्र है। इब्नसीना नामक प्रसिद्ध अरबी हकीम ने अपने ग्रंथ मे इस दंदुस्सीनी के साथ ही साथ आयुर्वेदीय प्रसिद्ध प्राचीन 'दती' (दद हिन्दी) का भी उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन ग्रन्थों मे जो दती कही गई है, उसी का यह एक भेद मात्र है-जमालगोटा या जयपाल ये आधुनिक प्रचलित नाम देश भेद से इसके पड़ गये हैं।

(४) जमालगोटे के बीज प्रायः रेंडी बीज जैसे ही होते हैं। दोनों में अन्तर यही है कि इसकी अपेक्षा रेंडी अधिक चिकनी व चमकदार होती है, तथा अनेक श्वेत धारियां होती हैं। रेंडी तैल की अपेक्षा इसका तैल चिपचिपा तथा पीलापन या लाली लिए गाढ़े भूरे रंग का, अरुचिकारक गन्धयुक्त एवं तीक्ष्ण व दाहकारक होता है।

नाम—

सं०—जयपाल, दन्तिबीज, इ.। हि.-जमालगोटा,जयपाल जपोलोटा, इ.। म.-जेपाल। गु.-नेपाली। बं.-जयपाल। अं.—परगेटिव क्राटन (Purgative croton) ले.—क्राटन टिगलीयम।

रासायनिक संघटन—

बीजो मे उक्त स्थिर तैल के अतिरिक्त टिग्लिनिक एसिड (Tiglinic acid) क्रोटनिक या क्वार्टेनिलिक एसिड (Crotonic or Quartenylic acid) होते हैं। उक्त तैल मे क्रोटन-ओलिक एसिड (Crotonoleic acid) जो इसका मुख्य कार्यकारी तत्त्व है। तथा—टिग्लिक या मेथिल क्रोटनिक अम्ल (Tiglic or Methyl crotonic acid), क्रोटनाल (Crotonol) जो रेचन नही किन्तु त्वचा के लिए विदाहकारक है। एव कुछ उडनशील तैल, जिनके कारण इसकी उग्र-गन्ध होती है, तथा अनेक वसाम्ल होते है।

प्रयोज्य अग—बीज तथा बीज-तैल

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, कटु, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य कफवातहर, दीपन, विरेचन, (इससे आमाशय मे क्षोभ, आन्त्रकला मे मरोड, एव शोथ युक्त अधिक पानी जैसे दस्त होते है), वामक, लेखन, विदाही, स्फोट-जनन है। तथा अग्निमाद्य, सर्वांगशोथ, जीर्ण विबन्ध, जलोदर, ज्वर, उदर-रोग, कृमि, एव मस्तिष्कगत रक्तस्राव, सन्यास आदि मे रेचनार्थ इसका प्रयोग किया जाता हैं।

बीज—बीजो मे पत्र, छाल, मूल आदि की अपेक्षा अत्यधिक जोरदार विरेचन गुण हे। तथा अधिक मात्रा मे यह तीव्र विष है। आयुर्वेद मे इसकी गणना उपविषो मे की गई है[1]। किंतु है यह एक प्रकार का उग्रविष, क्योकि इसके अधिक उपयोग से या बिना शुद्ध किये उपयोग से वेदना के साथ ही गले व पाकस्थली मे ज्वाला सी प्रतीत होती है, तथा भयानक मलभेद एवं कमजोरी, व शीताङ्ग होकर मृत्यु भी हो सकती हे। इसी दृष्टि से बृहत् रसराज सुन्दर मे लिखा है—"न विष विषमित्याहु जयपालो विषमुच्यते। शोधितश्च विरेकेषु चमत्कृति कर पर ॥"

शुद्ध हो जाने पर सावधानी से, विशिष्ट योगो के साथ प्रयोग करने से यह चमत्कारिक अपूर्व लाभ करता है। अत इसकी शुद्धि परमावश्यक है।

शोधन-विधि—(१) बीजो को कपडे की पोटली मे बाध, एक घडे मे गौ का गोबर व पानी का मिश्रण भर कर उसमे दोलायत्र की विधि से पोटली को लटका कर ३-४ घटे पकावे (स्वेदित करे)। फिर पानी से साफ कर बीजो का ऊपरी छिलका दूर करदे व भीतर की दोनो दालो के बीच की पित्ती या जीभी को भी दूर करदे और शेष भाग को गरम पानी से धोकर, नीबू-रस मे घोट कर, मिट्टी के कोरे तवे पर बिछा कर या ब्लाटिंग पेपर पर फैलाकर (जिसमे तैल का दूषित अश शोषित हो जाय) सुखा ले और काम मे लावे।

(२) बीजो को १-२ घण्टे जल मे भिगो, छिलके दूर कर, उक्त प्रकार से, दोलायत्र से, बीजो की गिरी से १६ गुना गोदूध या गोबर के रस मे ४ घटे स्वेदित कर पोटली को निकाल जीभी दूर कर उक्त प्रकार से चूर्ण करले।

(३) बीजो को जल मे भिगो, छिलका निकाल, बीच की जीभी को निकाल डाले। फिर अष्टमाश (बीजो की गिरी ८ तोला हो तो १ तोला) सुहागे का चूर्ण मिला, दूध मे उक्त-प्रकार से स्वेदित कर शुद्ध करले।

---

[1] उपविष-स्नुह्यर्क लांगली गु जा हयारि विषमुष्टिका जेपालोन्मत्त आफूक नवोपविष जातयः॥ (अ. तन्त्र) थूहर, आक, कलिहारी, गु जा, कनर, कुचला; जयपाल, जमालगोटा, धतूरा और अफीम ये ९ उपविष हैं। रस-तरंगिणी मे उक्त ९ उपविषों के साथ ही विजया-भांग तथा भल्लातक-भिलावा को भी उपविष मानकर सख्या ११ की गई है।



नोट—ध्यान रहे, छिलके निकालने में या छिदल के बीच से जीभी निकालते समय हाथों पर तेल लग जाता है। यह दाहक तेल वाला हाथ आँखों के या शरीर के किसी भी भाग पर नहीं लगने पावे। यदि भूल से लग जाय तो तुरन्त ही घृत या तिल तेल उस भाग पर लगा देवें। कार्य हो जाने पर मिट्टी या साबुन से हाथों को धो डालना चाहिए। जिस दूध में इसकी शुद्धि करें—उस दूध को जमीन में गढ़ा खोद मिट्टी से दाब दें। जिससे उसे कोई पी न सके।

शोथ-वेदना युक्त विकारो मे, चर्म रोगो या गज (खालित्य) मे बीजो का लेप करते है। तिला के रूप मे यह ध्वजभग होने पर शिश्न पर लगाया जाता है। हिक्का मे बीज के मगज को हुक्के मे भर कर धूम्रपान कराते है। बिच्छू के विष पर बीज को पानी मे घिसकर लेप करते है।

(१) कोष्ठबद्धता, साधारण शोथ तथा कामला रोग पर—शुद्ध बीज-चूर्ण आधी रत्ती से १ रत्ती तक, त्रिकटु चूर्ण १ माशा, शुद्ध सुहागा १ रत्ती और १ तोला धान के लावा का मिश्रण प्रात पानी के साथ देते हैं) अथवा—इसके बीजो को फोडकर मीगी निकाल उसके दो दल करे। ऐसे २६ दल, थोडे गरम पानी मे रात को भिगो प्रातः हाथो से मलकर, अन्दर की जीभी हटा कर फेक दे, व दाल धोकर स्वच्छ चीनी मिट्टी के खरल मे खूब महीन कर, उसमे सोठ का महीन चूर्ण २ तोला मिला, जल के साथ ६ घटे घोटकर २-२ रत्ती की गोलिया बना लें और छाया मे सुखा लें।

१ या २ गोली रात मे जल के साथ लेने से प्रात बगैर कष्ट के दस्त साफ होता है। किन्तु इसके लेने के पूर्व मू ग की खिचडी घृत मिली देने से पेट स्निग्ध हो उत्तम लाभ होता है। रेचन के बाद पथ्य मे दहीभात लेवे। (आ० सार सग्रह)

(२) श्वास पर—श्वास का दौरा होने पर बीज को एक सलाई से कोचकर दीपशिखा पर जलाते तथा उसका धूम्र नाक से सु घाते हैं। तथा इसके जले हुए मगज का चौथाई भाग पान मे रखकर खिलाते हैं।

(३) अर्ध शीशी आदि शिरोरोग पर—बीज को पत्थर पर जल के साथ घिस कर, सलाई से कपाल पर भ्रू भाग के ऊपर पीड़ा-स्थान पर एक सीधी लकीर खींच देते है। ५-७ मिनट मे पीड़ा दूर हो जाने पर उसे धीरे से कपड़े मे पोंछकर घृत लगा देते हैं।

अर्ध शीशी (अर्धावभेद) हो तो—सूर्योदय से पूर्व प्रातः २-३ बीजो का मगज, पत्थर पर नीबू के रस मे घिसकर जिस ओर पीडा हो, उस ओर के नेत्र के ऊपर के भ्रू भाग के ऊपर उसे सलाई से लगावे, थोड़ी जलन होकर उसी दिन शिर-पीडा दूर हो जाती है। अथवा उक्त नीबू रस मे घिसे हुए करंज को जिस ओर का मस्तक न दुखता हो उस ओर के कान मे उसी रस की १-२ बू दें टपका देवे। किन्तु उसके पूर्व थोड़ा घृत कान मे डाल दे, जिससे जलन न हो। यह प्रयोग कर लेट जावे व थोडी नीद ले लेवे। (व० गुणादर्श)

(४) जागम विष विशेपन. सर्प-विष पर—मूर्च्छा, तंद्रा, निद्रा दूर करने के लिए अ जन—एक कागजी नीबू, मे छिद्र कर, उसके भीतर इसके बीजो की ७ गिरी भर छिद्र के मुख को, छिद्र करते समय निकले हुए गूदे एव छाल से बन्द कर, नीबू को सूत से बाध कर रख दे। ७ वे दिन गिरी को निकाल कर धूप मे सुखा ले, तथा पुन उसी प्रकार दूसरे नीबू मे भरकर रख दे, और ७ वें दिन निकालकर सुखा ले। इस प्रकार ७ बार करके गिरी को सुखा, सुरक्षित रक्खे। इसे मनुष्य की लाला (थूक) मे (या नीबू रस मे) घिस कर नेत्रो मे आजने से सर्पदंश से उत्पन्न मूर्च्छा दूर होती है। (फिर अन्य उपचार करे। ध्यान रहे सर्प-विष से प्राय. मूर्च्छा, तन्द्रा या निद्रा आती है, जिससे विष सरलता से नही उतरता, तथा अन्य उपचार काम नहीं देते) यह प्रयोग एक योगी से प्राप्त हुआ है और सत्य है। (भा० भैं० र०)

उपचार मे शुद्ध बीजो का चूर्ण या उक्त नीबू फल से भावित गिरी के चूर्ण की अल्प मात्रा घृत के साथ पिलाते है। जिससे दस्तो के द्वारा विष दूर होता है।

नोट—ध्यान रहे उक्त प्रकार से नेत्रो मे इसके आजने से वेदना असह्य होती है, इस वेदना के निवारणार्थ तथा नेत्रों को कोई हानि न पहुचे एतदर्थ, बकरी के दूध में रुई का फाया भिगोकर बाधना चाहिए। अथवा—

बीजो की गिरी को नीबू रस मे २१ बार घोटकर (भावना देकर) शुष्क कर, इस चूर्ण को भी मलाई से सर्पदष्ट व्यक्ति के नेत्रो मे आजते हैं।

(५) जीर्ण ज्वर पर—शुद्ध किये हुए बीजो की गिरी ४ माशा, कुटकी ८ माशा तथा गेरू ४ माशा सबके महीन चूर्ण को ग्वारपाठा (घृतकुमारी) के रस मे खरल कर मूग से लेकर मटर जैसी गोलिया बना ले। शीतल जल से १ गोली लेने से जीर्ण ज्वर नष्ट होता है।

(भा. भै. र.)

(६) अधिमास (दन्तमूलगत रोग विशेष Impacted wisdom tooth) पर—बीजो की गिरी को, समभाग नीबू के रस मे पीस कर लेप करने से लाभ होता है।

(भा. भै र)

तैल—कूपिका-यन्त्र द्वारा या पाताल यंत्र से इसके नवीन बीजो का तैल निकाल लें। अथवा उनकी गिरी निकाल, पानी में पकावे। पानी पर जो तैल नितर आवे उसे किसी पक्षी के पर आदि से सावधानीपूर्वक निकाल कर रक्खे। और काम मे लावे।

(भा० भै० र०)

यह तैल वाह्य प्रयोग से तीव्र क्षोभक एव जलन करने वाला व अधिक मात्रा मे लगाने से त्वचा पर विस्फोटक प्रभाव करता है। दद्रु, गज, किलास कुष्ठ, तथा आमवात रोगो मे इसे अन्य उपयुक्त द्रव्यों के साथ मिलाकर लेप करते हैं। यह छाला पैदाकर दूषित मल को निकाल देता है।

जोडों के दर्द पर जलन मिटाने के लिए इसका उपयोग किया जाता था, किंतु आजकल इसे हम उपयोग मे बहुत कम लेते हे। क्योंकि इसमे जलन और ज्यादा होती है, तथा इससे जो घाव होते है, उनके चिन्ह नही मिटते और इस घाव से मवाद आदि बहुत घृणित दृश्य दिखलाई देने लगते हैं। (सन्याल और घोष)

(७) अरुंषिका (सिर का छाजन) तथा गंज या इन्द्रलुप्त पर—इसके तैल की ५बूदे, जैतून तेल २॥ तोला मे मिलाकर लगाने से यह उस स्थान पर छाला पैदा कर दूषित मल को बहा देता है।

(८) भयङ्कर शिर शूल पर—१ बूद तेल मे १ ड्राम क्लोरोफार्म तथा १ औंस ग्लिसरीन मिला लेप करते हैं।

(९) ट्यूबर क्यूलर मेनिन जाईटिस मे रोगी का सिर मुंडाकर यह तैल १ भाग तथा जैतून-तेल ३ भाग मिला सिर पर मर्दन करने से सतोषजनक लाभ होने का कुछ डाक्टरो का अनुभव है। (अ तत्र)

(१०) रक्तावेग सयुक्त रज. कृच्छ्र (कनजैस्टिव-डिसमेनोरिया) व्याधि मे, अथवा जरायु के पुरातन रक्तावेग-विकार में जब कष्ट व वेदना के साथ रक्त जाता हो, तब यह तैल १ भाग, कर्पूर लोशन १० भाग मे मिला, तथा इसमे स्पज भिगोकर या फाहा बनाकर योनि के सेक्रम भाग पर दिन मे दो बार रखे। इस प्रयोग से त्वचा मे उग्रता पैदा होती तथा रोग की यन्त्रणा शात होती है। मर्दन न करें, क्योकि मर्दन से छाला या व्रण होने का भय है। —(अ० तत्र)

(११) क्षय रोग मे या पुराने ब्राकाइटिस पुराने न्युमोनिया या किसी प्रकार की नई पुरानी फुफ्फुस सम्बन्धी पीडा से जब कष्टकर श्वास-कृच्छ्रता हो, सास लेने व छोडने मे कष्ट होता हो, तब छाती पर—यह तेल ५-६ बूद, पुराना घृत १ तोला और कपूर का मिश्रण कर लेप करना अच्छा होता है—(अ तत्र)

अनेक प्रकार के शूल तथा पक्षाघात मे यह तेल, नारायण तेल या तिल तैल मे मिला कर मर्दन करते है।

उक्त विकारो पर मर्दनार्थ इस तैल के योग से कई प्रकार के मर्दन तेल (लिनिमेंट) बनाये जाते हैं। यथा—

(१) यह तेल २॥ तोला, इलायची तैल या कैजूपुटी आयल लगभग ८ तोला तथा अलकोहल (मद्यसार) लगभग ९ तोला का मिश्रण करले।

(२) इस तेल के १ भाग मे ८ भाग नारियल तेल मिला मर्दन तेल बनाले। यह मिश्रण जीर्ण गठियावात, श्वास, पक्षाघात, वातशूल, एव तीव्र कठनलिका सम्बन्धी विकारो पर मर्दनार्थ—लाभकारी है—(नाडकर्णी)

आभ्यन्तर प्रयोग—इसका आभ्यन्तर प्रयोग तीव्र-विरेचक होता है। बाहरी त्वचा पर लगाने से भी शोषित

होकर यह विरेचक प्रभाव दर्शाता है। अत तीव्र विरेचन द्रव्यो मे इसका प्रथम नम्बर हे। इसकी वून्द ५-२५ पानी जैसे दस्त लाती है। उदर मे मरोड एव आंत मे क्षोभ होता हे। यह उदर-कृमि-नाशक तो है, किंतु कृमिघ्न रूप मे इसका उपयोग प्राय. नही किया जाता।

जिन अवस्थाओ मे शरीर से जलापकर्षण या रक्त के जलाश को शीघ्र ही कम करना अभीष्ट हो, या हृदयोदर मे सगृहीत जल (हृदयावरण मे सगृहीत जल) का दवाव कम करना हो, तव इसका उपयोग किया जाता है। जैसे मस्तिष्क गत शिरा के टूटने से यदि अर्द्धांगवात हो, ऐसी अवस्था मे यदि इसका उपयोग कर रक्तगत जल की कमी नही की जायगी तो मस्तिष्क पर रक्त का दवाव अधिक हो जावेगा, तथा मेदे पर रक्तस्राव अधिक वढता जावेगा, और रोगी के अच्छे होने की सभावना विलकुल नही रहेगी। यदि रोगी वेहोश हो, तो इस तैल की १ वून्द मक्खन मे मिला, जिह्वा पर घिसना चाहिये।

हृदयोदर मे इसके प्रयोग से वहुत कुछ लाभ तो होता है, किंतु कभी कभी जुलाव वन्द नही होते। ऐसी अवस्था मे इसके दर्पनाशक द्रव्य जैसे कत्थे को जल मे घिस कर तुरन्त ही पिलादे, या नीवू का रस पिलादे।'[1] (औषधि सग्रह-डॉ-वा ग देसाई)

मस्तिष्क गत रक्तस्राव (Cerebral haemorrhage) एवं सन्यास (Coma) आदि व्याधियो मे इसके तैल की १ वूंद मक्खन या मधु मे मिलाकर जिह्वा के नीचे चुपड देते हैं, अथवा इसके योग से घटित वटिका को भी इसी प्रकार प्रयुक्त कर सकते है। तथा रोगी को छेड-छाड करने की आवश्यकता भी नही होती।

सामान्यावस्था मे रेचन के लिये शुद्ध इसके तैल की अपेक्षा, तद्घटित योगो का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है। आयुर्वेद मे इसके अनेक उत्तम योग है। आगे विशिष्ट योग देखिये।

नोट—(१) मात्रा—शुद्ध वीज चूर्ण चौथाई रत्ती से आधी रत्ती। तैल आधी से एक वूंद मक्खन, शहद या वताशा में देवे।

(२) इसके अतियोग से या नियम विरुद्ध सेवन से वमन, गले, छाती एवं कोष्ठ में दाह या जलन, मरोड, शूल, पानी जैसे पतले दस्त. आमाशय या आंत्र मे तीव्र व्रण,शोथ तथा अन्त में रक्त मिश्रित दस्त आने लगते हैं। रोगी वहुत दुर्वल हो जाता है। वेहोशी तथा मृत प्राय अवस्था हो जाती है। किन्तु इससे मृत्यु होने की कोई वात सरकारी रिकार्ड में नहीं आई है।

इसके उपशमनार्थ—वातपित्त शामक, स्निग्ध-मधुर शीत द्रव्यो–गोदुग्ध, घृत, दही की लस्सी, शर्वत, नीवू का शर्वत आदि की योजना करनी चाहिये। प्रथम गोदुग्ध और घृत मिला कर वार-वार पिलाते और वमन कराते, पश्चात् दही की लस्सी या अन्डे की सफेदी दूध मे फेट कर पिलाते हैं। आंतो मे जलन एव तीव्र वेदना हो, विरेचन अधिक हो, तो तुरन्त ही नीवू का शर्वत पिलावे या नीवू का रस चूसने को देवे। या दो तोला सूखी धनिया ५ तोला पानी के साथ महीन पीसे, तथा १ पाव दही ५ तोला मिश्री मे मिला दो वार मे पिलावे। ३-४ वार इस प्रकार पिलाने से दस्त, वमन, जलन आदि दूर होते है। या गरम पानी से आमाशय का प्रक्षालन पम्प द्वारा करावे। यह न हो सके तो उक्त प्रकार से दूध व घृत का मिश्रण वार-वार पिलावे और वमन करावे। तथा इलायचीदाना पीसकर दही के साथ मिलाकर चटावे, या धान के लावा पीस कर चीनी व दही मिलाकर खिलादे। यदि पीडा अधिक हो तो मार्फिया का इंजेक्शन लगावे। हृदयावसाद की

---

[1] शोथ व जलोदर मे अन्य विरेचन की अपेक्षा इसके तैल का अधिक उपयोग होता है। इन दोनों रोगों में पानी जैसे पतले दस्त होने से शीघ्र लाभ होता है। यह कार्य थूहर के दूध या इसके तैल से सिद्ध होता है। ये दोनों द्रव्य अति उग्र हैं। नाजुक देह वालों को नहीं दिये जाते। तथापि रोगावस्था में प्रकृति भेद से जिनके लिये इनमें से जो अधिक उपयुक्त हों उनकी योजना करनी पडती है। जीर्ण, कठोर, मलसंग्रह, रक्तविकृति, यकृत पित्त की विकृति आदि होने पर थूहर की अपेक्षा इसका तैल या इसके वीजों के चूर्ण के योग से वने हुए इच्छाभेदी नाराचरस आदि का उपयोग अधिक सफल होता है। यदि अन्त्र मे दाह शोथ हो, उदर पर दवाने से वेदना वृद्धि होती हो। तो इसकी अपेक्षा थूहर या निशोथ देना अच्छा माना जायगा।—(गां. औ. र.)'

अवस्था मे ब्राण्डी, क्लोरिक ईथर आदि उत्तेजक औषधिया दी जाती है। दस्तो के अत्यन्त वेग को रोकने के लिये चौथाई रत्ती-शुद्ध अफीम खिलाते तथा ऊपर से दूध मे घृत और मिश्री मिलाकर पिलाते है। अफीम २ चांवल की मात्रा मे, देशी कपूर १ मासा मिश्री ५ तोला दही १ पाव मे मिला पिलावे। २-३ बार पिलाने से पूर्ण शाति प्राप्त होती है। उस दिन केवल छाछ या फलो का रस लेवे और कोई आहार न करे। अर्क कपूर या स्पिरिटकेम्फर १० बूंद तक देते हैं। शरीर ठंडा पड़ गया हो, तो पेट पर निर्विषी पीस कर लेप करते या पुल्टिस लगाते है।

(३) पत्र-प्रयोग—गण्डमाला पर—इसके पत्तो को उन्ही के स्वरस मे पीस कर गोलिया बनाकर छाया शुष्क कर लें। इनका लेप करने से गण्डमाला का नाश होता है। (भा० भै० र०)

अर्श—विशेषत कफ प्रधान अर्श (जिसमे मस्से मोटे, चिकने, व श्वेत होते हैं) हो, तो इसके पत्तो का शाक दही की मलाई के साथ खाने तथा इसकी जड को मट्ठे मे घिसकर मस्से पर लेप करते रहने से लाभ होता है। (गा० औ० र०)

पत्र और मूल के विशेष प्रयोग दन्ती के प्रकरण मे देखिये।

विशिष्ट योग—ऐसे तो अनेक प्रयोग शास्त्रो मे भरे पडे है। जिनमें इसका कुछ न कुछ योग है। यहा हम केवल उन्ही कुछ प्रयोगो को देंगे। जिनमे इसकी विशेषता है।—शेष प्रयोग शास्त्रो मे देखें।

अभिन्यासाजन—पारा और तीक्ष्ण लौह समभाग लेकर पारे का चौथाई गन्धक तथा सबसे तिगुना शुद्ध जयपाल, सबको आठ दिनो तक जम्बीरी नीबू रस की भावना देकर अजन बना लें। इसके अजन से घोर सन्निपात और ज्वर की शाति होती है।

अथवा—

(१) अंजन भैरव—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सोहागा, छोटी पीपर, समभाग तथा सब से अर्धभाग शुद्ध जैपाल लेकर नीबू के रस मे घोट कर, छाया शुष्क कर रक्खे। इसके लगाने से दुस्साध्य सन्निपात मे लाभ होता है।

(२) अर्धनारी नटेश्वर रस—शुद्ध जैपाल-बीज ७ भाग, स्वर्ण माक्षिक भस्म ६, ताम्रभस्म ५, तीक्ष्ण लोह भस्म ४, वग भस्म ३, शुद्ध गन्धक २, तथा शुद्ध पारद १ भाग लेकर चित्रक मूल के रस (या क्वाथ) तथा मिल सके तो मछली के पित्त की भावना देकर—वालुका यत्र मे पकावे। फिर निकाल कर शीशी मे भर रक्खे। १ से ३ रत्ती की मात्रा मे बकरी के एक ही स्तन के दूध के साथ, या सोठ के क्वाथ के साथ पिलावे। बकरी के जिस ओर के स्तन का दूध पिलाया जावेगा, उस ओर के अग का ज्वर तुरत उतर जायगा। दूसरे दिन इसी प्रकार दवा लेवे तथा दूसरी ओर के स्तन का दूध पीवे, तो शेष अङ्ग का ज्वर भी उतर जावेगा।

अश्वकचुकी या घोड़ाचोली प्राय सर्व प्रसिद्ध हे। इसमे समभाग जैपाल पडता है।

(३) इच्छाभेदी रस—इस रस के कई भिन्न-भिन्न पाठ शास्त्रो मे दिये गये हे। उनमे से केवल एक अपना अनुभूत प्रयोग यहा देते हैं—

शुद्ध जैपाल का चूर्ण ६ तोला, लेकर प्रथम शुद्ध पारा व शुद्ध गधक १-१ तो की कज्जली बना उसमे उक्त चूर्ण के साथ ही शुद्ध सुहागा व काली मिर्च का चूर्ण १-१ तो, सोठ का महीन चूर्ण २ तो मिला कर, नीबू-रस मे १ दिन (८-१० घण्टे तक) खूब घोट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना ले। १ या २ गोली प्रात शीतल जल से या शक्कर के शर्बत के साथ लेने से कफवात का प्रकोप शात होकर आतो का सचित मल निकल जाता है। दस्त शुरू होने पर, जितने घूंट शीत जल के पिये जायेगे, उतने ही दस्त होवेगे।

प्राय सभी विरेचनो की क्रियाशीलता तो उष्ण जल से बढती है, किंतु इस रस की ठीक इसके विपरीत शीत जल से बढती है, और उष्णजल से रुकती है, यही इस की विशेषता है।

इसमे आधा-आधा या १-१ घण्टे के अन्तर से थोडा २ ठडा जल पीते रहना चाहिये जब काफी दस्त हो जाये और दस्त रोकना अभीष्ट हो तो उष्ण जल पी लेवे। फिर दही-भात खावें।

कफ प्रधान जलोदर मे, तथा रक्तदोष, उपदश, अजीर्ण, आमवृद्धि, कृमि आदि रोगो मे इसका प्रयोग उत्तम होता है।

(४) गोपीजल रस—शुद्ध जैपाल ८ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, तथा सोठ, मिर्च, चित्रक, शुद्ध पारा व सुहागे की खील १-१ भाग लेकर, प्रथम पारे-गधक की कज्जली कर तथा शेप द्रव्यो का चूर्ण मिला, सब को जल के साथ घोट कर १-१ रत्ती की गोलिया बनाले।

यथोचित अनुपान से लेने से शूल, गुल्म, कोष्ठरोग, पैत्तिक विकार, भगन्दर, और हृद्रोग मे लाभ होता है।
(र रा. सु)

(५) जलोदरारि रस—छोटी पीपल, ताम्रभस्म, और हल्दी चूर्ण १-१ भाग तथा शुद्ध जैपाल सब के बराबर लेकर सबको १ दिन थोहर (सेहुड) के दूध मे घोट कर १-१ रत्ती की गोलिया बना ले। १ या २ गोली शीतल जल से लेने से विरेचन होकर लाभ होता है। दस्त बन्द करना हो, तो दही-भात खावे। आमदोष निकल जाने के बाद मू ग का यूष और भात खावे।
(यो र)

नोट—भैषज्य रत्नावली का यह रस, उक्त प्रयोग से सौम्य व उत्तम है।

(६) नाराच रस—पारा, गधक, काली मिर्च १-१ भाग, सुहागा, छोटी पीपल, सोठ २-२ भाग और शुद्ध जैपाल ६ भाग, लेकर, प्रथम पारा गधक की कज्जली कर, शेप द्रव्यो का महीन चूर्ण मिला, सेहुण्ड के दूध से ३ दिन मर्दन कर, नारियल के गोले के बीच मे रखे, अत्यन्त तीव्र अग्नि से पकावे। पश्चात् खरल कर रक्खे। इसमे से थोडा लेकर नाभि पर लेप करने से १० बार विरेचन होता हे। इसकी गन्ध मू घने से भी रेचन हो जाता है। यह सुकुमार प्रकृति के या राजाओ के योग्य विरेचन है।

(७) सर्वेश्वर रस—शुद्ध जैपाल ८ भाग, सुहागा खील ४ भाग लेकर प्रथम शुद्ध पारा १ भाग व शुद्ध गधक २ भाग की कज्जली कर उसमे उक्त दोनो का महीन चूर्ण मिला ३ दिन तक खरल करे। मात्रा–१-२ रत्ती, वातज्वर मे-हर्र के चूर्ण से, कफ-ज्वर मे खाड और शहद से, जीर्ण ज्वर मे उचित अनुपान से, सूतिका-रोग मे पीपली-चूर्ण व शहद से देवे। (५ वर्ष के बालक को १ चावल के बराबर देने से ज्वर नष्ट होता है) सर्व ज्वर एव सन्निपात मे इसे गुड की शक्कर के साथ देवे। कृमिरोग पर अजवायन और बायविडङ्ग के चूर्ण के साथ देवे—
(र० रा० सु०)

नाराचरस के तथा और भी अन्य प्रयोग अन्यत्र शास्त्रो मे देखे।

नोट—ध्यान रहे यदि आमाशय मे व्रण हो, अम्लपित्त से दाह हो, आंत्र-दाह हो, शोथ हो, तथा अर्श रोगी गुदभ्रंश रोगी, एवं सुकुमार को, बालक, सगर्भा स्त्री को जैपाल प्रधान किसी भी योग को न देना चाहिए।

निम्न—जमालगोटे की गोलियो का एक यूनानी—उत्तम प्रयोग इस प्रकार है—

शुद्ध जैपाल बीज ३ तोला गुलबनफसा, गुलाब के फूल, खुरपे के बीज व कद्दू के बीजो का मगज १७-१७ माशा तथा—ककडी के बीजो का मगज, मगज बेदाना व गुल नीलोफर १०-१० माशा और कशनीज साफ किया हुआ, मस्तगी, वशलोचन व कतीरा ७-७ माशा, इन सबको पीसकर इसबगोल के लुआब मे मिलाकर चने जैसी गोलिया बना ले। इसे १ से २ माशा की मात्रा में (या कम मात्रा मे) गुलाब के शर्बत के साथ देने से अच्छा जुलाब होता है। इन गोलियो से जमालगोटे से होने वाले सब फायदे तो मिल जाते हे, मगर उसकी उग्रता और उसके नुकसान से रोगी बच जाता हे। क्योकि इसमे इसकी दर्पनाशक बहुत सी औषधिया मिली हुई है।
(व० चद्रोदय)

जमीकन्द (सूरण) (*AMORPHOPHALLUS CAMPANULATUS*)

शाकवर्ग का एव सूरण कुल[१] (Araceae) का यह एक प्रधान गुल्म १-३ फीट ऊ चा होता है। इसके कन्द

१ इस कुल के कन्दयुक्त क्षुप या गुल्म होते हैं। पत्र-एकान्तर, विभिन्न रंग के, प्राय सादे क्वचित् विभक्त,

से अनेक श्वेत वर्ण की जड़े निकली हुई होती है। लम्बे गूदेदार काण्ड के ऊपर पत्र छत्राकार १-३ फीट लम्बे, ३० से ९० से० मी० तक चौडे, फीके हरित वर्ण के नीचे की ओर लगभग ३ भागो मे विभक्त होते है। प्राय जमीन के भीतर कन्द के बहुत पुराने हो जाने पर वर्षा ऋतु के प्रारम्भ मे, इसमे पुष्प—उभय लिंगी, लाल रंग के या बेगनी रंग के आते है। पुष्प आने पर कन्द की परिपूर्णता मानी जाती है। पुष्पो के आने के पश्चात् प्राय. वर्षा के बाद इसमे फल लाल रग के छोटे-छोटे आते है, जिसमे २-३ बीज होते है।

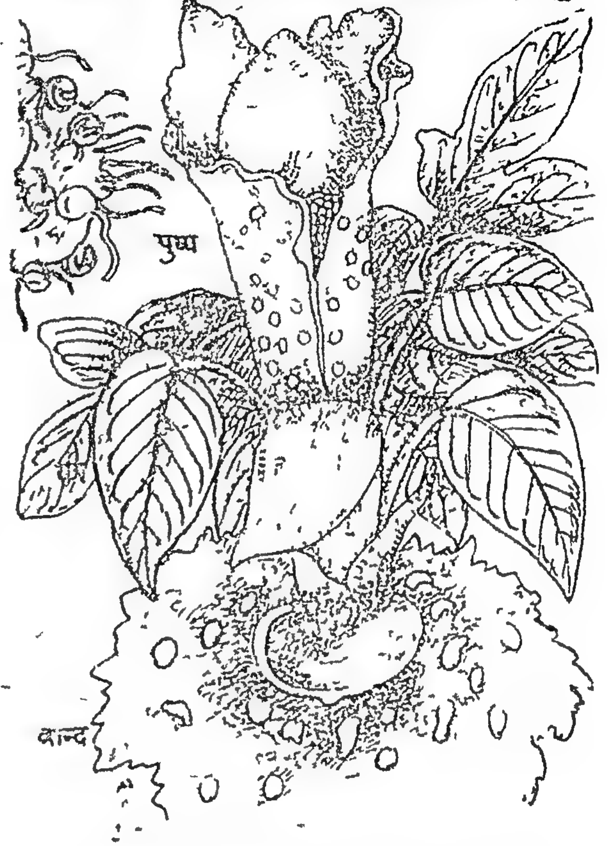
कन्द—प्राय चैत्र-वैशाख मास मे लगाये जाते है, तथा आश्विन शुक्ल पक्ष से लेकर फागुन के अन्त तक ये खोदे जाते हैं। इस प्रकार प्राय ६ मास तक ये सुविधा से प्राप्त होते है। कन्द की परिपूर्णता के लिये यह ३ या ६ वर्ष तक भी नही खोदा जाता। ऐसे परिपूर्ण हुए इसके बहुत बडे-बडे कन्द, हाथी के पग या उससे भी मोटे, गोल, चक्राकार अधिक से अधिक ४० सेर या १ मन से भी अधिक वजन के हो सकते है। किंतु इसके लिये सानुकूल एव उचित सिचाई की आवश्यकता है। ये कन्द गहरे बादामी रग के, ऊपर के भाग मे दबे हुए होते है। एक ही वर्ष के अन्दर खोदे हुए ये कद लगभग १ पाव वजन से ५ सेर वजन तक बाजारो मे प्राप्त होते हैं। ये कन्द नष्ट नहीं होते, न सडते हैं। एक बार के लाये हुए एक ही बडे कन्द को प्रतिदिन या जब चाहे तब काट-काट कर कई दिनो तक शाक बनाया जा सकता है। तथा औषधि-कार्य के लिये मुख्यत जगली जमीकन्द उत्तम है।

जमीकन्द का पत्र-काण्ड भी अच्छा मोटा एव मांसल होता है। इससे भी तथा इसके कोमल पत्तो का भी शाक बनाया जाता है। पत्र-काण्ड एव कन्द के गुणधर्म प्राय. एक समान है। समस्त कन्द-शाको में इसका शाक श्रेष्ठ होने से, इसे कन्द-नायक कहा जाता है। यथा—

पुष्प-प्राय. एक लिंगी, छोटे, वृन्तरहित, बीजकोष १-३ खण्ड वाले, तथा फल-मांसल, सरस एव अनेक बीजयुक्त होते हैं।

जिमीकन्द (सूरण)

AMORPHOPHALUS COMPENULATUS Bl.



"सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते।"
—(भा० प्र०)

यह भारत मे प्राय सर्वत्र, किंतु बम्बई प्रान्त की ओर अधिक प्रमाण मे होता है।

सुश्रुत के सूत्र-स्थान मे कन्द-शाको मे इसका उल्लेख है।

नाम—

सं०-सूरण, ओल, कण्डूल, अर्शोघ्न, कन्दनायक इ०। हि०-जमी, या जिमीकन्द, सूरण, ओल, करीडकन्द इ०। म० गु०-सूरण। ब०-ओल। अं०-तेलुगो पोटेटो (Telugo potato) ऐलफन्टस फुट (Elephant's foot) ले०-एमोर्फोफैलस केम्पेन्युलेटस।

रासायनिक संघटन—

ताजे कन्द मे प्र० श० ७८.७ जलांश, ०.८ खनिज-पदार्थ, १.२ प्रोटीन, ०.१ वसा, १८.४ कार्वोहाइड्रेट, ०.०५ कैलसियम, ०.०२ फासफोरस, ०.६ मिलीग्राम

प्रतिशत ग्राम, ४३४ ई० यू० विटामिन बी० २ अति अधिक तथा सी० नाममात्र को होता है। इसका उक्त जलांश या रस कटु, तीक्ष्ण एवं दाहक होता है, त्वचा में लगने पर यह कण्डू, दाह आदि पैदा करता है।

शुष्क कन्द में प्र० श० ०.५० ईथर एक्स्ट्रेक्ट, १२.१८ अल्बुमिनाइड्स (१.९० नैट्रोजन युक्त), ७६.२८ कार्बोहाइड्रेट, ४.०० काष्ठ तनु तथा जलाने पर ७.०४ राख पाई जाती है।

प्रयोज्य अंग—कन्द।

गुणधर्म व प्रयोग--

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, कषाय, कटु विपाक, उष्ण-वीर्य, एवं प्रभाव में अर्शोघ्न है। यह कफवातशामक, दीपन, पाचन, रुचिवर्धक, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, शूल-प्रशमन, आर्त्तव-जनन, बल्य एवं रसायन है।

यकृत की क्रिया में सुधार, वायु का अनुलोमन एवं रक्त-वाहिनियों में संकोचन, इस प्रकार यह अपनी त्रिविध क्रियाओं से अर्श रोग में लाभ पहुँचाता है। किंतु अधिक प्रमाण में सेवन से यह विबन्धकारी या विष्टंभकारी होता है। अल्प मात्रा में विबन्धनाशक है।

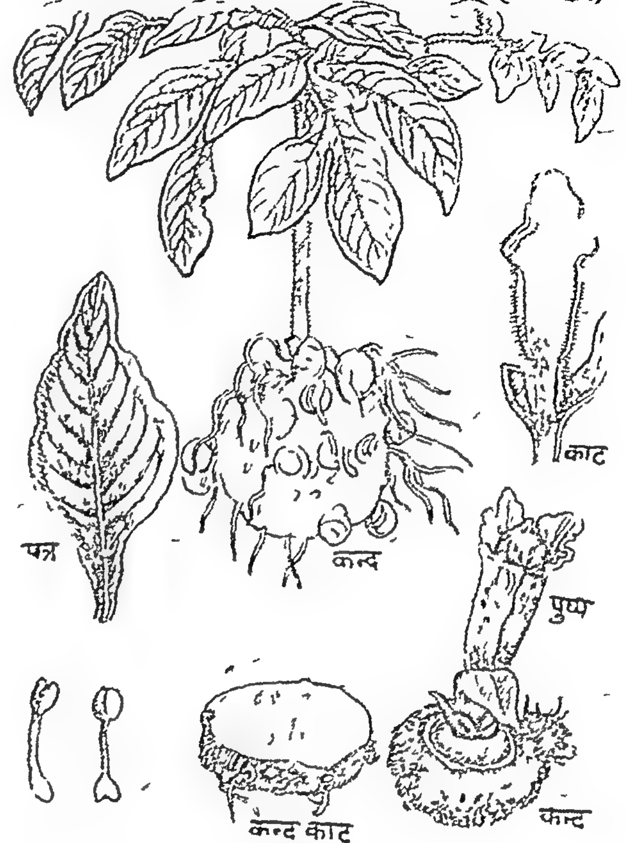
यह अरुचि, अग्निमांद्य, विबन्ध, उदर-शूल, गुल्म, आमवात, यकृत-प्लीहा-विकार, अर्श (विशेषत कफ-वातज), कृमि, कास, श्वास, सामान्य दौर्बल्य में प्रयुक्त होता है।

नीरोग्य त्रिदोष एवं सप्तधातु, इनके लिए सारभूत द्रव्यों का विनियोग होते रहने से ही उनका अपेक्षित प्रमाण कायम रहता है, तथा मलरूप द्रव्यों का यथोचित निष्क्र-मण भी होता रहता है। ऐसा होते रहने से ही परिपूर्ण आरोग्य की प्राप्ति होती है। ये सब बातें सूरण द्वारा सिद्ध होती हैं। अत यह कन्दों में सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार धातुसाम्यावस्था (जो कि स्वस्थ प्रकृति का प्रधान लक्षण है) प्रस्थापित करने की आवश्यक शक्ति इस कद में स्थित आमपाचन एवं अग्नि-दीपन गुणों द्वारा सिद्ध होती है।

किन्तु ध्यान रहे यह तीक्ष्ण और उष्ण होने से इसका सामूर्णी, सर्वसाधारण प्रकार से सेवन रक्तपित्त-प्रकोपक

जमीकन्द (सूरण).

AMORPHOPHALLUS CAMPANULATUS (ROXB.)



हो जाता है। अत कुष्ठ, दद्रु आदि चर्म रोगों में एवं रक्तपित्त के रोगियों के लिए यह निषिद्ध है।

सन्धिशोथ, श्लीपद, अर्बुद आदि में इसे पीसकर घृत व मधु के साथ मिलाकर प्रलेप करते हैं। शुक्रदौर्बल्य तथा रजोरोध में इसका मोदक या पाक बनाकर देते हैं। आगे विशिष्ट योग देखें। आमादि-विकार—आमातिसार आदि में—इसके चूर्ण को घृत में—पका, शक्कर मिला सेवन करते हैं।

इसके सेवन की विधि—

(१) जितने प्रमाण में इसे सेवन करना हो उतना काटकर गीली मिट्टी की मोटी तह में लपेट कर आग में रख दें जब मिट्टी लाल हो जाय, तब ठंडा होने पर मिट्टी अलग कर इसके और भी टुकड़े कर घृत में छौंक कर आवश्यक मसाला मिला शाक आदि यथेच्छ व्यंजन-

कल्प वनाकर सेवन करे। इस पुटपक्व सूरण की काजी विशेष गुणदायक होती है।

यदि चूर्ण वनाकर रखना हो, तो उक्त पुटपक्व सूरण के महीन टुकडे कर धूप मे खूब सुखा कर चूर्ण करले।

सर्वसाधारण शाक-विधि (द्रव्यगुण विज्ञान)—कन्द के वडे-वडे टुकडे कर, तथा चाकू से भली प्रकार गोदकर, इमलीपत्र या इमली की खटाई के साथ, मिट्टी के पात्र मे रख, अच्छी तरह ढाक कर, धीमी आच पर रखदे। जव अच्छी तरह उसीज जाय, तव निकाल कर, कलई-दार पात्र मे टुकडो के वजन के अर्धभाग घृत (या तिल तैल) की छोंक देकर उसमे धनिया, जीरा, मिर्च, नमक, तज, तमालपत्र आदि मसाले डालकर मन्दाग्नि पर शाक तैयार करले। ध्यान रहे, उक्तसूरण के टुकड़ो को पानी से नही धोना चाहिये, और न पकाते समय ही उसमे पानी डाले। यदि थोडा भी पानी डाल दिया जावेगा तो सूरण नही गलेगा। मन्दाग्नि पर पकाने से यह शाक स्वादिष्ट वनता है।

अर्श से पीडित रोगी के लिये यह शाक खिला कर ऊपर से ताजे दही की तैयार की हुई छाछ (तक्र) मे चित्रक का चूर्ण २ मा० तथा जीरा व नमक चूर्ण १-१ मा० मिला कर, थोडा थोडा दिन भर मे पिलावे। इस प्रकार इसके शाक का एव तक्र का ही कुछ दिन आहार करने से यथेष्ट लाभ होता है। तक्र पान १ सेर से २ सेर तक किया जाता है। [1]किन्तु इस प्रयोग के शुरू करने के पूर्व साधारण रेचन द्वारा कोष्ठ-शुद्धि कर लेनी आवश्यक है। रेचनार्थ उत्तम योग यह है—त्रिफला, इद्रयव काली दाख, सोनामाखी, रेवन्दचीनी और वायविडग समभाग जौकुट कर, ३ या ४ तोला चूर्ण को ५ या ६ तोला पानी मे रात को भिगोकर प्रात मल छान कर पिलावे। २-३ दस्तो द्वारा कोठा साफ हो जाने पर, उक्त प्रयोग का सेवन करे। सेवन काल मे, वीच-वीच मे उक्त प्रकार से कोष्ठ-शुद्धि कर लेना परमावश्यक है।

साथ ही साथ अर्शांकुरो पर निम्न मलहम भी लगाते रहना और भी लाभकारी है।

नीम फलो (निवोली) की गिरी १ तोला, रसाजन, हीरादोखी (खून खरावा, यह एक वृक्ष का प्रसिद्ध गोद है, जो नीलाभ लाल रग का होता है), गेलिक-एसिड, अफीम, मुरदासग ६-६ मासा तथा शखजीरा और कपूर ३-३ मासा, इनका महीन चूर्ण २॥ तोला मक्खन मे मिला मलहम वनाले। इसके लगाते रहने से फूले हुए मस्से वैठ जाते हैं। रक्त वन्द होता, जलन वन्द होती व मस्से मुर्झा जाते हैं। (धन्वन्तरि वर्ष २२ अक ४)

कल्प-विधि से सेवन करना हो, तो ५ तोले सूरण को धो कर, टुकडे कर (इन टुकडो को पानी से नही धोना) एक छोटे से कलईदार पीतल के स्वच्छ डिव्वे मे भर उसमे १ या २ छोटे चम्मच भर श्वेत जीरा चूर्ण, १ से १॥ चम्मच उत्तम घृत, थोडी हरी धनिया, २ से ३ चम्मच शक्कर, तथा २ चम्मच—कद्दूकस से कसा हुआ गीले या सूखे नारियल का चूर्ण डालकर, डिव्वे को ढककर, इस डिव्वे को एक वडे डिव्वे (कटोरदान) मे प्रथम १ सेर तक पानी डालकर रख दें, और वडे डिव्वे को भी ढककर स्टोव या अगीठी पर रख कर पकावे। यदि आच ठीक हो, तो १ या २ घण्टे मे यह सूरण-कल्प, मक्खन जैसा मुलायम होकर सेवनार्थ स्वादिष्ट तैयार हो जाता है।

इसे जहा तक हो सके, प्रात वगैर कुछ खाये सेवन करने से मन्दाग्नि, आध्मान, उदर मे वातावरोध, मलावरोध, अम्लपित्त, अरुचि, तृष्णाधिक्य, अर्शपीडा, गुदकण्डू, थोडे से ही परिश्रम से थकावट का आना, निरुत्साह आदि शिकायते दूर हो जाती है। यदि रोगी को मधुमेह की भी शिकायत हो, तो इस कल्प मे शक्कर के स्थान मे सेंधा नमक और अदरख के टुकडे डालकर इसे तैयार करने से अत्यग्नि (वार वार क्षुधा का

---

[1] मासमेकमनन्नाशी सूरणं भक्षयेत सुखम्।
तक्रानुपानमाश्वर्शो निर्मूलोन्मूलनोत्सुकः॥
(वैद्य मनोरमा)

अर्श के शीघ्र निर्मूलनार्थ एक मास तक, वगैर कुछ अन्न के, केवल तक्र के अनुपान के साथ सूरण का सेवन करे।

लगना), अति तृष्णा, दौर्बल्य, निद्राल्पता, बहुमूत्रता आदि विकार अवश्य ही दूर होते हैं।

जीर्ण ज्वरादि से आई हुई दुर्बलता, अशक्ति तथा प्रसूतावस्था के बाद उत्पन्न हुई अशक्ति, इस कल्प के सेवन से शीघ्र दूर होती है।

(आ० पत्रिका से साभार अनूदित।)

(२) अर्श पर—कन्द २॥ सेर वजन का लेकर, मध्यभाग मे छिद्र कर, उसमे ४० तो० (यदि कन्द १। वजन का हो तो २० तो०) लाल फिटकरी का चूर्ण भरकर तथा छिद्र के मुख को उसके गूदे से ही ढक कर, कपड मिट्टी कर गज पुट मे फूक देवे। उत्तम श्वेत भस्म हो जावेगी। महीन चूर्ण कर रखे। ६ रत्ती से १२ रत्ती तक, दिन मे २-३ वार मलाई या मक्खन के साथ लेने से, रक्तस्राव बन्द हो कर, रक्तार्श मे विशेष लाभ होता हैं। पाचन-क्रिया मे सुधार तथा मल-शुद्धि होता है।

—(स्व० वैद्य गोपाल जी—
कु वर जा ठक्कुर)

नोट—उक्त प्रयोग इस प्रकार भी बनाया जाता है—२॥ सेर या १। सेर कन्द को मोटा-मोटा कूट ले। फिर ४० तोला या २० तो० लाल फिटकरी का फूला मिला, हांडी मे भर मुख-मुद्रा कर १० सेर जगली कण्डों मे फूंक दें। शीतल होने पर श्वेत र ग की भस्म होगी। कपडछान कर रख ले। मात्रा और सेवन-विधि उक्त प्रकार की ही है। शुष्क वातज अर्श मे भी यह लाभकारी है।

यदि भस्म तैयार न हो, तो सूरण का चूर्ण, विलायती केपसूल मे भर कर निगल जाने से भा लाभ होता है। जिलेटिन की बनी हुई झीरी (शून्य) अथवा १ नम्बर की केपसूल लेनी चाहिये। (रस तत्रसार)

अथवा सूरण के छोटे-छोटे टुकडे कतर कर इमली की खटाई के साथ उबाल कर, तथा साफकर सुखा ले। इसका जितना चूर्ण हो उतना ही रीठे का चूर्ण उसमे मिलावे तथा दसवा हिस्सा सेंधा नमक और २०वा हिस्सा कालीमिर्च भी पीसकर मिलादे। ८-८ मा० प्रात साय गरम पानी के साथ ३ मास तक पथ्य पूर्वक लेते रहने से अर्श मे पूर्ण लाभ होता है। (स्वानुभूत)

अथवा—सूरण की ऊपरी छाल दूर कर उसे वाष्प-विधि मे या उक्त पुटपाकविधि से स्वेदितकर, चूर्ण करे तथा धूप मे सुखाकर दूध मे (यथोचित प्रमाण मे मिला) शक्कर मिला मीठी खीर बना सेवन करे। इसे तक्र या छाछ मे मिलाकर भी खीर तैयार की जाती है। और अर्श-रोगी को सेवन कराई जाती है।

सूरण के उक्त प्रकार से बनाये चूर्ण के साथ जीरा, धनिया, नमक को पीसकर इसकी चटनी भी यथेच्छ सेवन कराने से अपेक्षित लाभ होता है। सूरन का अचार या मुरब्बा नित्य ५ तो तक खाते रहने से भी लाभ होता है।

अर्श नाशक अन्य शास्त्रीय प्रयोग—

(३) सूरण-वटक—सूरण चूर्ण ३२ भाग, चित्रक मूल १६ भाग, सोठ चूर्ण ४ भाग, तथा कालीमिर्चचूर्ण २ भाग लेकर, एकत्र मिला, उसमे सब चूर्ण के समभाग गुड मिलाकर, खरल कर गुटिका बना ले। यह शार्ङ्गधर जी का सूरणपिंडी योग उत्कृष्ट अर्शनाशक है। (मात्रा ६ मा० से १ तो० तक उष्ण जल से देवे)

(शा० स० ख० २ अ० ७)

शार्ङ्गधर जी का ही सूरण वटक (वृहत्) आगे विशिष्ट-योगो मे देखिये उक्त-सूरण पिण्डी योग वाग्भट मे भी मिलता है।

(४) सूरण-पुटपाक—सूरण पर आधा अगुल मोटा मिट्टी का लेप कर, शुष्क कर, आग मे पकावे। जब यह लाल हो जाय, निकाल कर, ऊपर की मिट्टी दूर कर, कूट कर उसका रस निकाल ले। यथोचित मात्रा मे, ४ तोला तक रस मे तिलतैल १ तो० व सेंधा नमक १ मासा मिलाकर पीने से अर्श रोग नष्ट होता है।

(५) सूरणादि चूर्ण—सूरण और कुडाछाल सम भाग लेकर चूर्ण कर रक्खे। इसे तक्र के साथ (मात्रा ६ मा० तक) मिलाकर सेवन करते रहने से अर्श का नाश होता है। (भा० भै० र०)

(६) सूरणादियोग—सूरण को आक के पत्तो मे लपेट कर ऊपर से मिट्टी का (१ अ गुल मोटा) लेप कर कण्डो की आग मे पकावे। ऊपर की मिट्टी आग के समान लाल हो जाने पर, ठडा कर, सूरण को निकाल कर पीस

कर रख ले। (मात्रा ६ माशा मे १ तोला तक) इस चूर्ण के साथ, स्वाद योग्य सेधा नमक मिलाकर, तिल-तेल के साथ सेवन करने से अर्श और वात-विकारो का नाश होता है। (भा० भै० र०)

(७) सूरणादि-लेप—सूरण के साथ हल्दी, चित्रक-मूल, सुहागा व गुड समभाग लेकर काजी के साथ महीन पीसकर लेप करने से प्रवृद्ध अर्श के मस्से भी नष्ट हो जाते है। (वृ० नि० र०)

(८) सूरणवर्त्ति—इसके कन्द को छीलकर चिकनी वत्ती बनाकर, नीबू-रस मे भिगोकर घृत मे भिगो, गुदा मे रखने से अर्श के मस्से एव गुदा के कृमि नष्ट होते है। (हारीत संहिता स्था० ३ अ ११)

(९) वीर्यस्तम्भन-योग—कन्द का चूर्ण १ तोला (व्यावहारिक मात्रा—२ से ३ मा०) पान मे रखकर खाने से वीर्य-स्तम्भन होता है। (भा० भै० र०)

अथवा—कन्द का चूर्ण और तुलसी के बीज समभाग महीन पीसकर, पान के रस मे खरल कर ३-३ रत्तियो की गोलिया बना ले। सभोग से पूर्व १ गोली पान मे रखकर खाने तथा ऊपर से बीडी पीने से, सभोग मे बहुत ही रुकावट होती है। (धन्वन्तरि वर्ष ३७ अङ्क ४
श्री डा० शिवकुमार शर्मा, बरोदिया नौनागर (सागर)

(१०) गुल्म पर सूरणादि क्षार—कन्द के मध्य भाग मे छिद्रकर, उसमें सेहुण्ड थूहर का दूध, लहसन, हीग, त्रिकटु, चित्रकमूल, सेंधा-नमक, काला नमक, विड-नोन, सामुद्रनोन और उद्भिद नोन थोडा-थोडा समभाग, चूर्णकर भर दे। तथा हाडी मे बन्दकर फूक दे। स्वाग शीतल होने पर, निकालकर कन्द सहित सबकी भस्म को पीस छानकर रक्खें। मात्रा—३ से ६ माशा तक, उष्णजल से, प्रवृद्ध गुल्म रोग नष्ट होता है। (भा भै र)

(११) मेद की ग्रन्थि (ग्रंथि, गाठ) पर—अच्छा पक्व कन्द और सोठ समभाग दोनो को पानी के साथ पीसकर बार-बार लेप करने से ७ दिन मे गाठ नष्ट हो जाती है। (भा० भै० र०)

नोट—चूर्ण-१ से ३ या ६ मा० तक।

अशुद्ध या कच्चे सूरण का प्रयोग करने से मुखपाक, कठदाह, कण्डू आदि उपद्रव होते है। उपद्रव-निवारणार्थ नीबू, इमली आदि अम्ल पदार्थो का सेवन कराते है। कन्द की पुल्टिस बनाकर बिच्छू आदि विषैले कीटक-दश पर बाधते है।

विशिष्ट योग—

१ सूरण वटक (मोदक) बृहत्—कन्द का चूर्ण और विधाराचूर्ण १६-१६ भाग, श्वेत मूसली व चित्रक चूर्ण ८-८ भाग, त्रिफला, बाय विडग, सोठ, पीपल, शुद्ध भिलावा, पीपलामूल, व तालीसपत्र का चूर्ण ४-४ भाग, तथा दालचीनी, इलायची और कालीमिर्च का चूर्ण २-२ भाग लेकर, एकत्र मिला, सबसे दो गुना गुड मिलाकर (१-१ तोला के) मोदक बना ले।

यह प्रबल अग्निवर्धक एव उत्तम अर्शनाशक है। इसके सेवन से वात कफज ग्रहणी, श्वास, कास, प्लीहा, शोथ, हिक्का, प्रमेह, भगदर व पलित रोग नष्ट होता है। यह योग वृष्य, मेधावर्धक व रसायन है—
(शा स म ख अ. ७)[1]

नोट—इसके सेवन काल मे गुरु तथा वृष्य भोजन का सेवन करना चाहिए। अन्यथा भस्म आदि विकार होने की संभावना है।

२ सूरण-वटिका—त्रिकटु के तथा त्रिफला के प्रत्येक द्रव्य एव चित्रकमूल, जीरा, हीग, अजवायन व अजमोद १-१ भाग लेकर चूर्ण करे। इस मिश्रित चूर्ण मे अर्ध भाग सूरणकन्द का चूर्ण व चतुर्थांश सेधा नमक मिला सबको १ दिन जम्बीरी नीबू के रस मे खरल कर १ से ३ माशा तक की गोलिया बना ले। इसके सेवन से शूल, सग्रहणी, गुल्म, अतिसार, दुष्ट प्रवाहिका, अर्श एव प्रबल वात-व्याधि नष्ट होती, अग्नि दीप्त होती, व बल की

---

[1] किसी भी सेवनीय योगों मे सूरण को इस प्रकार शुद्ध करके लेवें—प्रथम हाथो मे घृत चुपडकर कर, चाकू से से उसे छीलकर, छोटे छोटे टुकडे कर उसमे अर्ध भाग इमली पत्र मिला, आग पर पकावे। ठण्डा होने पर धूप मे शुष्क कर प्रयोग मे लावे। अथवा इसे पुटपाक-विधि से पकाकर काम में लेवे। गुड मीठा ही हो, अम्ल, नमकीन कसैला न हो। रवेदार हो यथा क्रम से कम १ वर्ष का हो। उक्त मोदकी मे गुड का पाक न करके डालने से मोदक उत्तम बनते है। पाक कुछ कडा होना चाहिए (लेखक)

वृद्धि होती है। वृद्ध और बालको को भी हितकारी है। किंतु गर्भिणी स्त्री व रक्तपित्त रोगी को न देवे।

(यो० र०)

३ सूरणादि चूर्ण—सोंठ, १ भाग काली मिरच २ भाग, जवाखार ४ भाग चित्रकमूल ८ भाग और सूरण १६ भाग लेकर चूर्ण करे। इसे नीबू के रस व अदरख के रस की १-१ भावना देकर सुखाले। मात्रा—१ से ४ माशे तक सेवन से अर्श, शूल, गुल्म, प्लीहा तथा कृमि-रोग नष्ट होता है। एव अग्नि दीप्त होकर वार वार भूख लगती है। (भा० भै० र०)

४ सूरण पाक—(वलवीर्यवर्धक)—सूरण कन्द १ सेर लेकर, स्वच्छकर, उस पर घृत चुपड कर, अण्डी के पत्तो मे लपेट सम्पुट कर, पुटपाक करे। पुन साफ कर टुकडे टुकडे कर, पिण्टी वना ले। पिण्टी को समभाग घृत मे भून ले। फिर १ सेर उत्तम खोया को अलग घृत मे भूनकर, उसमे आधा सेर घृतपक्व सूजी तथा पिस्ता, छुहारा, वादाम, दाख एव चारो मगज (खरवूजा, तरवूज, ककडी और कद्दू की वीजगिरी) २।।-२।। तोला खूब महीन कर मिलादें। फिर दुगुनी खाड की चाशनी मे सवको मिला उसमे लोहभस्म, वग भस्म, चादी भस्म व स्वर्ण भस्म ६-६ माशे अच्छी तरह मिलाकर, थाली मे पाक जमा दे, या मोदक वना ले।

१ तोला से ४ तोला तक, प्रात साय दूध के अनु-पान से सेवन करे। यह कामोत्तेजक, वल-वीर्य-वर्धक पाक पुरुष को सतानोत्पादन करने योग्य वना देता है।

—वैद्य प० परशुराम जी शास्त्री

नोट—सूरण पाक तथा अन्य पाकों के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृहत् पाक सग्रह मे देखें।

इसके वीजो के गुणधर्म व प्रयोग—इसके जङ्गली भेद मे आगे देखे।

जमीकंद (जंगली) (Amorphophallus sylvaticus)



उक्त सूरण—कुल (Araceae) के जमीकन्द के सदृश ही इसके गुल्म होते है। अन्तर यही है कि यह जङ्गलो मे स्वय जात, रग मे रक्ताभ श्वेत, गुल्म या क्षुप कन्द भी अपेक्षा कृत वहुत छोटा होता है। पत्ते आदि उक्त ग्राम्य सूरण जैसे ही होते हैं। क्षुप मे जो डडा सा निकलता है, उसके अग्रभाग पर लगभग १० अ गुल तक लम्बी मक्के की भुटिया जैसी भुटिया या मुठिया आती है, जिसे वज्रमूठ कहते है। इस मूठ मे घने लम्बे मू गा जैसे दाने (वीज) होते हैं। पक्व होने पर ये दाने लाल रग के प्रवाल जैसे ही दिखाई देते है।

इसके कन्द व पत्रादि शाक के काम मे नही लिये जाते। किंतु कोकण आदि कई स्थानो के जगली लोग इसके कन्दो को छीलकर टुकडे-टुकडे कर धूप मे खूब शुष्क कर शाक वनाकर खाते है। तथा वर्षा के प्रारम्भ मे ही इसके कन्दो मे जो पत्राकुर फूटते है उन अकुरो को काट कर लाते हैं। ऊपर की कडी छाल को दूर कर, अन्दर के अति कोमल पत्तो का शाक इमली की खटाई मिलाकर वनाते तथा वडे प्रेम से खाते है।

सौराष्ट्र मे विशेषत सूरत जिले के जगलो मे तथा दक्षिण के कोकण आदि प्रान्तो मे यह वहुत होता है।

नोट—(१) औषधि-कार्यार्थ यह उत्तम प्रयोजनीय है। ग्राम्य जमीकन्द के जो औषधि-प्रयोग कहे गये हैं। वे (मोदक, पाकादि छोड़कर) यदि इसी जगली के निर्माण किये जावें, तो विशेष लाभकारी होते है।

(२) सुश्रुत के सूत्र-स्थान के कन्दवर्ग मे ग्राम्य सूरण के गुणधर्म के उल्लेख के पूर्व ही जिस सुरेन्द्रकन्द का उल्लेख है, वह इस जगली जमीकन्द का एक साधारण भेद मात्र है। इसका विशेष वर्णन एव गुणधर्म आगे इसी प्रकरण में देखिये।

नाम—

स०—अरण्य सूरण, वज्रकन्द, वज्रमुण्टी इ०। हि०—

जंगली जमीकन्द, कडुवी सूरण, मदन मस्त[1]। म०-लूत, रान सुरण। गु०-चीतल कन्द, भेरी या खाजरू सूरण। अं०-वाईल्ड सुरन Wild Suran। ले०-एमोर्फोफेलस सिलव्हेटिकस।

रासायनिक संघटन—

इसमे ग्राम्य सूरण की अपेक्षा, जलीयांश, तथा खनिज द्रव्यादि अधिक प्रमाण मे होते है। तथा कैलसियम ग्राक्जलेट (Calcium-oxalate) अधिक होता है।

गुणधर्म व प्रयोग

उष्णवीर्य, तीव्रदाहक, विशेष चिरमिराहट पैदा करने वाला, वाजीकरण, कामोद्दीपक, तथा अर्श, गुल्म, मेदोवृद्धि, वात एवं कफवात-विकारो पर विशेष हितकारी है। कहा है—

> वनसूरण कन्दस्तु विशेषादर्शसां हितः।
> गुल्मे स्थौल्ये तथा वाते श्लेष्मवाते हित परम्।
> (कै० नि०)

(१) अर्श पर—इसके कन्द को छीलकर तथा गोद कर (सूजे से चारो ओर छिद्र कर) छाया शुष्क कर, चूर्ण कर ले। यह चूर्ण १० तो० तथा असली नागकेसर, गिलोय सत्त्व, टाट या बोरे को जलाकर बनाई हुई राख ५-५ तो० सबको एकत्र खरल कर रक्खे।

३ मा० चूर्ण दिन मे ३ बार शीतल जल या छाछ से सेवन करे। अर्श का रक्त-स्राव बन्द होकर मस्से सूख जाते है।

(धन्वन्तरि वर्ष २२ अक ४)

अथवा—इसके चूर्ण को घृत मे तलकर, मूली के रस मे घोटकर १-१ मा० की गोलिया बना ले। प्रातःसाय १-१ गोली लेवे।

(२) उदर-रोग मे—इसके कन्द का कल्क १ तो० तक जल मिश्रित ताजे मक्खन युक्त दही मे घोलकर पिलाते है।

(३) उदर की वात-नलिका-शोथ पर—कन्द का चूर्ण ६ तक लेकर, गोदुग्ध १ पाव तथा मिश्री १ मा० ए मला, धीमी आच पर पकावे। करछली से चलाते रहे, खोया जसा हो जाने पर, ठंडा कर सेवन करे। इस प्रकार नित्य १ या २ बार सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

(४) कर्णमूल-शोथ पर—कन्द को पानी मे पीस कर, या शुष्क-कन्द को पत्थर पर पानी के साथ घिस कर, लेप लगाने से शीघ्र लाभ होता है। (व० गु०)

(५) कामोत्तेजनार्थ (वाजीकरण)—इसका पुटपाक विधि से तयार किया हुआ चूर्ण, १ मा० तक की मात्रा मे, दूध और शक्कर के साथ सेवन से शिश्न मे तीव्र उत्तेजना होती है। इसके सेवन-काल मे स्निग्ध एव पौष्टिक पदार्थो का आहार करना आवश्यक है। अन्यथा बहुत कष्ट होता है।

ध्यान रहे—उपदंश, सुजाक, अश्मरी आदि ग्रस्त व्यक्तियो को यह प्रयोग कदापि नही सेवन करना चाहिये।

बीज—ग्राम्य तथा विशेषत जगली सूरण के बीज—दाहक एव जलन पैदा करने वाले है। सधिवात, गठिया, दत-पीडा, ग्रन्थि आदि के शोथ पर बीजो को पानी के साथ पीस कर लेप करते है।

सुरेन्द्र कन्द—इस जगली सूरण के एक भेद को सस्कृत मे सुरेन्द्र या वज्रकद तथा लेटिन मे सायथेरियस सिलव्हेटिका (Syntherias Sylvatica) कहते है। यह भी भारत के कई स्थानो मे, जगलो मे पाया जाता है।

यह उष्ण, तिक्त, कफनाशक, विपाक मे कटु, पित्तकर कृमिनाशक एव अत्यन्त दाहक है। मुख मे रखते ही जीभ तथा ओष्ठ मे जो जलन एव चिरमिराहट होती है वह दीर्घकाल तक शात नही होती, तथा लालास्राव होता रहता है। इसकी शाति के लिये घृत मे कपूर मिलाकर

---

[1] इसके कन्द की ऊपरी छाल हटाकर, शेष कन्द के गोल टुकड़े कर, डोरे पिरोकर मदन-मस्त के नाम से बेचा जाता है। ये टुकड़े खाकी रंग के होते हैं, तथा पानी में डालने से फूल कर मुलायम हो जाते हैं। स्वाद में कुछ कडुवे व तीखे होते हैं। (व० चन्द्रोदय)

इसका प्रयोग मदन-कामोत्तेजनार्थ किया जाता है।

वार-बार मुख मे लगाना पडता है।

दत-पीडा पर---इसके बीजो का महीन चूर्ण, रुई मे रखकर, दातो की पोल मे रख देते है।

ग्रन्थिशोथ तथा मोच या रगड आदि से उत्पन्न स्नायु सम्बन्धी पीडायुक्त शोथ पर---इसके बीजो को पानी के साथ पीस कर लेप करते है।

जीर्ण कर्णस्राव पर---पुटपाक-विधि से निकाला हुआ, इसके पत्र-वृन्त या काण्ड का स्वरस कान मे टपकाते हे।

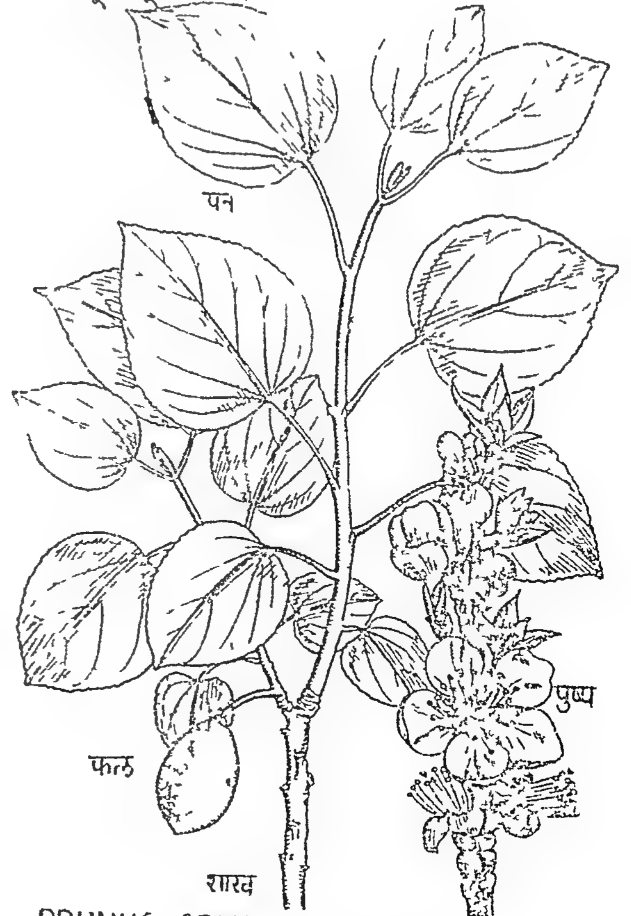
जम्बीरी नीवू—दे०—नीबू मे। जयन्ती--दे०—जैत। जयपाल—दे०—जमालगोटा।
जयफल—दे०—जायफल। जरजीर बीज—दे०--मूली मे।

जरदालु[1] [Prunus Armeniaca]



तरुणी कुल (Rosaccae) के इसके वृक्ष मध्यम ऊंचाई के, पत्र—२-३ इच लम्वे, १½—२ इच चौडे, दोनो ओर को मुडे हुए, अण्डाकार, दतुल, तीक्ष्ण नोकदार पीछे की ओर कुछ रोमश, पत्र—वृन्त—१ इच लम्वा, पुष्प—वसत से ग्रीष्म के आरभ काल तक, एकाकी या गुच्छो मे, प्रथम गुलाबी, फिर श्वेतवर्ण के, फल—गोल, चिपटे, आलूबोखारा जैसे, किन्तु कुछ छोटे, लगभग १ इच लम्वे, ग्रीष्म से शीतकाल के प्रारम्भ तक आते हैं। इन फलो को ही जर्दालु खुवानी आदि तथा अग्रेजी मे एप्रिकॉट (Apricot) कहते है। ऊपर शीर्पस्थान मे लेटिन नाम इसके वृक्ष का हे।

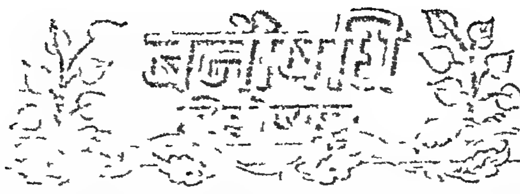
ताजी दशा मे ये फल श्वेताभ हरितवर्ण के तथा सूखने पर भूरे या रक्ताभ पीतवर्ण के हो जाते हे। फलो के भीतर जो छोटे बादाम जैसी किंतु चिकनी गुठली होती है, उसके अन्दर बादाम-गिरी जैसी ही गिरी निकलती है। अत कोई इस फल को शकर-बादाम या शकरपारा भी कहते हैं। ताजे की अपेक्षा शुष्क फल ही उत्तम होता होता है। इसके किसी वृक्ष के फल मधुर या मधुराम्ल



PRUNUS ARMENIACA LINN

[1] आलुक (आड़ू) (Prunus) के ही आलूबुखारा, आलूचा और जरदालु ये उपभेद हैं। गुण धर्म प्राय सबके एक जैसे ही हैं। किंतु इनमें यह जर्दालु श्रेष्ठ है।

चरक व सुश्रुत मे बादाम, अखरोट आदि मेवा फलों के साथ जिस 'उरुमाण' फल विशेष का उल्लेख है (च सू अ. २७ तथा सु सू अ. ४६) और जिनका गुणधर्म स्निग्ध, मधुर, उष्ण, गुरु, बल्य, शरीर पुष्टिकर आदि कहा गया है, उस उरुमाण को ही कई विद्वान् महानुभाव जर्दालु मानते है। हम भी ऐसा ही मानते है।



और किसी के अगन ही होते हैं। बीजो की गिरी किसी की मधुर तो किसी की कडुवी होती है।

पाश्चात्यानुसार इसका मूल उत्पत्ति-स्थान आर्मिनिया तथा काकेशस का पर्वतीय प्रदेश है। किन्तु भारत मे यह अति प्राचीन काल मे उत्तर पश्चिम हिमालय प्रदेश, पजाब, दक्षिण मे मैसूर आदि प्रान्तो मे लगाये हुये पाये जाते है। कहीं-कहीं ये स्वय भी पैदा हुए देखे गये है। अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, तथा यूरोप और अफ्रीका के पर्वतीय प्रदेशो मे ८ से १२ हजार फुट की ऊंचाई पर ये पाय स्वयजात और बागों मे लगाये हुये भी प्रचुरता से है।

नाम–

सं –उरुमाण, पीतालुक। हि.–जरदालु, कश्मालु, (आलू काश्मीरी), खुबानी जरदारु, खुरमानी, जर्दालु खुल्लू इ.। म –जरदालु। गु – आलु। अं –एप्रिकाट (Apricot)। ले --प्रूनस आर्मीनिएका।

रासायनिक संघटन---

ताजे पके फलों मे प्रति औंस ०.२ ग्राम प्रोटीन; २ ग्राम कार्वोहायड्रेट; ५ मि ग्राम क्याल्सियम, ०१ मि० ग्रा० लोहा ०.१ मि. ग्रा निकोटिनिक एसिड, व्हिटामिन ए० २ १२, बी०१ ३ या २ यूनिट, सी० ३ मि ग्रा मिलते है। शुष्क फलों मे १ ४ ग्रा० प्रोटीन, ११ १ ग्रा० कार्वोहायड्रेट; २६ मि० ग्रा० कॅल्सियम, १.२ मि० ग्रा० लोह, १५ मि ग्रा खनिज द्रव्य, ० ६ मि ग्राम० निकोटिनिक एसिड तथा व्हिटामिन ए १४ २० एव बी० २ ०१२ यूनिट पाये जाते है।

बीजो की गिरी मे प्र० श० ४०–५० एक वर्णहीन तैल होता है, जो थोडी देर रखने पर पीला पड जाता है। इस तैल का गुण धर्म वादाम-तैल जैसा है।

प्रयोज्य अग—फल, गिरी, पत्र और तैल।

गुण धर्म व प्रयोग –

मधुरफल—गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, विपाक मे मधुर त्रिदोषहर, ज्वर मे हितकर, सारक, वल्य, बृहण, दाह-तृष्णा-निवारक, अर्श, प्रमेह, रक्तविकार, अरुचि, वात-विकारो मे लाभदायक है। अम्लफल-स्निग्ध- शीत, कफ पित्त-वर्धक, अरुचि, दाह, तृष्णा-निवारक है। कोष्ठबद्ध वातपित्त विकारो, तथा विवन्ध (मलावरोध) आदि मे व वाजीकरणार्थ फलो का विशेष उपयोग किया जाता है।

मलावरोध पर—फलो की गुठली को हटाकर, ऊपर का गूदा ४ तोला रात्रि के समय १५ तो जल मे उवाल व छानकर, या फाण्ट विधि से तैयार कर पीने से प्रात मलशुद्धि हो जाती है। अर्शरोगी के तथा ज्वरावस्था के मलावरोध पर यह फाट विशेष हितकारी है। यह कोमल प्रकृति के स्त्री पुरुष, वालक एवं सगर्भा स्त्री को भी दिया जा सकता है। आमाशय के शोथ पर भी लाभ होता है।

नोट–पैत्तिकज्वर एव अन्य पैत्तिक विकारों में तथा रक्तविकारो मे तृष्णा, दाह, जलन आदि निवारणार्थ फलों का हिम (रात्रि में भिगोकर प्रात मल छानकर निकाला हुआ जल) विशेष लाभकारी है।

पित्त ज्वर की दशा मे अधिक तृष्णा, कठशोष, वेचैनी होने पर फल के गूदे का टुकडा मुख मे रखकर वार-वार चूसते रहने से लाभ होता है।

बीजो की गिरी—यदि मधुर हो तो दीपन, स्नेहन, पित्तसारक, अनुलोमन, वल्य, बृहण एव वाजीकरण है। इसके गुण धर्म वादामगिरी जैसे ही है। कडुवी गिरी उष्ण और रूक्ष होती है।

तैल—विरेचक, शोथहर व कृमिघ्न है। कडुवी गिरी का तैल अश्मरी-भेदक है।

कृमि-विकार पर—तैल को उष्ण जल मे मिलाकर पिलाते है। विशेषत कडुवी गिरी का तैल ४॥ मासा तक पीने से तीव्र विरेचन होकर उदर-कृमि नष्ट होते है।

कर्णशूल कृमि कर्ण एव बाधिर्य पर—तैल को कान मे डालते है।

पत्र—शीत एव रूक्ष है। शोथ-युक्त वेदना पर पत्र को पीसकर लेप करते है। और इसका फाण्ट पिलाते है। ये कृमिघ्न, कृमिनिस्सारक व शोथहर भी है।

कृमि-रोग पर—पत्र का क्वाथ देते है, इससे मूत्र भी खुलकर होता है। अश्मरी पर भी यह क्वाथ या फाण्ट पिलाते है।

पत्तों को पीस कर नाभि पर लेप करने से भी उदर कृमि नष्ट होते हैं।

गुद-शोथ पर भी इसका लेप करते हैं।

कर्णशूल एवं कृमिकर्ण पर—इसका पत्र रस (विशेषत कडुवे वृक्ष के पत्तों का रस) डालने से शीघ्र लाभ होता है।

जीर्ण अतिसार पर—शुष्क पत्र-चूर्ण ७ मा तक की मात्रा में शीत जल से पिलाते हैं।

पुष्प—शीत और रूक्ष हैं। सकोचक, व रक्तस्तभन हैं। जख्म आदि के रक्तस्राव-निरोधार्थ पुष्पों के चूर्ण को बुरकते हैं।

नोट—मात्रा -फल-४ से १० नग। गिरी—१—२ तोला पत्र-क्वाथ ५-१० तोला। तैल १-३ मा०।

फलो के अधिक मात्रा में खाने से अग्निमाद्य, आध्मान, तथा कभी-कभी अतिसार होता है। वृद्धो के लिये यह हानिकर है।

हानिनिवारणार्थ—शक्कर, मस्तगी सोंफ आदि का सेवन कराते है।

इसका प्रतिनिधि–आलू बुखारा या आड़ू है।

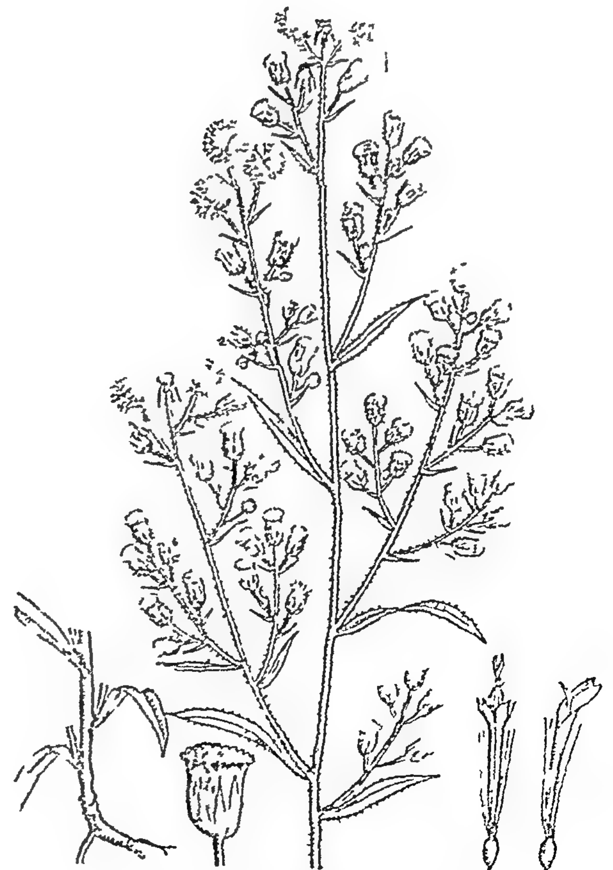
जरायुप्रिया[1] [*ERIGERON CANADENSIS*]

भृगराज (Compositae) कुल के इस बहुशाखी पौधे के पत्र २.५ से ७.५ से०मी० तक लम्बे व रोमश होते हैं। पुष्प–छोटे छोटे पीतवर्ण के पुष्प-वृन्त–गुलाबी रग का, गन्ध पोदीना की गध जैसी तथा स्वाद मे कुछ कडुवा व कसैला होता है। औषधि-कार्य मे पुष्प तथा तेल लिया जाता है।

इसके पौधे उत्तर पश्चिम हिमाचल प्रदेश, काश्मीर आदि, पजाब तथा उत्तरी गगा के मैदानो मे विशेष पाये जाते है। प्राय उष्ण प्रदेशो मे यत्र-तत्र यह पैदाहोता है।

नाम—

सं०–जरायुप्रिया, माक्षिकविषा, पालिता। अ०–फ्लीबेन (Fleabane), स्क्वा वीड (Squa weed) ले०—एरीजेरान कॅनेडेन्सिस। ए. विस्कोसम (E Viscosum)


जरायुप्रिया
ERIGERON CANADENSE LINN

---

[1] जरायुप्रिया यह संस्कृत नाम इस बूटी के लेटिन Eri अर्थात शीघ्र ही योग्यकाल के पूर्व ही Geron अर्थात् वृद्ध होना, वसत ऋतु के पूर्व ही इस पौधे का जीर्णशीर्ण होना, इस अर्थ का द्योतक है। जरायु या वृद्धावस्था प्रिय है जिसको वह जरायुप्रिया।

दूसरे अर्थ मे जरायु अर्थात गर्भाशय के लिए जो विशेष गुणकारी (प्रिय) है, वह बूटी।

यह पौधा मक्खियों के लिए घातक होने से इसका माक्षिकविषा यह दूसरा संस्कृत नाम रक्खा गया है। अंग्रेजी के Flea bane शब्द का भाषान्तर है।

रासायनिक संघटन—

इसमें एक उड़नशील प्रभावशाली तेल तथा एक तिक्त द्रव्य और टेनिन होता है। इसका तेल वाष्पीकरण क्रिया द्वारा निकाला जाता है। जो फीका, पीत वर्ण का एवं तरल होता है। किंतु पुराना होने पर यह गाढा, काला एवं तीव्र गन्ध-युक्त हो जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

शीत-वीर्य, सकोचक, रक्तस्राव-रोधक और मूत्रल है। इसके तेल की क्रिया तारपीन तेल जैसी किंतु सौम्य है। जरायु या गर्भाशय पर इसकी क्रिया विशेष लाभप्रद है।

गर्भाशय से होने वाला रक्तस्राव, रक्तप्रदर, तथा वस्तिशोथ, आमातिसार वातनलिका का प्रदाहयुक्त नजला और मूत्राशय के प्रदाह में इसका उपयोग किया जाता है।

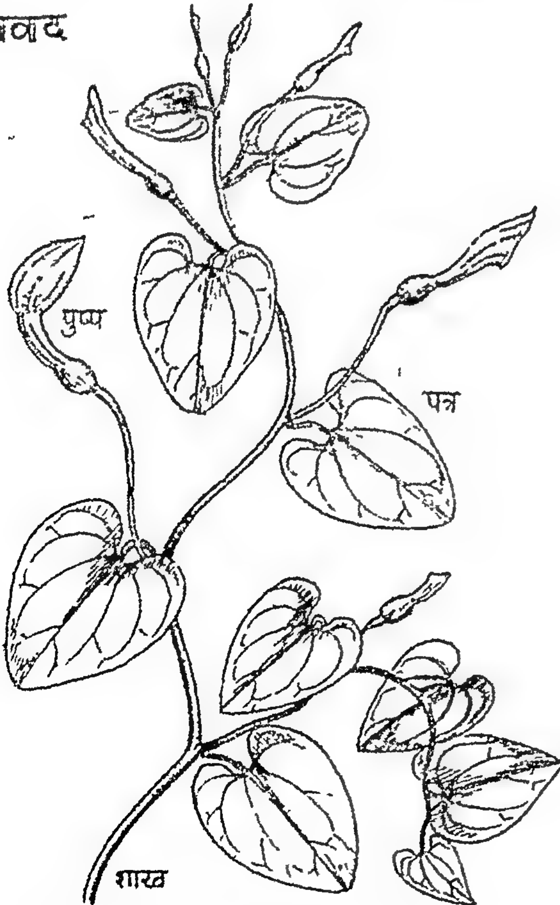
तेल की मात्रा—५ से १० बूंद तक दी जाती है। इसके पौधे को लाकर तथा उस पर दूध छिड़क कर घर के कमरे में लटका देने से समस्त मक्खियां उस पर आकर्षित होकर नष्ट हो जाती हैं।

जरिष्क दे०—दारुहल्दी में। जरीर दे०—त्रायमाणा में।

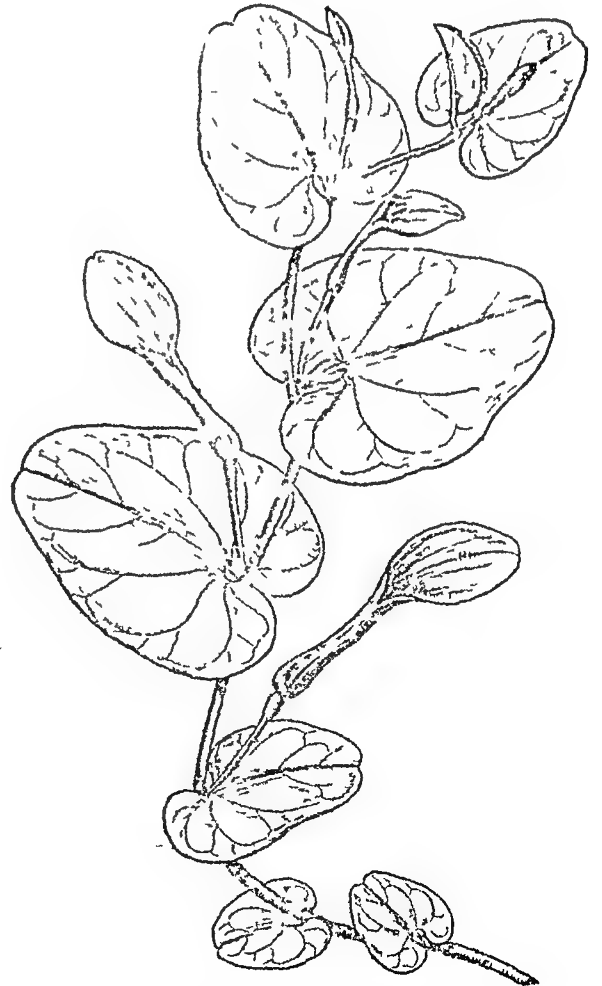
जरावंद तवील (Aristolochia Longa)

जरावन्द तवील तथा जरावंद मुदहरज ये दोनों ईसरमूल कुल (Aristolochi aceae) की यूनानी नाम की बूटियां दक्षिण यूरोप में पैदा होती हैं। भारत में नहीं।

इनकी जड़ें विदेश से यहां लाई जाती हैं। यूनानी वैद्यक में ये प्रयुक्त हैं। गुणधर्म प्राय ईसरमूल जैसे ही हैं।



ARISTOLOCHI LONGA LINN.



आ०- जरावन्द मुदहरज
ARISTOLOCHIA ROTUNDA LINN

जरुल (*LAGERSTROEMIA FLOSREGINAE*)

मदयन्तिका–मेंहदी-कुल (Lythraceae) के विस्तीर्णशाखायुक्त इस बड़े वृक्ष की छाल चिकनी, फीके रङ्ग की, पत्र-१०-२० से० मी० लम्बे, ३ ८-८ ५ से मी चौड़े, सूक्ष्म रोमश, पृष्ठ भाग में अधिक नसों के जालों से युक्त, पुष्प–ग्रीष्मकाल में ५ से ७.५ से० मी० लम्बे, फीके लाल रंग के, फल–लम्बगोल, १ से १। इन्च लम्बे, लाल रंग के, बीज ३-३ इंच लम्बे, फीके, धूसर वर्ण के होते हैं। इनके फल बहुत देर में पकते हैं।

पीले और लाल रंग के भेद से ये वृक्ष दो प्रकार के होते हैं।

पूर्वी बंगाल, चटगांव, आसाम, बर्मा, तथा पश्चिमी किनारे पर ये वृक्ष स्वयंजात या लगाये हुए पाये जाते हैं।

नाम–

हि०—जरुल अर्जुन। बं०—जारुल अजहार। म०-तामण, बोंन्डा, बुन्डा। ल०—लेगरस्ट्रीमिया फ्लॉस्रेजिनी।

गुणधर्म व प्रयोग–

संकोचक, शीतवीर्य, उत्तेजक, क्षुधावर्धक, ज्वरघ्न, व मेदोत्पादक हैं। इसकी छाल विशेषतः उत्तेजक व ज्वरघ्न है। मूल पत्र विरेचक, बीज-मादक, निद्रा लाने वाले हैं।

पीले वर्ण का पत्ता–गुरु एवं कफ-विकारों को बढाने वाला है। लालवर्ण का आमाशय तथा यकृत को शक्तिदायक है। यह मूत्रकृच्छ्रनाशक, तथा वाजीकरण भी है।

मात्रा–चूर्ण–१ से ८ माशा तक। स्वरस ७ तोला तक

अधिक मात्रा में यह विष्टम्भकारक और कफोत्पादक होता है। हानि-निवारणार्थ–सौंफ और गुलकन्द देते हैं। इसका प्रतिनिधि-खट्टा सेव या नासपाती है।



जल कुम्भी (*PISTIA STRATIOTES*)



पुत्रंजग एवं सूरण-कुल (Araceae) के उसके प्राय काण्डहीन, अनेक नवमूल युक्त क्षुप, काई जैसे जलाशयों पर तृण होते हैं। पत्रोद्भव से पूर्व इसकी शक्ति आकार के, मध्य भाग में फूली हुई मोटी कुम्भ या कलश जैसी होती है। इसे कुम्भिका नाम दिया गया है। पत्र-प्रत्येक डंडी पर ३ या ४ एक साथ, वृन्त-रहित, १-४ इंच लम्बे, मांसल, गोलाकार, गाढे, नीलवर्ण के, दोनों ओर सूक्ष्म रोमयुक्त होते हैं। पुष्प-वर्षाकाल में, पत्तों के बीच से जो डंडी सी निकलती है उन पर फूल, बैंगनी रंग के, लम्बगोल, एक खण्ड युक्त प्राय: गुच्छों में

लगते है। बीजाशय-वर्षा के बाद इसका फल अण्डाकार, पतली छाल या झिल्ली युक्त होता है, जिसमे अनेक लम्बे बीज होते है।

इसके क्षुपो की वृद्धि प्राय रुके हुए जल वाले तालाब कूप या गड्ढो मे बहुत शीघ्र होती है। कूपो मे जल-शुद्धि के लिये इसे डाल देने से यह शीघ्र ही जल पर छा जाती है। इसकी अत्यधिक वृद्धि से जल विकृत भी हो जाता है। अत इसे बार-बार निकाल कर बाहर कर देते हैं। इसके दो भेद है। बडी को जल कुभा और छोटी को जल कुभी कहते है। इसकी जडे श्वेत तन्तुयुक्त होती है।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र तथा बगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश के जलाशयो मे, व समुद्र के किनारे भी पाई जाती है। अफ्रीका व अमेरिका आदि मे भी होती है।

नाम—स –कुम्भिका, वारिपर्णी, वारिमूली, गु डाल इ। हि –जलकुम्भी। म –गोंडाल, जलभाडवी, पानकु भी। गु –जलशखला, जल उपरनी वेला। व –टॉका पाना। अ.–ट्रॉपिकल डक वीड (Tropical duck weed)। ले –पिस्टिया स्ट्रे टिओटेस।

रासायनिक सघटन—सोडियम, पोटाशियम, मेगनीसियम, चूना, लोह, अल्युमिनियम, व सिलिसिक (Silicic), क्षार तथा इसकी भस्म मे पोटाशियम, क्लोराइड और सल्फेट पाये जाते है।

प्रयोज्य अग–पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त मधुर, विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, त्रिदोष-शामक अनुलोमन, मृदुरेचन, कफनि सारक, मूत्रल, दाहप्रशमन, रक्तस्तभक, है तथा रक्तप्रवाहिका, रक्तविकार, रक्तपित्त, कास, श्वास, मूत्र कृच्छ्र, ज्वर, कृमि आदि विकारो मे यह उपयोगी है।

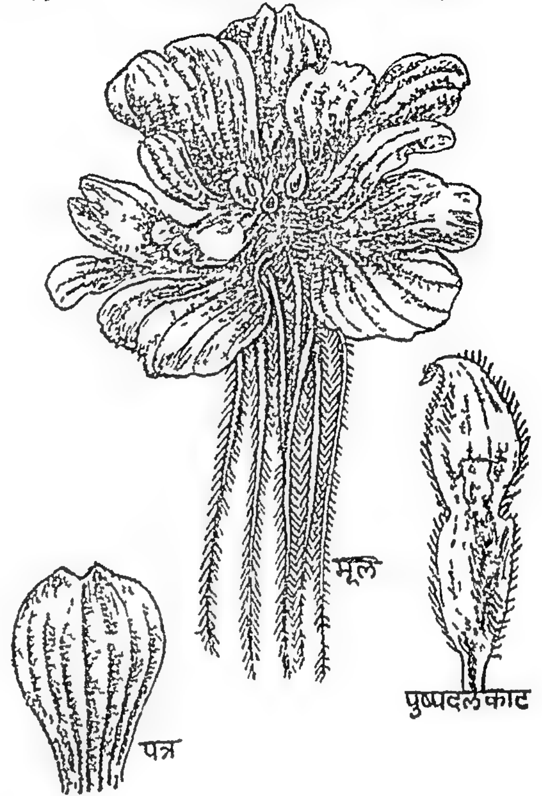
इसके पचाङ्ग की भस्म तथा तन्निर्मित क्षार को पानी नमक कहते है। इसका गुणधर्म जवाखार जैसा ही है।

(१) उदर–कृमि (कद्दूदाना) मे यह क्षार १-४ रत्ती की मात्रा मे घृत के साथ दिन मे दो बार देते है। कण्डू, दाद आदि पर भस्म को लगाते हैं।

(२) गलगण्ड (घेघा) मे भस्म को गोमूत्र मे मिला

जाल कुम्भी

PISTIA STRATIOTES LINN



थोडा गरम कर, छान कर पिलावे, तथा पथ्य मे कोदो का भात और छाछ का सेवन करने से लाभ होता है। (वृन्द)। बाह्य प्रयोगार्थ–पचाङ्ग का कल्क, चौगुने सरसो तेल मे पकावे। कल्क जब तेल मे पूर्णतया जल जावे, तब उतार कर उसी तैल मे मे उसे खूब घोट कर रख ले। इसे गरम कर लगावे और ऊपर रेडी-पत्र गरम गरम कर बाधे। शीघ्र लाभ होता है (गृह-चिकित्सा)।

इसकी भस्म को भिलावे के तैल मे मिला लेप करने से पुराना गलगण्ड भी नष्ट होता है।

स्वरस—(३) रक्त-प्रवाहिका तथा आमातिसार पर—इसके स्वरस को कच्चे नारियल के दूध और भात के साथ मिलाकर खिलाते है। (४) शुष्क कास व श्वास मे–स्वरस मे गुलावजल और शक्कर मिला, दिन मे २-३ बार थोडा-थोडा पिलाते है। (५) मूत्रकृच्छ्र पर–इसके स्वरस या पचाग का क्वाथ शक्कर मिला

पिलाते तथा पेड़ू पर इसे पीस कर लेप करते हैं। (६) जीर्ण चर्म रोग पर–स्वरस को नारियल-तैल में पकाकर लगाते हैं। (७) गलशोथ पर–स्वरस के साथ खाने के पान का रस मिला थोड़ा-थोड़ा पिलाते हैं।

पत्र—(८) व्रण और दाह पर पत्र–कल्क का लेप करते है। (९) रक्तार्श पर–पत्तो की पुल्टिस बना बाधने से अर्श की सूजन, वेदना और रक्तस्राव मे लाभ होता है। (१०) छोटे बच्चो के कास पर–पत्र को पान के बीड़े में रखकर चबाते तथा उसकी पीक को थोड़ा-थोड़ा बच्चे को पिलाते हैं।

मूल–स्नेहोपग, जलन व शोथनाशक व मृदुरेचक है।

(११) कास पर जड़ के चूर्ण को मिश्री के साथ फाक कर ऊपर से गुलाब-अर्क पिलाते है। (१२) श्वास पर— मूल के क्वाथ मे शहद मिला सेवन कराते है।

नोट–-मात्रा-स्वरस १-२ तोला। क्वाथ-४-१० तो०।

विशिष्ट योग—

(१) जलकुम्भी तैल—इसके पचाङ्ग का कल्क १६ तो०, तिल-तैल ६४ तो० तथा इसका ही स्वरस २५६ तो० एकत्र मिला, मदाग्नि पर तैल सिद्ध करले। कपड़े से छानकर शीशी मे भर रक्खे। इस तैल को कान मे डालने से कर्णशूल, पीव आना, नाडी-व्रण आदि दूर होते है। तैल-प्रयोग से पूर्व कान व व्रण आदि को साफ कर लेना चाहिये।

(श्री० स्व० यादव जी त्रिकम जी आचार्य)

(२) खटमलो के नाशार्थ यह प्रसिद्ध बूटी है—जहा खटमलो की विशेषता हो, उस स्थान पर इसके पचाङ्ग को लाकर रख देने मात्र से समस्त खटमल इस पर आकर्षित होकर इसके पास आते और मर जाते है। (नाडकर्णी)

जलजमनी–-देखिये—पाताल-गरुडी।

जल जम्बुआ (Alternanthera Sessilis)

अपामार्ग-कुल (Amarantaceae) के इसके लता जैसे पौधे आर्द्र भूमि पर या जलाशय के किनारे की भूमि पर ६ से १८ इंच के परिमाण मे फैले हुए रहते हैं। इसकी शाखा जैसे-जैसे आगे बढती है, वैसे वैसे यह अपने श्वेत तन्तुओ द्वारा अपनी जडे जमीन पर जमाता जाता है। पत्र—आमने-सामने १ से ३ इंच लम्बे, गोल तथा लगभग १ इंच चौड़े, अग्रभाग मे मोटे, पत्र–वृन्त-बहुत छोटा, सीधा,, पुष्प–छोटे-छोटे श्वेत या गुलाबी रंग के मुण्डकाकार गुच्छों मे, पुंकेसर ५ संयुक्त, स्त्री-केसर २ या ३ तक अतिसूक्ष्म, फल—चपटा या दबा हुआ सा होता है। फूल और फल का समय वर्षा से शीत काल तक है। फल मे प्राय एक ही बीज होता है।

कोई-कोई इसे जलभागरा कहते हैं। शायद संस्कृत मे इसे ही मत्स्याक्षी कहते है, यह नाम संशयास्पद है।

यह बंगाल मे तथा दक्षिण मे जलाशयो के किनारे बहुत पाई जाती है।

नाम—

हि—जलजम्बुआ। म.–लाचरी। गु—जलजांबवो। जलभंगरो। बं—सांची, शालिंच। ले.–आल्टरनेन्थेरा सेसिलिस।

रासायनिक संगठन–

इस बूटी के नूतन भाग पौष्टिक होते हैं तथा इसमे प्र श ५ प्रोटीन और लोह १६ ७ मि ग्रा० प्रतिशत पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

शीतवीर्य, संकोचक, ग्राही, पौष्टिक, मूत्रल, स्तन्य, दाहप्रशमन एवं मृदु भेदन या पित्तविरेचक है।

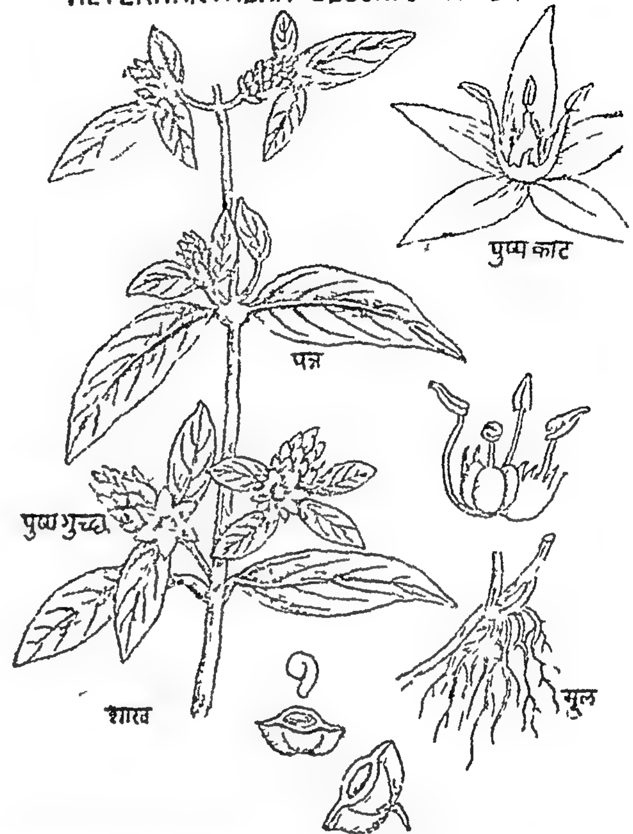
प्रसूता स्त्री को इसका स्वरस दूध के साथ या इसके रस से दलिया तैयार कर खिलाने से स्तनो में दुग्ध-वृद्धि होती है।

दाह-युक्त व्रणो पर, या नेत्र-दाह पर इसके पत्तो का लेप करते है।

सर्पदंश पर—इसकी छाल या पत्तो का रस गौघृत के साथ बार-बार पिलाते है।

नोट–ऊपर जिस बूटी का वर्णन किया गया है, वह भाव प्रकाश आदि निघण्टु ग्रन्थों की मत्स्याक्षी है या नहीं इसमें सदेह है। मत्स्याक्षी यह 'ब्राह्मी' का भी पर्याय विशेष है। इसके गुणधर्म एव वनस्पति-परिचय उक्त जलजम्बुग्रा बूटी से मिलते जुलते है[१]। इसे उत्तर प्रदेशीय भाषा में कई लोग गुटरी साग कहते हैं। कोमल पत्तों का शाक बनाकर खाते हैं।

इसका जल जम्बुआ यह नाम हमने वनौषधि-चन्द्रोदय से लिया है।



[१] मत्स्याक्षी को हि०–मछेछी, म०– गु. बं–मत्स्याक्षी कहते हैं। जलाशय के समीप आर्द्र भूमि में होती है पत्र—उददया इमली-पत्र जैसे, चिकने, मोटे पीताभहरित वर्ण के। शीत के प्रारम्भ मे इसकी उत्पत्ति होती है। शीत ऋतु मे ही फूलती है। पुष्प आदि सब ऊपर के जल-जबुग्रा जैसे ही होते हैं। पुष्प प्राय. मसूर के बराबर तथा गन्ध मछली के गन्ध जैसी। उसे मत्स्यगंधा भी कहते हैं। मत्स्यगंधा जलपीपली को भी कहते हैं। ग्रीष्म में यह सूख जाती है। हैजा पर–इसे पानी मे पीस छान कर पिलाते है। इस प्रकार पीस छान कर सेवन करने से नेत्र-विकार दूर होते है। अतिसार या संग्रहणी में इसका कल्क दही के साथ मिलाकर खिलाते है। फोडा फूटने के लिये इसकी पुल्टिस बांधते है।

जलदारु देखिये—जरदालु।

जलधनियां (Ranunculus Sceleratus)

वत्सनाभकुल (Ranunculaceae) का इसका वर्षायु कोमल, खडा (सीधा) क्षुप १-३ फुट ऊंचा, काण्ड व शाखाए-मासल, पोली, पत्र—धनिया के पत्र जैसे कटावदार, कई खण्डो मे विभक्त, नवसादर या राई के समान तीक्ष्ण गन्ध-युक्त, पुष्प—$\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{3}$ व्यास के श्वेत या पीली पखुडियो से एव पीले परागकोष युक्त, सरसो के पुष्प जैसे, फल—हेमन्त और शिशिर ऋतु मे, लम्ब गोलाकार, मृदु रोमश, छोटी पीपल जैसे होते है।

इसके क्षुप जलाशयो के समीप, उत्तरी भारत, बगाल सिन्ध, बिहार, आसाम पूर्वीय पजाब आदि के जलप्रचुर स्थानो में अधिक पाये जाते है।

(१) देवकाडर नाम हिन्दी मे इस जल-धनिया को तथा जलपीपल को भी दिया जाता है। जिससे इन दोनो भिन्न भिन्न बूटियो मे भ्रम होना सभव है। वैसे ही जलधनिया का जो लेटिन नाम ऊपर शीर्ष-स्थान मे दिया गया है। यही नाम कही-कही जल पीपल को भी दे दिया गया है। वास्तव मे जलपीपल का लेटिन नाम Lippia Nodiflora है। आगे जलपीपल का प्रकरण देखे।

बगला मे जलधनिया को ही शायद जल पीपल माना गया है। इसी से उक्त नामो मे गडबडी हुई है।

एक और वनधनिया होती है, जिसका वर्णन धनिया प्रकरण के नोट न. २ मे देखिये।

जलधनियाँ
RANUNCULUS SCELERATUS LINN.



(२) इस बूटी के पत्ते या पत्तो का रस त्वचा पर लगते ही जलन, खुजली एव छाला पड़ जाता है। इसी से कही २ इसे अगिया कहते हैं। किंतु अगिया बूटी इससे भिन्न हे, जिसका वर्णन अगिया के प्रकरण खण्ड १ मे दिया गया है।

(३) इस बूटी के पौधो की एव उनके पत्र-पुष्प आदि की छोटाई, वडाई के भेद से कई जातिया है। किन्तु गुण धर्म प्राय सब का एक समान हे।

नाम—

स.—काण्डीर, काण्डकटुक, सुकाण्डक, तोयवल्ली, लटुकरी इ.। हि.—जलधनियां, वनधनिया, कविराज, लटपुरिंगा, पलिका इ. (कहीं २ देवकाडर)। म –खाजकोलती, कुलगी। अ —वाटरसेलेरी (Water celery) ले.-रेननकुलस स्कलेरेटस। रे इंडिकस (R Indicus)

रासायनिक सघटन—

इसके समस्त अग मे एनिमोनिन (Anemonin) नामक एक प्रभावकारी, स्फटिक सदृश, दाहक, मदकारी एव विषैला तत्त्व होता है। तथा कुछ उडनशील तैल, रालादि भी पाये जाते हैं।

प्रयोज्य अग–पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, वातकफ नाशक, दीपन, पाचन, भेदन, शार्त्तवजनन है। तथा गुल्म, प्लीहा, उदररोग, उदरशूल, रजोरोध, एव विशेषत प्लेग पर प्रयुक्त हे।

रसग्रथियो के शोथ, ध्वजभग, आमवात, मकडी का विष, शीघ्र न भरने वाले व्रण, दुष्टव्रण, मस्से, चिप्परोग, क्रोष्टुशीर्ष, नाखूनो की सफेदी तथा खुजली आदि चर्म रोगो पर पचाङ्ग या पत्तो को पीस कर लेप करते हे।

अति तीक्ष्ण तथा विषाक्त होने से इसका अन्त. प्रयोग वडी सावधानी से किया जाता है।

यह रक्तोत्क्लेशक एव स्फोट–जनक होने से इसका लेपादि वाह्य प्रयोग, त्वचा के भीतरसगृहीत दूषित जलादि को वाहर निकालने के लिये होता है। जैसे—

(१) हस्तमैथुन जन्य ध्वजभग या नपु सकता मे—जो दूषित जल शिश्न पर जमा हो जाता है, उसे निकाल वाहर करने के लिये, इसके पत्तो का लेप करने से फु सिया उठकर, दूषित द्रव्य निकल जाता है। फिर मक्खन लगाने पर छाले, स्फोट आदि निवृत्त होकर लाभ होता व उत्तेजना प्राप्त होती हे।

(२) प्लेग पर—यह प्रतिरोधक एव रोग–नाशक दोनो प्रकार से कार्य करती हे। जहा प्लेग का प्रकोप हो, वहा इसका अचार, चटनी या शाकादि किसी न किसी रूप से प्रतिदिन १ से ४ तो तक सेवन करने से, या केवल इनके पत्ते ही २-४ नित्य चवा लेने से या पानी मे घोट कर पी लिया करने से प्लेग के आक्रमण का भय नही रहता।

प्लेग-ग्रस्त होने पर तत्काल ही इसे पीस कर प्लेग-ग्रथि पर लेप करे, प्रति २ या ३ घण्टे पर लेप बदलते रहे। ५-६ घण्टे मे ग्र थि पर छाले (फफोले) पडेगे, उनके फूट जाने पर दूषित जल रुई, कपडा, सोख्ता आदि से वही सुखा दे, अन्यथा अन्यत्र यह दूषित जल लग जाने

से वहा भी छाले पड जायेंगे। फफोलो का दूषित जल किसी पात्र मे लेकर अन्यत्र फेका भी जा सकता है।

साथ ही साथ इस बूटी का स्वरस या कल्क १ या २ तो. की मात्रा मे प्रत्येक आधे या १ घण्टे पर पिलावे। ५-६ घण्टे मे प्यास और दाह कम हो जावेगी। खुलकर पेशाब और पाखाना भी होगा। ज्वर-वेग, बेचैनी, घबराहट आदि लक्षण भी घटने लगेंगे। (सक्रामक रोगाङ्क धन्वन्तरि)

प्लेग के ज्वर एव दाह की शान्ति के लिए यूनानी प्रयोग इस प्रकार है—इसकी ४-५ पत्तिया पीसकर रोगी की कलाई पर हलका लेप करे। ऊपर से कपडा लपेट कर गरम जल से भरी हुई बोतल या गरम ईंट के टुकड़े का सेंक करे। दिन मे ३ बार इस प्रकार सेंक करने से ६ घटे मे ज्वर उतर जाता है। कलाई पर जो छाला पडता है, उसे दो दिन के बाद साफकर व्रणवत् चिकित्सा करें। या मक्खन या शतधौत घृत लगावे। इस क्रिया से असली प्लेग-ग्रंथि का भी जोर कम हो जाता है। यदि ३ बार लेप करने से भी ज्वर न उतरे तो इस बूटी के ४-५ पत्ते पानी मे पीसकर पिलावे। ज्वर उतर जाने के बाद भोजन देने की जल्दी न करे। खूब क्षुधा लगने पर गाय का दूध अच्छी तरह पकाया हुआ गरम-गरम पिलावे। बाद मे साबूदाना की खीर, मूंग का यूष, या मासाहारी को मास का शोरवा कुछ दिन पिलावे। फिर भोजन देवें। अन्यान्य प्रयोग—

गज पर—पत्र-क्वाथ से सिर को धोते है।

दतपीड़ा पर—पत्रो को पीसकर उसकी लुगदी दात पर लगाते है।

रजोरोध पर—पत्रो को पीस, थोडा शहद मिला गुटिका सी बना गर्भाशय के मुख पर रखते है। प्रसव काल का रुका हुआ दूषित रक्त आदि भी इससे बह जाता है।

कठमाला पर—इसका प्रलेप करते है। दीपन-पाचन के लिये इसके हरे ताजे पत्रो को घृत मे भूनकर चूर्ण कर सेवन कराते है। इससे आमाशय की शक्ति बढती तथा मूत्र खुलकर होता है।

उकौत या छाजन पर—इस बूटी के मूल को तुलसी-पत्र के रस मे पीसकर लेप करते है।

अर्श पर—इसकी जड (मूल) को काली मिरच के साथ पानी मे पीस छानकर पिलाते है।

नारु पर—इसकी जड को गरम पानी मे पीसकर लेप करते है।

छीक आने के लिए—इसकी जड का महीन चूर्ण किंचित् प्रमाण मे सुघाते है। खूब छीके आती है।

शुक्रमेह पर—इस बूटी के फल को पान के बीडे मे रखकर खिलाते है।

नोट—१ मात्रा—चूर्ण २ से ८ रत्ती तक। बच्चो के लिए १ रत्ती।

अधिक मात्रा मे (६ माशे तक) खा लेने से इसके विपाक्त लक्षण—मुख, गला, आमाशय एव आत्र मे अत्यधिक दाह, वमन, विरेचन, जिह्वा-शोथ हो कभी-कभी रक्त की वमन आदि होने लगते है।

शमनोपचार—ताजा मक्खन, गोघृत या शुद्ध तिल-तैल पिलाते तथा इन्ही की मालिश कराते है। निर्विषी के चूर्ण को गोघृत के साथ खरल कर छाछ मिला पिलाते है) पथ्य मे गरम दूध मे या मूग के यूष मे, या चावलो के मण्ड मे घृत मिलाकर देते हैं। कुछ शांति प्राप्त होने पर बादाम का तैल या लुआब बेदाना पिलाते है। तैल बादाम नाक मे टपकाते है। सिर पर गुलाब तैल लगाते है। ईसबगोल का लुवाब अनार-रस के साथ सेवन कराते है।

२ इसका क्वाथ या जल मिलाकर निकाला हुआ रस वामक है। इसे कफ, पित्त एव विषादि निकालने के लिये देते है। किसी विषैले जानवर के काटने पर इसका क्वाथ या रस थोडा पिलाते है तथा इसे नीबू के रस मे घोट कर सलाई से नेत्रो मे आजते है।

पाश्चात्य प्रणाली से इसे मद्य मे मिला टिंचर तैयार कर रक्तार्तव आदि गर्भाशय के विकारो को दूर करने तथा स्तन्य (दुग्ध) वृद्धि के लिए सेवन कराते है।

इसके स्वरस को अल्प मात्रा मे शोधन, रोपण कार्यकारी मरहमो मे मिला, शीघ्र न भरने वाले व्रण, दुष्ट व्रण आदि पर लगाते हैं।

विशिष्ट योग—

१ टिंचर जलधनिया—इसका स्वरस १ भाग तथा मद्यसार या रेक्टिफाईड स्प्रिट १० भाग दोनो का मिश्रण कर मजबूत कार्क वाली शीशी मे ३ दिन बन्दकर रखे। फिर फिल्टर पेपर से छानकर शीशियो मे भर ले।

मात्रा—५ से १५ बूद तक, २॥ तोला तक शुद्ध जल मे मिला, १ या २ घटे बाद देते रहने से प्लेग का ज्वर उतर जाता है। स्त्री के गर्भाशय के विकार दूर होते है। स्तन्य-वृद्धि होती व आमाशय की पाचन-शक्ति बढती है। एतदर्थ इसे दिन मे २ या ३ वार देते है।

२ अचार या काजी जलधनिया—इसकी कोमल शाखाओ को काट कर पानी मे उबाले। नरम हो जाने पर नीचे उतार कर नमक मिला कर मिट्टी के पात्र मे भर धूप मे रख दे। २-४ दिन मे अच्छी अम्लता आ जाने पर, थोडा थोडा सेवन करने से वात–कफ के विकार दूर होते है।

३ तेल जल-धनिया—इसका स्वरस और तिल-तेल समभाग लेकर, मदाग्नि पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रख ले।

इसे पक्षाघात आदि वात-व्याधि पर तथा शरीर के कमजोर हिस्सो पर मालिश करते रहने से लाभ होता है।

४ जलधनिया द्वारा रौप्य भस्म—शुद्ध चादी के कटकवेधी पत्रो को ११ वार इसके रस मे बुझा कर इसके १ पाव कल्क (लुगदी) के बीच मे रख, सम्पुट कर २५ सेर कण्डो की आच मे गजपुट देवे। —अथवा

चादी के वर्कों को इसके रस मे ३ दिन खरल कर सपुट मे रख, २-४ उपलो की आच दे। ठडा होने पर निकाल कर पुन इसी प्रकार आच देवे। दूसरी या तीसरी अग्नि के वाद विना चमक की भस्म हो जावेगी।

मात्रा—१ रत्ती, उचित अनुपान के साथ लेने से वाजीकरण-शक्ति पैदा होती है।

स्मरण-शक्ति की वृद्धि के लिए तथा सदैव वने रहने वाले जुकाम आदि के निवारणार्थ उक्त भस्म का मिश्रण इस प्रकार वनाले—

वादाम, कद्दू, धनिया और सोफ की गिरी तथा खस खस प्रत्येक ५ तोला, दाना छोटी इलायची २ तोले और मिश्री २५ तोले, इन सबके महीन मिश्रण मे उक्त रौप्य भस्म अच्छी तरह खरल कर रखे। मात्रा—१ तोले दूध के साथ रात्रि मे सोते समय लिया करे।

(उक्त विशिष्ट योग वैद्य उदयलाल जी महात्मा-के लेख से लिए गये है)

जल नीम (Herpestis Monniera)

गुडूच्यादिवर्ग एव तिक्ता-कटुका-कुल (Scrophulariaceae) का इसका अतितिक्त स्वाद वाला, छोटा क्षुप होता है। जिसके काण्ड अतिकोमल, सरस, सूक्ष्म रोमश, ग्रन्थियुक्त होते है, तथा प्रत्येक ग्रन्थि से मूल निकलते है। यह सजल भूमि मे, कीच के ऊपर, हरा-भरा पसरा हुआ रहता है पत्र ½ से १ इच तक लम्बे १/१२ से ⅓ इच मोटे, गुच्छ पत्र आमने सामने, वृन्तरहित, कुछ मोटे से पृष्ठभाग पर सूक्ष्म काले चिन्हो से युक्त होते है। ये पत्र छोटे गुडूची के पत्र जैसे आकार प्रकार के होते है। पूर्व-ग्रीष्म या वर्षा के प्रारभ मे, पत्रकोण से निकले हुए, एकाकी, छोटे-छोटे, नील या श्वेत वर्ण के, पु केसर ४, बीजकोष या डोडी-प्राय फूलो के साथ ही ग्रीष्म काल मे, छोटी-छोटी १/६ इच लम्बी अण्डाकार, चिकनी, नुकीली, दो कोष्ठो मे विभक्त, अनेक फीके रग के सूक्ष्म बीजो से युक्त होती हैं। ये डोडी सूखने पर भूरे रग की हो जाती है।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र आर्द्र जलासन्न भूमि मे, प्राय कुओ के आसपास जहा पानी बराबर गिरता रहता है अधिक देखने मे आती है।

बगाल मे ब्राह्मी के स्थान पर इसका ही व्यवहार

किया जाता है। अत इसे वगीय-ब्राह्मी भी कहते हैं। राजनिघण्टुकार की क्षुद्रपत्रा ब्राह्मी यही है। जल के समीप पैदा होने तथा स्वाद मे नीम जैसी कड़ुवी होने से यह जल नीम कहलाती है।

वगीय कविराजो का अनुसरण करते हुए कई लोगो ने इस जलनीम को ही अपनी ब्राह्मी या मण्डूकपर्णी मान लिया है। वास्तव मे ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी ये दोनो शतपुष्पा कुल (umbelliferae) की बूटिया परस्पर किंचित् भिन्न एवं इस जलनीम से भी भिन्न हैं। ब्राह्मी या मण्डूकपर्णी की शुष्क पत्तियो मे कोई विशेष स्वाद या गन्ध नहीं होता, किंतु जलनीम के शुष्क होने पर भी तिक्त स्वाद रहता है। ब्राह्मी या म० पर्णी विपाक मे मधुर, शीतवीर्य एव दीपन है। शेष गुणधर्मो मे प्रायः तीनो (ब्राह्मी, म० पर्णी और जलनीम) समान है। (ब्राह्मी का प्रकरण देखें)

तुलसी कुल (Labiatae) के Lycopus Europaens लेटिन नाम की बूटी को भी हिन्दी मे जलनीम, काश्मीर मे गदभ गुण्डु कहते है। यह प्रस्तुत प्रसग की बूटी से एकदम भिन्न है। यह केवल शातिदायक है, तथा विशेषत. पुल्टिस के काम आती है।

नाम—

स०-क्षुद्रपत्रा ब्राह्मी, जलनिम्ब, जललघु ब्राह्मी। हि०-जलनीम, बरमी, सफेद चमनी। म०-बाम। गु०-कडवी लूणी, बांब, मुई ओकरा। ब०-छोट विरमी, छोपचमनी। अ०-थाईम लीव्हड ग्रेटिओला (Thyme leaved-gratiola), वा कोपा (Bacopa)। ले०-हरपेस्टिस मोनिएरा क्युनीफोलिया (Moniera, Cuneifolia) वाकोपा मोनिएरा (Bacopa Monniera)।

रासायनिक संगठन—

इसमे प्र० श० ०·०१ से ०·०२ तक जो ब्राह्मीन (Brambine) नामक क्षारतत्त्व होता है, वह कुचले के क्षारतत्त्व स्ट्रिकनीन (Strychinine) जैसा ही प्रभावशाली है। यह मेढक, चूहे आदि जानवरो के लिये अति विषैला है। इसकी अल्प मात्रा से रक्त का तनाव या भार कुछ बढता है, तथा श्वसन-क्रिया और आत्र, गर्भाशय आदि की अनैच्छिक मासपेशिया उत्तेजित होती हैं।

ब्राह्मी का ब्राह्मीन या ह्वेलारिन (Vellarin) नामक क्षारतत्त्व इतना विषैला नही होता। वह तो प्रत्यक्ष हृदय के लिये बल्य है, तथा इस जलनीम का क्षारतत्त्व अप्रत्यक्ष रूप से हृदयोत्तेजक होता है।

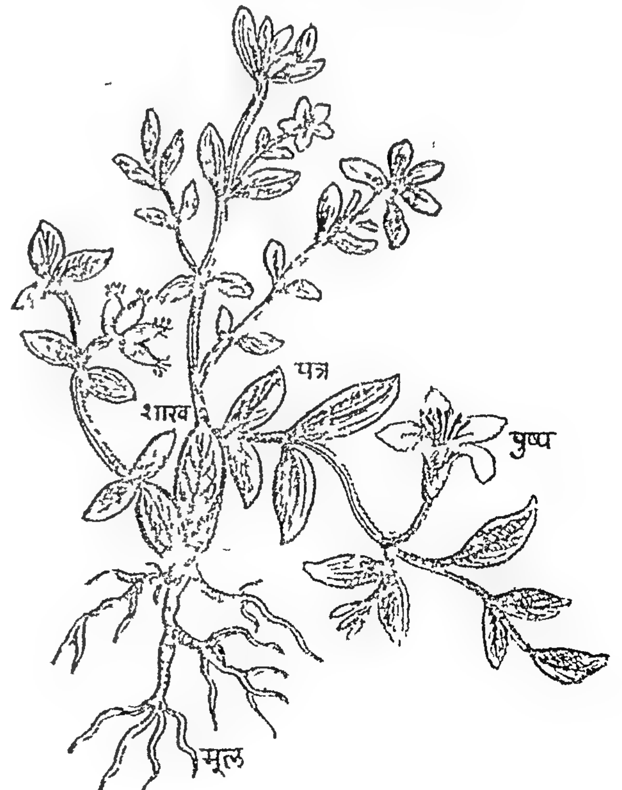
उक्त क्षारतत्त्व के अतिरिक्त इसमे कुछ ऐन्द्रिक अम्ल, राल आदि पदार्थ, तथा एक उडनशील तैल भी पाया जाता है।

प्रयोज्य अङ्ग—पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तिक्त, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफ-वात-शामक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, मूत्रल, वामक, रक्तशोधक, मेध्य, नाडीबल्य, वेदना-स्थापन, हृदयोत्तेजक, रक्तभार-वृद्धिकर, स्वेदजनन, गर्भाशय-संकोचक, कटु-पौष्टिक, ज्वर-शातिकर, शोथ एवं आक्षेपहर है।

जलनीम (ब्राम)
HERPESTIS MONNIERA LINN.



यह जीर्ण उन्माद, जीर्ण अपस्मार आदि मस्तिष्क विकारो पर तथा नाडी दौर्बल्य, अग्निमांद्य, आमदोष, विबन्ध मूत्रकृच्छ्र, उदर-रोग, शोथ, कृमि, वातरक्त, अर्श, कष्टार्त्तव, ज्वर, कुष्ठ-कण्डू आदि चर्मरोगो पर व्यवहृत है।

यह बूटी उत्तेजक होने से इसका प्रयोग रोग के तीव्र-प्रकोप काल मे करना ठीक नही है।

अर्श पर इसे त्रिफला के साथ सेवन करते है। स्वर-भग मे इसके पत्तो को घृत मे तल कर खिलाते है। उदर-शूल मे—पत्तो को पीस लेप करते है।

मसूरिका मे—इसके स्वरस मे मधु मिला उचित मात्रा मे पिलाते हैं।

आखो के सामने अधेरा या चक्कर आने पर—इसके पत्र का रस प्रलेप करते है।

फोडे को शीघ्र पकाने तथा उसे फोडने के लिये—इसे पीस कर बाधते है। त्वचा के रोग पर—इसे गिलोय और उशवा के साथ सेवन कराते है। शोथ पर—इसे गरम-गरम लेप करते हैं।

बालक की तृषा-शांति के लिये—पत्र-रस मे जीरा और शक्कर मिला पिलाते हैं। कर्णव्रण तथा कर्णस्राव पर—पचाङ्ग को पीसकर, गोमूत्र मे पका, सुखोष्ण पिचकारी कान मे लगाते है। ५-७ बार इस प्रकार पिचकारी लगाने से लाभ होता है। बिच्छू के दश पर—पत्तो को पीस लेप करते है।

(१) उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, भ्रम आदि मस्तिष्क-विकारो पर—इसके पत्र या पचाङ्ग-स्वरस १ तो० मे अकरकरा का या कुलजन का चूर्ण ३ मा० तथा उतना ही मधु मिला सेवन कराते रहने से उन्माद, चित्तभ्रम तथा अपस्मार मे लाभ होता है। इससे स्नायु-मण्डल की शक्ति बढती है।

उन्माद मे—पत्र-रस ६ मा० मे कूठ-चूर्ण २॥ मा० तथा १ तो० मधु मिला सेवन कराते है। उक्त विकारो पर इसके कल्क एव स्वरस द्वारा सिद्ध घृत का सेवन भी विशेष हितकारी है। आगे विशिष्ट योगो मे—घृत-जलनीम और तैल-जलनीम देखे।

(२) उपदश पर—इसके पचाङ्ग ३ मा० के साथ ५ नग काली मिर्च लेकर ५ तो० जल मे पीस-छानकर नित्य १ या २ बार सेवन कराते है। इससे उपदश तथा सुजाक एव तज्जन्य गठिया व रक्त-विकारो मे भी लाभ होता है। अथवा इसे मजीठ या चोपचीनी के साथ भी सेवन कराते है। अथवा—इसके ताजे पत्ते ३ मा० पीसकर १ तो० मधु के साथ सेवन करने तथा ऊपर से १ पाव गोदुग्ध-पान करने, और इसके पचाङ्ग को कूटकर १६ गुने पानी में चतुर्थांश क्वाथ कर, इस सुखोष्ण क्वाथ से स्नान करते रहने से उपदश की फुन्सिया, चकत्ते, व्रण आदि मे लाभ होता है। किंतु कुपथ्य से बचते रहना आवश्यक है। स्त्री-प्रसग आदि से दूर रहे। अथवा इस बूटी के कल्क को घृत मे भून कर खिलाने तथा व्रणो पर त्रिफला की भस्म बुरकते रहने से भी उपदश मे लाभ होता है।

(३) रक्त-विकार पर—रक्त-विकार के साथ ही सुजाक भी हो तो इसका भवका द्वारा खीचा हुआ अर्क दिन मे दो बार २॥-२॥ तो० की मात्रा मे पिलाते हैं, तथा पथ्य मे घृत, दूध, मक्खन आदि का सेवन कराते है।

तीव्र पामा (उकौत, छाजन) कण्डू आदि हो, तो रक्त-शुद्धि एव विकार-नाशार्थ ३ या ६ मा० यह बूटी ११ काली मिर्च के साथ पीस-छानकर पीवे। फिर प्रति-दिन बूटी की मात्रा दुगुनी करते हुए (किंतु काली मिर्च ११ ही रक्खे) जब १। या २॥ तो० बूटी की मात्रा हो जाय, तब ३ दिन तक उसी मात्रा मे लेकर, जिस क्रम से बढाया हो, उसी क्रम से मात्रा घटाते हुए (किंतु काली मिर्च ११ ही रक्खे) लावे। लगभग २६ दिन मे यह कोर्स पूरा होता है। कोर्स पूरा होने पर १ दिन उपवास करे। औषधि-सेवन-काल मे—गोघृत और चने की रोटी का भोजन करे। नमक, वह भी सेधा नमक बहुत थोडा, या न लेवे तो और अच्छा। दूध बिलकुल न लेवे।

बूटी ताजी ही लेना ठीक होता है। अन्यथा शुष्क बूटी का क्वाथ बनाकर सेवन करे।

(४) शीतपित्त पर—इस बूटी के साथ समभाग

काली मिर्च मिला १२ घण्टे तक इसी बूटी के स्वरस मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बनाले। ४-४ गोली प्रात-साय जल के साथ देते रहने से नया या पुराना यह रोग ७ दिन मे दूर हो जाता है। (गा० औ० र०)

(५) मूत्रकृच्छ्र, अवरोध तथा अश्मरी पर—इसके पत्र-रस मे जीरा और मिश्री का चूर्ण, अथवा—फिटकरी व कलमी शोरा-चूर्ण मिला पिलाते है; और इसके रस मे कपडा भिगो कर या पत्रो को पीस कर, कल्क को नाभि या पेड़ू पर रखते है।

अश्मरी हो, तो इसके १ तो० ताजे स्वरस मे हज्रत बेर (हज्रुल यहूद) की भस्म १ मा० मिला कर पिलाने से वमन तथा विरेचन के साथ पेशाब खुलकर होता, तथा अश्मरी निकल जाती है।

(६) बालको के तीव्र कास, जुकाम, एव फुफ्फुस के शोथादि विकारो पर—

इसका पत्र-रस १ से ३ माशा तक पिलाते है। वमन, विरेचन होकर लाभ होता है। साथ ही साथ इस बूटी को पीसकर पुल्टिस बना सुखोष्ण छाती पर बाधते हैं, या इसके कल्क का गरम-गरम लेप छाती पर करते हैं।

(७) ज्वर पर—इस बूटी के पचाग-चूर्ण की मात्रा १ माशा के साथ २-३ कालीमिर्च, जल मे पीस छानकर पिलाने से ज्वरवेग कम होता है। तथा इसीको कुछ दिनो तक सेवन करते रहने से, रस रक्तादि धातुये शुद्ध होती व बल बढता है।

गरमी के दिनो मे ज्वर-वेग की—शाति के लिए—इसके पत्ते १ तोला समभाग धमासा के साथ महीन पीस छानकर पिलावें। यदि इसमे १ तोले बनमूग भी मिला ले तो ज्वर के बाद क्षुधा एव पाचन-शक्ति की वृद्धि होती है।

वात-कफ-ज्वर मे—इसके कल्क के साथ प्याज और बालू मिला पोटली बना स्वेदन करते हैं।

७ सन्धिवात गठिया—पर—इसका स्वरस किंचित् प्रमाण मे, घृत मिला पिलाते है। तथा इसके स्वरस मे थोडा पेट्रोल या मिट्टी का तेल मिला मालिश करते है। प्राय किसी भी शोथ-युक्त वेदना पर इसके स्वरस या कल्क के प्रलेप से लाभ होता है।

नोट—मात्रा—स्वरस आधा से १ तोला तथा चूर्ण ४ से ८ रत्ती।

विशिष्ट योग—

१ तैल—जलनीम (ब्राह्मी) इस बूटी के साथ वच, कूठ, दशमूल, एरण्डमूल, नागकेशर, तेजपात छरीला, पानडी, जटामासी, श्वेत चन्दन, दारुहल्दी, शखपुष्पी, खरेटी, व गिलोय प्रत्येक २-२ तोला लेकर सबको इस बूटी के क्वाथ मे पीसकर कल्क करें।

प्रथम दिन काले तिल के तैल ४ सेर मे उक्त कल्क व इस बूटी का ही स्वरस ४ सेर मिला मदाग्नि पर पकावे। दूसरे दिन उसी तेल मे भागरा-स्वरस ४ सेर मिला पकावे। तीसरे दिन शखपुष्पी-स्वरस ४ सेर मिला पकावे। फिर चौथे दिन बकरी का दूध ४ सेर मिला, तेल सिद्ध करे सिद्धहो जाने पर उतार कर तुरन्त ही छान लेवे। इच्छानुसार बेला, मोगरा आदि की सुगन्ध मिला सकते है।

इस तेल की मालिश सिर पर करते रहने से मस्तिष्क-शक्ति बढती है। जीर्ण उन्माद व जीर्ण अपस्मार मे अति हितकारी है। इसके नस्य व शिरोबस्ति विशेष गुणकारी है। (र० त० स०)

२ घृत—जल नीम (ब्राह्मी)—इस बूटी का स्वरस ४ सेर, घृत पुराना ४ सेर तथा वच, कूट और शख-पुष्पी की मूल, ये तीनो समभाग कुल ३२ तोला लेकर कल्क कर सबको एकत्र मदाग्नि पर पकाकर घृत सिद्ध करले।

मात्रा—½ तोला—से १ तोला तक, दूध के साथ, दिन मे दो बार सेवन से अपस्मार, योषापस्मार, उन्माद, नाडी-दौर्बल्य जन्य विकार (न्यूरेस्थेनिया आदि), स्वर भग (क्षय जन्य) आदि रोगो पर विशेष लाभ होता है

(नाडकर्णी)

जल नीली—दे० काई। जल पालक—दे० पालक में।

जल पीपली[1] (Lippia Nodiflora)



गुडूच्यादिवर्ग एव निर्गुण्डीकुल (Verbenaceae) के वहुवर्षायु, वहुशाखायुक्त, एव मछली के गन्ध जैसे गन्ध युक्त इसके लता सदृश क्षुप प्राय ६ इच से २ या ३ फुट तक की जमीन पर फैले हुए, सदैव हरे भरे रहते है। क्षुप के काण्ड-गोल, हरित पीताभ, रेखाकित चिकने, श्वेत रोम युक्त, पत्र—वृन्तरहित, छोटे-छोटे ¾ से १½ इंच चौडे, अभिमुख, नोकदार, निम्न भाग मे सकडे, ऊपर की ओर कुछ चौडे, गहराई तक दातदार, दोनो ओर रोमश, पुष्प—पत्रकोण मे निकले हुए १-३ इच लम्बे पुष्प-दण्ड के अन्तिम भाग मे वहुत छोटे-छोटे श्वेत या गुलावी रग के मजरी मे वृन्त-रहित, कुछ लम्बगोल आकार के लगते है। ये पुष्प ही वाद मे फल रूप मे परिवर्तित होकर छोटी पीपल जैसे दिखाई देते हैं। फल—ये फल लम्ब गोलाकार ¹⁄₁₂ इच व्यास के लगभग शुष्क एव छोटी पीपल जैसे ऊपर को उभरे, तथा दो वीज युक्त (एक वीज गोल, दूसरा कुछ चपटा सा) होते हैं। फलो को खाकर मछली मरती है, अत इसे मत्स्यादनी भी कहते है।

यह भारत मे विशेषत-दक्षिण के प्रान्तो मे तथा सीलोन मे, आर्द्र एव जलासन्न रेतीली भूमि मे विशेष होती है। वर्षाकाल मे अधिक फैलती है। काश्मीर की जलपीपली सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। जलपिप्पली को कोई महाराष्ट्री कहते है, किन्तु महाराष्ट्री इससे भिन्न है।

नाम—

स०-जलपिप्पली-मत्स्यगन्धा, शारदी, मत्स्यादनी। हि०-जलपीपली (ल), देवकांडर, कविराज, भुईं ओकरा, वुक्कन वूटी, पनिसिगा, सोकना। म०-जल पिपली, रतवेल। गु-रतवेलियो, रतवा (इस विषय मे पीछे टिप्पणी देखे)। वं०-वोडो वुक्कन, कांचडा घास। अं०—पर्पल लीपिया (Purple lippia) ले०-लीपिया नोडीफ्लोरा (कही कही जलधनियां का जो लेटिन नाम है, वही इसका भी दिया गया है)।

इस वूटी मे एक कड़ुवा तत्व पाया जाता है।

---

[1] इस वूटी के पर्यायवाची नामों में, विशेषतः गुजराती में जो रतवा, रतोलिया नाम पाया जाता है। वह भ्रमपूर्ण है। आयुर्वेदाचार्य श्री सन्तलाल जी दाधिमथ वैद्यराज, नारनौल के एक (धन्वन्तरि दप १ अंक ६ मे प्रकाशित) लेखानुसार—रतवा के क्षुप की ऊंचाई ५-६ फुट तक, तथा मूल में अंगुष्ठ जैसा मोटा होता है। १॥-२ फुट ऊपर चल कर इसके पतले पतले स्कन्ध चलते हैं। उनमें अधिक पतली टहनियां लगती हैं। इस तरह यह एक खासा झाड सा मालूम देता है। टहनियों में नीम की भांति सींक तथा सींक मे दोनों ओर पत्ते आकार में लम्बे, अग्रभाग में कुछ गोल ऐसे ४-४ से ८-८ तक लगते है, तथा एक पत्ता सींक के सिर पर होता है। फाल्गुन या चैत्र मास में, मूग या मोठ जैसी लम्बी फलिया आती है। उनसे स्याह, सुर्ख रंग के वीज निकलते है। रतवा और रतवा भेद से इसकी दो जातियां हैं। रतवी का आकार प्रकार रतवा से अपेक्षा छोटा होता है।

यह वूटी जहा कोई भी वृक्ष अंकुरित नहीं होता, ऐसे वालुकामय मरुदेश में भी अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होती है। किन्तु जल पीपली तो प्रायः जल-बहुल स्थानों में ही होती है। इसमें जलपीपली जैसी मत्स्य आदि की कोई गन्ध नही होती, तथा स्वाद मे मधुर होती है। इसमें पीपली जैसा कोई फल नही लगता प्रत्युत वीजों से भरी लम्बी फलियां आती है।

वालविसर्प (पल्ले की फुंसिया) पर—रतवा के पत्र जल मे औटा कर, उस जल से, इसी वूटी के क्षुप के मूल के पास ही किसी भी प्रातःकाल की या सायंकाल की सन्ध्या मे वालक को हाथों मे लेकर स्नान करावे, वस फुंसियां नष्ट हो जायेगी, प्राणो का भय नही रहेगा। किंतु जिस क्षुप के तले स्नान करावेंगे। वह रतवा का क्षुप जलकर सूख जावेगा। यह एक अत्यन्त चमत्कार है।

इसके पत्र व लाल चन्दन दोनों को घिसकर घुट्टी की तरह वालक को प्रातः साय पिलावें। तथा इसी का लेप फुंसियों पर करें।

यदि इस व्याधि मे वालक की मृत्यु हो जाय, तो पुन. जब गर्भ स्थित हो उस समय से प्रसव काल तक गर्भिणी को इसके ३ पत्र व ३ कालीमिर्च घोटकर प्रतिदिन प्रात पिलाते रहने से आगामी वालक इस रोग से सुरक्षित रहेगा। इत्यादि देखें धन्वन्तरि अनुभूत चिकित्साक पृ० २०७ व पृ० २०३।

प्रयोग अङ्ग—पचाङ्ग ।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, कषाय, विपाक मे कटु, शीतवीर्य (कोई उष्णवीर्य मानते है), रुक्ष, ग्राही, रोचन, दीपन, अनुलोमन, स्नेहन, वेदनाहर, वातकारक, हृद्य, स्तभकर, कफघ्न, वीर्यवर्धक, चक्षुष्य, रक्त प्रसादन, मूत्रल, तथा मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कृमि, दाह, व्रण, श्वास, कफ, चित्तभ्रम, मूर्च्छा तृषा, रक्तार्श,रक्तपित्त रक्तविकार, उन्माद आदि विकारो पर प्रयोजित है ।

दाह-युक्त शोथ, विद्रधि, गर्दन पर उठी हुई ग्रथि, वद, प्लेग की ग्रथि आदि पर तथा फोडो को पकाने के लिये पचाग को पीस कर पुरिटस वनाकर वाधते या प्रलेप करते है ।

मुख की झाई, दाद, तथा, नेत्रो के ऊपर के काले दागो पर इसका लेप करते है ।

रेचनार्थ—इसे ६ माशे, की मात्रा मे जल के साथ पीस कर पिलाते है ।

सिर-दर्द पर—पत्तो को पीसकर लेप करते है ।

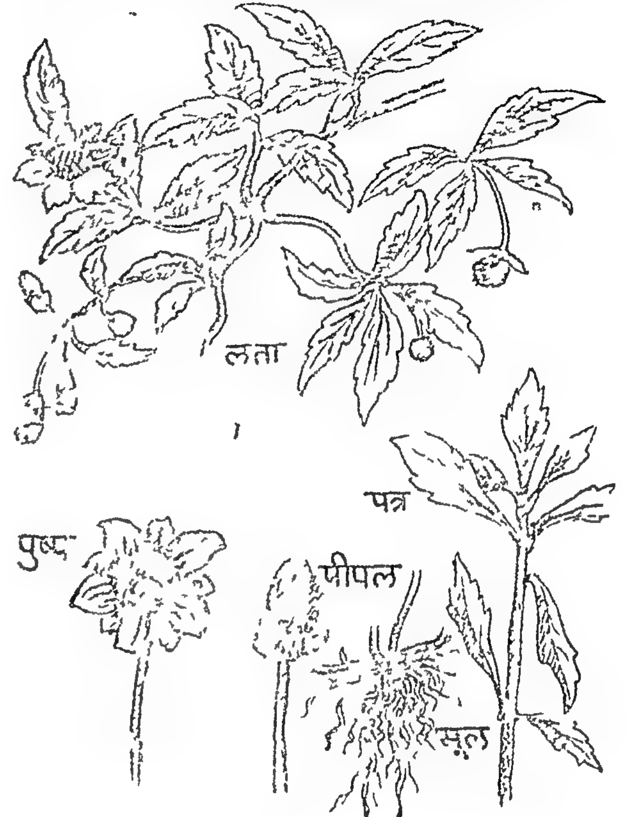
हाथ पैरो की जलन पर—इसे पीसकर लेप करते हैं । तथा आवला ७ माशा भिगोकर प्रात मल छानकर मिश्री मिला पिलाते हैं ।

कामशक्ति या अत्यधिक भोग-शक्ति को मन्द करने के लिए पत्तो को पीसछानकर मिश्री मिला पिलाते है ।

पित्त-ज्वर मे—इसके चूर्ण को ३ से ६ माशे की मात्रा मे मधु से चटाते है ।

१ सुजाक या मूत्रकृच्छ्र पर—इसके १ तोले पचागको पीस, १ पाव ठडे जल मे घोलकर, उसमे २।। तोला शक्कर तथा जवाखार व कलमीशोरा ६-६ माशा मिला, दिन भर मे ४ वार, ३-३ घटे मे पिलाने से, मूत्र खूब खुलकर होता और सुजाक मे लाभ होता है । उक्त १ पाव जल के मिश्रण की ही ४ मात्रा करे । इसे पीने से कभी कभी वमन हो जाती है, किन्तु घवडाने की कोई वात नही । (गृह चिकित्सा)

अथवा—सुजाक पर—इसके २ तोला ताजे पत्तो को दिन मे ३ वार, घोट छानकर मीठा कुछ भी न मिलाते



हुए सेवन कराते है ।

अथवा—अतिदाह एव पीडायुक्त मूत्र होता हो तो इसे जीरा या सोया बीज के साथ पीस छानकर पिलाते है ।

सुजाक जन्य सधि-वेदना हो तो इसका स्वरस पिलाते हैं, तथा वेदना-स्थान पर इसका लेप करते है ।

२ अर्श पर—विशेषत रक्तार्श हो तो इस की ताजी पत्ती १ तोला तथा काली मिर्च व मिश्री आवश्यकतानुसार लेकर सवको पीस छानकर प्रात. निराहार अर्थात् कुछ न खाते हुए, पीवे, तथा साय खाना खाने के वाद (३ ४ घटे वाद) पीवे, ऊपर से कोई स्निग्ध-पदार्थ खावे । यदि २-४ दिन वाद मस्सो मे पीडा या खुजली हो तो इसी वूटी को पीसकर गाय के मक्खन मे मिला टिकिया सी वना वाध दे तो वहुत शीघ्र लाभ होगा । २१ दिन सेवन करे तथा वाधे । यह खूनी ववासीर का अनुभूत योग है ।

अथवा—इस बूटी के स्वरस के साथ शीशम का पत्र-रस तथा मूली-पत्र का रस समभाग लेकर मंद आंच पर पकावे। गाढा हो जाने पर नीचे उतार कर उसमें समभाग असली रसौत मिला, छोटे बेर जैसी गोलियां बनाते। प्रात साय २-२ गोली शीतल जल मे सेवन करें रक्तार्श मे अत्यन्त लाभप्रद है—

(कविराज विश्वनाथ प्रसाद जी भिषगाचार्य लखनऊ। धन्वन्तरि वर्ष २३ अङ्क ८)

दाह-युक्त फूले हुए रक्तार्श के मस्सो को, इसके पचाग को पीस, लुगदी की पोटली बना उसे खूब गरम ईंटो पर गरम कर सेंकते है।

अर्श के मस्से बाहर न हो भीतर ही कष्ट देते हो तो इसके पत्तो और फलो की चटनी बना कर खिलाते है।

अथवा—इस बूटी का केवल स्वरस ही प्रात साय पिलाते रहने से वेदना-युक्त रक्तस्राव मे मात्र ही लगभग ३ दिन मे लाभ हो जाता है।

३ रक्तपित्त पर—इसके पचाङ्ग के चूर्ण १ तोला को, या ताजी बूटी को दूध के साथ घोट छानकर शक्कर मिला पिलाने से नाक, छाती, व गुदमार्ग से होने वाला रक्तस्राव दूर हो जाता है।

नकसीर पर तो इसे पानी के साथ पीसकर सिर पर बांधने या लेप करने से भी लाभ होता है।

४ बाल-रोगो पर—इस बूटी का फांट या क्वाथ १ से २॥ तोला तक की मात्रा मे दिन मे दो बार बालको के अतिसार, साधारण सरदी, कष्ट से पेशाव का होना, अश्मरी एव अजीर्ण आदि विकारो मे तथा प्रसूता के प्रसूति ज्वर मे भी दिया जाता है।

बालको के रक्तातिसार में इसके स्वरस को पिलातेहैं।

छोटे बच्चो को मलावरोध हो तो पत्र-स्वरस १० से २० बून्द तक मधु मिला चटाते है। पेट साफ होकर, पाचन-क्रिया में सुधार होता है।

बच्चो के मस्तक के फोडा, फुसी और खुजली पर पत्तो को पीसकर मक्खन मिला लगाते है। इसके साथ ही बबूल-पत्र व मुलतानी मिट्टी भी मिला लेने से और भी उत्तम लाभ होता है।

५ कष्टार्त्तव पर—इस बूटी के साथ मुनक्का और समुद्रशोष कूट पीसकर छोटे बेर जैसी गोलियां बना, प्रात साय १-१ गोली दूध के साथ सेवन कराते हैं। मासिक धर्म की रुकावट दूर होती है।

६. श्वास पर—ताजी पत्ती १ तोला का स्वरस निकाल उसमे ७ नग कालीमिर्च-चूर्ण मिला पिलाते है। मुख से होने वाले रक्तस्राव को भी यह दूर करता है। इससे अतिसार मे भी लाभ होता है।

७ उपदंश पर—इस बूटी के फलो को पीसकर मटर जैसी गोलियां बना, छाया-शुष्क कर दिन मे २-३ बार चिलम मे २ गोलियां रख धूम्रपान कराते हैं।

८ छाजन (उकौत, एग्झीमा) पर—छाया-शुष्क पचाङ्ग का महीन चूर्ण कर प्रथम छाजन वाले स्थान पर सरसों तेल चुपड़ कर ऊपर से यह चूर्ण बुरकते हैं। ऐसा करते रहने से ७ या १४ दिन में पूर्ण लाभ होता है।

नोट—मात्रा-चूर्ण-२ से ६ मासा। स्वरस-आधा से २ चम्मच तक।

विशिष्ट योग—

१ शर्बत जलपीपली—प्रथम इस बूटी के समभाग ब्रह्मदण्डी लेकर जौकुट कर रातभर दुगने जल मे भिगो रक्खे। प्रात मंदाग्नि पर पकावे। आधा जल शेष रहने पर, छानकर उसमे ४ गुनी शक्कर मिला शर्बत तैयार करलें।

मात्रा—२ से ४ तोला प्रात साय लेने से उष्णता तृष्णा, यकृत के विकार, रक्तविकार तथा उन्माद आदि विकार दूर होते हैं।

(२) भस्म-हिंगुल (सिंगरफ)—सिंगरफ रूमी १ तोला की डली लेकर १ पाव इस बूटी की लुगदी मे रख, गोला, बना लें। फिर १ पाव पीली सरसो का तैल लेकर कढाई मे चढा दे। तथा कढाई के बीच मे उक्त गोला रख, मध्यम आंच पर पकावे। जब ऊपर की लुगदी मात्र जल जावे, तो सावधानी से हिंगुल की डली को निकाल ले। ध्यान रहे वह डली जलने न पावे। फिर उसे अर्क-दुग्ध मे घोटकर (जब लगभग १० तो० आक का दूध समाप्त हो जाय तब) गोला बना, छाया

शुष्क कर, उस पर मोटा खद्दर का टुकडा लपेट कर (खद्दर शुद्ध श्वेत रग का तथा आध पाव वजन का हो) ऊपर आग रख दे। जब जल कर ठडा हो जाय तो सावधानी से, श्वेत रग की सिंगरफ भस्म निकाल, खरल कर रखे।

मात्रा—१ रत्ती, मक्खन या मलाई के साथ सेवन से शरीर की सन्धियो की पीडा, तथा वात-कफ के विकारों पर विशेष लाभप्रद है।

गर्म, वादी, गरिष्ठ पदार्थ, लाल मिर्च, तैल, खटाई आदि से परहेज रक्खें।

इस बूटी के द्वारा ताम्रभस्म, यशदभस्म, रजतभस्म, माक्षुरभस्म, लोह, सगजराहृत आदि की भस्मे भी बनाई जाती है। (धन्वन्तरि वर्ष २३ अ क ८)

नोट—इस बूटी की एक लाल फूल वाली जाति होती है। जिसके बीजों को जीरे के साथ लेने से वमन, प्यास की अधिकता, तथा जी की मिचलाहट दूर होती है। इसकी जड को दांत मे रखने से दंत-पीडा मिट जाती है, किंतु अधिक समय तक रखने से दांत गिर जाते हैं। (व. चं)

जल-फल दे०-सिंघाडा। जल-ब्राह्मी दे०-जल नीम। जल-भागरा दे०-जल जम्बुआ और भागरा मे। जलमहुआ दे०-महुवा मे। जलमाला दे०-बडा या जलवेत। जलवेत दे०-वेद।

जल सिरस

(*TRICHODESMA ZEYLANICA*)

श्लेष्मातक-(लसोडा) कुल (Boraginaceae) के इसके वृक्ष ३० से ६० से० मी० तक ऊचे, तना या पिंड मोटा, बेंगनी रग का, पत्र—५ से १० से० मी० तक लम्बे व १ २ से २ ५ से० मी० चौडे, पुष्प—नीले रग के और फल—पकने पर भूरे रग के होते हैं।

ये वृक्ष गुजरात, कोकण, और मद्रास के शुष्क स्थानो पर विशेष होते है।

नाम -

सं.-अम्बुशिरीषिका, भिंगी इ। हि-जलसिरस, ढाढोन, हेतेमुरिया। म—जलशिरसी, गाओझवान। ले.—ट्रायकोडेस्मा झेलेनिका।

गुण-धर्म व प्रयोग—

त्रिदोषशामक, अर्श आदि पर उपयोगी है। पत्ते स्नेहन और मूत्रल है। दाहयुक्त शोथ पर पत्तो की पुल्टिस बाधते हैं।

जलाधारी

ZANTHOXYLUM BUDRUNGA



जलाधारी (बदरग)
ZANTHOXYLUM RHETSA DC

जम्बीर कुल (Rutaceae) के इसके वृक्ष मध्यम आकार के नीबू वृक्ष के जैसे, छाल—कटकयुक्त फीकी पीले रग की पत्र—नीबू-पत्र जैसे, किंतु कुछ छोटे, पुष्प—श्वेत पखडीवाले, फल—गोल, नीबू जैसी गध

युक्त; बीज—लम्बगोल, चिकने, चमकीले नाले या काले रग के होते है।

यह हिमालय के उष्ण स्थानो मे आसाम, सिलहट, उडीसा, खासिया पहाडी, रगून, चटगाव तथा दक्षिण मे कोकण, ट्रावनकोर, मैसूर, मलाबार आदि स्थानो मे होता है।

नाम—

सं-तेजोवती, अग्नघ्न, लघुवल्कली इ.। स-जल धारी बुद्रङ्ग। म—तेजवला कोकली, टेफल। गु.—तेज ल। व—तामुल। ले—जैन्थोक्साइलम बुद्रङ्ग।

रासायनिक संगठन—

इसमे प्र० श० ० २४ क्षारतत्त्व होता व बीजो मे सुगधित तैल होता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

फल—तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, सकोचन, उत्तेजक, पौष्टिक, कफ-नाशक, क्षुधावर्धक, श्वास-नलिका-प्रदाह-शामक तथा हृद्रोग, कास, अर्श, अग्निमाद्य, अतिसार, मुख-दत तथा गल-रोग मे उपयोगी है।

मूल—सुगधित, अति स्वेदल, ज्वरघ्न तथा रज-स्थापनीय है।

हेजे पर—फल को अजवायन के साथ पीसकर पिलाते हैं।

सधिवात मे—फल को शहद के साथ देते है।

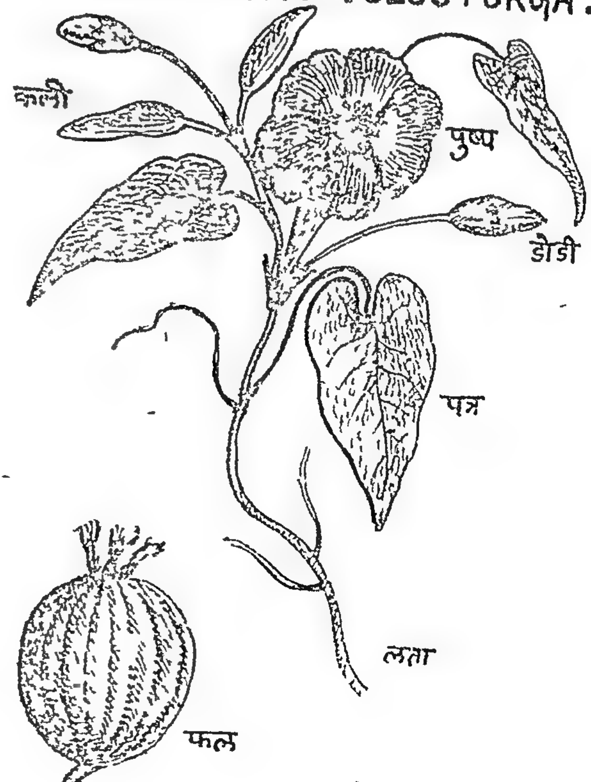
जलापा (*IPOMOEA CONVOLVULUS PURGA*)



त्रिवृत्तकुल (Convolvulaceae) की यह एक विदेशी लता-विशेष की ठोस गाठदार जड है, जो अण्डा वृत्ति, वेटील १ से ३ इञ्च (कभी-कभी ६ इञ्च) तक लम्बी, रूप आकार में शलगम या बडी हरड जैसी, वजन मे भारी, बाहर से गहरी-रेखाकित, झुर्रिया पडी हुई, काले-भूरे रग की, तथा भीतर से पीताभ मटमैली सी, प्राय स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे दागो से युक्त होती है। स्वाद मे-प्रथम किंचित् मधुर, पश्चात् तीक्ष्ण व अरुचिकारक तथा एक विशिष्ट प्रकार की धूम्र जैसी गन्धयुक्त होती है। इसकी बडी जड के २-२ या ४-४ टुकडे कटे हुए होते है।

नोट—उत्तरी अमेरिका के मेक्सिको प्रान्त के जलापा नामक स्थान विशेष मे यह अत्यधिक प्रमाण मे पैदा होती तथा बहुत प्राचीन काल से मेक्सिको प्रदेश के निवासी इसके रेचक गुण से परिचित हैं।

यूरोप निवासियो को इसका परिचय १८वी–१९वी शताब्दी मे हुआ। इसके पूर्व भ्रमवश इसे काली-रेवन्द-चीनी समझते थे। यूनानी मे इसका प्रचार थोडे समय से हुआ है। अब तो वैद्यगण भी इसका उपयोग खूब करने लगे हैं। किन्तु इसके स्थान मे निसोथ का प्रयोग उत्तम होता है। निसोथ को इसीलिये भारतीय जलापा (Indian Jalup) कहते है।



नाम—

हि०–जलापा. चलापा। अं०–जेलप (Jalup)। ले०–जलापा (Jalapa) यह जड का नाम है। इसकी लता का नाम–आइपोमिया कॉन्वॉलव्हुलेस पर्जा है।

रासायनिक संघटन—

इसमे प्र० श० ६ से १८ की मात्रा मे एक राल (Jalapoe resin) तथा जलापर्जिन (Jalapurgin) प्र० श० १० की मात्रा मे पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, विरेचन, कफ-नि.सारक, कफपित्त-नाशक है। यह संचित कफदोष मिश्रित जलीयांश को पानी जैसे पतले दस्तो द्वारा निकाल देता है।

इसमे सकमुनिया (I Resina) की अपेक्षा क्षोभक एव मरोड का प्रभाव कम है। आंत्र की श्लैष्मिक-कला की ग्रन्थियो पर अधिक उत्तेजक प्रभाव होने से इसमे जलीय विरेचक प्रभाव की अधिकता है। यह साधारण पित्त-विरेचक (Cholagogue) प्रभाव भी करता है। अल्प मात्रा मे तो यह केवल मृदुसारक है। किन्तु अधिक मात्रा मे तीव्र विरेचक है।

यह एक जलीय विरेचन होने से इसका प्रयोग विशेषत' शोफयुक्त विकृतियो मे शरीर से दूपित जल का अपकर्पण करने के लिये उत्तम होता है। जलोदर, तीव्र मलावरोध, आमवात, रक्तभाराधिक्य, जीर्ण प्रतिश्याय, वातरक्त, शिर शूल, अर्दित, पक्षवध, सर्वाङ्ग शोफ, मस्तिष्क गत रक्तस्राव, वृक्क शोफ, (Brightis disease), मूत्र-विपमयता (Uraemia), कामला आदि रोगो मे यह उपयोगी है। किन्तु आमाशयांत्र मे प्रदाह की अवस्था मे इसका प्रयोग नही करना चाहिये।

इसके चूर्ण को प्रमगानुसार गुलकन्द या शक्कर, या गुलावजल या सुखोष्ण मासरस से दिया जाता है। यदि इससे कुछ वेचैनी या घबराहट होवे तो सोफ का अर्क पिलाते है।

साधारण रेचनार्थ–इसका चूर्ण उचित मात्रा मे समभाग शक्कर मिला सेवन करने तथा ऊपर से १ पाव तक उष्ण जल पीने से, सरलता से १–२ दस्त हो जाते है। दस्त वन्द करना हो तो १ या २ रत्ती कपूर शक्कर के साथ पीस कर खा लेवे, और शीत जल पीवे।

जलोदर पर—इसे ३ या ४ मा० तक की मात्रा मे, हर तीसरे दिन, शक्कर मिला कर खिलावे, साथ ही पुनर्नवा मण्डूर १ मासा की मात्रा मे प्रात. सायं ६ मा० शहद मिलाकर सेवन करावे। उदर का दूषित जल दस्तो की राह से निकल जावेगा तथा सूजन भी दूर होगी। (गृह चिकित्सा)

नोट—मात्रा–४ रत्ती से १॥ या २ मासा तक। यह उष्ण प्रकृति वालों को अहितकर है। हानि-निवारणार्थ गुलकन्द और सोफ का अर्क देवें।

जलपादि चूर्ण (Pulbuis Jalapae Compositus) यह एक नान आफिसल योग है। इसमे जलापाचूर्ण ५ औस, एसिड पोटासियम टार्ट्रेट ९ औस, व सोठ आवश्यकतानुसार मिलाई जाती है। मात्रा—४ रत्ती से ३॥ मा० तक (१० से ६० ग्रेन)।

जव (*HORDEUM VULGARE*)

शूकधान्यवर्ग एवं अपने यव-कुल (Gramineae) के सर्वप्रसिद्ध इसके वर्षायु खडे क्षुप २० से ४० इच ऊचे पत्र—पतले, मृदु, रेखाकार, नोकदार, मजरी-उपागसहित ८–१२ इच लम्बी ½ इच चौडी, दो पक्तियो मे भगुर, अक्षयुक्त, तथा पार्श्वभाग की गौणमजरी (Spikelets) वृन्तयुक्त, पुंकेसर युक्त एव उपाग (Anus) अतिखुरदरा ६–१२ इच ऊचा होता है।

हिमालय के उत्तर पश्चिम एव पूर्व की ओर १३ हजार फीट की ऊंचाई तक तिब्बत, कश्मीर, अफगानिस्तान, वलुचिस्थान, उत्तरप्रदेश, विहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि प्राय उष्ण प्रदेशो मे तथा चीन, जापान, यूरोप मे भी इसकी अधिक उपज होती है। खेतो में यह

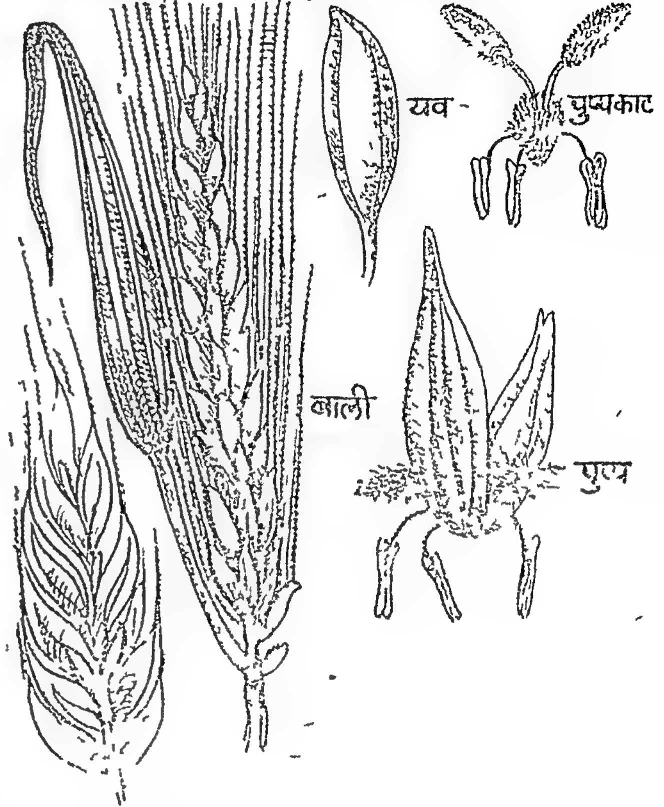
प्राय वसन्त ऋतु मे बोया जाता है। इसकी जगली जाति भी होती है।

भावप्रकाश मे इसके मुख्य ३ भेद इस प्रकार है—(अ) यव (सित-शूक श्वेत नोकयुक्त) (आ) अतियव (नि शूक—नोक या टुण्ड रहित) इसे मुडा जव कहते है तथा यह यव की अपेक्षा न्यून गुण वाला होता है। इसका विशेष विवरण 'आतजो' (प्रथम खण्ड मे) देखे। यह कृष्ण-अरुण वर्ण का होता है। (इ) तोक्य (हरे रग का शूक रहित छोटा पतला जव होता है, जो जई नाम से प्रसिद्ध है) यह अतियव से भी न्यून गुण वाला होता है।

उत्तरप्रदेश राजस्थान आदि मे आज जिस जाति विशेष जव की उपज की जाती है, उसी का प्रस्तुत प्रसग मे विवरण किया जाता है। भारत के दक्षिण एशिया मे यह धान्य नही होता। इसकी कुछ उपजातिया भी भारत मे पाई जाती है। उनके लेटिन नाम आगे नामावली मे दिये गये है।

आज जव के मुख्य उपज केन्द्र स्थान उत्तर भारत, चीन, जापान, एशिया, तुर्कस्थान, रोमानिया और पश्चिम यूरोप है।

ससार मे जितने प्रकार के धान्यो की उपज होती है। उनमें जव अत्यन्त प्राचीन, अनादिकालीन धान्य है।[1] आधुनिक विशेषज्ञो ने इसकी २०—२५ जातियो का



उल्लेख किया है किन्तु भारतवर्ष मे अति प्राचीन काल से इसके अन्यान्य नामो की अपेक्षा यव (जव) इस

---

[1] अथर्ववेद मे इसका उल्लेख इस प्रकार है—'देवा इमं मधुना सयुत यव सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषु। इन्द्र आसीत् सीरपति शतक्रतु कीनाश आसन मरुत सुदानव ॥'—अथर्व का ६, सू-३०।

भावार्थ यह है कि इस मधुसंयुत (मधुयुक्त यव-सक्तु) यव को देवताओं ने सरस्वती नदी के तट पर मनुष्यों को दिया। इसीसे आयुर्वेद मे प्रमेह या मधुमेह मे मधुयुक्त यव का सत्तू अन्न रूप मे दिया जाता है। उस अनादि काल में इन्द्र हलवाहा या प्रमुख जोतने वाला (सिरपति) तथा मरुत (देवगण) कृषक या किसान बना था। इस प्रकार की और भी सूक्तियां अथर्ववेद मे पाई जाती है।

इस यव की उत्पत्ति अथर्ववेद से भी पहले की मालूम देती है। इसीलिये कहा है कि इसे इन्द्र और वरुण देवो ने पैदा किया। तथा इसीलिये हवनादि वैदिक कर्मो मे इसे प्रमुख स्थान (यव-मुख्या) दिया गया है, और इसे 'धान्यराज', दिव्य, पवित्र धान्य की सज्ञाए दी गई है।

चरक के छर्दिनिग्रहण, स्वेदोपग तथा श्रमहर इन में इनका उल्लेख है, तथा कास, श्वास, राजयक्ष्मा, उदररोग, क्षतक्षीण, व्रण, विसर्प आदि प्रयोगों मे इसकी योजना की गई है। सुश्रुत ने स्तन्य-शोधक एवं स्तन्य-वर्धक तथा तर्पण, अपतर्पण क्रिया मे और पांडु श्वास, तिमिर आदि के प्रयोगों में इसे प्रयोजित किया है।

भारतवर्ष मे अति प्राचीन काल से इसके अन्यान्य नामों की अपेक्षा यव (जव) इस सामान्य नाम का ही अत्यधिक प्रचार होने से, प्राचीन वैदिक काल मे किस जाति के यवो की विशेष उपज की जाती थी, इसका निर्णय होना मुश्किल है।

सामान्य नाम का ही अत्यधिक प्रचार होने से, प्राचीन वैदिक काल मे किस जाति के यवों की विशेष उपज की जाती थी ? इसका निर्णय होना मुश्किल है।

नाम—

सं०-यव, धान्यराज, सितशूक, दव्यधान्य इ०। हि०-जव जौ। म०-सातु, जव। गु०-जव। य०-यव। अं०-बार्ली (Barley)। लै०-हॉर्डियम वलगर। हॉ० सेटिह्वम (H Sativum) हॉ डेकार्टिकेटम (H,Decorticatum) यह यूरोप व ग्रेट ब्रिटेन में होता है), हॉ० डेस्टीचिएम[1] (H Destichiem), हॉ० डिस्टिचन (H Distichum or H Gymno Distichun यह भी उक्त डेस्टीचिएम का एक भेद है, इसे पैगम्बरी या रसुली कहते हैं। यह तिबेट मे होने वाला निःशूक यव है), हॉ० हेक्सास्टिचन (H. Hexastichun इस सिनशूक-यव विशेष की भी उपज भारत में अधिकता से होती है। यह भारत का उत्कृष्ट यव कहा जाता है—(The barley par excellance of India), हॉ० ईजिसिराम (H Aegiceras यह तिबेट तथा हिमालय के कुछ अन्तर्भागों में होता है) इत्यादि।

रासायनिक संघटन--

इसमे जल प्र० श० १२ ५, अल्बुमिन ११ ५, कार्बोदक (शर्करा सह) ७०; स्थिर तैल १ ३, खनिजद्रव्य २ १, व्हिटामिन बी० १ प्र० श० ग्राम १५ मि० ग्रा०, बी २ तथा ए० अल्प-प्रमाण मे, केलसीयम और फास्फरस ० ०२५ मि० ग्रा०, लोह ३ ७ मि० ग्रा० सामान्यत. पाये जाते है।

इसकी राख मे लेक्टिक एसिड प्र० श० १२ ५, सेलिसिलिक एसिड २६, फास्फरिक एसिड ३२ ५ पोटास २२ ५ तथा केलसियम ३.५ पाये जाते है।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु ? कसैला, स्वादु, (मधुर) विपाक मे कटु व शीतवीर्य है[2]। यह लेखन, रूक्ष, अग्निवर्धक, मेधाकर, किंचित् अभिष्यन्दी, कंठ-स्वर को उत्तम करने वाला, बलकारक, वर्ण या कांति को स्थिर करने वाला, वात और मल वर्धक, तथा कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास, कास, ऊरुस्तम्भ, तृषा, रक्त, विकार (रक्तपित्त, कुष्ठादि), कठरोग, व चर्मरोग आदि मे उपयोगी है।

व्रण या व्रणशोथ पर इसका लेप तिल के समान हितकर है।

[1] यह जगली जव पश्चिम एशिया, अरेबिया, कैस्पीयन समुद्र के तटवर्ती प्रदेश, काकेशस के दक्षिण भाग तथा हिमालय के १० से १४ हजार फीट की ऊचाई पर पाया जाता है।

[2] स्वादु पटुश्च मधुरम् (वाग्भट सू अ. ६) इस सूत्रानुसार मधुर रस का विपाक मधुर ही होना चाहिए, किन्तु जव मधुर होने पर भी इसका विपाक कटु होता है। इस वैचित्र्य के निराकरणार्थ ही शायद सुश्रुत ने मधुर के साथ जव को कसैला भी माना है (यवः कषायो मधुरो-हिमश्च-सु० सू० अ० ४६) क्योंकि कषाय रस का विपाक प्राय कटु होता और कटु विपाकी द्रव्य गुण में लघु होते हैं, न कि गुरु। इसीलिए चरक और वाग्भट ने इसे स्पष्ट तया गुरु न कहते हुए 'अगुरु' कहा है (रूक्ष. शीतोऽगुरु. स्वादुः—स्वादु.-च० सू० अ० २७ तथा वाग्भट सू० अ० ६) जव यह एक विचित्र प्रत्ययारब्धी द्रव्य होने से मधुर व शीत होने पर भी गुरु या भारी नहीं या गुरुत्व इसमे न्यून है, यह दर्शाने के लिए ही 'गुरु' शब्द के सामने अकार प्रश्लेप, उक्त सूत्र मे किया गया प्रतीत होता है।

विचित्रप्रत्ययारब्धी (Empirical) द्रव्य वे होते है, जिनके गुणधर्मो की उपपत्ति या मीमासा, उनके रस वीर्य विपाक के द्वारा नही बताई जा सकती, जिनके विशिष्ट कर्म या प्रभाव को ही ध्यान में लाना पड़ता है जैसे-जौ व गेहू, मछली व दूध, सिंह व शूकर ये द्वन्द्व, गुणों मे प्राय. समान होने पर भी विचित्र-प्रत्ययारब्ध होने से (आरभक कारण की विचित्रता से) ही जौ-वातकारक, कफ, मास व मेद को घटाने वाला, मल मूत्र को साफ न करने वाला (आत्र में वात व मल की वृद्धि करने वाला, मूत्र के प्रमाण को घटाने वाला) तथा प्रमेह या मधुमेह मे हितकारक है। ये सब इसके गुणधर्म गेहू से विपरीत है। तथा मछली, दूध से विपरीत उष्णवीर्यादि गुण युक्त है। इत्यादि देखिये वाग्भट सू० अ० ६, तथा चरक सू० अ० २६ मे श्लोक ७० से ७४ तक। और भी कई उदाहरण इसके दिए गये है।]

केवल भावप्रकाशादि सग्रह ग्रन्थों मे इसके गुणों मे 'स्वर्योबलकरोगुरुः' ऐसा पाठ दिया गया है। यहा पर भी चरक के समान अगुरु पाठ होना युक्ति युक्त है। इसीलिए हमने ऊपर गुणधर्म-के प्रसंग में 'गुरु' शब्द के आगे प्रश्नार्थक चिन्ह लगा दिया है। यह रूक्ष है, तथा इसकी रूखी रोटीखाने से यह चिरपाकी होता है, इसलिए शायद इसे गुरु माना गया है।

गेहूँ की अपेक्षा इसमे पोषणांश कम होता है, तथा इसकी रोटी रुचिकारक, मधुर, लघु है, यह मल, शुक्र, वायु, बलकारी एव कफ विकारो को दूर करने वाली कुछ संग्राही, उदर मे आनाह एव वातकारक, तथा शरीर मे रूक्षता लाने वाली होती है। उष्ण प्रकृति एव स्थूल व्यक्ति के लिए हितकारी है।

किन्तु डा पेरीरा (Dr- Pereira) का कथन है कि यद्यपि जौ मे गेहूँ जैसी पिच्छिलता (Gluten) नही है, तथापि गेहू के जैसे ही इसमे अधिक प्रमाण मे नाइट्रोजन तथा अन्य पोषक तत्वांश है। ग्रीस के लोग पहलवानो को आहार रूप मे इसे दिया करते थे। सर्व-सामान्य उपयोग के लिए देशी जौ यूरोप से निर्यात किये गये थे। पर्ल जौ (Pearl or pot barley) की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है, क्योकि वह ताजा मिलता है। यह कुछ मृदुसारक होने से आत्र-शैथिल्य से पीडित व्यक्ति के लिये उपयोगी नही है। (नाटकर्णी)

(१) अतिसार पर—जौ और मूग का यूष सेवन करते रहने से आत्र की उग्रता शात होती है। तथा यह यूष—लघु, पाचन एव संग्राही होने से राजयक्ष्मा या उर क्षत मे होने वाले अतिसार मे भी हितकर होता है।

(२) श्वास पर—इसके आटे की आक के पत्र-रस की ७ भावनायें देकर, छाया शुष्क करले। फिर इसे शहद के साथ अथवा इसकी यवागू या काजी बनाकर सेवन करते रहने से कफ सरलता मे निकलता एव शाति प्राप्त होती है।

(३) मधुमेह मे—जौ रूक्ष एव कुछ कसैला होने से तथा इसमे कैल्सीयम युक्त फास्फोरस, पोटास आदि तत्त्व होने से, यह यकृत के द्वारा अग्राह्य शर्करा का आचूषण करता है। मधुमेही के लिये सितशूक यव लेकर शूक या तुष रहित कर भून व पीस कर सत्तू के रूप मे शहद और जल मिलाकर या दलिया के रूप मे तक्र या गौ के दूध के साथ प्रतिदिन थोडा-थोडा कई बार (कुल पाचन-शक्ति के अनुसार १० तोले से १ पाव या आधा सेर तक) सेवन कराना चाहिये। इसके अतिरिक्त और कुछ भी आहार न देवे दूध तथा घृत पर्याप्त देवे। पत्ते वाले हरे शाक, आमला की चटनी दें। फलो मे किंचित् अम्ल फल (अधिक मधुर फल नही) दे। इस प्रकार पथ्यपूर्वक जौ मात्र का ही सेवन करने से औषधि के बिना इस रोग मे आश्चर्य जनक लाभ होता है। अग्नि-सन्दीपनार्थ तथा मूत्र की सफाई के लिये यवक्षार की किंचित मात्रा, घृत के साथ देते रहे। यवक्षार (जवाखार) आगे विशिष्ट योगो मे देखें। ध्यान रहे, मधुमेही को जव के सत्त्व या माल्ट (Malt) का सेवन कराना ठीक नही है। कारण इसमे शर्करा का अश विशेष आ जाता है। [१]सत्त्व या माल्ट की विधि व प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखे।

आयुर्वेदानुसार मधुमेह का समावेश मेह या प्रमेह व्याधि-वर्ग मे ही किया गया है। तथा चरक का कथन है कि प्रमेही—"खादेद्यवाना विविधाश्च भक्ष्यान्" (जौ के विविध प्रकार के भक्ष्यो को खावे) एव—"भृष्टान् यवान् भक्षयत प्रयोगान्। शुष्कांश्च सक्तून्न भवन्ति मेहा." इत्यादि (देखें च. चि. अ ६ श्लोक ४७ व ४८) अर्थात् भूने हुये या सूखे सत्तुओ के योग से तथा मूंग और आवलो के आहार प्रमेह, श्वेत कुष्ठ, कफरोग और मूत्रकृच्छ्र नही होते।

(४) धातुपुष्टि के लिये—यवादिपाक—जौ, गेहू और उडद छिलके रहित, समान भाग लेकर महीन चूर्ण करे। फिर ४-४ गुने गोदुग्ध तथा ईख के रस मे अति मन्द आग पर पकावे। अच्छा गाढा मावा सा बन जाने पर उसमे अन्दाज से घृत डालकर भून ले। तथा स्वाद योग्य मिश्री का चूर्ण मिलाकर मोदक बनाले। अथवा मिश्री की चासनी मिलाकर पाक जमा दे। मात्रा—१ से ५ तो. तक प्रात सेवन कर ऊपर से मिश्री और पीपल चूर्ण मिलाकर पकाया हुआ गोदुग्ध पीवे। इससे वीर्य

---

[१] डॉ डिमाक का कथन है—Barley Wh ch matted loses 7 P C, it then contains 10 to 12P C of sugar, produced at the expence of starch Before malting no sugar is to be found (Pharm acographia Indico by Dr Dymock)

डॉ देसाई ने सत्तू के स्थान में उक्त सत्व मधुमेही को देने के लिए कहा है, किन्तु हमें यह उचित नहीं जचता।

एव काम शक्ति की अत्यन्त वृद्धि होती है। (हा. स.)।

नोट—पाकों के अन्यान्य प्रयोग वृ. पाक संग्रह मे देखिये।

अथवा यवादिचूर्ण—जौ, नागवला, असगन्ध तिल, गुड और उडद समभाग, चूर्ण बनाले। इसे दूध के साथ सेवन से शरीर बहुत शीघ्र हृष्ट पुष्ट एव अतिवलशाली होता है। (भा. भै र)

अथवा—जौ के १ सेर आटे की रोटिया सेक कर खूब मसल कर चूर्ण बना ले, फिर उसमे १-१ सेर उत्तम ताजा घृत और मिश्री का चूर्ण तथा १ तो श्वेत मिर्च और २ तो. छोटी इलायची दाने का चूर्ण मिला सब को एक कलईदार परात मे आग पर रख गरम करले और फिर पौर्णिमा की रात्रि मे, बाहर चादनी मे रखदे। इसमे से नित्य ४-५ तोले प्रात खाते हुए १-१ घूट गोदुग्ध पीते जावे। उत्तम धातुपुष्टि होती है। (व गुणादर्श)

अथवा—२॥ तोला जौ को थोडे पानी मे भिगो व कूट कर छिलका उतार कर आध सेर गोदुग्ध मे खीर बनाकर, नित्य इसी प्रकार दो महीने तक सेवन करे। अथवा—उक्त प्रकार से कूट कर छिलका दूर कर चावल के समान पकाकर दूध या घृत के साथ सेवन करते रहने से भी शरीर मे शक्ति-सचार होकर दृष्टिमाद्य दूर होती नेत्र-ज्योति बढती व तिमिर रोग दूर होता है।

(५) सूतिका या प्रसूति-रोग मे—यवादि यूप एव घृत—जौ, वेर का गूदा, कुलथी व शालिधान की जड (२०-२० तो) लेकर, सब को कूट कर ८ सेर पानी मे पकावे। २ सेर पानी शेष रहने पर, छान कर उसमे आध सेर घृत तथा ५ तो जीरा चूर्ण मिला पुन पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान ले।

फिर-उक्त (जौ, वेर, कुलथी, शालिधान की जड) द्रव्यो से सिद्ध यूप (इन द्रव्यो का मोटा चूर्ण १ तो. १६ तो जल से पका, चतुर्थांश या अर्धांश शेष रहने पर छान लें) मे इस घृत को १ तो तथा (स्वाद योग्य) सेधानमक मिला, उसके साथ शाली या साठी चावलो का भात खाने से सूतिका-रोग मे लाभ होता है। (व. से)

(६) ज्वर पर—यदि पित्त-ज्वर हो तो—जौ (भुने हुए), खस, मजीठ एव गभारी के फल समभाग कूट कर रख ले। इसमे से दो तोला चूर्ण, १२ तो. पानी मे, मिट्टी के स्वच्छ पात्र मे रात्रि के समय भिगोकर प्रात मसल कर छान ले, तथा इसमे १ तो. शहद मिला पिलावे। पित्त ज्वर शात होता है। (ग. नि.)

अथवा—जौ, परवल, धनिया, तथा मुलैठी का क्वाथ, मधु मिला कर पीने से पित्त-ज्वर, दाह, एव भीषण तृषा शात होती है।

ज्वर का उत्ताप अत्यधिक (१०३ से अधिक) हो, तो वर्फ की पोटली सिर पर फिरावे, अथवा—नौसादर के घोल मे भिगोई हुई पट्टी को सिर पर रक्खे, या पुराने घृत का लेप करे। (भै. र)

अथवा—कच्चे या अधपके जौ (खेत मे जो जौ पूर्णत न पके हो) के चूर्ण को दूध मे पकाकर उसमे जौ का ही सत्तू, घृत, मिश्री तथा शहद मिला, तथा दूध और मिला कर पतला कर पीने से ज्वर की दाह शात होतीहै। (ग.नि)

यूनानी-प्रयोग—जौ की गरम-गरम रोटी के टुकडे कर, मिट्टी के पात्र मे रख, उसमे थोड़ा पानी भर, ७ दिन तक जमीन मे गाडे रक्खे। फिर निकाल कर उसका साफ पानी लेकर शीशी मे भर रक्खे। इसमे से २ से ५ तो पानी, अर्क गावजवा के साथ बुखार के मरीज को देने से तसल्ली मिलती है। (व. च)

(७) अम्लपित्त पर—छिलके रहित जौ, अडूसा, और आमला समभाग २-२ तो० लेकर ४८ तो पानी मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर इसमे त्रिगन्ध (दालचीनी, इलायची व तेजपात) का चूर्ण १-१ मा एव मधु २ तो. मिला पिलाने से; अथवा—जौ, पीपल और परवल २-२ तो को ४८ तो पानी मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमे २ तो मधु मिलाकर पिलाने से अम्लपित्त, वमन एव अरुचि दूर होती है। पथ्य मे मूग का यूप देवें। (यो. र.)

(८) उदर रोग—यवाद्य घृत—जौ, वेर और कुलथी ४-४ तो० लेकर कल्क करे। फिर बृहत्पचमूल का क्वाथ, सुरा

(परिपक्व चावल (भात) के सधान से मुरा तैयार होती है) और सौवीर (जौ या गेहूँ से तैयार की गई काजी) (सौवीर आगे वि योगो मे देखे) ये तीनो समपरिमाण मे (६४-६४ तो.) मिलाकर गव्य घृत सेचतुर्गुण लेकर, सबको एकत्र मिला, घृत सिद्ध कर लें। इस घृत के सेवन से उदर-रोग नष्ट होते है (च० सं० चि० स्था० अ० १३) ।

उदर मे शूल हो, तो जौ के चूर्ण और जवाखार को तक्र में मिला कर गरम कर उदर पर लेप करने से शूल नष्ट होता है। —(वृ० नि० र०)

(९) गर्भस्थिर रहने के लिये—जौ के आटे (या सत्तू) के साथ समभाग तिल का चूर्ण और शक्कर मिला, ६-६ मा० की मात्रा मे शहद के साथ देते रहने से गर्भपतन का भय नही रहता। (व० गु०)

(१०) व्रण, शोथ, अण्डवृद्धि आदि पर—जौ और मुलहठी का चूर्ण समभाग एकत्र कर तिल-तैल और घृत समभाग मे मिला, मन्दोष्ण कर लेप करने से व्रण की दाह व पीडा शात होती है। (व० से०)

स्राव एव तीव्र वेदनायुक्त वातज व्रणो पर—जौ के साथ समभाग भोजपत्र, मैनफल, लोवान व देवदारु लेकर चूर्ण कर, घृत में मिला इनकी धूनी देवे।

(भा० भै० र०)

शोथयुक्त फोडे को फोडने के लिये—जौ और गेहू का चूर्ण तथा जवाखार का लेप लगाने से व्रण (व्रण-शोथ) फट जाता है।

अण्डवृद्धि पर—जौ के साथ समभाग तिल, पुनर्नवा-मूल एव अण्डी के छिलके रहित बीज, एकत्र मिला, काजी मे पीस, मन्दोष्ण कर लेप करे।

(भा० भै० र०)

विद्रधि पर—जौ के साथ गेहू व मूग को थोडे पानी में पकाकर, पीसकर लेप करने से अपक्व विद्रधि अति शीघ्र ही नष्ट होती है। (यो० र०)

अग्निदग्ध व्रणो पर—जौ को जला कर, भस्म को महीन पीसकर, तिल तैल में मिलाले।

या तिल-तैल में ही जवो को डालकर भूने, जब वे जलकर काले पड़ जावें, तब नीचे उतार कर, अच्छी तरह पीसकर जले हुए स्थान के छालो पर या व्रणो पर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है। (यो० र०)

ध्यान रहे, इस व्रण को शीत जल का स्पर्श न कराये। धोने के लिये त्रिफला फाण्ट का या उबाले हुए जल का उपयोग करे।

शोथ—यदि कफ-दोष से हो, तो जौ के आटे को अजीर के रस के साथ लगाते है।

पित्त की सूजन हो, तो इसके आटे मे सिरका और ईसबगोल की भूसी मिला लेप करते है। यह लेप कर्ण-शोथ पर विशेष लाभकारी है।

मोच या अस्थिभग पर—इसके आटे मे खुरासानी अजवायन का चूर्ण मिला, पानी मे खदका कर लेप करते हैं।

कठमाला की शोथ पर—इसके आटे मे धनिया के हरे पत्तो का रस मिला लेप करते है।

(११) कान्तिवर्धनार्थ, तथा शुष्क खुजली, विसर्प आदि पर—जौ के साथ राल, लोध, खस व लाल चन्दन का चूर्ण तथा शहद, घृत व गुड समभाग लेकर सबको ४ गुने गोमूत्र मे पकावें। अच्छा गाढा हो जाने पर उतार कर सुरक्षित रखे।

इसके मलने से नीलिका, झाई (व्यङ्ग) आदि दूर होकर मुख कमल जैसा शोभायमान हो जाता है। इसे पैरो मे लगाने से पैरो की बिवाई आदि नष्ट होकर पैर कोमल होते है।

विसर्प पर—जौ का आटा और मुलहठी का चूर्ण दोनो को, शतधौत घृत मे मिला लेप करने से दाहयुक्त विसर्प शात होता है।

सूखी खुजली पर—इसके आटे मे तिल-तैल और छाछ (तक्र) मिला लगाते है।

गरमी के सिर-दर्द पर—आटे को सिरके के साथ लगाते हैं।

नोट—अधिक मात्रा में नित्य जौ का भोजन करने मे आध्मान, पेट मे मरोड एव वात-विकारो की सम्भावना है। आमाशय और आंत्र कमजोर हो जाते है।

हानि-निवारणार्थ—घृत, मक्खन, मिश्री, गर्म-मसाला और मस्तगी का सेवन करे।

विशिष्ट योग—

जवाखार—

(१) [1]यवक्षार—खेतो मे जौ के क्षुपो मे बीज आने के समय ही उन को उखाडकर, सुखाकर गजपुट के खड्डे मे जलाकर श्वेत राख करे, (खडडे मे जलाने से यह अच्छी तरह जलकर श्वेत राख विशेप परिमाण में प्राप्त होती है। राख के साथ जो काले कोयले हो उन्हे दूर कर दें) फिर उसे १६ गुने पानी मे रात्रि को भिगोदे। प्रात सावधानी से ऊपर का जल नितार ले। इस जल को छान कडाही मे पकावे। पानी जल कर क्षार बन जायेगा। यदि क्षार मे कुछ कालापन हो, तो उसमें और थोडा पानी मिला, छानकर पुन आग पर क्षार बना लें।

गुणधर्म व प्रयोग—

यवक्षार लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु विपाक (आयुर्वेदानुसार यह स्निग्ध है), अतिसूक्ष्म स्रोतोगामी, दीपन अतिसौम्य, रुचिवर्धक, मूत्रल, स्वेदल, रक्तशोधक, पित्त-क्रिया-सुधारक, तथा अम्लपित्त, कफ, कास, श्वास, शूल, वातप्रकोप, आमवृद्धि, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, पाडु, कामला, कठ-रोग, अर्श, गुल्म, अजीर्ण, ग्रहणी, आनाह, हृद्रोग, तथा उदावर्त, प्लीहा व यकृत के शोथादि विकार-नाशक है।

इसे भोजन के २० पूर्व मिनट अन्य सुगधी व तिक्त औषधो के साथ लेने से यह जठराग्नि को उद्दीप्त करता है। आमाशयान्तर्गत—श्लेष्मल कला के शोथादि विकारो को तथा कुपचन, अजीर्णादि विकारो दूर करता है। भोजन के पश्चात् लेने से परिणाम शूल, अम्लता-वृद्धि, अम्लपित्त, छाती में जलन ग्रहणी क्षत (Duodenal ulcer) मे शाति प्राप्त होती है। इसे भोजन के २ या २॥ घटे बाद जल के साथ लेते हैं। वमन होने पर इसे टार्टरिक तथा सायट्रिक एसिड या नीबू के रस के साथ जल मे घोलकर सेवन करते है। यकृत के पित्तस्राव पर इसका कोई अनिष्ट असर न होने से कामला रोग पर बार बार इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जाता है। रक्त—शुद्धि के लिए इसकी योजना अन्य सुगधित द्रव्यो के साथ की जाती है। यह मूत्रपिण्डो को उत्तेजित करता, तदन्तर्गत शोथ को हटाता, मूत्र के प्रमाण को बढाता व मूत्र-दाह को मिटाता है। सुजाक मे भी यह हितकारी है। यह त्वचा की स्वेद-ग्रथियो को उत्तेजित कर पसीना लाता है। अत ज्वर मे पसीना लाने के लिये यह नीम के रस या क्वाथ के साथ दिया जाता है।

श्वसन-सस्थान एव श्वास-नलिका की क्रिया मे आवश्यक सुधार कर, यह कफ को पतला करता, श्वासमार्ग के शोथ को हटाता है। काली खासी या सूखी खासी मे इसीलिये यह घृत के साथ चटाया जाता है। फुफ्फुस-सम्बन्धी विकारो मे क्षार की अपेक्षा राख का उपयोग उत्तम होता है।

पित्तवह स्रोतसो के शोथादि विकारो को यह दूर करता है। पित्त-प्रयोग एव पित्त-विकारो का दमन करता

---

[1] वैसे तो यह या इस प्रकार का क्षार कई वृक्षो की राख में पाया जाता है। किंतु उन वृक्षों के अन्दर रहने वाले विभिन्न पदार्थों के कारण उनके क्षारो के गुणों मे अन्तर होता है। काष्ठमय झाडियों की अपेक्षा कोमल रसयुक्त वर्षायु क्षुपों में यह क्षार अधिक पाया जाता है। भूम्यन्तर्गत पोटेशियम के लवणों को ये वृक्ष शोपण करते हैं। इन लवणो के बिना किसी भी वृक्ष की वृद्धि नहीं होती।

व्यापार की दृष्टि से इस प्रकार का क्षार विलायती अफसतीन (Worm Wood), चुकन्दर की जड (Beet root) सूरजमुखी आदि पौधो से, तथा भेड के बालों के धोल से, सोराखार से, पोटेशियम सल्फेट आदि से विशेप प्राप्त किया जाता है। तथा बाजारो मे जवाखार के नाम से इन कृत्रिम क्षारों का अत्यधिक प्रचार होने से, जव के पौधों को जलाकर असली जवाखार निर्माण की क्रिया बन्द हो गई है। प्रायः पोटास नाइट्रास के घोल मे सोडाबाई कार्ब मिलाकर बनाया हुआ जवाखार बाजारों मे बहुत पाया जाता है।

नोट—जौ के क्षुपों को जलाने से जो राख होती है, (जिससे क्षार निकाला जाता है) वह राख क्षार की अपेक्षा अधिक उपयोगी एवं सौम्य होती है। उसमे लेक्टिक, सिलसिक, फास्फरिक, चूना आदि अधिक होते हैं—देखें ऊपर रा० स० मे। (पृष्ठ ६३१)

है। अत यकृत प्लीहा के शोथादि विकारो मे इसकी योजना की जाती है।

नाम-

स—यवक्षार-क्षार, यावशूक, पाक्य, यवाग्रज। हि०—म०—गु० जवाखारजवाखार। अं०(–Impure Carbonate of potash)। ले०—पोटासी कार्बोनस (Potassi Carbonas)

रासायनिक संघटन—

इसमे मुख्यत पोटाशियम क्लोराइड ५०.८, पोटाशियम सल्फेट २०.२, पोटाशियम बाइकार्बनेट १२.६ तथा पोटाशियम कार्बोनेट ६.८ प्रतिशत होता है।

प्रयोग-

(१) उदावर्त पर—क्षार के साथ चित्रक, हींग और अम्लवेत का चूर्ण मिला, क्वाथ कर पिलाने से विरेचन होकर उदावर्त नष्ट होता है।

मूत्रावरोध जन्य उदावर्त्त हो तो क्षार ४ रत्ती मे समभाग शक्कर मिला, अंगूर के रस के साथ पीने से लाभ होता है। (भै० र०)

(२) गले के रोग तथा कास, श्वास व क्षय पर—

१—यवक्षारादि गुटिका—क्षार के साथ चव्य, पाठा रसोत, दारुहल्दी व छोटी पीपली-चूर्ण समभाग एकत्र कर मधु मे खरल कर चना जैसी गोलिया बना ले। १-१ गोली मुख मे रख, चूसने से समस्त गल-रोग मे लाभ होता है। (भा० भै० र०)

२—यवक्षारादि गुटिका—क्षार १ तोला कालीमिर्च चूर्ण, छोटी पीपल चूर्ण २-२ तोला तथा अनार छाल का चूर्ण ४ तोला एकत्र कर १६ तो गुड मे खरल कर ४-४ रत्ती की गोलिया बनाकर चूसते रहने से कास, श्वास व क्षय मे लाभ होता है। (व० यू०)

३—स्वरभंग (वात जन्य) पर—यवक्षारादि घृत—क्षार, गजपीपल, चित्रक व आमला ५-५ तोला एकत्र पीस कर कल्क करें। २ सेर घृत मे यह कल्क व ८ सेर आमले का रस मिला, मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करलें। इसे भोजन के बाद सेवन करे।

(ग० नि० भा० भै० र०)

४—गुल्म और शूल पर—क्षार, चित्रक, त्रिकटु, नीम की छाल, पांचों नमक समभाग, चूर्ण बनालें। १ से २ माशा तक घृत मे मिला सेवन करे। सर्व प्रकार के गुल्म दूर होते है। (व० से०)

अथवा—क्षार, अजवायन, सेंधानमक, अम्लवेत, हरड़, बच और हींग (घृत मे भुनी हुई) सम भाग, चूर्ण बना ले। मात्रा—१ माशा उष्ण जल से लेवे। उपद्रव युक्त प्रवृद्ध गुल्म तथा वातज शूल भी नष्ट होता है।

(भा० भै० र०)

अथवा—क्षार के साथ केवल अजवायन-चूर्ण समभाग खरल कर, १ से १॥ माशा तक उष्ण जल से सेवन करे।

(५) अपचन, मंदाग्नि एवं क्षुधा-नाश पर—क्षार ४ से ६ रत्ती तक घृत के साथ सेवन से दूषित डकार आना, व्याकुलता, उदरवात, अरुचि आदि लक्षणो सहित अपचन (अजीर्ण) दूर होता है। (गा० औ० र०)

क्षार के साथ समभाग सोंठ चूर्ण मिला खरलकर, प्रतिदिन १ मा० प्रात घृत के साथ लेने से क्षुधा प्रबल होती है।

उक्त योग को उष्ण जल के साथ लेने से देश-देशान्तर का जलदोष नष्ट हो जाता है। (भा० भै० र०)

(६) मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी पर—क्षार १ माशा तक घृत के साथ लेकर, ५-७ मिनट बाद शीतल जल या दूध की लस्सी पीने से मूत्रदाह, मूत्र बूंद-बूंद होना-अश्मरी-कण आदि दूर होकर मूत्र सरलता से होने लगता है। (गा० औ० र०)

इसकी मात्रा—१॥ माशा तक समभाग मिश्री के साथ, या दही के पानी के साथ, या ४ तोले पेठे के स्वरस के साथ १ तोला शक्कर मिला कर भी पीने से मूत्रकृच्छ्र मे लाभ होता है। (यो० र०)

मूत्राशय मे अश्मरी हो, तो प्रात इसकी मात्रा १ माशा घृत के साथ सेवन कर ऊपर से सारिवा, गोखुरू दर्भ व कास का क्वाथ शिलाजीत और मधु मिलाकर पिलावे। इस प्रकार कुछ दिन लेने से अश्मरी टूटकर निकल जाती है। (गा० औ० र०)

(७) यकृत प्लीहा-वृद्धि या शोथ पर—क्षार और छोटी पीपल का चूर्ण १-१ माशा लेकर बडी हरड, रोहिड़ा (रोहतक) की छाल इन दोनो के क्वाथ (४

तो) मे मिला प्रतिदिन प्रात पीने से यकृत, प्लीहा, गुल्म एवं उदर-सम्बन्धी विकार नष्ट होते है (शार्ङ्गधर सं. म. खंड पथ्यादिक्वाथ) ।

इस योग से आन्त्रिक श्लेष्मा कम होकर पित्तमार्ग का अवरोध दूर होता, तथा कामला मे भी लाभ होता है ।

(viii) अर्श, अतिसार, वातशूल आदि पर-क्षार, सेंधा-नमक व सोंठ ५-५ भाग, हरड १० भाग इन सबका एकत्र चूर्ण १० ग्रेन की मात्रा मे तक्र, या काजी या गरम चाय के साथ देते है । (नाडकर्णी)

(ix) फुफ्फुशोथ (ब्राकाइटिस) पर–क्षार १० ग्रेन अडूसा-पत्र-स्वरस १० बूंद व लौंग-चूर्ण ५ ग्रेन इस मिश्रण (यह १ मात्रा है) को खाने के पान के रस के साथ देते है । (ना क)

(x) उत्तम विरेचनार्थ—क्षार ६ मा निशोथ, त्रिफला १॥–१॥ तो० वायविडग व काली मिर्च–चूर्ण ६-६ मा. इन सब के मिश्रण मे घृत, शक्कर या गुड़ मिला, उचित मात्रा मे देने से दस्त साफ हो जाता है । इससे आमाशयान्तर्गत नलिका का तथा बस्तिप्रदेश का शोथ एवं कफ-वात जन्य अन्यान्य विकार व आन्त्र-कृमि पर भी लाभ होता है । (ना क)

(xi) प्लेग की गाठ पर—क्षार को तिल-तैल मे मिला पकावे । जब वह लेप के योग्य गाढा हो जाय, तब नीचे उतार कर गाठ पर सुखोष्ण लेप कर ऊपर से खाने का पान रख, उस पर बार-बार रुई से सेक करते रहे । (ना. क)

(xii) मक्कल शूल पर—क्षार की ४-६ रत्ती की मात्रा, पकाये हुए जल के साथ, या घृत के साथ पिलाने से प्रसूता के हृदय, मस्तक व बस्तिप्रदेश मे होने वाला शूल अवश्य नष्ट होता है । (भा भै. र)

(xiii) खुजली, उदर्द, शीतपित्त, विचर्चिका आदि पर तथा क्षुद्र कीटक-दंश पर, क्षार के घोल का लेप करते है । त्वचा को स्वच्छ, साफ रखने के लिये भी इसके घोल को लगाते है ।

नोट—क्षार की मात्रा—१ या २ रत्ती से १ मासा तक । रोगानुसार कहीं-कहीं ३ मासे तक भी दिया जाता है ।

अधिक मात्रा में बार-बार इसके प्रयोग से अतिसार, शोथ, फास्फेट्स से बनने वाली अश्मरी, एवं वृक्क के कई विकार हो जाते हैं ।

एक ही बार मे अत्यधिक प्रमाण में लेने से वमन होने लगती है । यह आंत्र के लिये अहितकर है । हानि-निवारणार्थ-कतीरा और गोंद देते है ।

(२) यव सत्त्व (Malt)—प्रवाही तथा शुष्क दो प्रकार का यह सत्त्व होता है । जौ को प्रथम २४ घटे तक सुखोष्ण कुनकुने जल मे भिगोते हे । जल को ६-६ घटे से बदलते है । फिर जवो को पानी से निकाल, टाट पर फैला कर ऊपर गीला कपडा ढक कर बार-बार ऊपर पानी सींचते रहते हैं । १–२ दिन मे जवो मे अकुर फूटते ही धूप मे शुष्क कर, थोडे पानी के छींटे देकर मसल कर अकुरो को निकाल देते है, क्योकि अकुरो मे कुछ कडुवापन होता हे । पुन अच्छी तरह सुखाकर, मोटा आटा पिसवाकर, या जौ कूट चूर्ण कर उसके वजन के समभाग शीतजल मे ६ घटे तक भिगो कर, फिर उसमे ४ गुना गरम पानी मिला १ घटे के बाद आग पर पकाते हैं । उफान आने पर, उसके पानी को मोटे स्वच्छ कपडे से छान लेते हे । इस छने हुए पानी के पात्र को गरम पानी मे रख, मदाग्नि पर पकाने से, जब वह छना हुआ पानी शहद जैसा गाढा हो जाता है, तब तुरन्त ही नीचे उतार कुछ शीतल होने पर शीशियो मे भर, मजबूत कार्क से मुख बन्द कर, शीतल स्थान पर रखते है । शीशियो मे भरने के पूर्व उसमे यथावश्यक शक्कर कोई कोई मिला लेते है । यह जव का प्रवाही घन सत्त्व है । यह आयुर्वेद के 'यवमण्ड' का ही एक परिष्कृत प्रकार है । आगे यवमण्ड देखे ।

यह प्रवाही सत्त्व या माल्ट पाचक, पोषक, एव मृदु सारक हे । गेहू के सत्त्व की अपेक्षा यह शीघ्र ही पचता है । इसमे डेक्स्ट्रीन (Dextrin) तथा यवशर्करा (Maltose or malt sugar) की प्रधानता होने से यह आलू, चावल, मक्का आदि स्टार्च प्रधान आहार द्रव्यों को शीघ्र पचाता है । इसे कॉडलिव्हर आईल जैसी अन्यान्य औषधियो के साथ मिलाकर अनुपान रूप

मे भी दिया जाता है। जीर्ण रोगानन्तर शरीर मे आई हुई अशक्ति को दूर करने के लिये यह उत्तम उपयोगी है। अग्निमांद्य, अजीर्ण, कफ एव पित्त-प्रकोप, फुफ्फुस के विकार तथा निर्वलता के लिये यह हितकारी है। मधुमेही को भी इसके उपयोग की सलाह दी जाया करती है। किन्तु हम मधुमेही को इसकी अपेक्षा केवल जव के ही अन्न-भोजन की सलाह देते है। ऊपर मधुमेह का प्रयोग न ३ देखें।

मात्रा—६ मा से १ तो तक, भोजन के ३ घटे वाद लेवे। अधिक मात्रा मे लेने से विरेचन होता है,

शुष्क सत्व (माल्ट) वनाने के लिये उक्त प्रकार से ही जौ मे अकुर फूटने की प्राथमिक क्रिया सम्पन्न होने के वाद, उन्हे सुखाकर, अकुरो को दूर कर कड़ाही मे मदाग्नि पर सेकते ह। वे जव कुछ लाल हो जाते है तव उतार कर, शीतल हो जाने पर महीन पिसवा लेते हैं। वस यही परिष्कृत सत्तू ही शुष्क सत्व है। यह पचने मे वहुत हलका व पौष्टिक होता है। इसके साथ ५ गुना गेहू का आटा मिला कर रोटिया, या गेहूँ का मैदा मिला कर विस्कुट आदि वनाये जाते हैं, जो उत्तम पौष्टिक होते है। जौ मे चना मिलाकर भी सत्तू वनाते है।

(२) सत्तू-भारतवर्ष मे वहुत प्राचीन काल से जव के सत्तू का प्रचार है। इसीलिये सत्तू यह शब्द जव का पर्यायवाची नाम महाराष्ट्र आदि प्रान्तो मे है। ग्रीष्म ऋतु मे, विशेषत उत्तर प्रदेश मे इसका अत्यधिक उपयोग किया जाता है।

वैसे तो वाजार से जव लाकर, पानी मे भिगोकर तथा धूप मे सुखाकर, कूटकर, (जिससे उसका शूक भाग निकल जावे) भून कर पिसवा कर साधारणत वाजारू सत्तू बना लिया जाता है। किंतु उत्तम सत्तू वनाना हो, तो खेतो मे जव जो पकने पर आता है, उसके पूर्व ही वालो को तुडवा कर धूप में सुखा, और कूट कर तुष रहित कर, भाड मे भुनवा कर, घर की चक्की मे महीन पीस छान कर रख लेते है।

उक्त सत्तू मे शक्कर, घृत या दूध मिला, या गुड अथवा नमक मिला उसमे यथेच्छ पानी घोलकर, अच्छी तरह हाथो से मथ कर पीते है। यह जितना पतला हो उतनी ही तरावट पहुँचाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह शीत, लघु, लेखन, रुक्ष, सतापहर, कफपित्त-नेत्र-रोगो मे हितकर है।

उष्ण प्रकृति के लिये सग्राहक, वातप्रकृति मे मृदु-रेचक है। उक्त यव-सत्त्व (माल्ट) या यवमण्ड की अपेक्षा इसमें पोषणाश कम होता है। उष्ण प्रकृति वालो को यह अतिसार की अवस्था मे भी लाभकारी होता है। वात या शीत प्रकृति के लिये यह कुछ अहित-कर है।

नोट—दांतो से काट-काट कर, तथा भोजन के वाद, रात्रि मे, अधिक मात्रा मे और मास के साथ, एव सत्तू को गरम करके नही खाना चाहिये।

(१) गरमी, तृषा, दाह, तथा रक्तपित्त पर उत्तम पेय—सत्तू को अधिक जल मे भिगोकर रख दे। कुछ देर वाद ऊपर के जल को निथार कर उसमे शर्वत या शक्कर मिला पीने से गरमी, दाह, तृष्णा शान्त होती है। पित्त-ज्वर मे यह एक उत्तम लाभकारी पेय हैं।

अथवा—यवसक्तुमथ—सत्तू को थोडे घृत मे मसल कर ठण्डे पानी मे ऐसा घोले कि वह न वहुत पतला हो, और न गाढा (अच्छी तरह मथानी से या हाथो से मथकर तथा रुचि अनुसार अनार, शक्कर, शहद या गुड मिला) इसके पीने से तृष्णा, दाह और रक्तपित्त मे लाभ होता है।—शा० स०। मात्रा—१० तोले तक, दिन मे दो वार दे।

इस योग को तर्पण या सन्तर्पण भी कहते है। यह शीघ्र ही पिपासा, थकावट, दाह को दूर कर वल वढाता है।

(२) गर्भ स्थिर रहने के लिये—सत्तू के साथ समभाग तिल का चूर्ण व शक्कर मिला, शहद से चटाते रहने से गर्भ-पतन का भय नही रहता। (व० गु०)

(३) परिणामशूल—(जो त्रिदोषजशूल भोजन की पच्यमानावस्था मे होता है) पर—सत्तू को ७ दिन तक केवल मटर के यूष के साथ पीने से यह शूल पुराना हो या नूतन नष्ट हो जाता है। (वृ० मा०)। अन्य आहार वन्द रखना चाहिये।

(४) त्रिदोप-नाशक सप्तमुष्टिक और पच मुष्टिक यूप—जौ का सत्तू (या जौ का चूर्ण), वेर का चूर्ण, कुलथी, मूग, मूली के महीन टुकडे, धनिया और सोठ इन सात द्रव्यो की १-१ मुट्ठी (४-४ तो०) एकत्र मिला, १६ गुने जल मे पका,चतुर्थांश शेप रहने पर, मसल कर छान ले। सन्निपात मे रोगी को भोजन के स्थान मे, इसे ही थोडा-थोडा पिलावे। यह यूप-तीनो दोपो को हरने वाला है। (कोई-कोई इसे गाढी लपसी जैसी बनाकर रोगी को थोड़ा-थोडा चटाते है) यह यूप ज्वर, आमदोप, आमवात, नाशक तथा कठ, हृदय व मुख का शोधक है। (शा० स०)

पचमुष्टिक यूप—जौ का सत्तू या चूर्ण, वेर चूर्ण, कुलथी, मूग, आमला, १-१ मुट्ठी (४-४ तो०) लेकर ८ गुने पानी मे पका, अष्टमाश शेप रहने पर छानकर पिलावें। यह सान्निपातिक ज्वर मे पथ्य के लिये लाभदायक है। कोई-कोई आमला के स्थान मे सोठ लेते है। वह भी त्रिदोपनाशक, तथा शूल, गुल्म, कास, श्वास व क्षय मे भी लाभकारी है। —[यो० र०]

प्रमेह पर—जव को ऊखल मे कूट, छिल्के (तुप) निकाल डाले। फिर साफ जौ को गोमूत्र मे १ घटा भिगोकर सुखाले। इस प्रकार ७ दिन तक करे। फिर ७ दिन तक त्रिफला (क्वाथ) मे भिगो-भिगो कर सुखावे। पश्चात् उन्हे भूनकर, पीसकर किये हुए सत्तू के, या सत्तू के रोटी का सेवन करते रहने से पाचन-क्रिया सबल होती व दाह-शमन होती, आम, कफ, उदर-कृमि, सग्रहीत मल आदि नष्ट होते, तथा कफज एवं पित्तज प्रमेह दूर होते है। —[गा० औ० र०]

६—विसर्प, अग्निदग्धव्रण एव दाह-शाति के लिए सत्तू-प्रलेप—सत्तू के साथ मुलैठी का चूर्ण मिला, उसे शतधौत घृत मे घोटकर लेप करते रहने से दाह सहित विसर्प विकार शात होता है।

अग्निदग्ध—व्रण पर—सत्तू को तिल-तेल मे मिला लेप करते हैं।

दाह-पीडित रोगी के शरीर पर—सत्तू को पानी मे घोलकर लेप करते है।

४—यव-कपाय (जवजल या वार्ली वाटर)—उत्तम विलायती पर्ल-जौ ६ तोला ८ माशा या इसका मोटा चूर्ण १ या २ बडे चम्मच भर लेकर लगभग २।। सेर जल मे पकाते तथा आधा जल शेप रहने पर उसे मसलते हुए छानकर रख लेते हैं। इसमे पोपकतत्व अर्ध-प्रतिशत से कुछ अधिक होता है।

यह कटुपौष्टिक, सकोचक और मूत्रल है। अन्दर की श्लेष्मल कला के लिये यह मृदुकर, तथा कठ और मूत्रमार्ग के विकारो पर लाभदायक तथा ज्वर के लिए यह शातिदायक पेय होता है। इसमे थोडी शक्कर व नीवू का रस मिला देने से उत्तम रुचिकर, शातिकर पेय वन जाता है।

इसे मृदु सारक बनाना हो तो, उक्त वार्ली वाटर मे अंजीर के महीन टुकडे, तथा मुनक्का प्रत्येक ६।। तोला व मुलैठी चूर्ण १ तोला ४ माशा और जल ५३ तोले मिला कर पकावे। चतुर्थांश शेप रहने पर छान ले। इसे अधिक मृदुकर बनाने के लिये इसमे २।। तोला बबूल का गोद मिला ले। यह मूत्रपिण्डो का उत्तम दाह, शोथ-शामक एव शातिकर पेय होता है।

इसमे समभाग गौ का दूध तथा किंचित् उत्तम शुद्ध शर्करा मिला कर, उन छोटे बच्चो को जिन्हे मातृदुग्ध नही मिलता या गोदुग्ध हजम नही होता, थोडा थोडा पिलाते रहने से उनके लिए उत्तम पोपक आहार होजाता है। यह आयुर्वेद का एक प्रकार का यवमण्ड ही है।

(५) यवमण्ड[१]—जौ को अच्छी प्रकार कूटकर, ऊपरी छिलका निकाल कर, १४ गुने जल मे पकाते है। पक जाने पर ऊपर का जल निथार कर पिलाते है। यह शीतल, मूत्रल, रक्त और पित्तसशमन व उत्तम शीघ्रपाकी पथ्याहार है। विशेपत उष्ण एव पित्त जन्य विकारो मे इसका उपयोग लाभकारी है। पित्तज्वर, राजयक्ष्मा, उर क्षत, शुष्क कास, पित्तज शिर शूल एव पार्श्वशूल मे यह उपयुक्त है—

जव को उक्त प्रकार से साफ कर तथा किंचित् भूनकर तथा १४ गुने जल मे पकाकर जो जल तैयार किया

[१] मण्ड-विधि चावल के प्रकरण में देखिये।

जाता है, उसे वाट्यमण्ड कहते हैं। यह भृष्ट-यवमण्ड उक्त यवमण्ड से और भी हलका, तथा कुछ सग्राही होता है। यह कफ-पित्त-प्रकोप-नाशक, कंठ के लिए हितकारी एवं रक्त-पित्त-शामक होता है। अतिसार पीडित रोगी के लिये विशेषत राजयक्ष्मा व उर.क्षत-ग्रस्त रोगी के अतिसार के लिए यह उत्तम गुणदायक आहार है।

(६) जौ का दलिया (Barley garuel) और यवागू—

उत्तम जौ का दलिया १। तो. लेकर प्रथम उसमे थोडा ठंडा पानी मिला पकावे। लपसी सा बन जाने पर, उसमे ५० तोला खूब गरम या खौलता हुआ पानी मिला, अच्छी तरह हिलाते रहे। फिर इसे १५ मिनट तक आग पर उबलने देवे। और छानकर रख लें। इसे प्राय॰ गरम-गरम ही पिलाया जाता है। यह मूत्रल है। कफज जीर्ण अतिसार मे उत्तम पथ्य है। भगन्दर-रोग मे यदि ज्वर न हो तो यह दिया जाता है। प्रसूतिका के आमातिसार पर इसे मसूर के यूप के साथ सेवन कराते है।

यवागू—की विधि चावल के प्रकरण मे देखें।— यव की यवागू, किंचित् शक्कर मिला पतली दूध जैसी बना, शीतल कर शहद मिलाकर थोडी थोडी पिलाते रहने से दाह, बेचैनी पित्त ज्वर या वमन सहित ज्वर आदि लक्षणो से युक्त पित्ताशय के शूल पर उत्तम लाभकारी होती है। यह शूल का विकार प्राय स्त्रियो को अधिक होता है। कभी कभी यकृत के पित्ताशय मे अश्मरी होने पर या पित्तनलिका मे अवरोध होने पर बहुत वमन होती एव यकृत-स्थान मे भयकर वेदना होती है। ऐसी अवस्था मे यह यव की यवागू विशेष हितकारी है। (गां० औ० र०)

(७) सौवीरक (जव की काजी)—भिगोकर छिलका निकाले हुए जवो को कूटकर अठ गुने पानी मे पका, सन्धान विधि[१] से बन्द कर रखदे। शरद व गरमी के दिनो मे ६ दिनो तक, वसन्त तमा वर्षा मे ८ दिनो और हेमन्त व शिशिर मे १० दिनों तक रखने से सन्धान सिद्ध होकर जो कांजी तैयार होती है। उसे सौवीरक कहते हैं।

यह ग्रहणी, अर्श तथा कफ विकारों मे लाभदायक होती है। यह मल-भेदक, अग्निप्रदीपक उदावर्त्त, अंगमर्द अस्थिशूल, आनाह, शिरोरोग, एव शैथिल्यनाशक है। केशो को हितकारी, बलकारक लौर सतर्पण है। इसी प्रकार की कांजी गेहूं से भी बनाई जाती है।

(८) यवादि तैल—जौ ५ तोला तथा मजीठ १। तोला इन दोनो को पानी मे पीसकर कल्क करे। १ सेर तिल-तैल मे यह कल्क व ४ सेर उक्त जौ की काजी (सौवीरक) मिला, तैल सिद्धकर ले। इसकी मालिश से ज्वर, प्रबल दाह व अङ्गो का प्रहर्ष नष्ट होता है। (भा० भै० र०)

(ग्रन्थ मे द्रव्यो का प्रमाण बहुत अधिक दिया है, हमने उक्त प्रकार से अल्प प्रमाण मे हीइसे बताया है।)

[१] किसी द्रव्य या द्रव्यों को जलयोग द्वारा अधिक दिन खट्टा होने तक या मद्य की तरह उठान होने तक रख छोड़ना सन्धान कहलाता है। सन्धान की हुई वस्तु लघु रूच पाचक व वातनाशक होती है।

जव (जौ) विरहना दे०—आतजो मे। जवा—दे० गुडहल। जवाखार—दे० जौ मे। जवाईन दे०—अजवाइन।

जवाशीर (*FERULA GALBANIFLUA*)

शतपुष्पा या मण्डूकपर्णी—कुल—(Ubelliferae) के इस बहुवर्षायु क्षुप के पत्र—पक्षाकार पुष्प-पीले, तथा फल—पुट अण्डाकार होते हैं।

इस क्षुप के मूल भाग मे छिद्र करने से जो निर्यास (गोंद) निकलता है उसे ही अरबी, हिन्दी व मराठी मे जवाशीर, जावशीर, तथा अंग्रेजी व लेटिन मे गालबेनम (Galbanum) कहते हैं। शीर्षस्थान मे दिया हुआ फेरुला गालबेनिफ्लुआ, इसके पौधे का नाम है। इस जवाशीर नामक गोंद को पानी मे मिलाने से पानी दूध जैसा प्रतीत होने से, फारसी मे इसे गावशीर (गोक्षीर)

कहते हैं। औषधि-कर्म मे यही गोद लिया जाता है। यूनानी मे इसका वहुत प्रचार है।

यह गोद वाहर से हरिताभ पीतवर्ण का–अर्ध पारदर्शक या स्वच्छ, भीतर से श्वेताभ पीत रंग का, स्वाद मे कडुवा एवं अप्रिय होता है।

इसके क्षुप अधिकतर भूमध्य सागर के तटवर्त्ती तथा पर्शिया आदि प्रदेशो मे, और कुछ प्रमाण मे भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेशो मे पाये जाते हैं। भारत मे जवाशीर का विशेष आयात पर्शिया से होता है। इसकी एक जाति और होती है, जिसे लेटिन मे Opopanax Chironium कहते हैं।

रासायनिक संघटन—

इसमे गंधक रहित, टरपेन्टाईन तैल सदृश रासायनिक सघटन वाला एक उडनशीलतैल प्र० श० ६ से ६ तक, एक प्रकार की राल ६० से ६७ तक तथा टेनिन रेजोरिन (Resorln) आदि होते हैं। इसके शुष्क वाष्पीकरण द्वारा एक नील वर्ण का स्थायी तैल, तथा एक स्फटिकाभ प्रवल क्षारीय तत्व अम्वेलिफेरान (Umbelliferon) नामक प्राप्त किया जाता है।

नोट १–वाजार मे व्यापारी लोग इसमें उशक (प्रथम खण्ड में उशक का प्रकरण देखें) और मोम का मिश्रण कर देते हैं। असली जवाशीर पानी में घोलने से श्वेत दूध जैसा हो जाता है। तथा मिश्रित का घोल अन्यान्य वर्णों का होता है। यही इसकी परीक्षा है।

नोट २–कोई कोई जवाशीर को गंधाविरोजा ही मानते हैं। यद्यपि इसमें गंधाविरोजा जैसे गुण-धर्म हैं तथापि यह उससे भिन्न है। चीड के प्रकरण में गु० वि० देखें।

गुणधर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, दीपन, उत्तेजक, सारक, वातानुलोमन मूत्रल, कफनिःसारक, लेखन, शोथघ्न, व्रणरोपण, रज स्रावी, शरीर की ऐंठन व मरोड को दूर करने वाला, तथा कफज विकार, अग्निमाद्य, जलोदर, बालग्रह, कम्पवात अर्दित, पक्षाघात, सिरदर्द, अपस्मार, मूर्च्छा, सन्यास, आध्मान, उदरवात-शूल आदि रोगो पर यह शीघ्र लाभकारी है। वात-नाडियो को सवल वनाने तथा सगृहीत वात को हटाने से वातप्रधान विकारो पर यह विशेष प्रयुक्त होता है।

यह गुणधर्मो मे प्राय. हीग के समान है किन्तु कुछ कम वलशाली है।

श्वासकृच्छ्रता मे जव छाती या श्वासमार्ग मे कफ की रुकावट से श्वासोच्छ्वास मे कठिनता एव वेचैनी होती है, तव तथा पक्षाघात, योषापस्मार, जीर्ण फुफ्फुस शोथ (ब्रांकाइटिस), श्वास एवं आन्त्र-योनि व गर्भाशय की श्लेष्मलकला के विकारो पर इसका सेवन अल्पमात्रा मे गोली के रूप मे किया जाता है। दंतशूल मे इसे दांतो पर मलते है। दुष्टव्रण पर—इसका चूर्ण वुरकते या इसे मलहम मे मिलाकर लगाते हैं। गाठ या ग्रंथिशोथ पर–पकने के पूर्व ही, इसे पानी या शहद मे मिला लेप करते हैं। गाठ वैठ जाती तथा शोथ विखर जाती है।

(१) योषापस्मार से ग्रस्त रुग्णा की मंदाग्नि पर–इसके साथ समभाग हीग, वोल तथा गुड २॥–२॥ तो. लेकर एकत्र मिश्रण कर, पानी की भाप (वाष्प) पर गरम करते तथा उसे हिलाते रहते हैं। मिश्रण के एक हो जाने पर, गोलियां (चना जैसी) बना सेवन कराते हैं। (ना. क.)

(२) मक्कल शूल पर—प्रसूता के गर्भाशय मे शूल हो, या प्रसव हो जाने के वाद गर्भाशय मे जरायु का कुछ भाग रह गया हो एव कष्ट पहुंचाता हो, किंतु ज्वर न हो तथा जनन-मार्ग से दूषित स्राव न होता हो, तो इसके सेवन कराने से जरायु या विकृत द्रव्य वाहर निकल जाता व शूल शात होता है।

सगर्भा स्त्री मे इसका प्रयोग प्राय नही किया जाता या वहुत अल्प प्रमाण मे करते है।

(३) नपुंसकता पर—जवाशीर व अकरकरा के चूर्ण को तिल-तैल मे मिला शिश्न पर लेप करते रहने से शारीरिक निर्वलता जन्य नपुंसकता दूर होती है। किंतु साथ ही साथ देह को सवल वनाने वाली औषधि एव पौष्टिक भोजन भी लेते रहना चाहिये।

(४) आध्मान (अफारा) पर–जवाशीर मे थोडा घृत लगाकर गुनगुने चाय या काफी के साथ सेवन करने से अफरा, उदरशूल, उदर का भारीपन, छोटे-छोटे कृमि आदि नष्ट होकर अग्निप्रदीप्त होती है।

(५) मोतियाविन्दु पर—इसे जल या द्र ा मे घिस-कर २-४ मास तक अजन करते रहने से नया मो० नि० कट जाता है।

ध्यान रहे इस विकार पर तेज दवा का प्रयोग न करे। नेत्रो से अधिक अश्रुस्राव न हो ऐसा सौम्य उपचार करें। अत आवश्यकतानुसार इसके साथ पुराना घृत मिला देवे। (गां. औ. र.)

नोट—मात्रा—१ से २ माशा तक।

ग्रीष्मकाल तथा उष्ण देश में इसका सेवन बहुत कम मात्रा में करें। यह पुरुषों के लिये अहितकर है।

इसका प्रतिनिधि यथानिर्गोजा, या उसर या अजीर वृक्ष का दूध है।

जवासा दे०—यमासा।

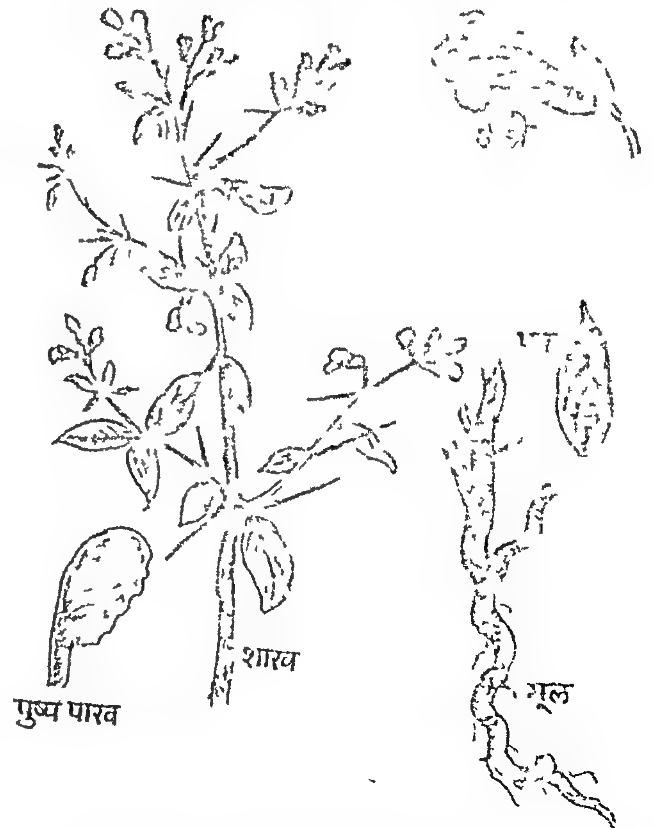
जवासा (*ALHAGICAMELORUM*)



गुडूच्यादि वर्ग एव शिम्बीकुल के अपराजिता-उपकुल (Papilionaceae) के इसके ग्रीष्म ऋतु मे हरे-भरे कटकयुक्त क्षुप १-३ फुट ऊचे, शाखाए—अनेक लम्बी पतली, काटे—तीक्ष्ण १ या १॥ इच तक लम्बे, चुभने से भयानक पीडा करने वाले, पत्र—प्राय काटो के मूल भाग से निकले हुए, छोटे, लम्बे, कोमल, गोलाकार, सूक्ष्म रोमश, पुष्प—वसत ऋतु मे, काटो के मूल से ही निकले हुए, मंजरी मे, किंचित् लाल या वेगनी रग के होते हैं। फली—१॥ इच लम्बी, सीधी, कुछ टेढी या मालाकार होती हैं। मूल—जमीन मे वहुत दूर तक घुसी हुई होती है। इसकी फली मे ७–८ नन्हे-नन्हे वीज होते है।

इसके क्षुप से एक प्रकार का सुगधित निर्यास या गोद निकलता है, जो जम जाने पर रक्ताभ श्वेत रग का दानेदार, तथा स्वाद मे प्रथम मधुर, फिर तिक्त प्रतीत होता हे। उसे ही यवास या यास शर्करा, तुरज वीन, अग्रेजी मे मान्ना (Manna) कहते है। यह यास, यासशर्करा भारतीय जवासा से अत्यल्प प्रमाण मे प्राप्त होती है। अत भारत मे इसका आयात पर्शिया से अत्यधिक होता है।

चरक और सुश्रुत के सूत्रस्थानो मे इस शर्करा का उल्लेख है। किन्तु डल्हणाचार्य (टीकाकार) का कथन है—"यवास क्वाथ पाक घनी भावाच्छर्करा कृता यवास शर्करा" अर्थात् जवासा के घन क्वाथ से भी शर्करा निष्पन्न होती है।" यह प्राकृतिक यवास शर्करा नही हे।



पुष्प शाख

जवासा के क्षुप भारत के उत्तरप्रदेश के गंगाजमुना के तटवर्ती स्थानो मे, राजस्थान मे, पश्चिमोत्तर प्रान्तो मे गुजरात, सिंध आदि तथा कधार, मिश्र, सीरिया, पर्शिया अरब, खुरासान आदि देशो मे प्रचुरता से पाये जाते हैं।

इसे ऊट वहुत प्रेम से खाता है। तथा गर्मी के दिनो

मे खस के स्थान मे इसकी बनी हुई टट्टी खूब ठडक पहुँचाती है।

नोट—ध्यान रहे, जवासा और धमासा (दुरालभा) इन दोनों के स्वरूप में तथा गुणधर्म में बहुत कुछ समानता होने से दोनो को कहीं-कहीं एक ही माना गया है। वास्तव में ये दोनो भिन्न-भिन्न बूटियां हैं। यथास्थान धमासा का प्रकरण देखें।

नाम—

स —यास, यवास, दु स्पर्श इ.। हि.-जवासा, यवासा जुनवासा, सावनमुरझीवटी, हिंगुआ इ । म —जवासा। गु.—जवासो। वं.—जवसा अ' -अर्बियन या पर्सियन मन्नाप्लांट (Arabian or Persian manna plant)। ले.—अल्हेगी केमोलोरम, अ मारोरम (A Maurorum)।

रासायनिक संघटन—

इसकी शर्करा मे इक्षुशर्करा प्र. श २६.४ तक, तथा मेलिरिटोज (Melisitoze) आदि कई शर्कराओं का सम्मिश्रण पाया जाता है।

प्रयोज्य अग—पंचाङ्ग, यास शर्करा।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, कषाय, विपाक मे मधुर शीतवीर्य, कफनि सारक, वातपित्तशामक, स्वेदल, मूत्रल अनुलोमन, पित्तसारक, बल्य, बृंहण, वेदनास्थापन, त्वग्दोषहर, रक्तशोधक, रक्तरोधक, वमन तृष्णानिग्रहण शोथहर, श्वासयत्र की रुक्षता-निवारक, दाह-ज्वरशातिकर तथा मूर्छाभ्रम, मस्तिष्कदौर्बल्य, विबन्ध, अर्श, कामला, रक्तपित्त, वातरक्त, प्रतिश्याय, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, चर्मरोग आदि मे प्रयुक्त होती है।

(१) इसका कफनाशक धर्म बड़े महत्त्व का है। कफज विकारो की प्रारम्भिक अवस्था मे इसके पचाग का और मुलैठी का मिश्रित क्वाथ या अवलेह रूप घन क्वाथ विशेष लाभकारी होता है। इसकी वाष्प से धूपन तथा धूम्रपान भी कराते है। कफ ढीला होकर निकल जाता है, गले मे तथा श्वासनलिका मे तरावट आती कासवेग कम होता, एव गले व श्वासनलिका की सूजन तथा श्वासमार्ग मे अन्य विकारो का शमन होता है। इन विकारो मे इसके पचाग के साथ कटेरी मिलाकर भी क्वाथ बनाकर देते है। इसके पचाग के चूर्ण को चिलम मे भरकर इसके साथ थोडी अजवायन व काले धतूरे का पत्र मिला कर धूम्रपान कराते है। तमक श्वास मे विशेष लाभ होता है। इसके उक्त अवलेह को उष्णजल मे दिया जाता है।

(२) भ्रम या चक्कर आते हो, तो इसके अवलेह या घनक्वाथ मे घृत मिलाकर सेवन कराते है। अवश्य लाभ होता है।

(३) पित्तज जीर्ण शिर शूल तथा उदरशूल पर—प्रात खाने पीने के पूर्व, इसके पत्तो को किंचित् पानी के साथ पीस छान कर ३-४ बूंदे स्वरस की नस्य देवे। फिर १।२ घटे के बाद रोगन बनफशा का नस्य देवे। शीघ्र लाभ होता है। (यूनानी)

उदरशूल पर—२० तो. इसके पचाग को आधा सेर पानी मे, अर्धावशिष्ट क्वाथ कर नमक १ मा मिला कर पिलाते है।

(४) अर्श, संधिवात तथा प्रतिश्याय एव कठ या गले के विकारो पर—अर्श के मस्सों को इसके पचाग के क्वाथ से धोते, तथा पचाग को पीस कर लेप करते हैं। इससे वेदना, शोथ दूर होकर रक्तस्राव बन्द होता है। तथा १ तो जवासा को १० तो. जल मे पीस छानकर प्रातः साय पिलाने से रक्तार्श मे लाभ होता है।

सन्धिवात पर—इसके पचाग के कल्क से सिद्ध किये हुए तिल-तैल की मालिश करते है।

जुखाम और गले के रोगो पर—पचाग के क्वाथ से कुल्ले कराते, तथा इसी क्वाथ का बफारा देते है।

वातज्वर पर—इसके पचाग का मोटा चूर्ण, तथा सोठ, नागरमोथा व गिलोय प्रत्येक १-१ तो लेकर, ४० तो जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने से लाभ होता है। (भा भै. र)

(६) लू लगने पर—इसके पचाग का भबके द्वारा खींचा हुआ अर्क आध सेर, अर्क वेदमुश्क और मिश्री चूर्ण १-१ पाव, नीबू-स्वरस १० तो. तथा तेजाब गंधक २० बूद, सबको एकत्र कर बोतलो मे भर, दृढ कार्क लगाकर ७ दिन रखने के बाद छान लें। इसे १ से ५ तो तक थोडा पानी मिला पिलाने से, लू से पीडित रोगी

को शांति प्राप्त होती है। इसके सेवन से पित्तजन्य अन्य विकारो मे भी लाभ होता है। (बृ आ- ग्र सग्रह)

(७) विस्फोटक (रक्तपित्त विकृति से उत्पन्न, ज्वर युक्त अग्निदग्ध के समान फफोले ला छाले जो समस्त शरीर मे या किसी एक भाग मे होते हैं।) पर–जवासा ४ मा काली मिरच ५ दाने, दोनो को ५ तोले पानी मे पीस छानकर पिलाने से विस्फोटक नही निकलता, और न जोर कर सकता है (स्व प भागीरथ स्वामी)

(८) गर्भस्थिति के लिये—इसके बीज १ तो गौ घृत ५ तो मे मिलाकर रजस्वला होने के ३ दिन बाद ३ दिन तक खिलावे, पथ्य गोदुग्ध तथा चावल बूरा (शक्कर) मिलाकर खाना चाहिये। साधुप्रदत्त योग है–

(—स्व प० भागीरथ स्वामी)

स्त्रियो के श्वेत प्रदर पर—इसके ४ मा महीन चूर्ण को प्रात. साय जल के साथ पिलाते है।

यवासशर्करा–मधुर, कसैली, विपाक मे तिक्त,शीतवीर्य, कफहर, सारक और वृष्य है।

नोट—बाजार मे यह नकली भी मिलती है। असली यवशर्करा श्वेताभ लालिमायुक्त, दाने कुछ गोल लम्बे से हलके, स्वाद में मधुरता के साथ कुछ कसैले एवं वसागंध युक्त होती है। पानी में भिगोने से कुछ चिकनाई मालूम देती है।

यह मधुर होने से छोटे बालक एव कोमल प्रकृति के लोगो के लिये एक सर्वोत्कृष्ट सारक औषधि है। यह सरलता से पित्त का उत्सर्ग करती है। इसका कास मे उपयोग करते तथा उष्ण व्याधियो मे, अन्य विरेचन द्रव्यो के साथ उनके कर्म को तीव्र करने के लिये भी मिलाकर पिलाते है।

यूनानी वैद्यक मे दवाये तरजवीन नामक इसका एक उत्तम योग इस प्रकार है—

(९) तरजवीन (यवासशर्करा) साफ किया हुआ ९० मा लेकर १ सेर ताजे दूध मे उबाले। जब पाक हो जावे, तो प्रतिदिन दो चम्मच खिलादे। पित्त दोष के कारण सभोग-क्रिया मे कमी हो, तो यह लाभप्रद है। वीर्य को उत्पन्न करता है। नपु सकता-निवारक है।

(यू द्र गु वि)

नोट--मात्रा—स्वरस १-२ तो। क्वाथ ४-८ तोला मूलत्वक्चूर्ण १-२ माशा। घनसत्व ४ ७ रत्ती यवासशर्करा १-३ मासा।

यह वृक्क के लिये अहितकर है। हानिनिवारणार्थ–कतीरा देते है। इसका प्रतिनिधि–विपखपरा (पुनर्नवा) है

यवासशर्करा—उष्ण प्रकृति के लिये अहितकर है। इसका प्रतिनिधि शीरेखिश्त और लाल खाड है।

विशिष्ट योग–जवासासव (रक्तपित्तादि, तथा नेत्र-विकार-नाशक) सूखा जवासा १ सेर, कूट कर ८ सेर पानी मे, रात्रि के समय ताम्रपात्र मे भिगोकर रख दें। प्रात पकावें, २ सेर जल शेष रहने पर छान ले। इस जलको पुन पकावे, गाढा घनसत्त्व हो जाने पर शीशी मे भर दे। यह सत्त्व ५ तो० और शुद्ध शराब १ सेर एकत्र मिला, काच के पात्र मे भर कर ७ दिन रक्खे। फिर छानकर बोतल मे सुरक्षित रक्खे।

मात्रा—३ मा०, पानी ५ तोला मे मिला पिलादें। रक्तपित्त, रक्तपात, प्रदर रोग, गर्भस्राव, वध्यापन, सोम-रोग, विषमज्वर सूजाक, खासी, मूत्रावरोध, रक्तातिसार अर्श, उदरपीडा, वमन, नकसीर आदि पर लाभप्रद है।

नेत्ररोग के लिये—उक्त घनसत्त्व १॥ मा० और उत्तम गुलाबजल ५ तो० दोनो को एक शीशी मे भर मुख बन्द कर ७ दिन रक्खे। फिर छान कर रक्खे। २-२ बूंद प्रतिदिन प्रात साय २ या ३ बार नेत्रो मे डालते रहने से दुखती आख (नेत्राभिष्यन्द) शीघ्र आराम होती है। धुन्ध, जाला, फूला, सुर्खी, खुजली, गन्दापन, नेत्रस्राव आदि विकार भी शीघ्र नष्ट होते है।

(बृ० आ० ग्र० स०)

जहरी नारियल दे०—दरियाई नारियल। जाट दे०—छोकर। जाई दे०—चमेली।
जाठोन दे०—गु जा मे। जापानी कपूर दे०—कपूर मे। जाफर दे०—सिन्दुरिया।
जाफरान दे०—केसर। जामफल दे०—अमरूद। जाभीर दे०—नीबू जबीरी।

जामुन (Eugenia Jambolana)

फलादिवर्ग एव लवग कुल (Myrtaceae) का इसका सदैव हरा-भरा बडा वृक्ष होता है। पत्र ३-६ इच लम्बे, २-३ इच चौडे, आम्रपत्र या पीपल के पत्र जैसे चिकने-चमकदार, पुष्प—वसत ऋतु मे, हरिताभ श्वेत, या स्वर्ण-वर्ण के, मजरियो मे आते है। फल—ग्रीष्मान्त या वर्षा के प्रारम्भ मे ½ से २ इच तक लम्बे, १ से १½ इच मोटे, अण्डाकार, कच्ची दशा मे हरे, कुछ पकने पर लाल, बेगनी रग के, तथा परिपक्वावस्था मे गाढे नील वर्ण के एव गोल लम्बी छोटी गुठली से युक्त होते है। ये फल खाये जाते है। तथा औषधि-कार्य मे भी आते है। इसके वृक्ष बागो मे लगाए जाते है। फल आकार मे जितना बडा हो उतना ही अधिक गुणकारी होता है।

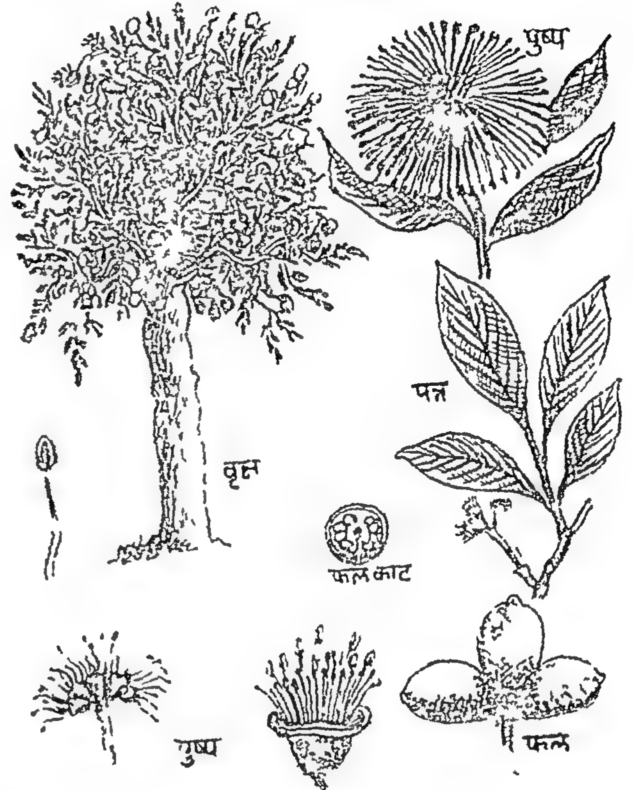
नोट—प्रस्तुत प्रसंग की बडी जामुन (राजजम्बू) की कई उपजातियां है। उनमे से प्रसिद्ध ये हैं—

(१) छोटी जामुन (क्षुद्र जम्बू) इसे काठ जामुन, वन जामुन, बगला में वनजाम कहते है। इसके वृक्ष, पत्र, फल आदि बडी जामुन की अपेक्षा छोटे होते हैं। फल—मे मासल भाग या गूदा बहुत कम होता है, गुठली बड़ी होती है। इसमे ग्राही गुण की अधिकता है।

इसके ही नदी-जम्बू, काक-जम्बू भेद है। जगलो मे नदी नालो के किनारे कही २ एक साथ इनकी कतार सी देखी जाती है। इन्हें जल जामुन भी कहते हैं। पत्र—कनेरपत्र जैसे, फल—छोटी जामुन से भी छोटे होते है। वृक्ष की शाखाए प्राय जड से ही निकलती है।

(२) भूमि जम्बू—का वृक्ष झाडीदार छोटा तथा फल—छोटा, मटर जैसा होता है। इसे लेटिन मे प्रेम्ना हरवेशी (Premna Herbaceae) कहते हैं। यह भारगी का ही एक भेद है। हिमालय तथा दक्षिण की पहाडियो पर अधिक होता है। यथास्थान भारगी का प्रकरण देखे।

(४) गुलाबजामुन—यह विदेशी जामुन है, जो बगाल और बर्मा मे भी होने लगा है। इसका वृक्ष



प्रस्तुत प्रसग के राजजम्बू की अपेक्षा छोटा, शाखाए बिखरी हुई तथा पत्र भी कुछ छोटे किंतु अधिक लम्बे फल—आकार मे नीबू के बराबर, किंतु कुछ चपटा सा गुलाबी रग का, अन्दर का गूदा श्वेत गुलाब की सी गध-युक्त, स्वाद मे मीठा, स्वादिष्ट गुठली बहुत छोटी, गोल भूरे रग की, पुष्प—कुछ लालिमायुक्त श्वेतवर्ण के, २-३ इच लम्बे पुष्प-दण्ड पर अनेक आते है। ये प्राय बकुल (मोलसरी) के पुष्प जैसे होते है।

इसे बगला मे गोलाब जाम, लेटिन मे युजेनिया जबोस (Eugenia Jambos) तथा अग्रेजी मे रोज एपल (Rose apple) कहते है। फल—शीतल, रूक्ष, आन्त्रसकोचक, गुरु व त्रिदोपनाशक हैं। फलों से अर्क गुलाब भी बनाते हैं। यह एक मेवा की तरह खाया जाता है।

हृदय, मस्तिष्क, यकृत एवं आमाशय को बलप्रद है। अधिक खाने से आध्मानकारक है। गुठली-संग्राही है। अतिसार में इसका चूर्ण देते हैं। इसके चूर्ण में मिश्री तथा थोड़ा सोंठ-चूर्ण मिला शुक्रप्रमेह में देते हैं। छाल—मधुर, कसैली, उष्ण, रूक्ष, आकमकोचक, श्वास, तृष्णा अतिसार आदि में प्रयुक्त होती है।

जामुन की जितनी जातियां हैं, उनमें राजजम्बू ही श्रेष्ठ माना गया है। यह भारत के बागबगीचों में प्रायः सर्वत्र लगाया जाता है।

चरक के मूत्र-संग्रहणीय, पुरीष-विरजनीय, छर्दि-निग्रहणीय तथा सुश्रुत के न्यग्रोधादि-गणों में इसकी गणना है।

नाम—

सं—राजजम्बू, महाफला, फलेन्द्रा इ०। हि०—जामुन, (बड़ी), फलादा, फरेंदा इ०। म०—रायजांभूल, थोर-जांभूल। गु०—जांबो। बं०—कालजाम अं—जाम्बुल (Jambul) तथा छोटी जामुन ब्लैकबेरी (Black berry)। लै०—युजिनिया जम्बालना, यु० फ्रुटिकोसा (E Fruticosa)।

रासायनिक संगठन—

बीजों में एक जम्बोलिन (Jamboline) नामक ग्लुकोसाइड (यह स्टार्च को शर्करा में परिणत होने से रोकता है) फेनिल युक्त एक एलाजिक एसिड (Ellagic acid) तथा पीताभ सुगंधित तैल, वसा, राल, गैलिक, एसिड, अलब्युमिन आदि पाये जाते हैं। वृक्ष की छाल में टैनिन प्र० श० १० और एक गोंद होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, गुठली, पत्र और छाल। ये सब मधुमेह पर उपयोगी हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

फल—लघु, रूक्ष, कषाय, मधुर, अम्ल, मधुर विपाक, शीतवीर्य, कफपित्तनाशक, प्रबलवातवर्धक, रक्तस्तंभक, स्वरदोषहर दाहप्रशमन, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक मलरोधक, श्रमहर, तृषानाशक, अतिसार, श्वास, कास, उदर-कृमि आदि नाशक है।

फलों को भोजन के बाद तीसरे प्रहर में खाना ठीक होता है। इनके साथ नमक, कालीमिर्च, सोंठ, अजवायन आदि मिलाकर खाने से विशेष लाभ होता है। फल ताजा व उत्तम पका हुआ होना चाहिये। बासी, सड़ा गला या कच्चा फल हानिकारक होता है। कच्चे या अधपके फल खाने से आंतें छिल जाती एवं फेफड़ों में विकार होने की सम्भावना रहती है। फल खाने के बाद दूध नहीं पीना चाहिये। पानी आवश्यकतानुसार पी सकते हैं। फलों को भोजन के पूर्व या खाली पेट खाने से वात की वृद्धि व आध्मान होता है। अधिक खाने से भी आध्मान, विष्टम्भ होता है।

फल और उसके बीज यकृत के द्वारा होने वाली शर्करा की पाचनक्रिया का सुधार करते हैं, जिससे रक्तगत एवं मूत्रगत शर्करा कम होती है। और मूत्र का प्रमाण भी कम होता है। इसमें जो सौम्य लोह-अंश रहता है, वह रक्त की अशुद्धता से होने वाली प्लीहा एवं यकृत की वृद्धि में तथा अन्य उदर-रोगों में उत्तम लाभ कारक है।

(१) मधुमेह में—अच्छे पके फलों को २॥ से ५ तो० तक लेकर, २५ तो० उबलते हुए पानी में (पानी नीचे उतार कर) डालकर ढक दें। आध घंटे बाद मसल कर छान लें। इसकी ३ मात्रा कर दिन में ३ बार इस फांट को पिलादें। शीघ्र कुछ दिनों में लाभ होता है। किंतु पथ्य, परहेज में सावधान रहने की आवश्यकता है। पथ्य-परहेज आगे गुठली या बीजों के प्रयोग में देखें।

लोहभस्म में इसके रस की ५-७ पुट देने से उत्तम नीलवर्ण की भस्म बन जाती है, जो मधुमेह में उपयोगी है।

(२) प्रमेह, मधुमेह एवं धातु-विकार पर—अच्छे पके जामुनों को कल्प-विधि से प्रतिदिन चार बार, प्रतिबार ३ छटाक तक खाकर ऊपर से आध रत्ती सैंधा-नमक चाट लिया करें। इस प्रकार मात्रा धीरे २ बढ़ाते हुए १५ दिन सेवन करें। और फिर घटाते जावें। उक्त दोनों रोग दूर होकर शरीर में शक्तिसंचय होता है।

(फलांक)

किंतु ध्यान रहे जामुन में शरीर—पोषणार्थ आवश्य-

कीय सब तत्व नही होते। अत कल्प-विधि से सेवन करना हो, तो अच्छे मीठे आमो को चूस कर फिर जामुन खाना ठीक होता है। पश्चात् २-३ घटे के दूध पीवे।

मधुमेही की तृष्णा-शाति के लिये इसके फलो के रस के साथ आम का रस समभाग मिला कर पिलावे।

मधुमेह पर—निम्न विधि से आसव बनाकर भी प्रयोग करते है—

उत्तम पकी जामुन का रस २० सेर लेकर उसमे गुड ५ सेर घोल दे, फिर उसमें जामुन की गुठली ३ सेर छाल व पत्र १-१ सेर तथा-कुडा छाल और लोह-चूर्ण आध-आध सेर सब जौकुट कर, एव एकत्र कर, मिट्टी के चिकने पात्र मे भर कर, मुखसधान कर, अनाज के ढेर मे दबा दे। ४० दिन बाद छानकर, बोतलो मे भर दें। मात्रा–५ तो तक प्रतिदिन सेवन से मधुमेह मे लाभ होता है। (बृ. आ अ स)

यदि ताजे जामुन न मिले तो शुष्क फलो का दो तो. चूर्ण नित्य पानी के साथ सेवन करे।

जलोदर, प्लीहा-वृद्धि आदि पर-ताजे, पके, काले फल चुनकर, निचोड कर, छान कर, मिट्टी के पात्र मे भर दे। १५ दिन बाद पुन छानकर बोतलों मे भर लें। फिर नितर जाने पर ऊपर का लाल-लाल रस नितार कर, नीचे की गन्दी गाद को फेंक दे।

पश्चात् शुद्ध गधक, कलमी सोरा, व नौसादर १ तो प्रत्येक अलग-अलग महीन पीस कर एक बोतल मे डाल कर उसमे उक्त जामुन का अर्क या सिरका ५५ तो. मिला, आध घटे बाद बोतल का मुख बन्द कर ४० दिन धूप मे रक्खें। फिर काम मे लावे। प्रात साय १ से ३ मा तक सेवन से यह आसव जलोदर, प्लीहा व श्वासनाशक है। यह अतिपाचक, अजीर्ण, शूल, अफरादि उदर-रोगो को शीघ्र नष्ट करता है। (बृ० आ० अ० स०)

प्लीहा-नाशक सिरका विशिष्ट योगो मे देखे।

(४) योपापस्मार (हिस्टीरिया) पर—जामुन ३ सेर, एक घडे मे डालकर उसमे १ मुठ्ठी भर सेंधा नमक छोड दें, तथा पानी ३ या ४ सेर मिला, ७ दिन धूप मे रक्खे। पश्चात् रुग्णा को नित्य प्रात १॥ पाव जामुन निराहार मुंह (खाली पेट) खिलाकर, ऊपर से १ प्याली इसी जल की (आसव की) पिलावे। जिस दिन से सेवन आरभ करें, उसी दिन एक अन्य घडे मे उपरोक्त विधि से जामुन आदि डाल दे। जिसमे प्रथम घडा समाप्त होने पर, दूसरा घडा सेवन के लिये तैयार हो जावे। दो सप्ताह के सेवन मे एक देवी का १५ साल का यह रोगदूर हो गया था, तथा उसके स्वस्थ होने पर सन्तान भी हुई थी। (वृ० आ० अ० स०)

रक्तातिसार आदि पर—फलो के रस को, अर्क गुलाब के साथ, थोडी-थोडी खाड मिलाकर पिलाते है।

पित्तप्रकोप पर—१ तो इसके रस मे, १ तो० गुड मिला, आग पर रखे। उसमे जो भाप उठे उसे मुख मे लेने से, शीघ्र पित्तशात होता है।

पेट मे बाल या लोहे का अश चला गया हो, तो फलो को खाने से वह नष्ट हो जाता है।

फलो के सिरका द्राव आदि के प्रयोग—विशिष्ट योगो मे देखे।

गुठली (बीज)—मधुर, शीतल, धातु-अवरोधक, जीर्णातिसार, प्रवाहिका, रक्तप्रदर, रक्तातिसार, इक्षुमेह, मधुमेह, उदकमेह आदि मे उत्तम लाभकारी है। औषधि-प्रयोगार्थ पके जामुन की गुठली लेना चाहिये।

(६)-मधुमेह पर—गुठली व सोठ १-१ भाग तथा गुडमार बूटी २ भाग, इन सब को कूट पीस एव महीन छानकर, ग्वारपाठा के रस मे खूब घोटकर आध तो० की गोलिया बना छाया शुष्क कर ले। दिन मे ३ बार १-१ गोली (या ३-३ गोली) शहद के साथ लेने से, मूत्र में आने वाली शक्कर १ या २ मास मे बन्द हो जाती है। पथ्य कुपथ्य का ध्यान रक्खे पथ्य मे–जौ व चने का आटा, बाजरा, मूग, साठी चावल, अरहर, तिल, चनो का पानी, शहद, परवल, पालक, करेला, मूली, टमाटर, लौकी, लहसुन, कच्चा केला, खजूर, तरबूज, ताड का फल, तोरई आदि देवे। मद्य, तैल दूध, घी, गुड, शक्कर एव इनके बने पदार्थ पेठा, गेहूँ, चावल, अरबी, आलू, ईख का रस, बीडी, सिग्रेट, तम्बाकू आदि और नवीन अन्न व सेम की फली, त्याज्य

है। मलमूत्र के वेग को रोकना, दिन मे सोना, एक ही स्थान पर देर तक बैठना भी नही चाहिये।

उक्त प्रकार से मधुमेह जन्य प्रमेह पिटिकाएं, कारबंकल आदि उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

—वैद्य सुखरामदास जी ओझा (व च.)

अथवा—गुठली १० तो महीन चूर्ण कर, उसमे फिटकरी फुलाई हुई १ तो०, उत्तम शिलाजीत २॥ तो० मिलाकर, बेलपत्र के क्वाथ मे खूब खरल कर १-१ मा० की गोलिया बनाले। प्रात सायं १-१ गोली लेकर ऊपर से बेलपत्र ५ नग, पानी ५ तो मे पीस छान कर कुछ गरम कर पीवे। १ मास के प्रयोग से पूर्ण लाभ होता है। (गृह-चिकित्सा)

अथवा—गुठलियो को एकत्र कर छाया मे शुष्क कर रखलें। आवश्यकता के समय इनको कूटकर महीन चूर्ण करे। फिर गुडमार बूटी ३ माशे, पानी १ पाव मे पकावे ५ तो० शेष रहने पर छान कर शीशी मे रखे। प्रथम चूर्ण ३ मा० प्रात फाक कर, ऊपर से यह गुडमार का क्वाथ १॥ तो० पिलादे। दोपहर को पुन ६ मा० चूर्ण फांक कर ऊपर से शेष बचा हुआ क्वाथ पिलावे। इस प्रकार १-१॥ मास तक निरतर नित्य गुडमार बूटी के ताजे क्वाथ के साथ सेवन कराने से कष्टसाध्य मधुमेह भी अच्छा हो जाता है। पथ्य का पालन करें।

(भा० ज० बू०)

रोगी को दूध देना हो तो मक्खन निकाला हुआ फीका दूध दे सकते हैं। आमला, कागजी नीबू, जामुन, कसेरु, गरम करके शीतल किया जल, घोडे की सवारी, पैदल घूमना आदि भी पथ्य हैं। गेहू की रोटी खाना हो तो चोकर सहित आटे की खावें।

अथवा—गुठली का चूर्ण १ पौंड (४० तो०) लेकर ४ पौंड पानी मे खूब खरल करे। ४ घटे बाद उसमे १ पौंड और पानी डालकर कपडे से छान ले। और एक पात्र मे भर कर रख दे। ४ घटे बाद ऊपर के पानी को नितार कर फेक दे। नीचे जो चूर्ण सा जमेगा, उसे शुष्क कर ले। फिर रेक्टिफाइडस्प्रिट १ पौंड मे यह चूर्ण डालकर, १ बोतल मे भर कार्क लगादे। २७ दिन बाद इसमें १५ पौंड स्प्रिट और ५ औंस (१२॥ तो०) शहद मिलादें। पुन कार्क बन्द कर, ३० दिन बाद छान कर काम मे लावे। मात्रा—१ ड्राम (६० बूंद तक) पानी के साथ दिन मे ४ बार देवे। पथ्य मे जौ के आटे का तोह और हलका भोजन दे। शीघ्र लाभ करता है। केवल बहुमूत्र की शिकायत हो, तो गिरी के चूर्ण के समभाग काले तिल मिलाकर, १ तो० की मात्रा मे प्रात साय दूध से लेवें। (वृ० आ० अ० म०)

(७) जीर्ण अतिसार व रक्तप्रदर पर—गुठली के चूर्ण के साथ, आम की गुठली की गिरी का चूर्ण और भुनी हुई छोटी हर्र का चूर्ण समभाग खरल कर, ३ मा० तक जल के साथ सेवन करने से जीर्ण-अतिसार मे लाभ होता है।

रक्त सहित आमातिसार पर इसकी और आम की गुठली की गिरी समभाग, महीनचूर्ण कर समभाग देशी खाड मिला, ३ मे ६ मा० की मात्रा मे ताजे मट्ठे या जल के साथ देते हैं।

रक्तप्रदर पर—गुठली के चूर्ण को चावलो के पानी या माड के साथ पिलाते है। प्रदर पर—गिरी के साथ कमलगट्टे की गिरी (गिरी के बीच वाला हरा भाग फेक दे) और बशलोचन समभाग महीन चूर्ण कर, चूर्ण के समभाग देशी खाड मिला दे। प्रात साय ३ मा० की मात्रा मे गाय के दूध से ले। सर्व प्रकार के प्रदर दूर होते है।

मोतियाबिंदु पर—गुठली का चूर्ण शहद मे घोटकर ३-३ मा० की गोलियां बना, प्रात साय १-२ गोली गौदुग्ध के साथ सेवन से तथा गोली को शहद मे घिस कर आखो मे आजने से नवीन मो० बिन्दु मे अवश्य लाभ होता है।

(९) ज्वर पर—गुठलियो को स्वच्छ कर, सुखाकर लोहपात्र मे रख, आच पर भून कर राख करते तथा ३ मा० यह भस्म मधु से कफ या वातकफ-ज्वर मे चटाते है। कफ व वमन बन्द करने के लिये गुठली का चूर्ण मधु से चटाते है।

(१०) तारुण्य-पिटिका आदि पर—गुठली को पानी मे घिसकर मुख के मुहासो आदि पर तथा गरमियो

मे होने वाली छोटी छोटी फुंसियो पर लेप करते है।

जूते की जखम पर—तंग जूते पहनने से पैर में जो जखम होता है, उस पर भी उक्त प्रकार से लेप करते है।

कर्णस्राव पर—गुठली के चूर्ण को तैल मे पका कर तैल कान मे डालते है। शीघ्र लाभ होता है। गुठलियो का ही तैल निकाल कर, कान मे कुछ बून्दें डालने से उत्तम लाभ होता है।

कुचले के जहर पर—इसका चूर्ण १० मा० तक गौदुग्ध या पानी के साथ दिन मे कई बार पिलाते हैं।

छाल—जामुन वृक्ष की छाल-कसैली, मधुर, स्तभक मलरोधक, पाचक, रूक्ष, रुचिकारक, व पित्तशामक है। इसका क्वाथ जीर्णातिसार, प्रवाहिका, सग्रहणी आदि मे देते हैं। प्रदर पर—नया प्रदर हो, गरम-गरम जल जैसा स्राव होता हो, तो इसका क्वाथ दिन मे दो वार शहद मिलाकर देते है। वमन पर—खट्टी वमन होने पर छाल की भस्म मधु से चटाते हैं, यदि वमन मे रक्त आता हो तो जामुन के फलो का शर्वत देते है।

(११) मधुमेह पर—इसके वृक्ष की अन्तर्छाल, सुखाकर इस प्रकार जला ले कि श्वेत भूरे रग की राख हो जाय। इसे खरल मे घोट छान कर रख ले। जिस रोगी के मूत्र की ग्रेविटी १.२० से १.३० तक हो (ध्यान रहे प्रारम्भ मे रोगी के मूत्र की स्पेसिफिक ग्रेविटी १.२० से १.३० या ३५ तक बढ़ती है। तथा १ औंस मूत्र मे शक्कर लगभग ५ से १० रत्ती तक जाती है। ज्यो २ रोग पुराना होता है त्यो २ ग्रेविटी बढ़कर १.५० तक चली जाती है, तथा मूत्र मे २५ रत्ती तक शक्कर के तत्व जाने लगते हैं। शक्कर के साथ अलव्यूमिन एव अन्य कई जीवन-पोषक तत्व पेशाव के साथ वहने लगते हैं।) उसे इस भस्म में से १० रत्ती भस्म प्रात भूखे पेट १ औंस पानी के साथ तथा वैसे ही १०-१० रत्ती भस्म दुपहर और शाम को भोजन के १ घंटा बाद देवे। तथा ३-३ या ४-४ दिन के अन्तर से पेशाब की ग्रेविटी एवं शक्कर की जाच करते रहे। तथा पथ्यापथ्य[1] का अवश्य पालन करावे।

[1]पथ्यापथ्य ऊपर प्रयोग नं० ६ में देखलें।

यह विश्वास किया जा सकता है कि इस प्रयोग से अधिकाश रोगियो का रोग १॥ महीने मे चला जाता है। यदि रोगी के पेशाव की स्पे० ग्रे० १.३४ से ५० तक हो तो इस भस्म को २० से ३० ग्रेन की मात्रा में दिन मे ३ बार देवें तथा रोगी की प्रकृति का विचार कर यदि कोई उपद्रव मालूम हो तो दूसरी सहायक औषधियां (चंद्रप्रभावटी, गिलोयसत्व, प्रवालभस्म आदि) भी इसी भस्म के साथ दी जा सकती हैं। (व० च)

(१२) वहुमूत्र आदि पर—इसकी छाल ५ सेर, वबूल एव खैर वृक्ष की छाले २॥-२॥ सेर सबको जौ कुट कर १ मन १२ सेर पानी मे पकावें। १३ सेर क्वाथ-जल शेष रहने पर, एक शुद्ध मटके मे छानकर भर दे। ठडा हो जाने पर उसमें शहद १० सेर, धाय फूलो का चूर्ण १३ छटाक, लोध, त्रिकुट, प्रत्येक ४-४ तो० चूर्ण कर मिलावे। पात्र का मुख अच्छी तरह सन्धान कर, १ मास तक सुरक्षित रखे। फिर छानकर बोतलो में भर ले। मात्रा—१ से ४ तो० तक सेवन कराने से यह आसव वहुमूत्र स्त्रियो के सोमरोग, प्रमेह व मधुमेह मे भी लाभ करता है। (स्वकृत)

अतिसार पर—जामुन और कुडे की छाल समभाग जौकुट कर ४ गुने पानी मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर, पुन पका कर गाढा कर ले। जब अवलेह तैयार हो जाय (करछली में चिपकने लगे) तो उतार कर शीतल कर रक्खे। (मात्रा—१ तो० तक) शहद मिलाकर चाटने से भयकर अतिसार, आमातिसार तथा पानी एव राध युक्त मुरदे की सी गध वाले अतिसार को भी यह अवलेह शीघ्र नष्ट करता है। (हा० स०)

छाल के रस में दूध मिला पिलाने से वमन होकर पित्त गिर जाता है। तथा पित्तातिसार मे लाभ होता है। इसकी शाति के लिये चावल और घृत खिलावे। वालकों के अतिसार एव अग्निमाद्य मे छाल का ताजा रस, बकरी के दूध के साथ पिलावें। (चक्रदत्त)

गर्भवती स्त्री के अतिसार पर—इसकी छाल और आमवृक्ष की छाल २-२ तो० जौकुट कर, १६ गुने पानी मे १/४ क्वाथ सिद्ध कर, उसकी ३ मात्रा कर दिन में

३ वार, धनिया व जीरा–चूर्ण २-२ मा० मिलाकर पिलाते है। ३-४ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

रक्तप्रदर पर—छाल के महीन चूर्ण को लोह-खरल मे २१ भावनाए इसके ही जल के रस की देवे, और १० भावनाए गूलर-छाल के रस की देकर, शुष्क कर शीशी मे भर रखे। प्रात साय १-२ मा० तक, अधपके केले के फल के गूदे मे मिलाकर चटावे। पथ्य मे–दूध, दलिया, मू ग का हलुवा, पुराने चावलो की खीर आदि दे। नमकीन चीज, लालमिर्च आदि तीक्ष्ण चीजो का त्याग करे। —(गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क-धन्वन्तरि)

बछनाग (वंत्सनाभ) के विष पर–अन्तरछाल के रस मे, चावलो का माड मिलाकर पिलाते है।

नोट—छोटी जामुन वृक्ष की मूल उत्तेजक, धातु-परिवर्तक, दीपन एवं कटु पौष्टिक है। बड़ी जामुन या छोटी जामुन की छाल—

(१५) मसूढो की सूजन तथा मुख के विकारो पर–पारद के सेवन तथा अन्य कारणो से हुए- शोथ, छाले आदि पर—छाल के क्वाथ या फाण्ट से गण्डूष या कुल्ले दिन मे २-३ वार कराते है। इससे सूजन, वेदना आदि मे शान्ति प्राप्त होती है। दात मजवूत होते है।

इसकी कोमल लकडी की दातून भी दातो के लिये लाभकारी है।

(१६) श्वास, फुफ्फुस-विकार आदि पर—छोटी जामुन के वृक्ष की मूल की छाल का ताजा रस और अदरख का रस एकत्र कर उसमे गरम जल मिलाकर, अथवा जड का कल्क बनाकर उसमे सोठ-चूर्ण, मिला गरम जल मे घोल छानकर सेवन कराते है। यह ज्वर, तथा गण्डमाला सम्वन्धी विकारो पर भी लाभदायक है।

पत्र—जामुन के पत्ते, कसैले, सकोचक, ग्राही, कफ पित्त, दाहशामक वमक-नाशक है। कोमल पत्र–स्वरस वमन में तथा रक्तपित्त मे भी देते है। पुटपाक–विधि से पत्र–स्वरस उत्तम निकाला जा सकता है।

पत्तो के कल्क का प्रलेप दुष्ट व्रणो का शोधक है। छोटी जामुन के पत्तो की पुल्टिस वना बाधने मे व्रण का शीघ्र ही परिपाक होता है।

पत्तो की भस्म का मजन मसूढो को मजवूत करता है। इस भस्म मे थोडा सेधानमक मिलादे। मसूढो व दातो के सव विकार नष्ट होते है।

मुख के छालो के शमनार्थ–कोमल व ताजे पत्तो को पानी मे पीस कर कुल्ले कराते है।

अफीम के विष–प्रभाव के शमनार्थ, पत्र १ तो० पीस छान कर कई वार पिलाते है। विच्छू के दश पर–पत्र–रस लगाते है।

कोमल पत्तो का क्वाथ पान करने से पित्त–विकार एव वमन आदि दूर होते है।

पत्र-क्वाथ मे शहद मिला कर, योनिमार्ग मे पिचकारी लगाने से योनिसम्बन्धी अनेक रोग दूर होते हैं।

प्लीहादि तथा आमाशय के विकारो पर–पत्तो को गोदुग्ध मे पीस कर नित्य सेवन कराते हैं। प्लीहादि—नाशक जम्बुपत्रासव देखे। (वृ० आ० अ० सग्रह)

(१७) वमन, अतिसार आदि पर—इसके पत्तो के साथ आम्र पत्र, खस, वड एव पीपल वृक्ष के अ कुरो के क्वाथ को ठडा कर, शहद मिला पीने से वमन मे लाभ होता है। (ग० नि०)

अथवा—इसके और आम के पत्तो के क्वाथ को ठडा कर, उसमे शहद और धान की खीलो का चूर्ण मिलाकर पीने से वमन और अतिसार दोनो मे लाभ होता है। (व० से०)

(१८) अतिसार, सग्रहणी और रक्तार्श पर–इसके पत्तो के साथ, अनारपत्र, सिंघाडे के पत्र, पाठा और चौलाई के पत्ते समभाग लेकर कूटकर रात को पानी मे पकाकर छानकर उसमे वेलगिरी भिगोकर ढक कर रख दे। प्रात इसमे थोडा गुड व सोठ का चूर्ण मिला पीने से समस्त प्रकार के अतिसारो और भयकर सग्रहणी मे भी लाभ होता है। (व से०)

केवल रक्तातिसार हो, तो इसके तथा आम और आमले के कोमल पत्तो (कोपलो) को कूट कर रस निकाल कर उमे लगभग ५ तो० की मात्रा मे वकरी का दूध समभाग मिला तथा थोडा शहद (१ तो० तक) मिला पीने से रक्तातिसार का नाश होता है। (भा० प्र०)

रक्तार्श मे—कोमल पत्र-स्वरस २ तो० मे थोडी शक्कर मिला पिलाते है। रक्तस्राव वन्द होता है।

अथवा—कोमल पत्र १ तो० को १ पाव गाय के दूध मे पीस छान कर थोडा शहद मिला दिन मे ३ बार पिलाते है। ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। इससे रक्तप्रदर मे भी लाभ होता है। उसमे शहद मिलाने की आवश्यकता नही।

अतिसार मे—पत्र-स्वरस १ तो० मे ३ मा० मधु मिला (इस प्रकार दिन मे ३ बार) देते रहने से ३-४ दिनो मे पूर्ण लाभ होकर, आम का पाचन होता एव रक्तस्राव भी दूर होता है।

(१९) मथर ज्वर (मोतीझारा) मे—इसके कोमल पत्र तथा कालीमिर्च व गुलदाऊदी के फूल (फूल न मिले तो पत्ते) तीनो समभाग, पानी मे पीस छान कर पिलाने से रोगी की बेचैनी दूर होकर शाति प्राप्त होती है।

(२०) व्रणादि के कारण विकृत हुए त्वचा के रग पर—इसके और आम के पत्ते तथा हल्दी, दारु-हल्दी, व नवीन गुड समभाग लेकर दही के पानी मे पीस लेप करते रहने से त्वचा का वर्ण पूर्ववत् हो जाता है। (वा० भ० उत्तर तत्र अ० ३२)

व्रणो पर जम्ब्वादि तैल देखिये। (भा० प्र०)

(२१) कर्णस्राव पर—इसके और आम के कोमल पत्तो को तथा सोंठ और कपास के फल एव अदरख को पानी के साथ पीस कर कल्क करें, इसमे ४ गुना पानी तथा नीम, करज या सरसो का तैल मिला, तैल सिद्ध कर कान मे डालने से कर्णस्राव बन्द होता है। (च० द०)

कान मे दुर्गन्धित स्राव युक्त पूतिकर्ण रोग हो, तो इसके तथा आम, मुलैठी और बड के पत्तो के (प्रत्येक प्रकार के पत्र १-१ तो०) कल्क तथा क्वाथ (प्रत्येक के पत्र २०-२० तो० लेकर ४ सेर पानी मे चतुर्थाश क्वाथ) मे तिल तैल (२० तो०) सिद्ध कर कान मे डालते रहे। (यो० र०)

(२२) अधिक पसीना एव दुर्गन्ध-नाश के लिये—इसके पत्र तथा अर्जुन के फूल और कूठ का चूर्ण एकत्र कर थोडे पानी मे पीस कर उबटन करे। (यो र.)

नोट—मात्रा-पत्र-स्वरस १ से २॥ तो० तक। चूर्ण-१ से ३ मासा। गुठली-चूर्ण ४ से २० रत्ती तक। छाल क्वाथ १। से २॥ तो०। छाल की भस्म १० से १९ रत्ती।

फलो को सदैव नमक मिलाकर खावे, वह भी अत्यधिक मात्रा मे नही। क्योकि यह देरी से पचता एव कफ अधिक पैदा कर सीने, मेदे व फेफडो मे विकार का कारण हो जाता है। कभी २ ज्वर को भी पैदा कर देता है।

विशिष्ट योग—

(१) सिरका—छोटे जामुन-फलो का रस (छोटी जामुन न मिले तो बडी जामुन का रस) ५ सेर मे पाचो नमक का ५-५ तो० चूर्ण महीन पीस कर मिला दें। नमक घुल जाने पर बोतलो मे रख, कार्क बन्द करदे। (बोतलो मे रस थोडा खाली ही भरे, व कार्क कसकर लगादे) फिर उन्हे धूप मे रख दे। इस प्रकार १ महीने तक, एक ही स्थान पर रखे रहने से बोतलो की तलैटी मे गाद सी जम जावेगी, तथा स्वच्छ सिरका जो ऊपर रहेगा उसे धीरे २ दूसरी बोतलो मे रख ले। गाद को फेंक दे।

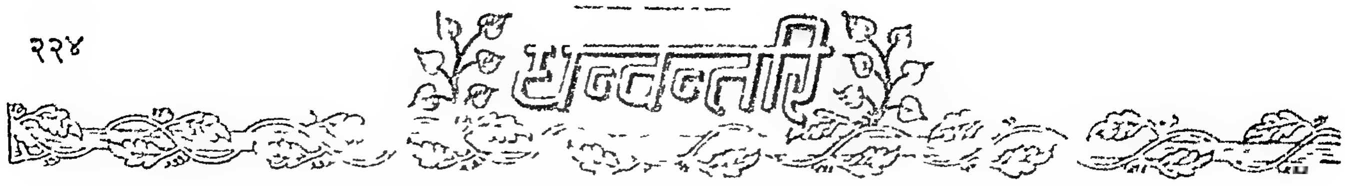
मात्रा—२ तो० तक, समभाग जल मिलाकर सेवन करने से उदरशूल व घृतपक्व पदार्थों के अति खाने से होने वाले अजीर्ण तथा अफरा, मन्दाग्नि, प्लीहा, यकृत एव उदर रोगो मे लाभ होता है। बढे हुए रोगो मे ४-४ घटे से तथा साधारण रोग मे प्रात साय लेवे। अजीर्ण पर यह अच्छा काम करता है।

(अनुभूत-योग)

नोट—सिरके के लिये उत्तम पके हुए ताजे फलो का रस लेवे। अधिकतर बगैर नमक का सादा सिरका निम्न प्रकार से बनाया जाता है।

(२) सिरका न० २—फलो के रस को बोतल या अमृतवान मे भर दे। ३-४ दिन तक रोज प्रात छान ले। फिर सप्ताह मे दो बार छाने फिर ७ दिन के बाद छाने। पश्चात् १५ दिन बाद छान ले। बस सिरका तैयार है। यदि इसे और भी उत्तम बनाना हो, तो १ मास और पडा रहने दे। इस पर फफूद आई हो तो छान ले। यह सिरका पुराना होने पर अधिक गुण दायी होता है।

ध्यान रहे छानते समय बोतल या जो पात्र हो,



वह तथा कपडा आदि सूखा एव स्वच्छ होवे, गीला न हो, अन्यथा सिरका विकृत होने की सभावना है।

यह सादा सिरका दाहपूर्वक ज्वर, शिर शूल आदि में विशेष लाभकारी होता है। अपचन, अहितकर एव दूपित अन्न, पानादि से हुई विसूचिका, उदरशूल, आध्मान, दूपित डकारे आना आदि विकार हो, तो यह सिरका ४ मा० (१ ड्राम) की मात्रा मे, थोडा जल मिलाकर १–१ या २–२ घटे मे २–४ बार देने से ही लाभ होता है। किन्तु कठ मे दाह हो एव खट्टे जल की वमन हो, तो सिरका नही देना चाहिये।

(गा० औ० र०)

पेट में बाल चला गया हो, अतिउग्र पीडा हो, तो मात्रा ३–७ मासा तक पीने से (समभाग जल मिला लें) तुरन्त शाति मिलती है।

(३) प्लीहा रोग-नाशक सिरका न०३—शुद्ध आमला-सार गधक ७ तो०, नौसादर व कलमीशोरा १-१ तो०, हीराकसीस व कुनेन ३–३ मा० इन सब को पीस कर एक बोतल मे भर उसमे जामुन के पके फलो का रस भर कर बोतल का मुख मजबूत काग से बन्द कर दें, तथा उस काग के ऊपर गीली चिकनी मिट्टी का लेप कर ४० दिन तक धूप मे रखे। फिर उसे काम मे लेवे।

प्रात-साय २० से ४० बून्दे, २॥ तो० जल के साथ सेवन करने से, बढी हुई तिल्ली का रोग चमत्कारिक ढङ्ग से आराम हो जाता है। सेवन-काल मे घृत का सेवन अधिक मात्रा मे करें और तैल, लाल मिर्च, खटाई, दही, इमली इन चीजो का बिल्कुल त्याग कर दे।

(व० च०)

(४) जम्ब्वरिष्ट—जामुन की अन्तरछाल, हरे पत्र, फूल और गुठली १-१ सेर कूट कर ६४ सेर जल मे पकावे। ८ सेर जल शेष रहने पर ठडा कर छान लें। फिर उसमे जामुन-फलो का रस १ सेर, धाय-फूलो का चूर्ण ½ सेर, नागकेशर-चूर्ण १ पाव और शहद १० तो० मिला, चीनी मिट्टी की बर्नियो मे भर, मुख बन्द कर १ महीने तक पड़ा रहने देवें। फिर छानकर, नितार कर बोतलो मे भर रक्खे। यह जितना पुराना होगा, उतना ही उत्तम गुणकारी होगा। मात्रा–१ से ४ तो० तक, दूने जल मे मिला प्रात-साय सेवन से प्रमेह, मधुमेह, रक्तार्श, रक्तातिसार, मूत्रदाह, उदर-रोग, सग्रहणी एव पित्त-विकार दूर होते हैं। (धन्वन्तरि सिद्धयोगाक)

जम्बुद्राव—उक्त प्रयोग नं० १ का सिरका, जिसमे ५ चीजो का मिश्रण है, वह वास्तव मे जम्बुद्राव ही है। अथवा कपडे से छने हुए जामुन-फलो के रस मे ½ भाग केवल सेधा नमक मिलाकर, ७ दिन तक रखने से भी साधारण जम्बुद्राव तैयार होजाता है। यह भी प्लीहोदर, यकृत्वृद्धि, कामला आदि पर अच्छा काम देता है।

द्राव का प्रयोग प्राय प्रतिदिन नही किया जाता। एक-एक दिन के अन्तर से प्रात-सायं लेना ठीक होता है। रोगी को तैल, लाल मिर्च, गुड़ दही तथा अधिक घृत व शक्कर भी नही खाना चाहिये।

(६) शर्बत तथा अवलेह जामुन—अच्छे मधुर परिपक्व बड़ी जामुन के रस १ सेर मे शक्कर २॥ सेर मिला कर पकावे। शर्बत जैसी चाशनी बनाकर छानकर रखले। १ से २॥ तो० तक, जल, दूध, मलाई, मक्खन आदि यथोचित अनुपान के साथ सेवन से पित्तातिसार, रक्तज सग्रहणी, वमन, जी मिचलाना, गलशोथ, रक्त-प्रदर, प्रमेह, सुजाक, रक्तार्श आदि मे उत्तम लाभ होता है। सगर्भा स्त्री को भी यह दिया जा सकता है। छोटे बालको के अजीर्ण, रक्तवमन, या साधारण वमन आदि पर भी यह उत्तम हितकारी है।

अवलेह बनाना हो, तो फल-रस से चौगुनी मिश्री मिला, शहद जैसा गाढा पाक करे। यह जितना जूना हो, उतना ही गुणदायक होता है। इसका भी उपयोग उक्त विधि से किया जाता है। यह अवलेह सग्रहणी आदि रोगो के अतिरिक्त आन्त्रक्षयादि व्याधियो मे विशेष लाभ करता है।



जायपत्री—देखिये—जायफल मे।

जायफल (*MYRISTICA FRAGRANS*)

अपने ही जातीफल-कुल[1] (Myristicaceae) की यह प्रमुख वनौषधि है। इसके सदा हरित एवं सुहावने वडे वृक्ष ३० से ८० फीट तक लम्बे, शाखाए-नाजुक, नीचे की ओर झुकी हुई, पत्र-जामुन-पत्र जैसे, किन्तु छोटे २-५ इंच लम्बे, १½ इंच चौडे, दृढ, सुगधित, ऊपरी पृष्ठभाग गहरे हरित वर्ण के, निम्न भाग पीताभ धूसर वर्ण के, पुष्प-वर्षा के बाद, छोटे ¼ इच लम्बे, गोलाकार, श्वेत या पीतवर्ण के सुगधित किंतु इसकी कई उपजातियो के पुष्प निर्गन्ध होते हैं।

फल—वर्षा ऋतु के बाद, गोलाकार १-२ इच लम्बे, छोटे नागपाती जैसे, प्राय ३ स्तरो से युक्त होते हैं—प्रथम स्तर—फलावरण—स्थूल, मासल, पकने पर पीत-वर्ण का, फल का यह बाह्य आवरण है। फल के परिपक्व होने पर यह आवरण दो भागो मे विभक्त हो जाता है। तब इसका द्वितीय स्तर—पलाशपुष्प के वर्ण जैसा लाल रग का जालीदार, मासल आवरण अन्दर के बीज को घेरे हुए रहता है। यह बीज पर गुन्छे के रूप मे चिपटा रहता है। शुष्क होने पर यह भगुर होकर बीज से स्वय ही पृथक हो जाता है। इसे ही जायपत्री (जावित्री) कहते है।

तृतीय स्तर—यह बीज के ऊपर का कुछ कडा स्थूल भाग है। इस आवरण सहित बीज को ही जाय-फल कहते है। वास्तव मे यह फल का बीज है।

फल के पकने पर स्वय जब वह फट जाता है तब उक्त जायपत्री और बीज (जायफल) अलग अलग हो जाते है।

नोट—इसके वर्ग की ८९ जाति हैं। भारत मे इसकी २० जाति पाई जाती हैं। इसकी निर्गंध जाति, जिसके फलों को रामफल (सीताफल के वर्ग का रामफल इससे भिन्न है), जंगलीजायफल (देखें जंगली जायफल) या बम्बई जायफल कहते है, तथा जिसके द्वितीय स्तर की पत्री को राम-पत्री या बम्बई की जायपत्री कहते हैं, उसे असली जायफल या जायपत्री में मिश्रण कर देते है। ये जंगली जायफल कम चौड़े, अधिक लम्बे, किंचित् मुला-यम एवं प्राय: गंधहीन होते हैं, तथा जायफल की अपेक्षा हीन गुण वाले होते है। इसके वृक्ष कोंकण, मद्रास, कर्णा-टक एव उत्तर मलाबार प्रान्तों में पाये जाते हैं।

उत्तम जाति के इसके वृक्ष मलाया द्वीप पुंज, पेनाग, सुमात्रा, सिंगापुर, जजीबार, सिंगापुर या चीन के आस-पास के जगलो मे स्वय नैसर्गिक रूप से उगते है।

जातीफल का उल्लेख आयुर्वेदीय सहिताओ एवं निघण्टुओ मे प्राचीन काल से मिलता है।

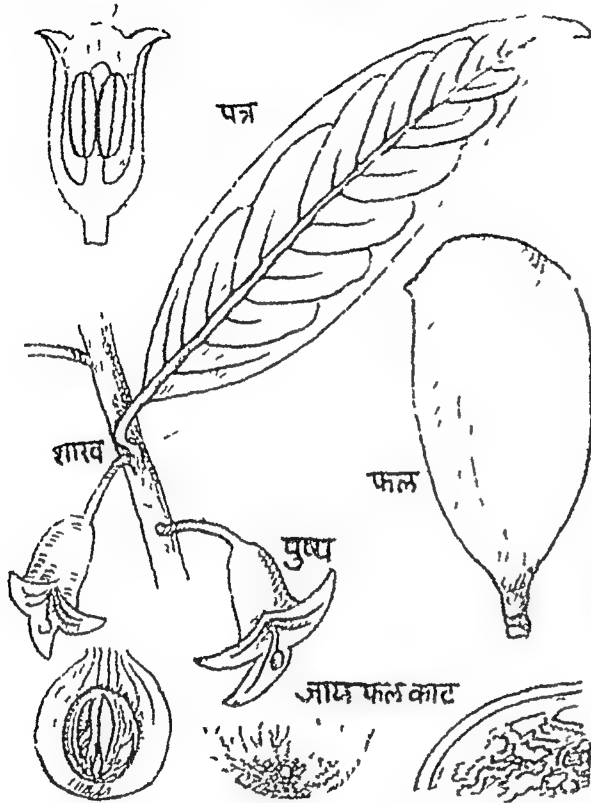
नाम—

स०-जातीफल, जातीकोष, मालतीफल इ०। हिं०, म०, गु०, बं०-जायफल। अं०-नटमेग (Nutmeg)। ले०-मिरिस्टिका फ्रेग्रेन्स, मि० आफिसिनालिस (M Officinalis), मि० अरोमेटिका (M Aromatica), मि० एस्रो-स्काटा (M Aoschata)।

रासायनिक संघटन—

जायफल मे—उडनशील तेल—२ ८ / या ५.५ /. होता है। यह पतले रंग का तैल ही इसका कार्यकारी तत्व है। तथा इसमे एक स्थिर तेल २४ ४० प्रतिशत भी होता है। यह गाढा होता है। तथा इसे (Butter of nutmeg) जातीफल-नवनीत कहते है। इसकी साबुन जैसी वट्टिया पीले रग की बाजारो मे मिलती है। इसमे लगभग ६१ प्रतिशत मिरिस्टक एसिड (Myristic acid) मिरिस्टिन (Myristin) तथा एक सुगधित तेल होता है। इस सुगन्धि तैल मे मिरिस्टिसीन (Myristicene) एव मिरिस्टिकोल (Myristicol) नामक तत्व होते है। इसके उडनशील तेल मे मुख्यतया यूजेनाल (Eugenol) व आइसो यूजेनाल (Iso-eugenol) पाये जाते है।

[1] इस कुल के वृक्षो के पत्र अखण्ड, एकान्तर, उप-पत्र-रहित, पुष्प-श्वेत या पीतवर्ण, पुष्प-बाह्यकोष के दल ३, पुंकेसर १०, बीजकोष १ खडवाला, फल-मासल, बीज-बड़े, प्रभूत तैलयुक्त होते हैं। (द्र० गु० वि०)



इसके अतिरिक्त जायफल मे सुगधि वाल्सम, स्टार्च एव रेशेदार पदार्थ होते है।

व्यापारी लोग इसके असली तेल मे इसके उपवर्ग के अनेक वृक्षो के फलो से निकले हुये तेल का मिश्रण कर देते है।

प्रयोज्य अङ्ग—

जायफल (यह चिकना और काफी वजनदार होना चाहिये। यह जितना ही बडा हो उतना ही उत्तम होता है।) जायपत्री, और तेल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, कफवात शामक, रोचन, दीपन, पाचन यकृदुत्तेजक, स्वापजनन, मलरोधक, वातानुलोमन, ग्राही, कृमिघ्न, स्वर्य, दुर्गन्धनाशक, कटु पौष्टिक, कफनि सारक, वृष्य, आर्तवजनन, वेदनास्थापक व मुख-वैरस्य, अग्निमाद्य अजीर्ण, यकृद्विकार, अनिद्रा, विष्टम्भ, अतिसार, विसूचिका, हृद्रोग, पीनस, कास, श्वास, ग्रहणी, कृमि, शूल हिक्का आक्षेपादि वातविकार-नाशक है।

अतिसार मे इसे अफीम आदि के साथ देते है, इसे जल मे घिसकर नाभि पर भी लेप करते है। अतिसार या सग्रहणी के बाद की दुर्बलता मे इसका सेवन कराते है।

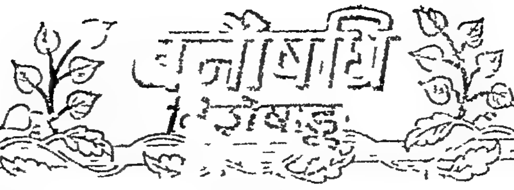
विसूचिका मे इसका हिम या शृतजल पिलाते है। या इसे शीतजल मे घिसकर पिलाते है, इससे तृषा भी दूर होती है वमन एव अवसाद में भी यह लाभकारी है। हैजा की दशा मे हाथ पैरो मे होने वाली ऐंठन पर इसे तेल में पीस, गरमकर मालिश करते है।

कामोत्तेजना एव स्तम्भनार्थ इसे वाजीकरण योगो मे प्रयोजित करते है। रजोरोध व कष्टार्तव मे भी इसे देते है। शिर शूल, सधिशोथ आदि मे इसका लेप करते है। चर्म रोगो मे इसका मलहम बनाकर लगाते है। मन्दाग्नि मे—इसके चूर्ण को शहद से देते है इससे हृदय को भी बल मिलता है। मुख के छालो पर—इसके क्वाथ से कुल्ले कराते है। कर्णमूल-शोथ पर—इसका लेप करते है। व्यंग, नीलिका, झाई आदि पर—इसे पानी मे घिसकर लगाते हैं। हल्लास (उत्क्लेश, मिचली) पर—इसे शीत जल मे घिसकर पिलाते है। हिक्का तथा वमन पर—इसे चावल के धोवन मे घिसकर पिलाते है। उदराध्मान तथा विबन्ध मे—इसे नीबू के रस मे घिसकर देते है। मुहासे (यौवन-पिटिका) पर—इसके साथ लालचन्दन व काली मिरच समभाग लेकर पानी मे पीस लेप करते है। दुर्गंध युक्त दुष्ट व्रण पर इसके चूर्ण को बुरकते है।

(१) अतिसार पर—फल मे एक छोटा छिद्रकर उसमे अफीम भर, छिद्र को उसके ही बुरादे से बन्द कर उस पर गीला आटा लपेट, भूभल मे दाब दे। आटा पक कर लाल हो जाने पर उसे हटाकर भीतर के फल को पीस गोलिया बना ले।

मात्रा—२-३ रत्ती। अथवा—

फल के समभाग छुहारा और शुद्ध अफीम लेकर तीनो को नागरवेल (खाने के पान) के रस मे खूब घोट



कर १-१ रत्ती की गोलिया बना १ या २ गोली तक के साथ दिन मे २ या ३ बार देते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

ग्रीष्मकालीन आमातिसार या प्रवाहिका पर–फल का चूर्ण २ माशा तक दूध के साथ सेवन कराते है।

साधारण अतिसार पर–फल को भूनकर चूर्ण १॥ माशा की मात्रा मे दिन मे ३-४ बार देवे।

उदर-पीडा पर–उक्त भुने हुए फल का चूर्ण ३ माशे तक एक ही बार देने से लाभ होता है।

(२) प्रवृद्ध अतिसार, आमातिसार एव तज्जन्य उदर-शूल या पेट की ऐठन पर––

फल के समभाग लौग, जीरा और शुद्ध सुहागा महीन चूर्ण कर शीशी मे भर रक्खे। यह-भैं० रत्नावली का लवंगचतु समचूर्ण है। मात्रा १ से ३ मा०। शहद और खाड (चीनी, शक्कर) के साथ। प्रात-साय, वढे हुये रोग मे ४–४ घटे से देवे। वालको को ½ से २ रत्ती तक देवे। यह एक अति उत्तम सिद्ध योग है। अथवा—

अतिसारयुक्त रोग एव सग्रहणी मे जातीफलादि रस––फल, सुहागा की खील, अभ्रक भस्म, धतूरे के वीज १-१ तो०, अफीम २ तो इन्हे एकत्रकर गन्ध प्रसारणी-पत्र-रस मे मर्दन कर चने जैसी गोलिया वनाले।

इसे अतिसारयुक्त रोगो मे, तथा साम या पक्व-ग्रहणी, रक्तग्रहणी, शूलयुक्त ग्रहणी आदि मे रोगानुसार अनुपान के साथ देवे। साधारण सग्रहणी मे शहद से देवे। आम एव पक्वातिसार मे शूलयुक्त रक्तस्राव की दशा मे इसका प्रयोग उत्तम है। रोगी को पथ्य मे दही-भात देवे। —(भैं० रत्नावली)

सग्रहणी पर—जातिफलादि पाक वि० योगो मे देखें। अथवा—

जातीफलादि योग—फल के साथ सोठ, राल और छुहारा समभाग तथा अरण्य उपलो की राख सवके सम-भाग लेकर महीन चूर्ण वनाले।

इसे २॥ मा० की मात्रा मे चावलो के धोवन के साथ प्रात-साय सेवन करने मे जीर्णातिसार, रक्तातिसार एव शूलयुक्त अतिवेगवान अतिसार का नाश होता है। (भा० भैं० र०)

बालको के अतिसार पर––अनार की एक कली को वीच मे चाकू से चीरकर उसमे शुद्ध अफीम चौथाई रत्ती भर, थोडी चिकनी मिट्टी से कली को चारो ओर से पोतकर, कण्डे की आग मे पका ले। ऊपर की मिट्टी साफ कर, उसे १ नग जायफल के साथ खरल कर, मसूर जैसी गोलिया वना ले।

इससे वच्चो का अतिसार, तथा पेट की ऐठन मिटती है। दूध पीते वच्चो को मातृदुग्ध या मधु से, वडे वच्चो को मधु या गरम किये हुए शीत जल से दे। यदि दस्त अधिक होते हो तो ४-४ घटे से तथा साधारण दस्तो मे प्रात-साय देवे।

––अ० योग (प० केदारनाथ पाठक, रासायनिक द्वारा सकलित)

नोट—विशिष्ट योगों मे जातीफलासव एव जायपत्री-आसव देखें।

(३) विसूचिका (हैजा) पर–इसका शृत जल पिलाते, या इसे शीत जल मे घिसकर पिलाते है। तृषा शमन होती है। हाथ-पैरो मे ऐठन होने पर, वायटे उठने पर १ फल के चूर्ण को १० या २० तो० सरसो-तैल या मीठे तैल मे मिला, गरम कर मालिश करते है।

(४) अजीर्ण-दशा की तृषा और वमन पर––फल १ तोला चूर्ण को, २ सेर उबलते हुए पानी मे मिला, नीचे उतार कर ढक देते है, फिर शीतल होने पर थोडा-थोडा जल पिलाते है।

इसके भूने हुए फल का चूर्ण १ से १॥ माशा की मात्रा में १-१ घटे से फकाकर ऊपर से इसका शृतजल थोडा-थोडा पिलाने से भी विसूचिका मे लाभ होता है।

(५) आध्मान (अफरा) पर––फल का चूर्ण २॥ रत्ती मे समभाग सोठ-चूर्ण तथा जीरा-चूर्ण ५ रत्ती मिला, खरल कर (यह १ मात्रा है) भोजन के पूर्व लेने से लाभ होता है।

(६) वीर्य-स्तम्भन तथा नपुसकता पर––एक वडा जायफल (जो ७ मा० से कम न हो) लेकर उसे पोला (खोखला) कर, भीतर १॥ माशे अफीम भर, उसके

मुख को आटे से बन्द कर, ऊपर से आटा लगाकर गोली बना आग पर सेंक ले। सुर्ख हो जाने पर, ऊपर से लगा आटा हटाकर, सारे फल को पीस, शहद मे मिला छोटे बेर जैसी गोलिया बनाले। १ गोली सम्भोग के पूर्व दूध के साथ लेने से बहुत स्तंभन होता है।

(व० चन्द्र०)

जायफल-चूर्ण ४-४ रत्ती प्राय-साय ताजे जल से ४० दिन तक सेवन करे। शीघ्रपतन की शिकायत दूर होगी, किंतु सेवनकाल मे सम्भोग न करे।

तिला—फल, सुहागा और सखिया १-१ तो० लेकर चिकने खरल मे खूब खरल कर उसमे चमेली-पत्र-रस २ सेर, और ३ सेर तिल-तैल मिला पकावे। तैल-मात्र शेष रहने पर छान कर, शीशी मे अच्छी तरह बन्द कर रक्खें। इस तैल को शिश्न पर धीरे-धीरे मर्दन कर ऊपर से खाने का पान बाध दिया करे। २१ दिन के इस प्रयोग से शिथिल शिश्न मे उत्तेजना प्राप्त होती है। (नाडकर्णी)

(७) अर्श तथा अग्निमाद्य पर—जातीफलादि वटी—फल, लौंग, पिप्पली, सेधा नमक, सोठ, धतूरे के बीज, सिगरफ व सुहागा की खील समभाग, जम्बीर नीबू के रस मे खरल कर २-२ रत्ती की वटी बनाले। इसे तक्र के अनुपान से सेवन करने से, अर्श और अजीर्ण मे लाभ होता है।

अर्श के रोगी को मल पतला आता हो या ग्रहणी की शिकायत हो, तो इसका सेवन कराते हैं। पैत्तिक अर्शो मे विशेषत अर्श सदाह व शोफयुक्त हो तो इसका सेवन नही कराना चाहिये। (भै० रत्नावली)

रक्तार्श पर मलहम—फल का महीन चूर्ण ८ मा० क्षाराम्ल (टैनिक एसिड Tannic acid) ४ मा० इन दोनो को चरबी (शूकर की हो तो उत्तम, इसे अग्रेजी मे लार्ड Lard कहते हैं) मे खरल कर मलहम बना लें। इसे अर्शाकुरो पर लगाते रहने से कण्डुयुक्त दाह-शोथ नष्ट होता है। (नाडकर्णी)

(८) निद्रानाश पर—जायफल और जावित्री के चूर्ण (१ से २ मा०) को दूध मे उबाल कर, ठडा होने पर मिश्री मिला पिलावे, तथा फल के चूर्ण को घृत मे घिसकर नेत्रो पर लेप करे।

नेत्रो की खुजली एवं जलस्राव मे फल को पानी मे घिस कर नेत्रो के चारो ओर लगावे। इससे नेत्र-ज्योति भी बढती है।

(९) प्रसवपश्चात् होने वाली कटिवेदना पर—फल-चूर्ण १ मा० तक तथा कस्तूरी ½ रत्ती पान के बीडे मे डालकर खिलाते हैं, तथा फल को शराब (मद्य) मे घिसकर लेप करते है।

(१०) बाल-रोगो पर—बालको की छाती मे कफ भर जाने से होने वाली हाफनी एव श्वास पर—फल को जल मे घिस कर, कुछ गरम कर फुफ्फुसो पर लेप कर, थोडा सेक करते है।

बालको के प्रतिश्याय पर—फल-चूर्ण और सोंठचूर्ण गोघृत के साथ चटाते हैं। तथा फल को दूध मे घिसकर गरम कर मस्तक पर लेप करते है। फल-चूर्ण को सरसो-तैल मिला सिर पर लगाते है।

बालक को गौ का दूध सरलता से पचने के लिये—गोदुग्ध मे पानी मिला, उसमे फल को उबाल और छान कर पिलाते है। इससे मल पीला दुर्गन्धरहित, बधा हुआ नियमित होने लगता है।

श्वास-कासादि पर—वि० योगो मे जातीफलादि पाक देखें।

नोट—(१) जायफल को घृत मे रखने से कई वर्षों तक सुरक्षित रहता है। बिगड़ता नहीं।

(२) जायफल चूर्ण—पल्विसक्रेटीएरोमेटिकस (Pulv Cret Aromat) पल्विसक्रेटी ऐरोमेटिकस कम ओपिओ (Pulv Cret Aromat Cum Opio) आदि आफिसिय योगों में तथा स्प्रिट्स मिरिस्टिकी (Spiritus Myristicae) या स्पिरिट नटमेग (Spirit nutmeg) आदि नान आफिसिय योगों में पड़ता है।

जायपत्री—इसकी उत्पत्ति का वर्णन प्रारभिक विवरण मे देखिये।

नाम—

सं०-जातिपत्री, जातिफलत्वक् आदि, हि० म०—जायपत्री, जावित्री, बं०-जायत्री, अं.-मैस (Mace)।

रासायनिक संघटन—

इसमे जायफल के सदृश उड़नशील तैल ८-१७ प्रति-

गत, तथा राल, वसा, शर्करा व पिच्छिल द्रव्य होते हैं।

विशेष देखें—ऊपर जायफल का रा० संघटन। इसके पीताभ सुगंधित तैल मे जावित्री की गंध आती है। इसमे मेसीन (Macne) नामक तत्व होता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, कटु, तिक्त, सुगंधित, स्वादिष्ट, रुचिकर, दीपन, पाचन, किंचित्संग्राही (जायफल की अपेक्षा कम ग्राही) कफ, कास, वमन, कफयुक्त श्वास, हृद्रोग, क्षय, आंतो (आन्त्र) के जीर्ण विकार, व विसूचिका कृमि आदि पर प्रशस्त है। तृष्णाशामक, वाजीकर, कामोत्तेजक, वर्णकारक, सौंदर्यवर्धक, मुख-स्वच्छकारक, तथा वेदना-स्थापक है।

कफ जन्य श्वास मे इसे पान के बीडे के साथ खिलाते हैं। क्षय मे भी इसे देते हैं। वाजीकरण योगो मे या पाकों मे इसे मिलाने से गुण और स्वाद मे वृद्धि होती है। आन्त्र के जीर्ण विकारो से शरीर कृश होने पर इसे ६ से १० रत्ती तक की मात्रा मे देते हैं। शीत एव वातज शिर शूल मे इसका लेप करते हैं।

हस्तिमेह-(वातजमेह जिसमे मूत्र बून्द-बून्द निरन्तर टपकता रहता है—A false incontinence of urine मे इसका लेप पीठ, नाभि और पेड़ू पर करते व सेवन भी कराते हैं।

बाधिर्य पर—इसे तैल मे पीसकर कान मे डालते हैं।

(११) अतिसार आमातिसार पर—जावित्री-चूर्ण १-१ मा० दही की मलाई के साथ या तक्र से दिन मे ३ वार देवें। ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

वालकों के अतिसार मे—इसका चूर्ण ½ से १ रत्ती शहद से दिन मे ३ वार देवें।

(१२) स्वरभंगपर—जातिपत्रादिलेह—जावित्री, पीपल, धान की खील, बिजौरे नीबू के पत्ते और इलायची समभाग पीस कर शहद मे मिला चाटते रहने से स्वर अत्यन्त मधुर हो जाता है। (भा० भैं० र०)

(१३) गर्भाशय-शोधनार्थ—इसे केसर के साथ घोटकर वर्तिका (वत्ती) वना, गर्भाशय के मुख तक प्रविष्ट कराते हैं। गर्भाशय के विकृत द्रव्यो का शोषण होकर, उसकी कमजोरी दूर होती है।

चेहरे की झाई (व्यंग) पर—इसे अफसतीन या शहद के साथ मिलाकर लगाते है।

नोट-दौर्बल्य आदि नाशक जातिपत्रीपाक-वि. योगों मे आगे देखे।

तैल—इसका विवरण जायफल व जायपत्री के रासायनिक संगठन मे देखिये।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह दीपक, उत्तेजक, वल्य, तथा जीर्णातिसार, आध्मान, आक्षेप, शूल, आमवात, दन्तवेष्ट (पायोरिया), व्रणरोगादिनाशक है।

जावित्री-तैल मे उक्त जायपत्री के जैसे ही वेदना-स्थापन, उष्ण, उत्तेजक, वातहर, आदि गुण है।

शैत्य एव अवसाद युक्त अवस्था मे तैल को त्वचा पर रगडते हैं।

ध्वजभंग पर—इसे शिश्न पर लगाकर पान बांधते हैं।

गठिया या संधिवात पर—इसकी मालिश करते है।

त्वचा की शून्यता पर—इसकी मालिश करते है।

उदरशूल व आध्मान पर—फल के तैल को शक्कर या बताशे मे डालकर खिलाते है।

स्रावयुक्त दुष्ट व्रणो के शोधनार्थ—फल-तैल को मलहम मे मिला लगाते है।

(१४) जीर्णसंधिवात से हुई जकडन, संधिशोथ, पक्षवध तथा मोच पर—फल या पत्री के तैल को सरसो तैल मे मिला मर्दन करते हे। स्थानीय उष्णता एव चेतना की वृद्धि होती हे, तथा प्रस्वेद आकर विकार दूर होता है।

(१५) दंतशूल तथा दन्तवेष्ट पर—तैल का फाया दांत या दाढ के कोटर मे रखते है। कीटाणु नष्ट होकर विकार दूर होता है।

नोट--जातिफल-तैलासव प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखें।

विशिष्ट योग—

(१) जातिफलपाक-(श्वास कासादि हर)-जायफल

५०० नग लेकर चूर्णकर, १३ सेर दूध मे पकाकर खोया सा हो जाने पर उसे १। सेर घृत मे भून लें। फिर उसमे वंशलोचन १५ तो०, कपूर, कंकोल, लोग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, मोचरस, ४-४ तो० महीन चूर्ण कर मिलावें। पश्चात् मिश्री की चाशना में सब को मिला पाक जमा दे।

३ मा० से १ तो० तक की मात्रा मे सेवन करने से श्वास, कास, प्रमेह, अर्श, क्षीणता, क्षय आदि कई रोगो को दूर कर बल की वृद्धि सहित वीर्य को पुष्ट करता है। (वृ० पाक सग्रह)

नोट--संग्रहणी-नाशक जातिफलादिपाक नं० १ तथा अन्य उत्तमोत्तम पाकों के लिये हमारी वृहत् पाकसग्रह पुस्तक देखिये।

दौर्बल्य-नाशक—जातिपत्री (जावित्री) पाक भी उक्त पुस्तक मे ही देखने योग्य है। विस्तार भय से यहा नही दिया जा सकता।

(१)जातिपत्रादि अवलेह—जावित्री १२ तो०, सौठ ६ तो०, गोद बबूल, छोटी इलायचीबीज, प्रत्येक ३½ तो० सबका चूर्ण कर, ३४ तो० खाड की चाशनी मे मिला देवे। मात्रा—७ मा० भोजन के पश्चात्, अर्क सोफ या जल से देवे। यह भोजन को पचाता, वात तथा कफ-दोष नष्ट करता वं आध्मान, अजीर्ण और विसूचिका मे लाभप्रद है। (यू० चि० सा०)

(२) जातिफलासव तथा तैलासव—जायफल के चूर्ण १ भाग मे ५ गुना मद्यसार (९० प्रतिशत) मिला, बोतल मे अच्छी तरह कार्क बन्द कर रक्खे।

इसी प्रकार जातीफल—तैलासव बनाना हो, तो जायफल के शुद्ध तैल १ भाग मे, १० गुना मद्यसार (९० प्रतिशत) मिला. बोतल मे भर रक्खे। ७ या १५ दिन बाद काम में लावे।

चूर्णासव की मात्रा २० से ६० बून्द तक, तथा तैलासव की मात्रा १० से ३० बून्द तक। ये दोनो स्थानिक तथा सर्वाङ्ग उत्तेजक, आमाशय व ग्रहणी के लिये दीपक तथा कुछ ग्राही हैं। स्थानिक एव सर्वाङ्ग वातशूलहर व अतिसार, वमन, विसूचिका पर लाभप्रद है। इनकी मात्राओ को २॥ तो० दूध या जल के साथ लेवे। जल मे लेना ठीक होता है।

(३) हलुवा या माजून कुवतीवाह—जायफलचूर्ण, लौंग, लुभान, नागरवेल (खाने के पान) की जड, कबाव चीनी (शीतल चीनी), सौठ, और अकरकरा प्रत्येक का चूर्ण २-२ तो० दालचीनी-चूर्ण ४ तो० लेकर ३ तो० शहद मे एकत्र खूब खरल करे। फिर उसका हलवा बना उसमे ५० नग चादी के वर्क मिलाले। मात्रा— आध से २ तो० तक, दिन मे दो बार गौदुग्ध से लेवे। यह हृदय व मस्तिष्क के लिये बलप्रद, वीर्य-स्तभक एव प्रमेह, दौर्बल्य व नपुसकता-नाशक है। (नाडकर्णी)

नोट--जातिफलादि चूर्ण एवं वटिकाओ के अन्यान्य विशेष प्रयोग शास्त्रों में देखिये।

मात्रा-विचार—

जायफल-चूर्ण मात्रा ५ से १० रत्ती। अधिक मात्रा मे या बार बार लेने से यकृत व फुफ्फुसो को एव उष्ण प्रकृति वालो के लिये हानिकर है। सिर मे दर्द, मादकता, मूर्छा, तथा वीर्य-स्थान—में उष्णता उत्पन्न कर वीर्य को पतला करता व नपुंसकता लाता है।

इसकी हानिनिवारणार्थ—धनिया, चन्दन, बनफशा, मधु का सेवन कराते हैं।

जायपत्री की मात्रा—२ से ८ रत्ती या २ मा० तक। अधिक मात्रा मे लेने से शिर शूल-जनक, मादकता एव मूर्छा-उत्पादक है। जायफल या जावित्री दोनो की क्रिया अधिक मात्रा मे मस्तिष्क पर कपूर के विषैले परिणाम जैसी होती है। मूढता तथा प्रलाप की वृद्धि होती है। जायपत्री—हानिनिवारणार्थ—मक्खन मे चन्दन और मिश्री मिलाकर देते है, या गुलाब अर्क व बबूल का गोद देते हैं।

नोट—जायफल या जावित्री का प्रयोग ज्वर, प्रदाह एवं मस्तिष्क में रक्तचाप की वृद्धि की दशा मे नहीं करना चाहिये।

तेल की मात्रा—१ से ३ या १५ बूद तक है। अधिक मात्रा मे यह भी उक्त परिणामो को पैदा करता है।

जारुल दे०—जरूल
जावसीर दे०—गवाशीर।
जासुस, जासोद, जास्वन्द दे०—गुडहल।
जावित्री दे०—जायफल मे।
जिंगना दे०—जोकमारी।

जिंगनी (Odina Wodier)

वटादिवर्ग तथा आम्रकुल (Anacardiceae) के इसके वृक्ष ३०-५० फुट ऊंचे, पिंड की गोलाई ४-५ फुट तक, शाखाये बडी तथा फैली हुई, छाल-मोटी । पत्र—सेमल पत्र जैसे १२-१८ इंच लम्बे, संयुक्त पक्षाकार, विषम संख्या के ७-११ तक पत्रक युक्त, लट्टू जैसे आकार के, लम्बे नोकदार, सरलधार युक्त, चमकदार और सुन्दर होते हैं ।

पुष्प–ग्रीष्मकाल मे, आम के बौर जैसे, बौरो मे सूक्ष्म, पीताभ लाल वर्ण के, सुगन्धित, फल–बेर जैसे लाल रंग के गोल या लम्बे से व किंचित् चिपटे होते है ।

गोद या निर्यास–वसन्त ऋतु मे (विशेषत अप्रैल व मई मे) वृक्ष के पिंड पर घाव कर देने से एक पीताभ श्वेत रङ्ग का गोद निकलता है । यह पूर्णतया पानी मे नही घुलता तथा औषधि–कार्य मे आता है ।

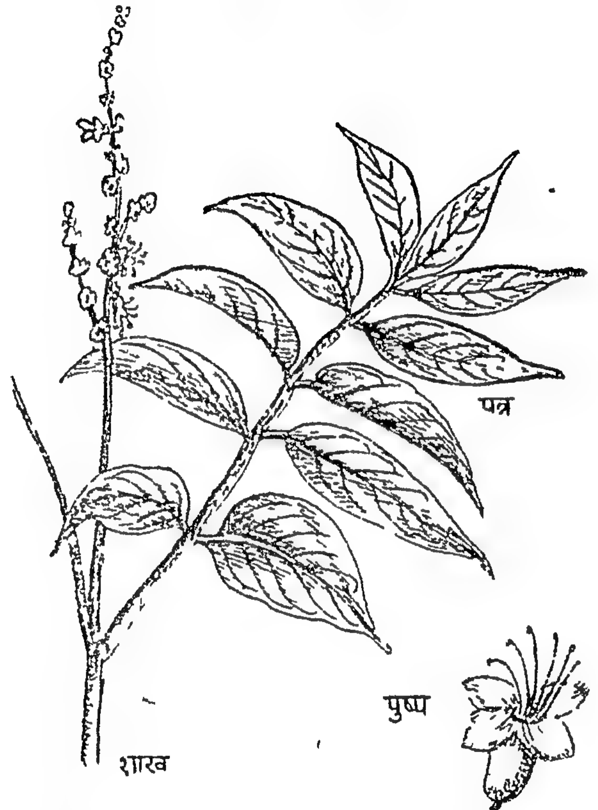
नोट-अष्टांग हृदय सूत्रस्थान अ १५ के रोध्रादि गण में इसका उल्लेख है, तथा टीकाकार ने 'जिंगिणी कृष्ण शाल्मली (जिंगनी यह काली सेमल है) सूचित किया है ।

इसके वृक्ष मद्रास, काठियावाड बंगाल, बिहार, आसाम, वर्मा आदि प्राय उष्ण प्रदेशो के जंगलो मे अधिक पाये जाते हैं ।

ये वृक्ष दीखने मे बहुत सुन्दर होते हे, किन्तु ये अधिक दिन नही ठहरते । शीतकाल मे पत्रो के बिखर जाने से इनकी शोभा मारी जाती है, तब ठूंठ जैसे हो जाते है ।

नाम—

सं०–जिंगिणी, सुनिर्यास, प्रमोदिनी, गुडमंजरी ।
हिं०–जिंगनी, जीआल, काली सेमल ।
म०–मोई, मोख, शिंपटी ।
बं०–जिओल, डुडुलली ।–
गु –जिनि, मेवडी, मोलेडु ।
ले०–ओडिना वोडियर, लेस्नीग्रेंडिस (*Lemnea Grandis*)



रासायनिक संघटन–

छाल मे टेनिन तथा उसकी राख मे पोटाशियम कार्बोनेट अधिक प्रमाण मे रहता है ।

प्रयोज्य अङ्ग–

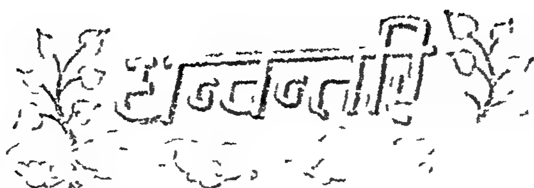
छाल, पत्र व गोद ।

गुण धर्म व प्रयोग–

मधुर, कषाय, कुछ नमकीन, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य हैं ।

छाल–उत्तम शोधक, पौष्टिक, व्रणरोपक, व्रणशोधक व रोपण, तथा अतिसार, हृद्रोग आदि नाशक है ।

(१) अजीर्ण, अतिसार एव शारीरिक शैथिल्य-निवारणार्थ छाल का क्वाथ सेवन कराते है ।



(२) मुख-रोग, मुख के छाले, गले की खराबी तथा कास पर—छाल के क्वाथ से कुल्ले कराते है, इससे दतशूल एव मसूढो के ढीलेपन मे भी लाभ होता है।

(३) दुष्ट व्रण, योनि के व्रण, विसर्प आदि पर—छाल के क्वाथ या लोशन से प्रक्षालन करते, तथा छाल के क्वाथ के साथ तेल सिद्ध कर लगाते है। अथवा—छाल के चूर्ण को नीम के तैल मे मिलाकर लगाते है।

(४) अग्निमाद्य, अजीर्ण एव दौर्बल्य मे—इसका क्वाथ २॥ तोला की मात्रा मे सेवन कराते है।

(५) नेत्राभिष्यन्द एव दूषित व्रणो पर—छाल का ताजा रस लगाने से उत्तम लाभ होता है।

पत्र—

(६) मोच तथा त्वचा के छिल जाने से और स्थानीय सूजन व पीडा पर—पत्रो को तेल मे पकाकर, तेल का मर्दन करते या लगाते है। शोथ पर—पत्तो को गरम कर बाधते हैं।

(७) बेहोशी या मूर्च्छा पर—अफीम के खाने या अन्य विष से उत्पन्न बेहोशी पर—ताजे पत्तो या कोमल शाखाओ के रस १० तोले मे इमली का घोल ५ तोला मिला पिलाने से वमन होकर मूर्च्छा दूर होती है।

(८) सधिवात या गठिया पर—पत्तो के साथ काली मिरच पीस कर लेप करते है।

(९) श्वास तथा स्त्रियो की दुर्बलता पर—पत्रो के क्वाथ का सेवन कराते है।

गोंद—स्नेहन और सग्राहक है।

(१०) स्त्रियो की पुष्टि एव दुग्धवर्धनार्थ-गोंद का सेवन दूध के साथ कराते है।

(११) त्वचा के छिल जाने या मोच पर—गोंद को ब्राडी (उत्तम शराब) मे मिला लगाते है। इसे नारियल के दूध मे भी पीसकर लेप करने से मोच की पीडा पर लाभ होता है।

अपबाहुक तथा मन्यास्तभादि ऊर्ध्वजत्रु वातव्याधियो पर—इसके गोंद के साथ गूगल को जल मे पीसकर नस्य देने से लाभ होता है—(व० से०)

मात्रा—क्वाथ की ५ से १० तोला तक।

जिंतियाना (Gentiana Lutea)

भूनिम्ब कुल (Gentiaceae) के इस विदेशीय त्रायमाण के पौधे प्राय ३-३॥ फुट तक ऊंचे होते है। ४-५ वर्ष के पुराने पौधो की जडो एव राइजोम को खोद कर निकालते तथा शुष्क कर लेते है। पौधो मे बेलनाकार भौमिक काण्ड (राइजोम) पाये जाते है, जो ४ सेटीमीटर तक मोटे होते है। इसी राइजोम से जडे निकलती है, जो लगभग १½ या ३ फुट तक भी लम्बी होती है। जड़ें अन्दर से श्वेत रंग की एव गन्धहीन होती है। ताजी सूखने पर इसका रग श्वेताभ भूरा हो जाता, एव एक विशिष्ट गन्ध आने लगती है। स्वाद मे भी अधिक तिक्त हो जाता है।

इसके लम्ब-गोल टुकडे बाजार मे लाल जशान (Red Gentian) के नाम से बिकते है, इसके पत्र-पुष्पादि का स्वरूप चित्र मे देखिये। इसके अभाव मे देशी जिंतियाना (गाफिस—अरबी नाम) अर्थात् त्रायमाण उत्तम प्रतिनिधि है।

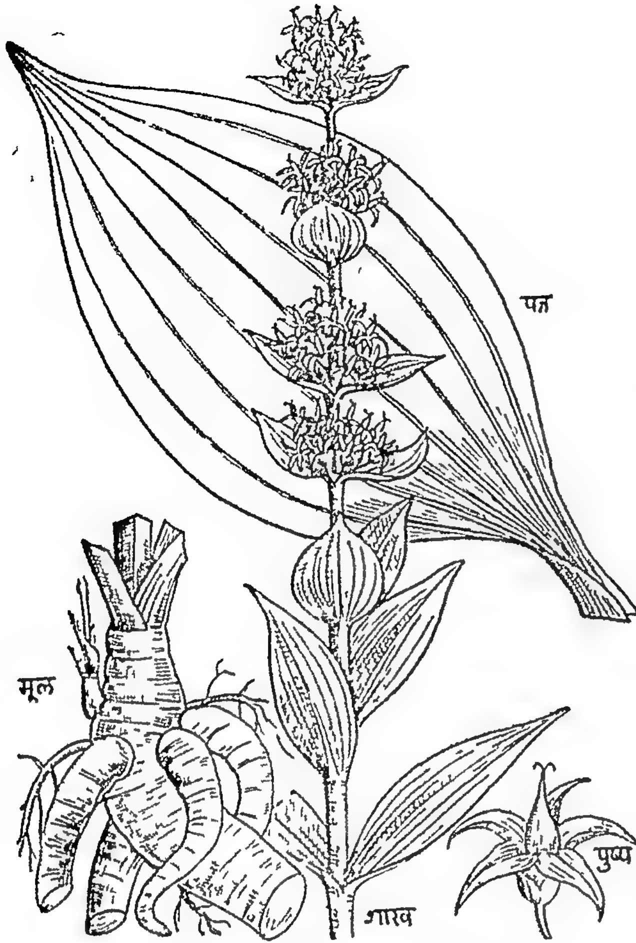
इसके जड़ें ही औषधि-कार्य मे ली जाती है। मध्य व दक्षिण यूरप के पहाड़ी प्रान्त तथा एशिया माइनर, और स्पेन से काफी मात्रा मे ये जडो के टुकडे बाहर के देशो मे भेजी जाती हैं।

नाम—

हि०—जंशनमूल, जिंतियाना। अं०—जंशियन (जंशन) रूट (Gention root) ले०-जंशियाना लूटिआ, जं० रेडिक्स ([1]Gentianae Radix)।

---

[1] यूनान के एक बादशाह, जिन्होने इस औषधि के बल्य प्रभावों का पता लगाया था, उनका नाम जंतीयूस



जितियाना
GENTIANA LUTEA LINN

रासायनिक संगठन—

इससे जशिइन (Gentin) नामक एक तिक्त ग्लुकोसाईड (Clycoside) तथा जशियामरिन (Gentiamarin), जशियाना एसिड (Gentianic acid), जगिग्रोनोज नामक एक त्रिशर्करेय पदार्थ (Tri Saecharide), पेक्टिन (Pectin) और एक उडनशील तैल होता है। इसमे टेनिन नही होता।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, दीपन, वातानुलोमन, बल्य, विषघ्न, मूत्र एव आर्तवजनन है।

श्वानदशजन्य विप-विकार (जलसत्रास), सर्पदश, विच्छू-दश आदि मे विप-प्रशमनार्थ इसका सेवन कराया जाता हे। यूनानी तिरियाको (विपनाशक औपधियो—अगद) के योगो मे यह डाला जाता है।

मूत्राशय की शिथिलता, मन्दाग्नि एव उदर-शूल मे इसका चूर्ण दिया जाता है। आर्त्तव-प्रवर्तनार्थ एव गर्भपातनार्थ भी इसे देते हे।

इसका चूर्ण पीताभ भूरे रग का होता है।

आफिशल योगो मे—इसका फाट (Infusion) निर्माण के लिये इसके घनसत्त्व (Concentrated Compound infusion of Gentian) १२५ मि० लि० (सी० सी०) मे परिस्त्रुत जल (Distilled Water) इतना मिलाया जाता है कि तैयार औषधि १००० मिलिलिटर हो जाय। मात्रा—½ से १ औस (१५ से ३० मि० लि०) या १। से २॥ तो०। औपधि तैयार करने के वाद १२ घटे के अन्दर ही इसका उपयोग करें, क्योकि इसके वाद खराव हो जाने का डर है।

उक्त घनसत्त्व की मात्रा २ से ४ मि० लि० या ३० से ६० वून्द है। यह विल्कुल गाढा नही होता। जितियाना टिंचर (Compound tincture of Gentian) की मात्रा भी ३० से ६० वून्द हे।

मात्रा—चूर्ण की मात्रा १ से २ मा० तक।

यह उष्ण प्रकृति वालो के लिये तथा फुपफुस के विकारो पर अहितकर है।

था। इसीलिये इस वूटी का नाम जंतियाना या जंशन पड गया है। लूटिया लेटिन मे पीतवर्ण को कहते हैं। इसबूटी के पौधों मे पीले रग के पुष्प आते हैं तथा इसकी जड मे कुछ पीतवर्ण होता है। अतः उक्त नामकरण हुआ है।

जिम (Mollugo Oppositifolia)

झारस कुल (Ficoidaceae) के इसके जमीन पर चारो ओर फैलने वाले, कही २ ऊपर को भी उठे हुए पत्रमय वर्षायु क्षुप, कई लम्बे पर्वयुक्त शाखाओ से सुशोभित होते है।

जिम

MOLLUGO SPERGULA LINN.



पत्र—½–१ इंच लम्बे, ¼ इंच तक चौडे, [illegible] के आकार में, शाखा के चारों ओर विषम परिमाण मे, पुष्प—वर्षाकाल मे, पत्रकोण से निकले हुए, गुच्छो मे श्वेत रंग के ¼-½ इंच लम्बे, डोरे जैसे वृन्तोयुक्त, बाह्यकोष बाहर से [illegible], पखडिया ¼ इंच लम्बी गोल, नोकदार, फली या डोडी—वर्षाकाल मे, लम्बगोल, ⅛ इंच तक लम्बी, [illegible] तथा बीज—गहरे बादामी रंग के होते हैं।

नोट-यह ओखराडी बूटी (देखिये खंड १ में) का ही एक भेद मात्र है। इन दोनों बूटियों में स्वरूप एवं गुणधर्म की दृष्टि से कोई विशेष भेद नहीं है।

[illegible] भारत में सर्वत्र जलाशयों के किनारे पाये [illegible]। [illegible], दक्षिण [illegible], सिलोन, बर्मा, [illegible] तथा आस्ट्रेलिया में भी बहुत [illegible]

नाम—

सं०-[illegible] [illegible], पर्पट। हि०-जिम, गीमा। म०--खरास, झरस। गु०--ओखराड भेद। बं०---जीमा या गीमा शाक, जलपापरा ले०- मोल्लुगोआपोझिटिफोलिया, मोल्लुगोस्परगुला (M Spergula)मोल्लुगो सेरह्वियाना (M viana)

रासायनिक संगठन—

इसमे एक तिक्ततत्त्व राल जैसा पदार्थ, तथा गोंद और जलाने पर राख मे क्षारीय नाइट्रेट्स (Alkaline nitrates) ६० प्रतिशत पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग, पत्र और स्वरस।

गुणधर्म व प्रयोग--

तिक्त, दीपन, पाचन, मृदुसारक, मासिकधर्मनियामक उदर एव आन्त्रदोष-निवारक, विषघ्न, कीटाणु-नाशक, मूत्राशयोत्तेजक, गर्भाशय-दोषनिवारक तथा सग्राहक भी है।

बगाल मे प्राय इस बूटी का अधिक प्रचार है। सूतिका-रोग की औषधि के साथ अनुपान रूप मे इसका स्वरस विशेष दिया जाता है।

(१) सूतिका-रोग पर—महारस शार्दूल (र सा स)

अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध गधक व पारद, शुद्धमैनसिल, सुहागे का फूला, जवाखार, हरड, बहेडा, आमला ४-४ तोला, शुद्ध वच्छनाग ३ मा०, दालचीनी, छोटी इलायची दाने, तेजपात, जावित्री, लौग, जटामासी, तालीसपत्र, सुवर्णमाक्षिक भस्म, और रसौत २-२ तो०। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली कर भस्म तथा वछनाग-चूर्ण मिला खूब खरल कर, शेष द्रव्यो का महीन चूर्ण मिला उसमे इस जीम के रस की व नागरवेल (पानो)के रस की ७-७ भावनाए देकर सफेद मिर्च का चूर्ण ४ तो० मिला, पुन उसी जीम या पान के रस के साथ खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना ले।

ध्यान रहे इस बूटी के स्थान पर कई लोग हरमल की भावना देते है। यद्यपि हरमल सूतिका-रोग-नाशक है, तथापि पित्तज अम्ल वमन, दाह, और अतिसार न हो, एव मलावरोध हो, तब वह हितकर होती है वमन, अतिसार पर इसी बूटी के रस की भावना ही

हितावह मानी जाती है ।

मात्रा—१ से २ गोली, दिन मे २ बार-खस, लाल चदन, नागरमोथा, गिलोय, धूनिया व सोठ के क्वाथ के साथ । (र० त० सार)

प्रसूता के वातप्रकोप-निवारणार्थ इसके पत्तो का शाक बनाकर खिलाते हैं ।

प्रसव के पश्चात् होने वाला दूषित रक्तस्राव रुक गया हो, तो इस बूटी का रस १–२ तो० तक या इसके पचाङ्ग का फांट देने से रुका हुआ स्राव सरलता से निकल जाता है ।

(२) जीर्ण सुजाक पर—इसके पचाङ्ग का चूर्ण, खस, और गाजवा समभाग जौकुट कर, ३ मा० चूर्ण को १ सेर जल मे उबाल कर छान लें । ठडा हो जाने पर रोगी को, पानी के स्थान पर इसे ही पिलाते रहने से लाभ होता है । (नाडकर्णी)

(३) ज्वर पर—इसके पुष्प तथा कोपलो का फाट या क्वाथ बनाकर पिलाने से पसीना आकर ज्वर शात होता है ।

(४) चर्मरोग, खुजली आदि पर—इसके स्वरस का लेप या पंचाङ्ग को पीस कर लेप करते है । और रोगी को इसका शाक खिलाते हैं ।

(५) कर्णशूल पर—इसका स्वरस रेंडी–तैल मे मिला कान मे डालते है । तथा इसके कल्क को रेंडी तैल मे मिला गरम कर कान पर बाधते है ।

(६) गठिया वात पर—इसकी जडो को (ये जडे सुगधित होती हैं) तैल मे पकाकर लगाते है ।

मात्रा—स्वरस १–२ तो० तक ।

जिमीकन्द–देखिये–जमीकन्द ।

जियापोता (Putronjiva Roxburghii)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इस सदैव हरे भरे, सुहावने, मध्यमाकार वृक्षो के काण्ड सीधे, सरल दीर्घ, छाल—कालिमायुक्त भूरे रग की, पत्र—अशोक-पत्र जैसे २–३ इच लम्बे, अण्डाकार, गहरे हरे रग के, किनारे कुछ कटे हुए, चमकीले, पुष्प—पीताभ श्वेत रग के छोटे-छोटे गुच्छो मे, फल—झरबेरी जैसे, लम्ब गोल, नुकीले, वीज या गुठली—वेर की गुठली जैसी, कडी होती है । पुष्प वसतकाल मे लगते है । फल–शीत काल मे पकते है ।

नोट—इसके वीजों को तागे मे पोहकर, पुत्र-प्राप्ति के लिये स्त्रियां गले में पहनती हैं । तथा बच्चो के गले में भी पहनाती हैं, जिससे वे स्वस्थ बने रहें । वैसे भी रुद्राक्ष की तरह इन वीजों की माला गले मे धारण करते हैं ।

ये वृक्ष भारत के उष्ण प्रदेशो की पहाडी जमीन मे कुमाऊ मे पूर्व मे, तथा दक्षिण मे कोकण प्रात, पूर्व और पश्चिम घाटो मे, मैसूर, कोल्हापुर आदि के जगलो मे नैसर्गिक पैदा होते है । बागो मे भी ये लगाये जाते है ।

नाम—

सं०–पुत्रजीव, गर्भकर, यष्टीपुष्प, अर्थसाधक इ० । हि०–जियापोता, पितौंजिया, पतजू, पुत्रजिया । म०–पुत्र-जीव पुत्रवंती । गु०–पुत्रजीवक । ब०–पुत्रजिवा, जियापुत्ती पुतजिया । लै०–पुत्रंजीवा राक्सबर्गी नागेला पुत्रजिया (Nagela Putranjiva)

रासायनिक सघटन—

बीज मे लगभग २८ ८६ प्रतिशत मज्जा या गिरी होती है, जिसमे ४२ ६ प्रतिशत स्वच्छ, हलका, पीतवर्ण का तैल प्राप्त होता है । इस तैल मे ग्लिसरीन जैसा क्षारीयसत्त्व (Clycerides of certain acids) होता है ।

प्रयोज्य अग—वीजगिरी, फल, पत्र और छाल ।

गुण धर्म वप्रयोग—

कटु, लवणरसयुक्त, रूक्ष, गुरु, शीतल, स्वादु, सुगधित, मलमूत्रप्रवर्तक, वृष्य, कामोद्दीपक, गर्भप्रद

नेत्रहितकर, तथा वात, कफ, तृष्णा, वमन, दाह, विसर्प श्लीपद आदि नाशक है।

इसके बीज (बीज की गिरी), पत्र या जड के दूध के साथ सेवन से मृतवत्सा (जिसके बालक मर जाते है) को दीर्घायुष पुत्र की प्राप्ति होती है।

(रसरत्नाकर सिद्ध नित्यनाथकृत)

इसकी जड १ से २ तो० तक दूध के साथ देते है। गर्मी, प्रसूतिविकार, कठमाला, प्रदर आदि के कारण होने वाले वध्यत्व (वाझपन) मे भी इसकी जड या बीज की गिरी दूध के साथ देने से लाभ होता है -

(व० च०)

पत्र व गुठली का प्रयोग क्वाथ रूप मे शीतज्वर मे करते है।

(१) ग्रन्थिरोग पर—दाहयुक्त प्लेग आदि की ग्रन्थि, तथा काख, गले (गडमाला, गलगण्ड आदि) व कर्णमूल, वद ग्रन्थि आदि पर फल-मज्जा को या वृक्ष की अन्तरछाल को पानी मे पीस कर प्रलेप करते है। शीघ्र लाभ होता है। (रसरत्न समुच्चय भा० प्र०)

उक्त ग्रन्थिरोगो मे रोगी को फल की या गिरी की मज्जा को गौ के दूध से पिलाते है।

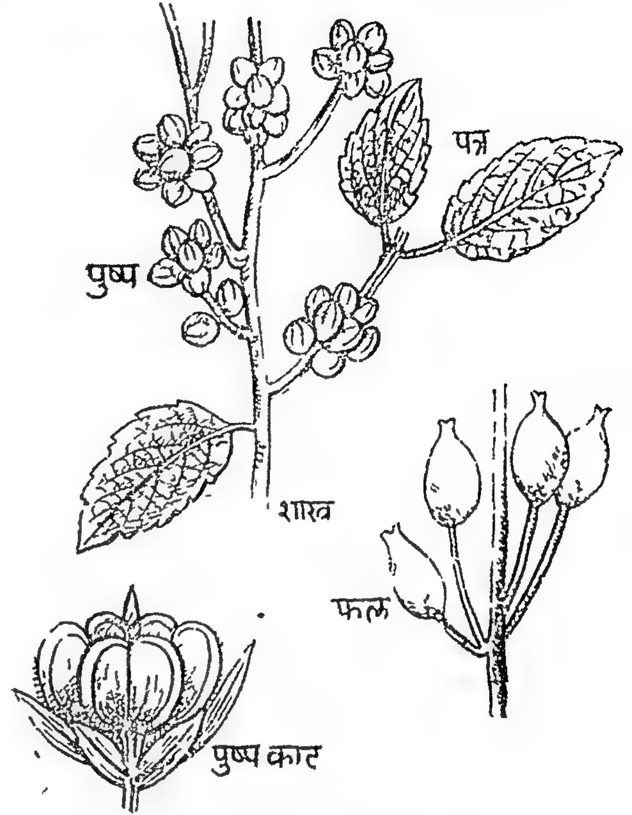
श्लीपद पर—पत्र-रस का लेप करते है।

(२) विष या दूपी विष पर—वृक्ष की अन्तर छाल या बीजगिरी ४ या ५ मा० गोदुग्ध मे पीस छान कर सेवन कराते है। अन्नपानादि के दोष या सयोग विरुद्ध पदार्थो के योग से उत्पन्न अत्यन्त उग्र दूषी विष नष्ट होता है। (व० गुणादर्श तथा भा० मैं० र०)

विशिष्ट योग—

(३) पुत्रादिवटी—इसके फल का गर्भ (या बीज-मज्जा), शिवलिङ्गी बीज, पारस पीपल के बीज, नाग केशर, असगंध, शरपुखा की जड, देवदारु, उलटकम्बल, की जड, कमलगट्टा, बला (खरेटी) बीज, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, दारुहल्दी, वगलोचन तथा त्रिफला के तीनो

जियापोता (पुत्रजीवक)
PUTRANJIVA ROXBURGHII WALL.



द्रव्य ४-४ तो० सब का चूर्ण कर उसमे वग, लौह एव स्वर्णमाक्षिक भस्म ४-४ तो० मिला, सबको छोटी कटेरी के क्वाथ, अशोक छाल के क्वाथ व इसी जियापोता के फलो के गर्भ के क्वाथ और शतावरी के रस या क्वाथ की १-१ भावना देकर, ६-६ रत्ती की गोलिया बना छाया शुष्क कर ले।

३ से ४ गोली तक प्रात सायं दूध के साथ, कुछ समय तक सेवन करने से सर्व प्रकार के ऋतुदोष दूर होकर स्त्रियो का वध्यत्व मिट जाता है। जिनके गर्भ हमेशा गिर जाता हो, रजोदर्शन के समय कष्ट हो मासिक धर्म कम आता हो व गर्भधारण न होता हो, उनके सब विकार इस प्रयोग से दूर होते है। जन्म वध्या, काकवध्या और मृतवत्सा स्त्री के लिये यह एक उत्तम औषधि है। जगली जडी बूटी (व० च०)

जिलेबी दे०—रामचना। जखम हयात दे०—पर्ण बीज

जीवन्ती (Cimicifuga Foetida)



वत्सनाभ कुल (Ranunculaceae) की दस वनौषधि के बहुवर्षायु, दुर्गन्धयुक्त क्षुप सीधे २ से ३ या ६ फुट तक ऊंचे, तने का ऊर्ध्वभाग रोमश, निम्नभाग रोमरहित; पत्र—संयुक्त, कंगूरेदार, २ से ३ इंच लम्बे, निम्नभाग मे हलके रंग के, पुष्प—पीताभश्वेत, सादी कलंगी पर एक साथ लगते हैं। पुष्प मे ५ पंखुडिया होती हैं। फल या डोडी—½ इंच लम्बी, ६ से ८ तक बीजो वाली होती है।

यह बूटी हिमाचल के समशीतोष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से भूटान तक ७ से १२ हजार फीट की ऊंचाई पर तक पैदा होती है।

औषधिकार्यार्थ प्राय इसकी जड़ ही ली जाती है।

नोट—कोई २ भ्रमवश इसे ही 'जीवन्ती' मानते हैं। जीवन्ती का प्रकरण देखिये।

नाम—

सं०—मत्कुणारि (खटमल मारने वाली) हि०—जीउन्ती (यह पंजाबी शब्द है)। अं.—बगबेन (Bugbane)। ले०—सिमिसिफुगा फीटीडा। इसकी एक जाति का नाम सिमिसिफुगा रेसमोसा (C Racemosa) है।

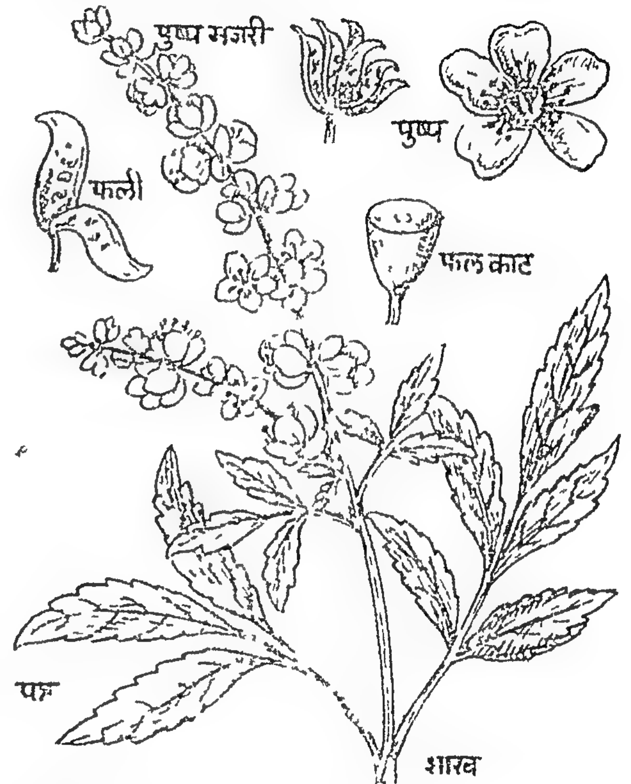
रासायनिक संघटन—

इसमे सिमिसिफुगीन (Cimicifugine) नामक उपक्षार पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसकी जड़ उष्ण, कटु, कफनिःसारक, बल्य, शोथहर, वेदनाशामक, ज्वरघ्न, आमवातहर, हृद्य, कटुपौष्टिक, ऋतुस्रावनियामक, मासिकधर्म के कष्ट को दूर करने वाली एवं गर्भाशय-संकोचक है।

शरीर मे इसकी क्रिया कुटकी और सुरजान (Colchicum Luteum) के समान होती है। अल्प मात्रा मे यह हृद्य, कटुपौष्टिक, एवं गर्भाशयसंकोचक है। बडी मात्रा मे वामक स्नायुमण्डल-अवसादक, नाडी-मंदकारक एवं कम्प, चक्कर आदि लाती है। तब वत्सनाग (वत्सनाभ) की विष-क्रिया जैसी हृदयावसादक, हृदय



को कमजोर करने वाली हो जाती है।

सन्धिशोथ पर—जड को या ताजे पत्तो को पीसकर बांधते है। नूतन आमवात मे यह विशेष उपयोगी है। गृध्रसी व कटिवात मे भी इसका उपयोग किया जाता है। राजयक्ष्मा मे कफवृद्धि कम करने के लिये लाभदायक है। फुफ्फुसो के भीतरी सडान को दूर करती है। गर्भाशय को पुष्टिप्रद एवं अत्यार्त्तव-निवारक है व मासिक धर्म के प्राय सब कष्टो को दूर करती है।

साइबेरिया देश मे खटमल व मच्छरो को भगाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। चीन और इण्डोनायना मे यह नियतकालिक ज्वर-प्रतिबन्धक एवं स्वेदल मानी जाती है। आमवात (संधिवात की पीडा) जलोदर, क्षय की प्रारंभिक अवस्था, चिरकारी कास

तथा वात-नलिका-प्रदाह मे इसका उपयोग करते हैं।

मात्रा—१० से १५ रत्ती तक।

जीरा (श्वेत) [Cuminum Cyminum]

हरीतक्यादि वर्ग एव शतपुष्पा-कुल (umbelliferae) का इसका वर्षायु क्षुप, सौंफ के क्षुप जैसा १-२ फुट ऊचा, शाखाएं पतली, पत्र—सोफ के पत्र जैसे पतले-पतले लम्बे, छोटे २ पक्षाकार २-२ एक साथ; पुष्प—छत्तो पर पीताभ श्वेत वर्ण के, वारीक, शीतकाल मे आते है, वाद मे उन्ही छत्तो पर फल या बीज लगते है। पकने पर वीजो को अलग कर लेते है। इन्हे ही जीरा कहते है। ये ४ से ६ मि मि लम्बे तथा २ मि. मि तक चौडे लम्ब-गोलाकार, अग्रभाग मे क्रमश पतले, रग मे श्वेत धूसर वर्ण के होते है।

नोट-यह गरम मसाले का एक सर्वप्रसिद्ध द्रव्य है। सस्कृत में 'जीरक' नाम से यही श्वेत जीरा ग्रहण किया जाता है।

चरक के शूलप्रशमन, शिरोविरेचन गणो मे व अतिसार, गहणी, श्वास, कास, उदरशोथ, पीनस, अरुचि योनिरोग आदि के प्रयोगो मे और सुश्रुत के पिप्पल्यादि-गण मे एव अतिमार, मदात्यय आदि रोगो के प्रयोगो मे इसका उल्लेख किया गया है।

जीरा स्याह (स्याह जीरा) व जीरा काले (काला जीरा) का वर्णन आगे के प्रकरण मे देखें। कलौजी (मंगरैला) भी आयुर्वेदानुसार इसका ही भेद माना गया है, तथा इन तीनो जीरो को 'जीरक त्रितय' कहा गया है। कलौंजी का वर्णन इस अङ्क के भाग २ मे आ चुका है। विलायती जीरा, स्याह जीरा में देखिये।

जीरे की खेती भारत के विशेषत उष्ण प्रदेशो मे, राजस्थान, गुजरात, पजाव, उत्तरप्रदेश आदि में अधिक होती है। एशिया माइनर व पर्शिया से भी यह आता है। आसाम और बगाल मे भी कही २ बहुत ही अल्प प्रमाण में होता है।

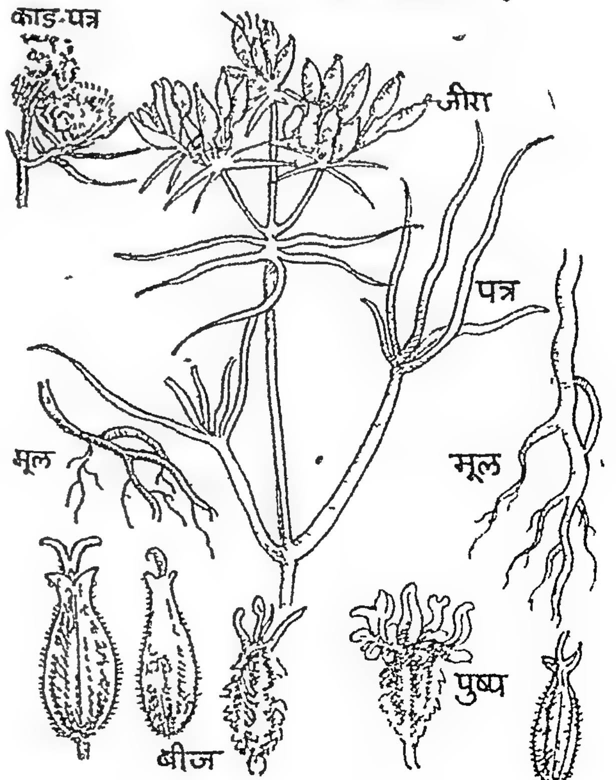
जीरा का एक भेद काली जीरी (अरण्यजीरक) अन्य कुल का है। कालीजीरी का प्रकरण भाग २ मे देखिये।

नाम—

स०—जीरक, जरण (पाचक), अजाजी, कणा इ०। हि०—जीरा, सफेदजीरा, सादा जीरा इ०। म०—जिरे। गु०—जीरुं, शाकुन जीरुं। ब०—जीरे। अ०—क्युमिन सीड (Cumin seed)। ले०—क्युमिनम साइमिनम।

रासायनिक संघटन—

इसमे एक उडनशील तैल थाइमिन (Thymene) ३.५ से ५ २ प्रतिशत होता है, यही इसके स्वाद व गध का उत्पादक है। इस तैल मे कार्वोन (Carvone)



नामक एक तत्व जिसमे ५६ प्रतिशत क्युमिनाल Cuminol) या क्युमिक अलडिहाइड (Cumicaldehyde) रहता है। इस तैल को कृत्रिम रूप से थाइमॉल thymol (अजवाइन सत) मे परिवर्तित किया जा सकता है, जो उत्तम प्रतिदूषक (antiseptic) एव कृमिघ्न पदार्थ है।

इसके अतिरिक्त बीजो मे स्थिर तैल १० प्रतिशत तथा पेन्टोसान (Pentosan) ६.७ प्रतिशत प्रोटीन के यौगिक, मैलेट आदि होते है।

प्रयोज्याङ्ग—बीज।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, मधुर, कटुविपाक, उष्णवीर्य, कफवातशामक, पित्तवर्धक, रोचक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, ग्राही, शूलप्रशमन, कृमिघ्न, उत्तेजक, कटुपौष्टिक, वाजीकरण, रक्तशोधक, मूत्रल, स्तन्यजनन, लेखन, वेदनास्थापन शोथहर, ज्वरघ्न, त्वग्दोषहारक, गर्भाशयशोधक है। तथा अरुचि, वमन, अग्निमाद्य, अजीर्ण, आध्मान, उदरशूल, ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, रक्त-विकार, श्वेतप्रदर, नूतन एव जीर्ण ज्वर (विशेषत वात प्रधान ज्वर) आदि मे यह प्रयोजित है।

मूत्रजननेन्द्रिय संस्थान के विकार सुजाक, मूत्रा-वरोध, अश्मरी आदि तथा बालको के पाचन-विकारो मे अधिक उपयोगी है।

पचनक्रिया की विकृति से या मूत्रपिण्डो के विकार से मूत्रशुद्धि न हो, तो गिलोय, गोखुरू आदि के साथ इसकी योजना करने से पेशाब खुलकर आता है। वैसे ही स्त्रियो के गर्भाशय एव बीजाशय-शैथिल्य के कारण रज शुद्धि न होती हो, तो इसके सेवन से मासिक धर्म साफ आता है, तथा मूत्रशुद्धि भी होती है। प्रसूता के लिये यह एक श्रेष्ठ औषधि है। आन्त्र मे प्राय मल की रुकावट से जो सडान एव दुर्गन्ध पैदा होती है, उसे यह दूर कर देता है, तथा मल के दूषित जलाश का शोषण कर, उसे अच्छी तरह बधा हुआ बाहर निकालता है। इसीलिये दही, तक्र के रायते मे या शाक भाजी मे इसका प्रक्षेप दिया जाता है। इससे उदर मे दूषित वायु का सग्रह, आध्मान या कोष्ठबद्धता आदि नही होने पाती।

मूत्राघात, पूयमेह एव अश्मरी मे इसके चूर्ण को चीनी या मिश्री के साथ देते हैं।

स्तन्य (दुग्ध) वर्धनार्थ इसे गुड के साथ देते है। विषमज्वर मे भी इसे गुड के साथ देते है। अग्निमाद्य एव वातविकारो का भी इससे निवारण होता है, तथा पाचनक्रिया का सुधार होकर क्षुधावृद्धि होती एव पेशाब साफ होता है।

श्वेतप्रदर पर—इसके चूर्ण मे मिश्री मिला, चावल के धोवन के साथ देते है। स्त्री-रोगनाशक 'जीरकादि-मोदक' उत्तम है। गर्भिणी के पित्तजन्य वमन पर—इसे नीबू-रस के साथ देते है। प्रदर पर 'जीरे की खीर' वि योग मे देखें।

अतिसार मे इसका चूर्ण दही के साथ देते है। परिणामशूल (Hungorpain) मे इसमे हीग सेंधानमक मिला, मधु व घृत से देते है। अम्लपित्त मे—इसके साथ धनियाचूर्ण मिला शक्कर के साथ देवे।

अण्डवृद्धि मे—इसे काली मिर्च के साथ पानी मे पीसकर औटाकर मर्दन एव प्रक्षालन करते रहने से अण्डकोष का कडापन दूर होता है।

नेत्रविकार–अर्म (नाखूना)–(Pterygium), जाला, अक्लिन्न वर्त्म (पिल्ल) आदि पर इसे खूब महीन पीस कर नेत्रो मे लगाते है। वि. योगो का 'जीरक खड' सेवन करें।

(१) पीडाहर होने से इसका बाह्य लेप अर्श, स्तन अडकोष, एव उदर-पीडा पर करते है। अर्श मे वेदनापूर्ण सूजन हो तो इसे पानी मे पीस लेप करते तथा इसे मिश्री के साथ सेवन भी कराते है।

(२) खुजली आदि चर्म-रोगो पर—जीरक-तैल जीरा ४ तो० चूर्ण करे, उसमे २ तो० सिन्दूर मिला, कडुवा तैल ३२ तो० तथा २ सेर पानी मे तैल सिद्ध करले। इसकी मालिश से खुजली, पामा (एक्झिमा) की खुजली शीघ्र दूर होती है। (यो र)

अन्य विधि–पानी न मिलाते हुए, प्रथम तैल को खूब गरम कर उसमे उक्त चीजो का चूर्ण जरा जरा सा डालते हुए पकाते है। सब चूर्ण के जल जाने पर तैल

को छानकर लगाते है। तथा रोगी को जीरे के क्वाथ से स्नान कराते है।

(३) ज्वरो पर—जीरा मे गिलोय और गूमा के रस की ७-७ भावनाए देकर, छाया-शुष्क कर पीस, छान शीशी मे रक्खे। मात्रा—३ मा , शक्कर ६ मा के साथ फाककर, ऊपर से ३ अगुल गिलोय को ५ तो पानी मे पीस छान कर, गरम कर १ तो० शक्कर मिला पीवे। दिन मे तीन बार ऐसा करने से गरमी का बुखार (पित्तज्वर) दूर होता हे। जीर्ण ज्वर मे उक्त दवा के वाद ऊपर से बकरी का दूध पीवे तो वह भी अच्छा हो जाता है। (भा गृहचिकित्सा)

जीर्ण ज्वर पर—गुड (जूना हो तो उत्तम) ४० तो को ६० तो० पानी मे पका, ३ तार की चाशनी आने पर उसमे २० तो जीरा-चूर्ण मिला खूब कूटे, तथा हाथो मे घी लगाकर मसल कर १ से २ मा० तक की गोलिया बना ले। प्रात साय १ या २ गोली सेवन से लाभ होता हे। आमाशय मे सचित आमविष दूर होकर शरीर स्वस्थ बनता है। (स्वास्थ्य)

अथवा इसके चूर्ण की मात्रा ६ मा तक प्रात साय जूने गुड के साथ सेवन से भी, २१ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। (व० गुणादर्श)

अथवा—जीरे को गोदुग्ध मे पकाकर, शुष्क कर चूर्ण कर ले। ३ से ६ मा तक यह चूर्ण मिश्री के साथ सेवन करे।

ज्वर जन्य निर्बलता पर—ज्वर के शमन होने पर अग्निमाद्य और निर्बलता के निवारणार्थ जीरे का फाण्ट-जीरा-चूर्ण ३ मा को उबलते हुए १० तो० जल मे डालकर नीचे उतार कर ढक दे। २० मिनट बाद छान थोडी शक्कर मिला नित्य प्रात पीते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है।

शीत ज्वर मे—इसके १ तो तक चूर्ण को प्रात करेले के रस के साथ, तथा रात्रि के समय जूने गुड के साथ देते हैं।

ज्वरावस्था मे (विशेषत पित्त ज्वर मे) प्राय ओष्ठ-पाक होता है। होठो पर छाले फुन्सिया होती तथा ओष्ठ-सधि मे वेदना होती है। जीरे को जल मे पीस दिन मे २-४ बार लेप करते रहने से लाभ होता है।

(४) सुजाक पर—जीरा ४ भाग, खूनखराबा (हीरा दोखी) व गुलाब-पुष्प की पखुडी २-२ भाग तथा कलमी शोरा व धनिया ५-५ भाग लेकर सबका महीन चूर्ण करले। १० रत्ती की मात्रा मे, जल के साथ देते रहे। (नाडकर्णी)

(५) अतिसार पर—आत्र एव पचन-क्रिया के निर्बल हो जाने से, थोडा २ दस्त लगता है। उदर मे कुछ दर्द होता रहता हे। शरीर शनै २ कृश होता जाता है। ऐसी अवस्था मे भोजन के बाद भूना हुआ जीरा, काली मिर्च और सेधा नमक मिलाया हुआ तक्र-पान करते रहने से लाभ होता है। अर्श व ग्रहणी मे भी लाभ होता है। (गा० औ० रत्न)

(६) वमन पर—जीरकादि रस—जीरा, धनिया, हरड, त्रिकुटा (सोठ मिर्च पीपल) तथा पारदभस्म (अभाव मे रस सिन्दूर) समान भाग, एकत्र खूब खरल कर रक्खे।

मात्रा—१ मा० तक, शहद से लेवे। वमन तुरन्त बन्द होती है। —(यो० र०)

अथवा—जीरकादि घृत—जीरा व धनिया ४-४ तो एकत्र पानी के साथ पीस, कल्क करे, फिर गौघृत ३२ तो० और पानी १२८ तो० एकत्र मिला पका कर घृत सिद्ध कर ले।

मात्रा—आधा तो० से २ तो० तक, सुखोष्ण जल के साथ सेवन करने से कफपित्तज अरुचि, मन्दाग्नि और वमन मे लाभ होता है। (यो० र०)

(७) अग्निदग्ध पर—जीरकघृत—जीरा ८० तो० को चौगुने जल मे पकावे। चतुर्थाश शेष रहने पर छान कर उसमे ५ तो० जीरे का कल्क तथा २० तो० गोघृत मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर छानकर उसमे १। १। तो० मोम को पिघला कर व राल को पीस कर मिला दे इसे लगाने से अग्निदग्ध की पीड़ा शीघ्र शात होती हे। (च० द०)

(८) व्यङ्ग (झाई), धब्बे आदि पर—दोनो जीरा (सफेद व स्याह), काले तिल और सरसो समभाग लेकर

दूध मे पीस, लेप करने से मुखमण्डल के विकार दूर होते हैं। (वा० भ०)

(९) बिच्छू के डक की पीडा, श्वान-दश तथा मकडी के विप पर—जीरा व सेवा नमक का समभाग चूर्ण घृत व शहद मे मिला, मन्दोष्ण कर लेप करने से बिच्छू-दश की पीडा शात होती है। (व० से०)

बीड़ी मे तम्बाकू के स्थान पर जीरा भर कर धूम्र-पान करने से भी बिच्छू का विप उतर जाता है। साथ मे दश-स्थान की पीडा-शाति के लिये उक्त लेप भी करना चाहिये।

कुत्ते के विप पर—जीरा व काली मिर्च घोट, छान कर पिलाते हैं - मकडी या लूता-विष पर—जीरा और सोठ को पानी मे पीस कर लगाते है।

(१०) हिक्का पर—जीरे मे थोड़ा घृत मिलाकर बीडी मे भर धूम्रपान कराते है। वमन पर भी यह धूम्र-पान लाभकारी है।

(११) रतौंधी (रात्र्यन्ध) पर—जीरा के साथ आमला और कपास के पत्ते समभाग, पानी मे पीस कर सिर पर बाधते है। २१ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। (व० गुणादर्श)

(१२) हरताल, सखिया, मैनसिल आदि के विष पर—जीरा-चूर्ण या जीरा की ठडाई शक्कर के साथ ५-७ दिन तक देते रहने से विष शांत हो जाता है। पचन-सस्थान का दाह दूर होता है। (गा० औ० र०)

(१३) मुख के छाले आदि मुख के रोगो पर—जीरा को पानी मे पीस कर उसमे इलायची-चूर्ण और फिटकरी का फूला मिला कुल्ले कराते रहने से लाभ होता है।

विशिष्टयोग—

(१) जीरकादि चूर्ण न० १—जीरा, कालीमिर्च, छोटी हरड, अजवायन, व सेंधानमक समभाग लेकर जीरे को थोड़ा भून लें और शेप द्रव्यो के साथ महीन चूर्ण कर लें। मात्रा—३ मा तक, जल के साथ या शहद के साथ लेने से अरुचि, आध्मान, उदरशूल, हिक्का, वात-विकार, अपचन आदि पर लाभ होता है।

चूर्ण न० २—तृषा एव हृदय के लिये हितकर—जीरा, धनिया, अद्रक व कालानमक समभाग चूर्ण कर, १ से २ मा. की मात्रा मे, उत्तम सुगन्धित मद्य मे मिला पीने से तृष्णा शीघ्र शात होती है। (यो० र०)

चूर्ण न० ३—जीरा ४ भाग, सोठ ३ भाग, काली मिर्च २ भाग, कालानमक १ भाग तथा अजमोद व सेंधानमक ½-½ भाग सबका चूर्ण (३ मा तक की मात्रा मे) भोजनान्त मे तक्र के साथ सेवन से अग्निदीप्त हो, प्लीहा, उदर, अजीर्ण, विसूचिका दूर होते है। इसका नाम सिंहराज चूर्ण है। (हा स)

अन्य जीरकादि चूर्णो के योग शास्त्रो मे देखिये।

(२) स्वादिष्ट जीरा—जीरा २० तो०, सेंधानमक ५ तो० और काला नमक २॥ तो० इन तीनो को काच की बरणी मे डालकर, उसमे नीबू-रस २० तो० मिला मुख बन्द कर ७ दिन धूप मे रक्खे। रस के सूख जाने पर धूप मे अच्छी तरह शुष्क कर, पीस छान शीशियो मे भर ले। भोजन के बाद या जब भी आवश्य-कता हो ले। १ से ३ मा तक, जल के साथ लेने से जी मिचलाना, भूख न लगना, अपचन, अरुचि, उदरकृमि-जन्यशूल, अतिसार आदि मे लाभकर है। अपचन की दशा मे दुर्गन्धयुक्त वमन होती हो, तो १-१ घटे से २-३ बार इसे लेने से लाभ होता है। सगर्भास्त्री को भी यह दिया जाता है।

स्वादिष्ट जीरा न० २—जीरा १२ तो० सेंधानमक १० तो धनिया ८ तो० सोठ, कालीमिर्च ४-४ तो० छोटीपीपल, इलायची २-२ तो० दालचीनी १॥ तो० नीबू-सत (साइट्रिक एसिड) १॥ तो० व खाड १६ तो लेकर, प्रथम खाड और नीबू-सत को अलग रख, शेप द्रव्यो का महीन चूर्ण करें, फिर खाड व नीबू-सत मिला, खरल मे ३ घटे तक घोट कर बरणी मे भर रक्खे।

मात्रा—२ मा तक लेने से क्षुधा-वृद्धि होती, उदर मे गैस का विकार शमन होता तथा अधोवायु की ठीक ठीक प्रवृत्ति होती है। यह बहुत ही उत्तम स्वादिष्ट चूर्ण बालक, स्त्री, वृद्ध एव किसी भी प्रकृति के व्यक्ति के लिये लाभकर है।

(३) जीरकादि गुटिका—जीरा, सेंधानमक २-२ भाग, कालीमिर्च १ भाग, तथा भूनी हींग ½ भाग लेकर सबका महीन चूर्ण कर उसमें चूर्ण के समभाग गुड मिला ६-६ मा की गोलियां बना ले। सुखोष्ण जल से सेवन करने से अजीर्ण, अलसक, विसूचिका एवं अफरा नष्ट होता व अपानवायु खुलता है। (भा० भैं० र०)

(४) जीरकावलेह—जीरा-चूर्ण ६४ तो दूध २५६ तो०, घृत (गौ घृत हो तो उत्तम) और लोध-चूर्ण ३२-३२ तो० सबको मन्दाग्नि पर पका, गाढा होने पर, नीचे उतार कर, ठंडा हो जाने पर उसमें ६४ तो० मिश्री और दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, पीपल, सोंठ, जीरा, मोथा, सुगन्धवाला, अनारदाना, धनिया, हल्दी, कपूर व वंसलोचन का चूर्ण २-२ तो० मिलादे। यह प्रमेह, प्रदर, ज्वर, निर्बलता, अरुचि, श्वास, तृष्णा दाह एवं क्षय-नाशक है। (मात्रा १ तो० अनुपान दूध) (यो० र०)

(५) जीरक-खंड—जीरा-चूर्ण १ भाग, खांड २ भाग, और तपाया हुआ घृत ४ भाग लेकर, सबको एकत्र मिला, पत्थर के स्वच्छ एवं चिकने पात्र (या चीनी मिट्टी के पात्र) में भर कर, मुख पर शराव ढक कर कपरौटी कर, अनाज के ढेर में दबादे। १४ दिन बाद निकाल कर काम में लावे।

मात्रा—१ तो०, अनुपान गर्म दूध। यह योग नेत्रों के लिये हितकर है। इसे माघ मास में सेवन करना चाहिये।। (भा०भैं०र०)

(५) जीरकादि मोदक या पाक—स्त्री-रोग-नाशक—जीरा-चूर्ण ३२ तो० सोंठ व धनिया-चूर्ण १२—१२ तो० सोंफ, अजवायन व स्याह जीरा—चूर्ण ४—४ तो०, दूध १२ तो० तथा खांड २॥ सेर और घृत ३२ तो० सब को एकत्र मिला मन्द आंच पर पकावे, (अथवा खांड व घृत को अलग रख शेष सब द्रव्यों का पाक करे, खोया सा हो जाने पर घृत में भून, खांड को पाक की चाशनी में व निम्न प्रक्षेप मिला द्रव्यों का चूर्ण मिला) अच्छा गाढा हो जाने पर या चाशनी आ जाने पर उसमें त्रिकटु, (सोंठ, मिर्च, पीपल), दाल चीनी, तेजपात, छोटी इलायची, वाय-विडंग, चव्य, चित्रक, गोया व लोंग का चूर्ण ४—४ तो० मिलाकर मोदक या पाक बना लें।

मात्रा—½ से २ तो० तक, गरम दूध या जल के साथ सेवन में समस्त स्त्री-रोग, विशेषतः सूतिका-रोग व ग्रहणी-रोग दूर हो अग्नि दीप्त होती है। (भैं० र०)

शेष उत्तम जीरा-पाक—आदि के प्रयोग हमारे बृहत्-पाकसंग्रह में देखें।

(६) जीरकाद्यरिष्ट—सूतिकादि रोग—नाशक—जीरा १० सेर कूट कर १ मन १२ सेर पानी में पका, १३ सेर शेष रहने पर छान कर, सन्धान-पात्र में भर उसमें गुड १५ सेर—धाय पुष्प-चूर्ण १३ छटाक, सोंठ-चूर्ण ८ तो० तथा जायफल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, नाग केशर, इलायची, अजवायन, कंकोल (कबाब चीनी, शीतल चीनी लेवें) और लोंग का चूर्ण ४—४ तो० मिला दें। मुख-मुद्रा कर १ मास बाद छान कर काम में लावें। सूतिका-रोग, संग्रहणी, अतिसार व जठराग्नि-विकार-नाशक है। (इस अरिष्ट में ४ तो० लोध्र-चूर्ण भी मिला दिया जाय तो यह प्रसूति-रोगों पर विशेष प्रभावशाली हो जाता है। (मात्रा १ से २ तो० तक) (भैं०र०)

जीरकाद्यरिष्ट के अन्य प्रयोग बृ० आ० संग्रह में देखें।

(७) तक्र जीरकादि योग—तक्र (छाछ) के साथ-जीरा, सोंठ, सेंधानमक, १—१ तो० हींग, भुनी हुई ३ मा० सब का मिश्रित चूर्ण-मात्रा—२ मा० तक मिलाकर लेने से, तक्र का स्वाद उत्तम होकर वह विशेष पाचक, आंत्र—क्रिया-सुधारक, आमपाचक, आंत्र-कृमिनाशक व अतिसार में लाभकारी होता है। इस चूर्ण को दही के साथ भी ले सकते हैं।

(८) जीरक फाण्ट या चाय जीरा—जीरा चूर्ण ३ मा० को १० तो० उबले हुए पानी में डाल कर ढक दें। ५ मिनट बाद छान कर उसमें ५ तो० दूध, व १० तो० शक्कर मिला पीवें। प्रातः सायं इसके सेवन से शरीर स्वस्थ एवं मोटा ताजा होता है,— (स्वास्थ्य)

(९) जीरा की खीर—२ तो० जीरा कुचलकर प्रातः १ पाव गौदुग्ध में भिगो दें। २ घण्टे बाद मंद



आंच पर पकावें, रबडी जैसा हो जाने पर उसमे २ तो मिश्री मिला कर नीचे उतार लें। यह १ मात्रा है।

इसके सेवन से प्रदर एवं तज्जन्य हाथ-पैरो की व आखों की जलन मिट जाती है। पाचन-शक्ति नष्ट होने एवं पतले दस्त होने को भी यह ठीक करता है।

रोग की साधारण दशा मे केवल प्रात एक बार लेवे। बढी हुई दशा मे दो बार (प्रात साय) इसे लेवें। इसके सेवन के बाद तुरन्त पानी नही पीना चाहिये।

(सिद्ध मृत्युंजय योग)

जीरा (स्याह) (Carum Carwi)

जीरा श्वेत के ही वर्ग एवं कुल के इसके क्षुप २-३ फुट ऊंचे, पत्र—कटे हुए, सूत्र जैसे, लम्बे; पुष्प—छत्तों मे, श्वेत जीरे से छोटे, फल या बीज—श्वेत जीरे से छोटे, किन्तु पतले लम्बे, कृष्णाभ एव सुगन्धित होते है। इसे ही स्याह जीरा कहते है।

इसकी खेती उत्तरी हिमालय के पहाडी भागो मे—काश्मीर, गढवाल, सीमाप्रान्त एव भारत के मैदानी भागों मे तथा अफगानिस्तान मे होती है, तथा ये स्वय जात भी पाये जाते हैं।

नोट-(अ) आजकल बाजारों में गाजर, सोया आदि के बीजों को रंग कर स्याह जीरे के नाम से बेचते हैं। इनमें गंध बिलकुल नहीं होती। कभी-कभी जिन बीजों से तैल निकाल लिया जाता है, उनकी भी मिलावट की जाती है।

(आ) विलायती स्याह जीरा—यह देशी स्याह जीरे का ही एक विदेशी भेद है। यह मध्य एवं उत्तरी यूरोप मे तथा ईरान मे प्राय सर्वत्र स्वयंजात पाया जाता है। हालण्ड (Holland) मे यह काफी मात्रा मे बोया जाता है। अमेरिका, अफ्रीका मे भी यह बोया जाता है।

भारत मे इसका आयात विशेषत इग्लेंड तथा लेवाट (Levant) से होता है। किंतु औषधीय दृष्टि से लेवाट प्रान्त का स्याह जीरा निकृष्ट कोटि का होता है। विलायती स्याह जीरे मे एक विशिष्ट प्रकार की सुगध एव स्वाद होता है। इसे हि म गु—मे कुरुया, करोया, कमूने, रूमी कमूने अरमनी आदि कहते है। गुणधर्म आदि देशी स्याह जीरे के समान है।

(इ) स्याह जीरा का एक भेद काला जीरा (विष-जीरा) है। यह विशेष उग्र एव विषाक्त होता है। कोई कोई भ्रमवश इसे ही कालीजीरी (अरण्य जीरक) मानते है। इस अङ्क के भाग २ मे कालीजीरी का प्रकरण देखिये। जीरा काला (काले जीरे) का वर्णन आगे के प्रकरण मे देखे।

(ई) भारत मे स्याह जीरा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। चरक मे इसका उल्लेख 'कारवी' नाम से है।

नाम—

स०-कृष्ण जीरक, कारवी, काश्मीर जीरक, जारण, उद्गार शोधन इ.। हि.—स्याहजीरा। म -शाहाजिरें। गु —श्याजीरु.। ब०-शाजीरा, कृष्ण जीरक - अं०-ब्लैक क्युमिन (Black Cumin) ब्लैक कारवे सीड (Black Caraway seed) ले.—केरम कार्वी (क्यारुई)

रासायनिक सघटन—

इसमे एक उडनशील, हलके पीले रग का, सुगधित तैल ३ १ से ७ प्रतिशत तक पाया जाता है। इस तैल मे कार्वोन (Carvone)५३—६३ प्रतिशत होता है। यह तैल ८ भाग अल्कोहल (८० प्रतिशत) मे विलेय होता है। इसे अच्छी तरह डाटबद शीशियो मे शीत एव प्रकाशहीन स्थान मे रखखा जाता है। इस तैल की मात्रा—१ से ३ बूद है।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, कफवात-

शामक, दीपन, रोचन, पाचन, ग्राही,ग्राश्रसकोचक, उत्तम वातानुलोमन, दुर्गन्धनाशन, हृद्य, शोथहर, मूत्रल, रज-प्रवर्त्तक, गर्भाशयशोधन, स्तन्यजनन, नेत्रहितकर, उदर कृमिनाशन, व ज्वरघ्न है तथा ग्ररुचि वमन, ग्रग्निमाद्य, ग्रजीर्ण, ग्राध्मान, उदरशूल, ग्रतिसार, सग्रहणी, हृद्दौर्बल्य, जीर्णज्वर, प्रसूतिविकार एव दूषित डकारो के ग्राने मे इसका प्रयोग होता है। यह शाको मे गर्म मसालो मे मिलाकर डाला जाता है। वैसे भी इसे डालने से लाभ होता है -

जीर्णज्वर मे इसके प्रयोग से ज्वर की शाति होकर ग्रग्निवृद्धि एवं ग्राहार का पाचन ठीक होने से वल की वृद्धि होती है।

ग्रर्श मे–शोथयुक्त पीडा को दूर करने के लिये इसके क्वाथ का सेक दिया जाता हैं, तथा इसकी पुल्टिस गरम-गरम वाधते है।

गर्भाशय की पीडायुक्त शोथ के निवारणार्थ स्त्री को इसके क्वाथ मे वैठाते तथा इसका शर्वत पिलाते हैं।

प्रतिश्याय ग्रौर पीनस मे—कोमल प्रकृति वालो को इसके क्वाथ के वाष्प का वफारा, या वाष्प का नस्य कराया जाता है।

नेत्रो मे रक्त-स्कन्दता हो, तो इसे मुख मे चवाकर, इसका रस नेत्र मे डालने से जमा हुग्रा रक्त पिघल जाता है।

दत-पीडा पर—इसके क्वाथ के कुल्ले कराते हैं।

हिक्का पर—इसके चूर्ण को सिरके मे मिला कर देते हैं।

विशिष्ट योग—

(१) जीरक ग्रवलेह—(ज्वारश कमूनी कवीर) स्याह जीरा भूना हुग्रा ४। तो० तथा दालचीनी, काली मिर्च, श्वेत मिर्च, वूरा ग्ररमनी ७-७ मा०, सुदाव-पत्र १ तो०, सौठ का मुरव्वा ३ तो०, हरड का मुरव्वा ५ तो०, सूर्यतापी गुलकन्द ८ तो०, खाड २० तो० व शहद १० तो० लेकर, प्रथम गुलकन्द व मुरव्वो को पानी मे पीस, खाड मिला, ग्राग पर रक्खे। पाक-सिद्धि पर शेष द्रव्यो का चूर्ण मिला, ज्वारश तैयार करे।

मात्रा—७ मा० ग्रर्क सौंफ से प्रयोग करें। यह उदर के वात-विकार, वातिक शूल, ग्राध्मान, हिक्का, ग्रजीर्ण, वातोदर को नष्ट करता है। कुछ रेचक भी है। (यूनानी चि० सागर)

ग्रौर भी ज्वारश कमूनी के योग यूनानी-ग्रन्थो मे देखिये।

(२) जीरकासव—रक्तपित्त, ज्वरादि पर—स्याह जीरे के १ भाग चूर्ण मे ५ गुना मद्यसार (९० प्रतिशत) मिला, वोतल मे भर, ग्रच्छी तरह कार्क वन्द कर रक्खें। ७ या १४ दिन वाद मोटे कपडे से खूब निचोडते हुए छान कर शीशियो मे भर रक्खें।

मात्रा—१५ से ६० वून्द तक, थोडे गर्म जल मे मिला सेवन से विषम ज्वर, जीर्ण ज्वर, ग्रग्निमाद्य एवं वातजन्य सम्पूर्ण उपद्रव नष्ट होते है। रक्तपित्त पर इसे शक्कर के शर्बत के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है। इसके ग्रासव ग्ररिष्ट के ग्रन्य प्रयोगो के लिये हमारा वृ० ग्रा० सग्रह ग्रन्थ देखें।

नोट—स्याह जीरा-चूर्ण की मात्रा–ग्राधे से २ मा० तक है।

इसके तैल का उपयोग ग्रन्य ग्रौषधियो को सुगधित करने के लिये, एवं उनसे उत्पन्न हृल्लास व मरोड के निवारणार्थ किया जाता है।

इसके ग्रर्क का उपयोग वच्चो के पेट फूलने, शूल ग्रादि मे ग्रनुपान रूप से किया जाता है।

विलायती स्याह जीरा (कुरूया)—

जलोदर पर—प्रारभावस्था मे ही इसके क्वाथ ७ तो० मे जैतून-तैल २। तो० मिलाकर ७ दिन तक पीते रहने से विशेष लाभ होता है।

श्वास या कृच्छ्रश्वास मे—भोजन से पूर्व इसे ७ मा० मुख मे धारण करें। जव वह गरम हो जाय, तव चाव कर उसका रस निगल जाने से लाभ होता व कफ का नाश होता है। इससे ग्राध्मान ग्रौर ग्रामाशय-शूल एव ग्रामाशय की निर्वलता से हुग्रा श्वास-रोग ठीक होता है।

वातज उदर-शूल मे—इसके हरे पौधे कुचल कर रस निचोड़ कर पिलाने से लाभ होता है।

इसे शाको मे डालने से, उनके आध्मान एवं विष्टभकारक दोष दूर होकर वे शीघ्र पचते है। यह आमाशय की आर्द्रता को नष्ट करता एवं अजीर्ण मे लाभकारी है। (यू० द्र०)

जीरा काला (विषजीरा) (Conium Maculatum)

उक्त जीरो के समान वर्ग एव कुल के इसके क्षुप १॥ फुट से ३॥ फुट तक ऊंचे, पत्र—गहरे हरे रग के, अनेक खडयुक्त, पुष्प और फल या बीज—कृष्णाभ श्वेत वर्ण के तथा बीज विशेष काले या गहरे बादामी रग के, $\frac{1}{8}$ इंच तक लम्बे चिपटे से होते हैं। पत्र, पुष्प व बीजो मे करकरी सुगन्ध रहती है। फल या बीज पूरी तरह पकने के पूर्व ही सग्रह कर लिये जाते हैं।

यह भारत मे तथा यूरोप मे अधिक होता है।

इसका प्रयोग विशेषत एलोपैथिक-चिकित्सा मे अधिक किया जाता है। यह अन्य जीरो के समान खाने के काम मे नही आता। औषधि—रूप मे यह लिया जाता है। प्राय लेप आदि बाह्य-प्रयोगो मे अधिक उपयुक्त है।

इसे—काला जीरा, विष जीरा, कुर्दुमाना, कोनायम, किरमाणी जीरा, अंग्रेजी मे—हेमलेक, लेटिन मे—कोनियम मेक्युलेटम कहते हैं।

रासायनिक सघटन—

इसमे, प्राय क्षुप के समस्त भाग मे विशेषत कोनाईन व मेथिल कोनाईन (Coniine & methyl Coniine) रहता है, यह उग्र सुगधी होता है। इसके अतिरिक्त अल्प प्रमाण मे कोनिसीन (Y Conicerne), कोनहैड्रीन (Conhydrine) और हेस्पेरिडीन (Hesperidin) नामक उपक्षार पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

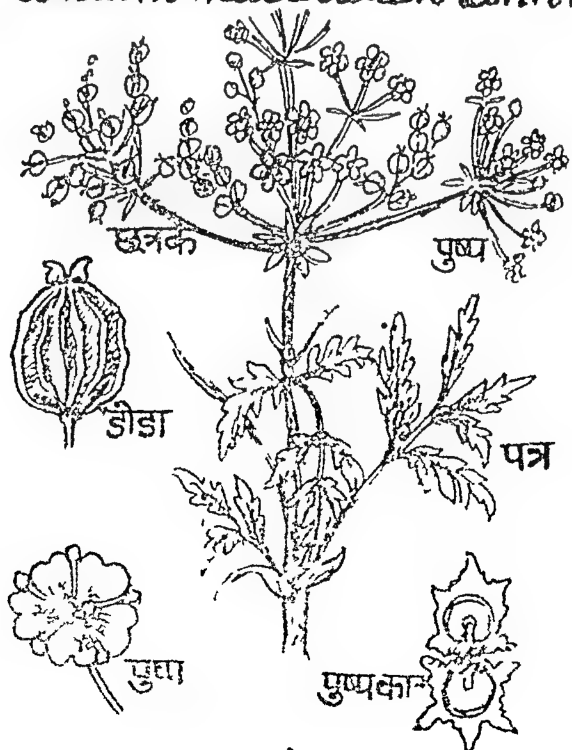
कटु, तिक्त, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, प्रभाव मे विषाक्त, अवसादक, वृष्य, वेदनाशामक, शोषक, स्पर्शज्ञान-नाशक, निद्राकारक, आक्षेप-निवारक व वातनाशक है।

इसका लेप लगाने से स्पर्शज्ञान मे कमी व पीडा की शाति होती है। यह किसी स्थान विशेष मे जमे हुए रक्त को बिखेर देता है। पेशी-समूह पर इसकी क्रिया अफीम जैसी होती है। पेशियो को सुस्तकर एव मस्तिष्क-क्रिया को मन्द कर यह निद्रा लाता है।

केसर या विद्रधि मे पीडा-निवारणार्थ इसका बाह्य लेप करते हैं, तथा कुछ प्रमाण मे सेवन भी कराते है।

श्वास, कास एव कुकुरकास मे—कफ-निवारक औषधि के साथ यह दिया जाता है।

रक्त प्रदर पर—इसे प्रथम अत्यल्प मात्रा मे देकर फिर धीरे-धीरे मात्रा बढाकर देते है।



अर्बुद, गलगण्ड, गुल्म, प्लीहाशोथ, फीलपाव आदि अन्य रोगो पर तथा अपस्मार, कम्पवात, धनुर्वात आदि के आक्षेप-निवारणार्थ इसका लेपादि वाह्य प्रयोग तथा अल्प-मात्रा मे आभ्यन्तर प्रयोग भी किया जाता है।

बच्चे के मर जाने से स्त्री के स्तनो मे जो दूध का जमाव हो पीडा होती है, उसे कम करने के लिए इसका लेप उपयोगी है।

पुरुष या स्त्री के कामोन्माद के निवारणार्थ एव शुक्रमेह मे इसका लेप जननेन्द्रिय पर किया जाता है।

आभ्यन्तर उपचारार्थ इसका मद्यार्क या टिंचर दिया जाता है। विधि—

इसके ताजे बीजो का चूर्ण १० तोला मे समभाग (१० तोला) अल्कोहल मिला, पार्कोलेशन क्रिया द्वारा १ पाईण्ट तक अरिष्ट या टिंचर तैयार करते है। मात्रा—आधा से एक ड्राम तक। अथवा—

इसके पत्र व कोमल टहनियो को कूटकर रस निचोड कर, ३ तोला रस मे १ तोला मद्यार्क (अल्कोहल) मिलाकर ७ दिन रखते है। फिर छानकर काम में लाते है। मात्रा—१ से ३ ड्राम तक।

विषाक्त प्रभाव एवं उपचार—

इसे ४ रत्ती से अधिक मात्रा मे खाने से आभ्यन्तरिक सचलन-क्रिया मे अवसाद, स्नायुमडल मे शथिल्य, तथा मास पेशियो की क्रियाशक्ति लुप्त होती है। नेत्रो की कनीनिका सकुचित व दृष्टि शक्ति का ह्रास हो अन्त मे पक्षाघात की सी स्थिति होकर दम घुटने लगता एव श्वासावरोध होकर मृत्यु होती है।

उपचार—उत्तेजक औषधियो का प्रयोग, नस्य, वमन आदि करावे। स्टमकपप से पेट साफ करे। ऊख का सिरका पिलावे या टेनिक एसिड का प्रयोग करे।

पान के रस मे—श्वास कुठार, कल्पतरु रस, वृहत कस्तूरी भैरवरस, या हिरण्यगर्भ की योजना करे। अश्वगंधारिष्ट या सारस्वतारिष्ट का पान करावे।

(अ तन्त्र से)

जीवक दे०—ऋषभक के साथ, भाग १ मे।

जीवन्ती[1] (नं १) (*LEPTADENIA RETICULATA*)



गुडूच्यादिवर्ग एव अर्ककुल (Asclepiadaeea) की वर्षाऋतु मे होने वाली, वृक्षो पर चक्रारोही, पत्रमय अनेक शाखावाली इस लता विशेष के काण्ड-का नवीन भाग श्वेताभ, मृदुरोमश एव जीर्ण दशा मे कार्क (Cork) जैसा फूला हुआ, शाखाए—अगुली से लेकर कलाई जैसी मोटी, स्थान-स्थान पर फटी हुई, पत्र—अण्डाकार,

[1] इस जीवनीय गण के शाक विशेष के विषय में प्राचीनकाल से बहुत मतभेद है। अधिकांश विद्वानो ने जिसे जीवन्ती माना है, उसीका सर्वप्रथम वर्णन कर, आगे के प्रकरण में जीवन्ती नं० २ का वर्णन करेंगे।

कोई २ (Holostemma Rheedii) को जीवन्ती मानते हैं। वास्तव में यह लेटिन नाम 'क्षीरवेल' अर्कपुष्पी का का है। क्षीरवेल का प्रकरण देखें। इसे सस्कृत में 'अर्कपुष्पी' कहते है।

किसी ने जीउन्ती (Cimicifuga Foetide) को ही भ्रमवश जीउन्ती मानलिया है। पीछे जीउन्ती देखे।

कुछ लोगों ने (Dregia Volubilis) (जिसे भाषा में एक नकछिकनी भेद, बबई की ओर तिलकु गा, डोधी, तथा कहीं कहीं लाखन, जो मूर्वा के स्थान पर काम में ली जाती है) को ही जीवन्ती मान लिया है।

किसी ने पोरबन्दर की ओर होने वाली 'थोरवेल' (Sarcostemma Brevistigma), को ही जीवन्ती नाम दे दिया है। इसके विषय मे 'सोमवल्ली'-प्रकरण यथास्थान देखिये।

हरड की एक प्रसिद्ध जाति विशेष का नाम भी जीवन्ती है।

सरलधारयुक्त, श्वेताभ, चीमट, १-४ इंच लम्बे, १-२ इच चौडे, ऊपर चिकने, नीचे नीलाभ, रोमश, अग्रभाग मे नुकीले. उग्रगन्धी, पत्रवृन्त—½-१ इच लम्बा, कुछ मोटा; पुष्प—पत्रकोण से निकले हुए छोटे गुच्छो मे, नीलाभ श्वेत या पीताभ हरित वर्ण के, फली एकाकी, शृंगाकार, अग्रभाग मोटा व कुछ टेढा, २-५ इंच लम्बी आध इच से कुछ मोटी, सरस, कुछ कडी, चिकनी, बीज—आध इच लम्बे, सकडे, लगभग आक के बीज जैसे होते है।

मूल—पुरानी होने पर कलाई जैसी मोटी, अनेक शाखा या उपमूलयुक्त, मूल की छाल—मोटी, कुडकीली नरम, भीतर से श्वेत, चिकनी, उग्रगन्धी व स्वाद मे फीकी मधुर होती हे। औषधि-कार्य मे प्राय मूल ही ली जाती हे।

नोट—[अ] कच्ची फलियों का तथा पत्तों का भी शाक बनाया जाता है। यह शाको में श्रेष्ठ मानी गई है। 'जीवन्ती शाकं शाकानाम्' —च. सू अ २५.

[आ] जिसकी फली तोडने पर श्वेत दुग्ध सा रस निकलता है, उसे 'जीवन्ती' तथा जिससे पीला रस निकलता है उसे स्वर्ण 'जीवन्ती' कहते हैं। किन्तु स्वर्ण जीवन्ती (बगाल की जीवन्ती) इससे भिन्न है, उसका वर्णन आगे नं० ? प्रकरण मे देखें।

(इ) बागों मे होने वाली जीवन्ती मीठी तथा जगलों मे होने वाली कडुवी होती है। इस कडवी का वर्णन आगे नं० २ के प्रकरण मे देखिये।

(ई) चरक के जीवनीय, मधुरस्कन्ध, वयःस्थापन तथा सुश्रुत के काकोल्यादि गणों मे इसका उल्लेख है।

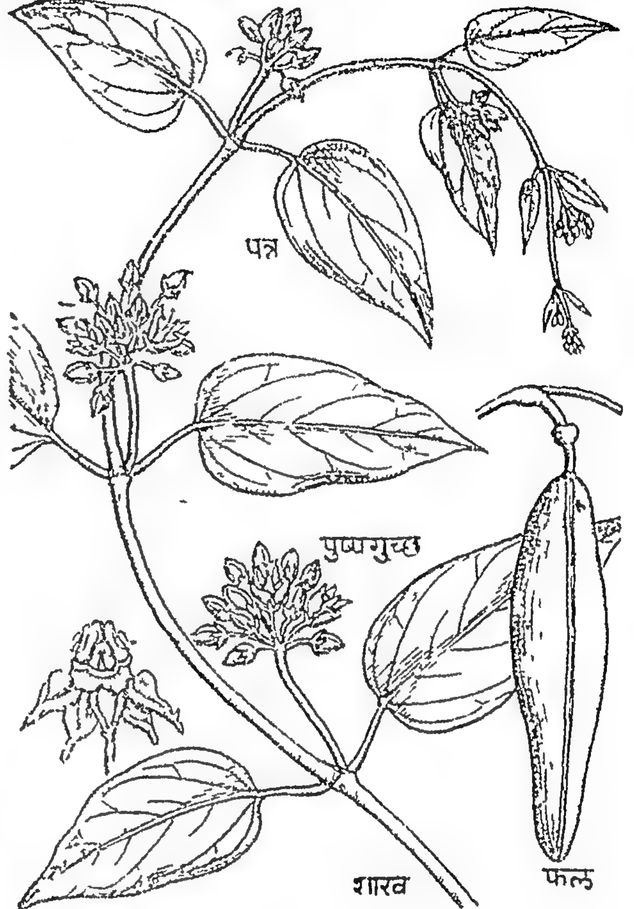
यह विशेषत पश्चिम एव उत्तर भारत, पजाब, उत्तरगुजरात एवं दक्षिण भारत मे पाई जाती है।

नाम—

सं०-जीवन्ती, शाकश्रेष्ठा, पयस्विनी इ.। हि०—जीवन्ती, डोंडीशाक। म.--डोंडी, राईदोडी, खीरखोडी। गु०-डोडी, खरखोडी, राडारुडी। ले०--लेप्टाडीनिया रेटिकुलेटा, जिम्नेमाआँरेण्टियाकम Gymnema Aurantiacum

प्रयोज्याग—मूल।

डोडीशाक (जीवन्ती)



LEPTADENIA RETICULATA W&R

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, मधुरविपाक, त्रिदोष-(विशेषत वात पित्त) शामक, स्नेहन, अनुलोमन, ग्राही हृद्य, दाहप्रशमन, वृष्य, बल्य, रसायन, मूत्रल, दृष्टिशक्तिवर्धक, रक्तपित्तशामक, कफनिसारक व ज्वरघ्न है तथा कोष्ठगतरूक्षता, विष्टम्भ, ग्रहणी, हृद्दौर्बल्य, कास, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह, पूयमेह, क्षय, शोथ, यक्ष्मा, नक्तान्ध्य, व्रण आदि मे प्रयोजित होती है।

ज्वरजन्यदाह मे—मूल के क्वाथ मे घृत मिलाकर पिलाते हैं।

रतौंधी (नक्तान्ध्य) मे—इसके साग को घृत मे पकाकर खिलाते हैं।

अतिसार मे—साग को दही, अनाररस व स्नेह

के साथ खिलाते हैं।

पैत्तिक शोथ पर—इसका लेप करते हैं।

इसका पत्र-शाक भी बल्य व नेत्र-हितकर है।

(१) शुक्रमेह या वीर्यस्राव पर—इसके मूल के चूर्ण के साथ समभाग सेमल-मूल का चूर्ण मिला, मात्रा ४ से ६ मा. तक, शक्कर के साथ फंकाकर ऊपर से दूध पिलाते हैं।

(२) सुजाक—प्रारम्भिक दशा में—मूल क्वाथ में जीरा-चूर्ण १॥ मा. मिला प्रात नित्य ६ दिन तक पिला ऊपर से दूध की लस्सी पिलावे। मूत्र की दाह एव जलन शांत होती, संगृहीत पूय निकल जाता एव मूत्र-नलिका-प्रदाह कम हो जाता है। फिर आवश्यक उपचार करे।

(३) ओष्ठ व मुखव्रणों पर—इसके मूल के कल्क और दूध के साथ सिद्ध किये हुए तैल में शहद और आठवा भाग राल का चूर्ण मिलाकर प्रलेप करने से ओष्ठ व मुख के घाव शीघ्र ही नष्ट होते हैं। (व. से.)
अथवा—इसके चूर्ण के साथ मैनफल, नीलाथोथा, चित्रक, मैदा और शाली चावल का चूर्ण मिला पकाया हुआ दूध लगाने से ओष्ठों (होठों) के व्रण शीघ्र नष्ट होते हैं—
(शा. भै. र.)

मात्रा—चूर्ण १-६ मा. तक। क्वाथ के लिये चूर्ण १ से २ तो. तक।

विशिष्ट योग

(१) जीवन्त्यादि घृत—राजयक्ष्माहर—जीवन्ती, मुलैठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, छोटी कटेरी गोखुरु, खरैंटी, नीलोफर, भुईआमला, त्रायमाणा, धमासा और पीपल समानभाग लेकर पानी से पीस कल्क करें। कल्क से ४ गुना घृत (गोघृत), तथा घृत से चौगुना इन्हीं द्रव्यों का क्वाथ या जल लेकर सब को एकत्र मिला घृत सिद्ध कर लें। इसके सेवन से ११ लक्षणों युक्त भी कष्टसाध्य राजयक्ष्मा नष्ट होता है। (कास, अंसताप, स्वरभेद, ज्वर, पार्श्वशूल, शिरपीड़ा, मुख से खून आना, कफस्राव, श्वास, अतिसार और अरुचि ये यक्ष्मा के ११ लक्षण हैं) इस घृत का योग्य सेवन-काल भोजन के मध्य में या भोजन के पश्चात् है। किन्तु जिन्हें अतिसार न हो तथा कोष्ठबद्धता हो वे इसका सेवन खाँड के साथ मिलाकर दूध में भोजन के पूर्व भी कर सकते हैं। मात्रा—आधा तोला)।
[भै. र.]

जीवन्त्यादि घृत के अन्य योग शास्त्रों में देखिये।

सब से सरल और उत्तम योग इस प्रकार है।

(२) जीवन्तीमूल का कल्क १ सेर, जीवन्तीमूल और शतावरी का क्वाथ १६ सेर तथा गोघृत ४ सेर एकत्र मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करले।

यह घृत नित्य १-१ तो. दिन में २ बार सेवन कराते रहने से राजयक्ष्मा, उरःक्षत, दाह, दृष्टिमान्द्य और रक्तपित्त में लाभ होता है। (शा. औ. र.)

जीवन्ती-सत्त्व—इसकी जड़ तथा पत्तों का घनसत्त्व तैयार कर उसकी टिकिया बना ली जाती हैं। बाजार में ये टिकिया 'लेप्टाडीन' नाम से मिलती है। गर्भाशय-शोधन एवं गर्भ-स्थापन के लिये इनका प्रयोग किया जाता है। पुरुषों के वीर्य के विकारों पर भी यह उपादेय हैं।

गर्भस्थापनार्थ—मूल के क्वाथ का प्रयोग भी सफल होता है।

जीवन्ती नं. २ (Dendrobium-Macraei)



बंगीय रास्ना-कुल (Orchideae) की यह लता प्राय बांदे के रूप में वृक्षों (विशेषत जामुन के वृक्षों) पर चढी हुई पाई जाती है। इसके काण्ड—बांस के काण्ड जैसे पर्वयुक्त, किंतु कोमल, सुवर्ण सदृश तेजस्वी, नीचे की ओर लटकते हुए २-३ फीट लम्बे होते हैं। तथा काण्ड पर विभिन्न दूरी पर मूलकाकार, कुछ दबी हुई

चमकीली। २-२॥ इञ्च लम्बी शाखाए होती है, जो दोनो ओर छोर पर पतली होती हैं। पत्र—उक्त शाखाओं या कूटकद (Pseudobulbs) के अग्र भाग मे एकाकी, कोमल, लाल रग के ४-८ इञ्च लम्बे, लगभग १ इञ्च चौडे, रेखाकार, आयताकार कुण्ठिताग्र एव अनेक पतली शिराओ से युक्त, पुष्प-पत्रकोण से निकले हुए (वर्षा ऋतु मे) ½ से १ इञ्च लम्बे, श्वेत, किंतु किनारो पर पीतवर्णयुक्त, सख्या मे १ से ३ तक, दिन मे कुछ घटे तक विकसित होने वाले, पुष्पवृन्त—¾ से १ इञ्च लम्बा, फली—शरद ऋतु मे, अनेक बीज वाली होती हैं।

यह बगाल मे प्रचुरता से तथा हिमालय पर खासिया पहाडी, दक्षिण मे पश्चिम घाट, मद्रास, नीलगिरि, सीलोन, एव वर्मा, मलाया आदि मे पायी जाती है।

नोट—यह बगाल की जीवन्ती कहलाती है, वहां इसका शाक खूब बनाया जाता है। कोई-कोई इसे ही अष्टवर्ग का जीवक मानते हैं।

नाम—

सं०-स्वर्ण जीवन्ती, जीवन रक्षक। हिं०-जीवन्ती, जिवसाग। म०-जोई वंसी। गु०-जिवन्ती। व०-जीवन्ती, जिवें। ले०-डेंड्रोबियम मैक्रीई।

रासायनिक संघटन—

इसमे आल्फा (Alpha) व बीटा (Beta) नामक दो रालीय क्षारमय तत्त्व, तथा जिवन्ट्रिक एसिड (Jibantic acid) और जिवेंटिन (Jibantine) नामक उपक्षार पाये जाते हैं।

प्रयोज्यांग—पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, शीतवीर्य, मधुर, रसायन, स्नेहन, बल्य और चक्षुष्य है।

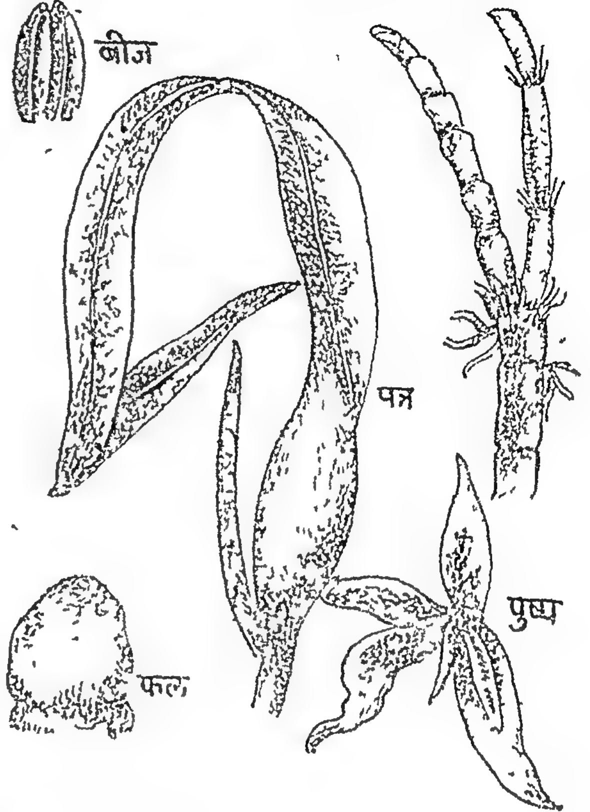
शुक्रक्षयजन्य निर्बलता पर—पचाङ्ग के क्वाथ मे अन्य वीर्य-विकार-नाशक द्रव्यो को मिला सेवन करना अति हितकर है।

त्रिदोषजन्य विकारो पर—इसका क्वाथ अन्य सुगन्धी द्रव्यो के साथ सेवन कराते है।

रतौंधी पर—घृत से सिद्ध किया हुआ इसका साग

जीवन्ती नं.२

DENDROBIUM MACRAEI, LINDL.



खिलाया जाता है।

सर्पदंश पर—इसके क्वाथ से विष-क्रिया नष्ट होती है।

मात्रा—चूर्ण की ३ से ६ ग्रा०।

नोट (१)—इसका उपयोग श्वास, कास, क्षय, गले के विकार, ज्वर, दाह, नेत्र-विकार एव रक्तविकार मे होता है।

(२) जीवन्ती कडवी—यह उक्त जीवन्ती का ही एक कडुवा भेद है। इसे स०—तिक्त जीवतिका, हिं०—कडवी जीवन्ती, म०—विषदोडी, और गु०—कडवी खरखोडी कहते हैं।

यह उष्ण वीर्य, लघु, दीपन, मलस्तम्भक (ग्राही), पित्तजनक, दाहजनक, कफनाशक, कण्ठरोग, वात, गुल्म, अर्श, कुष्ठ, विष, प्रमेह व मूषक-विष आदि मे उपयोगी है।

इसकी कोमल कोपले वमन-कारक, कफ-नि सारक है। पत्तो का प्रलेप—फोड़ा, फुन्सी, विस्फोटक रोग आदि पर करते है।

जुआर [Sorghum Vulgare]

धान्य-वर्ग एवं यव-कुल (Gramineae) का यह प्रसिद्ध धान्य प्राय समस्त भारतवर्ष के खेतो मे बोया जाता है। पौधे की ऊंचाई ३-४ हाथ, पत्ते–लम्बे मक्का के पत्र जैसे, बीज या दाने सिट्टे या भुट्टो मे लगते है, ये भुट्टे पौधो के अग्रभाग पर होते हैं। बीज–बाजरा से बड़े व गोल होते है।

नोट—(अ) श्वेत और लाल जुआर भेद से इसके मुख्य दो प्रकार हैं। एक जगली जुआर होती है, उसे 'गुरलू' कहते हैं। गुरलू का प्रकरण भाग २ मे देखें।

(आ) भरोंच प्रदेश के जुआर को निआलो, पूना की जुआर को कालबोंटी, दगडी सातारा, सोलापुर की जुआर को वेद्री, डुक्री, नासिक व कर्नाटक की जुआर को–फावली या कागी कहते है।

(इ) जुआर के कोमल दाने वाले भुट्टों को भूनकर, सेंककर निकाल कर खाते हैं। ये मधुर और पौष्टिक होते है। पांडु, कामला, यकृत्-शोथ, प्लीहावृद्धि एवं आंत्र के रोगियों के लिये पथ्यकर हैं।

(ई) इसके पौधे का काण्ड कोमल, ताजी दशा में ईख जैसा मधुर होता है। ईख के समान इसका रस चूसते है। इसके पौधो में से फलोत्पत्ति के समय सूक्ष्म प्रमाण में मीठा स्राव होता है। इसे या इससे होने वाली शर्करा को–'यावनाली' सस्कृत में कहते है।

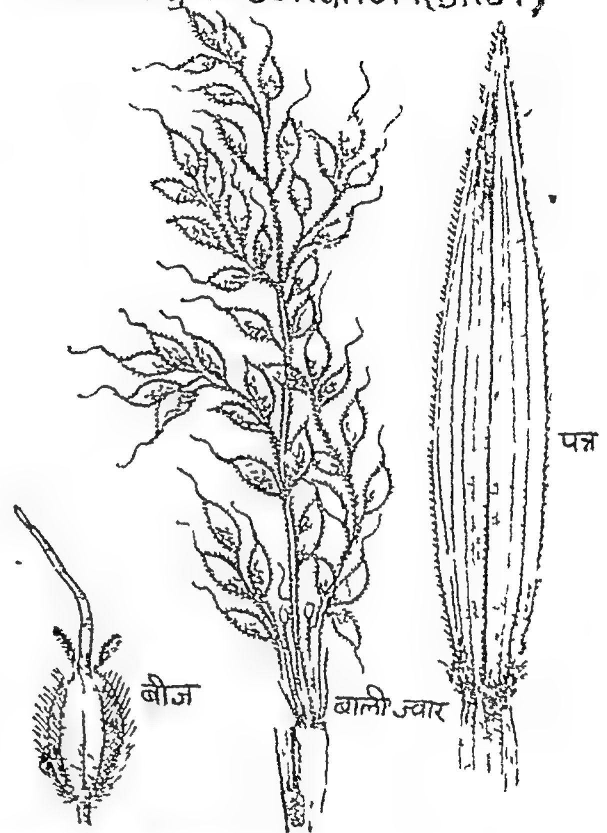
(उ) पौधा शुष्क हो जाने पर काण्ड और पत्तों को काट कर गाय, बैल, भैंस आदि जानवरों को खिलाते हैं। कांड व पत्तों को जानवर बड़े प्रेम से खाते हैं। इसे चरी या कड़ब कहते है। हरे पत्तों को पीस कर शरीर पर मसलने से रक्त-विकार के कई दोष दूर होते हैं।

नाम:-

सं०-यावनाल। हि०-जुआर, ज्वार, जोनटी, जोन्हरी, चरी इ०। म०-जोंधला, जोंधारी। गु०--जुवार। अं०-मिल्लेट (Millet) ले०--सारघम व्हलगेर, एण्ड्रोपोगान-सॉरघम (Andropogon Sorghum)

रासायनिक संघटन-

इसमें जलीय अंश, तथा अल्ब्युमिनाइड्स, श्वेतसार, पोटाश, ग्लुकोसाईड आदि पाये जाते हैं।



गुण धर्म व प्रयोग:-

लघु, कषाय, मधुर, रुक्ष, शीतवीर्य, अवृष्य (या-किंचित् वीर्य-वर्धक) क्लेदकारक, ग्राही, आनाहकारक, चिरपाकी, मूत्रल, रुचिवर्धक, कफ–पित्त तथा रक्त-विकार आदि पर लाभकारी है।

श्वेत दानो वाली ज्वार–पथ्यकर, वृष्य, एव-बल-प्रद है। त्रिदोष, अर्श, व्रण, गुल्म तथा अरुचि-नाशक है।

लाल जुआर–कफकारक, पिच्छिल, गुरु, शीतल मधुर, पुष्टिकर तथा त्रिदोष-नाशक है।

(१) गुर्दे एव मूत्र-पिण्डो के विकार मे बीजो का क्वाथ देते हैं।

(२) आमातिसार पर--इसके आटे की गरम-गरम

रोटी दही मे चूर कर, बिलकुल ठंडा हो जाने पर पिलाते है।

(३) अन्तर्दाह पर–आटे की रबडी रात मे बनाकर, प्रात उसमें कुछ श्वेत जीरा और मट्ठा मिलाकर पिलाते हैं।

(४) शीतपित्त पर–इसके कोमल काण्डो का रस निकाल उसमें गाजवाँ का रस या क्वाथ मिला-१-३ तो० की मात्रा में पिलाते तथा इसी मिश्रण की शरीर पर मालिश करते हैं।

(५) धतूरे के विष पर–इसके काण्ड के रस मे शक्कर और दूध समभाग मिला-३–३ तो० की मात्रा मे घंटे-घंटे के अन्तर से पिलाते हैं।

(६) सधिवात व पक्षाघात पर–इसके दानो को पानी मे उबाल कर या पानी की भाप पर पका कर तथा सिल पर पीस कर वस्त्र मे निचोड़ कर रस निकाल उसमे समभाग रेंडी–तैल मिला, गरम कर व्याधि-स्थान पर लेप कर ऊपर मे पुरानी रुई बाध सेंक करते है। ७ दिन तक ऐसा करने से लाभ होता है।

(७) दुष्ट कैंसर, भगदर एव दुष्ट व्रणो पर–इसके कच्चे भुट्टे का हरा, ताजा एव दूधिया रस लगाते तथा उसकी बत्ती बना घावो मे भर देते हैं, शीघ्र लाभ होता है।

जो फोडा पकता या फूटता न हो, उस पर इसके दानो को बफा कर तथा धतूर-रस मिला पुल्टिस बना कर लगाते है।

चाकू या हथियार के घावो मे इसके काण्ड या साठे पर जो श्वेत अस्तर सा होता है, उसे भर देते हैं।

(८) खुजली पर—इसके हरे पत्तो को पीसकर, उसमे बकरी की मेंगनियो की अधजली राख और रेंडी-तैल समभाग मिला लगाते हैं।

मुहासे एव कीलो पर—इसके कच्चे दाने पीसकर उसमे थोडा चूना वा कत्था मिला लगाते है।

(९) आधाशीशी (अर्ध मस्तकशूल)–मस्तक के जिस ओर दर्द होता हो, उसी ओर के नासा रध्र मे इसके हरे पत्रो के रस मे थोडा अदरख का रस मिला टपकाते है।

(१०) स्तन्य-जननार्थ—इसके आटे मे सौंफ का चूर्ण मिला, हरीरा पका कर प्रसूता को खिलाते है।

(११) दन्त-रोग पर—इसके दानो को जलाकर उसकी राख से दातो को मलते हैं। दातों का हिलना, दंत-पीडा एवं मसूडो की सूजन मे लाभ होता है।

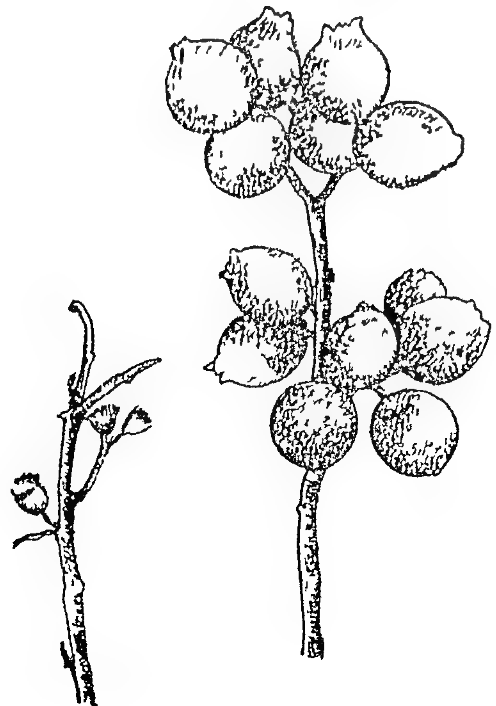
(१२) प्रस्वेद लाने के लिये–इसके शुष्क दानो को भाड मे भुनवाकर लाही कर और फिर उसका क्वाथ बना कर पिलाते हैं।

जुई (जुही) दे०–जूही। जुफतरूमी दे०–सरू मे।

जुमकी बेर

(VACEINUM MYRISTS)

कुटज–कुल (Apocynaceae) के इस क्षुप का तना गोल, कुंठित, कटकयुक्त, शाखा–गोल, चिकनी, पाडुवर्ण, पत्र—गोलाकार, एकांतर, सादे, पुष्प—नीलाभ-श्वेत,



जुमकीबेर
VACCINIUM MYRISTS LINN.

फल–कठोर, वहुवीज युक्त, व मूल—साधारण गुच्छेदार होती है ।

यह हिमालय मे, काश्मीर मे ७ हजार फीट की ऊ चाई पर सर्वत्र प्राप्त होता है ।

नाम–

हि०-गु०—जुमकी बेर ।

प्रयोज्याग—फल ।

गुणधर्म व प्रयोग––

कषाय, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, हृद्य, दीपन, शोथघ्न व कफ-शामक है ।

यह फुफ्फुसो पर विशेष प्रभावकारी है। फुफ्फुसावरण-शोथ मे तथा आन्त्र-शोथ, आन्त्र-विकार, चर्म-रोग मे उपयोगी है । इसका विशेष गुण (Chloromagcitine or Chlorophenicol) से भी अत्युत्तम है ।[1] मात्रा–चूर्ण २ से ४ माशा शहद के साथ ।

—वैद्य उदयलाल जी महात्मा
देवगढ (उदयपुर) राजस्थान

[1] वैद्य अन्नुभाई जी का कथन है कि मैंने इस बूटी का टायफाईड के रोगियों पर प्रयोग कर यथेष्ट सफलता प्राप्त की है–व० परिचय

जूट (*CORCHORUS CAPSULARIS*)

परुपक-कुल (Liliaceae) के इसके वर्षायु पौधे ३-४ फुट तक लम्बे, सन के पौधे जैसे, पत्र–२-४ इ च लम्बे, चौथाई इ च चौडे सूक्ष्म रोमयुक्त, अण्डाकार, कगूरेदार, पुष्प-पीले, आध इ च तक व्यास के, फल (डोडी)–गोलाकार, पाच भाग वाला तथा प्रत्येक भाग मे अनेक बीज होते हैं ।

नोट-(अ) इसकी एक जंगली जाति होती है। इसका वर्णन इसी प्रकरण के अन्त मे देखें। इस जगली जाति को या प्रस्तुत प्रसाग की ग्राम्यजूटको ही कालाशाक, नाडी का शाक कहा जाता है । नाडी शाक इससे विशेष भिन्न नही है । नाडी-शाक का प्रकरण देखें ।

(आ) जूट का औषधि महत्व की अपेक्षा औद्योगिक या व्यापारिक महत्व अत्यधिक है । व्यापारिक दृष्टि से रुई के बाद जूट का ही नम्बर है। ब्रिटिश शासन के पूर्व इस का ऐसा महत्व भारत मे ही क्या अन्यत्र कही भी नही था । भारत की तो यह एक खास आमद की वस्तु है । तथा भारत को छोड इसकी उपज अन्यत्र कहीं भी नहीं होती । अंग्रेजो ने इसका व्यापारिक महत्व बढ़ाया। इसकी खेती विशेषत पूर्व बगाल मे खूब होने लगी। इससे बोरे, टाट आदि कई उपयोगी वस्तुयें निर्माण होने लगीं । सन १६२८ मे इन वस्तुओं के निर्माण करने वाली बड़ी बड़ी मीलें ८४ थी, जिनमें प्रतिदिन ४८०० टन से भी अधिक माल तैयार होता था। अब तो और भी अधिक मीलें होगई हैं ।

(इ) कई लोग सन और जूट को एक ही मानते हैं। किन्तु ये दोनों भिन्न हैं। सन का प्रकरण देखें। यह भारत के बंगाल प्रान्त मे, विशेषतः पूर्व बगाल में अत्यधिक होता है ।

नाम—

सं०-पाट, सिंगिका, । हि०-जूट, नाडी शाक, पाट, करेमुशाग इ. । म०-कुलीची भाजी, टांकल जूट, गु०-छुंछ, छानेहठ सुचड़ी बोराकुंचट । ब०-नालिता शाक, पाट, कोष्ट । अं०-जूट प्लांट Jute-Plant ले०-कारकोरस केपसुलारिस, कार ट्रिलोक्युलारिस (C Trilocularis)

रासायनिक संघटन––

इसमे केपसुलेरिन (Capsulerin) नामक मुख्य तत्व है । इसके बीजो के तैल मे कारचोरिन (Corchorin) नामक एक तिक्त-तत्व, तथा ग्ल्यासेराईडस एव लिनोलिक (Glycerides of oleic and Linolic-acids) नामक क्षार पाये जाते हैं ।

प्रयोज्याग–पत्र, बीज, छाल ।

गुणधर्म व प्रयोग—

मधुर, कसैला, रोचक मल-शोधक, गुल्म, उदर-रोग

जूट (पाट सण कुष्ठा)
CORCHORUS CAPSULARIS LINN.



विवन्ध, अर्श, सग्रहणी व रक्तपित्त आदि मे उपयोगी है। कफ तथा शोथ-नाशक, वल्य व मेध्य है।

पत्र—कटु पौष्टिक, स्नेहन, मृदुकर, दीपन, क्षुधा-वर्धक, मूत्रल, दाहशामक हैं।

इसके कोमल पत्र एव कोमल कोपलो का साग वगाल मे खाया जाता है। शुष्क पत्र वगाल के वाजारो मे नलिता नाम से विकते हैं।

शुष्क पत्तो के चूर्ण के साथ धनिया और अल्पप्रमाण मे सरसो के चूर्ण का मिश्रण, चिरायते की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है।

उक्त मिश्रण का अथवा केवल इसके शुष्क पत्रो का फाट, ज्वरो पर तथा अग्निमाद्य, यकृद्विकार, मूत्र-पिण्डशोथ, सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, आत्रशूल आदि पर एव वालको के क्रिमि—रोग मे दिया जाता है।

उक्त फाट कटुपौष्टिक रूप मे भी दिया जाता है। इससे क्षुधावृद्धि होती तथा रोगमुक्ति के वाद हुई निर्व-लता दूर होती है

तीव्र अतिसार एव आमातिसार मे—पत्र-चूर्ण को मात्रा ३ रत्ती में समभाग हल्दी-चूर्ण मिला कर पान। या दही के साथ देते है तथा कोमल पत्रो का साग चावल के साथ पकाकर खाते हैं।

पत्र-रस—आमरक्त, ज्वर, अम्लपित्त आदि पर उपयोगी है।

वीज—चरपरे, उष्णवीर्य, सारक, गुल्म, शूल, विष, चर्म-रोग आदि पर प्रयोजित होते हैं।

ज्वर तथा उदर-यत्र की अवरुद्ध दशा में वीजो के चूर्ण की मात्रा ३० से ४० रत्ती तक दी जाती है।

वीजो का तेल—पौष्टिक व वात नाशक है। यह तैल खाने के भी काम मे लिया जाता है।

जूट बड़ी
(*CORCHORUS OLITORIUS*)

इस वडी जाति के जूट के पौधे भी वर्ष जीवी एव स्वय जात होते हैं। यह वगाल के पश्चिम भाग मे अधिक होता है। इसके क्षुप २-३ हाथ ऊचे पत्र—२-४ इच लम्बे १-२ इच चोडे चिकने लम्बाकृति, अग्रभाग मे कडे, किनारे आरे जेसे, पत्र वृन्त—१-२॥ इच लम्बा, पुष्प—एक स्थान मे ही २ या ३ लगते हैं पखुडिया पीत वर्ण की, वृन्त-वहुत छोटा, फल (डोडी)—गोल, २ इच लम्बा, रोमश एव १० शिरायुक्त होता है।

इसे स०—पट्टशाक, नाडीक, नाडीशाक हिन्दी मे—कोष्टापाट, पटुआशाक, वडा जूट, वंगला मे—पाठशाक, नलिता पाट, म०—अलव्या। गु०—अलवी, नीलानी भाजी। और लेटिन मे—कारकोरस ओलिटोरियस कहते हैं। यह कई प्रान्तो मे नैसर्गिक जगली पैदा होता है, तथा कही कही जूट के लिए वोया भी जाता है।

उपर्युक्त जूट मे पत्रो के जो गुण धर्म कहे गये है, वे अधिकाश मे इसके ही पत्रो मे पाये जाते है। वगाल की वाजारो मे खास कर इसी के शुष्क पत्र नालते पाट

नाम से वेचे जाते हैं। इसका क्वाथ या फाट अपेक्षा कृत ज्वर आदि रोगो पर एव कटुपौष्टिक रूप से अधिक लाभकारी है। यह रक्तपित्त-नाशक, विष्ट भजनक एव वात-प्रकोपक है।

इसके पत्र-चूर्ण को शहद के साथ उदर-वेदना मे देते है। तथा इसके बीजो का चूर्ण अदरक—रस व मधु के साथ उदर-रोगो मे ही देते हैं।

नोट०—उक्त छोटी व बड़ी जूट के शेष प्रयोग नाडी शाक के प्रकरण मे देखें।

जूफा (Hyssopus Officinalis)

तुलसी कुल (Labiatae) के इसके घास जैसे भूमि पर फैले हुए, छोटे छोटे वर्षायुक्षुप, १-२ फुट तक कही २ ऊचे काण्डयुक्त होते है। शाखायें-काष्ठमय, गाठदार, पत्र—बर्च्छी या बल्लमाकार, लम्ब- रेखाकार, नोक रहित, वृन्तरहित, सुगधित, तिक्त, पुष्प—शाखा की प्रत्येक ग्रथि पर, पत्र कोण से निकली हुई मजरी मे पीताभ, हलकी मीठी सुगन्ध युक्त छोटे पुष्प, ६ से १५ तक आते हैं, पुष्पबाह्य-कोष-½ से ¼ इंच लम्बी, आभ्यतर कोष नीला-बजनी, बीज— त्रिकोणाकार, सकडे कुछ मुलायम होते है।

इसके क्षुप मध्य एशिया के ईरान, श्याम आदि प्रान्तो मे, तथा मध्य यूरोप मे स्वयजात, नैसर्गिक पैदा होते है। उधर से भी इसका आयात भारत मे होता है। भारत के पश्चिम हिमालय प्रान्तो मे कास्मीर से कुमाऊ तक तथा पजाब मे इसी की एक जाति के क्षुप बोये जाते हैं, उन्हे लेटिन में—Hyssopus Parviflora कहते है।

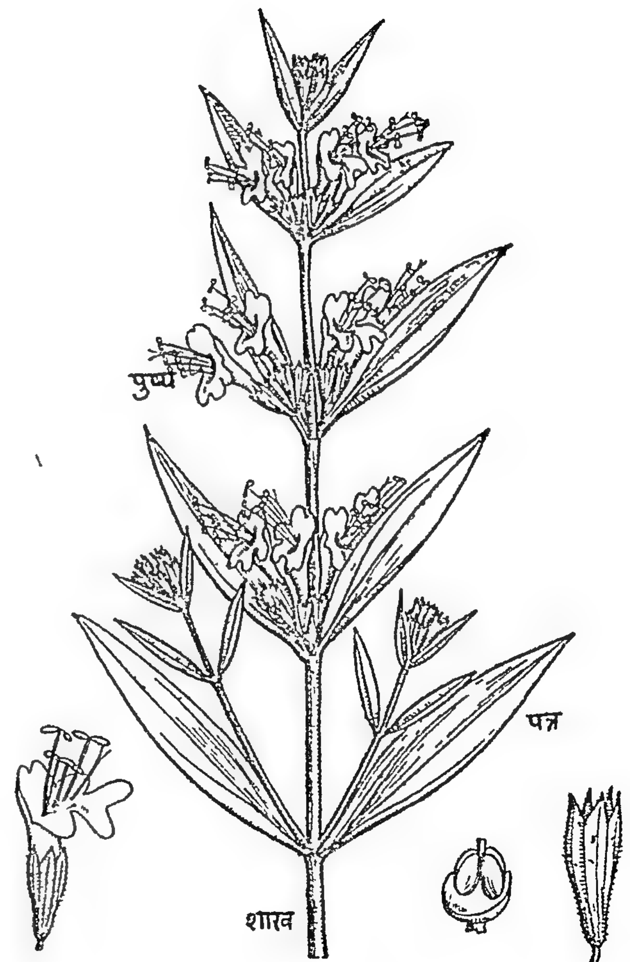
नोट—इसका विशेष उपयोग यूनानी चिकित्सा मे किया जाता है। आयुर्वेद में भी अब इसका उपयोग होने लगा है।

नामः—

हिन्दी आदि भाषा मे यूनानी 'जूफा' नाम से ही यह प्रसिद्ध है। अ०—हिस्सोप (Hyssop), ले०—हिसोपस ऑफिसिनेलिस, हि०—पारविफ्लोरा (H parviflora) तथा Nepeta ciliaris(नेपेटा सिलिया रिस)

रासायनिक सघटन-

इसमे एक ग्लुकोसाईड तथा एक हरिताभ पीतवर्ण



जूफा
HYSSOPUS OFFICINALIS LINN

का तैल अत्यल्प प्रमाण मे, और टेनिन, राल, वसा, पिच्छिल द्रव्य आदि पाये जाते हैं।

प्रयोज्याग—पत्र एव पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोगः-

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण कटु, विपाक मे कटु, उष्ण वीर्य, कफवातशामक, पित्तसारक, अनुलोमन, उत्तेजक, स्वेदल, मूत्रल, लेखन, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, शोथहर है तथा आध्मान, विबन्ध, उदर-रोग, प्रतिश्याय, कफप्रधान, कास, श्वास, फुफ्फुस शोथ, निमोनिया, पक्षाघात, अतिसार, गर्भाशय के प्रदाह आदि मे इसकी योजना की जाती है।

यह जमे हुए खून को विलेरता है। उदर-शोधनार्थ यह सिकजबीन के साथ दिया जाता है। इसका फाट या शर्बत-जीर्ण-कास, श्वास, फुफ्फुसशोथ (ब्रॉकाइटिस) कठ-प्रदाह युक्त शोथ, उदरशूल, योषापस्मार, कष्टार्त्तव या ऋतुनिरोध आदि मे सेवन कराया जाता है।

शोथ यदि उष्णताजन्य हो, तो-इसका क्वाथ मधु मिला पिलाते हैं। तथा विभिन्न लेपनो मे इसका मिश्रण कर लेप करते है। उदर के गोल कृमि पर-इसका चूर्ण मधु से देते है, अथवा इसके पत्र-रस का शर्बत मधु मिला पिलाते है। दंत-पीड़ा पर-इसके क्वाथ से कुल्ले करते है। त्वचा के दागो पर-क्वाथ की मालिश करते है। प्लीहा, शोथ तथा मासतान (कठगत रोग Diphtheria) पर इसके क्वाथ को अजीर के साथ देते है। श्वास तथा जीर्ण कास पर-इसके फूलो का क्वाथ देते है। इसकी पुल्टिस आँखो पर बाधने से नजले का जलस्राव रुक जाता है।

विशिष्ट योग-

शर्बत जूफा—जूफा, हसराज, सोफ की जड, कर्फस (अजमोदा) मूल, १०-१० तो० तथा-मुनक्का जल से धोकर कुचले हुए ३० तो० उन्नाव, सूखे लिसोडे शुष्क अजीर, नोसन (ईरसा) मूल, मुलैठी २०-२० तो०, बिहिदाने, अनीसून और सौंफ ५-५ तो० जौ (छिले हुए), अलसी, जटामासी और खतमी के बीज ३-३ तो० लेकर सबको जौ कुट कर रात्रि को ३ गुने जल मे भिगो, प्रात. मदाग्नि पर पकावे। ⅓ जल शेष रहने पर, उतार कर, ठडा कर छान ले। ६ सेर चीनी मिला शहद जैसी चाशनी बनावे। मात्रा-१-२-तो० जल मे मिला, दिन मे २-३ बार सेवन से वातपित्त प्रधान कास मे उत्तम लाभ होता है।

(श्री यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य)

अथवा— १ पाव जूफा को ८ सेर पानी मे उबालें, ⅓ शेप रहने पर, शेप जल से दुगनी खाड़ व समभाग मधु मिलाकर पाक करले। मात्रा-२-४ तो०। कास श्वास मे अति उत्तम है।

नोटः—

जूफा की मात्रा-२ से ६ मा० तक है।

यह यकृत-विकार पर हानिकारक है। हानि-निवारणार्थ-उन्नाव, खट्टा अनार व बबूल का गोद देते है।

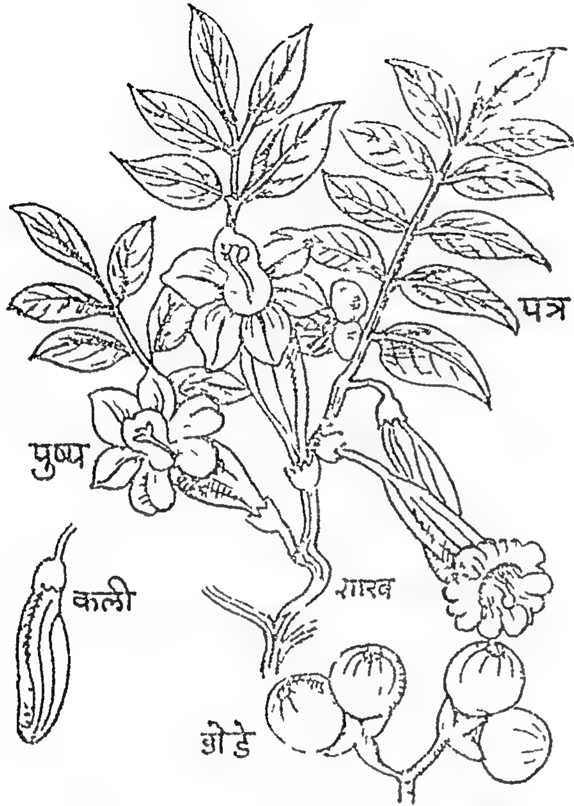
जूही (श्वेत व पीत) (*JASMINUM HUMILE*)

पारिजात कुल की (Gleaceae) इसकी क्षुप जैसी लता, चमेली की लता जैसी; शाखाएँ पतली; पत्र-सयुक्त, त्रिदल, त्रिदल का मध्य पत्र ½ से १ इच लम्बा, लगभग ½ इच चौडा, पार्श्व के दोनो दल बहुत छोटे-छोटे, पृष्ठ भाग रोमल-लोमश, निम्न भाग श्वेत रोमश, दृढ, पत्रवृन्त-बहुत छोटा, पुष्प-मजरी, या गुच्छो मे, अनेक छोटे-छोटे श्वेत-पुष्प, ५ पखुडी युक्त, अति मोहक, सुगन्धित। पुष्प-काल-ग्रीष्मान्त या वर्षा से लेकर शरद-काल तक। ये रात्रि मे विशेप विकसित होते है।

नोटः-(अ) श्वेत और पीत पुष्पों के भेद से जूही मुख्यतः दो प्रकार की है। इन दोनों के गुण धर्म एक समान हैं।

पीत पुष्पो वाली, पीत जूही या स्वर्ण जूही के पुष्प तुरही सदृश, नीचे झुके हुए होते हैं। इसका क्षुप सूक्ष्म-रोमश, खडा, कोण युक्त, वक्र-हरित शाखा युक्त। पत्र-एकान्तर-१ से ३ इच लम्बे अडाकार, नोकदार, दोनो

जुई पीली [स्वर्ण जुई]
JASMINUM HUMILE LINN.



ओर फीके हरे, लगभग ७ युग्म दल युक्त,, पुष्प—एकाकी या मजरी पर सघन, तेजस्वी, पीतवर्ण के, सुगन्ध-युक्त, पुष्पाभ्यतर कोष नलिकाकार लगभग ½ इच लम्बा, फल— गोलाकार ½ इच व्यास का होता है। इसके काड की छाल धूसर वर्ण की होती है।

(अ) श्वेत जूही—भारत मे प्राय सर्वत्र, विशेषत अजमेर, एव दक्षिण भारत मे-पश्चिमघाट, कर्णाटक, गुजरात, सौराष्ट्र के वन, उपवन एव पुष्प-वाटिकाओ मे अधिक होती है।

पीत जूही—प्राय पहाडी प्रान्तो मे मद्रास इलाका, पश्चिमघाट, नीलगिरी, मलाबार, बगाल, बिहार, राजस्थान, आबू आदि मे बोयी जाती या नैसर्गिक होती है

(उ) इसका उपयोग चरक और सुश्रुत मे भी पाया जाता है। सुश्रुत मे इसका उपयोग अतिसार, रक्त-पित्त व प्रमेह पर दिया गया है।

(ई) उक्त दो प्रकार की जूही के अतिरिक्त, इसकी अन्य भी कई जातियाँ है। इनमे से वनमल्लिका J Angustifolium व Sambac, मोगरा मे, J.Officinalis, J Arborescens मालती, J. Pubescns कुन्द मे, J.Grandiflorum चमेली मे, तथा जूही पालक (जो भिन्न जाति की है) इसके आगे के प्रकरण मे देखिये।

नाम—

स—(श्वेत व पीत के) यूथिका (झुण्ड में होने से), गणिका—[मनोहर होने से], अम्बष्ठा, स्वर्णयूथिका, हेम पुष्पिका इ.। हि०—जूही, जुही। सोनाजूही, पीतजूही [मालती] म० व० गु०—जुई, साईली, जिंगरी, पिवली जुई, पीली जुई, स्वर्ण थूंई इ०। अ—पर्लजेस्मीन [Pearl Jasmine] गोल्डन या इटालियन जे० [Golden or Itallin J] ले०—जेस्मिनम ऑरिकुलेटम, जे. हुमीले, जे. बिग्नोन्यासियम [J- Bignoniaceum]
प्रयोज्याग—पुष्प, पत्र, छाल, दूध, मूल।

गुणधर्म व प्रयोग

(श्वेत व पीत जूही)—लघु, तिक्त, कषाय, मधुर, कटु विपाक, शीतवीर्य, प्रभाव मे हृद्य, पित्तशामक, कफवातवर्धक, रक्तरोधक, व्रणरोपण, कुष्ठघ्न, विषहर व पैत्तिक-विकार हर तथा हृद्रोग, रक्तपित्त, दाह, तृषा, उर क्षत, चर्मरोग, मुखरोग, एव दन्त, नेत्र और शिरो-रोग आदि मे प्रयोजित है। इसके गुणधर्म प्राय चमेली से मिलते जुलते है। इसीलिये कई लोग श्वेतजूही और चमेली को एक ही मानते है।

श्वेत जूही के मूल का क्षीरपाक क्षय रोग मे लाभ-कारी है। मुख के छाले या मुख-पाक पर—पत्र को चबाते है, अथवा—पत्तो के साथ दारुहल्दी व त्रिफला मिला क्वाथ कर कुल्ले कराते है। कर्णशूल या कर्ण-पाक मे—इसका स्वरस मिलाकर सिद्ध किया हुआ तिल-तैल कान मे डालते है।

पाददारी या बिवाई पर—पत्तो को पीसकर लगाते है।

पीतजूही (स्वर्ण जूही)—के गुणधर्म उक्त श्वेत जूही जैसे ही हैं।

जीर्ण नाड़ीव्रण (नासूर), भगदर, दूषित व्रण या अस्थि-विकृति पर—इसके पौधे की छाल मे छेदने से जो निर्यास या दूध निकलता है, उसे लगाते हैं। शीघ्र लाभ होता है।

रतोधी या अन्य नेत्र—विकारो पर—इसके फूल व भागरे के पत्ते ५०–५० नग, सहेजना-पत्र ३० नग, कालीमिर्च १६ नग व छोटी पीपल ३ नग, सबको महीन पीस छोटी-छोटी वत्तिया या गोलियाँ वना, शुष्क कर लेते हैं। इन्हे पानी वा काजी मे घिस कर लगाते हैं।

दाद पर—इसकी जड़ को पीस कर लेप करते है।

योनि—शैथिल्य पर—इसके फूलो को पीस कर लगाते है।

विशिष्ट योग—

यूथीमूल योग—ग्रीष्म काल मे उखाडी हुई जूही की जड को, वकरी के दूध मे पकाकर (जड-५ तो० दूध ४० तो०, पानी दूध से चौगुना एकत्र मिला क्षीरपाक करें) सेवन करने से मूत्राघात, शूल युक्त मूत्रकृच्छ, शर्करा तथा अश्मरी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

गा०नि (भा०भै०र०से)

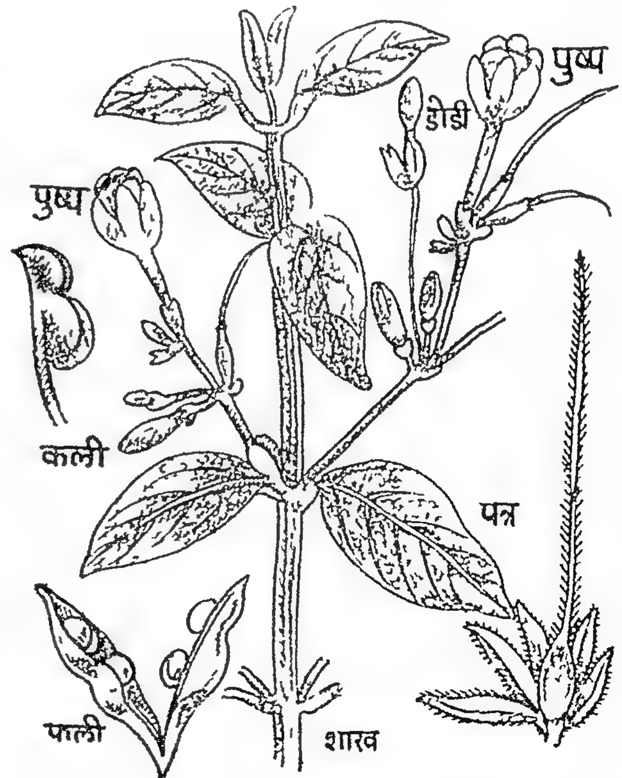
नोट—मात्रा-पत्र चूर्ण-६ मा० तक। पत्र-क्वाथ-४-४ तो० पुष्प-चूर्ण-१-२ मा०। पुष्प-स्वरस १-२ तो०

जूही पालक (Rhinacanthus-Communis)

वासाकुल (Acanthaceae) के इसके झाडी-जैसे गुल्म ४-५ फुट ऊ चे; काण्ड—सरल, अनेक कोमल नये जोड युक्त, चिकने पटकोण शाखाओ से लदे हुए, छाल—धूसर वर्ण की, पत्र—अभिमुख, कु ठिताग्र मालाकार, २-४ इच लम्वे, १–२ इच चौडे, पृष्ठ भाग रोमश, अधो-भाग-चिकना, स्वाद मे चरपरा, मसलने से दुर्गन्ध-देने वाले, पुष्प—श्वेत, गुच्छो मे, तुर्रे के आकार के, वीज-कोप (फली) मे गोल-गोल ४ बीज होते है। मूल—कडी, अनेक उपमूल-युक्त होती है। पुष्प व फलकाल-दिसम्बर से एप्रिल मास तक।

इसके गुल्म विशेपत पश्चिम और दक्षिण भारत मे, पश्चिम घाटो पर, उड़ीसा, वगाल मे प्राय सर्वत्र, छोटा नागपुर तथा सीलोन मे वोये जाते या नैसर्गिक भी पैदा होते हैं।

नाम—सं—यूथिक पर्णी। हि०—जूहीपालक, पालक जुंइया, जुईवानी इ०। म०—गजकर्णी, कबूतर का झाड। गु०—गजकरण। व०— जुंईपाना, पलक जुई। ले०—रीना-क्यांथस काम्यूनिस



रासायनिक संघटन—

मूल व छाल मे राईना केथीन (Rhina-Canthin) नामक एक लाल राल युक्त कार्यकारी तत्व लगभग २-

प्रतिशत होता है, जिसकी क्रिया क्राईसोफेनिकएसिड (Chrysophanic acid) सदृश होती है। यह तत्व अल्कोहल मे घुलनशील है।

प्रयोज्यांग—मूल, छाल, पत्र व बीज।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, कटु, तिक्त, रुक्ष, कटु, विपाक, उष्ण वीर्य, कफवात-शामक, रक्तशोधक, उत्तेजक, वाजीकर, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, व विषघ्न है।

मूल—लेखन, स्फोटजनन, कुष्ठघ्न विशेषत द द्रुघ्न व कामोत्तेजक है।

(१) दाद पर—मूल या मूल-छाल को पानी, नीबू रस, या चूने के पानी मे पीस कर लेप करते है। यह उकवत, छाजन, तथा धोबिया खाज (Dhobi eitch) पर विशेष लाभकर है। अथवा—जड की छाल को फिटकरी व कालीमिर्च के साथ पीस कर भी लेप करते है। अथवा—छाल को छाया-शुष्क कर बिना छिलका निकाले इलायची के साथ पीस कर, पानी के साथ गोलिया बनाले। उन्हे पानी मे घिस लगाने से दाद पर उत्तम लाभ होता है। छाले या फफोले नहीं पडने पाते।

(२) कामोत्तेजनार्थ—मूल-चूर्ण को दूध मे उबाल कर पिलाते है।

(३) कुष्ठ आदि चर्म-रोगो पर—मूल का क्वाथ सेवन कराते तथा मूल और पत्र को पीस कर लेप करते है।

(४) कृमि-रोगो पर—मूल या पत्र का कल्क चूने के पानी के साथ देते हैं। बीजो का भी सेवन कराते है।

(५) व्यङ्ग, न्यच्छ आदि क्षुद्र-रोगो पर—इसके पत्तो का रस लगाते है।

नोट—मात्रा—मूल चूर्ण ४-१२ रत्ती। पत्र-स्वरस-½-१ तो०। बीज—चूर्ण-६-१२ रत्ती

जेठी मध—देखे मुलैठी। जेपाल—देखें जमाल गोटा।

जैंत (Sesbania Aegyptiaca)

शिम्बी-कुल के अपरा जित उपकुल (Paptionacceae) के इसके मध्यम प्रमाण के वृक्ष ६-१० फीट ऊँचे, पत्र—इमली पत्र जैसे सयुक्त, इमली पत्र से अत्यधिक लम्बे (३-६ इच तक), जिनमे २०-२४ पत्रक मृदुरोमश, स्वाद मे तिक्त, विशिष्ट गधयुक्त, पुष्प—वर्षाऋतु मे, छोटे-छोटे पीत वर्ण के, प्रत्येक पुष्प—दण्ड मे ३—१२ पुष्प, तथा फली शीतकाल मे, सहिजना की फलीसदृश किंतु पतली व कुछ छोटी, २०-२५ छोटे-छोटे बीज युक्त होती है।

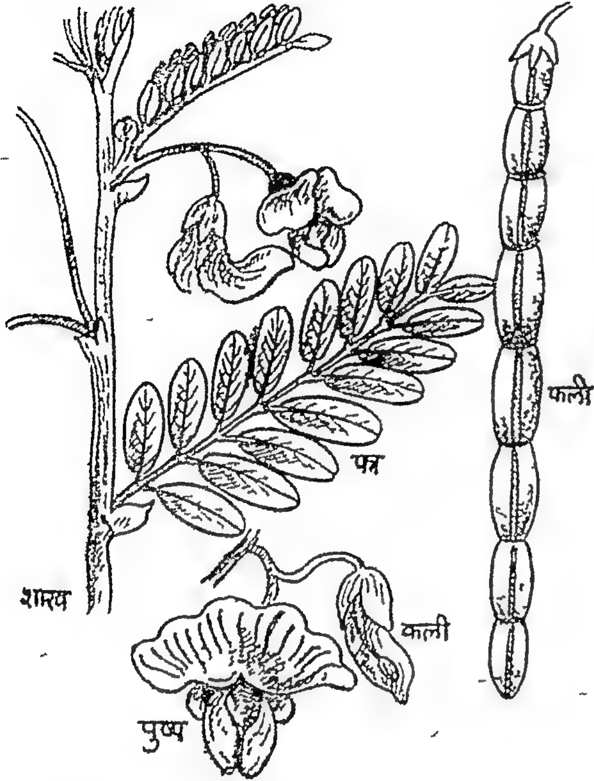
नोट-(अ) पुष्प-भेद से इसकी पीत, रक्त व कृष्ण तीन जातियाँ हैं। ये तीनो गुण धर्म मे प्राय समान है। काली (कृष्ण) जैंत की विशेषता आगे गुण धर्म मे देखे। इसकी एक श्वेत जाति भी होती है। (आ) कार्पासकुल (Malvaceae) की Abutilon-Avicennae वनौषधि, जिसे गुजराती मे नाहनी-खपाट कहते है, उसे भी सस्कृत मे जया, जयन्ती नाम दिया गया है। वह कंघी [अतिबला] की एक छोटी जाति-विशेष है। पौधे १ से २ हाथ ऊंचे, पत्र—कंघी के पत्र समान, किंतु बहुत कोमल व सुहावने होते है। इसकी छाल औषधिकार्य में ली जाती है। यह ग्राही पौष्टिक है। शेष गुण धर्म कघी के ही समान है। कघी का प्रकरण भाग २ मे देखें। यहाँ उसका चित्र दिया जाता है।

(इ) प्रस्तुत प्रसंग की पीली जैंत (तथा इसकी अन्य जातियाँ) आफ्रिका देश मे विशेष पैदा होने वाली आजकल भारत मे प्राय सर्वत्र किंतु दक्षिण भारत मे तथा सीलोन आदि उष्ण देशों मे अधिक प्रमाण मे पैदा होती है।

नाम—

सं०—जयन्ती, जया (रोगों को जीतने वाली) सूक्ष्म मूला, सूक्ष्मपत्रा, केश रुहा (केशों को बढाने वाली) इ०। हि—जैंत, जयन्ती, भीजन, जेत्रासिन, जन्तर इ०

जैन्त
SESBANIA AEGYPTICA PERS.



म०-जेत, शेवरी, जाजन। बं०-जयन्ती। ले०-सिसबेनिया ईजिप्टियाका।

रासायनिक संघटन:—इसके बीजो मे वसा ४ ८ प्रतिशत, अलब्यु-मिनाइड ३३ ७ प्रतिशत, कार्वोहाइड्रेट १८ २ प्रतिशत, सेल्युलोज २८ ३ प्रतिशत तथा क्षार ४ २ प्रतिशत पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, वीज, फून, छाल, व पुष्प।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रुक्ष, कटु, तिक्त, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, प्रभाव मे ज्वरघ्न, विषघ्न, त्रिदोष (विशेषत कफ पित्त) शामक, दीपन, ग्राही, कृमिघ्न, रक्त शोधन, कण्ठ्य, स्वेदजनन, विस्फोटज्वर-प्रतिषेधक, मधुमेह, गलरोग, क्षयजन्य-ग्रंथियो आदि की नाशक है।

पत्र—विरेचक, कृमिनाशक है। पत्तो का कल्क-केश्य, शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणपाचन, कुष्ठघ्न, व सधिवात नाशक है। पत्र-स्वरस-जन्तुघ्न है। पत्र प्रयोग से मूत्र की एव तदन्तर्गत शर्करा की मात्रा कम होती है। पत्तियो का गरम कल्क या पुल्टिस विद्रधि, अण्ड-वृद्धि, सधिशोथ आदि मे बांधी जाती है। पत्र-क्वाथ से व्रणो का प्रक्षालन करते हैं। खालित्य (Baldness) व पालित्य (बालो के पकने पर) मे इसका लेप लगाते या इसके क्वाथ से सिर धोते है।

कण्डु, कुष्ठ, गलगड आदि मे पत्तो का लेप करते है। कृमि-रोग मे पत्र स्वरस देते है।

स्वर भेद, प्रतिश्याय, आदि कफ जन्य विकारो मे तथा इक्षुमेह (Glycosuria) और बहुमूत्र मे पत्र-क्वाथ देते है। तथा पत्र-कल्क आटे मे मिला उसकी रोटी बना कर खिलाते है।

जिन्हे जुकाम (प्रतिश्याय) बारबार हो जाया करता है उन्हे पत्तो का शाक सेवन कराते हैं। उत्तम लाभ होता है।

नोटः-रसशास्त्र में द्रव्यों के शोधनार्थ पत्र-स्वरस विशेष प्रयुक्त होता है।

बीज—ऋतुस्राव नियामक, आर्त्तवजनन, विषघ्न उत्तेजक है। इनका प्रयोग कष्टार्त्तव, रजोरोध, प्लीहा-शोथ आदि मे किया जाता है।

अग्निमांद्य व अतिसार मे बीजो का चूर्ण देते है।

मसूरिकादि विस्फोट रोग-प्रतिषेधार्थ-इसके लग-भग २०-२५ बीजो को पीस कर गाय के घृत के साथ सेवन कराते है। तथा बीजो का लेप भी करते हैं।

खुजली पर-बीज-चूर्ण आटे के साथ मिला लेप करते हैं।

बिच्छू के दश पर—बीजो का लेप करते हैं।

मूल व छाल—सकोचक, योगवाही, विषघ्न व कुष्ठ-घ्न है।

कुष्ठ, विशेषत- श्वेत्र या श्वेत कुष्ठ पर—मूल (श्वेत जयन्ती की मिले तो और उत्तम है) को दुग्ध मे पीस कर दूध के ही साथ रविवार के दिन पीने से श्वित्र

नष्ट होता है[1] । (भै०र०)

विच्छू के विष पर—इसकी ताजी जड को हाथ मे दाव कर रखने से विष उतर जाता है, ऐसा कई लोग कहते हैं । दशस्थान पर मूल को पीस कर लेप करते है ।

ज्वर उतारने के लिये—सहदेई मूल के समान इसके मूल को सिर पर धारण करते है ।

छाल—सकोचक है । रक्तविकार, गलगंड आदि मे, इसका क्वाथ पिलाते हैं ।

अग्निमाद्य व अतिसार मे छाल का स्वरस देते हैं ।

पुष्प–ज्वरहारी, व गर्भ निवारक है-ज्वरी के सिर पर पुष्पो को धारण करते है ।

गर्भ-धारण निवारणार्थ–पुष्पो को काजी मे पीस, पुराने गुड के साथ, मासिक स्राव के वाद ३ दिन तक पिलाते है ।

काली जेत–विशेपत रसायन या धातु परिवर्तक है । सामान्य दौर्वल्य मे इसका प्रयोग किया जात्ता है ।

विषो के निवारणार्थ–इसकी मूल या छाल का क्वाथ या स्वरस पिलाते है ।

जेंत का विशिष्ट योग–जयावटी (ज्वर नाशक) जेत-मूल का चूर्ण ८ भाग तथा मीठा विष, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, मोथा, हल्दी, नीमपत्र–चूर्ण और वायविडंग १-१ भाग इन सब द्रव्यों का चूर्ण एकत्र कर वकरे के मूत्र से मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियां वना लें । यह पित्तज्वर तथा रक्तपित्तोत्पन्न ज्वर मे प्रति कारी है । सभी प्रकार के ज्वरो की तरुणावस्था मे एव मलेरिया ज्वर मे भी जव आमरस का परिपाक न हो दाह, प्यास, पसीना, व तापाश तीव्र हो, मंदाग्नि आदि लक्षण हो तव दिन मे तीन वार तक सेवन करा सकते है । इसे अदरक के रस व मधु के साथ देते हैं ।

ज्वर की मध्यमावस्था मे, जव किसी भी समय ३-४ घटे के लिये ज्वर होकर शात हो जाता हो, तव पीपल चूर्ण व मधु के साथ प्रात साय देवे ।

ज्वर की जीर्णावस्था मे प्लीहा आदि के वढ जाने या अपथ्य सेवन आदि से ज्वर आता हो तो भी इसका सेवन कराते हे ।

नये या पुराने रक्तपित्त वातिक या क्षतज कास मे ज्वर हलकी हालत मे १०१ तक रहता हो तो इससे विशेप लाभ होता है । रक्तपित्त मे इसे चन्दन-क्वाथ के साथ देते है ।

भागरे के रस व मधु के साथ इसका सेवन निरतर करते रहने से रतौधी मे कभी कभी विशेप लाभ होता है ।

(–भै०र०मे आयुर्वेदाचार्य श्री जयदेव विद्यालकार के विशेष वक्तव्य से)

नोटः—मात्रा–चूर्ण–२-२ या ६ मा०तक ।
स्वरस-१-२ तो० । क्वाथ–४–१० तो० तक ।

[1] श्वेत जयन्ती मूलं पीत पिष्टञ्च पयसैव ।
श्वित्र निहन्ति नियत रविवारे वैद्यनाथाज्ञा ॥
(–भै०र० कुष्ठाधिकार)

जैतून (Olea Europaea)

पारिजात-कुल (Oleaceae)के इसके वागी वृक्ष सदा हरे भरे मध्यम आकार के तथा जगली वृक्ष वड़े होते हैं । पत्र–अमरूद के पत्र जैसे, किंतु कुछ गोलाकार फल-कलमी वेर जैसे अण्डाकार, कच्ची दशा मे हरे रग के होते हैं । कच्चे फलो का अचार एव तरकारी वनाते है । पकने पर ये फल नीलाभ लाल रग के हो जाते तथा इनका मध्यस्तर (Mesocarp) तैल से भर जाता है ।

तैल निकालने के लिये फलो का सग्रह वसत काल के आरभ मे करते हैं । तथा अच्छे परिपक्व फलो को मशीन में चक्की द्वारा इस प्रकार पीसा जाता है, कि गूदा तो पिस जाय, किंतु गुठली (जो ½ इच लवी व

२ इच मोटी होती है) टूटने न पावे। इन पिसले हुए फलो को पुन.गोल-गोल थैलो मे कस कर भर दिया जाता है, तथा थैले पर थैले, एक के ऊपर एक रख कर मशीन द्वारा दबाया जाता है, जिससे गाढा तैल (Crude Oil) निकल आता है। जालियो द्वारा इस तैल को हौज मे सगृहीत कर, उसमे पानी मिलाते है। स्वच्छ एव शुद्ध तैल पृथक होकर पानी पर तैरने लगता है। फिर तैलीय भाग को प्रथक कर लेते हैं। इसे वर्जिन-आयल (Virgin Oil) कहते है। औषधि-कार्यार्थ यही उपयुक्त होता है। उक्त प्रकार से गाढा तैल निकालने के बाद जो चोया या फुजला रह जाता है, उससे प्रपीडन द्वारा दूसरे दर्जे का तैल अलग निकाला जाता है, जो अन्य कार्यो के लिये व्यवहृत किया जाता है। फलो की गुठलियो मे भी कुछ प्रमाण मे तैल होता है।

इन वृक्षो का मूल उत्पत्ति स्थान भूमध्य सागर के तटीय प्रान्त हैं। अब कई वर्षो से अमेरिका के केलिफोर्निया प्रात एव दक्षिण यूरोप, आष्ट्रेलिया, एशिया-माइनर, यूनान आदि देशो मे इसकी खेती की जाती है। भारत के हिमाचल प्रान्तो मे, नीलगिर मे भी इसके पौधे लगाये गये हैं। पश्चिम सिंध तथा अफगानिस्तान, बलूचीस्तान मे इसकी एक जगली जाति के वृक्ष होते हैं।

नोटः—(अ) खास कर इसके वृक्ष इसके तैल के लिये ही लगाये जाते हैं। इसका उक्त प्रकार से शीत प्रपीडन द्वारा, यूरोप देशीय जैतून (Olea Europaea) के पके फलों से प्राप्त किया हुआ स्थिर तैल उत्तम स्वच्छ विमल, हलका, सुनहरे रग का, हलकी गंध युक्त एवं स्वाद मे तैलीय या फल जैसा होता है।

उक्त दूसरे दर्जे के तैल को टेबल आयल (Table Oil) कहते है। यह खाने के काम में लाया जाता है[1]। पुनः चौथे से निकाला हुआ तैल साधारण (Common) जैतून तैल कहाता है। यह उक्त प्रथम दर्जे के तैल की अपेक्षा कुछ गाढा एव पीताभ या हरिताभ छटा वाला होता है।

(आ) हिन्दी में-उक्त तैल को जैतून-तैल, रोगन जैतून, अंग्रेजी मे ओलिव्ह आइल [Olive Oil] तथा लेटिन में ओलियम ऑलिव्ही (Oleumolivae) कहते है।

[1] अनेक देशों में खाद्य के रूप में इसका प्रचलन है।

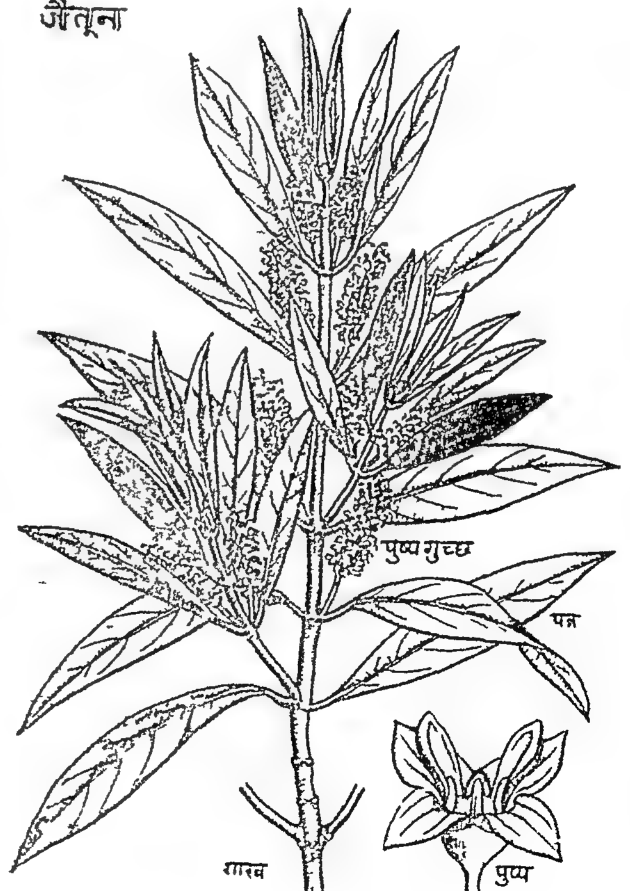
यह तैल अनेक प्रकार की औषधियों मे तथा उत्तम साबुन और ग्लिसरीन आदि में भी चिकनाई के लिये प्रयुक्त होता है।

(इ) जैतून के वृक्षों से (विशेषतः जंगली वृक्षों से) एक प्रकार का गोंद निकलता है, जो पीताभ कृष्ण या लाल वर्ण का, तथा स्वाद मे मधुर होता है। इस गोंद को कुछ देर हाथ मे रखकर मसलने से वह पिघलकर शहद जैसा हो जाता है।

तैल का रासायनिक संघटन—

इसमे ऑलीईन (Olein) जो ऑलीइक-एसिड का ग्लिसेराइड होता है ९३ प्रतिशत, लीनोलीन (Linolein) जो लीनोलिक एसिड एवं ग्लिसरीन का यौगिक है ७ प्रतिशत, पामीटीन (Palmitin) नामक स्थिर तैल, जो पामेटिक एसिड एव ग्लिसरील (Glyceryl) का यौगिक होता है, तथा एरेकिन (Arachin) आदि

जैतून



OLEA EUROPAEA LINN

उपादान पाये जाते हैं।

ध्यान रहे—इसके शुद्ध तैल मे विनौले का तैल, तिल तैल, मूंगफली तैल आदि का मिश्रण कर बाजार मे वेचा जाता है। जहा तक हो सके औषधि कार्यार्थ इसका शुद्ध तैल ही लेना चाहिये। इसके अभाव मे विनौले का या मूंगफली का तैल ले सकते है।

प्रयोज्याग—तैल, पत्र, फल और गोद।

गुणधर्म व प्रयोग—

तैल—उष्ण, स्नेहन (स्निग्ध गुण की इसमे सर्वाधिक विशेपता है) तथा पित्त रेचन। कच्चे फलो का तैल या पुराना सडा-गला तैल रूक्षता एव खुजली पैदा करता है।

आभ्यन्तर प्रयोग—(१) पुष्टि के लिये—इस तैल का अल्प मात्रा मे सेवन करने से यह आमाशयान्त्र मे काडलिवर आयल (मछली के तैल) जैसा इमल्सन मे परिणत होकर आन्त्रो द्वारा शोपित होता तथा पोषण का कार्य (Nutrient) करता है। अत. क्षयकारक रोगो मे इसका प्रयोग एमल्सन के रूप मे करने से यह पुष्टिकर प्रभाव करता है। यह इस कार्य मे मछली के तैल की अपेक्षा अधिक लाभकारी है। यदि यह वैसे ही न लिया जा सके तो इसके एमल्सन के लिये इसमे नारगी आदि फलो का रस मिलाकर सरलता से लिया जा सकता है। अथवा १ औंस (२॥ तो० तक) इसके तैल मे १८० ग्रेन (६० रत्ती) ववूल का गोद चूर्ण और २ औंस जल मिलाने से उत्तम एमल्सन वन जाता है। गोद के स्थान मे यव सत्त्व (माल्ट एक्स्ट्रैक्ट) के साथ भी यह अच्छी तरह मिल जाता है। अथवा तैल को कैप्सूल (Capsule) मे भरकर भी इसे लेते हैं।

(२) मल-विवन्ध नाशार्थ—वालक या निर्वल व्यक्तियो को २॥ से ५ तो० की मात्रा मे देने से यह आतो का स्नेहन करता तथा साथ ही मृदुविरेचन प्रभाव भी करता है, जिससे शुष्क मल मुलायम होकर विना कष्ट के साफ निकल जाता है। अतएव प्रकुपित (वेदना शोथयुक्त) अर्श, मलाशय व्रण (Rectal ulcer) गुदचीर (Anal fissure), भगदर, गुदभ्रंश या अन्य वेदनायुक्त मलोत्सर्ग की व्याधियो मे, तथा अफीम के सेवन से उत्पन्न मल-विवन्ध (कब्जी) मे इसका सेवन विशेष उपयोगी है। सेवनविधि उक्त न० १ प्रयोग मे देखें।

सारक प्रभाव के लिये इसे वस्ति (Enema) के रूप मे (१० तो० तैल को आध सेर चावल के गरम-गरम माड मे मिलाकर) भी प्रयुक्त कर सकते हैं।

अश्मरी (पित्ताश्मरी) रोग मे भी इसकी वस्ति लाभकारी है। शूल (कुलज) रोग मे भी इसे पिलाते या वस्ति देते हैं। [गुदामार्ग द्वारा ईथर एवं पैराल्डिहाइड का प्रयोग करने एव अवस्त्वचीय मार्ग द्वारा (Hypodermic) ईथर एव कपूर का प्रयोग करने के लिये भी इसका माध्यम द्रव्य (Vehicle) के रूप मे प्रयोग किया जाता है। (मे० मेडिका)]

(३) आमाशय, पित्ताशय एव पित्ताश्मरी पर इस तैल का कार्य—मुख द्वारा सेवन करने से यह आमाशय पर सकोचक प्रभाव करने से यह अप्रत्यक्ष तथा पित्त-विरेचन (Indirect cholagogue) प्रभाव करता है। अत. आमाशय के व्रण (Gastric ulcer) अथवा इस व्रण के न होते हुए भी इसके लक्षणो से युक्त अग्निमांद्य (Dyspepsia) मे इसका सेवन लाभप्रद है।

पित्ताशय पर उक्त प्रभाव के कारण इसका प्रयोग अनेक पित्ताशय के रोगो (पित्ताश्मरी, पित्ताशय शोथ, पित्ताशय दौर्वल्य–atony the gall-bladder आदि) मे करने से उपद्रवो की शाति होती है।

पित्ताश्मरी (Gall stones) का मुख्य घटक कोलेस्टेरीन (Cholesterine) इस तेल मे शरीर तापक्रम ९८३ फा पर विलीन हो जाता है अत पित्ताश्मरी विलयन एव तज्जन्य शूल निवारणार्थ इस तैल का प्रयोग वहुत उपयुक्त समझा जाता है। एतदर्थ इसका सेवन अधिक समय तक निरन्तर करना पडता है। और अल्प मात्रा से प्रारभ कर उत्तरोत्तर मात्रावृद्धि करनी पडती है। साधारणतया दो रोगियो को १० से २० औंस तक तैल प्रति दिन सेवन कराना पडा है। इससे पित्त पतला होकर उसका उत्सर्ग आत्र मे वहुत अधिक मात्रा मे होता है, जिससे

कालान्तर मे पथरी भी मूत्र-मार्ग से सहजही बाहर निकल जाती है–(मे मेडिका)

(४) प्रदाहकारी विषो पर—फास्फोरस के अतिरिक्त अन्य सखिया, स्प्रिट आदि प्रदाहकारक विषो मे–इस तैल का प्रयोग स्नेहन द्रव्य के रूप मे, महास्रोत (Alimentary Canal) मे होने वाली वेदना, दाह एव शोथ-शमनार्थ किया जाता है।

तैल के बाह्य प्रयोग–

त्वचा पर मालिश आदि से यह स्नेहन, मृदु कर, सशमन, शोथविलयन एव अङ्गप्रत्यङ्ग मे शक्तिप्रद कार्य करता है। निर्बल व्यक्ति, विशेषत दुर्बल एव कृश शिशुओ के शरीर पर मालिश से यह अन्दर शोषित होकर शरीर को पुष्ट कर कृशता दूर करता है।

अङ्ग वेदना, पक्षवध, आमवात, गृध्रसी आदि में विलयन एव सशमनार्थ (Soothing) इसका मर्दन करते हैं। इससे शरीर की रूक्षता, तथा चबल (छाजन), शुष्क गज आदि त्वचा के रूक्ष-विकारों (किटिभ-Psoriasis, चर्मकुष्ठ-Zeroderma-आदि) मे भी लाभ होता है।

यह तारपीन, फिनाईल, कार्वोलिक एसिड आदि की तीक्ष्णता कम करने एव गुणोत्कर्ष के लिए उन द्रव्यो मे मिलाया जाता है।

प्लेग, हैजा, चेचक आदि सक्रामक रोगो के प्रतिकारार्थ इसे फिनाईल मे मिला कमरे मे छिडकते तथा शरीर पर मालिश भी करते हैं।

व्रणशोधन, रोपण एव सधान के लिये इसे मरहमो मे मिला व्रणो पर लगाते हैं।

अस्थि-सधानार्थ (टूटी हुई हड्डी के जुडने के लिए) इसके (विशेषत जगली जैतून के) तैल की मालिश की जाती है।

(५) आग आदि से झुलसने पर (Burn and scald) सशामक प्रभाव एव दग्धावयव के रक्षण के लिये इसका मलहम या लिनिमेट बना कर–यथा चूने के पानी १ भाग मे यह तेल दो भाग मिला एव घोट कर लगाना एक उत्तम योग है।

अथवा–इसके तेल (अभाव मे अलसी तेल) १ सेर मे चूने का पानी १ सेर मिला मथानी से खूब मथले–(यदि दोनो एक होते हो तो पानी को नितार कर कुछ कम करलें) फिर उसमें २ तोला नीलगिरी तेल मिला शीशियों मे भर ले। यह अग्रेजी कैरन आईल के स्थान पर काम देता है। आग से या तेजाब से जलने पर पट्टी तर कर इसे लगाये या फाये से लगाये।

—वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, अजमेर

(६) चेचक या लोहित ज्वर (Scarlatina) के दानो पर जब खुरड निकलने लगती है तो किसी उपयुक्त जीवाणु-नाशक द्रव्य (यथा फिनोल ४-५ प्रतशत) के साथ इसे लगाया जाता है।

(७) नेत्र-विकारो पर—इसके शुद्ध तेल को नेत्रों में लगाने से नेत्र-दृष्टि बढती तथा नजला, खुजली, धुंध, जाला आदि विकार दूर होते है।

नोट—तेल की साधारण मात्रा आधा से २॥ तोला तक है।

विकृत तेल के सेवन से यदि खुजली आदि विकार हो तो शहद व शर्बत बनफशा का सेवन कराते हैं।

पत्र-प्रयोग–

प्रस्वेद पर—जगली जैतून के पत्रो को शुष्क कर पीसकर शरीर पर मलते हैं।

व्रणरोपणार्थ—पत्र-चूर्ण शहद मे मिलाकर लगाते है।

शीतपित्त, खुजली, दाद, गरमी के दूषित व्रणो पर—जगली जैतून के पत्रो का प्रलेप करते है।

कर्ण-विकार पर—पत्र-रस कान मे डालने से शूल, पीव व शोथ पर लाभ होता है। कान में यदि फुंसी या बहरापन हो तो पत्र-रस में समभाग शहद मिला कुनकुनाकर कान में डालते है।

नेत्र विकारो पर–बागी जैतून के पत्र नेत्र रोगो पर विशेष लाभकारी है। इससे मोतियाबिन्द में भी लाभ होता है। बच्चो की आखो का टेढापन (तिरछा देखना) मिटाने के लिये पत्र-रस की नस्य देते है।

फल—जैतून के फलो का मुरब्बा मृदु विरेचक है। इसे गरम पानी से खिलाने से खब दस्त लगते है।

फलो का अचार क्षुधा-वृद्धि करता व आमाशय को शक्तिप्रद है। किन्तु कुछ विवन्धकारी भी है। इसे यदि सिरके के साथ खाया जाय तो शीघ्र हजम हो जाता है।

अचार की विधि—वागी जैतून के कच्चे फलो को चूना और राख मिश्रित पानी मे डुबोकर कुछ समय तक रखते है, जिससे उनकी कडवाहट बहुत कुछ दूर हो जाती है फिर उन्हे बोतलो या बर्नियो मे नमक एव सुगन्धित द्रव्य मिश्रित जल के साथ भर देते है। २-४ दिन मे अचार तैयार हो जाता है।

गोद—यह उष्ण एव रूक्ष है। यह जुकाम, सर्दी, नजला व खासी में लाभकारी है। आवाज को साफ़ करता है।

गर्भाशय-शोथ-निवारणार्थ—इसे योनिमार्ग मे रखतेहैं।

दाद की जखम व तर खुजली पर—इसे मलहम मे मिला कर लगाते है।

इसे आख मे लगाने से पुतली के रोग जाला आदि मे लाभ होता है।

इसे कीडा खाये हुए दात मे भर देने से बहुत लाभ होता है।

यह गोद मूत्रल है तथा योनि मे रखने से मा[illegible] धर्म को जारी कर देता है। यह गर्भ को भी गि[illegible] है। (व च०)

नोट—गोद की मात्रा ३ से ६ माशा तक।

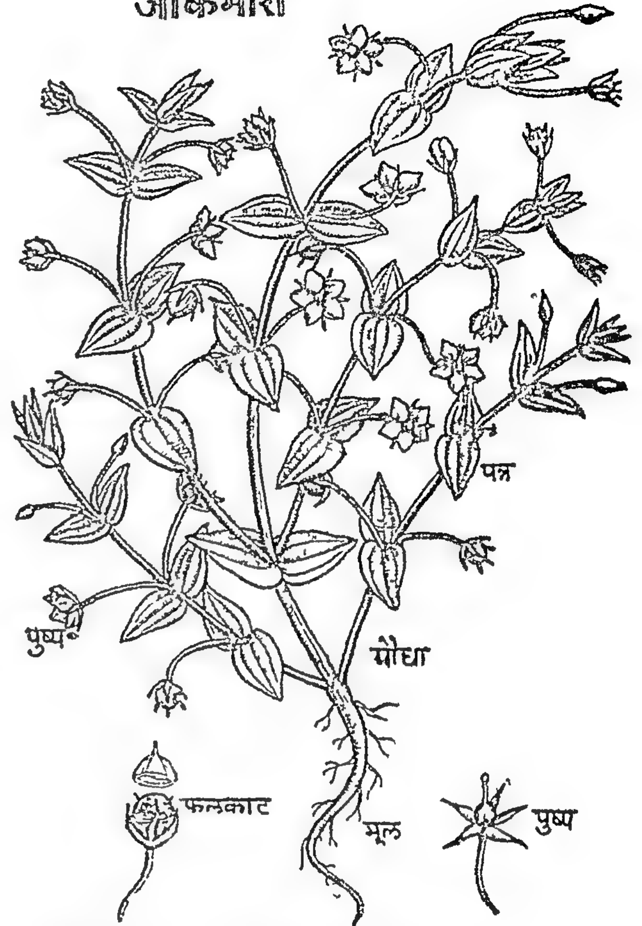
इसके दर्प को नाश करनेके लिए, अर्थात् यदि इसके पत्र, फल, गोद, तैल आदि के अधिक सेवन से अनिद्रा, सिरदर्द, कमजोरी, दुर्बलता, फेफडो के कोई विकार पैदा हो जावे तो—वादाम, अखरोट, शहद, शर्बत नीलोफर या खमीरा वनफशा का सेवन विशेष लाभदायक है। (व० च०)

जोंकमारी
Anagallis Arvensis



Primulaceae कुल की इस वर्ष जीवी क्षुद्र बूटी के पौधे जमीन पर फैले हुए, पत्र—अभिमुख, सयुक्त २-२, शाखा की गाठ-गाठ पर, अण्डाकृति, सिराजाल से व्याप्त, पीले धब्बो से युक्त हरित वर्ण के, वृन्तरहित, पुष्प—पत्रकोण से निकली हुई डडी पर—१-१ पुष्प, ५ पखुडी वाला, किरमिजी रग का, फल—मोटे मटर जैसा, अनेक या एक बीज युक्त होता है।

जोंकमारी



ANAGALLIS ARVENSIS LINN.

नोट—लाल या किरमिजी या नीले फूल के भेद से इस बूटी की दो जातिया होती हैं। इसके पौधे काश्मीर, कुमाऊं, खासिया पहाडी आदि स्थानो मे पाये जाते हैं।

यह जोक मछली और कुत्तो के लिये विषैली है।

नाम—

हि.—जोकमारी, जिगनी, जगमानी, धब्बर। ग.—काली-फुलडी, गोलीफुलडी, ले०—अनेगेलिस अरवेंसिस

रासायनिक सघटन--

इसमे सेपोनीन (saponin) व एन्जिम (Enzyme) ये तत्व पाये जाते है। ये तत्त्व प्राय रीठा व सीकाकाई के विपैले तत्त्व जैसे ही होते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग —

तिक्त, कटु, आनुलोमिक, वेदनाशामक अवसादक, व्रणरोपक व शोथहारी है, तथा गठिया, जलोदर उन्माद, अपस्मार, सर्पविष, श्वानविप आदि मे उपयुक्त है।

उन्माद और अपस्मार मे इसे विरेचनार्थ देते है। पागल कुत्ते के विप पर इसे घोट कर पिलाते तथा दश-स्थान पर लेप करते है। सधिशोथ, यकृतशोथ, जलोदर एव वृक्क व फुफ्फुस के विकारो पर इसका लेप करते तथा विरेचनार्थ खिलाते है। शरीर मे प्रविष्ट हुए शल्य के निष्कासनार्थ तथा दत-पीडा-शमनार्थ इसका वाह्य लेप करते हैं। पीनस मे नाक की दुर्गन्ध-निवारणार्थ इसका नस्य देते है।

जोधरी (जोनरी)—दे० जुवार। जोईपाणी—दे० जूही पालक।

जोगीपादशाह (Saussurea sarca linn)

भृंगराज-कुल (Compositae) की इस काण्ड रहित के वनौपधि क्षुप के पत्र—एकान्तर श्लक्ष्ण, शाखा—छोटी स्निग्ध, पुष्प—पीताभ कपिश, फल—छोटे श्वेत वर्ण के रोमश, बहुबीज युक्त, तथा मूल—छोटे सूत्र जैसी होती है।

यह काश्मीर से गुलमर्ग के समीप पहाडी प्रान्त मे १० हजार फीट की ऊंचाई पर सर्वत्र प्राप्त होती है।

इसकी बिक्री कन्सरवेटर ऑफ फारेस्ट डेवेलोपमेंट सर्कल जम्मू (काश्मीर) द्वारा होती है। इसका वर्णन (Flora of British India, By Hooks) में है। हिन्दी वर्णन श्रद्धेय अनुभाई वैद्य लिखित वनस्पति परिचय के पृष्ठ ३६३ पर है।

नाम—

हि. गु.—जोगीपादशाह लें—सासुरिया सारका।

उपयोगी अङ्ग—पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग—

कटु विपाक, उष्णवीर्य, बृंहण, रक्तदोषान्तक, वात-कफशमन है। शारीरिक अङ्गो मे इसका प्रभाव त्वचा और आत्र पर होता है।

वीर्य सम्बन्धी विकार, ज्वर व आत्र रोग पर इसका उपयोग किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण २ से ४ मा, अनुपान दुग्ध व शहद।

विशेष—वैद्य अनुभाई का कथन है कि इसका मैने त्वग्रोगो मे तथा वीर्य-क्षीणता सवधी-विकारो मे यथेष्ट उपयोग किया है। रोगियो को पर्याप्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इसका आगे अन्वेषण आवश्यक है।

—वैद्याचार्य श्री उदयलाल जी महात्मा
देवगढ (राजस्थान)

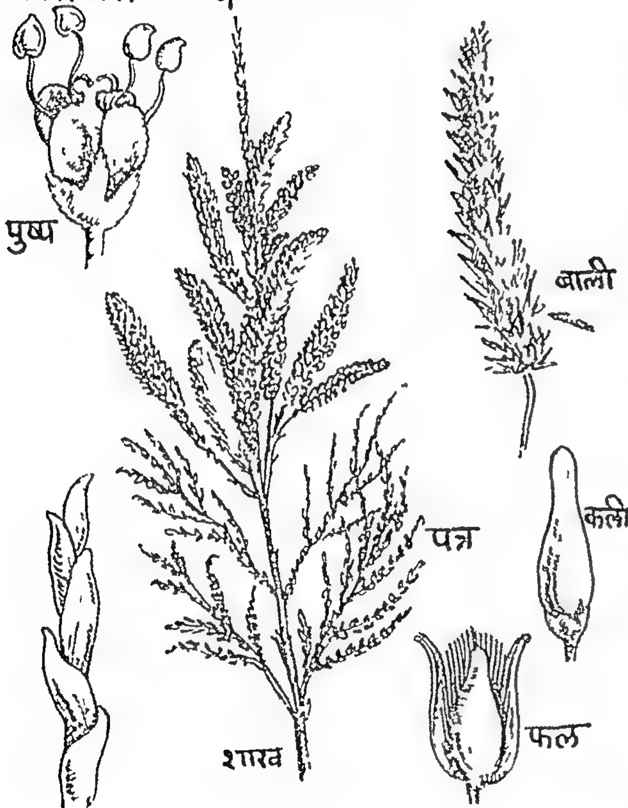
जोजन्मर-सरु (सरो) मे देखें। जोमान—दे० अजवायन। जौ—दे० जव। ज्योतिष्मति—दे० मालकागनी। झंडू—दे० गेदा। झमोरा—दे० झिमोरा। झउवा—दे० झाऊ। झडबेर—दे० बेर मे। झनझनिया—दे० झुनझुनिया। झरिष्क—दे० दारुहल्दी। झाटी—दे० कटसरैया।

झाऊ (Tamarix Gallica)

यह अपने झावुक-कुल (Tamariscinae) का प्रधान वृक्ष[1] है। यह झाडीदार या गुल्माकार छोटे कद का सदा हरा भरा वृक्ष ६ से १२ फुट तक ऊंचा, शाखाएं—अनेक, कोमल, सरल, या झुकी हुई, हरिताभ लाल या रक्ताभ बादामी रग की, पत्र-अति सूक्ष्म, लम्बे, पतले, सूक्ष्म चिन्ह युक्त, तेजस्वी,

[1] इस कुल के झाडीदार वृक्ष-सपुष्प, द्विबीज पर्ण विभक्तदल, अध स्थ बीज कोष, पत्र-एकान्तर, अवृन्त, अखंड, छोटे, पुष्प-छोटे व नियमित, पुष्प वाह्यकोष तथा आभ्यंतर-कोष के दल ४-५ या १० तक, पु केसर ५, स्त्री-केशर, गर्भाशय एक कोषी, फल-विदारी, अनेक बीजयुक्त होते है। (—द्र० गु० विज्ञान)

पुष्प–शरदऋतु–मे, शाखाग्र के गुच्छो मे, कुछ रक्ताभ-श्वेत वर्ण के ⅛ इंच व्यास के, फल–शीतकाल मे, वृक्ष की शाखाग्रो पर कीट जन्य ग्रन्थियो (माई) को ही फल कहा जाता है। ये तीन धारी वाले, हलके गुलावी या भूरे रग के चमकदार होते हे। नीचे नोट न० १ मे देखे।



नोट न १—इस वृक्ष की शाखाग्रो पर एक प्रकार की कीडे के दंश से या कोरने से चारों ओर हरिताभपीत या कपिश वर्ण की, वेडौल कुछ गोल आकृति की मटर से से लेकर रीठे के बराबर या माजूफल जैसी, भीतर से पोली ग्रन्थिया वन जाती हैं। ये ही इसके फल कहे जाते हैं। वडी झाऊ (जिसका प्रस्तुत प्रसग है) की इन ग्रंथियों को वडी माई, गुजराती में-पड़वास तथा अग्रेजी मे टेमेरिक्सगाल्स (T.n.i. gal) कहते हैं।

न २—इसकी शाखाओं से यवास शर्करा जैसी एक प्रकार की शर्करा भी निकलती है, जिसे झावुक शर्करा, गजगबीन (T Manna, Arabiamanna) कहते है। बहुत देर तक रखने से यह पिघल कर शहद जैसी हो जाती है। बंबई के बाजारो में यह गजगबीन शहद जैसा गाढ़ा पीले रंग का मिलता है। यह शर्करा भारतीय झाऊ के वृक्षों मे नहीं होती। पर्शिया, अरब आदि देशों के वृक्षों में (जहां इस वृक्ष की अधिक उपज है) यह विशेषत: पाई जाती है।

नं० ३—श्वेत और लाल भेद से या छोटी और वड़ी के भेद से झाऊ की दो जातियां हैं। इन दोनों के गुण धर्मो मे वहुत कुछ साम्य है।

श्वेत या छोटी झाऊ (जिसका प्रस्तुत प्रसंग है) के वृक्ष छोटे, पुष्प श्वेत तथा छाल का भीतरी भाग भी कुछ श्वेताभ लाल होता है, किन्तु इसके ग्रन्थि रूप फल या माई आकार मे वडी होती हैं।

लाल झाऊ (फरास) के वृक्ष बडे, पुष्प व भीतरी छाल लाल, किन्तु माई अपेक्षाकृत छोटी होती है। इसका वर्णन आगे के झाऊ लाल के प्रकरण मे देखिये। वनझाउ का वर्णन सरो (सरू) में देखे।

नं० ४—आयुर्वेद मे भाऊ विषयक कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त हुआ।

नं० ५—प्रस्तुत प्रसग की झाऊ के वृक्ष भारत मे नदियों के या समुद्र तटवर्ती प्रदेशो विशेषत: उत्तर प्रदेश के गगा जमुना के किनारे के मध्यवर्ती स्थानों मे पंजाव, सिंध, उत्तर गुजरात, बंगाल, विहार, मद्रास तथा अफगानिस्तान, पर्शिया, यूरोप, अफ्रीका आदि देशों में प्रचुरता से होते हैं।

नाम—

सं—झावुक, वहुग्रंथिया, अफला इ०। हि०-झाऊ झउवा, झाव, जेओरा, पिलर्ची इ०। म०-झाऊ। गु०—झाऊ, झाव, प्रास। व.—झाव, वन झाऊ। अं.-टेमेरिस्क (Tamarisk)। लै०—टेमरिस्क गैलिका टेम ट्रापी (T Tropi) टेम इंडिका (T- Indica)।

रासायनिक संघटन—

इसकी माई मे टेनिक एसिड प्रचुर प्रमाण मे होता है। समुद्र किनारे के वृक्षो की माई मे लवण भी रहता है। वृक्ष से प्राप्त होने वाली झावुक शर्करा मे इक्षुशर्करा ग्लुकोज, द्राक्षशर्करा, तथा श्वेतसार निर्यास (Dextrin) भी पाया जाता हे।

प्रयोज्यांग—

पत्र, माई शर्करा, और मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसका पचाङ्ग-लघु, रुक्ष, कषाय, कटु-विपाक, शीत-वीर्य, मृदुरेचक, कफनिःसारक, कफ-पित्त-शामक, स्तम्भक, ग्राही, रक्तस्तम्भन, रक्तशोधक, शोथहर, वेदनास्थापन, प्लीहा-सकोचकारक है।

पत्र—

(१) प्लीहावृद्धि तथा शोथ मे—पत्र का क्वाथ देते तथा पत्र का लेप करते हैं। तथा रोगी को झाऊ की लकडी के बने पात्र मे रखा हुआ जल पिलाते हैं। पत्र-चूर्ण ३॥ माशा समभाग मिश्री मिला प्लीहाविकार मे देते है।

(२) प्रदर तथा गुदभ्रंश के रोगियो को पत्र-क्वाथ मे अवगाहन कराते है।

(३) व्रण, अर्श, शीताद (Bleeding or Spongy gums) तथा दतपूय (पायोरिया) व प्रतिश्याय मे—पत्र-क्वाथ से व्रणो का प्रक्षालन करते तथा रक्तस्राव युक्त व्रणो पर शुष्क पत्र-चूर्ण को बुरकते हैं। व्रण तथा अर्शाकुरो मे पत्र की धूनी या पत्रो को उबालकर देते है। यह पत्रो की धूनी या बफारा फूटे हुए चेचक के फाले, क्षत, पूय-युक्त व्रणो को शीघ्र सुखा देता है, मस्सो की वेदना दूर होती है। शीताद या दतपूय मे पत्र क्वाथ से कुल्ले कराते है। प्रतिश्याय मे पत्तो का बफारा देते है।

(४) अनैच्छिक मूत्रस्राव पर—इसकी पत्ती १ तोला को जल मे पीस छान कर पिलाते रहने से तीसरे दिन से लाभ होने लगता तथा २१ दिन मे पेशाब स्वाभाविक तौर पर होने लगता है।

—श्री राजकिशोर सिंह वैद्यशास्त्री (जौनपुर)

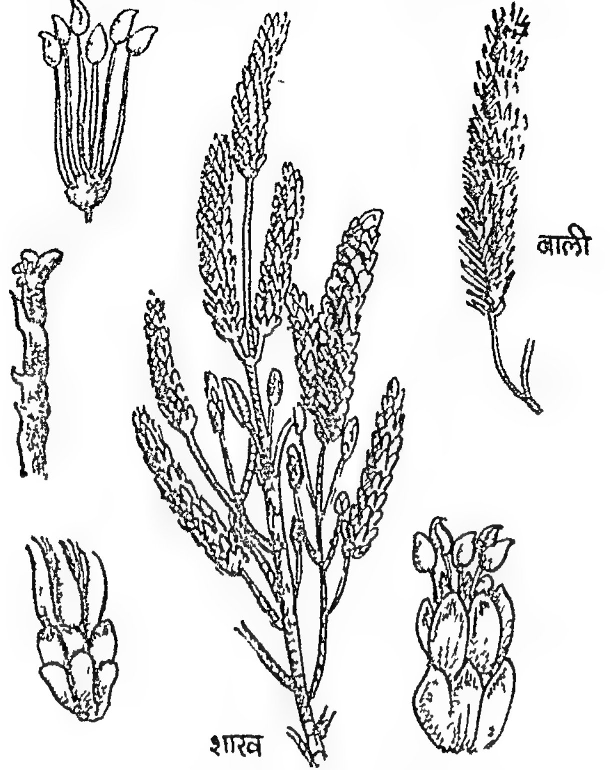
माई—

बडी माई (प्रस्तुत प्रसग की) तथा छोटी माई (लाल झाऊ की) दोनो तिक्त, शीतवीर्य, सग्राही, दोष-विलयन, रक्तस्तभक, लेखन, प्रमाथी, छेदन, दीपन, प्लीहा व यकृत को बलदायक है।

(५) शुक्र-दौर्बल्य, वीर्यस्राव पर—इसका चूर्ण,

झाऊलाल (फ़रास)

TAMARIX APHYLLA, KARST.



क्वाथ या फाट अपने कटुपौष्टिक एव ग्राही प्रभाव से उत्तम कार्य करता है। रक्तपित्त मे भी यह लाभ-कारी है।

(६) अतिसार—पित्तातिसार मे इसके चूर्ण को दिन मे ३ बार पानी के साथ देते है। इससे जीर्णातिसार, प्रवाहिका और सग्रहणी मे भी लाभ होता है।

(७) दत-विकार पर—चूर्ण का मजन करते रहने से दतपीडा, मसूढो की शिथिलता तथा गल-शुडी वृद्धि-(कौवे-घाटी की सूजन Vuvlitis) मे भी यथेष्ट लाभ होता है।

(८) योनिशैथिल्य पर—इसके चूर्ण की पोटली योनिमार्ग मे धारण कराते है। पोटली छोटी सी जामुन के आकार की बना, उसमे एक लम्बा डोरा बाधते हैं। है। डोरे से उसे आसानी से बाहर निकाल कर, पुन दूसरी पोटली धारण कराते है। ऐसा करने से गर्भाशय मे भी दृढता प्राप्त होती तथा योनिस्राव या श्वेत व

रक्त प्रदर मे भी विशेष लाभ होता है।

(९) खुजली, पामा, छाजन तथा सिर के जुंआ-नाशार्थ—इसके चूर्ण के साथ कबीला को तेल मे मिलाकर लगाते है। जू के नाशार्थ—झाऊ की छाल के क्वाथ से सिर को धोकर माई-चूर्ण लगाते है।

किसी चोट के लगने से रक्तस्राव हो, तो-इसके चूर्ण को बुरकने से शीघ्र स्राव बन्द हो जाता है।

(१०) शोथ-शूल युक्त अर्श पर—मरहम—माई-चूर्ण १ या २ ड्राम, अफीम आधा ड्राम इन दोनो को १ औंस वेसलीन या किसी भी दाह-शामक तिल-तैल आदि मे मिला, मरहम बना लगाते है। इससे गुद-चीर, गुदभ्र श मे भी लाभ होता है।

(११) प्लीहावृद्धि पर—माई १८ माशे, श्वेत-मिर्च, सबुल (सखिया), तगर और उशक-६-६ माशा लेकर प्रथम उशक को जगली प्याज के सिरके मे हलकर, शेष द्रव्यो का चूर्ण इसी सिरके मे मिलाकर १ टिकिया बना लें। मात्रा ८॥ माशा तक सिकजबीन के साथ देवे। प्लीहा का कडापन दूर होता है। इसे कुर्स कजमाजज कहते हैं— (यु. चि सा)

मूल और छाल—

(१२) कुष्ठ तथा शोथ पर—मूल का क्वाथ देते है। कुष्ठ-रोग मे यह क्वाथ जैतून-तैल के साथ बहुत दिनो तक सेवन कराते हैं।

(१३) पलित पर—इसकी ताजी जड को जौकुट कर, समभाग तिल-तैल तथा दोगुना जल मिला, मदाग्नि पर पका, तेल सिद्ध कर सिर पर श्वेत बाल काले होने के लिये लगाते है।

(१४) कुच-शैथिल्य पर—इसकी छाल के साथ अनार की छाल मिला, महीन पीसकर दूध मे मिला दिन मे दो बार स्तनो पर लेप करते हैं।

(१५) केशो के झड़ने पर तथा केश-वृद्धि के लिये—मूल की छाल और आमला दोनो को भागरा के रस मे पीस, पानी मिला कर सिर को धोते रहने से बालो का गिरना दूर हो केशवृद्धि होती तथा काले बाल पैदा होते है।

(१६) श्वेत प्रदर और गुदभ्र श रोगी को—इसके मूल और पत्र के क्वाथ मे बिठाते रहने से लाभ होता है।

(१७) अतिसार और प्रवाहिका पर—छाल का फाट या क्वाथ पिलाते हैं।

पंचाङ्ग—

इसके पचाङ्ग का क्वाथ ग्राही एव शीतवीर्य है। पचाग की भस्म मूत्रल है।

(१८) शुष्क कास तथा गले की शिथिलता पर—इसके पचाग का घनक्वाथ शहद के साथ या वैसे ही थोडा थोडा चटाते है।

(१९) दूषित व्रण तथा उपदश जन्य ग्र थियो पर—इसके घन क्वाथ का लेप करते है।

झाऊ-शर्करा (गजगबीन)—सम स्निग्ध-रूक्ष, आनुलोमिक, कफघ्न, लेखन, रेचन, प्रतिश्यायहर, स्वरशोधक श्वास-कासहर तथा मस्तिष्क-नशोधक है।

इसके सेवन से दस्त पतला होकर आसानी से निकल जाता है। आत्र मे कोई तकलीफ नही होती। बच्चो की कब्ज, पर यह विशेष दिया जाता है।

नोट—मात्रा—

क्वाथ—५-१० तो०। स्वरस—१-२ तो०।

चूर्ण—१ से ४ मा०। माई-चूर्ण—१ से ४ मा०।

झाऊ-शर्करा—३ मा० से १ या ६ तो० तक।

माई—अधिक मात्रा मे—आमाशय के लिये हानिकर है। हानि-निवारणार्थ शहद देते है।

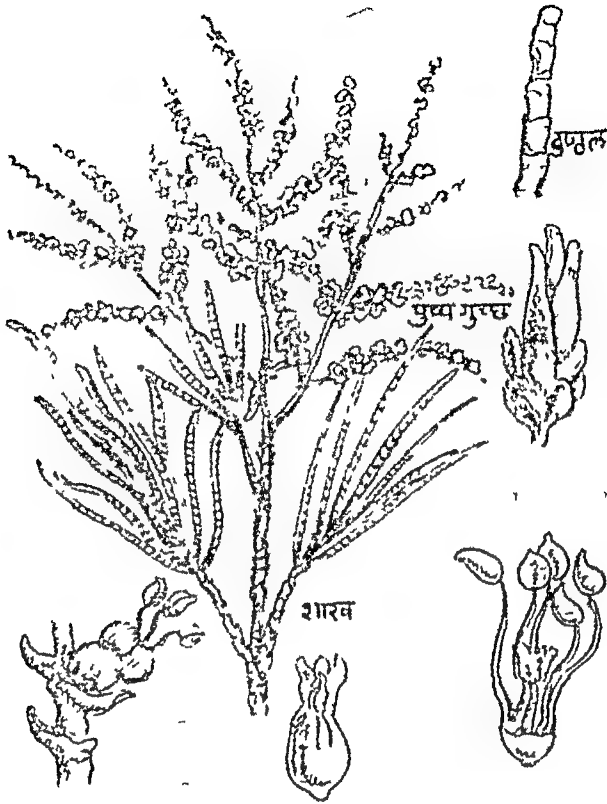
झाऊ लाल

(*TAMARIX DIOCA*)

यह उक्त झाऊ की ही जाति का एक बागी भेद है। इसके वृक्ष उक्त झाऊ से बडे, किंतु निम्न नोट नं० १ मे कहे गये महाझाऊ या फर्रास से कुछ छोटे होते हैं। इसकी छाल भीतर से लाल रग की, पत्र—लाल या बैंगनी वर्ण के, एकलिंग, विशिष्ट नलिकाकार, बन्द मजरी मे होते है।

इसकी माई (कीटगृह, ग्रन्थियां) उक्त झाऊ की माई की अपेक्षा छोटी, लगभग चने के बराबर, गोल, गठीली तथा पीताभ भूरे रग की होती हैं।

झाऊ लाल
TAMARIX DIOICA ROXB.



नोट नं० १—इस लाल झाऊ का ही एक भेद-विशेष—महाझाऊ होता है, जिसके वृक्ष पाईन या देवदार सदृश खूब ऊंचे लगभग ६० फीट तक होते हैं।

पत्र और छाल—उक्त लाल झाऊ के पत्र व छाल जैसे; पुष्प—भी वैसे ही लाल वर्ण के, किंतु उभयलिंगी व अपरिमित विच्छिन्न मंजरियों में लगते हैं।

इसे सं०—महा झावुक; हिं०—फर्रास, लाल झाऊ, लें०—टेमरिक्स एफिला (T Aphylla); टेम. आर्टिक्युलेटा (T. Articulata)।

इसकी भाई भी उक्त लाल झाऊ के भाई जैसे ही होती है। यह भारत में नदियों के किनारे तथा पंजाब व सिन्ध में बहुत होता है।

नाम—

सं०—रक्त झावुक। हिं०—लाल झाऊ, फाखा, थार, थारी। गु०—लाल झाव। बं०—रक्त झाऊ। लें०—टेमरिक्स डायोसा (T Dioca) टेम० ओरिएन्टेलिस (T Orientalis)।

यह हिमालय में २५०० फीट की ऊंचाई तक, तथा पंजाब, सिन्ध, उत्तर-प्रदेश, बंगाल, सुन्दरवन, गुजरात, आसाम, अफगानिस्तान और ब्रह्मदेश के शुष्क प्रदेशों में बहुत होता है।

इसका रासायनिक संघटन उक्त झाऊ के जैसा ही है।

इसके गुणधर्म व प्रयोग सब झाऊ के समान ही है।

झाड की हल्दी—दे०—दारु हल्दी में।

झामरबेल (Ipomoea Tridentata)

त्रिवृत कुल (Convolvulaceae) की यह लता बहुत छोटी व पतली, पत्र—बहुत छोटे, पुष्प—पीले रंग के, फल—गोल, चिकने, चमकीले, ४ बीज वाले होते हैं।

यह वर्षाकाल में, पुरानी दीवालों और पहाडों पर पैदा होती है। यह प्रसारिणी की ही एक छोटी जाति विशेष है।

नाम—

झामर वेल, टोपरा वेल यह इसके कच्छी भाषा के नाम हैं। गुजराती में—भीत गरियो। लें०—आइपोमिया ट्रायडेंटाटा।

गुण धर्म व प्रयोग—

ग्राही, पौष्टिक, मृदुसारक, रक्त-शोधक है। इसमे ग्राही और सारक दोनों परस्पर विरोधी गुण एक साथ पाये जाते हैं। रक्तातिसार तथा विबन्ध या कब्जी दोनों के निवारणार्थ इसका उपयोग किया जाता है।

गंधिवात, अर्श तथा मूत्र-सम्बन्धी विकारों पर भी इसका उपयोग होता है।

रक्तातिसार पर इसका ताजा रस या पंचांग का चूर्ण ३ मा० की मात्रा में देते हैं।

चर्म-रोगों पर इसके कल्क से सिद्ध किये हुए तैल को

लगाते हैं। सधिवात पर भी यह तैल मालिश करते है। अर्श तथा मूत्र सम्बन्धी विकारो पर इस का चूर्ण जल के साथ देते हैं।

झार मरिच–दे०–काला दाना। झिझोरा (झिझेरी)–दे०–कचनार भेद। झिंटी (लाल)–दे०–कटसरैया मे (लाल कटसरैया)। झिंटी नील–दे०–कटसरैया मे (नीली कटसरैया) झिल (झिल्ली)–दे०–नील मे। झीपटा–दे० –चिरपोटी।

झुनझुनिया (Crotalaria Verrucosa)

गुडूच्यादि वर्ग एव शिम्बी-कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इसके वर्षायु सरल या वक्र क्षुप २-४ फुट तक ऊ चे, पत्र—कोमल, पतले, अण्डाकार, अग्रभाग मे कुछ मोटे, लगभग ४–६ इञ्च लम्बे, पुष्प–लम्बे पुष्प-दण्ड मे पीत, श्वेत या हलके नील वर्ण के १२ से २० तक, पुष्प-घनसन्निवद्ध, फली–सन की फली जैसी १–१½ इञ्च लम्बी, रोमश, १०-१२ काले बीजयुक्त होती है। पुष्प व फली शीतकाल मे लगती हे।

नोट (न० १)—शुष्क फली को हिलाने से झुन-झुन शब्द होने से इसे झुनझुनियां हिन्दी मे, तथा इसके क्षुप सन (पटसन) के क्षुप जैसे होने से सस्कृत में–शणसमाकृति कहते हैं।

(नं० २)—इस वनौषधि के छोटे-वडे भेद से कई प्रकार हैं। जिनके नाम लेटिन में—C Sericea, C Prostrata C Retusa, C Striata, C Angulosa आदि हैं। इन सबके स्वरूप और गुणधर्म प्रायः एक समान हैं।

(न० ३)—चरक के वमनोपग, मूलिनी और सुश्रुत के ऊर्ध्वभागहर गणों मे इसकी गणना है।

इसके क्षुप भारत के जगलो या उष्ण प्रदेशो मे विशेषत वगाल और दक्षिण भारत मे अधिक पाये जाते है।

ध्यान रहे यह सन (पटसन) का ही एक जगली भेद है। सन का वर्णन यथास्थान आगे देखे।

नाम—

सं०–शणपुष्पी (सन के पुष्प जैसे पुष्प होने से), घटारवा, शण समाकृति इ०। हि०–झुनझुनिया, झनझनिया, जगली सन, सुनक इ०। म०–खुलखुला, घागरी, तिरम। गु०–घुघरो। व०–वनशन। ले०–क्रोटेलेरिया वेरूकोसा।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, मूल, बीज (फली), पुष्प।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्ण वीर्य तथा वामक, कफपित्त शामक, कफ-सशोधक, कुष्ठघ्न है। अपस्मार, भूतबाधा, कठरोग, हिक्का, श्वास आदि मे उपयोगी है।

झुनझुनियां
CROTALARIA VERRUCOSA LINN



पत्र—ग्राही, सकोचक, उष्ण, लालाप्रसेक-शमन, पित्त-शामक, रक्तशोधक व कुष्ठघ्न है।

१. कुष्ठ, गीली खुजली, कण्डू, त्वग्दाह, पैत्तिक-शोथ, झाई, पीली फुन्सियो पर—पत्तियो को पीस कर

लेप, पुल्टिस आदि लगाते हैं, तथा पत्र-रस का सेवन भी कराते है।

२ शरीर मे बन्दूक के छर्रे आदि बाह्य शल्य के धुस जाने पर—पत्तो को पीस कर लेप करते हैं।

३. मुख व कण्ठ के रोगो पर—पत्र-क्वाथ से कुल्ले कराते हैं।

४ नाक मे पीनस या व्रण हो, तो पत्र-रस का नस्य कराते हैं।

फल और बीज—

५ अपस्मार पर बीज सहित फली को जौकुट कर क्वाथ बनाकर पिलाते, तथा इसी चूर्ण की धूनी देते हैं।

६ कण्ठरोध पर—फली के शुष्क चूर्ण को चिलम मे भरकर धूम्रपान कराते हैं। शीघ्र ही कफजन्य कण्ठावरोध दूर होता है। यदि रोगी धूम्रपान मे असमर्थ हो, तो अन्य व्यक्ति इसके धूम्र को अपने मुख मे भरकर रोगी के मुख व नाक मे धूम्र को छोडने से भी लाभ होता है।

७. भूतबाधा पर—फली की धूनी देते हैं।

(व० गुणादर्श)

८ व्रण पाचनार्थ—बीजो को गोमूत्र मे पीसकर लेप करने से फोड़े शीघ्र पक कर फूट जाते है।

मूल—वामक है। वमनार्थ इसका प्रयोग करते हैं। कुष्ठ पर भी यह लाभकारी है।

पुष्प—हृद्य, तथा रक्तस्राव-रोधक है। हृद्रोग तथा रक्तपित्त मे यह उपयोगी है।

नोट—मात्रा-मूल तथा पत्र-चूर्ण-१ से ३ मा० तक। पत्र स्वरस—आधे से १ तो० तक।

टंकारी (*PHYSALIS PERUVIANA*)

गुडूच्यादिवर्ग एव काकमाची या कंटकारी-कुल (Solanaceae) के इसके वर्षायु क्षुप ६-१८ इंच ऊंचे कोमल रोमयुक्त, पत्र-अण्डाकार, दन्तुर २ इंच लम्बे, पुष्प-पीत या गुलाबी या कई रग के, कुछ घटाकृति, पुष्प-वृन्त-कुछ लम्बा, अवनत पीतवर्ण का, फल—१॥ इंच लम्बे, आधा इंच चौडे, लाल रंग के छोटे छोटे-गोल, एव झूमको मे आते हैं। फल-कुछ खटमीठे, रुचिकर, अनेक बीजयुक्त होते है। फूल व फल शीतकाल मे आते है।

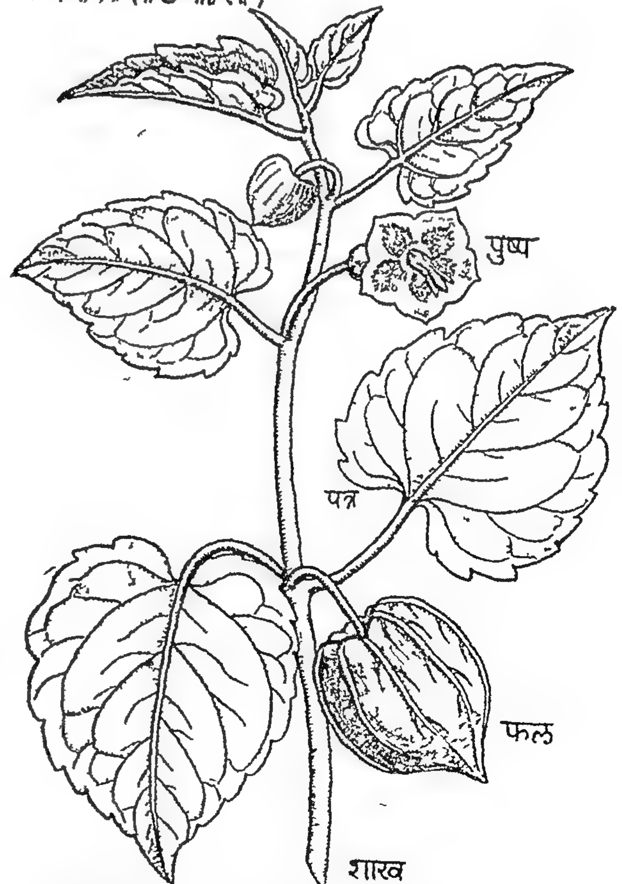
वर्षा के प्रारंभ काल मे इसके पौधे भारत मे प्राय सर्वत्र, विशेषत बंगाल, कोकण आदि प्रान्तो मे जगल, पहाडी भूमि तथा मैदानो मे भी पैदा होते हे। कही कही ये बोये भी जाते हैं।

नोट—यह बूटी काकनज की एक उत्तम प्रतिनिधि होने से इसका कुछ संक्षिप्त उल्लेख काकनज के प्रकरण मे (भाग २ मे) भी किया गया है।

इस बूटी का उल्लेख भावप्रकाश निघण्टु को छोड़, अन्य निघण्टु ग्रन्थो मे नही पाया जाता। छोटी अरनी को भी कही कही भाषा मे टकारी टेकारी (जो सस्कृत के तर्कारी शब्द का अपभ्रंश मालूम देता है) कहते है, उससे यह भिन्न है।

नाम—

सं०-टकारी, लक्ष्मीप्रिया।



PHYSALIS PERUVIANA LINN

हिं०—टंकारी, टिपारी, तुलातिपति, देशी काकनज।
म०—चिरवोट, फोपटी, तानमोरी।
गु०—पीपरी, पर्पोटी। बं०—टेपाटी, बन टेपारी।
अं०—केप गुजबेरी (Cape goose berry)।
ले०—फिसेलिस पेरुविएना, फि.मिनिमा (P. Minima)

प्रयोज्याग—फल, पचाङ्ग, पत्र, मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, वात कफ नासक, दीपक, पौष्टिक, शोथ, उदर रोग आदि पर उपयोगी है।

फल—अत्य, मूत्रल, विरेचक है। सुजाक मे-फलो का सेवन कराते हैं। मलावष्टम्भ मे—फलो का पाक बनाकर खिलाते है।

पंचाङ्ग—

स्तनशैथिल्य पर—इसके पचाग को चावल के धोवन मे पीसकर लेप करते हैं।

पीठ पर हुए विसर्प पर—पचाग का लेप करते हैं।

बालको के उदर विकार पर—पचाग के क्वाथ की वस्ति देते है।

प्लीहा वृद्धि पर—टकारि आदि लेप—

इसके ताजे पचाग चूर्ण के साथ-कूठ मूल, हीग, हरड, पिप्पली, काला नमक, सेंधव नमक, जवाखार, का चूर्ण मिला एकत्र घृत मे घोटकर प्लीहा पर लेप व मालिश करते हैं।

पत्र—उदर कृमि एव आत्र विकार पर—पत्र रस का सेवन कराते है।

शोथ पर—पत्तो को पीसकर गरम कर पुल्टिस बनाकर बाधते है।

मूल—तमक श्वास पर—मूल के चूर्ण के साथ सुहागा फुलाया हुआ मिला दोनो को खरलकर शहद से चटाते हैं। श्वासावरोध कम होकर कफ सरलता से निकल जाता है।

नोट—मात्रा-३ से ६ मा० तक।

टगर पादुका (*LIMNANTHEMUM CRISTATUM*)

भूनिम्ब कुल (Gentianaceae) की इस जलोत्पन्न लता की गाठ से मूल निकलते हे। पत्र—अण्डाकार १ से ३ इ च व्यास के, कुमुद जैसे, कितु आकार मे कुछ छोटे, पत्र-वृन्त १॥ इ च लम्बा, पत्र का ऊपरी पृष्ठ भाग चिकना निम्न भाग स्पष्ट शिराओ से युक्त, पुष्प—श्वेत वर्ण के, फल—गोलाकार, १ या २ गोल-गोल १$\frac{1}{3}$ इ च व्यास के बीजो मे युक्त होते हैं। फूल और फल वर्षा काल मे आते हैं।

नाम-

स-कालानुसारिवा, हिं०—टगरपादुका। ब०—चादमाला। ले०-लिमनमथेमम क्रिस्टेटम।

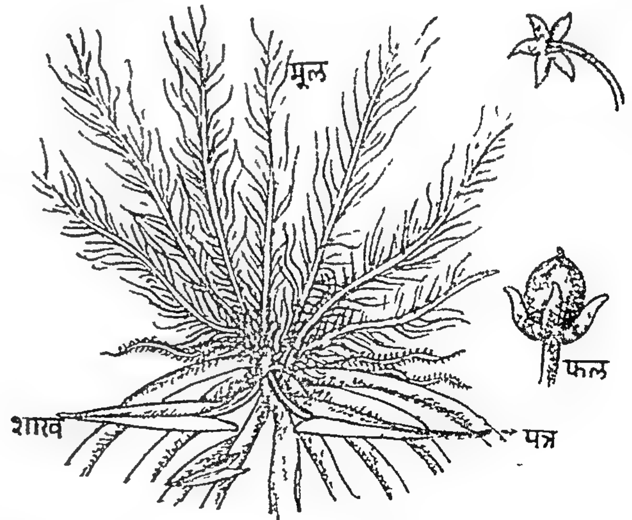
गुण धर्म व प्रयोग—

यह ज्वर तथा पाडु या कामला रोग मे उपयोगी है। अनेक वैद्यकीय एव हकीमी प्रयोगो मे यह व्यवहृत होती है। कहा जाता हे कि दूध देने वाली गाय को इसे खिलाने से दूध की खूब वृद्धि होती हे।

नोट—कोई कोई इसे ही 'तगर' मानते है। किन्तु तगर इससे भिन्न है। इसी बूटी की एक जाति विशेष जिसे हिन्दी या पजाबी मे 'कुरु' तथा लेटिन मे—Limnanthemum Nymphaeoides कहते है, उसके ताजे पत्ते नियतकालिक शिरःशूल मे उपयोगी हैं।

टगरपादुका (चाँदमाला)

LIMNANTHEMUM CRISTATUM GRISEB.





टमाटर (*LYCOPERSICUM ESCULENTUM*)

कटकारी-कुल (Solanaceae) के इस सर्वप्रसिद्ध-वर्षायु क्षुप के पौधे खड़े बैंगन के क्षुप जैसे अनेक शाखा-युक्त २-५ फुट तक ऊंचे, पत्र-अन्तर पर, बैंगन-पत्र जैसे किन्तु कुछ छोटे होते है। पुष्पबैंगन के पुष्प जैसे, फल-छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े कहीं कहीं एक पौंड वजन के गोल, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर सुन्दर चमकदार लाल रंग के कोई पीले रंग के होते हे। कच्ची दशा मे खट्टे, कसैले तथा पकने पर मधुराम्ल स्वाद के होते है।



नोट-(अ)-यह वास्तव मे अमेरिका केमेक्सिको प्रान्त का निवासी है। 'टोमाटो' यह नाम इसका उसी प्रान्त का है। वहां से प्रथम इसका प्रचार युरोप में हुआ, फिर यह भारत में आया। यह एक पोषक आहार (फल और तरकारी दोनों रूपों मे) होने से वर्तमान में प्रायः सर्वत्र (सब देशों में) बोया जाता है।

(आ) ई० स० १८२५ तक इसकी खेती भारत मे विशेष नहीं होती थी। यह दीखने में मांस जैसा तथा इसका गूदा भी वैसा ही लुचलुचा होने से, भारत में प्रथम यह एक निषिद्ध, हेय, घृणास्पद पदार्थ माना जाता था। अब भी कुछ लोग इसे ऐसा ही मानते हैं। शेष सब लोग सराहना करते हुए, इसे अकेला या साग सब्जी के साथ पकाकर या सलाद, चटनी आदि के रूप मे सेवन करते हैं। रोगियों को इसका यूष (सूप) बनाकर दिया जाता है।

(इ) इसके कई भेद एवं जातियां है। जिनमें छोटे २ बेडौल, भद्दे से फल या टमाटर लगते है, उनकी अपेक्षा सुन्दर सुडौल आकार के टमाटर वाली जातियां श्रेष्ठ होती है। इनमें बाल्टिमोर (Baltimore) बोनिबेस्ट (Bonny Best) पीच ब्लो (Peach Blow), मेग्नम बोनम (Magmum Bonum) आदि नाम की जातियां बंबई प्रान्त में अधिक बोई जाती है। एक पौंड्राजा (Pondraja) नामक टमाटर होता है, जो वजन मे एक पौंड तक होता है, तथा पकते समय प्रायः फट जाया करता है।

(ई) जिस खेत की भूमि मे सुहागे का अंश रहता है, उसमे टमाटर की फसल अच्छी होती है। यदि किसी खेत में इसकी फसल छितरी हुई होवे, फलने पर फल टेढ़े मेढ़े लगें, तथा अच्छी ललाई लेकर फल न पकें, या पकने पर फट जावें, तब समझना चाहिए कि इस भूमि मे सुहागातत्व (बेरोन) की कमी है। टमाटर के पौधों पर सुहागे का अंश पहुंचना आवश्यक है। इसके लिये २५ सेर पानी में १ छटांक सुहागा पीस कर घोल दें। इस हिसाब से एक एकड़ भूमि में लगभग ८ मन पानी और उसमें १२ छटाक से १ सेर तक सुहागा घोलना पड़ेगा। एक बार टमाटर बोने से पहले भूमि मे छिड़काव कर दें। फिर १ महीने बाद पौधों पर छिड़काव करें। यदि चाहें तो एक मास बाद पुनः छिड़काव करें। फसल अच्छी होगी और वे टमाटर रुचिकर, पाचक एवं शुद्ध रक्त वर्धक होंगे। (सुधानिधि)

नाम—

सं०—रक्तशाक, विदेशी शाक। हिं०—टमाटर विलायती बेगन। म०—बेलवांगी, भेंदा, टमाटा। गु०—टमाटर। बं०—बिलाती बेगुन, बेलाथी बेगुन। अं०—टोमाटो

(Tomato) लव एपल(Love apple) ले०-लायकोपरसीकम एस्कुलेटम, सोलेनम लायको परसीकम [Solanum Lycopersicum]।

रासायनिक सघटन—

ताजे उत्तम पके टमाटर मे प्रतिशत पानी ९२ ८, कार्वोहाइड्रेट ४ ५, प्रोटीन १ ९, खनिजपदार्थ ० ७, वसा ४ ५, कैल्सियम ० ०२, फास्फोरस ० ०४, लोहा २ ४ मि ग्रा , विटामिन ए ३२०% मि ग्राम, विटमिन वी ४० प्रतिशत मि ग्रा , वि सी ३२ २० प्रतिशत मि ग्रा , साइट्रिक एसिड प्रचुर मात्रा मे, आक्जेलिक तथा मैलिक एसिड नाम मात्र पाये जाते है। कच्चे टमाटर मे विटा वी २३ मि ग्रा , विटा सी ३१ ३ मि ग्रा । टमाटर के छिलके व छिलके के पास वाले गूदे मे 'ए' विटा वहुत अधिक होता हे।

गुणधर्म व प्रयोग—

अम्ल, मधुर, शीतवीर्य, विपाक मे प्राय मधुर, रुचिकर, दीपन, पाचक, सारक, रक्तशोधक, क्लमनाशक अग्निमाद्य, मधुमेह, अतिसार, मेदोवृद्धि, उदर रोग, रक्तपित्त, आन्त्रपुच्छदाह (अपेडिसाइटिस), वेरीवेरी, गठिया, सूखारोग, हृद्दौर्वल्य, नक्ताध्य आदि मे उपयोगी हैं।

(१) रक्तविकार, रक्तपित्त, रतोंधी, मधुमेह व वालको की निर्वलता पर—अच्छे लाल टमाटर का मधुर रस (ध्यान रहे टमाटर सदव वडी जाति का पका हुआ मधुर रस प्रधान चुन कर लेना चाहिये) प्रात और रात्रि के समय, २ तो० तक, थोडे से ताजे व गुनगुने पानी मे मिलाकर पिलाते रहने से, तथा भोजन मे नमक की मात्रा कम कर देने से त्वचा शुष्क होकर खुजली आना, लाल २ चट्टे हो जाना, फोड़ा, फुन्सी, आदि मे लाभ होता है। खुजली मे इसके १ तो० रस मे, नारियल तैल २ तो मिलाकर मालिश करे तथा सुखोष्ण जल से स्नान करे। मसूढ़े शिथिल होकर दाँतो से रक्तस्राव होता हो तथा अन्य रक्तपित्त के विकारो पर यह रस २॥ से ५ तोला तक दिन मे ३ वार पिलाते है।

छोटे वालको को यह रस थोडी मात्रा मे (१ छोटा चम्मच) दिन मे २–३ वार पिलाते रहने से उन्हे उक्त स्कर्वी आदि रक्त-विकार नही होने पाते उनके दात वडी आसानी से निकलते । तथा वे निरोगी व वलवान होते है। उनका सूखा रोग दूर होता है। किंतु उन्हे अधिक घी शक्कर नही खिलाना चाहिये । टमाटर का ताजा रस ही प्रयोग मे लाना चाहिये।

मधुमेही को भी, इसके रस का तथा इसके शाक का नियमित सेवन करते रहने से रक्त की शुद्धि एव वृद्धि होकर मूत्र मे शक्कर की मात्रा कम होजाती है।

इसी प्रकार रतौंधी (नक्तान्ध्य) वाले को भी उक्त रसका सेवन प्रात साय करते रहने से लाभ होता है।

(२) ज्वर पर—इसका रस सेवन कराने से, तृष्णा शात होती तथा ज्वर का तापाश भी कम होता है। वैसे ही ज्वर प्रकोपजन्य रक्तान्तर्गत हानिकारक पदार्थो की वृद्धि शीघ्र ही दूर होकर रोगी को शाति प्राप्त होती है।

मलेरिया ज्वर के वाद, पाचक रसो की कमी प्राय होती है। तव टमाटर मूली व अदरख काट कर नीवू-रस मिला रोटी के साथ खिलावे।

(३) यक्ष्मा मे–इसका रस ८ तो० तक काच के ग्लास मे डालकर उसमे १। तो० कॉडलिवर आयल मिलाकर, भोजनोपरान्त पिलाते रहने से कुछ सप्ताहो मे स्वस्थता प्राप्त होती है। –श्री हरकृष्ण जी सहगल

(४) मुख के रोग—विशेषत मुख मे छाले तथा मसूढो से रक्तस्राव होता हो, तो इसके रस को पानी मे मिला कुल्ले कराते है।

मुख के ऊपर हुए काले दागो पर–टमाटर के चौडे टुकडे काटकर, उन दागो पर रख कर बाधते रहने से वे शीघ्र ही मिट जाते हैं।

जिव्हा के मैलेपन या सफेदी छा जाने पर–१ या २ टमाटर सेधानमक के साथ सेवन कराते है।

नाभि-स्खलन (धरण का डिगना) –फल के दो टुकडे कर, वीच का हिस्सा निकाल, रिक्त स्थान मे भूना-सुहागा ९ रत्ती भर, आग पर गरम कर चूसने से हटी नाभि ठिकाने पर आ जाती है।

—प०चिरजीलाल जी शर्मा

(धन्वन्तरि से)

(६) सगहणी व अतिसार पर—फल को बीच से चीर कर उसमे कुटज-चूर्ण १ मा० भर आग पर तपा कर, ठंडा कर खिलावें। लाभ होता है।

(७) हृदय की धड़कन बढ़ जाने पर—इसके दो फलो का रस पानी मे मिला, उसमे अर्जुन-छाल चूर्ण १ मा० डाल कर पिलावे।

(८) रक्तार्श पर—फल को चीर कर उसमे सेंधा-नमक भर कर खिलाते है। आध पाव इसके रस मे भूना जीरा, सोंठ, काला नमक-चूर्ण ३-३ मा० मिला, प्रातः साय सेवन करें। साथ में मूली, गाजर, बथुए का खाना भी हितकर है।

(९) सिर के फोडो व फुसियो पर—इसके रसमे कपूर व नारियल का तैल मिला लगाते है।

सिर की रूखी भूमी पर—इसके रस मे चीनी मिलाकर सिर पर मलते हैं। —पं०चिरजी लाल जी

(१०) अजीर्ण पर—फल को कुछ सेंक कर, सेंधा नमक व काली मिर्च लगा कर खिलावे। अथवा-

एक फल का रस, २॥तो० गरम जल मे मिला कर उसमे ५ रत्ती खाने का सोडा—मिलाकर पिलावे।

(११) हृल्लास पर—फल का रस १ भाग, चीनी का शर्बत ४ भाग एकत्र मिला, उसमे थोडा लोग व काली-मिर्च का चूर्ण डाल कर सेवन करने से शीघ्र लाभ होता व जी मिचलाना, उल्टी, तथा प्यास की शांति होती है।

(१२) कफवृद्धि, मलबद्धता तथा गठियावात पर—भोजन से पूर्व टमाटर का सेवन सेंधानमक और अदरख के साथ कराते है। आन्त्रपुच्छदाह पर भी इसका सेवन इसी प्रकार कराया जाता है। ग्रीष्मऋतु मे इसके शर्बत का सेवन अति हितकारी होता है।

नोट—(अ) मात्रा—कम से कम आधा से २ ड्राम तथा अधिक से अधिक ७ तोले तक। ३ मास के शिशु को १ २ चम्मच इसका शुष्क किया हुआ रस (यह शुष्क रस १४ से २० मास तक विकृत नही होता) मात्रा-१ग्राम से १५ ग्रेन तक।

(आ) खुले हुए मैदानी खेतों मे, सूर्य की काफी रोशनी में पके हुए टमाटरों मे, विटामिनों की मात्रा विशेष वृद्धिगत हो जाती है। अतः ये अधिक गुणकारी होते हैं।

इसमे पाये जाने वाले विटामिन्स मे यह विशेषता है, कि अन्य पदार्थों के विटामिन्स के समान, ये अग्नि के ताप से (६० प्रतिशत की उष्णता पर भी) नष्ट नहीं होते, तथा बहुत दिनों तक विकृत भी नही होते। जो विटामिन्स ताजे टमाटर मे होते हैं वे ही सूखे हुए या टिब्बों मे बन्द या अचार, मुरब्बे आदि के रूप मे सुरक्षित रखे हुए टमाटरों में भी पाये जाते है।

(इ) पांडु रोग मे भी इसका सेवन लाभदायक है। कारण यह है कि इसमे लौह का प्रमाण दुग्ध से दूना तथा अण्डे की श्वेतता से पंचगुना अधिक होता है। जो काम मण्डूर व स्वर्ण माक्षिक यकृत मे पहुँच कर करते हैं, उन्हे ही यह टमाटर का लोह सम्पन्न करता है। पाडु रोगी को इसके १० तोले रस मे काला नमक ३ माशा मिला प्रातःसायं पिलाते हैं।

इसके खनिज सार रक्तशोधक है। रक्तनालियों मे एकत्रित यूरिया को दूर करते तथा रक्त की अम्लता से उत्पन्न विष से बचाते हैं। यही यूरिया का एकत्रित होना अमेरिकन वैज्ञानिकों के मतानुसार रोग-क्षमता को कम करता तथा शीघ्र वृद्धावस्था को भी करता है। इसी यूरिया के जमने से गठिया भी हो जाता है।

(ई) किन्तु ध्यान रहे, टमाटर मे सायट्रिक एसिड, मलिक एसिड तथा अन्य क्षार द्रव्य होने से, जिस व्यक्ति को यूरिक एसिड जन्य गठिया (सधिवात) हो उसके लिए यह हितप्रद नही है।

वात या वातपित्त प्रधान व्यक्तियों के लिए भी इसका सेवन हानिप्रद है। खुजली पैदा कर देता है। ऐसे व्यक्तियों को इसे वैसे भी नहीं खाना चाहिए तथा इसे बेसन के साथ मिलाकर तेल मे छौंक कर तो कदापि नही खाना चाहिए।

टमाटर स्टार्च का विरोधी है। चावल या रोटी, आलू आदि स्टार्च प्रधान द्रव्यों के साथ इसका खाना, विरोधी-भोजन है। इस प्रकार इसे खाने से विशेषत जिनकी जठराग्नि तीव्र नही है, उन्हे अजीर्ण पैदा कर देता है। तथा यह अपनी अम्लता से आमाशय के अधोमुख को कुछ संकुचितकर देता है। जिससे उदरस्थ भोजन आमाशय में ही पड़ा रह जाता और खट्टा होकर पित्त की वृद्धि करता है।

यह भी ध्यान रहे—कि इसके प्रतिदिन अधिक मात्रा मे सेवन से, धातु विकृत हो जाती व वीर्य पतला पड जाता है। अग्नि माद्य कर अर्शविकार को बढाता है।

(उ) जहां तक हो सके तरकारी (शाक) के रूप में

इसे बहुत कम खाना चाहिए, क्योंकि इसके सत्वांश में न्यूनता आ जाती है। फल के रूप मे या सलादि चटनी आदि के रूप मे खाना लाभ दायक होता है। पेय के रूप मे अर्थात् टमाटरो को थोडे घृत मे छोंककर पानी डालकर रस निकाल, उसमे थोडा गुड या चीनी मिलाकर पीना भी लाभप्रद है।

विशिष्ट योग—

(१) टमाटरासव—

५ सेर उत्तम टमाटर लाकर, शुद्ध जल से धोकर, चीनी मिट्टी के पात्र मे उन्हे खूब मसल कर, उसमे ४ गुना जल, २॥ सेर गुड, तथा दाख व धाय के फूल ६४ ६४ तोला मिला दे। फिर प्रक्षेपार्थ सोठ, मिर्च, पीपल, इलायची, दालचीनी, तेज-पात, मौथा, चित्रक, वाय-विडग, श्वेतचन्दन, धनिया, लौग, तगर, नागकेशर, जाय-फल, हल्दी, दोनो जीरा, राई, व काला जीरा प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोला मिला, पात्र का मुख सन्धान कर लग-भग (७ से ११ दिन) सुरक्षित रक्खे। फिर वस्त्र से छानकर उसमे सेधव, हीग व कालीमिरच का चूर्ण यथा रुचि मिला वोतलो मे भर रक्खे।

इसे थोडी-थोडी मात्रा मे (१ या २ तोला तक) सेवन करने से नष्ट हुई अग्नि तीव्र हो उठती है, शुद्ध डकारे आती उत्साह वृद्धि होती, मलमूत्र का ठीक उत्सर्ग होता मुख-शुद्धि व स्वर शुद्धि होती है, विटामिन सी की कमी से उत्पन्न स्कर्वी-रक्तपित्त, दतरोग, पाडुता, अल्परक्तता हृल्लास, वमन, दुर्वलता आदि दूर होकर स्वास्थ्य लाभ होता है। —वैद्य मयाराम सुन्दर जी जैतपुर (सुधानिधि)

(आरोग्य-सिन्धु गुजराती मासिक से सुधानिधि मे उद्धृत प्रयोग-प्रेषक के सस्कृत श्लोको का उक्त अनुवाद मात्र हमने यहा कर दिया है—(कृ प्र त्रि)

(२) टमाटर का कल्प-प्रयोग—टमाटर, गाजर व अमरूद के महीन कतरे हुए टुकडो पर, थोडे पानी मे १०-१२ घटे भिगोकर वढिया फुलाई हुई किशमिश को फैलाकर, ऊपर से २-४ चम्मच दही या क्रीम डालकर, वहुत थोडा नमक बुरक देवे। कुछ हरी धनिया की पत्ती और महीन कटी हुई अदरख भी छिडक दे, और अधिक स्वाद चाहे तो भुने हुए जीरे का महीन चूर्ण २-३ चुटकी बुरक दे। इस सलाद (कचूमर) को खब चबा-चबा कर खावें और थोडा मठा पी लेवें। भूख के अनु-सार २-४ वार इसी आहार पर रहे। अन्न न खायें। इससे शरीर का शोधन (छोटा सा कायाकल्प) हो जाता है। पेट साफ होता है। ७ दिन तक केवल इसे ही सेवन करने और गाय के दूध का जमाया हुआ दही का मठा पीने मे पाचन सम्बन्धी रोग दूर होते, क्षुधावृद्धि होती एव यकृत ठीक से काम करने लगता है।

—श्री इन्द्रप्रसाद गुप्त सेवक
(श्री वेंकटेश्वर समाचार से)

(३) टमाटर की चटनी—अच्छे पके लाल टमाटरो को टुकडे कर उवाल ले, तथा रस निचोड़ लें। इस रस को मद आच पर पकावे, गाढा हो जाने पर, १ सेर रस के लिये १ पाव सिरका, आधा सेर महीन कतरा हुआ अद्रक, ५ तो० शक्कर, १ पाव किशमिश, ½ सेर कतरा वादाम, ½ पाव लाल मिर्चे, और २॥ तोला नमक (मिर्च और नमक को खूब महीन चूर्ण कर) मिला दे। और इसे १ मास तक धूप मे रखे यह उत्तम चटनी तैयार हो जाती है, जो अधिक दिन तकरखने पर भी नही विगडती।

चटनी न० २—पके लाल टमाटर आध सेर लेकर टुकडे कर उसमे काला नमक १ तोला सेधा या सादा नमक २ तोला कालीमिर्च २ मा, लोग १ मा और जीरा भुना २ तो चूर्ण कर मिलादे। यह चटनी रखी नही जा सकती, वनाने के वाद २-३ दिन मे इसे समाप्त कर देना चाहिये।

(४) चूर्ण गोली टमाटर—इसके रस मे पाचो नमक, त्रिकुट, जीरा, अजवायन, अजमोद, नौसादर १-१ तो. धनिया, अमल वेन, सुहागे का फूला २-२ तो का चूर्ण और हीग भुनी ६ मा मिला, खरल कर वेर जैसी गोलिया वना ले। यह पाचक, स्वादिष्ट, व क्षुधावर्धक है।

(५) टमाटर का रायता—वैसे तो दही और टमा-टर का रायता बहुत सुन्दर और स्वादिष्ट होता है। किन्तु और भी उत्तम रायता बनाना हो, तो अच्छा ताजा लाल कतरा हुआ टमाटर, पालक शाक का पत्ता, अद-रख, पानगोभी, गाजर, चुकन्दर तथा प्याज (इसे नही भी लें तो कोई हर्ज नही) सब की महीन कतरन को

एकत्र मिला, ऊपर से भुना पीसा हुआ जीरा, नमक और नीबू का रस मिलादे। बडा ही स्वादिष्ट रायता होता है। प्रतिदिन प्रात साय (खाली पेट) इसे ३ से ४ छटांक तक सेवन कर सकते है। यह एक उत्तम रसायन है। डा एस. पी रजन।

टमाटर केट सूप, टमाटर गरम सास-आदि कई प्रकार के व्यजन बनाये जाते है। विस्तार–भय से यहा सब नही लिखे जा सकते।

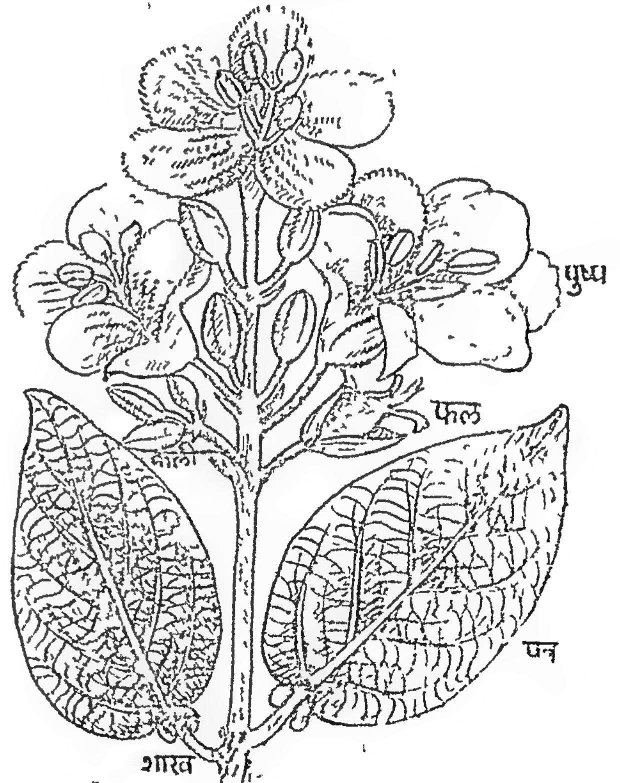
टरमेरा–दे०–सरसो मे।

टांगतैल (Aleurites Fordii)

एरण्ड-कुल (Euphorbiaceae) के मध्यमाकार के १५ से ३० फीट तक ऊचे जगली अखरोट जैसे, इसके वृक्षो के पत्र–प्राय हृत्पिण्डाकृति के, पत्रदण्ड के दोनो ओर पर्याय क्रम से, शीत-काल मे झड जाने वाले, पुष्प-श्वेत वर्ण के, लाल पीले दागो से युक्त एक लिंग विशिष्ट, वहिर्व्यास २-३ इच, पुष्प-दल ५, पु केसर ४ से २० तक, फल–कनसा या सुराही के समान सूक्ष्माग ३-५ बीजो से युक्त, पकने पर फल तीन भागो मे विभक्त होकर फटता, तथा बीज गिर जाते है। अत फलो के फटने के पूर्व ही इनकी सग्रह कर लिया जाता है। बीज–दीखने मे ब्राजील देश की बादाम जैसे होते तथा इनका आच्छादन बादाम जैसा ही मोटा व सख्त होता है। सितम्बर और अक्टूबर मास मे फल पकते हैं फूल–अप्रेल मास मे वहुत आते है।

ये वृक्ष पहाडी पथरीली भूमि मे पैदा होते हैं। जल-युक्त जमीन पर नही होते। बीज से या शाखा काट कर लगा देने से ये पैदा हो जाते हैं। ये वहुत शीघ्र बढते, तथा ३ से ६ वर्ष के भीतर ही फलते है।

चीन तथा जापान देश के ये वृक्ष, भारत के विशेष त पूर्वोत्तर भागो मे, उत्तर वर्मा के कई स्थानो मे तथा आसाम के डेराग नामक स्थान मे पाये जाते हैं। वहाँ के कई चाय के बगीचो मे इन्हे पैदा करने की चेष्टा की जा रही है। चीन के नेको वन्दर से इसके बीज एव तैल का निर्यात बहुत परिमाण मे होता है। इसके वृक्ष बगाल के शिवपुर बोटेनिक गार्डन मे भी लगाये गये हैं।



नाम—

टॉग तैल यह इसका बगला नाम है। अं०–टुंग ऑइल (Tung Oil), लै०–अल्युरिटिस फोरडी आई।

प्रयोज्याग—तैल।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसके बीजो से जो तैल निकलता है, वह क्षत

आराम करने के लिये, तथा चर्म—रोगो मे विशेष व्यहृत है। यह वामक है। चीन निवासी इसके बीजो का व्यवहार चूहे मारने के लिये करते है।

वर्तमान मे विशेषत यूरोप मे इस तैल की कदर क्रमश बढती जाती है। इससे उत्तम वार्निश बनता है। इसे लगाकर लकडी पर पालिश किया जाता है। अत इसे चीनी लकडी का तैल (Chinese Wood Oil) भी अग्रेजी मे कहते है। इस तैल के सयोग से निर्मित वार्निश लकडी पर शीघ्र ही सूख जाता है तथा इस कार्य के लिये अन्य तैलो की अपेक्षा यह अत्यन्त सिद्ध हुआ है। इसे काष्ठ पर लगा देने से उसके ऊपरी भाग मे एक पतली सी चमकदार परत जम जाती है, जिससे उसके अन्दर जल का प्रवेश नही हो पाता, जहाजो पर रग करने के लिये तथा ऑयल क्लाथ, वाटर प्रूफ इत्यादि बनाने के लिये यह प्रचुर परिमाण मे काम आता है। इसकी खेती भारत मे होना विशेष प्रयोजनीय है।

—भारतीय वनौषधि से साभार

टागुन (टागुनी) दे०—कगुनी।

टिंडे (*TRICHOSANTHES LACINIOSA*)

शाकवर्ग एव कोशातकी-कुल (Cucurbitaceae) की इस लता के पत्र—ककडी के पत्र जैसे पतले, सिराजाल से युक्त खुरदरे, रोमश, पुष्प—पीले रग के छोटे-छोटे ककडी के पुष्प जैसे, फल—प्राय ग्रीष्म ऋतु मे, गोल, पोलाई लिये हुए हरे, टेढे-मेढे, रोमश, स्वाद मे कुछ मीठे होते हैं। फलो को ही टिंडे कहते है। इनका शाक बनाया जाता है।

यह भारत मे कम अधिक प्रमाण मे प्राय सर्वत्र खेतो व बागो मे बोये जाते हे। बगाल व उत्तर-पूर्व भारत मे ये बहुत होते है।

आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थो मे इसका उल्लेख नही मिलता। अर्वाचीन ग्रन्थो मे भी बहुत कम वर्णन है।

नाम—

स०-डिण्डिश, रोमशफल, मुनिनिर्मित (कहा जाता है कि विश्वामित्र मुनि के द्वारा यह निर्मित है)। हि०-टिंड, टीडसी, ढेढस, ढेरस इ०। म०-ढेढसे, फागली। गु०-कटोला। ब०-डेरसा। लै०-ट्रायको सैंथिस लेसिनिओसा।

रासायनिक संघटन—

फलो मे—पानी ९२.३%, खनिज-पदार्थ ०.६%, प्रोटीन १.७%, वसा ०.१%, कार्बोहाइड्रेट ५.३%, कैलशियम ०.०२%, फास्फोरस ०.०३%, लोह ०.९ मि ग्रा. प्रति सौ ग्राम, व्हिटामिन ए २८ इ० यू० % ग्राम। शेष विटामिनो की जाच नही हुई है।

—(महेन्द्रनाथ पांडेय)

गुण धर्म व प्रयोग—

रूक्ष, किंचित् गुरु, शीत-वीर्य, रोचक, मल-मूत्र-विसर्जक, वातजनक, कफ पित्त एव अश्मरी-नाशक है। कामशक्ति तथा मस्तिष्क-शक्ति वर्धक है। इसके कोमल फल और अकुर सारक, दीपन एव क्षुधावर्धनार्थ उपयोगी है।

अश्मरी या पथरी पर—ताजे कोमल फलो को या अकुरो को कुचल, पीस कर तथा वस्त्र से निचोड कर निकाला हुआ स्वरस मात्रा ३ तोले तक लेकर उसमे १ मा० जवाखार मिला, कुछ गरम कर पिलाते है। ६-७ दिन के प्रयोग से लाभ होता है।

टिपारी—दे०—टकारी। टुटगठा—दे०—सोम। टेगरी—दे०—तगर। टेंट (टेंटी)—दे०—करीर। टेसू—दे०—ढाक। टेहू—दे०—अरलू न० २।

टोरकी (*INDIGOFERA LINIFOLIA*)

शिम्बीकुल की अपराजिता-उपकुल (Papilionaceae) की इस वनौषधि के श्वेत वर्ण के किन्तु नील रग प्रधान वर्षायु क्षुप, अनेक शाखायुक्त, काण्ड ६ से २० इञ्च लम्बे, कोमल, लगभग दो धारी युक्त, श्वेत

चमकाले रोमयुक्त, पत्र—अनेक सादे, ½ से १ इञ्च लम्बे, सकरे, रेखाकार, अग्रभाग मे मोटे, दोनो सिरे पर नोकदार एव दोनो ओर श्वेत चमकीले रोमयुक्त, पुष्प—पत्र-कोण मे ६ से १२ तक सघन तेजस्वी लाल रग के, बहुत छोटे, वृन्त-रहित, फली—गोलाकार लम्बी, कडी ½ इञ्च लम्बी होती है। इसमे पुष्प और फली सब ऋतुओ मे आती है।

ये क्षुप भारत मे प्राय. सर्वत्र, विशेषत बम्बई और बंगाल के हुगली, हावडा, २४ परगना, वर्धमान आदि मे रास्तो के किनारे और जगलो मे पाये जाते है। तथा सीलोन, बलुचिस्तान, अफगानिस्तान आदि देशो मे भी यह पाए जाते हैं।

नाम—

सं०—क्षुद्रनील। हि०—टोरकी, तरकी। म०—पांढरी, टाग्की। गु०—झीणी गली। बं०—भांगाडा। ले०—इण्डिगोफेरा लिनिफोलिया।

गुणधर्म व प्रयोग—

मूल—रक्तशोधक, विषघ्न, रसायन, पौष्टिक, बीज—पौष्टिक। पत्तो से नीला रंग निकलता है।

विस्फोटक ज्वर मे—मथर, चेचक, मसूरिका आदि के ज्वरो मे, इसके मूल के क्वाथ का सेवन कराते है।

जीर्ण रक्त-विकार पर—मूल या बीजो का चूर्ण प्रात-साय दूध या पानी के साथ लेते रहने से पाचन-क्रिया मे सुधार व रक्तशुद्धि हो कुछ दिनो मे चर्मरोग दूर हो जाते है।

दुष्ट व्रणो पर—जो व्रण शीघ्र न भरता हो, उस पर इसके पत्तो की पुल्टिस बाधते हैं। व्रण का शोधन रोपण हो जाता है।

डगरा—दे०—खरबूजा, फूट। डडाथूहर—दे०— थूहर मे। डड्या—दे०—प्रियगु। डकरा—दे०—वच्छनाग। डासरिया—दे०—रायतु ग। डामर—दे०— चीड (सनोवर, कतरान)।

डिकामाली (Gardenia Gummifera)

हरीतक्यादि-वर्ग एव मजिष्ठ—कुल (Rubiaceae) के इस अनेक शाखा तथा पत्रमय छोटे-छोटे ३-४ हाथ के वृक्षो की छाल कुछ मोटी हरिताभ भूरे रग की, पत्र—आकार व रंग मे अमरूद के पत्र जैसे, किंतु बडे व लम्बे, पुष्प—वसत मे कनेर-पुष्प जैसे श्वेत रग के, कुछ सुगधित, फल—अमरूद फल जैसे किंतु छोटे या कन्दूरी जैसे गोल १-१॥ इञ्च लम्बे, ऊपरी पृष्ठभाग पर उठी हुई अनेक धारियो से युक्त तथा भीतर ३-४ कोष्ठ वाले और बहुत बीज युक्त होते हैं। कोकण की ओर फलो को खाते या अचार बनाते है।

इन वृक्षो की कोमल शाखाओ के मध्य भाग से तथा कलियो मे से, या पत्तो के टूटने से शाखाओ के पृष्ठभाग पर, शीतकाल मे, एक हरिताभ किंचित् पीत-वर्ण का गोद निकलता है, जो हवा लगने पर सूख कर जम जाता है। इसे ही डिकामाली कहते है। इसके पीताभ या हरिताभ कृष्णवर्ण के चौडे-चौडे टुकडे बाजार मे पसारियो के यहा मिलते है। ये गध मे उग्र एव कुछ हीग जैसे होते हे। यही गोद औषधि-कार्य मे लिया जाता हे।

ये वृक्ष विशेषत मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत, कर्नाटक, बम्बई प्रान्त तथा सतपुडा पहाड के दक्षिण की ओर के देशो मे कोकण से चटगाव तक, एव मलाबार के पहाडी, जगली स्थानो मे पाये जाते हे।

नोट न० १—इसका एक भेद और होता है, जो बडा चमकीला, अनेक शाखा एवं पल्लवमय वृक्ष रूप में १० से २५ फुट ऊ चा, छाल—तिहाई इ च मोटी हरिताभ धूसर वर्ण की, नये अ कुर कोमल, हरिताभ धूसर, गोद-मय, पत्र—अण्डाकार ३-१० इ च लम्बे, २-४ इ च चौडे, अनेक सिरायुक्त, छोटे वृन्त-युक्त, पुष्प-पर्ण कोन से, एकाकी, १-२ इ च डाली पर, श्वेत वर्ण के सुगंधित,

वर्षा ऋतु में सध्याकाल में विकसित, पुन फिर से शीघ्र ही पीले पडकर सुखा जाते है। फल—लम्बे, गोल, शीतकाल में पकते हैं। अन्दर का गूदा गाढा व कडा होता है। वसंत ऋतु में इस वृक्ष में बिल्ली के मूत्र के समान दुर्गन्ध आती है।

इन वृक्षों की छाल में चोट करने से, या वैसे भी कलियों से या शाखाओं के अग्र भाग पर हरिताभ पीतवर्ण का, तेज गन्धवाला गोंद जम जाता है। इसकी जड में भी इसी प्रकार का गोंद रहता है। इसे भी डीकामाली कहते हैं तथा प्रस्तुत प्रसंग की डीकामाली के अभाव में इसे ही लेते हैं।

ये वृक्ष सौराष्ट्र कोंकण, कनाडा, मद्रास के शुष्क प्रदेशों में, चिटागाग व ब्रह्मदेश में विशेष पाये जाते हैं। इसे सं —हिंगुपुत्री नाडी हिंगु भेद, हि –डिकामाली भेद, कोडामंगा. म गु.—डीकामाली, मालण, और लेटिन में गार्डीनिया ल्युसिडा (Gardinia Lucida) कहते हैं।

नोट नं० २—वैद्यक शास्त्रों में जिसे विडंग और भाषा में वायविडंग कहा जाता है, उसे ही कुछ विद्वान वैद्यगण नाडीहिंगु (डिकामाली) मानने का आग्रह करते हैं। यद्यपि गुणधर्म में ये दोनों प्राय. समान हैं, तथापि विडंग अन्य कुल की (Myrsinaceae) लता रूप होने और यह अन्य कुल का गुल्माकार वृक्ष रूप होने एवं अन्य भी कई भेदों के कारण, इन दोनों को एक ही मानना उचित नहीं जंचता। विशेष वायविडंग के प्रकरण में देखिये।

नोट नं० ३—आयुर्वेद में इसी नाडी हिंगुपत्री के समकक्ष वंशपत्री या वेणुपत्री का उल्लेख पाया जाता है। संभव है हींग का पेड़ जिस कुल (Umbelliferae) का है उसकी अन्य जाति के कुछ पेडों के पत्र बांस के पत्र जैसे ही दिखाई देते हों, तथा उन्हीं में से यह वंशपत्री हो, जिसके गुणधर्म नाडीहिंगु (डीकामाली) के जैसे ही बतलाये जाते है। भाव प्रकाशकार लिखते है–"हिंगुपत्री गुणा विज्ञेयं वंशपत्रीव कीर्तिता॥" इसके विषय में श्री शालिग्राम जी लिखते है कि यह गुजरात में अधिकता से उत्पन्न होती है। वहा इसे मालडी कहते हैं। पत्र–मोंगरे के समान व फूल श्वेत, फल पोस्त के डोडे की तरह लगते हैं। इसके गोंद को डीकामारी कहते हैं।

चरक में जहा अपस्मार एवं उन्माद की चिकित्सा में क्रमश हिंगुशिवाटिका का प्रदेह व धूपनार्थ पिप्पल्यादि योग में) तथा हिंगुपर्णी का (अपामार्गाद्य जन योगश्रिमे एवं घृतयोग में) उल्लेख है, वहा उसकी टीका में चक्रपाणि ने वंशपत्री लिखा है।

नाम—

सं०—नाडीहिंगु, हिंगुपत्री (पत्र से हींग जैसी गंध आने से) हिंगुशिवाटिका, रामठी इ०। हि०—डिकामाली कमरी। म०—डिकेमाली। गु०—डेकामारी, मालण। बं०—हिंगुविशेष। अ —कैंबीरेजिन (Cambiresign), डिकामाली रेजिन (Dikamali Rasin)। ले०–गार्डिनिया गम्मिफेरा गा. केम्पेनुलाटा (G Campanulata), गा. फ्लोरिडा G Florida

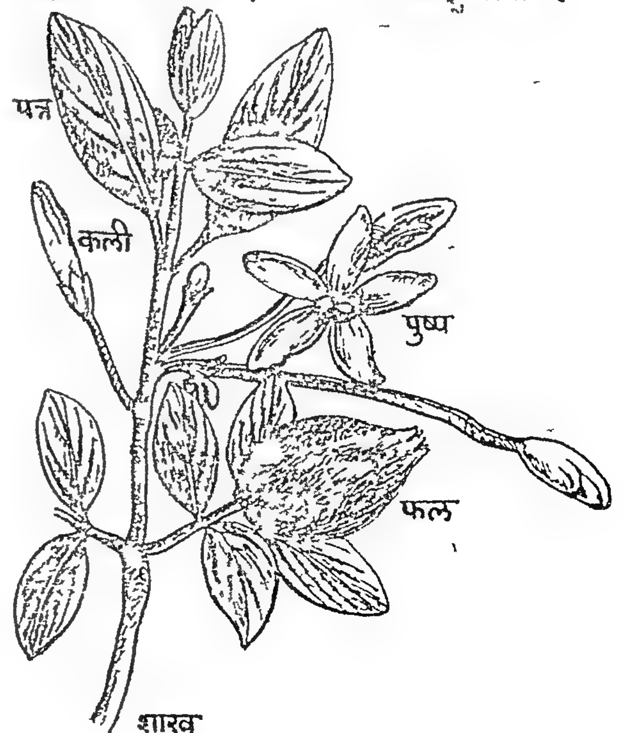
रासायनिक संघटन—

इसके गोंद में एक रवेदार सुनहरे रंग का गार्डेनिन (Gardenin) नामक तथा एक मुलायम हरे रंग का डिकेनाली (Dikenali) नामक ऐसे दो राल सदृश द्रव्य पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—गोंद

नोट—बाजारू गोंद (डीकेमाली) में पानों के डंठल, तथा अन्य कूडा कचरा मिला रहता है। अतः औषधिप्रयोगार्थ इसे ४ गुने पानी में मिला, कुछ देर रखने पर जब इसका कचरा पानी पर आ जावे, तब उसे धीरे से नितार कर फेंक दे। फिर लगभग ३ घंटे में जब यह

डिकामाली (नाडी हिंगू)
GARDENIA GUMMIFERA LINN.



अच्छी तरह पानी में मिल जावे, तथा मिट्टी धूल आदि तलेटी पर बैठ जावें, तब रुई की वत्ती से पानी को दूसरे पात्र में टपका लेवें और उसे मंद आंच पर औटावें। गाढ़ा हो जाने पर, पात्र को नीचे उतार धूप में शुष्क कर लें।

अथवा जल्दी में मामूली शुद्धि करनी हो, तो इसे गरम पानी में घोल, छानकर शुष्क कर ले।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु तिक्त, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, कफवातशामक, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, सकोचक, स्वेदजनन, व्रणरोपण, वेदनास्थापन, आम-नाशक, हृदयोत्तेजक, कफनिःसारक, श्वासकासहर, लेखन, श्लेष्मपूतिहर, प्लीहावृद्धिहर, कोष्ठवातप्रशमन, नियतकालिक ज्वर-प्रतिबन्धक है तथा अरुचि, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विबन्ध, वस्तिविकार, अर्श, आध्मान, गुल्म, उदरशूल, हृदयदौर्वल्य, जीर्णश्वासकास, हिक्का, चर्मरोग, मेदरोग आदि मे उपयोगी है।

(१) यद्यपि इसके कृमिघ्नता के गुण का आयुर्वेद मे स्पष्ट उल्लेख नही है, तथापि आधुनिक शोध द्वारा पता लगा है, कि इसके प्रयोग से कोष्ठान्तर्गत वर्तुलाकार कृमि या कुछ लम्बे नन्हे-नन्हे कृमि नष्ट या निर्जीव हो जाते हैं। वालकों के कृमिरोग पर इसे प्रातः साय दूध के साथ देते हैं। वडो के लिये इसके चूर्ण को यथायोग्य मात्रा मे शक्कर के साथ देकर ऊपर से थोडा गरम जल पिलाते हैं। अंग्रेजी सटोनीन नामक कृमिघ्न औषधि से यह श्रेष्ठ है, कारण—इससे दस्त के साथ, नष्ट हुए कृमि निकल जाते हैं। तथा गुदकृमि (चुन्नो) पर भी इसके चूर्ण को लगाते हैं।

(२) इसकी मुख्य क्रिया महास्रोत पर होती है। इसके प्रयोग से बिना कष्ट वायु का अनुलोमन एव मल-मूत्र का निःसरण होता है।

उदर-पीडा पर—इसके १ मासा चूर्ण को अद्रकरस व नीवू-रस ३-३ मा में मिला पिलाते है। इससे अप-चन, वमन, एव अजीर्णजन्य विसूचिका आदि मे लाभ होता है। छोटे वालको को कम मात्रा मे देवे। वेदनायुक्त अङ्गो पर भी इसके लेप से लाभ होता है।

नीवू के ऊपरी भाग को चीर कर अन्दर कुछ छिद्र कर उसमे इसका चूर्ण भरकर तथा कोयले की आच पर खदका कर, चूसने मे भी उदर-पीडा आदि मे लाभ होता है।

(३) आध्मान पर—छोटे वच्चे का पेट यदि वात के कारण फूला हो तो मूग या चना (½ से १रत्ती तक) वरावर इसे दूध मे घिसकर पिला देने से खुलासादस्त होकर पेट मे सुधार हो जाता है। डिव्वा रोग मे भी लाभ होता है।

यदि वडे मनुष्य का भी पेट फूला हो तो लगभग १ २ माशा तक इसे काले नमक के साथ फाककर ऊपर से गरम जल पी लेने से खुलासा दस्त होकर आध्मान शात हो जाता है।

नोट—यह खाने मे वहुत खराव मालूम देती है, खाते समय उल्टी सी आने लगती है। अतः यदि मुख द्वारा सेवन न हो सके तो इसके साथ एलुवा वा हींग या रेवंदचीनी व एलुवा मिला, थोड़े जल में मिला आग पर थोड़ा गरम कर नाभि के ऊपर उदर पर लेप करने से फूला हुआ पेट उतर जाता है तथा वात शमन होकर मलमूत्र की शुद्धि हो जाती है। वालकों के उदर पर भी इसका इसी प्रकार लेप करते है। डिव्वा का विकार शमन हो जाता है।

वालको के दतोद्भव के समय होने वाले विकार भी इसके सेवन से दूर होकर दात सरलता से निकलते है। इसे लगभग ५ रत्ती लेकर १ तोला पानी मे घोल उसमे रुई का फाया भिगोकर वालक के जवडे पर लेप करने से शीघ्रता व सरलता से दात निकल आते है।

(४) विषम ज्वर पर—इसे आधा से १ माशा तक जल के साथ, दिन मे ३ वार, ३-४ दिन तक वरावर देते रहने से अथवा इसका फाण्ट देने से नियतकालिक (एकाहिक, तिजारी आदि) ज्वरो मे होने वाला कम्प दूर होता है।

हाथ पैर मे वाइटे या रगो की तनावट हो तो इसे रेंडी मे मिलाकर मर्दन करते है।

इसके चूर्ण को शक्कर के साथ सेवन करने से ज्वर तथा आमातिसार मे लाभ होता है।

(५) शुष्क कास, वमन, तथा सिर-दर्द पर—इसकी मात्रा ३ माशे के साथ समभाग अडूसा-पंचाङ्ग का चूर्ण मिला क्वाथ वनाकर पिलाते रहने से शुष्क कास मे लाभ

होता है।

वमन पर—इसे नीबू-रस मे मिलाकर कुछ गरम कर चटाते है।

सिर-दर्द पर—इसे तैल मे मिला गरम कर मर्दन करते है।

(६) रक्त-विकार, दुष्ट व्रण नारू तथा अर्श पर—इसे १ माशा तक की मात्रा मे ताजे जल के साथ सेवन करने से शरीर पर चट्टे उठना, खुजली तथा पामा आदि विकार दूर होते है।

वेदना एव खुजली युक्त अर्श पर—इसे जल मे घिस कर दिन मे २ बार लेप करते है।

दुष्ट व्रण पर—इसके क्वाथ मे व्रण को धोकर इसके शुष्क चूर्ण को बुरकते रहने से मक्खिया नही बैठती तथा व्रण शीघ्र शुद्ध हो जाता है।

जानवरो के कृमियुक्त दूषित व्रण या क्षत पर भी इसके महीन चूर्ण को उसमे भर देते है तथा दूसरे दिन इसके क्वाथ से या गरम पानी से धोकर पुन चूर्ण को भरते हैं। इस प्रकार ३-४ दिन करने से व्रण अच्छा हो जाता है।

नारू मे—इसे लगभग ५ रत्ती तक देते तथा ऊपर से भी लगाते हैं।

दतशूल मे—इसे लगाते है।

(७) उन्माद पर—इसके साथ छोटी इलायची और ब्राह्मी मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत हितकारी होता है। (चरक)

नोट—मात्रा २ से ५ रत्ती। बालकों को आध से २ रत्ती तक। बडों को उदर-शुद्धि के लिये १ से ३ मासे तक।

विशिष्ट योग—

शर्बत बाल-रक्षक—शुद्ध डिकामाली व वायविडङ्ग १०-१० तो, नागर मोथा, इन्द्र जौ, सोया व छोटी इलायची के दाने १।-१। तोला सबको मिला, २॥ सेर जल मे उबाल चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छानकर १। सेर शक्कर व २ रत्ती केशर मिला शर्बत बना ले। तैयार होने पर तुरन्त छान, शीतल होने पर बोतल मे भरले।

मात्रा—६० बूद (चाय का १ चम्मच) दिन मे दो बार। यह बच्चो के स्वास्थ्य की रक्षा करने वाला, स्वादिष्ट, सुगधित, सौम्य और निर्भय शर्बत दीपन, पाचन, रुचिकर, सारक, कृमिघ्न व बल्य है। मलावरोध, अतिसार, मिट्टी खाने की आदत, उदर बडा हो जाना, आतो मे वायु का भरा रहना, अफरा, जुकाम, दूध फेंकना, गोल कृमि (Round worm) उदर-पीडा, कृमि के कारण नाक, गुदा व मूत्रेन्द्रिय पर खुजली आना, शारीरिक कृशता, निस्तेजता आदि विकारो को दूर करता है। दात आने के समय होने वाली पीडा, ज्वर, हरे पीले दस्त लगना, बेचैनी आदि को भी दूर करता है। यह शर्बत विलायती बालामृत (हाइपोफास्फेट आफ लाइम) शर्बत के समान देखने मे सुन्दर नही है, किंतु उसकी अपेक्षा गुण-दृष्टि मे विशेष हितावह है।

माता के अति कृश होने से या गर्भावस्था मे माता के बीमार रहने से शिशु निर्बल रहता है। उसकी हड्डिया यदि कमजोर हों तो सुधाषट्क[1] व प्रवाल पिष्टी ½ से १ रत्ती इस शर्बत के साथ देते रहे। यदि वह बालशोष (सूखा रोग) से पीडित हो तो उस पर भी इसे सुधाषट्क के साथ प्रयुक्त करे।

(रसतत्र सार भा. २)

[1]सुधाषट्क योग—प्रवाल भस्म १ तोला, शुक्ति भस्म २ तोला, शखभस्म ३तोला, वराटिका भस्म ४ तो., कच्छप पीठ की भस्म ५ तोला व गोदन्ती भस्म ६ तोला मिला, नीबू-रस में ३ दिन खरल करलें। मात्रा-१-४ रत्ती दूध के साथ, दिन में २ बार।

—श्री प० यादव जी त्रिक्रम जी

डिजिटेलिस[1] (Digitalis Purpurea)

तिक्त (कटुका) कुल (ScroPhulariaceae) के इस वनस्पति के द्विवर्षायु, बैंजनी पुष्प वाले क्षुप २-४

[1]लैटिन डिजिटस (Digitus) शब्द जिसका अर्थ होता है अंगुली Finger, उससे डिजिटेलिस शब्द की व्युत्पत्ति है। इसके दल-चक्र या पुष्पाभ्यन्तर कोष (Corolla) का कटाव अंगुलियों की तरह होने से ऐसा नाम करण किया

फूटते हैं (प्रथम वर्ष मे तो यह एक ही डण्डी पर पनपता है- इसमे छत्राकार पत्र निकल कर फैल जाते है; दूसरे वर्ष मे फिर एक डण्डी निकलती है, जिस पर गुलाबी बेंगनी रग के उल्टे घण्टाकार तिल-पुष्प जैसे पुष्प दण्डी के एक ही ओर, नीचे से ऊपर तक बढते, फूलते चले जाते है), पत्र—धतूरे या तमाखू के पत्र जैसे, दीर्घायत अण्डाकार, ४-१२ इंच लम्बे २-६ इंच चौडे किनारे गोल दतुर, गोलाई लिये आरे जैसे कटे हुए, पृष्ठ भाग में फीके हरे रग के खुरदरे, मृदु रोमश तल भाग पाडुधूसर वर्ण के व श्वेत वर्ण के रोमो से व्याप्त होते हैं। पत्तो मे हल्की चाय जैसी गंध, स्वाद मे बहुत कडुवे होते हे। शुष्क होने पर ये पत्र भगुर भूरे रग के होजाते है। औषधि-कार्यार्थ इसके शुष्क पत्र ही विशेष गुणयुक्त है। पुष्प—लगभग १४ इच लम्बे डण्डे पर प्राय एक ही ओर, नीचे से ऊपर तक, तिल के पुष्प जैसे किंतु कुछ बडे ६० से ७० तक घटाकार श्वेताभ बेगनी रग के, नीचे की ओर लटकते हुए आते हैं। फल—बहुत छोटे ¼ इंच तक लम्बे, द्विकोष्ठयुक्त आते है, ऊपर का आवरण फटने पर इसके अनेक नन्हे-नन्हे बीज छिटक पड़ते हैं। जून व जुलाई मास मे फूल फल लगते हैं।

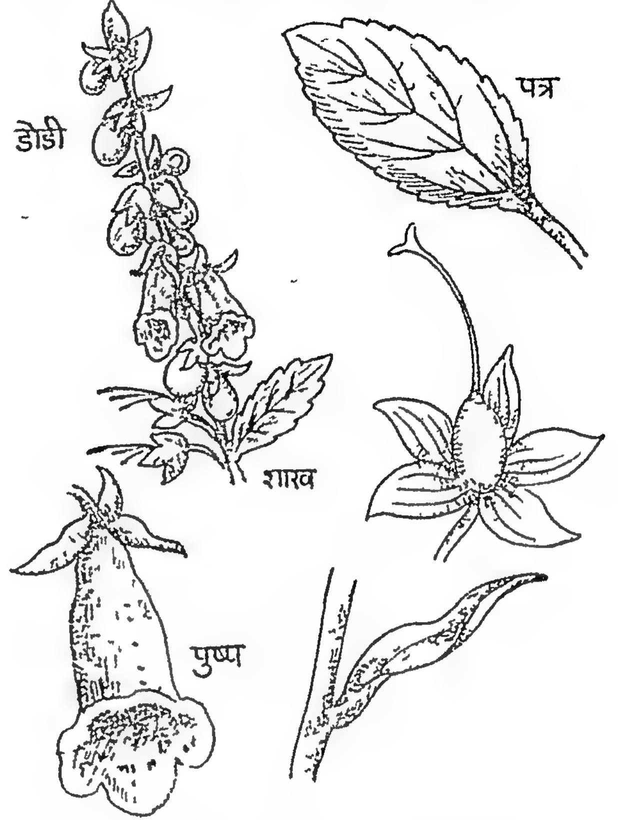
इसके पौधे बालुकामय एव पथरीली भूमि मे ५-७ हजार फुट की ऊँचाई पर पैदा होते हैं। यूरोप व अमेरिका के अनेक प्रदेशो मे, तथा भारत के हिमालय के प्रदेशो मे काश्मीर, दार्जिलिंग एव नीलगिरी की पहाडियो पर यह नैसर्गिक होता और बोया भी जाता है। औषधीय प्रयोजनार्थ काश्मीर की यह वनस्पति बहुत उत्तम मानी जाती है।

नोट न०१—इसकी कई जातियाँ हैं। उनमे से प्रस्तुत प्रसंग की डिजिटेलिस तथा डि० लेनाटा(D Lanata)मुख्य हैं। डि० लेनाटा यूरोप में आस्ट्रिया एव बाल्कन देशो में स्वयजात, नैसर्गिक होता। ब्रिटेन मे इसकी खेती की जातीहै। भारत मे भी काश्मीर मे बडामुला एव टनमार्ग आदि स्थानों में इसके लगाने का उपक्रम किया जारहा है।

गया है। इसके पुष्प नीलरूप(Purple) रग के होने से इसमें परपरिया(purpurea) शब्द जोड़ दिया गया है।

तिक्त-कुल का सक्षिप्त वर्णन कुटकी में देखें।

डिजिटेलिस
DIGITALIS PURPUREA LINN.



इसकी पत्ती २ या ५ से. मी से १५ या ३० सें. मी. लम्बी तथा ०.४ या २ सें मी से ४ ५ से. मी चौडी, बाह्य रूपरेखा मे आयताकार, भालाकार, वृन्तरहित, किनारों पर अखंडित, आधार की ओर इन पर सूक्ष्म रोम होते है, शीर्ष की ओर लहरदार तथा अति अस्पष्ट दतुर होती हैं। ये पत्तिया तोडने पर भुरभुरी (शीघ्र चूरा होने वाली) होती है।

२ प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों मे इस महत्वपूर्ण वनौषधि का उल्लेख, शायद् कहीं हो, किंतु कालचक्र के प्रभाव से कई ग्रन्थों के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने तथा हमारे अनुसधान के अभाव से आज हमें उपलब्ध नही है।

इस बूटी पर यूरोप के वैज्ञानिकों ने जो कुछ सफलतापूर्वक परीक्षणात्मक अनुसधान किया है। तथा आयुर्वेद के विद्वानों ने इस पर जो अपने अनुभवात्मक विचार प्रकट किये है,उसी का सार मात्र हम यहा देते हैं। एलोपैथी या आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली-साहित्य में इस वनस्पति को अपनी उपयोगिता एव उपादेयता के कारण विशेष सम्मान प्राप्त हुआ है।

३ भारत में इसका विशेष उत्पादन काश्मीर में किया जाता है। यहा यह बूटी प्राय. ग्रीष्मऋतु के प्रारभ से ही पुष्पित होती तथा पत्तियो का सग्रह व शुष्कीकरण कार्य पूर्ण ग्रीष्म काल भर चलता रहता है। इन्हे सुखाने के लिए बास के मचानों पर ३६ घण्टे तक डाल देते हैं, तथा बीच-बीच में उलट पलट करते रहते हैं। फिर उनका ढेर लगाकर धूल तथा धूप से बचाने के लिए बांस की बाड़ से ढक दिया जाता है।

४. इसी के कुल की जंगली तमाखू (Verbascum Thapsus) के तथा इस बूटी के पत्तो मे बहुत कुछ साम्य होने से व्यापारी लोग प्रायः दोनो का मिश्रण कर दिया करते हैं।

नाम—

स-हृत्पत्री (हृद्रोगो मे विशेष प्रयुक्त होने से), तिल पुष्पी, बटवीणा आदि नाम आधुनिक विद्वानों के कल्पित है।

हि. व. गु—डिजिटेलिस। अ०—डिजिटेलिस (Digitalis), फाक्स ग्लोव्ह (Foxglove) ले–डिजिटेलिस पर्प्युरिया डि फोलियम (D Folium)

रासायनिक सघटन—

इसमे हृदयोत्तेजक, स्फटिकाकार डिजिटाक्सिन (Digitoxin), जिटाक्सिन—(Gitoxin) व डिजिटेलिन (Digitalin जो पत्र तथा बीजो मे भी होता है) ये सुराविलेय ग्लाइकोसाईड तत्व तथा जिटेलिन मिश्रित डिजिटेलिन और डिजिटान (Digiton जो वामक व उत्तेजक है) नामक जलविलेय तत्व पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग पत्र—

नोट-दूसरे वर्ष के क्षुप में पुष्प आने से पूर्व ही, इसके पत्र तोड कर, सम्हालपूर्वक, तुरन्त ही छाया में (विशेषत २५ से ६० डिग्री कीउष्णता मे) सुखाकर वायु रहित पात्र में सुरक्षित रखते हैं। अच्छी तरह शुष्क न होने, या अधिक धूप या गरमी या आर्द्रता से इसके गुण नष्ट हो जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु-विपाक, उष्णवीर्य एव प्रभाव मे हृद्य व शामक है। यह कफवातशामक, पित्तवर्धक, मूत्रल, कफघ्न, वाजीकरण, गर्भाशयसकोचक, ज्वरघ्न है। नपुसकता तथा स्त्रीरोग मे प्रयुक्त है। तीव्र ज्वरो मे यह ज्वर कम करता एव हृदय भी सुरक्षित रखता है।

१ हृदय एव रक्तवहसस्थान पर इसकी क्रिया प्रत्यक्ष होती है। यह हार्दिकी धमनी एव शरीर की अन्य धमनियो का सकोचन करता है। जिससे हृदय को अच्छा आराम एव पोषण प्राप्त हो नाडी व्यवस्थित भरपूर चलने लगती है, तथा आन्त्र को भी पोषण प्राप्त होता व मूत्र की मात्रा बढती है।

हृदयोदर तथा मूत्रपिंडोदर की अवस्था मे इसे किसी अन्य मूत्रल, विरेचक एव स्वेदल औषधि के साथ देने से मूत्र के द्वारा सचित जल बाहर निकल जाता है तथा हृदय को बल प्राप्त होता है। किंतु जहा तक हो सके रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये तथा पथ्य मे दूध, अनार आदि पौष्टिक पदार्थ देने चाहिए।

ध्यान रहे हृदयरोग जन्य शोथ, जलोदर आदि मे भी इसके प्रयोग से चमत्कारी गुण दृष्टिगोचर होता है, किंतु जिस रोगी की हृदयगति पहले से ही न्यून या मन्द हो उस पर इसका प्रयोग ठीक नही होता। यदि इसे देना आवश्यक ही हो तो इसे कुचले के साथ देवें। तथा यह भी ध्यान रहे कि विशेष उत्तम गुण होने पर भी इसका सतत दीर्घकाल तक सेवन कदापि नही करना चाहिए। आवश्यकतानुसार ७ या १४ दिन सेवन कर फिर ७ दिन के लिए बन्द करे। इस प्रकार कुछ अधिक समय तक भी इसका प्रयोग हो सकता है।

यह भी ध्यान रहे कि हृदय के लिये बल्य, मूत्रल एव रक्ताभिसरण पर क्रिया करने वाली जितनी भी औषधियां (जैसे जगली तमाखू, कनेर, पीलीकनेर, जगली प्याज कपूर, ताम्र, यशद, अण्ड खरबूजा के पत्र, मकई के भुट्टे के बाल, कुटकी काली, काफी आदि) हैं, वे अधिक मात्रा मे देने से विषाक्त प्रभाव करती है। अत इन्हे अधिक मात्रा मे कदापि नही देना चाहिए।

डिजीटेलिस का प्रयोग हृदय के अनेक रोगो (जैसे हृदय की धडकन, रक्तप्रत्यावर्त्तन, हृदय का प्रसार हृदय की अनियमितता, हृत्कार्यावरोध, हृदन्त शोथ आदि) मे लाभकर होता है। हृदय के मेदसापकर्ष मे इसका

प्रयोग नही किया जाता। यह शोथ रोग मे अतीव प्रशस्त माना गया है।

इसका प्रयोग हृद्दौर्बल्य जन्य शोथ (Cardiac-oedema) मे विशेप रूप से करते है। यो तो सामान्य रक्ताल्पता जन्य शोथ मे भी इससे लाभ होता है।

२. हृदय के उक्त विकारो पर—इसका चूर्ण १ भाग, शृङ्ग भस्म २ भाग दोनो एकत्र मिला, ३ घटे खरल कर, १-१ रत्ती की मात्रा मे देने से हृदय की दुर्वलता, धड़कन तथा नाडी का वेगाधिक्य दूर होता है। हृद्रोगी मे उपद्रव रूप जलोदर या सर्वाङ्ग शोथ हो, तो इसका प्रयोग आरोग्यवर्द्धिनी के साथ मिलाकर देने से यथेष्ट लाभ होता है।

केवल हृदय की धडकन ही विशेप रूप से होती हो तो इसके पत्र-चूर्ण के साथ प्रवाल पिष्टी, व अकीक भस्म खरल कर, मात्रा १ रत्ती शहद के साथ दिन मे २-४ वार देने से लाभ होता है।

—श्री पं० यादव जी त्रिकम जी आचार्य

३ जीर्ण कास मे कफ चिपचिपा और अधिक गिरता हो, साथ मे हृदय की दुर्वलता भी हो तो इसके पत्र-चूर्ण के साथ शुष्क जगली प्याज का चूर्ण सम भाग मिला, १ या २ रत्ती की मात्रा मे सेवन करावें। यदि रोगी को हृल्लास व वमन भी हो तो इसका प्रयोग कुछ दिन के दिये वन्द करदें—

श्री प यादव जी त्रिकम जी आचार्य

इस प्रकार श्वास, कास, कफरोग, क्षय, फेफडो से रक्तस्राव आदि फुफ्फुस के विकारो पर इसका वहुत उपयोग किया जाता है। इन रोगो मे प्राय. हृदय के पर्दे शिथिल होकर शोथ-युक्त हो जाते है। उस शोथ को यह दूर करता है। वैसे ही हृद्-शोथ जन्य अत्यधिक रज स्राव मे भी यह बहुत लाभ पहुँचाता है।

४ हृद्य औषधि के रूप मे इसकी उत्तम प्रयोग-विधि यह है, कि इसके अतिसूक्ष्म पत्र-चूर्ण के १ भाग को २० भाग सत गिलोय के साथ किसी अच्छे खरल मे ६-७ घण्टे निरन्तर खरल कर लें, तथा आवश्यकतानुसार १ से २ रत्ती तक, दिन मे २-३ वार रोगी को किसी उचित अनुपान (अर्क गावजवान आदि) के साथ प्रयोग करें।

जिस रोगी के रक्ताल्पता के कारण हृत्स्पन्दन तथा अल्पाग मे सर्वाङ्गशोथ हो, उसे ताप्यादिलोह के साथ देने मे विशेप लाभ होता है।

५ जलोदर और सर्वाङ्गशोथ में—जो विशेषत हृद्विकार या वृक्क-विकार जन्य हो, इमे अल्पमात्रा मे आरोग्यवर्द्धिनी के साथ मिलाकर सेवन करावे और ऊपर से पुनर्नवा-क्वाथ अथवा आचार्य यादव जी कृत मूत्रल-कपाय[1] का सेवन कराते रहे। रोगी को केवल दुग्धाहार पर ही रखना चिकित्सक को यश व कीर्ति प्रदान करने वाला है। इसके अतिरिक्त ऐसा भी हो सकता है कि आरोग्यवर्द्धिनी के साथ डिजिटेलिस न मिलाकर अनुपान मे ही इसका फाट मिलाकर दिया जावे।

—प० श्री वासुदेव जी वैद्य आयुर्वेदाचार्य

(सचित्रायुर्वेद से साभार)

६ पाचन-सस्थान या पाचन—यत्र पर इसकी कोई विशेष क्रिया नही होती अधिक दिनो तक या अतिमात्रा मे सेवन करने पर हृल्लास व वमन रूप मे इसका प्रभाव लक्षित होता है। वह भी सस्थानिक क्षोभ जन्य नही, प्रत्युत वमनकेन्द्र के उत्तेजित हो उठने से होता है। आत्र मे इसका शोपण शनै- शनै होता है, किंतु वह भी सिरागत रक्त-सचय मे विलकुल मन्द हो जाता है। शोपण अतिमन्द होने से इसके कुछ कार्यकारी तत्व नष्ट हो जाते है। इसके सुरा तत्व या टिंचर का प्रभाव शीघ्र लगभग ४-६ घटो मे नष्ट होजाता है। इस पर रसो का भी प्रभाव नही पडता। गुदामार्ग से वस्तिद्वारा देने से इसका शोपण शीघ्र होता है।

७ मदात्यय पर—इसके फाट या टिंचर का प्रयोग कराने से रोगी को निद्रा आ जाया करती है तथा तज्जन्य उन्मत्तता की निवृत्ति हो जाती है।

---

[1] मूत्रल क्वाय—पुनर्नवामूल, ईखमूल, कुशमूल, कासमूल, छोटे गोखुरु, सौंफ, धनिया, सागौन के फल, मकोय, कासनी के वीज, खीरा ककटी के वीजों की गिरी, गिलोय, पापाणभेद काकनज और कमलफूल समभाग जौकुट कर, २ तोला चूर्ण को १६ तो जल में मिला चतुर्थांश क्वाथ कर छान कर पिला दें।

नोट—मात्रा-चूर्ण चौथाई से आधी रत्ती तक। फांट के रूप में आधे से १ तो० तक। सुरासत्व (टिंचर) ५ से १५ बून्द तक।

फाट-विधि—इसके शुष्क चूर्ण १ भाग को परिस्रुत उष्ण जल १००० भाग मे मिला, किसी आवृत पात्र मे १५ मिनट तक रख कर कुछ उष्ण रहते ही वस्त्र द्वारा छानकर, स्वच्छ बोतल मे भर ले। यह प्रतिदिन ताजा पिलाना हो, तो इसके मोटे पत्र-चूर्ण १५ ग्रेन को उबलते हुए २० ग्राम पानी मे मिला १५ मिनट तक ढक देवे। फिर उसे गरम दशा मे ही छान ले। इस फाट के साथ गोखुरू, सारिवा, शोरा आदि मूत्रल औषधियो का सयोग करने से इसकी क्रिया मे विशेष वृद्धि होती है। मात्रा—२ से ४ ड्राम तक। इसे १२ घटे तक सेवन कर सकते है। फिर नया बनाना चाहिये।

सुरातत्त्व या टिंचर-विधि—पत्र-चूर्ण (अति महीन चूर्ण) १०० ग्राम (४ औंस) और मद्यार्क (७०%) १००० मिलिलिटर (२० औंस) लेकर, अर्थात् १० भाग पत्र-चूर्ण को १०० भाग मद्यार्क मे मिलाने के लिए, प्रथम चूर्ण को १०० मिलिलिटर मद्यार्क मे भिगोते है, फिर पर्कोलेशन प्रक्रिया से टपकाते हैं, इस प्रक्रिया के समय बार-बार मद्यार्क डालते तथा १००० मिलिलिटर पूरा करते हैं। यही टिंचर डिजिटेलिस है। मात्रा—५ से १५ बून्द या ३० बून्द तक।

इसे प्राय टिचर के रूप मे अधिक प्रयोग मे लाते है। उक्त टिंचर की मात्रा, दिन मे ३ बार, जल मिला कर देते है। किंतु जल मिलाने से टिंचर की क्रियाशीलता अधिक स्थायी नही होती। तथापि किसी भी हालत मे ६-६ घटे के कम अन्तर से इसका प्रयोग नही करना चाहिए। अन्यथा वमन आदि उपद्रव होने लगते हैं। अत ऐसी स्थिति मे इसका प्रयोग इजेक्शन द्वारा किया जा सकता हे। वमनादि अधिक होने से मुख द्वारा यदि इसका प्रयोग सभव न हो तो गुदामार्ग द्वारा इसका प्रयोग किया जा सकता हे।

विशेष वक्तव्य—

ध्यान रहे रोगी, रोग, देश, काल आदि का विचार करने के पश्चात् ही डिजिटेलिस का प्रयोग करना चाहिए। क्योकि यद्यपि कतिपय अवस्थाओ मे यह बहुत उपयोगी है, तथापि अनेक अवस्थायें ऐसी भी है, जिनमे इसका कोई विशेष प्रभाव नही होता, अथवा जिनमे (जैसे, आगिक हृदयरोग, मस्तिष्कगत रक्तस्राव, अन्त शल्यता, हृदय का मेदस अपकर्ष Fattydegeneration आदि मे) इसका प्रयोग निषिद्ध होता है।

सबसे सरल उपाय यह है, कि इसकी प्रयोगावस्था मे ज्यो ही नाडी-मन्दता, उत्क्लेश, वमनादि उपद्रव होने लगे,त्यो ही इसका प्रयोग बन्दकर देवे। इसकी सस्थायी प्रवृत्ति के कारण औषधि के विपाक्त प्रभाव होने की सम्भावना बहुत कम रहती है।

तीव्र हृत्पेशी-शोथ (Acute Myocarditis), अथवा हृदन्त-शोथ (Endocarditis) और रक्तभाराधिक्य मे इसका प्रयोग सतर्कता से करना चाहिए। क्योकि ऐसी परिस्थिति मे क्षुब्ध हृत्पेशी पर अनावश्यक दवाव पडने से घातक परिणाम होने की सम्भावना रहती है।

बालक और अतिवृद्ध को यथासम्भव इसका प्रयोग नही कराना चाहिए।

इसके विष-लक्षण और चिकित्सा—

इसके अतियोग से हृल्लास तृषा, भ्रम, वमन (हरे रग का), अतिसार, मूत्राल्पता, शिर शूल, नाडीमन्दता, प्रलाप, हृदय की अनियमितता, आक्षेप, ठडा प्रस्वेद व बेहोशी आदि लक्षण होते है।

चिकित्सा—

वामक-द्रव्यो से या आमाशय-नलिका से सशोधन करने के बाद हृदयोत्तेजक द्रव्य—काफी, मद्य, अमोनिया आदि देना चाहिए। शरीर का सेक भी करे, तथा रोगी को लिटाकर ही रक्खे व पूर्ण विश्राम देवे।

इसकी घातक मात्रा—चूर्ण ३८ ग्रेन। टिंचर ६ ड्राम। घातक काल—४५ मिनिट से २४ घटा।

डिठौरी—दे०—करज। डूकर कन्द—दे०—वाराही कन्द। डेला—दे०—करील।

डोडी—दे०—करेरुआ। डोडी शाक—दे०—जीवन्ती।

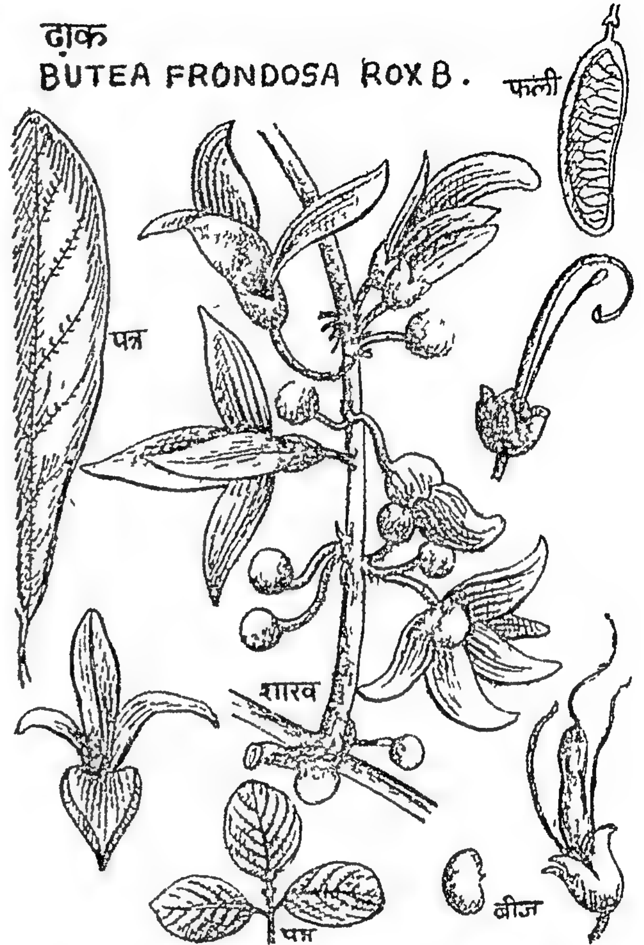
ढाक (Butea Frondosa)

वटादि-वर्ग एव शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल के (Papilionaceae) इस मध्यमाकार के ५ से २० फुट ऊंचे प्राय द्वादश वर्षीय वृक्षो का काण्ड–गांठदार, टेढे; छालफटीसी, खुरदरी ३/४–१ इंच मोटी, धूसर वर्ण की, तन्तुमय, पत्र–त्रयुक्त एक मे तीन गोलाकार पत्र प्राय ४-६ इन्चलम्बे, असमान (मध्य पत्र बडा, पार्श्व के छोटे), पत्रपृष्ठ–खुरदरा, पुष्प–वसत मे, पत्र झड जाने पर, सुन्दर रक्त पीतवर्ण के, तोते की चोंच जैसे, पुष्प-वृन्त–रोमश, काला, वक्र, फली–ग्रीष्म मे ५–८ इच लम्बी, ३/४ इन्च चौडी, हिन्दी मे–ढक पन्ना नाम से प्रसिद्ध; बीज–प्रत्येक फली में प्राय एक चपटा, वृक्काकार १-१३/४ इन्च लम्बा १/२ से १ इन्च चौडा, लगभग १३/४ से २ मि०मि० मोटा; बीजावरण–बाह्यत रक्ताभ गाढे भूरे रग का, अत्यन्त पतला होता है। बीज मे एक हल्की गध तथा स्वाद मे किंचित् तिक्त होता है। बीजो को–पलास-पापडा, पसदमा तथा लेटिन मे ब्यूटिया सेमिना (B Semina) कहते हैं। पकी हुई फलियो के ये बीज भी विशेष औषधि-कार्य मे आते हैं।

वृक्ष के काण्ड की छाल मे क्षत करने से जो निर्यास निकलता है, वह जमने पर लाल गोद सा हो जाता है। इस गोद को हिन्दी मे कमरकस[1], चुनिया या चुन्नी गोद, अग्रेजी मे ब्यूटिया गम या बेगाल किनो (Butea-gum or Bengal kino) कहते है। यह भी औषधि मे उपयोगी है।

ये वृक्ष भारत मे प्राय सर्वत्र, विशेषत रेह या क्षार मिश्रित भूमि मे या बालुकामय ऊसर भूमि मे बहुत पैदा होते हैं।

नोट १—चरक के वात-श्लेष्महर गण में तथा भिन्न-भिन्न रोगों के कतिपय प्रयोगों में, वैसे ही सुश्रुत के रोध्रादि, मुष्कादि, अम्बष्ठादि व न्यग्रोधादि गणों मे एवं पुष्पवर्ग, तैल वर्गादि में भी इसका उल्लेख है। वाग्भट ने इसे असनादिगण मे दिया है।



२—ढाक का एक प्रकार और पलाश लता इसी जाति की होती है, जिसका वर्णन इसके आगे के प्रकरण मे दिया गया है।

३—नीले तथा श्वेत पुष्प वाले ढाक का भी उल्लेख कहीं २ पाया जाता है। किन्तु ये प्राप्त नहीं होते। कहा जाता है कि साधारण ढाक के काण्ड का मध्य भाग खोखला कर उसमें १ सेर तूतिया भर, ऊपर से उसी के अन्दर से निकला हुआ बुरादा दाब कर, ऊपर बहुतसा गोवर रखकर बांध देने से आगे आने वाले चैत्र मे इसके फूल नीले या काले रग के निकलते हैं।

श्वेत पुष्प वाले पलाश के विषय मे किम्वदन्ती है कि इसके योग से सुवर्ण बनाने की कीमिया सरलता से सिद्ध

---

[1] कमरकस नामक एक भिन्न बूटी होती है, जिसके बीज औषधि-काय मे लिये जाते हैं। इसका वर्णन 'कमरकस' के प्रकरण (भाग २) में देखिये।

होती है। यह श्वेत पलाश कहीं-कहीं वनों जंगलों में किन्ही सौभाग्यशाली को या सिद्ध योगियों को ही प्राप्त होता है। इसके योग से त्रिकालदर्शी होना आदि कई चमत्कारिक क्रियायें सिद्ध होती हैं।

४--एक भूपलाश नामक अन्य [illegible] होता है। इसका वर्णन ढोल समुद्र के प्रकरण में देखें।

५--हलके पीत पुष्प वाले भी पलाश वृक्ष होते हैं। इनके तथा प्रस्तुत प्रसंग के पलाश के गुणधर्म में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

नाम --

सं --पलाश [सामान्यतः रक्तवर्ण पुष्प होने से, या पत्र प्रधान होने से], किंशुक (शुकतुण्ड सदृश लाल वक्र पुष्प होने से], रक्तपुष्पक, क्षार श्रेष्ठ, ब्रह्मवृक्ष [ब्रह्मचारी इसका काष्ठ दण्ड धारण करते हैं] समिद्वर [यज्ञ में प्रयुक्त होने से], इ०। हि०--ढाक, टेसू, केसू, पलास, छिऊल इ०। म०--पलस। गु०--खाखरो। बं०-पलाश गाछ। अं --बास्टर्डटीक [astard teak],दि फॉरेस्ट फेम [The Forest fame]। ले०--ब्युटिया फ्राडोसा, ब्यू मोनोस्पर्मा (B Monosperma)

रासायनिक संघटन--

छाल व गोंद में काइनो टैनिक एसिड (Kinotannic acid), और गैलिक एसिड ५०%, पिच्छिल द्रव्य तथा क्षार २%, बीजो में पीतवर्ण का स्थिर तैल १८% इसे मुडूगो या काइनो आयल (Moodooga or Kino oil) कहते हैं और लगभग १८% अल्ब्युमिनाइड तत्त्व (Albuminoids substance) एवं कुछ शर्करा पायी जाती है। पत्र में एक ग्लुकोसाइड और पुष्प में एक पीला रंजक द्रव्य होता है।

प्रयोज्याग--छाल, पत्र, पुष्प, गोंद, फली, बीज, मूल, पचाङ्ग, क्षार।

गुणधर्म व प्रयोग--

लघु, स्निग्ध, कटु, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्ण-वीर्य, दीपन, ग्राही, वीर्यपुष्टिकर, रसायन, वाजीकर, उदरकृमिनाशक, मूत्रार्त्तवजनन, कफवातशामक, यकृदुत्तेजक, अस्थिसंधानक, संग्रहणी, अर्श, गुल्म, व्रण आदि पर उपयोगी है।

छाल--स्तम्भन, शीत, रूक्ष, प्रमेहघ्न, संधानीय, व्रण, अर्श, योनिस्राव आदि में इसके क्वाथ से परिषेक करते हैं। अतिसार, [illegible], अर्श आदि में इसके [illegible] [illegible] और नकसीर आदि के लिए [illegible] [illegible] मिश्री मिलाकर [illegible] हैं।

(१) श्वेत प्रदर, शुक्रमेह या शुक्रतारल्य में [illegible] [illegible] [illegible] मिला [illegible] तथा चूर्ण कर, शहद मिला, यथाविधि [illegible] [illegible] करते हैं।

शुक्रतारल्य में जड़ की छाल के चूर्ण को दूध के साथ सेवन से पुंस्त्व एवं कामशक्ति की वृद्धि होती है।

(२) प्रतिश्याय एवं कफज्वर पर--छाल-चूर्ण १ तो को १ पाव जल में, [illegible] [illegible] [illegible], छानकर, गरम-गरम ही, ३-४ दिन दोनों समय सेवन से जुकाम नजला आदि दूर होता है। [illegible] [illegible] फाट-प्रयोग उत्तम है।

(३) अतिसार पर--छाल-चूर्ण १ भाग तथा दालचीनी चूर्ण आधा भाग एकत्र मिला, मात्रा १ रत्ती से १ मा तक, आयु के अनुसार सेवन से बालकों एवं स्त्रियों के अतिसार में शीघ्र लाभ हो पाचन-शक्ति का सुधार होता है।

(४) पांडु तथा श्वेत प्रदर पर--इसकी छाल के साथ, रोहेड़े की जड़ की छाल और पाठा समभाग एकत्र जौकुट कर, यथाविधि क्वाथ सिद्ध कर, शहद मिला सेवन से लाभ होता है। (यो नि)

(५) अण्डवृद्धि और सर्प-विष पर--इसकी छाल का चूर्ण ७ मा की मात्रा में जल के साथ सेवन करते तथा अण्डकोषों पर छाल की पुल्टिस बांधते हैं।

सर्प-विष पर--छाल और सोंठ को औटाकर, छानकर पिलाते हैं। अथवा--छाल को पीसकर ताजा रस निकाल, बलाबलानुसार ४ से १० तो तक पिलाते हैं।

पत्र--(विशेषतः कोमल पत्र)--शीत, रूक्ष, संग्राही, शोथहर, वेदनास्थापक, अतिसार, योनिस्राव, शुक्रप्रमेह आदि पर उपयोगी है।

(६) योनिस्राव या योनिशैथिल्य पर--कोमल पत्र छाया-शुष्क कर, महीन चूर्ण कर, समभाग मिश्री मिला ३ मा से ५ मा तक प्रातः सायं ताजे जल के साथ

१४ दिन तक सेवन करें, तथा इसके गोद की पोटली (गोद के प्रयोगों मे देखें) योनि मे धारण करे। अधिक प्रसव के कारण या श्वेत स्राव से या अन्य किसी कारण से हुआ योनि का ढीलापन दूर होता है। गोद की पोटली के अभाव मे इसकी छाल के क्वाथ से योनि-प्रक्षालन करते रहने से भी लाभ होता है।

उक्त पत्र के चूर्ण के सेवन से पुरुषो का शुक्रतारल्य-विकार भी दूर होता है।

(७) गर्भस्राव-निवारणार्थ—गर्भ के प्रथम माह मे इसका १ कोमल पत्र, महीन टुकडे कर १ पाव या ½ सेर गोदुग्ध (समभाग जल मिश्रित) मे मिला पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर, छानकर, मिश्री मिला, दिन मे सुखोष्ण १ वार पिलावें। इस प्रकार द्वितीय माह मे दो पत्र, तीसरे माह मे तीन पत्र, प्रतिमाह १-१ पत्र वढाते हुए ६ वे माह मे ६ पत्रो का सेवन करावे। दूध गाय का ही होना चाहिये तथा वह स्त्री की इच्छानुसार जितना चाहे उतना ले सकती है।

मेरी गारटी है कि यह प्रयोग कभी असफल नही नही हो सकता। जिन स्त्रियो को १०-१० वार गर्भस्राव हो चुका था, इसके प्रयोग से सतान वनी हुई है।

(धन्वन्तरि, गुप्तसिद्ध प्रयोगांक मे—
सपादक वैद्य श्री देवीशरण जी गर्ग।)

(८) वलवान एवं वीर्यवान पुत्रोत्पत्ति के लिए—गर्भस्राव का विकार हो, तो उक्त पत्र-सेवन का प्रयोग (न० ७) नौ मास तक वरावर जारी रखने से व अन्य निम्न प्रयोग केवल ३ दिन के सेवन से ही पुत्रोत्पत्ति की मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है, ऐसा हमारा खास अनुभव है। (लेखक)

गर्भिणी स्त्री ४ दिन लगातार प्रात इसका १ कोमल पत्र दूध के साथ चाय जैसा वनाकर पीवे, फिर ५ दिन वन्द रक्खे। पुन ४ दिन लेवे और ५-६ दिन वन्द रक्खे, (नित्य केवल १ पत्र, प्रात काल)। इस प्रकार ८-६ मास तक (अथवा सेवन के प्रारम्भकाल से ३ या ४ मास तक) लेने से वलवान पुत्रोत्पत्ति होती है। अथवा ऋतुस्नान के चौथे दिन से ३ दिन लगातार इसके १ मुलायम पत्ते को गाय के दूध मे पीस छानकर पीने से भी श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति होती है।

भावप्रकाशकार का कथन है[१] कि ढाक के १ पत्ते को गर्भिणी स्त्री दूध के साथ पीस कर सेवन करे तो निस्सन्देह वीर्यवान पुत्र को जन्म देती है यही प्रयोग वगसेन और योगरत्नाकर मे भी दिया है।

(६) गर्भाशय के विकार तथा गर्भकष्ट-निवारणार्थ—इसके पत्तो के स्वरस का डूश देने से अर्थात् गर्भाशय मे पत्र-स्वरस की वस्ति देने से उसके सर्व विकारो की शाति होती है।

यदि गर्भ के आठवें मास मे गर्भ के अन्दर कोई कष्ट प्रतीत हो, तो इसका एक पत्र पानी मे पीसकर कुछ दिन पिलाया करे।

(१०) वात-गुल्म तथा प्लीहा-शोथ व अर्श पर—इसके पत्तो के पास की घुण्डी २० नग तोडकर, ताजे पानी मे पीसकर गुल्म-विकार-पीडित रोगी को पिलादे और उसे चित्त लिटावे। आधे घन्टे मे शान्ति प्राप्त होगी। यदि कुछ कसर रहे तो एक वार फिर पिलावे। फिर कभी भी आयुपर्यन्त इस रोग का दौरा नही होगा। (भा० ज० वूटी से)

प्लीहा-शोथ पर—पत्तो पर तैल चुपड कर वाधते है।

अर्श पर—विशेषत वातार्श पर—पत्र पर तिल-तैल और घृत चुपड कर, कुछ गरम कर वाधते हैं।

वद की गाठ पर—पत्तो की पुल्टिस वनाकर वाधते हैं।

(११) कास, गलक्षत तथा मुख के क्षत पर—पत्र के डठल को, विशेषत पत्र के डठल के अग्रभाग पर जो घुण्डी होती है, उसे मुख मे रख, धीरे-धीरे चवाते हुए रस को निगलते रहने से खासी में लाभ होता है। इस प्रयोग से मुख से कई विकारो मे भी शाति मिलती है। अथवा—

पत्र के क्वाथ से कुल्ले करे तथा थोडा-थोडा पीवे,

---

१ पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः॥

होती है। यह श्वेत पलाश कहीं-कहीं घने जंगलों में किन्ही सौभाग्यशाली को या सिद्ध योगियों को ही प्राप्त होता है। इसके योग से त्रिकालदर्शी होना आदि कई चमत्कारिक क्रियायें सिद्ध होती हैं।

४--एक भूपलाश नामक अन्य वृक्ष होता है। इसका वर्णन ढोल समुद्र के प्रकरण मे देखे।

५--हलके पीत पुष्प वाले भी पलाश वृक्ष होते हैं। इनके तथा प्रस्तुत प्रसंग के पलाश के गुणधर्म मे कोई विशेष अन्तर नहीं है।

नाम --

स --पलाश [मांसवत् रक्तवर्ण पुष्प होने से, या पत्र प्रधान होने से], किंशुक (शुकतुण्ड सदृश लाल वक्र पुष्प होने से], रक्तपुष्पक, क्षार श्रेष्ठ, ब्रह्मवृक्ष [ब्रह्मचारी इसका काष्ठ दण्ड धारण करते हैं] समिद्वर [यज्ञ में प्रयुक्त होने से], इ०। हि०--ढाक, टेसू, केसू, पलास, छिऊल इ०। म०--पलस। गु०--खाखरो। ब०-पलाश गाछ। अ --बास्टर्डटीक [astard teak], दि फोरेस्ट फेम [The Forest fame]। ले०--ब्युटिया फ्रांडोसा, ब्यू. मोनोस्परमा (B Monosperma)

रासायनिक संघटन--

छाल व गोद मे काइनो टैनिक एसिड (Kinotannic acid), और गैलिक एसिड ५०%, पिच्छिल द्रव्य तथा क्षार २%, बीजो मे पीतवर्ण का स्थिर तैल १८% इसे मुडूगो या काइनो आयल (Moodooga or Kino oil) कहते हैं और लगभग १८% अल्ब्युमिनाइड तत्त्व (Albuminoids substance) एव कुछ शर्करा पायी जाती है। पत्र मे एक ग्लुकोसाइड और पुष्प मे एक पीला रजक द्रव्य होता है।

प्रयोज्याग--छाल, पत्र, पुष्प, गोद, फली, बीज, मूल, पञ्चाङ्ग, क्षार।

गुणधर्म व प्रयोग--

लघु, स्निग्ध, कटु, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्ण-वीर्य, दीपन, ग्राही, वीर्यपुष्टिकर, रसायन, वाजीकर, उदरकृमिनाशक, मूत्रार्त्तवजनन, कफवातशामक, यकृदुत्तेजक, अस्थिसंधानक, संग्रहणी, अर्श, गुल्म, व्रण आदि पर उपयोगी है।

छाल--स्तंभन, शीत, रूक्ष, प्रमेहघ्न, संधानीय, व्रण, अर्श, योनिस्राव आदि मे इसके क्वाथ से परिषेक करते है। अग्निमांद्य, ग्रहणी, अर्श आदि मे इस का सेवन कराते है। घोर तृष्णा शांति के लिये टुकडे मिश्री मिलाकर चूसते है।

(१) श्वेत प्रदर, शुक्रप्रमेह एव शुक्रत। इसके क्वाथ मे साठी चावलो को भिगो एव तथा चूर्ण कर, शक्कर मिला, यथाविधि हल सेवन कराते हैं।

शुक्रतारल्य मे जड की छाल के चूर्ण को साथ सेवन से पुरुषार्थ एवं कामशक्ति की वृद्धि ह

(२) प्रतिश्याय एव कफप्रकोप पर--इ १ तो को १ पाव जल मे, चतुर्थांश क्वाथ सि छानकर, गरम-गरम ही, २-४ दिन दोनो समय जुकाम नजला आदि दूर होता है। क्वाथ की फाट-प्रयोग उत्तम है।

(३) अतिसार पर--छाल-चूर्ण १ भा दालचीनी चूर्ण आधा भाग एकत्र मिला, मात्रा से १ मा तक, आयु के अनुसार सेवन से बाल स्त्रियो के अतिसार मे शीघ्र लाभ हो पाच का सुधार होता है।

(४) पाडु तथा श्वेत प्रदर पर--इसकी साथ, रुहेडे की जड की छाल और पाठा समभाग जौकुट कर, यथाविधि क्वाथ सिद्ध कर, शहद सेवन से लाभ होता है। (यं

(५) अण्डवृद्धि और सर्प-विष पर--इसक का चूर्ण ७ मा की मात्रा मे जल के साथ सेवन क अण्डकोषो पर छाल की पुल्टिस बांधते है।

सर्प-विष पर--छाल और सोठ को क्व छानकर पिलाते हैं। अथवा--छाल को पीसकर त निकाल, बलाबलानुसार ४ से १० तो तक पिल

पत्र--(विशेषत कोमल पत्र)--शीत, संग्राही, शोथहर, वेदनास्थापक, अतिसार, यो शुक्रप्रमेह आदि पर उपयोगी है।

(६) योनिस्राव या योनिशैथिल्य पर--कोम छाया-शुष्क कर, महीन चूर्ण कर, समभाग मिश्री ३ मा से ५ मा तक प्रात साय ताजे जल के

१४ दिन तक सेवन करे, तथा इसके गोंद की पोटली (गोंद के प्रयोगों मे देखें) योनि मे धारण करे। अधिक प्रसव के कारण या श्वेत स्राव से या अन्य किसी कारण से हुआ योनि का ढीलापन दूर होता है। गोंद की पोटली के अभाव मे इसकी छाल के क्वाथ से योनि-प्रक्षालन करते रहने से भी लाभ होता है।

उक्त पत्र के चूर्ण के सेवन से पुरुषो का शुक्रतारल्य-विकार भी दूर होता है।

(७) गर्भस्राव-निवारणार्थ—गर्भ के प्रथम माह मे इसका १ कोमल पत्र, महीन टुकडे कर १ पाव या ½ सेर गोदुग्ध (समभाग जल मिश्रित) मे मिला पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर, छानकर, मिश्री मिला, दिन मे सुखोष्ण १ वार पिलावे। इस प्रकार द्वितीय माह मे दो पत्र, तीसरे माह मे तीन पत्र, प्रतिमाह १-१ पत्र वढाते हुए ६ वें माह मे ६ पत्रो का सेवन करावें। दूध गाय का ही होना चाहिये तथा वह स्त्री की इच्छानुसार जितना चाहे उतना ले सकती है।

मेरी गारटी है कि यह प्रयोग कभी असफल नही नही हो सकता। जिन स्त्रियो को १०-१० वार गर्भस्राव हो चुका था, इसके प्रयोग से सतान वनी हुई हैं।

(धन्वन्तरि, गुप्तसिद्ध प्रयोगाक मे—
सपादक वैद्य श्री देवीशरण जी गर्ग।)

(८) वलवान एव वीर्यवान पुत्रोत्पत्ति के लिए—गर्भस्राव का विकार हो, तो उक्त पत्र-सेवन का प्रयोग (न० ७) नौ मास तक वरावर जारी रखने से व अन्य निम्न प्रयोग केवल ३ दिन के सेवन से ही पुत्रोत्पत्ति की मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है, ऐसा हमारा खास अनुभव है। (लेखक)

गर्भिणी स्त्री ४ दिन लगातार प्रात इसका १ कोमल पत्र दूध के साथ चाय जैसा वनाकर पीवे, फिर ५ दिन वन्द रक्खें। पुन ४ दिन लेवे और ५-६ दिन वन्द रक्खे, (नित्य केवल १ पत्र, प्रात काल)। इस प्रकार ८-६ मास तक (अथवा सेवन के प्रारम्भकाल से ३ या ४ मास तक) लेने से वलवान पुत्रोत्पत्ति होती है। अथवा ऋतुस्नान के चौथे दिन से ३ दिन लगातार इसके १ मुलायम पत्ते को गाय के दूध मे पीस छानकर पीने से भी श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति होती है।

भावप्रकाशकार का कथन है[1] कि ढाक के १ पत्ते को गर्भिणी स्त्री दूध के साथ पीस कर सेवन करे तो निस्सन्देह वीर्यवान पुत्र को जन्म देती है यही प्रयोग वगसेन और योगरत्नाकर मे भी दिया है।

(९) गर्भाशय के विकार तथा गर्भकष्ट-निवारणार्थ—इसके पत्तो के स्वरस का डूश देने से अर्थात् गर्भाशय मे पत्र-स्वरस की वस्ति देने से उसके सर्व विकारो की शाति होती है।

यदि गर्भ के आठवे मास मे गर्भ के अन्दर कोई कष्ट प्रतीत हो, तो इसका एक पत्र पानी मे पीसकर कुछ दिन पिलाया करे।

(१०) वात-गुल्म तथा प्लीहा-शोथ व अर्श पर—इसके पत्तो के पास की घुण्डी २० नग तोडकर, ताजे पानी मे पीसकर गुल्म-विकार-पीडित रोगी को पिलादे और उसे चित्त लिटावे। आधे घन्टे मे शान्ति प्राप्त होगी। यदि कुछ कसर रहे तो एक वार फिर पिलावें। फिर कभी भी आयुपर्यन्त इस रोग का दौरा नही होगा। (भा० ज० वूटी से)

प्लीहा-शोथ पर—पत्तो पर तैल चुपड कर वाधते है।

अर्श पर—विशेषत वातार्श पर—पत्र पर तिल-तैल और घृत चुपड कर, कुछ गरम कर वाधते हैं।

वद की गाठ पर—पत्तो की पुल्टिस वनाकर वाधते हैं।

(११) कास, गलक्षत तथा मुख के क्षत पर—पत्र के डठल को, विशेषत पत्र के डठल के अग्रभाग पर जो घुण्डी होती है, उसे मुख मे रख, धीरे-धीरे चवाते हुए रस को निगलते रहने से खासी में लाभ होता है। इस प्रयोग से मुख से कई विकारो मे भी शाति मिलती है। अथवा—

पत्र के क्वाथ से कुल्ले करे तथा थोडा-थोडा पीवे,

---

[1] पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः॥

तो गले एव मुख के क्षतो मे लाभ होता है।

कान मे मक्खी या कोई कीटक घुस गया हो, तो कोमल पत्र-रस को कान मे डालते है।

(१२) अतिसार तथा ज्वर की दाह व स्वेदाधिक्य पर—इसके पत्तो का क्वाथ विशेषत आमातिसार मे सेवन कराते है। अथवा पत्तो के अर्क या स्वरस का सेवन कराते है।

ज्वर-दाह शाति के लिये—ताजे पत्तो को पानी मे पीस-छान कर पिलाते हैं।

यक्ष्मा मे स्वेदाधिक्य हो, तो पत्र-क्वाथ देते हैं।

दोषो की शाति के लिये—पत्र-क्वाथ की वस्ति मलाशय मे, तथा मूत्राशय मे उत्तर वस्ति देते है।

(१३) रक्त-पित्त पर—इसके डठलो का रस (४ सेर) तथा इन्ही का कल्क (१० तो०) और घृत (१ सेर) लेकर सबको एकत्र मिला, घृत सिद्ध कर शहद मिला (मात्रा–घृत ½ तो० से १ तो० तक मे शहद १½ से ३ मा० तक) सेवन करने से रक्तपित्त नष्ट होता है।
(च० स० चि० स्था० अ० ४)

अथवा—पत्र-डठलो के स्वरस को आग पर गाढा कर उसमे शहद मिला सेवन से भी लाभ होता है।
—(ग० नि०)

(१४) नेत्र-विकार तथा व्रणो पर—नेत्रो के विशेषत कफज विकारो मे इसके डठलो को या अकुरो को कासे की थाली मे दही के साथ घिस कर पतला पानी सा बनालें। इसकी २-३ बून्दे प्रतिदिन आखो मे डालते रहने से लाभ होता है, तथा पलको के बाल (बरौनी) झड गये हो तो पुन जम आते है। (ग० नि०)

शरीर पर कही भी व्रणशोथ हो तो पत्तो को पीसकर गरम कर प्रलेप करते या पुल्टिस बना कर बाधते हैं। इसके शुष्क पत्तो की राख १ तो० को ४ तो० घृत मे मिलाकर लगाने से सर्व प्रकार के घाव ठीक होते हैं।

(१५) वीर्य-स्तम्भनार्थ—कोमल पत्तो का चूर्ण ७ तो० और पुराना गुड १ तो० दोनो को एकत्र पीसकर १४ गोलिया बना नित्य १ गो० सेवन करते है।

नोट—पत्तों की पत्तलें बहुत बनाई जाती हैं। ताजे पत्तों की पत्तल मे भोजन रखकर खाने से पाचन-क्रिया ठीक होती तथा क्षुधा-वृद्धि होती है। बुद्धि एवं स्मरण-शक्ति बढ़ती है। किन्तु बाजारू पत्तलें और दोने जो हरे पत्तो से बनाकर बिना धूप व हवा मे सुखाए ही दाब दिए जाते हैं, उनका लाभकारी अश गल सडकर नष्ट हो जाता है तथा एक प्रकार के विषैले कण उनमे प्रविष्ट हो जाने से वे स्वास्थ्य के लिये हानिकर होते हैं।

पत्तो की बनाई हुई छतरी (जो कि प्राचीन काल मे बनाई जाती थी, तथा अब भी देहाती लोग बनाकर उपयोग मे लाते है,) नेत्रो तथा मस्तिष्क के लिये विशेष शातिप्रद एव पुष्टिप्रद है।

पुष्प—(पुष्पो को टेसू केसू कहते है) कटु, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, कफ-पित्त-शामक, स्तम्भन, वात-वर्धक, तृष्णा-दाह शामक, मूत्रार्त्तव-जनन, सधानीय, कुष्ठ, ज्वर, रक्त-विकार, अतिसार, रक्तपित्त, प्रदर, शोथ तथा चर्म-रोग आदि मे उपयोगी है।

पुष्पो के रग से रगा हुआ कपडा पाडुरोगी को पहनाते है। फाल्गुन मे होली व चैत्र मे रग पचमी को इस रग से होली खेलने से वसत मे होने वाली खुजली आदि चर्मरोग एव चेचक का प्रकोप नहीं होने पाता।

वस्तिशूल, वस्तिशोथ, जरायुशोथ, मूत्रकृच्छ्र, रुद्धार्त्तव एव व्रणशोथ मे—पुष्पो के क्वाथ से परिषेक कर, क्वाथ के गरम-गरम चोये को रुग्ण स्थान मे बाधते है। रक्त-स्राव मे–पुष्पो को शीत जल मे १२ घटे भिगो, छानकर मिश्री पिलावे, नक्सीर रक्त-मूत्रता मे लाभ होता है।

(१६) मूत्रावरोध पर—पुष्पो को उबाल कर, गरम-गरम वस्ति-प्रदेश पर बाधते है इससे गुर्दे का शूल और शोथ भी दूर होता है।

अश्मरी (पथरी) के कारण मूत्र मे रुकावट हो, तो फूलो को पकाकर, पोटली बना सेक कर उसे बाधते है।

यदि फूलो को, बिना उबाले ही, पानी के साथ पीस कर नाभि के चारो ओर लेप कर दिया जाय तो भी शीघ्र मूत्र की रुकावट दूर होकर, मूत्र खुलकर हो जाता है।

(१७) सुजाक (मूत्रकृच्छ्र), प्रमेह व पाडु व नारू

पर—इसके शुष्क पुष्प १ तो० मिट्टी के कोरे पात्र मे १ पाव पानी के साथ भिगो, प्रात छान कर पिलावे। शीघ्र लाभ होता है। चैत्र-वैशाख मे, इसमे थोडा शहद, तथा जेष्ठ मास मे थोड़ी चीनी मिलाकर पीवें। यदि मूत्र मे अत्यधिक रुकावट हो, तो उसमे कलमी शोरा-चूर्ण ३ मा० तक घोल कर पिलावें। अथवा—

शुष्क पुष्प १० तो० धोकर, उसमे थोडा पानी, एक कलईदार पात्र या मटकी मे डाल, ऊपर कटोरा रख, कटोरे मे पानी भर, चूल्हे पर रख मद आच करें। भाप निकलने तक पकावें। फिर नीचे उतार फूलो को मलकर १ पाव तक छानकर, २ मा० कलमी शोरा मिला पिलावे। शेष पानी मे, उक्त मलकर निचोडे गये फूलो को मिला रोगी के पेड़ू पर रखे। मूत्र खुलकर होगा। (व० गुणादर्श)

इसके फूल और श्वेत जीरा ३-३ तो० चने की दाल २ तो० सबको १ सेर पानी के साथ, मिट्टी के पात्र मे ८ प्रहर तक भिगोकर, प्रात इसमे से १०-१० तो० पानी छानकर पिया करे। और जितना पियें, उतना ही ताजा पानी उसमे डाल दिया करे। मूत्र-कृच्छ्र के लिये विशेष लाभदायक है।

(ढाक के गुण व प्रयोग)

प्रमेह पर—फूलो के क्वाथ मे मिश्री मिलाकर पीते रहने से अनेक प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

(यो० र०)

पाडु रोग पर—पुष्प १ तो० रात्रि के समय १ पाव पानी मे भिगो, प्रात छानकर मिश्री मिला कर पिलाते हैं। विशिष्ट योग मे योग न० ४८ देखे।

नारू पर—पुष्पो को पीस कर गुड मिला, ७ गोलिया बना रोज १ गोली खिलाते हैं।

(१८) अर्श तथा अण्डकोष-शोथ पर—स्वताशं के क्वाथ से शौच के समय गुद-प्रक्षालन करना लाभप्रद है।

अण्डकोषो मे साधारण शोथ हो, तो फूलो के क्वाथ से परिषेक कर, क्वाथ के फोक को ऊपर से बाध देते है।

अण्डवृद्धि हो, तो फूलो को गोमूत्र मे उबाल कर, उसमे सेंधा नमक मिला, गरम-गरम क्षालन या परिषेक कर, उक्त उबले हुए फूलो को अण्डकोष के चारो ओर रख कर कपडे से लपेट देवे, यह अधिक गरम न हो। शोथयुक्त अण्डवृद्धि मे कुछ दिनो मे लाभ हो जाता है।

(१९) विषम-ज्वर पर—पुष्प और धनिया २१-२१ मा० और चने की भूसी ३ तो० सबको महीन कूट ७ मात्रा करें।

प्रतिदिन प्रात १ मात्रा ताजे पानी के साथ लेने के बारी से आने वाला ज्वर दूर हो जाता है। (ढाक के गुण)

(२०) रक्त-प्रदर पर—इसके पुष्प और दर्भमूल को समभाग मिलाकर महीन चूर्ण करे। नित्य प्रात. ६-६ मा० जल के साथ देते रहने से १४ दिन मे पित्त-प्रकोपज प्रदर (पतला व उष्ण रस-स्राव) एव रक्त-प्रदर दूर होता है। (र० त० सार)

गोद—ग्राही, स्तम्भक, वृष्य, बल्य, सधानीय, स्वेद-हर, अम्लता-नाशक है तथा मुख-रोग, कास, रक्तपित्त, प्रदर, शुक्र-दौर्बल्य, सग्रहणी, गुदभ्रश आदि मे प्रयुक्त होता है।

श्वेत प्रदर मे तथा योनि-सकोचनार्थ, मिश्री व दूध के साथ इसे खिलाते तथा इसकी बत्ती बना योनि मे धारण कराते हैं। इसे दूध व मिश्री के साथ सेवन करने से कमर मे बल की वृद्धि होती है, अत इसे कमरकस कहते है। यह पुरुष और स्त्री दोनो के लिये सेवनीय है। अम्लपित्त मे गोद को नारियल के पानी के साथ देते हैं। अतिसार पर—गोद का चूर्ण ५ से १५ रत्ती तक लेकर, उसके साथ दालचीनी-चूर्ण २॥ रत्ती और किंचित अफीम मिला कर पानी मे घोल कर पिलाते हैं। इसमे अफीम न भी मिलायें तो भी काम चल सकता है।

रक्तमूत्रता पर—गोद-चूर्ण २ मा० पानी के साथ देते हैं।

(२१) शुक्र-तारल्य पर—गोद का अति महीन चूर्ण नित्य ३ से १ तो० तक गाय के ताजे या उबाल कर ठडा किये हुए दूध मे मिला, थोडी मिश्री मिला सेवन कराने से वीर्य का पतलापन दूर होता है, उसमे सता-नोत्पादक शक्ति आती है।

उक्त चूर्ण के साथ यदि समभाग मुसली चूर्ण मिला कर दूध के साथ उक्त प्रकार से सेवन करे तो यथेष्ट

शक्ति एवं स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। यह प्रयोग लगभग ४० दिन करें, तथा गरम मसाला, लालमिर्च आदि से परहेज करे।

(२२) नेत्रस्राव, जाला, फूला आदि नेत्र-विकारो-पर—गोद-चूर्ण ६ मा० को पानी ३ तो० मे रात भर भिगोकर प्रात छान कर नेत्रो मे कुछ बूदें, दिन मे कई बार डालते रहने से स्राव वन्द होता है।

गोद-चूर्ण ६मा० के साथ सेधा नमक ३ मा० खूब खरल कर, सुर्मा जसा वन जाता है। इसे सलाई से लगाते रहने से जाला, माडा, फूली, नासूना आदि विकार दूर होते हैं।

(२३) गोद १० तो० को नारियल मे छेद कर भर दें, छिद्र बद कर, कपडमिट्टी कर पुटपाक-विधि से पाक कर, गिरी और गोद को खूब कूट कर उसमे समभाग चीनी मिलावे। ४-६ मा० प्रात साय दूध के साथ लेने से गर्भ सम्वन्धी विकार दूर होकर गर्भ पुष्ट होता है।

(२४) मूत्र-कृच्छ तथा मूत्राशय-शोथ एव क्षत पर—उत्तम ताजा गोद १० तो० को रात भर कोरी मटकी मे १ सेर पानी के साथ भिगोदे। प्रात छान कर स्वच्छ वोतल मे भर उसमे स्वच्छ चदन-तैल २ तो० एव वहरोजा-तैल ३ तो० डाल कर हिलावे। दवा पीते समय भी बोतल को हिला लिया करे। मात्रा २-२ तो० प्रात साय लेने से सुजाक या मूत्रकृच्छ्र मे यथेष्ट लाभ होता है।

मूत्राशयशोथ तथा मूत्राशय के क्षत पर—इसका गोद और फूल ३-३ मा० रात भर मिट्टी के पात्र मे भिगोकर, प्रात. छान कर मिश्री मिला पीने से उक्त शोथ मे शीघ्र ही लाभ होता है। यदि मूत्राशय मे क्षत हो, तो केवल १ रत्ती गोद का महीन चूर्ण फांक कर ऊपर से इस योग को पिलावें।

इससे पेशाव मे रक्त का आना भी वन्द होता है।

(२५) योनिशैथिल्य पर—गोद का महीन चूर्ण ६ मा० को पानी मे घोल लें। फिर फिटकरी २ तो० को किसी पात्र मे आग पर पिघलावें, तथा थोडा थोडा उक्त गोद का घोल उसमे डालते जावें। सव घोल का शोषण हो जाने पर, नीचे उतार कर, ठढा होने पर इस फिटकरी-फूले को १ तो० धाय के पुष्प के चूर्ण के साथ खरल करले। यह मिश्रण-चूर्ण योनि मे रखने से विशेष लाभ होता है।

(उक्त योग ढाक के गुण—उपयोग से साभार)
कृमिरोग पर—वि योग म पलाश निर्यासासव देखें।
वीज, फली व तैल—

नोट०-वीजों को नमी से वचाने के लिये अच्छे ढके हुए पात्र में सगृहीत करना चाहिये। अन्यथा वे शीघ्र खराब हो जाते हैं। ध्यान रहे, यथा सभव ताजे नये वीजों को ही औषधि-कार्य में लेवें। पुराने वीज निष्क्रिय हो जाते हैं।

वीज कुछ विषाक्त होते हैं। इसी से ये हृल्लास, वमन, दाह आदि कारक हैं। और इसी से ये कुछ रेचक एव कृमिनाशक भी हैं। किंतु यह कुछ हानिकारक नहीं हैं। इस हृल्लास आदि हानि-निवारणार्थ ही यह शहद, शक्कर आदि के साथ दिया जाता है।

ये कटु, स्निग्ध, लघु, लेखन, कटुविपाक, उष्णवीर्य, वातानुलोमक, वातशामक, उत्तेजक, उत्तम भेदन, रक्तशोधन, कृमि प्रमेह, कुष्ठ, रक्तविकार, वातरक्त, उदर-पीडा, अर्श, आदि मे प्रयुक्त होते हैं। दद्रु आदि चर्मरोग तथा नेत्र-रोगो मे वीजो को नीवू-रस मे पीस गरम कर लेप करते हैं। मधुमेह जन्य कष्ट तथा वेदना रहित क्षत एव भगदर पर भी यह लेप लाभकर है।

विच्छू-दश मे—वीज को आक के दूध मे घिस कर लगाते हैं। अपस्मार मे वीज-चूर्ण का नस्य देते है। गर्भ धारण या गर्भाधान-निवारण का प्रयोग नं० २६ नीचे देखे। मासिक धर्म वन्द करने के लिये बीजो के साथ गुलाव सफेद के पुष्पो को पीस कर घृत या पानी से कुछ दिन पिलाते, तथा फिटकरी की पोटली योनि मे धारण करते हैं। सिर-पीडा पर—वीजो का लेप कराते हैं, शीत-जन्य पीडा दूर होती है। पैरो की सधियो की जकडन पर—बीजो को पीस कर शहद मिला लेप करते हैं। छोटे बच्चो के शरीर पर उठी हुई छोटी-छोटी फुसियो पर—वीजो को नीमपत्र के रस या नीवू के रस मे पीस कर लगाते हैं। छाजन, उकवत पर—वीज चूर्ण को हरताल व वछनाग के चूर्ण के साथ खरल कर जूने घृत मे मिला लगाते है। आँखो की फूली के निवा-

रक्षार्थ-बीज-चूर्ण मे, उसके ताजे फलों का रस निचोड कर खरल करें। इस प्रकार ७ भावनाएं देकर शुष्क कर सुरमा बना, उनमें लगाते समय किंचित् शहद व बकरी का दूध मिला सलाई से लगाते हैं। श्वेत कुष्ठ पर—बीज चूर्ण १०॥ मा०, तूतिया ३मा० और श्वेत कत्था १२ मा० नीबू-रस मे खरल कर गोली बना, दागों पर लगाते है।

ज्वर (चातुर्थिक ज्वर) पर—रोगी को प्रथम विरेचन देकर कोष्ठ-शुद्धि होने पर—इसके बीजो के साथ सम भाग करंजुवा की गिरी मिला, जल के साथ खूब महीन पीसकर चना जैसी गोलियां बना, एक-एक गोली प्रति दिन, तथा जिस दिन ज्वर आता हो उस दिन ज्वर-वेग के पूर्व देते हैं।

२६. [१] कृमि-रोग—(इस रोग पर यह सेन्टोनीन से श्रेष्ठ है) उदर-कृमि (Round worms) हो तो इसके बीज आग पर थोडे सेके हुए ५ तोला तथा कबीला, इन्द्रजौ, अजमोद, वायविडग २॥-२॥ तोले और भुनी हीग ६ माशा सबको खूब महीन चूर्ण कर नीम के रस की ५ तथा अजमोद, वायविडङ्ग क्वाथ की दो भावनायें देकर शुष्क चूर्ण बना लें। मात्रा—२ से ४ रत्ती, दिन मे तीन बार जल के साथ देने से प्राय सर्व प्रकार के उदर-कृमि नष्ट हो जाते हैं। छोटे बालको को मात्रा कम देवें। अथवा—

इसके बीजो के चूर्ण मे समभाग चीनी या शहद मिला, १ से २ मा० तक, प्रात साय (या दिन मे ३ बार), तीन दिन पानी से देकर, चौथे दिन रेंडीतैल पिला दें। अथवा—

बीज और अजवायन का समभाग चूर्ण प्रात १ से ३ माशा तक, अवस्थानुसार पानी के साथ लेने से कृमि नष्ट होते तथा पाचन-शक्ति मे सुधार होता है।

अथवा—इसके बीज और वायविडग का समभाग चूर्ण ३ मा. तक, उसमे नीबूरस ३ माशा मिला शहद के साथ देने से, या बीजो का मोटा चूर्ण पानी मे भिगोकर मल, छान, शहद मिला पिलाने से भी यथेष्ट लाभ होता है। ध्यान रहे बीजो को छाल सहित कूटकर चूर्ण करे, अन्यथा उसका रेचक प्रभाव नष्ट हो जाता है।

छोटे बच्चो के कृमि-विकार पर—बीज को दूध मे घिसकर या इसके चूर्ण को शहद से चटाते है। अथवा बीजो को कुछ सेक कर चूर्ण कर, मूंग जैसी गोली बना घृत के साथ देते है।

आन्त्र-कृमि-नाशार्थ—बीज २ नग, चावल के माड के साथ पीसकर पिलाते है।

२६ [२] गर्भ-निरोधार्थ—बीजो की भस्म १ भाग मे अर्ध भाग हीग मिला, १॥ से ३ माशा तक की मात्रा मे दूध या पानी के साथ, मासिक धर्म के बाद ३ दिन तक देते है। यह प्रयोग और भी आगे के लगभग ३ मासिक धर्म के बाद भी दिया जाता है जिससे स्त्री की गर्भधारण-शक्ति नष्ट हो जाती है। अथवा—

इसके बीज और खीरा ककडी के बीज समभाग चूर्ण कर ३ माशा की मात्रा मे, ३ दिन तक, ऋतु-काल मे—पानी के साथ पिलाते हैं।

वाह्य प्रयोग—बीज का महीन चूर्ण १ तो, शहद २ और घी १ तोला एकत्र मिला, रुई मे भिगो, वत्ती बना प्रसग के ३ घटे पूर्व, योनिमार्ग मे रख लेने से या उक्त मिश्रण का योनि मे लेप कर लेने से भी गर्भ धारण नही होता। यह लेप का प्रयोग प्रसग के ३ घटा पूर्व अथवा ऋतुकाल (मासिक धर्म होने के दिनो) मे किया जाता है।

२७ नारू पर—इसके बीजो के १ भाग चूर्ण के साथ कुचला बीज, रस कपूर, सादा कपूर और गूगल आधा-आधा भाग, सब के चूर्ण को पानी के साथ महीन खरल कर, तथा एक पीपल (अश्वत्थ) के पत्ते पर उसको चुपडकर नारू के स्थान पर रख, पट्टी से बाध देवे। ३ दिन तक इसे नही खोलें। नारू का कीडा शीघ्र ही नष्ट हो जता है।

२८ योनिकन्द पर—बीजो का महीन चूर्ण आटे में मिला, हाथ की हथेली के बराबर टिकिया बना, योनि पर रख, पट्टी बाध दे, तथा लगोट कस कर बाध दे। इस प्रयोग से योनिकन्द का गोला गलकर वह जवेगा। रुग्णा को पलाश, क्षार (क्षार विधि नीचे देखे) के द्वारा सिद्ध किये घृत को पिलावे—(अ तत्र)।

३० शक्ति-वर्धनार्थ रसायन—बीजो को महीन पीस कर ताजे ग्रावले के निचोडे हुए रस मे तर करें। सूखने पर पुन रस मे तर कर धूप मे सुखावें। इस प्रकार ७ भावनायें देकर चूर्ण कर रखले। इसे २ से ६ माशे तक थोडे शहद के साथ चाट लिया करे। भोजन मे घृत, दुग्ध आदि सात्विक शक्तिप्रद वस्तुये लेवें। खटाई मिर्च आदि से परहेज करें। अथवा—

बीज-चूर्ण १ माशा, काले तिल ३ मा० और मिश्री ६ माशा मिला, नित्य प्रात (यह १ मात्रा है।) सेवन करें। पथ्य व परहेज से रहे। (ढाक गुण)

३१ आमाशय के विकारो पर—बीजो के समभाग सिरस-बीज-चूर्ण कर चूर्ण के समभाग मिश्री मिला ले। ३ से ६ माशे की मात्रा मे बलाबल के अनुसार, दूध के साथ सेवन करें। आमाशय के लिए शक्तिप्रद व विशेष गुणप्रद है। अथवा—

बीज-चूर्ण १ मा०, काले तिल २ मा, घृत ३ मा, और शहद ४ माशा, को एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) नित्य प्रति सेवन से भी विशेष लाभ होता है। अथवा— (ढाक गुण)

इसके बीजो के समभाग वायबिडङ्ग लेकर दोनो का चूर्ण कर, यथायोग्य मात्रानुसार उसमे आमला-रस, शहद व घृत मिलाकर सेवन से आमाशय सशक्त होता व बल वीर्य की वृद्धि होती है। पथ्य पूर्वक १ मास तक सेवन करें। (राजमार्त्तण्ड)

बीज-योग से गन्धक-द्रुति का प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखिये।

३२ कास पर—इसकी कोमल फली और गूलर के फल व काली मिर्च समभाग एकत्र कूट पीसकर, शुष्क चूर्ण करले।

६ माशा तक की मात्रा मे शहद के साथ चाटने से रात्रि मे कष्ट देने वाली खासी नष्ट होती है।—

(भा० भैं० र०)

३३ योनिशैथिल्य पर—इसको और गूलर के फलो को पीस कर तिल-तेल से चिकना कर शहद मिला, लेप करने से योनि की शिथिलता दूर होती हे। (व से)

बीजों का तैल—यह तैल बीजो से पातालयन्त्र द्वारा निकाला जाता है। यह मधुर, कषाय, कफपित्त नाशक, वर्ण्य, कुष्ठादिनाशक व पुंस्त्वशक्ति-उत्पादक है।

कुष्ठ मे यह चालमोगरा तेल जैसा, प्रत्युत् उससे भी अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। उसका विधिवत् इजेक्शन दिया जाता है।

अपस्मार मे इसका नस्य देते है। बिच्छू के दंश-स्थान पर इसे लगाते हैं।

३४ शक्ति वर्द्धक रसायन रूप मे—यह तैल २ से ४ मा तक, घृत व शहद १ तोला के साथ १ मास तक सेवन करने से तथा मैथुन एव हानिकारक वस्तुओ से परहेज रखने से विशेष शक्तिवर्धक होता है। यदि इसमे ताजा ब्राह्मी का तेल भी सम्मिलित कर दिया जाय तो बुद्धि तीव्र हो जाती है। (ढाक-गुण, उपयोग)

३५. ध्वजभग एव नपुसकता पर—तिला—इस तेल को रात्रि के समय शिश्न पर सीवन और अग्रभाग की सुपारी छोड कर धीरे-धीरे मालिश कर ऊपर से पान बाध कर, कच्चा सूत लपेटा करे। ७ दिन मे लाभ होता है। इस तिल से जलन, छाला आदि कोई विकार नही होते। अथवा—

इसके बीज, कुचला, मालकागनी व जगली कबूतर की बीट प्रत्येक ७॥ तोला तथा लौग, अकरकरा व दालचीनी १।-१। तोला सबको बकरी के दूध मे घोट सुखा कर पाताल यन्त्र से तेल निकाल ले। इसे भी उक्त प्रकार से इन्द्री पर मलकर ऊपर बगला पान बाधे। २१ दिन के प्रयोग से हस्त क्रिया मे उत्पन्न शिश्न दोष नष्ट हो जाते हैं। इन तिलो के प्रयोग काल मे इन्द्री को ठडे पानी से बचाना चाहिए। (भा भै र)

मूल—इसकी जड मे रासायनिक गुणो की विशेषता हैं।

३६—इसका स्वरस या अर्क सर्व नेत्ररोगहर, ज्योतिवर्धक व कामशक्तिवर्धक है। ताजी कोमल जडो को कूट पीस निचोड कर इसका स्वरस निकाल कर प्रयोग करते है। भवका यन्त्र से इसका अर्क खीच लेना और भी श्रेष्ठ होता है, यह बहुत दिनो तक बिगडता नही है।

यह स्वरस या अर्क नेत्रो मे डालते रहने से फूली,

झाक, मोतियाबिन्द, रतौंधी आदि नेत्र-विकारो मे लाभ होता है। इसके अर्क की कुछ बून्दें पान के बीडे मे डाल कर खाने से क्षय'वृद्धि होती, वीर्य-स्राव बन्द होता एव कामशक्ति प्रबल होती है।

३७ प्रमेह, शीघ्रपतन, नपु सकता आदि पर—जड का रस निकाल कर, उसमे ३ दिन तक गेहूँ को भिगो कर एव छाया शुष्ककर आटा बना, हलुवा कर कुछ दिन सेवन से प्रमेह, शीघ्रपतन तथा कामशक्ति की कमजोरी दूर होती है। (व च) अथवा–

मूल–स्वरस का घन क्वाथ—जड को छाल-समेत २० तोले लेकर ताजा ही कूट ले, तथा रात्रि को एक मटकी मे ३ सेर पानी मिला रखदे। प्रात मन्द आग पर पकावें। आधा सेर पानी शेष रहने पर छानकर इसे पुन मन्द आच पर गाढा कर चीनी या काच के पात्र मे रख लें। इसे ४-५ रत्ती की मात्रा मे, पान मे रख कर रात को सोते समय खा लिया करे। शिलाजीत से भी बढ कर गुणप्रद है अथवा—

उत्तम शुद्ध इस की मूल की छाल को कूट कर छाया-शुष्क कर महीन चूर्ण करलें। शीत काल मे ३-३ रत्ती चूर्ण मिश्री मिला १पाव गरम दूध के साथ लिया करे। दूध की मात्रा प्रतिदिन दो तोले से बढाकर १ सेर तक ले जावें। भोजन हलका एव खूब भूख लगने पर लेवे। खटाई, मिर्च, गुड, तैल से परहेज करें। इसे ग्रीष्म ऋतु मे ऐसे दूध के साथ सेवन करना चाहिये, जो कि थन से निकाल कर जमीन पर न रखा गया हो।

(ढाक के गुण, प्रयोग)

अथवा—पलाश वृक्ष की जड़ मे क्षत कर, उसके नीचे खोद कर, एक चिकनी मटकी रख, ऊपर से अच्छी तरह ढाक कर (मटकी का मुख क्षत किये हुए स्थान से सटा रहे)। कण्डो की आच करें। ढाक वृक्ष का अर्क धीरे-धीरे सिमट कर मटकी मे आ जाने पर उसे छानकर शीशी मे भर रक्खें। पान के बीडे मे इसे लगाकर, उसमे मराठी[1] की एक घुण्डी रख खाने से एक दिन में ही पुरुषत्व की प्राप्ति होती है। अधिक बेचैनी होने पर स्त्री-प्रसङ्ग करें। (व० गुणादर्श)

प्रमेह, मधुमेहादि नाशक, पलाशमूलासव, वि० योग मे देखे।

(३८) वंध्यत्व-निवारणार्थ—इसकी जड, छाया-शुष्क कर, महीन चूर्ण करले। मात्रा ३ मा० प्रात गौ-घृत मे मिला, मासिक धर्म के चौथे दिन से कुछ दिन चाट लिया करे। बाझपन दूर होता है।

(३९) सुजाक या औपसर्गिक मेह पर—इसकी जड का अर्क और गिलोय का स्वरस १-१ तोला, शहद ६ मा० व मिश्री ३ मा० मिलाकर (यह १ मात्रा है) प्रात-साय सेवन करते रहने से, १५-२० दिन मे जो नया सुजाक विशेष न फैला हो, वह दूर हो जाता है। यह जीर्ण सुजाक के लीन विष को भी जलाकर नष्ट कर देता है। (रसतन्त्रसार से)

(४०) गलगंड, कर्णशोथ, अपस्मार अर्श आदि पर—मूल को चावल के धोवन के साथ पीसकर कुछ गरम कर कान के पास लेप करते हे।

अपस्मार के दौरे के समय—मूल को पानी मे घिस कर, या स्वरस निकाल कर नाक मे डालते है, तत्काल दौरा दूर होता है।

रक्तार्श या वातार्श पर—जड की भस्म के साथ अर्ध भाग काली मिर्च का चूर्ण मिला ३ से ७ मा० तक की मात्रा मे, पानी से, प्रात लिया करे।

श्लीपद (फील पाँव) पर—मूल के स्वरस को श्वेत सरसो के तैल के साथ सेवन करावें। (वृ० मा०)

(४१) ताम्र भस्म (मूल के योग से)—महीन ताम्र-पत्र के समभाग सुवर्णमाक्षिक लेकर, प्रथम माक्षिक को इसकी जड के रस मे खूब खरल कर, ताम्र-पत्र के दोनो ओर लेप कर दें। सूख जाने पर, इसकी एक मोटी जड को लेकर, उसमे छिद्र कर, पत्रों को उस मे रख, छिद्र को, उसी के बुरादे से दबा-दबा कर भर

[1] मराठी (महाराष्ट्र बूटी) का एक हाथ ऊंचा, अकरकरा के समान ही क्षुप होता है, जिसमें बड़ी घुण्डी के समान घुण्डिया लगती हैं। इसकी घुण्डी को मुख में रखकर चबाने से चुनचुनाहट होती हैं। इस क्षुप का उपयोग अकरकरा के स्थान पर किया जाता है। इसका विशेष वर्णन महाराष्ट्री के प्रकरण मे यथास्थान देखिये।

दें। पश्चात् कपड-मिट्टी कर ५ सेर कण्डो की आंच मे फूक दे। एक ही आंच मे भस्म हो जावेगी। यह नेत्र-विकारों मे विशेष लाभकारी है। इसे आजने से आखो के कई कठिन रोग आराम हो जाते हैं। इसे सुरमा मे भी मिलाया जा सकता है। (व० च०)

क्षार—

निर्माण-विधि—ढाक के छोटे-छोटे क्षुप या पचाङ्ग को जलाकर, जो श्वेत राख हो, उसे १६ गुने पानी मे घोलकर मटकी मे भर, बीच-बीच मे लकडी से चलाते रहे। १२ घटे बाद, उसके ऊपर के पानी को निथार, तेज आच पर रख दे, पानी के न रहने पर जो श्वेत क्षार शेष रहे उसे सुरक्षित रख ले।

यह क्षार आनुलोमिक, भेदन, मूत्रल, उदर-विकार एव गुल्म आदि नाशक है।

(४२) रक्त गुल्म पर—इसके क्षार मिश्रित जल ४ सेर के योग से १ सेर गोघृत सिद्ध कर ले। क्षारोदक से घृत को पकाते समय जब फेन आने लगे एव घृत फटे हुए दूध जैसा दीखने लगे तो उसे सिद्ध हुआ समझना चाहिए। इसमे अन्य घृतो के समान फेन-शाति आदि लक्षण नही होते।

इस घृत की मात्रा—६ मा० तक सेवन करावे।

अथवा—उक्त क्षार की मात्रा ४ रत्ती से १ मा० तक थोडे गोघृत मे मिला, प्रात निराहार चटाने से शीघ्र लाभ होता है। इसका सेवन कुछ दिनो तक करावे। यदि घृत सेवन पश्चात् तुरन्त ही प्यास लगे तो, गरम पानी पिलावें।

यदि रुग्णा को घृत से घृणा हो, तो क्षार की मात्रा १॥ मा० तक आवले के ताजे अर्क या स्वरस १ तो० के साथ सेवन करावें।

मासिक-धर्म के कष्ट-निवारणार्थ—यदि मासिक-धर्म कष्ट से आता हो, तो इस क्षार को ग्वारपाठा के छिले हुए पट्ठे पर छिडककर खिलाने से मासिक-धर्म खुल कर आने लगता है।

(ढाक गुण व योग से)

नोट—अभ्रासत्व रसायन, क्षार के योग से बनाया जाता है। रसायनों मे देखिये।

पंचाङ्ग—

(४३) अर्श व यकृत-विकार पर—इसके पचाङ्ग की राख को ६ गुने पानी मे घोलकर, २१ बार छान कर स्वच्छ पानी निथार ले। यह पानी ६ सेर तथा त्रिकुट (सोठ, मिर्च, पीपल) का समभाग मिश्रित कल्क २० तो० और घृत दो सेर, एकत्र मिला पकावे। घृत-शेष रहने पर छानकर रखे। मात्रा—६ मा० सेवन से अर्श शीघ्र नष्ट होते है। (भा० भै० र०)

यकृत्-विकार पर—इसकी उक्त पचाङ्ग की भस्म ५ तो० लेकर १ पाव पानी मे मिला रात भर रखे। प्रात भुने हुए चने छीलकर १ मुट्ठी खिलाने के बाद, उक्त भस्म के निथरे हुए पानी को पिलावे। इस प्रकार कुछ दिनो तक करने से यकृत् के विकार शात हो जाते हैं। इस विकार की यह एक सिद्ध औषधि है।

(व० च०)

(४४) मूत्रकृच्छ्र पर—इसके पचाग मे से विशेषत गोद, छाल, फूल और शुष्क कोपले एकत्र मिला चूर्ण करे। चूर्ण के समभाग ही मिश्री मिला, ६ मा० चूर्ण दूध के साथ प्रतिदिन लेने से लाभ होता है।

(४५) बाल सफा पाउडर—पचाग की राख और अनार की लकडी की राख १-१ सेर के साथ हरताल ३ मा० खूब महीन पीसा हुआ मिलाकर सबको खूब खरल कर रखे। आवश्यकतानुसार पानी मे घोलकर बालो पर लेप करें। एक घन्टे पश्चात् बाल साफ निकल जावेगे, किसी प्रकार की जलन आदि भी न होगी।

(ढाक गुण व योग)

विशिष्ट योग—

(४३) पलाश निर्यासासव—कृमिहरयोग—इसके गोंद का चूर्ण ५ तो०, ग्लैसरीन ७॥ तो० भाप का पानी १३ तो०, शुद्ध सुरा ३० तो० सबको एकत्र बोतल मे भर मुख बन्द कर ७ दिन तक रखा रहने देवे। बीच-बीच मे हिलाते रहे। फिर छानकर शीशी मे भर लेवे। मात्रा—२ या ३ मा० दिन मे ३ बार देने से कृमि, संग्रहणी आदि मे विशेष लाभ होता है। यह सकोचक व बलवर्धक है।

(४४) पलाश मूलासव—प्रमेह, मधुमेहादि-नाशक
—इसकी जड की छाल के १ सेर स्वरस मे मद्य (रेक्टिफाइड स्प्रिट) २० तो० मिला बोतल मे भर रक्खे। मात्रा—१ से ५ बूद तक, दुगुने जल मे मिलाकर लेने से प्रमेह एव मधुमेह मे लाभ होता है।

अन्य पलाशासव के योग हमारे 'वृहदासवारिष्ट-सग्रह' मे देखिये।

(४५) पलाशार्क प्रयोग—ताजे पलाश के मूल, वसत काल मे लेकर छोटे-छोटे टुकडे वनाकर वाष्पीकरण यत्र (भवका) द्वारा अर्क निकाल ले। फिर मूल से चौथाई भाग ताजे पलाश-वीज लेकर जौकुट कर उक्त अर्क मे रात भर भिगो रक्खे, दूसरे दिन इस अर्कयुक्त वीजो का पुन अर्क खीच ले। इसका प्रयोग निम्न प्रकार से भिन्न-भिन्न रोगो पर किया गया है—

(अ) कृमि-रोग पर—प्रथम रोगी को औषध देने के १ घटे पूर्व १ तो० गुड खिला कर, उष्ण जल के साथ उक्त अर्क ३ मा० से १ तो० की मात्रा मे दिन मे ३ वार देवे। रोगी को खाने के लिये गुड के सिवा कुछ भी न देवें। प्रात मल के साथ कृमि निकल जाते है। जब तक मल मे कृमि आना वन्द न हो, तब तक यह प्रयोग चालू रक्खें। कुल ३० रोगियो पर इसका प्रयोग किया, पूरा लाभ प्रतीत हुआ। इससे किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नही हुआ।

(आ) रक्तस्राव वन्द करने के लिये—शरीर के किसी भी स्थान से, किसी भी कारण से खून बहता हो, उस स्थान पर उक्त अर्क का पिचु वनाकर लगाने से, १ मिनट मे स्राव वन्द हो जाता है। गुदा से अर्श की स्थिति मे रक्त आना, पेशाब मे खून आना, कफ के साथ खून आना, एव अत्यार्त्तव मे इस अर्क को देने से तत्काल ही रक्त आना रुक जाता है।

(इ) गर्भस्राव व गर्भपात मे—ऐसे विकार वाली स्त्रियो को रोज १० बूद तक यह अर्क दूध व शर्करा के साथ ९ मास तक देते रहने से गर्भावस्था मे होने वाले हृल्लास आदि उपद्रव नही होते, तथा गर्भ पुष्ट होकर सुखपूर्वक पूर्ण मास मे गौर वर्ण का, पैदा होता है।

(ई) कॉलरा (हैजा) के प्रतिवन्धार्थ—कॉलेरा मे वेक्सीन के टीके लगाने के स्थान मे, इस अर्क के ही इजेक्शन से विशेष लाभ होता देखा गया है। जिन-जिन को इसका इंजेक्शन दिया गया है, उन्हे कालरा नही हुआ।

(उ) क्षतो के रोपणार्थ—मर्क्यूरोक्यूम आदि एलोपैथिक दवाओ के स्थान मे इस अर्क का उपयोग उत्तम होता है।

(ऊ) उपदश मे—इस अर्क का प्रयोग वाह्य एव आभ्यन्तर दोनो प्रकार से किया जाय तो उत्तम लाभ होता है। —वैद्य श्री कान्तिलाल जी एस भट्ट जामनगर आयुर्वेद-विकास के लेख से साभार)

(४६) पलाश-योग से आमलकी रसायन कल्प—एक मोटे पलाश वृक्ष को नीचे से दो हाथ रख कर काट दे। तथा मूल से ऊपर के इस शेष भाग के बीच मे कोल कर, अच्छा गहरा छिद्र कर, उसमे ताजे वजनदार आवलो को भर दे, तथा कोलने पर जो पलाश का बुरादा निकले उसी से अच्छी तरह दाव कर ढक दे। ऊपर से कमल वाले तालाव की मिट्टी लपेट दे और आस-पास वन्य-कडो को जलाकर आवलो को पकने दे। आग ठडी होने पर उन आवलो को निकाल, गुठली दूर कर, गूदे को पीस कर सुरक्षित रक्खें। इसे मधु व घृत के साथ यथेच्छ सेवन करे। केवल दूध पीकर त्रिगर्भरसायन-भवन मे रहे। प्रतिसप्ताह इसी तरह पलास वृक्ष से आवले तैयार कर लिया करे। ४५ दिन तक, रसायन-विधि से, सेवन करने से शरीर मे नई शक्ति का सचार हो, बुढापा नही आता एव दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है।

नोट—पलाश-कल्प के अन्य प्रयोगों को धन्वन्तरि-'कल्प एवं पंचकर्म चिकित्सांक' मे देखिये।

(४७) पलाश-बीज योग से गधक-द्रुति—इसके वीज ३० तो लेकर, टुकडे कर, वकरी के दूध मे ३ प्रहर भिगो रक्खें। फिर सुखाकर उसमे दो तो शुद्ध गधक मिला, एक काच की शीशी मे ६–७ कपरौटी कर, भर दें। तथा शीशी का मुख तार से वन्द कर दे। पाताल-

यत्र-विधि से उसमे तैल निकाल लें। इस तैल को २–३ रत्ती लेकर एक पान के पत्ते मे लगा, उसी मे २-३ रत्ती शुद्ध पारद (या रस सिन्दूर) डालकर, उंगली से इस प्रकार मर्दन करे कि कज्जली बन जाय, उसे खाकर ऊपर से पान का बीडा खावें। प० हरिप्रपन्नाचार्य जी लिखते है कि दवा खाकर दूध पीवे और उसके ऊपर पान का बीडा खावे। शाक, अम्ल, उडद, नमक तथा ककारादि पदार्थो का सेवन न करे। इस प्रयोग से नपुसक मे पुरुषत्व आकर, वली-पलित, वातपित्त एवं कफ के रोग, कुष्ठ आदि नष्ट होते है। इसके समान अन्य रसायन नही है। (अगद तत्र)

(४८) ढाक-पुष्प १ पाव व मिश्री ½ सेर दोनो का चूर्ण कर रक्खे। मात्रा—६ मा ताजे जल या दूध के साथ, सेवन से धातु, स्फूर्ति, [illegible] नष्ट होता है। प्रतिसार मे छाछ के साथ लेते हैं। स्त्रियां भी दूध के साथ १५ दिन तक लेने से [illegible] का तारुण्य आता है।

मात्रा—[illegible]—३ मा से १ तो तक।

छाल का क्वाथ—५ से १० तो।

पत्र—स्वरस—१-२ तो। कोमल पत्र-चूर्ण—३ मा से ५ तो। पुष्प-चूर्ण ३–१ तो।

गोंद का चूर्ण लगभग १ से ३ मा तक, [illegible] उदर व वृक्कों के रक्तस्राव युक्त व्याधियों म २ से ४ मा तक की मात्रा म देते है।

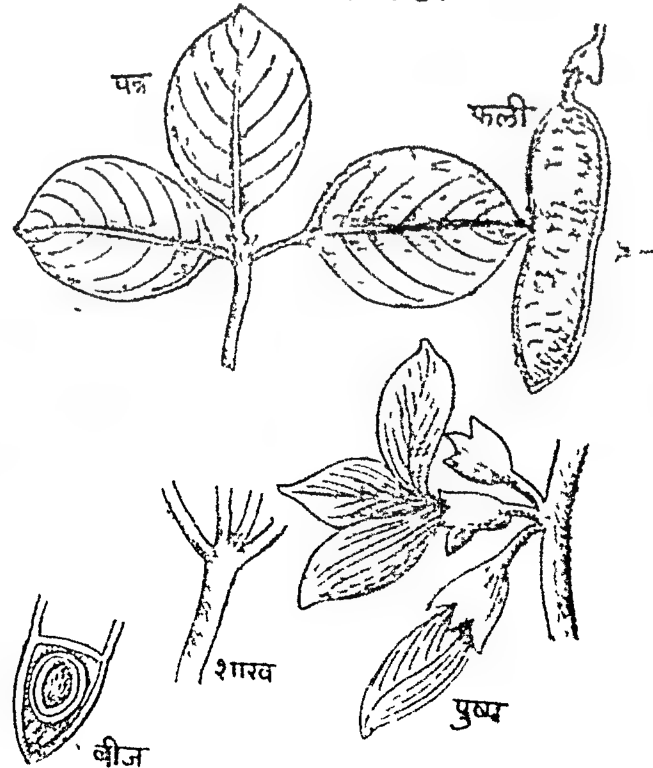
बीजचूर्ण—२ से ८ रत्ती तक, कृमिरोग मे १ से ३ मा तक की मात्रा मे।

ढाक (पलाश) लता (Butea Superba)

उक्त ढाक के ही कुल एव जाति की इस बहुत बढने वाली, एव वृक्षो पर बाई ओर से मुडकर फैलने वाली, मनुष्य के पैर के अगूठे से लेकर कही २ जाघ जैसी मोटी लता विशेष के पत्र–साधारण ढाक पत्र जैसे किंतु आकार मे बहुत बडे, हाथी के कान जैसे, ३० से ४५ से. मी. व्यास के, नूतन लता के पत्र कभी-कभी ५० से मी तक भी देखे जाते है। पुष्प–वसतऋतु मे, लता के तने से ही निकले हुए, पुष्प-दण्ड पर उसके पुष्प ४५ से ६३ से. मी तक लम्बे, वहिर्व्यास की अपेक्षा पुष्प-दल ३ गुना लम्बे होते है। पुष्पो से पीला रग निकाला जाता जाता है। फली –लता के तने से ही निकले हुए लघुवृन्त पर, शीतकाल के प्रारम्भ मे लगती है।

इसकी लता पर भी निर्यास या गोद निकलता है। इसके छाल की मजबूत रस्सिया बनाई जाती है।

यह लता दक्षिण एव मध्य भारत के जगलो मे, विशेषत अवध, बुन्देलखड, छोटा नागपुर पश्चिम बगाल उडीसा, कोकण, कनाडा, बर्मा आदि प्रदेशो मे पाई जाती हे।



नाम—

सं.—लतापलाश, हस्तिकर्ण पलाश, पलासी। हि -ढाक (पलाश) लता, केसूलता। म —पलसी, प्रलम्बवेल, गु —वेलखाकरा। वं —लतापलाश, किंशुकलता। ले.-ब्युटिया सुपेर्वा।

प्रयोज्या ा—मूल, पत्र और गोद।

गुणधर्म व प्रयोग—

मधुर, अम्ल, पित्तप्रकोपक, विषघ्न, मुखदोष एवं अरुचिनाशक है।

(१) बालको की फु सियो पर—पत्र-रस मे दही और हल्दी मिलाकर लगाते है।

(२) बालको के वक्ष-प्रदाह पर—कोंकण देश के वैद्यगण, इसकी जड के साथ समभाग धाय के फूल, काली कसौदी के बीज, बावची, लाल इद्रायण का रस और गोरोचन को एकत्र मिला प्रलेप करते है।

इसका गोद धारक (ग्राही) होता है। बगदेश के कविराज इसका अनेक औषधिरूपेण व्यवहार करते है।

(३) आखो की भीतरी झिल्ली की विकृति से उत्पन्न आखो के धु धलेपन पर—इसका गोद ४ भाग, छोटी हर्र ३ भाग, सेंधानमक २ भाग और लाल चन्दन १ भाग एकत्र चूर्ण कर, पानी मे घोलकर लेप करते है।

नोट—इसकी जड के साथ कई अन्य औषधियों को मिलाकर सर्प आदि विषैले जीवों के दश से उत्पन्न विषबाधा निवारणार्थ प्रयुक्त करते हैं।

ढेंढस—दे०—टिंडे। डेकवार—दे०—ग्वारपाठा। ढेरा—दे०—अकोल। ढोल—दे०—धोल।

ढोल-समुद्र (Leea Macrophylla)

द्राक्षा-कुल (Vitaceae) के इसके क्षुप १-३ फुट ऊ चे, शाखाए हरितवर्ण की, पत्र—दन्तुर, कोमल, सूक्ष्म रोमश, निम्नभाग के पत्र २ इ च एवं ऊपरी भाग के १ इ च विस्तृत, पुष्प—छोटे श्वेत वर्ण के कोमल, फल—छोटे २ काले रग के, चिकने, कोमल, चेरी फल (prunus Serotina) जैसे, मूल—कन्दयुक्त होती है।

इसके कोमल पत्तो का शाक बनाते हैं। जड़ो से एक रग निकाला जाता है जो रगाई के काम आता है। इसके क्षुप, छोटा नागपुर, बिहार, बगाल, आसाम, तथा भारत के कतिपय उष्ण प्रदेशो के जगलो मे पाये जाते है।

नाम—

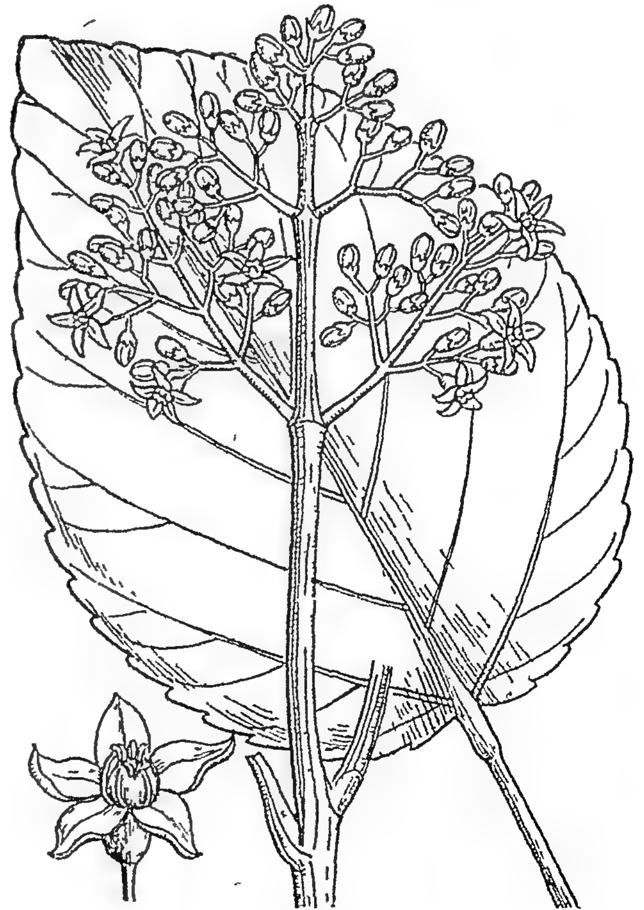
स -ढोल समुद्रिका, समुद्रक, रक्तैरण्ड, इ । हि.—ढोलसमुद्र, भूपलाश। म -डिडा। बं.—ढोलसमुद्र। ले —लीआ मेक्रोफिला।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, कन्द।

गुण धर्म व प्रयोग —

मूल-ग्राही, व्रणरोपक, वेदनाशामक, व रक्तस्रावरोधक है।

दाद, खुजली आदि पर—जड को पीस कर लेप करते है।



ढोल समुद्र
LEEA MYCROPHYLLA ROXB

नाक के शोथ पर—जड को पीस कर, गरम कर प्रलेप करते है। इस प्रकार के लेप से शरीर के किसी भी अग की वेदना दूर होता है।

नाडीव्रण या नासूर मे—जड के रस मे, बत्ती [illegible]

[illegible]

तगर[1] देशी (Voleriana wallichii)

कर्पूरादि-वर्ग एव मासी (जटामासी) कुल (Valerianaceae) के इस बहुवर्षायु, सुगन्धित, लोमश कन्दयुक्त क्षुप के काण्ड—१५–४५ से मी ऊंचे, छोटे गुच्छेदार, पत्र—चौडे लट्वाकार, लोमश, दतुर या लहरदार, तीक्ष्णाग्र, नये पौधे के पत्र सघन १-३ इच व्यास के, गोलाकार, किंचित् कगूरेदार, जैसे २ पौधे बढते है वैसे २ पत्तो का आकार बहुत छोटा, पत्र-वृन्त २-३ इच लम्बा, पुष्प—लोमयुक्त लम्बे पुष्प-दण्ड पर इसके पुष्प गुच्छो मे, बारीक श्वेत या गुलाबी वर्ण के प्राय ५ पखुडीयुक्त, जुलाई मास मे; फल या बीजकोष नन्हे-नन्हे, प्राय लोमयुक्त, सितबर, अक्टूबर मे आते है।

मूल—मूलस्तम्भ मोटा, जमीन मे नीचे दूर तक धसा हुआ, मोटे ततुओ से युक्त होता है। इसके मूलस्तम्भ

तगर देशी
VALERIANA WALLICHII DC

या मूल का ही औषधिकार्य मे व्यवहार होता है। उसके गाठदार, टेढे मेढे, खुरदरे, हलके पीताभ बादामी रग के ४–८ से मी लम्बे, ५–१० मि. मि मोटे टुकडे, कुछ चिपटे से, ऊपरी पृष्ठ पर टूटे हुए पत्तियो के चिन्ह, तथा अधोपृष्ठ पर टूटी हुई जडो के कारण बने हुए छोटे-छोटे गोल चिन्ह होते है। तोडने से ये टुकडे खट से टूट जाते है। मूल या जडे प्राय ६-७ से मी लम्बी तथा १-२ मि. मि मोटी, बाहरी छिलका गाढे रग का, अन्दर का

[1] इस बूटी के विषय मे पहले बहुत मतभेद था। कई लोग 'गुलचादनी' (Tubernae montana Coronaria) को ही तगर मानते थे। जो एक श्यामवर्ण की मोटी, वजनदार, चन्दन जैसी लकडी, तगर नाम से बिकती है तथा जिसे सस्कृत मे पिण्डतगर, कालानुसार्य आदि कहते हैं, उसे ही असली तगर मानते थे। इसका वर्णन-तगर-पिंडी के प्रकरण में आगे देखिये। कहीं २ जल मे पैदा होने वाली एक प्रकार की घास को, तो कही २ एक प्रकार के पीले रग के काष्ठ को ही तगर कहते थे।

किंतु अब वैज्ञानिकों ने निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है। कि प्रस्तुत-प्रसंग का भारतीय तगर (जिसका वर्णन यहा किया जा रहा है), तथा एक विदेशीय तगर (V Officinalis and V, Hardwickii)ही असली तगर है। विदेशी तगर का वर्णन आगे (तगर विदेशी) देखे।

कई लोग सुगन्धवाला (नेत्र वाला) को ही तगर कहते हैं। वास्तव में सुगन्धवाला इससे भिन्न है। 'सुगन्धवाला' का प्रकरण यथास्थान देखिये।

काष्ठ-भाग फीके रंग का होता है। इनकी सुरक्षा के लिये इन्हे ठडे स्थान मे रखते तथा नमी से बचाते हैं। अन्यथा इनका गुणधर्म न्यून हो जाता है।

इसके क्षुप हिमालय प्रदेश मे काश्मीर से भूटान तक ५ से १२ हजार फुट की ऊंचाई पर पर्याप्त रूप से स्वयंजात तथा खासिया की पहाडियो पर और अफगानिस्तान मे भी पाये जाते है, जो विशेष सुगन्धयुक्त होते है।

नोट—(अ) यद्यपि उक्त भारतीय तगर, पाश्चात्य विदेशी-तगर (व्हे० आफिसिनेलिस, जिसका वर्णन तगर विदेशी के प्रकरण में किया गया है, जो १९५३ तक ब्रिटिश-फार्माकोपिया में अधिकृत थी, किंतु अब निकाल दी गई है) के स्थान मे उत्तम प्रतिनिधि है, और अपने यहाँ पर्याप्त मात्रा में होती है, तथापि यहाँ के बाजारों मे अफगानिस्तान से आई हुई तगर का ही विशेष प्रचार देखा जाता है। भारत में विदेशी तगर बहुत थोडी मात्रा में काश्मीर के उत्तर की ओर सोनमर्ग स्थान पर (८ से ६ हजार फुट की ऊंचाई पर) पाया जाता है। बाजारों में इस असली तगर के साथ अन्य देशों की कृत्रिम जातियाँ मिलादी जाती हैं।

(आ) चरक के शीत-प्रशमन, तिक्तस्कन्ध तथा सुश्रुत के एलादि गणों मे यह लिया गया है। इसके अतिरिक्त तगरादि कषाय, दशांगलेप, नतादि तैल आदि कतिपय प्रयोगों में तथा कुष्ठ, यक्ष्मा, उन्माद, वात रोग, वातरक्त, ऊरुस्तंभ, शिरो रोग, नेत्र रोगादि के प्रयोगों मे यह मिलाया गया है।

नाम—

स०—तगर, नत, वक्र, कुटिल, नहुष, इ०। म०—हि०-म०-गु०—व-तगर,। नंदी तगर,। टगर,। अं०—इडियन व्हेलेरियन Indian Valerian ले०—वेलिरियाना वालिचिआई, वे०ब्रुनोनियाना (V Brunoniana), वे राय-झोमा (V Rhizoma)

रासायनिक० संघटन—

इसके मूल मे एक महत्वपूर्ण उडनशील तैल ० ५—२ १२ प्रतिशत पाया जाता है। इस तैल मे मुख्यत से। स्किटर्पेन (SeSquiterpeneS), वेलरिक एसिड (Valoric acid) एव टर्पेन अल्कोहल (Terpene alcohol) तत्व होते है। इसके अतिरिक्त इसमे अराचिडिक एमिड (Arachidic Acid) आदि एवं स्नेहीय अम्लो के मिश्रण रहते हैं।

प्रयोज्याग—मूल एव मूल स्तभ

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, सर, तिक्त, कटु, मधुर, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, त्रिदोपशामक, दीपन, शूलप्रशमन, सारक, मूत्रल, यकृदुत्तेजक, आर्त्तवजनन, कफघ्न मेध्य, हृदयोत्तेजक, वाजीकरण, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न, चक्षुष्य, वेदनास्थापन, सकोचविकास—प्रतिवन्धक, व्रणरोपण, आक्षेपहर, निद्राजनक, मस्तिष्क के लिये बल्य व विषघ्न; है। तथा-रक्तविकार, अग्निमाद्य, उदरशूल, आनाह, यकृच्छोथ, कामला, जलोदर, प्लीहावृद्धि कुक्कुरकास, श्वास, मूत्राघात, क्लैव्य, कष्टार्त्तव, अर्दित, पक्षाघात, अपस्मार सधि-वात, आमवात, वातरक्त, कुष्ठ, विसर्प, जीर्णज्वर, भूतावेश आदि मे व्यवहृत होता है।

(७१) अस्थिभग, दूषित व्रण आमवातादि मे इसका लेप करते है। वेदना-शमनार्थ तथा शीघ्र रोपणार्थ इसके फाट का प्रयोग, उक्त व्याधियो मे और वात-नाडी विकृति युक्त मधुमेह, प्रमेह, कुक्कुर-कास, एव श्वासनलिका के सकोच-विकास मे प्रतिवन्ध जन्य श्वासरोग मे उदर सेवन, प्रक्षालन आदि के रूप मे उत्तम उपयोगी है। जीर्णज्वर जन्य—हृदय एव शारीरिक शैथिल्य तथा त्रिदोष की प्रवलता मे इसका फांट उत्तेजना व मानसिक प्रसन्नता के लिये दिया जाता है। इससे मन्द-मन्द प्रलाप व्याकुलता आदि शमन होकर नाडी मे सुधार हो जाता है। फाट—विधि नीचे देखिये। वात-नाडी-विकृति-जन्य मधुमेह- वहुमूत्र मे फाट के साथ सूक्ष्म मात्रा मे अफीम मिला कर देते है।

फाण्ट-विधि—अर्क-जल (डिस्टिल्ड वाटर) या ताजा जल लगभग आधा सेर लेकर, आग पर रखे। जब उबलने लगे, उसमे इसका जौकुट-चूर्ण १। तोला छोड दे, और ढाक दें। १५ मिनट बाद छान कर काम मे लावे। इसे प्रयोग करते समय ताजा ही तैयार करें। मात्रा—१। से २॥ तोला या १५ से ३० मि मि है।

यदि ताजा फाट तैयार करने की सुविधा न हो तो तगर का घनसत्व तैयार कर रक्खें। इसकी मात्रा—२ से ४ मि मि (३० से ६० बूद) है। इसकी १ मात्रा मे ७ गुना जल मिलाकर, उक्त फाट के स्थान मे दिया जा सकता है।

(२) योषापस्मार (हिस्टीरिया) या अपतन्त्रक मे-भी उक्त फाट हितकारी है, इसके साथ जसद भस्म देने से और भी उत्तम लाभ होता है। इस फाट या जसद युक्त फाट के प्रयोग से जब रोगी को आलस्य, जमुहाई आने लगे तब मानना होगा कि औषधि ठीक कार्य कर रही है। इस प्रयोग से गठिया, पक्षाघात, गले के रोगो मे भी लाभ होता है।

अतत्वाभिनिवेश (Hypochondriasis), अशांति तथा इसी प्रकार की मानसिक विकृति मे भी उक्त प्रयोग का बहुत उपयोग किया जाता है। कम्पवात मे भी कभी कभी यह दिया जाता है।

३ विषम ज्वर मे—इसके चूर्ण के साथ मैनसिल, यशद भस्म, तथा भाग या अफीम को मिला, पान के रस मे खरल कर गोली १ या २ रत्ती की बना सेवन करने से ज्वर जन्य मानसिक व शारीरिक थकावट कम होती है। यदि इस ज्वर मे पारी न आकर केवल शिर शूल या उदर-शूल हो तो उक्त फाट मे यशद भस्म मिलाकर देते हैं।

नोट—हृदय-दौर्बल्य में भी इसका प्रयोग किया जाता है, किन्तु अधिक मात्रा मे देने से रक्तभार कम हो, नाड़ी मन्द होती है, प्रथम उष्णता सी मालूम देती है, फिर प्रस्वेद आने लगता है।

(४) प्रलाप पर—तगर के साथ असगन्ध, पित्त पापड़ा, शखपुष्पी, देवदारु, कुटकी, ब्राह्मी, निर्गुण्डी, नागरमोथा, अमलतास, छोटी हर्र और मुनक्का सबका जौकुट चूर्ण कर क्वाथ बना कर सेवन मे लाभ होता है— (योग चिंतामणि)

(५) बेहोशी तथा हृदय-कम्प (धड़कन) पर—तगर का तेल (यह पाताल यन्त्र द्वारा निकाला जाता है) २ से ५ बूद की मात्रा मे थोड़ा गोद मिलाकर, दाल चीनी के फाट के साथ देते है।

(६) योनिशूल मे—नताद्य-तैल—तगर, बड़ी कटेली सेधानमक, और देवदारु का समभाग मिश्रित कल्क १३ तो ४ माशा तथ। इन्ही सब द्रव्यो का क्वाथ ८ सेर और तिल तेल दो सेर एकत्र मिला पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान रखे। इस तैल मे फाया भिगोकर योनि मे रखने से योनि-शूल नष्ट होता है। यह योग विप्लुता योनि मे हितकर है— (भा भै. र.)

(७) नेत्र आदि के विकारो पर—नेत्र विकार मे—इसके पत्रो का आखो पर लेप करते हैं।

शिर दर्द पर—तगर को पीस कर लेप करते है। विष-विकार, रक्त विकार, भूतोन्माद एव नेत्र व मस्तक के रोगो पर—इसे ६ रत्ती से १॥ माशा तक की मात्रा मे देते है।

नोट—मात्रा—इसके सुगन्धित मूल के टुकड़ो का चूर्ण-१ से २ माशा तक।

अधिक मात्रा मे यह भ्रम, हिक्का, वमन आदि विकारो को पैदा करता है। इनके निवारणार्थ-मुनक्का का सेवन कराते है।

तगर (विदेशी) (*VALERIANA OFFICINALIS*)

उक्त देशी तगर के ही कुल एव जाति के इस बहु-वर्षायु क्षुप के काण्ड २-३ फुट ऊचे, अग्रभाग मे गोला-कार शाखा प्रशाखायुक्त, पत्र—अण्डाकार, नीचे की ओर चौड़े, ऊपर को कुछ पतले, उपपत्र—३/४-२½ इच लम्बे, किनारे दंतुर, पुष्प-फीके लाल रग के, छोटे छोटे रोमश, गुच्छो मे, पुष्पदड-लम्बा एव बहुशाखा प्रशाखायुक्त, फल-चौथाई इच लम्बे, डिम्बाकृति, त्रिशिरायुक्त, बीज-प्रत्येक फल मे १-१, चपटे होते है। फूल व फल काल-अगस्त से अक्टूबर तक। मूलस्तम्भ-गोलाकार, फीका धूसरवर्ण का, सीधा, ३-४ इच लम्बा, कुछ नरम होता है।

इग्लैड, हालैड, बेलजियम, फ्रास तथा जर्मनी आदि यूरोपीय देशो मे—इसके स्वयजात पौधे पाये जाते है, इन देशो मे कही कही इसकी खेती भी की जाती है। सयुक्त

राष्ट्र अमेरिका मे भी इसकी खेती की जाती है। यह भूमध्य सागर के निकटवर्ती देशो मे, तथा पश्चिम एशिया, जापान आदि मे एव भारत मे काश्मीर के उत्तर, सोन-मर्ग-स्थान पर (८ से ९ हजार फुट की ऊंचाई पर) बहुत थोडे प्रमाण मे यत्र-तत्र पाया जाता है। सिंध, वर्मा व सीलोन मे भी यह होता है।

नाम–

हि०-तगर विदेशी, वालछर, मुश्कवाला। म०–कालावाला, विलायती जटामांसी। अं०—ट्र व्हेलिरियन (True Valerian) ले०—वेलिरियन आफिसिनेलिस।

रासायनिक संघटन—

इसके मूलस्तम्भ एव मूलो मे इसका प्रभावशाली उडनशील तेल ०. ५ से ०.९ प्रतिशत तक (वसतकालीन मूलो मे यह तेल २ १२ प्रतिशत तक), तथा व्हेलेरिनिक एसिड (Valerianic acid) एव फार्मिक, एसेटिक व मेलिक एसिड्स, टेनिन, स्टार्च, शर्करा, राल, गोद, ग्लुकोसाईड आदि पदार्थ पाये जाते है। मूल की राख ८ से १० प्रतिशत होती है, जिसमे उत्तम मेगनीज पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

उत्तेजक, आक्षेप एव पेशियो का आकुचन-निवारक हे, अपस्मार, मानसिक-अवसाद वातविकार आदि मे लाभकारी है। इसके शेप गुण, धर्म, प्रयोगादि देशी तगर के जैसे ही है। अविराम ज्वर मे—इसे सिनकोना के साथ देते है। प्रवल वात विकार मे–इससे स्नान कराते या पीडित स्थान विशिष्ट पर इसका परिषेक करते हे।

नोट–उक्त विदेशी तगर की ही एक उपजाति व्हेहार्डविकी (V,Hard wickii) है, जो साथ ही साथ भारत मे काश्मीर के उत्तर की ओर पायी जाती है। इसके वानस्पतिक परिचय, गुणधर्म आदि सब उक्त देशी तगर से मिलते जुलते से है। भारत के बाजारों में ये विदेशी तगर-सुगन्धवाला या असारुन नाम से बेची जाती है।

तगर पिण्डी (*TABERNAEMONTANA CORONARIA*)

कुटज या अर्क कुल (Apocynaceae) के इसके क्षुप रूपी पौधे ५–८ फुट ऊचे, अनेक पतली कोमल शाखा युक्त, छाल–भूरे रग की दूध जैसे रस वाली, पत्र २-५ इ च लम्बे, १-२ इ च चौडे, लम्बगोल, नोकदार, हरे चमकीले (सूखने पर भी हरे), मूलभाग मे सकरे, किनारे तरगदार, छोटे वृन्तयुक्त, पत्रो मे भी दूधिया रस होता है। पुष्प-श्वेत, १-२ इंच व्यास के एकाकी या विभाजित तुर्रे मे १-८ पुष्प, वृन्त बहुत छोटा पुष्पाभ्यतर कोप नलिकाकार, कोमल होता है। चादनी रात मे ये पुष्प बहुत खिलते है, अत यह गुल चादनी कहाता है। इसमे नीलोफर जैसी साधारण महक होती हे। फली–१-१/२ इ च लम्बी, १ इ च चौड़ी, सीग के आकार की चमकीली, त्रिशिरायुक्त, भीतर पीताभलाल वर्ण की, वृन्त रहित होती है। मूल–साधारण लम्बा स्वाद मे कडुवा होता है।

इसके पौधे गगा के उत्तरी प्रदेशो मे, गढवाल, पूर्व बगाल खासिया, अलमोडा आदि मे विशेप होते है। वैसे तो भारत मे प्राय सर्वत्र-बाग बगीचो से लगाये जाते हैं।

नाम–

स —दण्डहस्त, वर्हिण, नन्दीवृक्ष, पिण्डतगर। हि०–पिण्डी तगर, चांदनी (गुलचांदनी)। म०–गांव्या तगर, गोडे तगर, अनन्त। गु०—सागर तगर। बं०–चामेली तगर। अ ०–व्यावस फलावर(Waxflowerplant) ईस्ट इ डियन रोज वे (East Indian Rose bay), सीलोन-जेस्मीन (Ceylon Jasmine) ले०–टेबरनीमोन्टेना कोरोनेरिया। टे हीनियाना (T Heyneana), एरवाटेमिया कोरोनेरिया (Ervatamia Coronaria)

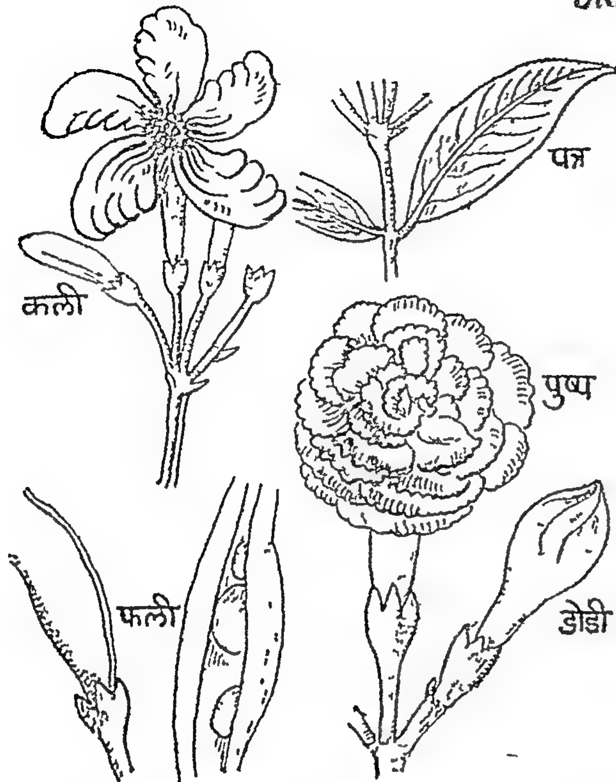
रासायनिक संगठन—

मूल मे राल, तिक्त क्षारोदक (Bitteralkaloid) पौधे के दूधिया रस मे-राल, और काट चाऊक (Caoutchoue) आदि तत्व होते है।

गुण-धर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर, कटु, कपाय, तिक्त-विपाक, उष्ण वीर्य उत्तेजक, पित्त, कफ, विप एव रक्त–विकारो मे उप-

तगर पिण्डी
TABERNAE MONTHANA CORONARIA R BR.



योगी। ऋतुस्राव-नियामक, कामोद्दीपक, ज्वरघ्न, हृद्य, शोथहर, व्रणरोपक, गर्भाशय-उत्तेजक, मृदुविरेचक, मस्तिष्क, यकृत व प्लीहा को शक्तिदायक, पक्षाघात अपस्मार मे उपयोगी है। इसकी जड-स्थानीय वेदना शामक है। इसका लेप करते है। मूल-छाल-कृमिघ्न इसका दूधिया-रस शीत गुण प्रधान है, जख्मो पर शोथ निवारणार्थ एव रोपणार्थ इसे लगाते हैं।

दतपीडा मे-मूल या मूल की छाल को चवाते है।

नेत्रो के धुधलेपन पर-मूल को चूने के पानी मे घिसकर लगाते है। नेत्र के अन्य विकारो पर यह लाभकारी है।

नेत्रपटल के विकार मे-जड को नीम के रस मे उबाल कर अजन करते है।

प्रसूत ज्वर पर-विकृत वात के शमनार्थ-जडो को उबाल कर शरीर पर लेप करते, तथा भारगी-मूल के साथ इसकी जड का क्वाथ बनाकर पिलाते है। औषधि-प्रयोग काल मे रुग्णा को कुलथी का क्वाथ पिलाया जाता है। दक्षिण के कोकण प्रदेश मे यह प्रयोग बहुत प्रचलित है।

आत्र-कृमि पर-मूल को पानी मे पीसकर पिलाते है। आत्र व्रण पर-मूल के क्वाथ मे बादाम का तेल मिला कर पिलाते है।

उन्माद व हृदय की धडकन पर इसके फलो का गुलकन्द खिलाते हैं। अथवा इसके ३ फूल प्रतिदिन ३ बतासो के साथ, १४ दिन खिलाते है। इससे उष्णता जन्य हृदय-दौर्बल्य भी दूर होता है।

त्वचा के रोगो पर-फूलो का रस, तेल मे मिलाकर लगाते है।

नेत्र-पीडा पर-इस क्षुप के दूधिया रस को तैल मे मिला मस्तक पर मलते हैं।

नेत्र-शोथ या आखो के आने पर-इसके पत्तो का दूधिया रस अन्दर लगाया जाता है, ऊपर से लेप भी करते है। व्रणो की जलन या दाह के निवारणार्थ भी यह रस लगाया जाता है।

पत्र-स्वरस-खटमल-नाशक है।

इस क्षुप की लकडी का कोयला नेत्र-शुक्ल (फूली) मे-लाभकारी है। इसका सुरमा बनाकर लगाते है।

इस तगर का तेल अपस्मार मे उपयोगी है।

नोट-मात्रा-५-७ माशा तक।

यह शीतप्रकृति वालो को कुछ हानिकर है। हानि-निवारणार्थ-मिश्री, बतासा या चीनी का सेवन कराते हैं।

तज-दे०-दालचीनी मे। तत्रक-दे०-रायतुंग।

तमाखू[1] (Nicotiana Tabacum)

कटकारी कुल (Solanaceae) के इस स्थूल, रोमश, नलिकाकार, अनेक शाखायुक्त काण्डवाले क्षुप की ऊचाई

[1] प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। अर्वाचीन राज निघटु में तथा योग रत्नाकर मे

लगभग १½-फुट, पत्र—अन्तर पर, मोटे बडे, लम्बगोल, खुरदरे, ऊपर को मकरे, वृन्त-रहित, पुष्प—कलगी पर, १½-२ इच लम्बे, प्रारभ मे पीले, खिलते समय गुलाबी रग के, बाह्यकोष ½ इच लम्ब गोल, ५ विभाग-युक्त अन्तरकोष नलिकाकार ५ खड वाला, लगभग ¾ व्यास का, फली—गुण्डाकार ½-¾ इच लम्बी, बीज—बहुत बारीक, रक्ताभ कृष्णवर्ण के, प्राय पुष्प की पखुडियो की खोल मे लिपटे हुए रहते है।

यह अमेरिका का आदिवासी पौधा, सम्प्रति भारत मे सर्वत्र, प्राय उष्ण प्रदेशो मे वर्षा तथा ग्रीष्मऋतु के प्रारभ मे बोया जाता है।

उक्त देशी तमाकू के अतिरिक्त इसकी विलायती या कलकतिया, पूरवी, सूरती, सुमात्रा, पीलिया, शामरू, कालिया, भोपाली आदि कई जातिया है।

विलायती (कलकतिया) के पत्ते, देशी से छोटे, कुछ गोलाकार एव मुडे हुए से, मुलायम, वृन्तयुक्त होते हे। पुष्प—देशी तमाकू के फूल से छोटे, हरे पीले रग के लगभग ¾ इच लम्बे होते हैं। इसे कक्कर तमाकू, कदहारी तमाकू, बगला मे विलायती तामाक, अंग्रेजी मे टर्किश या ईस्ट इडियन टोबे को (Turkish or East Indian Tobacco) व लेटिन मे निकोटियाना रस्टिका (Nicotiana Rustica) कहते है। यह मेक्सिको, टर्की आदि प्रदेशो का तमाकू पश्चिम पजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल बलुचिस्थान आदि मे बहुत बोया जाता है।

सूरती तमाखू—इसके पत्ते छोटे-छोटे रोमश तथा गध उद्वेजक होता है। यह विशेषत. सौराष्ट्र, सूरत इलाके मे पैदा होती है।

पूरवी तम्बाकू—इसका पौधा प्राय जमीन पर चारो ओर को झुका हुआ, फैला हुआ सा होता है। पत्ते अधिक चौड़े और कम लम्बे होते है।

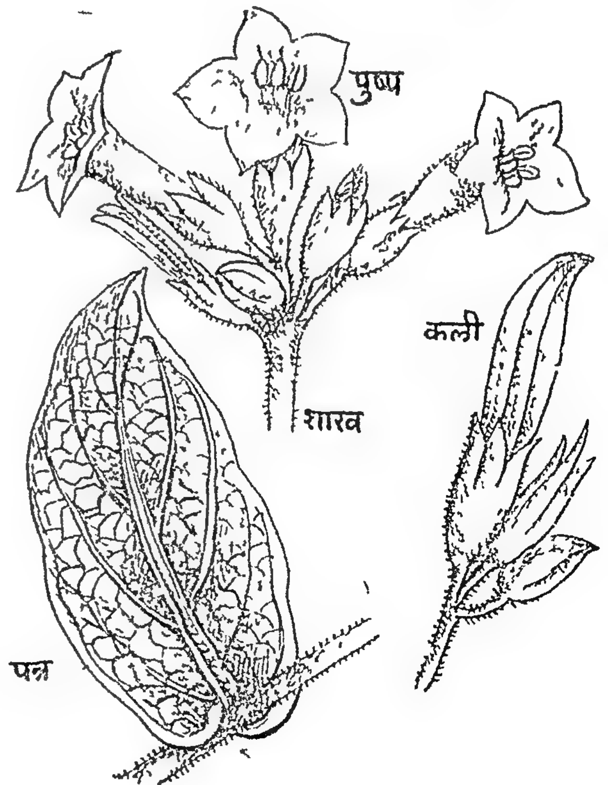
एक जगली तम्बाकू होती है। इसका वर्णन 'तमाखु-जगली' के प्रकरण मे देखिये।

इसे तमाल पत्र नाम दिया गया है। किंतु तमाल पत्र प्राय:तेजपात को कहते है। अन्यान्य आधुनिक साहित्य ग्रन्थों में इसे तमाखु कहा गया है, जैसे 'तमाखु पत्रं राजेन्द्र भजमाज्ञानदायकम्" (कूट श्लोक) आदि।

वस्तुत. तमाखू अमेरिका, क्यूबा देश का निवासी है। सन १४९२ में कोलम्बस इसे यूरोप में लाया, फिर कुछ वर्षों बाद स्पेन देश के टबाका (Tabaca) नामक प्रान्त में इसका विशेष परिज्ञान होने से उस प्रांत के नाम से इस का टोबैको नामकरण हुआ, तथा इसी का अपभ्रंश तमाखू, तंमाकू हुआ। एक फ्रांस निवासी जीन निकोट (Jean Nicot) नामक वैज्ञानिक ने इसके विषादजनक प्रमुख तत्व का पता लगाया, अत. उस विषैले तत्व का निकोटिन या निकोटानिया (Nicotine or Nicotiana) पडा। इस प्रकार इसका पूरा शीर्षोक्त लेटिन नाम रखा गया है।

यूरोपियों ने ही इसका प्रथम दक्षिण भारत में प्रचार किया। फिर इसका उपयोग अकबर के समय में, लगभग १३ वे शतक से प्रारंभ हुआ। अब तो भारत में ही क्या, सारे विश्व में इसका सब जोरो से प्रचार हो गया है।

तम्बाकू
NICOTIANA TABACUM LINN.



नाम—

स—तमाखु, धूम्रपत्रिका, क्षारपत्रा, ताम्रकूट, हि.—तमाखु, तम्बाकू, सुर्ती इ । म. गु—तमाकू, । व—तामाक । अ—इंडियन टोबैको (Indian Tobacco) ले—निकोटियाना टैबाकम ।

रासायनिक सघटन—

इसके मुख्य कार्यकारी, विषैले तत्त्व निकोटिन (Nicotine) और निकोटेने (Nicoteine) है । इनमे से प्रथम तत्व एक प्रवाही रगहीन, उडनशील क्षोरोद (Alkaloid) है जो भिन्न २ जातियो की तमाखू मे, भिन्न २ प्रमाणो मे पाया जाता है, उत्तम जाति का तमाखू मे यह कम प्रमाण मे, तथा अन्य मे यह ७% तक पाया जाता है । तमाखु की प्रबलता का निश्चय इसी तत्त्व के प्रमाण से किया जाता है ।

दूसरा उक्त तत्व भी उडनशील, रगहीन एक क्षार युक्त तैल सदृश (alkaline) होता है, जो उक्त प्रथम तत्व से भी अधिक विषैला होता है । तथा तम्बाकू की विशेष महक एव स्वाद मे यही कारणीभूत है ।

उक्त दोनो तत्वो के अतिरिक्त इसमे निकोटेलाईन (Nicotelline) नामक सूजा जैसा चमकदार तत्त्व निकोटियानिन (Nicotianin) नामक कर्पूर सदृश, उडनशील तत्त्व, राल, वसा, कुछ खनिजक्षार आदि पाये जाते हैं। इसके क्षार मे सल्फेट्स, नाइट्रेट्स, क्लोराईड फास्फेट, मालेटस (Malates), सायट्रेट पोटेशियम, अमोनियम, आक्सेलिक एसिड (Oxalic acid) आदि होते हैं । इसके बीजो से हरिताभ पीतवर्ण का तैल ३६% या इससे भी अधिक प्राप्त किया जाता है । यह तैल वाष्प यत्र द्वारा या अन्य प्रकारो से भी निकाला जा सकता है ।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, डठल, क्षार, तैल आदि ।

गुणधर्म व प्रयोग—

कटु, तीक्ष्ण, तिक्त विपाक उष्णवीर्य, रूक्ष, पित्त-प्रकोपक, कफनिसारक, बस्तिशोधक, वेदनास्थापक, छिक्काजनन, आध्मानहर, कृमिघ्न, मदकर, भ्रामक, वामक कुछ सारक, दृष्टिमान्द्यकर, वातानुलोमन, मूत्रल, लाला-निसारक है तथा कफ, काम, श्वास, उदरवात, दतविकार आदि मे प्रयुक्त होता है । ताजे पत्तो का रस—शूलहर, आक्षेप (शरीर की ऐठन, मरोड आदि) निवारक व कृमिघ्न है । शुष्कपत्र—मे आक्षेप-निवारण की अधिकता है, वामक व कभी २ सारक भी है । इसका मुख्य तत्त्व निकोटिन अति मादक एव विषैला है, किन्तु धूम्रपान के समय यह तत्त्व प्राय नष्ट सा हो जाता है । तथापि इसका धूम्रपान हितकारी नही ।

इसके किसी भी प्रकार के सेवन से (औषधि-प्रयोग को छोडकर) लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है।

इसका धुआ हार्निया (आन्त्रवृद्धि) मे लाभकारी माना जाता है । ग्रथिरोग पर तथा कृच्छ्रश्वास पर इसके पत्तो को आग पर तपाकर वेसलीन या मक्खन मे मिलाकर लगाते हैं । पाडुरोग मे इसका धूम्रपान कराते है (किंतु यह धूम्रपान भिन्न प्रकार का है, आगे धूम्रपान-प्रसग मे देखिये) । श्वेतदाग पर—बीजो का तैल लगाते हैं ।

(१) आध्मान (अफरा) मे—इसके खाने या धूम्र-पान से अफारा और उदरशूल मे कुछ लाभ तो होता है किन्तु जब कोई अन्य उपचारो से लाभ न हो, तब इसका प्रयोग करें । अन्यथा इसका दास बन जाना पडता है ।

उदरशूल पर—पत्तो को कुछ गरम कर उदर पर बाधते है, या पत्रचूर्ण को रेंडी-तैल मे मिला, गरम कर नाभि-प्रदेश पर लगाते हैं ।

(२) बालको के व बडो के कासश्वास आदि विकारो पर—पत्तो का डठल (काली तम्बाकू मिले तो उत्तम) या पत्र के मध्य की बडी मोटी सिरा २० तो साफकर (शाखा का कोई भाग आ गया हो, तो निकाल डाले) १-१ इच के टुकडे कर, मिट्टी के पात्र मे रखकर जलावे निर्धूम होने पर ऊपर ढक्कन लगा दे, जिससे श्वेत राख न होने पावे, कोयले हो जाय । फिर उसमे समभाग सेंधा-नमक मिला, कूट कपडछान कर मजबूत डाटवाली शीशी मे भर रक्खें ।

उक्त क्रिया को इसप्रकार करना और अच्छा है—पत्तो के डठल या सिराभाग के छोटे-छोटे टुकडे कर, उसके समभाग सेंधानमक पीस कर अलग रखे । फिर किसी मजबूत मटकी मे नीचे थोडे से टुकडे बिछा, उन

पर नमक का स्तर दे । एव नीचे ऊपर दोनो का स्तर देकर मटकी को कपड मिट्टी कर, कण्डो की आग मे फूक दें। स्वांग शीत हो जाने पर तथा अन्दर के सब टुकडो का कोयला हो जाने पर, सबको निकाल कर महीन चूर्ण कर शीशी मे भर रक्खे । बाहर की आर्द्र हवा, पानी न लगने पावें, अन्यथा दवा निर्बल हो जाती है ।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक, दिन मे ३ बार देवे । यह योग बालको की कुकुर खासी (हूपिंग कफ) मे विशेष लाभकारी है । अनुपान—नागरवेल के एक पके पान (खाने का पान) के साथ इलायची (छोटी छिलका सहित) २ नग लेकर थोडे पानी मे पीस छान कर थोडा गरम कर उसमे उक्त मात्रा (बालक की आयु के अनुसार) मिला, दिन मे २ या ३ बार पिलावे ।

साधारण खासी हो, तो केवल शहद के साथ चटावें । शीघ्र लाभ होता है ।

बालको के श्वास, ज्वर, आध्मान अतिसार हरे रग के दस्त आदि व्याधियो मे नागरवेल के १ पान और १ से २ रत्ती अजवायन-चूर्ण को ३-४ मा जल मिला महीन पीस, छान कर कुछ गरम कर उसमे उक्त योग की मात्रा मिला पिलावें ।

यदि इसके पिलाने पर किसी बालक को वमन भी हो जाय तो घबडाने की बात नही, क्योकि इससे छाती मे जमा हुआ कफ निकल कर आराम ही होता है ।

बडो की खासी मे इस योग की मात्रा ३ से ४ रत्ती तक दी जा सकती है । (गा औ र तथा व चन्द्र)

श्वासनाशक गोलिया—देशी तम्बाकू १ भाग मे ४ गुना पानी मिला रात भर रखे । प्रात मल, छान कर, उस छने हुए पानी मे, तम्बाकू से ४ गुना (४ भाग) अदरख का रस मिला मद आच पर पकावे । गोली बनाने योग्य गाढा हो जाने पर, उतार कर १-२ रत्ती की गोलिया बना ले । प्रतिदिन १ गोली ताजे शीतल जल से लेवे । अथवा

उक्त योग मे अदरख-रस न मिलाते हुए, केवल तम्बाकू के ही पानी का घन क्वाथ बना उसमे सुहागे का फूला (यदि तम्बाकू १ पाव लिया हो, तो) ½ तो. मिला गोलिया बनाले । प्रतिदिन प्रात १ गोली खाकर ऊपर से सौफ का अर्क पीवे । निरतर सेवन से ३ सप्ताह मे दमा समूल नष्ट होगा ।

श्वास पर अन्य योग—तम्बाकू के हरे पत्तो का शीरा १ सेर, चीनी सफेद १॥ सेर मिला पकावे । शर्बत की चाशनी हो जाने पर शीशी मे भर रक्खे । ३ से ४ मा० यथाशक्ति सेवन करे ।

(यह शर्बत पत्र-रस मे समभाग गुड मिलाकर भी बनाते हैं ।)

श्वास-रोगी की छाती पर सुरती तम्बाकू के बीजो को कोल्हू मे पिरवा कर तैल निकलवा कर आवश्यकता के समय मालिश करे ।

अन्य योग—नीला थोथा की भस्म, तम्बाकू के सूखे पत्ते १ पाव लेकर थोडा सा तर कर, उनके बीच मे १ तो० नीला थोथा की डली रख, किसी मिट्टी की प्याली (या सकोरो) मे रख, कपरौटी कर ३ सेर उपलो की आग मे फूक दें । श्वेत रग की भस्म होगी । १ से ४ रत्ती तक उचित अर्क के साथ दें ।

उक्त गोलियो आदि के योग मौलवी मोहम्मद अब्दुल्ला साहब की पुस्तक से सकलित हैं ।

अथवा—हुक्का पीने वालो के हुक्के की चिलम मे जो तम्बाकू की गुल जलकर शेष रह जाती है, उसे दुबारा जलाकर श्वेत भस्म हो जाने पर, उसकी उचित मात्रा सेवन कराते हैं । कास-श्वास मे लाभ होता है ।

कास रोग में कफ-नि सारणार्थ—खाने की तम्बाकू और काली मिर्च समभाग का महीन चूर्ण कर, उसे बीज निकाले हुए मुनक्को (तम्बाकू से दो गुना) के साथ खूब घोट पीसकर, एकजीव हो जाने पर ½ रत्ती की गोलिया बना इन पर काली मिर्च का महीन चूर्ण बुरक कर, शीशी मे भर रक्खे । १-१ गोली दिन मे ३ बार देने से कफ शीघ्र पक कर सरलता से निकल जाता है । यह गोली तम्बाकू के व्यसनी को विशेष अनुकूल रहती है । दूसरो को कुछ बेचैनी लाती है । बेचैनी हो, तो १-१ तो० घृत पिलावे । (र० तत्र सार से)

श्वास-कास मे तम्बाकू का क्षार भी १-२ रत्ती की मात्रा मे पान के साथ सेवन कराते है । आगे क्षार-विधि

तथा उसके प्रयोग देखिये ।

श्वास पर इसके फूलो का एक उत्तम योग इस प्रकार है—इसके ताजे फूलो को लेकर, भीतर के तन्तु निकाल, अच्छी तरह साफ कर, उसमे ३ गुनी मिश्री मिला काच के पात्र मे डालकर, ढक्कन ढक कर ४० दिन पडा रहने दें । फिर मात्रा ४ से ६ मा० तक खिलाने से श्वास के तीव्र वेग, तथा काली खासी मे भी लाभ होता है । यह एक सन्यासी महात्मा का योग है ।

(३) प्रलाप पर—सन्निपात मे रोगी विशेष प्रलाप (वकवाद) करता हो, निद्रा न आती हो तो इसके शुष्क पत्र के साथ कायफल, कौडिया लोहवान और हीग को पीस कर गुड मे मिला, तथा थोडा पानी मिला, गरम कर, कपडे की पट्टी पर लगा, रोगी के कनपटी, कपाल, और मस्तक परलेप लगे—इस रीति से कपडा वाध दें । लेप भी मोटा लगना चाहिये ।

—(धन्वन्तरि) ।

(तथा र० तत्र सार भा० १)

(४) अण्डकोप वृद्धि या शोथ पर—इसके पत्र पर शिला-रस लगाकर, अथवा कट-करज के वीजो की गिरी को रेडी-तैल मे पीस, पत्ते पर लगाकर अण्डकोप पर वाध देवें । अथवा तम्वाकू के साथ सुलतान चम्पा (पुन्नाग) की छाल व चूना एकत्र पीस कर लेप करे और ऊपर से कपडा वाध दे । अथवा—तम्वाकू का हरा पत्ता आग पर सेंक कर कोषो पर रख वाध दे । यदि हरे पत्ते न मिले तो सूखे पत्ते पर पानी छिडक, तथा तैल चुपड कर थोडा गरम कर वाध देवे । यह सव क्रिया रात्रि मे करनी ठीक होती हैं । प्रात वन्धन, लेप आदि निकाल डालें । प्राय २-३ वार के इस उपचार से ही लाभ हो जाता है । वात-प्रकोप से यह वृद्धि हुई हो, अण्डकोप मे वेदना हो, या उसमे कोई ग्रन्थि उत्पन्न हो रही हो, तो इन प्रयोगो मे लाभ होता है । यदि जल वृद्धि हुई होगी, तो लाभ नही होगा, उस पर अन्य उपचार करे । उक्त प्रयोगो से किसी-किसी के सर्वाङ्ग मे उष्णता होकर वमन भी होती है, ऐसी दशा मे पत्ते को या लेप को निकाल डालें । पुन अन्य दिन प्रयोग करे ।

(५) दात और मसूढो के विकार पर—तम्वाकू सुरती व काली मिर्च १-१ तो० तथा साभर नमक २ मा० एकत्र महीन पीस कर, इस मजन को दिन मे २-३ वार दात व मसूढो पर मलने से दातो की वेदना, मसूढो की सूजन दूर होती है, मसूढो का गंदा पानी निकल जाता है ।

यदि दात या मसूढो मे ही दर्द हो, तो तम्वाकू के सूखे फल, कपूर, काली मिर्च, चूल्हे की जली हुई लाल मिट्टी समभाग ले चूर्ण कर लें और मजन करे ।

यदि दात हिलते हो, तो तम्वाकू ३ तो०, अकरकरा व खडिया मिट्टी ५-५ तो०, काली मिर्च ३ तो०, फिट-करी की खील २ तो० और कपूर देशी १ तो० सवको महीन पीस कर, प्रात-साय मजन करें । मसूढो की सूजन इसके पत्तो के चूर्ण से मलने से भी दूर होती है ।

(६) सिर-दर्द, नजला, तथा अर्धमस्तक-शूल पर—तम्वाकू १ तो०, लौग १४ नग तथा केशर, कस्तूरी १-१ मा० सवको महीन पीस, कपडछान कर, शीशी मे रखे । यह नस्वार ३ वार सुघावे और ३ घन्टे तक पानी न पीने देवे । यदि रात्रि का समय हो, तो समस्त रात्रि पानी न देवे । इससे शीघ्र ही सिर-दर्द दूर होता तथा नजले मे भी लाभ होता है । साथ ही साथ जुकाम (प्रतिश्याय) भी हो, तो—

इसके पत्तो के साथ नीम-पत्र, सूखा धनिया व सिरस के वीज प्रत्येक २ मा० लेकर सवको महीन पीस हुलास (नसवार) वनालें । और नस्य लेवे ।

अर्धमस्तक-शूल (आधाशीशी) पर)—इसके पत्ते व लाग समभाग पानी के साथ पीसकर मस्तिष्क पर गाढा लेप करते है ।

अथवा—आवश्यकतानुसार हुक्के का मैल थोडे पानी मे घोलकर दूसरी ओर के नासिका-छिद्र मे केवल १ बूंद डाले ।

अथवा—तम्वाकू सुरती ५ तो०, जायफल १ तो०, लौग २ नग, छोटी इलायची २ नग के वीज, केशर २ मा० तथा सोठ, दालचीनी, सेधा नमक, श्वेत चन्दन-वुरादा, कायफल, काली मिर्च और वन्दाल १॥-१॥ मा० सवको अत्यन्त वारीक पीसकर यथाविधि नस्य करें । (हकीम मौ० मोहम्मद अव्दुला साहव)

अथवा—तम्बाकू को पानी मे पीस-छान कर, इसकी २-३ बून्दे नाक मे टपकाते, तथा तालु पर इसी को मसलते हैं।

(७) संधि-पीडा, गठिया, मोच, धनुर्वात गुद-पीडा तथा अस्थि-विकारो पर—इसके पत्तो का रस, आक का दूध, धत्तूर-पत्र का रस १-१ पाव लेकर सबको दो सेर सरसो-तैल में मिला मन्द आच पर तैल सिद्ध कर ले। इस तैल को संधि-पीडा, गठिया पर मालिश करे।

अथवा शुष्क तम्बाकू ½ सेर लेकर, २ सेर पानी मे १२ घन्टे भिगोकर, मलकर निचोड छान ले। फिर इस पानी मे १ सेर तिल-तैल व ५ तो० वच्छनाग-चूर्ण मिला, तैल सिद्ध करलें, तथा इसकी मालिश किया करे। यह सर्व प्रकार के संधि-वात, गठिया, कटि-वेदना, कूल्हे या घुटनो के दर्द आदि पर लाभकारी है। यह योग हमारा अनुभूत है।

मोच पर भी उक्त तैल लाभप्रद है। अथवा तम्बाकू के हरे पत्तो पर तैल चुपड कर गरम कर मोच पर बाधने से सूजन दूर होकर आराम होता है।

धनुर्वात पर—रीढ की हड्डी पर इसके पत्तो की पुरिटस बनाकर बाधते है, इससे रीढ की हड्डी का दर्द दूर होता है। अथवा इसके हरे पत्तो पर तैल लगा, कुछ गरम कर बाधते हैं। अण्डकोषो पर चोट लग जाने पर भी यह उपचार किया जाता है।

यदि मास-पेशियो मे आकुचन हो या हड्डियो मे खिचावट सी प्रतीत हो (जैसा कि धनुर्वात में प्राय होता है) तो इसकी पत्तियो को १६ गुने पानी मे औटाकर, चतुर्थांश शेष रहने पर, रोगी को इसका वफारा दिया जाता है। गुदा मे पीडा हो, तो—इसके हरे पत्र घी लगा कर, गरम कर बाधते हैं। या इसके शुष्क पुष्प को तिल-तैल में मिला कर बाधते हैं।

(८) अपचन, अजीर्ण तथा प्लीहा-विकार पर—इसके पत्र-चूर्ण १ भाग के साथ—कत्था, दालचीनी, इलायची और त्रिकुट (सोठ, मिर्च, पीपल) आधा-आधा भाग मिला, सबके महीन चूर्ण को शहद के साथ खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना ले। इन गोलियो को पान के बीडे के साथ सेवन करने से दीपन, पाचन हो क्षुधा-वृद्धि होती है।

प्लीहा-वृद्धि पर—इसके पत्तो को नीबू-रस मे पीस कर लेप करे।

(९) अर्श पर—कडवी तम्बाकू को थोडे पानी मे पीस कर रीठा जैसी गोलियाँ बनाले। प्रतिदिन १ गोली मस्सो पर बाध कर, लगोटा कस लिया करे। शौच के बाद इस प्रकार ३-४ दिन के उपचार से मस्से मुरझा कर स्वय गिर जायेगे। अथवा—

हुक्के के पीले व बदबूदार पानी से शौच किया करे। मस्से मुरझा कर गिर जाते है। अथवा—

तम्बाकू व भाग ५-५ तो० दोनो को महीन पीसकर ७ पुडिया बना ले, और १-१ पुडिया प्रतिदिन कोयलो की आग पर डालकर यथाविधि रोगी को धूनी देवे, तथा धुआ से मस्सो को सेके। इस प्रकार ७ दिन के निरतर सेवन से वे स्वय मुरझा कर गिर जाते हैं।

—हकीम मौ० मोहम्मद अब्दुल्ला साहब

अर्श के अन्य योग 'तम्बाकू जगली' मे देखे।

(१०) गज (इन्द्रलुप्त) तथा जू के नाशार्थ—इसके फूलो को करज के तैल मे पीसकर लेप करते हैं। अथवा फूलो की राख को तिल-तैल मे मिला सिर पर मलते हैं, अथवा हुक्के की गुल को कडुवे तैल मे पीस कर लेप करते है। गज मे लाभ होता है।

जू के नाश के लिये—तम्बाकू को पानी मे घोलकर बालो पर मसलते, और ऊपर कपडा बाध देते हैं। फिर ३ घटे बाद रीठे के पानी से धो डालते है।

(११) व्रणो पर—(ताजे क्षत पर)—इसके पत्तो को गरम कर तैल मे भिगोकर लगाते है। व्रण की पीडा पर—पत्तो को पीस कर लेप करते हैं। व्रण से रक्तस्राव होता हो, तो पत्र की भस्म को मिट्टी के तैल मे मिलाकर लगाते है। अथवा इसके पत्तो को गुलाबजल मे पीसकर लगाते हैं। व्रण मे कृमि हो गये हो तो हुक्के के पानी से धोते हैं। सर्व प्रकार के फोडो पर तथा नासूर पर—हुक्के की गुल को पानी मे पीसकर लगाते हे।

विद्रधि पर—इसके पुष्पो को पीसकर पुल्टिस बना बाधने से वह शीघ्र पक कर फूट जाती है।

जानवरो के व्रणो मे कीडे पड गये हों तो—इसके पत्र को डंठल सहित महीन पीसकर, चूर्ण को व्रणो मे भर देते है।

नेत्र-विकारो पर—प्रारम्भिक मोतियाविंद, रतौंधी, तथा धुन्ध पर—हुक्के की नै मे जो मैल एकत्र होता है, उसे मलाई मे नेत्र मे लगाते हैं। अथवा—देशी तम्बाकू १ तो०, रेंडी-तैल ४ तो०, दोनो को १२ घन्टे खरल कर, रात्रि मे सोते समय एक सलाई प्रतिदिन नेत्रो मे लगाते हे, इससे प्रारम्भिक मोतियाविन्द पर लाभ होता है।

(हकीम मौ० मोहम्मद अब्दुल्ला साहब)

नेत्राभिष्यन्द मे—पत्र-चूर्ण का अंजन करते है। कीचड आना वन्द होता है।

रतौंधी पर अन्य योग—तम्बाकू का धुआ जो चिलम मे जम जाता है, उसे खुरच कर, उतना ही साबुन मिला गोली बना ले। रात को सोते समय यह गोली दो बूद पानी मे घिस, सलाई से लगावे शीघ्र लाभ होता है। (धन्वन्तरि)

(१३) चर्म-विकार—खुजली गीली, छाजन, उकवत आदि पर—इसके १ तो० पत्र को ४० तो० जल मे १२ घन्टे भिगोकर, इस जल से प्रक्षालन करते हैं। अथवा—पत्र को गुलावजल मे घोटकर लेप करते हैं।

श्वेत कुष्ठ, छीप आदि पर—इसके बीजो के तैल की मालिश प्रतिदिन करते हैं।

उपदंश के चट्टे या घावो पर—उसके बीजो के तैल की मालिश प्रतिदिन करते हे।

उपदंश के चट्टे या घावो पर—इसके फूल ६ मा०, गेहू २ तो०, सुहागा १ मा०, सज्जी १ मा० और आमला १ तो० सबको पीसकर लेप बनाकर लगाने से शीघ्र लाभ होता है। (हकीम जी)

(१४) विष-विकार पर—सर्पविष पर लगभग ५ तो० तम्बाकू-चूर्ण को १० तो० पानी मे भिगोकर मसल कर छान कर, पिला दे। यदि सर्पदष्ट व्यक्ति वेहोश हो, तो मुख खोल कर गले मे डाल दें, यदि उसका जबड़ा वन्द हो, न खुलता हो, तो इसे नासिका द्वारा अन्दर प्रविष्ट करे। लगभग ५ मिनिट के बाद वह वमन करना प्रारम्भ करेगा, और विष का असर दूर होगा, और लगभग १ घन्टे मे वह ठीक हो जावेगा। देहाती लोगो को ज्ञात हे कि सर्प, तम्बाकू के खेत में कभी नही जाता। अत. तम्बाकू उसके विष का एक उत्तम अगद है। (नाडकर्णी)

अथवा—१ तो० (व्यसन न हो, तो ६ मा०) तम्बाकू को एक सेर पानी मे, मसल-छान कर आधा पानी पिलादे। आध घन्टे मे कोई असर न हो, तो शेष पानी पिलाने से थोडे ही समय मे वमन विरेचन, मूत्र व स्वेद द्वारा रक्त मे भी लीन हुआ विष बाहर निकलने लगता है। रोगी फिर शीघ्र ही विष-मुक्त हो जाता है। सर्प के दंश-स्थान को भी, हो सके तो तम्बाकू के पानी मे डुबो दे या तम्बाकू के पानी की पट्टी उस पर रक्खे—किन्तु यह उपचार काले नाग के विष पर व्यर्थ है। अन्य प्रकार के सर्प-विष पर हितकारी है। (गा० औ० र०)

हकीमजी अपनी तम्बाकू के गुण व उपयोग नामक पुस्तक मे लिखते है, कि एक गिलास पानी मे १ तोला तम्बाकू खाने की हो या पीने की कोई भी लेकर, अच्छी तरह मिलाले। जब पानी का रग लालिमायुक्त हो जाय, वस्त्र से छानकर पिलादे। थोडी देर मे वमन द्वारा विष दूर हो जावेगा। तीन दिनो के सेवन से पूर्ण लाभ होता है। उक्त प्रयोग की मात्रा (प्रति मात्रा मे १ गिलास पानी मे १ तो० तम्बाकू) दिन मे ३ बार देवे। विष का प्रभाव कम होने पर केवल एकबार पिलावे। तथा सर्पदंश-स्थान पर तम्बाकू की टिकिया बाध दे।

इस उपचार के समय मे रोगी को कोई तर भोजन खाने को न दे। तीसरे दिन गरम दूध मे सोडाबाईकार्ब ३ मा० मिला कर पिलावे।

बिच्छू के विष पर—थोडी सी खाने की तम्बाकू लेकर, थोडा पानी मिला, हाथ की हथेली पर मले, और यदि शरीर के दाये भाग मे बिच्छू-दंश हो तो बाये कान मे, यदि बाये भाग मे डंक हो तो दाये कान मे कुछ बूदे इसमे से टपकाये, ईश-कृपा से दर्द शीघ्र शात हो जायगा। (हकीम जी)

कोई-कोई इसका धूम्रपान मुख मे भरकर दश-स्थान मे इसका धुआ देते है।

(१५) भगंदर पर—तम्बाकू का गुल तथा साप की केचुल की भस्म,-दोनो को कड़वे तैल मे मिला भगदर या नासूर पर लगाने से अच्छा लाभ होता है।

(गृह-चिकित्सा)

भिड, शहद की मक्खी या बर्र के काटने पर—इसके हरे पत्ते कूट कर, रस निचोड कर, उसमे एक लोहे के टुकडे को घिसकर दशित स्थान पर लेप कर दे। पूर्ण आराम होगा। (हकीम जी)

अथवा उस स्थान पर शुष्क तम्बाकू को पानी मे पीस कर लेप करने से भी विष नष्ट होता है।

कुत्ता काटने पर—इसे महीन पीस पानी मे घोल कर तथा थोडा गुड मिला पिलाते है। वमन द्वारा विष निकल जाता है। अथवा—हुक्के का पीला दुर्गन्धित पानी पिलाते हैं।

कुचले के विष पर—प्रारम्भिक अवस्था मे, जब कुचले का विष आमाशय मे ही हो, तो इसका हिम या फाट बनाकर पिलाते है। वमन द्वारा निकल जाता है। आन्त्र मे भी कुछ गया हो तो विरेचन द्वारा निकल जाता है। रक्त मे लीन होने के पूर्व ही यह उपचार लाभकारी है। (गां० औ० र०)

विशिष्ट योग—

(१) क्षार-तम्बाकू—देशी तम्बाकू जो बहुत कडवी हो, १ सेर लेकर, जलाकर, राख को ३ सेर पानी मे डाल रक्खे। उसे तीसरे दिन लकडी से हिला दिया करे। १० दिन बाद उसके पानी को निथार कर मद आच पर पकावे। सब पानी उड जाने पर, पात्र की तली मे जो श्वेत नमक सा जमा रहेगा उसे खुरच कर, महीन पीस, शीशी मे सुरक्षित रक्खे।

इसे १ रत्ती लेकर ४ नग लौग के साथ पीसकर पीडा-स्थान पर लेप करने से आधाशीशी का दर्द शीघ्र दूर होता है।

इसे नियमपूर्वक प्रतिदिन सुरमा की भाति नेत्रो मे लगाने से नेत्रो की पीडा दूर होती है।

जीर्ण-कास श्वास पर—½ से १ रत्ती की मात्रा, पान मे रखकर खिलाया करे। शुष्क कास हो, तो इसे मक्खन मे मिला सेवन करे। (खटाई, तैल की वस्तुओ से परहेज रक्खे)

नासूर के घाव को नीम के पानी से धोकर प्रतिदिन इस क्षार को उसमे भर दिया करे।

तम्बाकू के फूलो का भी क्षार बनाया जाता है—शुष्क फूलो को पानी मे डालकर १० दिन पडा रहने दे, प्रति तीसरे दिन उसे हिला दिया करे। फिर मन्द आच पर रख क्षार बनाले। यह क्षार भी उक्त प्रकार से काम मे लिया जाता है।

अथवा—सूखे फूलो को एकत्रित कर २-३ बार जलाले। श्वेत रग की राख (या क्षार) हो जावेगी।

(हकीम जी)

२. तेल तम्बाकू—इसके बीजो का तेल, कोल्हू मे पेर कर निकाला जाता है; यह हरिताभ पीतवर्ण का गध रहित, उडनशील होता है। प्राय. १०० तोले बीजो से ३५ तोले तेल निकलता है।

तम्बाकू-पत्रो को औटाने से भी एक प्रकार का गहरा भूरा, चर्परा, कुछ तम्बाकू सी गन्ध वाला तेल निकलता है, जो महान विषैला होता है।

किंतु साधारण कार्य के लिए—इसके हरे पत्रो को कुचल कर, रस निचोड लें। इस रस मे बराबर वजन तिल-तेल मिला, हल्की आच पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी मे भर रखे।

यदि हरे पत्ते न मिले तो इसके सूखे पत्तो मे १६ गुना पानी मिला, रात भर रखें। प्रात पकावे। चतुर्थांश पानी शेष रहने पर छानकर, उसमे बराबर तिल-तेल मिला तेल सिद्ध कर ले।

पायरिया रोग - पर—दांतो व मसूडो पर यह तेल रात्रि समय लगाकर सो जावे। प्रात बहुत कुछ लाभ होगा। दात व मसूढो की पीडा भी दूर होगी।

सिर पर—जू, चिलुए या लीख हो जाने पर इस तेल की मालिश सिर पर करें।

बच्चो के सिर मे—बहुधा छोटी-छोटी फुंसिया हो

जाती है, इस तेल को फुरहरी से लगा दिया करे।

रक्त-विकार के कारण यदि शरीर पर छिलके से जम गये हो, तो इस तेल से नष्ट हो जाते है।

गठिया पर इस तेल की मालिश से लाभ होता है। यह तेल गहरे से, गहरे पुराने जख्मो व नासूरो पर भी अच्छा काम करता है।— (धन्वन्तरि)

फाट तम्बाकू—१ रत्ती तम्बाकू को १ पाव उबलते हुए पानी मे डाल, नीचे उतार कर ढक देवे। आध घंटे बाद छानकर काम मे लावे। यह फाट आवश्यकतानुसार पिलाने, व्रण आदि के प्रक्षालन करने आदि मे उपयुक्त है।

मात्रा—शुष्क-पत्र आध से १ माशा। ताजे पत्रो का रस १/८ से आध तोला तक। वमनार्थ-३ से ६ माशे तक सोच समझकर दी जाती है, क्योंकि इसकी पत्तियो का चूर्ण ४ से ८ माशा तक की मात्रा मे घातक होता है। वैसे तो साधारणत १ से २ तोला तक की मात्रा मे यह घातक होता ही है।

इसका सत्व-निकोटिन १ से ४ बूंद तक की मात्रा मे घातक है।

तम्बाकू की घातक मात्रा से होने वाले तात्कालिक लक्षण—

मुख व कंठ मे दाह, अन्नप्रणाली-सहित आमाशय मे दाह-युक्त पीडा, अति लालास्राव, उत्क्लेश, वमन, अतिसार (किसी किसी को, सब को नही), भ्रम, मूर्च्छा, कम्प, शीताङ्गता, श्वास मे कष्ट, सज्ञानाश आदि होकर अन्त मे हृदयावसाद या हार्टफेल होकर मृत्यु। इस हृदयावरोध को टोबेको हार्ट (Tobacco heart) कहते है।

इसके भक्षण, धूम्रपान आदि किसी भी प्रकार के अति प्रयोग से शरीर मे प्रविष्ट हुआ विष रक्त, वात नाडियो एव अन्यान्य सूत्रो को और मासपेशियो को भी प्रभावित कर डालता है जिसे तम्बाकू का व्यसन नही है उसे लक्षण तो तत्काल होते है। किंतु अधिक दिनो तक इसके भक्षण या धूम्रपान करने वाले व्यसनी को इसके जीर्ण विष के लक्षण इस प्रकार होते है।

अग्निमाद्य, कास, कम्पन, हृद्दौर्बल्य, मूर्च्छा, नाडी की तीव्रता या अनियमितता, स्मृतिभ्रंश, अनिद्रा, गुदपाक, दृष्टिमाद्य, नपुंसकता, शीघ्र ही बालो का पकना (पलित), वृक्क एव यकृत के रोग, ज्ञानेन्द्रिय-दौर्बल्य, दांतो की मलिनता आदि। मनुष्यो की तो बात ही क्या? इसका धुआं वृक्षो व पौधो को भी नुकसान पहुँचाता है। इसका धुआं जिस पौधे को लग जाता है। वह शीघ्र ही मुर्झा जाता तथा फिर पनपता नहीं है।

इसका धूम्रपान (भक्षण, सूंघने आदि की अपेक्षा) अधिक अनिष्टकारी होता है। क्योंकि किसी भी विष के धूम्र का अनिष्ट परिणाम, जितना सर्व शरीर व्यापी होता है, उतना अन्य प्रकार से नहीं होता, ऐसा वैज्ञानिको—का अनुभव युक्त कथन है। उक्त जीर्ण विष के लक्षणो के अतिरिक्त इसमे (विशेषत धूम्रपान मे) निस्सन्देह होठ, मुंह, गला, श्वासनलिका एव फुफ्फुस आदि स्थानो मे कैन्सर होता है। इसीलिए अमेरिका की कैन्सर सोसाइटी के अध्यक्ष डा० आल्टन ओचस्नर ने घोषित किया था कि तम्बाकू के किसी भी प्रकार के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा देना ही अच्छा है।

इसके धूम्रपान आदि से स्त्रियो को और भी अधिक हानि उठानी पडती है—जननेन्द्रियो की ग्रन्थियां असमय मे ही निर्बल होजाने से स्त्रीत्व-शक्ति का ह्रास, वन्ध्यत्व-होना, सौन्दर्य नष्ट होना तथा शीघ्र ही बुढापा आ जाना होता है। किसी-किसी को प्राय बार बार गर्भस्राव, गर्भपात भी होता है। यदि कोई सन्तान हुई भी तो स्तनपान द्वारा उसके शरीर मे इसके विष के कुछ अंश पहुचने से वह शीघ्र ही रोग ग्रस्त होकर अकाल मे ही काल कवलित हो जाता अथवा वह सर्व प्रकार से दुर्बल रहता है। डा० रिचार्डसन का कथन है, कि—जो माता-पिता-तम्बाकू का सेवन करते हैं, उनकी सतान अवश्य ही मानसिक व शारीरिक दुर्बलताओ से ग्रस्त रहती है।

तम्बाकू के उक्त अनिष्ट परिणामो से बचने के उपाय—

उक्त तात्कालिक विष-लक्षणो की स्थिति में—तुरन्त ही मदनफल (मैनफल) के क्वाथ आदि वमन कारी द्रव्यो द्वारा वमन करा देना श्रेयस्कर होता है। टेनिन युक्त उष्ण जल से आमाशय-प्रक्षालन भी कराया जाता



है। आक्सिजन सुंघाया जाता है। सिर पर भी शीतल उपचार करते हैं।

उक्त जीर्ण विष के अनिष्टो के निवारणार्थ—तम्बाकू का सेवन सर्वथा बन्द कर देना चाहिए या शनै शनै थोडा २ करते हुए इसे बन्द कर दे। साथ ही ओज-वर्धक पदार्थ-घृत, दुग्ध (विशेषत ताजादुग्ध) आदि का सेवन अधिक मात्रा मे करते रहना चाहिए। इलायची, वच-किसमिस, बादाम आदि मेवा के चबाते रहने से भी इसका व्यसन छूट जाता है।

ध्यान रहे, यद्यपि इसके खाने पीने से, कभी-कभी हाजमा ठीक रहता है, किंतु व्यसन रूपमे अधिक सेवन से, फेफडे व आखो की खराबी आदि उक्त विकारो का शिकार होना पडता है। अत इसका त्याग ही परम श्रेयस्कर हैं। यह उष्ण प्रकृति वालो के लिए तथा हृदय व मस्तिष्क के लिए महाहानिकर है।

धूम्रपान विषयक आयुर्वेदीय सम्मति—

आयुर्वेद मे जिस धूम्रपान के विषय मे कहा है[1] कि आत्मवान-पुरुष को स्नान, भोजन, वमन के बाद तथा छीक-आने, दतधावन करने, नस्य लेने, अंजन करने एव नीद के बाद धूम्रपान करना चाहिए,, वह धूम्रपान आधुनिक विषैले धूम्रपान से सर्वथा भिन्न है। उससे तो सिर का भारीपन, सिरदर्द, पीनस आधासीसी, कर्णशूल आदि कई व्याधिया दूर होती है, ऊर्ध्वजत्रुगत वातकफ जन्य विकारो की शाति होती है। शास्त्रोक्त धूम्रपान यथाविधि सयम-पूर्वक ही किया जाता है, अत आत्मवान शब्द की योजना की गई है।

ध्यान रहे, ऊर्ध्वजत्रुज वातकफात्मक विकार प्राय प्राण व उदान वात, साधक व आलोचक पित्त, तथा श्लेष्मक, बोधक व तर्पक कफ के दूषित होने से ही हुआ करते है। अत. धूम्रपान मे उपयोगी द्रव्य इन दोषो के विकृति-नाशक होना आवश्यक है। तथा वे द्रव्य कषाय, कटु, मधुर व तिक्त रस प्रधान होते हुए चित्त प्रसन्न कारक एव सुगन्धित हो, मदकारी न हो, इसी दृष्टि से वसा, घृत, मोम, जीवक, ऋषभक (मधुरस्कधोक्त) मधुर और श्रेष्ठ द्रव्यो द्वारा युक्तिपूर्वक स्नेहिनी वर्ति बना कर स्नेहनार्थ धूम्रपान करने के लिए तथा अपराजिता, मालकागनी, हरताल, मैनसिल, अगर तेजपत्र आदि गन्धयुक्त द्रव्यो का धूम्रपान शिरोविरेचनार्थ कहा गया है (देखिए चरक सू० अ० ५ श्लोक २२ से ३२ तक)

[1] स्नात्वा भुक्त्वा समुल्लिख्य क्षुत्वा दन्तान्निघृष्य च। नावनांजन निद्रान्ते चात्मवान् धूमपो भवेत्॥ तथा वातकफात्मानो न भवन्त्यूर्ध्वजत्रुजा। रोगा. . इत्यादि (च० सू० अ० ५)

तम्बाकू-जंगली (*VERBASCUM THAPSUS*)

तिक्ता या कुटकी-कुल (Scrophulariaceae) के इसके पौधे, देशी तम्बाकू के पौधे जैसे किन्तु कुछ भूरे, पीतवर्ण के एव अधिक रोमश, पत्र- बर्च्छी जैसे, पाच खण्ड युक्त, ऊपरी भाग चिकना, निम्नभाग रोमश, पत्ते लुआबदार एव कडुवे, पुष्प—पीतवर्ण के पोहकरमूल जैसी गध वाले, फली—लम्ब-गोल, बीज-छोटे अति कडे होते है।

यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से भूटान तक पायी जाती है।

नाम—

सं०-अरण्य तम्बाकु। हि०-जगली या वन तम्बाकू गीदड तमाखू अ०—ग्रेट मुलियन (Great-mulein), ले०—व्हर्बेस्कम थेपसस।

रासायनिक सघटन—

इसके पुष्पो मे एक पीतवर्ण का उडनशील तेल, वसायुक्त क्षार, फास्फोरिक एसिड, फास्फेट लाईम, आदि व पत्तो मे—एक चमकीला मोम, किंचित् उडनशील तेल, राल ७८ प्रतिशत, कुछ टेटिन, एक कटुतत्व, व पिच्छिल द्रव्य आदि पाये जाते है।

प्रयोज्यांग—पत्र, पुष्प, मूल और तेल।

गुणधर्म व प्रयोग—

कटु, तिक्त, रुक्ष, उष्णवीर्य, कफनाशक, मूत्रल, वेदनाहर, धातुपरिवर्तकहै, तथा कास, आक्षेप, आमवात, सधिवात, अतिसार, यक्ष्मा आदि मे प्रयुक्त है। यह



यक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था मे फुपफुसो के विकारो का प्रति-वधक है।

पत्र—स्निग्ध, मृदुकर, वेदनाशामक, आक्षेपहर, मूत्रल व स्वापजनन हैं।

(१) इसके पत्र-चूर्ण को चिलम या हुक्के मे भरकर धूम्र पान करने से कास, श्वास, और क्षय मे लाभ होता है।

(२) कास, कृच्छ्रश्वास, एव दाहयुक्त पीडा पर—२ या २॥ तोला पत्तो को २॥ पाव गोदुग्ध मे उबाल कर आधा शेष रहने पर छानकर दिन मे दो बार या केवल एक वार रात्रि मे सोते समय, थोडा मीठा मिला कर पिलाते हैं। यक्ष्मा मे भी इससे लाभ होता है।

(३) श्वास पर—इसके पत्तो के साथ, देशी तम्बाकू, आक-पत्र और मुलैठी लेकर मटकी मे भरकर कपड मिट्टी कर ६० उपलो की आग मे फूककर, अन्दर की भस्म को आधा से १ रत्ती तक मक्खन के साथ सेवन कराते हैं।

(४) अर्श पर—इस के हरे पत्रो का रस और रसाजन (रसौत) २-२ तो, नीम की निवोली व एलुवा १-१ तो इन सवको खरलकर इसमे और भी इसका पत्र रस मिला खूब घोट कर गोली बनाने योग्य हो जाने पर १-१ माशा की गोली वना ताजे जल से सेवन कराते है। १४ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। सेवन-काल मे घृत व दुग्ध अधिक सेवन कराते हैं।

(५) शोथ पर—पत्रो को गरम कर, उस पर कुछ तेल चुपडकर बाधते हे।

मूल—इसकी जड ज्वरनाशक है। इसका क्वाथ ज्वर, शिर दर्द और आक्षेप मे दिया जाता है।



तमाखू जगली
VERBASCUM THAPSUS LINN

बीज—सज्ञाहर, निद्राजनक, वाजीकरण तथा मछलियो के लिये मारक विप है।

तैल—और पुष्प—जीवाणुनाशक, कानो की पीडा, शोथ एव जलन को दूर करने वाला तथा बालको के मूत्रस्राव मे उपयोगी है।

तमाल—दे०—ओटफल और दालचीनी मे। तरज—दे०—नीबू बिजौरा। तरजवीन—दे०—जवासा मे।

तरबूज (Citrullus Vulgaris)

फल वर्ग एव कोशातकी—कुल (Cucurbitaceae) इसकी लता खरबूजे की लता जैसी किन्तु उससे भी अधिक दूर तक फैलने वाली, (कही कही यह ३०—४० फीट तक लम्बी), पत्र—हरिताभ श्वेत, रोमश, पचखड युक्त- चौडे अनीदार, किनारे कटावदार, पुष्प—हरिताभश्वेत रग के गोल, १ इच व्यास के, (कही कही हरे या काले रग के), फल, गोल, कोई कोई लम्बगोल, गहरे हरे रगके, धारी युक्त, साधारण १ से ३ सेर तक वजन के (कही कही ये फल १० से २० सेर वजन के भी), कच्ची दशा मे इनका गूदा श्वेत होता है,ये प्राय शाक के काम आते

है। पकने पर गूदा लाल व किसी का श्वेत ही रहता है। जिस रग का फूल होता है, प्राय गूदा भी उसी रग का होता है। वीज—काले, लाल या श्वेत रग के चिपटे चमकीले होते है। काले वीज वाले फल का गूदा गुलावी या पीले रग का, लाल वीज वाले का लाल, गुलावी या पीला, श्वेत वीज वाले का गूदा श्वेत होता है।

फलो को ही तरवूज कहते है। मारवाड, राजपूताना के ये फल वहुत वडे एव अच्छे मीठे होते है। सिंध व गुजरात में भी उत्तम तरवूज होते है। वैसे तो प्राय सर्वत्र ही नदी के किनारे की रेतीली भूमि मे प्राय पौष, माघ मे इसके बीज बोये जाते हैं, फाल्गुन, चैत मे फूल आते, वैसाख मे फलता और ज्येष्ठ मे पक कर खाने योग्य हो जाता है। भारतवर्ष के अतिरिक्त यह अन्यत्र वहुत कम होता है। इसी से यह हिन्दवाना कहाता है।

इसकी एक जाति के फलो का ऊपरी छिलका चित्रित-वर्ण का, भीतर गूदा पीला, वीज काले होते है। यह कार्तिक, अगहन मास मे वोया जाता है।

एक जगली जाति भी होती, जिसे गुजरात मे दिल पसद, सिंध देश मे मेली, ढेढसी आदि कहते हैं। ये प्राय शाक के ही काम आते हैं। सिंध के इसी जाति के एक कडुवे तरवूज को किरवुट कहते हैं; यह दस्तावर होता है। रेचनार्थ इसका उपयोग करते है।

नाम—

सं०-कालिन्दक, कालिंग, सुवर्तुल, मांसफल इ.। हिं०-तरवूज, हिन्दोना, हिन्दवाना, मतीरा। म०-कलिंगड। गु-तरवूच, कालीगडु। व.-तरमूज, चेलना। अ.-वाटरमेलन (Water melon) लें० सिट्रलस व्हलगेरस।

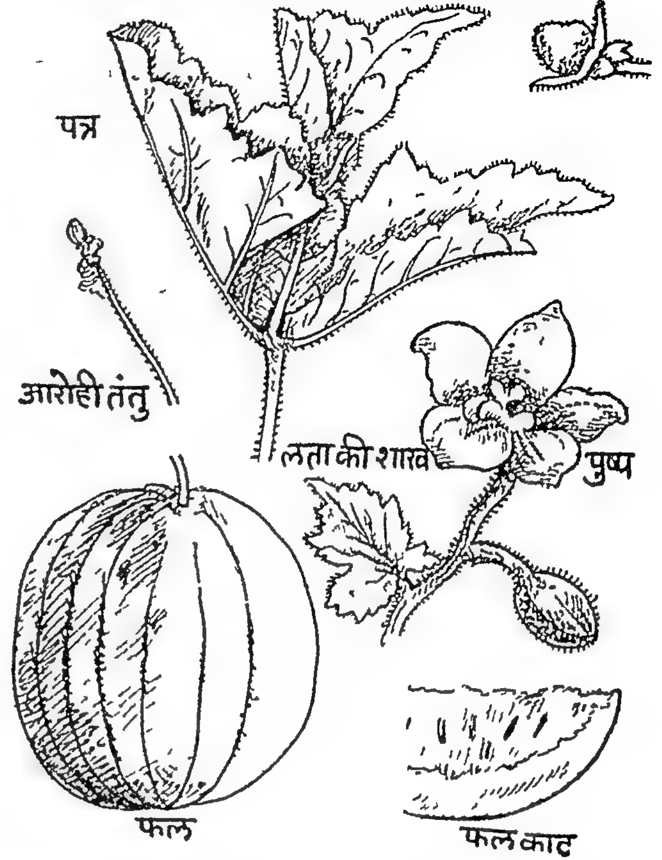
रासायनिक संघटन—

इसके वीज मे ३० प्रतिशत एक पीला, चिकना, स्थिर तेल, तथा सिट्रोलिन (Citrullin) और प्रोटीड्स (Proteids) पाये जाते हैं।

प्रयोज्याग—फल, रस और वीज।

गुण धर्म व प्रयोग–

मधुर, शीतवीर्य, पित्तशामक, पौष्टिक, सर, तृप्तिकारक, मूत्रल, कफ-वर्धक है, दाहशमनार्थ-विशेष उपयोगी है।



कच्चा फल—ग्राही, गुरु, शीतल, पित्त, शुक्र और दृष्टि-शक्तिनाशक है।

पका फल—उष्ण, क्षारयुक्त, पित्तकारक, कफवात-नाशक, वृक्काश्मरी, कामला, पाडु, पित्तज अतिसार, आत्रशोथ आदि मे उपयोगी है।

१. रक्तोद्वेग, पित्ताधिक्य, अम्लपित्त, तृष्णाधिक्य, पित्तज ज्वर, आत्रिकसन्निपात-ज्वर आदि मे पके फल का रस (पानी) पिलाते हैं।

२ मूत्र-दाह सुजाक आदि पर—पके फल के ऊपर चाकू से चोकोर गहरा चीरकर एक छोटा टुकडा निकाल, उसके भीतर शक्कर भरकर फिर उसमे वह निकाला हुआ टुकडा पूर्ववत् जमाकर रात को वाहर ओस मे ऊपर खूटी आदि मे टाग देवे। प्रात उसके अन्दर के गूदे को

मसलकर छानकर पीने से, मूत्रकृच्छ्रदाह दूर होकर मूत्र साफ होता है। शिश्न के ऊपर हुए चट्टे, फुसिया दूर होती है।

यदि सुजाक हो तो फल के पानी १ पाव मे जीरा और मिश्री का चूर्ण मिलाकर पिलाते रहे। अथवा—उक्तविधि से फल के भीतर शक्कर के स्थान मे सोरा ४ माशा और मिश्री ५ तोला चूर्ण कर भर दे, और उसके छिद्र को उसके काटे हुए टुकडे से ही बन्द कर, रात को ओस मे रख, प्रात छानकर नित्य १ बार ७ दिन तक पिलावे। इससे अश्मरी मे भी लाभ होता है।

२ शिर शूल (विशेषत पैत्तिक हो) आदि पर—इसके गूदे को निचोड, छानकर (काच के पात्र मे) उसमे थोडी मिश्री मिला पिलावें। उष्णता से होने वाले सिर दर्द, लू लगने, हृदय की धडकन, मूर्च्छा आदि मे दिन मे २-३ बार पिलाते है।

३ उन्माद या पागलपन मे—इसके गूदे का रस और गोदुग्ध १-१ पाव लेकर मिश्री २ तोला मिला, श्वेत-बोतल मे भर, चन्द्र के प्रकाश मे रातभर किसी खूटी आदि मे लटकाकर प्रात निराहार पिलावे। इस प्रकार २१ दिन पिलाने से लाभ होता है।

—हकीम जी

४ खासी पर—फल का पानी १ तोला, सोठ-चूर्ण ३ माशा और शुद्ध शहद १ तो एकत्र कर थोडा गरम कर पिलावे—हकीम जी।

५ दीपन-पाचनार्थ—फल के गूदे पर कालीमिर्च, जीरा और नमक का चूर्ण बुरक कर खाने से जठराग्नि प्रदीप्त होकर, पाचन-क्रिया मे सुधार होता है।

६ दाद, छाजन (उकौत या चम्बल) और व्रण पर—फलो के ऊपर के हरे, मोटे छिलको को सुखाकर आग मे राख करले। यदि दाद या चम्बल गीली हो तो उस पर इसे बुरकते रहे, सूखा हो तो प्रथम उस पर कडुवा तेल चुपड भर इस राख को लगाया करे।

व्रणो को पकाने से लिये—उक्त छिलको को पानी मे उबाल कर बाध देने से वे शीघ्र पक जाते है।

(हकीम जी की पुस्तक से)

७ सुपारी के अधिक खाने से कभी कभी नशा सा चढना व, चक्कर आते हैं, ऐसी दशा मे इसके खाने मे लाभ होता है।

नोट—फल का सेवन, कफज या शीतप्रकृति वालों को, जिन्हे बार-बार जुकाम होता हो, तथा श्वास, हिक्का के रोगी को एवं मधुमेही कुष्ठी या रक्तविकृति वाले को हानिकारक होता है। विशेषत. सायकाल या रात्रि मे इसे नही खाना चाहिए। इसकी हानि निवारणार्थ—शहद या गुलकन्द का सेवन कराते हैं। इसका प्रतिनिधि पेठा है।

बीज—शीतवीर्य, स्नेहन, पौष्टिक, मार्दवकर, मूत्रल, पित्तशमन, कृमिघ्न, मस्तिष्क शक्तिवर्धक है कृशता, रक्तोद्वेग, पित्ताधिक्य, वृक्कदौर्बल्य, आमाशयशोथ, पित्तज कास एव पित्तज ज्वर, उर क्षत, यक्ष्मा, मूत्रकृच्छ्र आदि मे उपयोगी है।

उक्त विकारो पर प्राय बीजो की गिरी को ठडाई की भाति पीस छानकर पिलाते ह। अनिद्रा, मस्तिष्क-दौर्बल्य एव दाह-प्रशमनार्थ भी इन्हे पीस छानकर पिलाते लेप करते या नस्य देते हैं।

८ पुष्टि के लिए—बीजो की गिरी आधा तो और मिश्री आधा तोले एकत्र पीसकर, हलुवा जैसा बना या केवल ठडाई की भाति पीस छानकर नित्य सेवन करते है।

९ उन्माद या मस्तिष्क-विकृतिपर—इसकी गिरी १ तो रात को पानी मे भिगो, प्रात पीसकर २ तो मिश्री, छोटी इलायची ४ नग के दानो का चूर्ण एकत्र मिला, गाय के मक्खन के साथ खिलाते हे।

१० मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी पर—बीज १ तो को पीस कर ठडाई की भाति आध सेर जल मे घोल छानकर मिश्री मिला, पिलाते रहने से लाभ होता है। साधारण पथरी भी मूत्र द्वारा निकल जाती है।

११ उदर-कृमि, सिरदर्द और ओष्ठ-दारी पर—बीजो को थोडा आग पर सेककर, मीगी निकाल कर खाने से उदर-कृमि नष्ट होते है।

इसकी गिरी को खरल मे खूब घोटकर सिर-दर्द पर लेप करते हैं।

शीत-काल मे या वात-प्रकोप से ओष्ठ फटकर कष्ट देते हो, तो गिरी को पानी मे पीसकर रात्रि के समय

लेप करने से लाभ होता है।

१२ रक्तचाप-वृद्धि पर–नित्य १-२ तो. इसके बीजो को भूनकर खाते रहने से ब्लडप्रेशर घट जाता है। अथवा उत्तम गुड की चाशनी बना, उसमे भुने हुए बीज मिला लड्डू बनाकर खाने से स्वाद के साथ-साथ लाभ की प्राप्ति भी होती है।

नोट–बीज गिरी की मात्रा-४ मा. से १ तो. तक।

ये बीज प्लीहा के लिए हानिकार हैं। हानिनिवारणार्थ–शहद और मिश्री का सेवन कराते हैं।

(१) अवलेह–(लहूकी नजली आबतुर्बुज वाला) पके तरबूज का पानी १० तो० लेकर प्रथम कद्दू के बीजों की गिरी, खीरा ककडी की गिरी, कुलफा के बीज, काहू के बीज १॥–१॥ तो० और मीठे बादाम की गिरी ३ तो० इनको पानी मे घोट कर छान लें। तथा इसी मे यवास शर्करा (तुरज बीन) घोल कर छान ले। फिर उसमे उक्त तरबूज का रस मिला कर पाक करे, गाढी चाशनी हो जाने पर उसमे–खसखस बीज, बबूल का गोंद, कतीरा व गेंहू का सत(निसास्तो) प्रत्येक १४ मा० महीन पीस कर मिलावें, और फिर बादाम का तैल ६ तो० मिला कर रख लें। ५ मा० की मात्रा मे दिन मे ३–४ बार चाट लिया करे। यक्ष्मा, उर क्षत, रक्तपित्त, शुष्क या वातज कास एव नजला मे परम लाभ होता है। –यूनानी सिद्ध योग।

(२) तरबूज का फौलादी शर्बत—मजीठ ५ तो० को कूट कर उसमे ५ तो० फौलाद का बुरादा मिलावें। फिर एक बडे तरबूज मे एक टुकडा चाकू से काट कर अलग करे, तथा तरबूज के भीतर उक्त दोनो द्रव्यो के चूर्ण को प्रविष्ट कर, उसी टुकडे से बन्द कर, तरबूज को अनाज के ढेर मे दबा दे। २१ दिन के बाद उसे निकाल कर भीतर के पानी को छान कर, उसमे समभाग मिश्री मिला शर्बत की चाशनी पकाले। शीतल होने पर शीशी मे सुरक्षित रक्खे। मात्रा–१–१ तो० प्रात सायं सेवन से यकृत–दौर्बल्य, यकृत-शोथ, रक्त की कमी के रोग आदि थोडे दिनो में ही दूर होकर, शरीर स्वस्थ हो जाता है। पाडु रोग, हृदय की धडकन एव अर्श को भी अत्यन्त लाभ प्रद है -हकीम जी (मौलवी मो०अ०साहब) की पुस्तक से)।

नोट–तरबूज के योग से लौह सिंगरफ हरताल यकिया, मंडूर, अभ्रक, मुक्ता, अकीक, जह्रुरद आदि की भस्में भी बनाई जाती है।

तर (तरा) मिरा दे०–सरसो मे।

तरवड़ (Cassia Auriculata)

शिम्बी कुल के पूतिकरंज उपकुल (CaesalPinlaceae) के इसके क्षुप, अनेक शाखायुक्त, ५–६ फुट ऊंचे, पत्र–इमली के पत्र जैसे, प्रत्येक सीक पर ८–१२ तक, सयुक्त, पुष्प–वर्षाकाल मे, पीतवर्ण के छोटे-छोटे, चमकीले, गुच्छो मे, फली, लम्बी–चपटी, पतली, तीक्ष्ण नोकदार, भूरे रग की, १–५ इच लम्बी, ½–¾ इंच चौड़ी; बीज–गोल, चिपटे, छोटे-छोटे प्रत्येक फली मे १०–२० तक होते है।

इसकी छाल कपडा रगने के काम मे अधिक उपयोगी होने से, इसे 'चर्मरगा, कहते है। इसके क्षुप दक्षिण भारत मे मध्यप्रदेश, बरार, तथा गुजरात, काठियावाड, कच्छ, राजस्थान आदि प्राय शुष्क स्थानो मे अधिक पाये जाते हैं।

इसकी एक जाति के क्षुप १०-१५ फुट ऊंचे पत्र-१-१॥ इच लम्बे, फूल-शाखा के अन्त मे, गुच्छ रूप, पीत वर्ण के, फली—३–५ इच लम्बी, चिपटी होती है। इसे मराठी मे मोटी डोगरी, और लेटिन मे Cassia-Montana कहते है। ये क्षुप भी महाराष्ट्र आदि उक्त प्रान्तो मे पाये जाते हैं।

दूसरी और एक इसकी जाति है, जिसके क्षुप उक्त दोनो से छोटे, पत्र उक्त जाति के जैसे ही, पुष्प गुलाबी-लाल, शाखा के अन्त मे तुर्रे जैसी छोटी कलगी मे,

फली—८-१० इंच लम्बी, मुडी हुई, प्राय स्पज जैसी होती है। इसे लाल खखसा, लेटिन मे (C Marginata) कहते है। औषधिकार्य मे यह प्राय नही ली जाती है।

इसकी और एक जाति है, जिसके क्षुप १-४ फुट ऊंचे होते है। पत्र—सनाय के पत्र जैसे। यह एक प्रकार की सनाय ही है। किन्तु सनाय जैसी विरेचक नही है। गुणधर्म मे प्राय प्रस्तुत प्रसग के तरवड जैसी ही है। इसे लेटिन मे C Senne G Obovata कहते है। विशेष वर्णन सनाय के प्रकरण मे देखिये।

आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थो मे इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नही प्राप्त होता। वाग्भट के 'अष्टाग हृदय' के कुष्ठरोग प्रकरणमे 'आवर्त्तकी तुलाद्रोणेपचेत-इत्यादि जो 'आवर्त्तकी घृत' का प्रयोग है, वहा आवर्त्तकी 'मेढासिंगी' है, न कि तरवड। निघण्टु-ग्रन्थो मे से केवल 'कैयदेवनिघण्टु' मे चर्मरगा नाम से इसका सक्षिप्त गुणधर्म मिलता है।

नाम–

स—चर्मरंगा, आवर्त्तकी, पीतपुष्पा हि—तरवड, तरवर, खखसा, तरोंदा, आलूण इ०। म.—तरवड, चांभारतरोटा; चांभार आवड़ी। गु०—आवल। व०—वर्वेर, वरावरोदा। अं०—टेनर्सकेसिया(Tanners Cassia) ले०—कैसिया आरिकुलेटा।

रासायनिक संघटन—

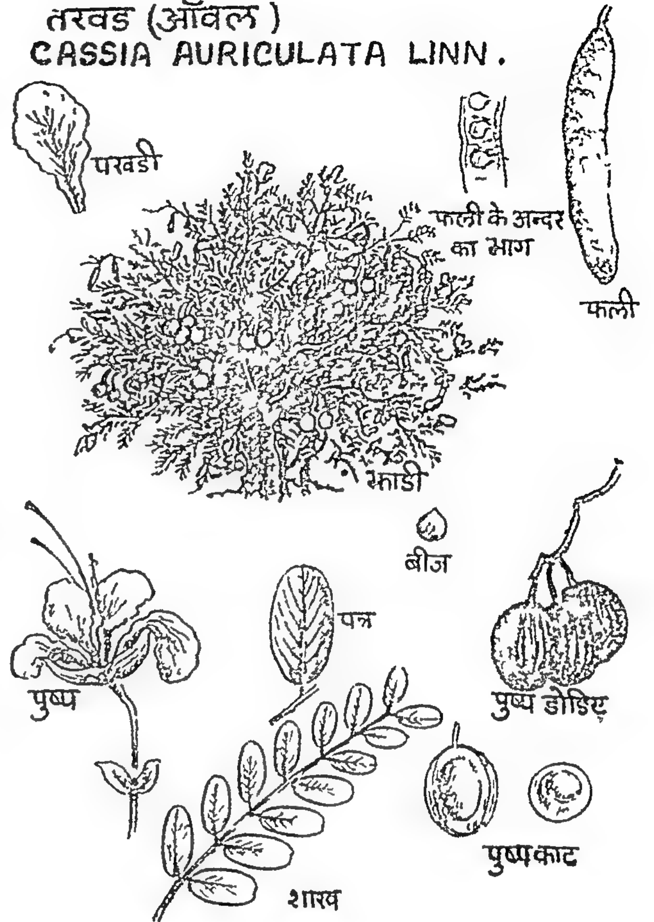
इसकी छाल मे टेनिन २५% पाया जाता है।

प्रयोज्याग—छाल, पुष्प, पत्र, बीज और मूल एव पचाग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, कटुविपाक, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, प्रवलस्तम्भक, चक्षुष्य, मूत्रसग्रहणीय है, कृमिघ्न, अतिसार, प्रवाहिका, रक्तस्राव, श्वास, वातविकार, चर्मरोग, मुखरोग, शूल, शोथ व व्रण आदि मे उपयोगी है।

छाल—सकोचक, धातुपरिवर्तक व पौष्टिक है। तथा मूल—गुरु, मधुर, विषनाशक, पौष्टिक, वातकारक, श्वास रक्तपित्त, तृषा, प्रमेह आदि मे उपयुक्त है।



जीर्णातिसार एव प्रवाहिका मे—छाल का क्वाथ देते हैं।

दातो को दृढ करने के लिये—छाल के चूर्ण का मजन करते, तथा इसकी ताजी लकडी की दातून करते है।

(३) अपचन, विसूचिका, दुर्गन्धयुक्त वमन आदि मे—छाल को नमक के साथ थोडा पानी मिला, पीस छान कर पिलाते है।

(४) उदरशूल, अतिसार और वमन मे—मूल की छाल को चबाते और रस निगलते हैं।

(४) वैल को अधिक वोझ खीचने से कमजोरी आई हो तो, मूल-छाल को कूट कर थोडा नमक मिला १०–१० तो० के लड्डू बना खिलाते रहने से (७ दिन तक १-१ लड्डू) वैल स्वस्थ हो जाता है।

पुष्प—शुक्रस्तम्भक, प्रमेह, मधुमेह, प्रदर गले के रोग आदि मे प्रयुक्त होते है।

(६) मधुमेह मे—पुष्प के चूर्ण मे थोडा तगर-पिण्डी का चूर्ण मिलाकर असली शहद के साथ चटाते हैं। अथवा पुष्पो का फांट बना कर देते है।

(७) श्वेतप्रदर एव अत्यार्त्तव पर—फूलो को पीस कर वत्ती बना योनि मे धारण कराते है।

(८) उरुस्तम्भ—जाघो मे जकड़न, वेदना हो, चलने फिरने मे असमर्थता हो, मूत्र गदला होता हो, तो पुष्प के स्वरस २॥ तो मे समभाग दूध और ६ मा मिश्री मिला पिलाते हैं। ७ या १४ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। मधिवात तथा श्वेतप्रदर पर भी यह योग लाभकारी है।

(९) सगर्भा स्त्री के वमन पर—पुष्प १ तो गोदुग्ध ८ तो. मे पीस छानकर, मिश्री १ तो मिला पिलाते है।

(१०) स्वप्नदोष पर—पुष्पो के साथ मोचरस और अनन्तमूल की छाल एकत्र पीस कर, शक्कर की चाशनी मे शर्बत बनाकर, १ तो तक का मात्रा मे पिलाते है।

पत्र—वेदनाशामक, ज्वर, आध्मान आदिनाशक है।

(११) वातज या चोट आदि लगने से वेदनायुक्त शोथ हो, तथा मोच हो, तो पत्तो का बफारा देते है, तथा पत्तो को पीस, हल्दी व तैल मिला गरम कर बाधते हैं।

(१२) नेत्राभिष्यन्द आदि नेत्र-विकारों पर—पत्र-रस नेत्रो मे डालते, तथा पत्तो को दूध मे पीस कर पुल्टिस बना नेत्र पर बाधते हे। नेत्रस्राव, नेत्र-लालिमा, खुजली, रोहे आदि मे भी इससे लाभ होता है।

(१३) बैल या गाय के उदर मे अफरा हो, तो पत्तो का क्वाथ पिलाते हैं। अतिसार हो, तो पत्तो के साथ नमक मिला खिलाते हैं। (गा. श्री र.)

(१४) उपदश पर—इसके ताजे पत्र लगभग २ तो. के साथ समभाग शमीपत्र (छोकर के पत्ते) एकत्र पीस थोडे पानी मे छानकर उसमे थोड़ा जीरा व धनिया का चूर्ण मिला ७ दिन पिलाते है।

(१५) जीर्ण ज्वर मे—पत्तों की चाय या फाट बनाकर पिलाते है। इससे खुजली, पामा, तथा पैरो के तलुवो की जलन पर भी लाभ होता है।

नोट—कहीं २ चाय के स्थान में इसके पत्तों की ही चाय पी जाती है। जो उत्तम लाभकारी होती है।

बीज या फली—कृमिनाशक और स्तभक है। प्रमेह मधुमेह, नेत्र विकार, अतिसार आदि मे उपयोगी है।

(१६) नेत्रो के अभिष्यन्द आदि पूयमय जीर्ण विकारो पर बीजो को खूब महीन पीस कर, सुर्मा जैसा बना लगाते हैं। इसके महीन चूर्ण मे नारियल या तिल का तैल मिला कर भी लगाते हैं। तथा बीजो का क्वाथ भी पिलाते है।

(१७) मूत्राघात मे—बीजो को पानी मे पीस छानकर पिलाते, तथा नाभि-प्रदेश पर इसका लेप भी करते है।

(१८) बीजो की काफी—बीजो को थोडा आग पर सेक कर मोटा चूर्ण बनाकर, काफी के स्थान पर, पेय रूप से सेवन करते रहने से हृदय को बल प्राप्त होता है। तथा हृद्विकार जन्य मूर्छा मे भी विशेष लाभ होता है।

पचाङ्ग—गर्भाशय-स्राव-निवारक, प्रदर-नाशक, तथा मधुमेह आदि मे लाभकारी है।

प्रमेह, विशेषत मधुमेह मे पचाग के चूर्ण मे थोडा तगर-पिण्डी-चूर्ण मिला सेवन कराते है।

मासिक धर्म की अधिकता तथा रक्तप्रदर मे—इसका क्वाथ दिया जाता है।

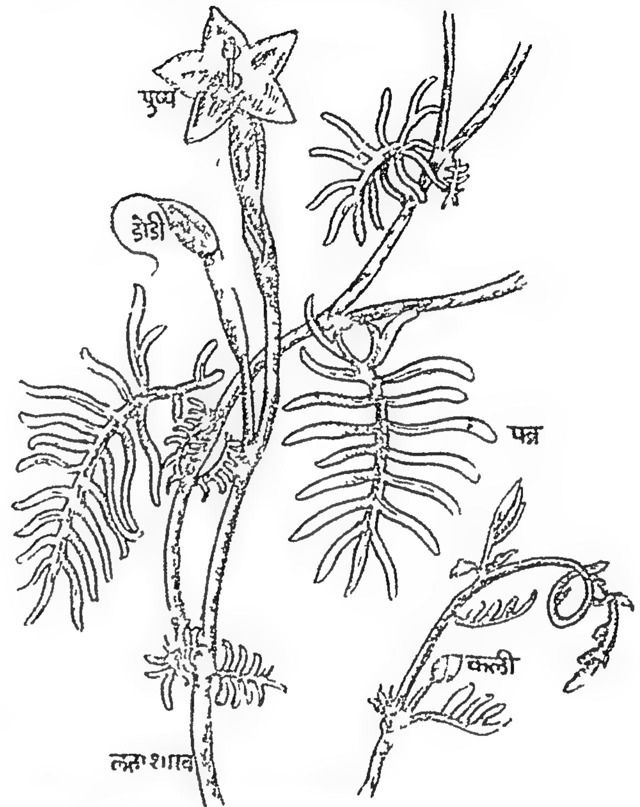
नोट—मात्रा—छाल का क्वाथ २॥-५ तो० तक। पुष्प-स्वरस आधा से २ माशा तक। पत्र-फाट (१ भाग पत्र २० भाग पानी) २॥ से ५ तो० तक। मूल का क्वाथ (१ से २० के प्रमाण से)-१ से २॥ तो० तक। बीजचूर्ण—२ से ४ मा० तक। पचाग-चूर्ण-४ मा० तक।

तरुई—दे०—तोरई, तरुटकन्द[1]।

[1] तरुट कन्द—चरक के सूत्रस्थान (अ० २७) में जिस तरुट नामक शाक विशेष का उल्लेख है, उसे पहाडी भाषा में नेपाल व गढ़वाल की ओर तरुड कहते हैं। यह एक प्रकार का पहाडी कुमुद (कल्हार) का कन्द है। ये कन्द ३-४ इच तक लम्बे व कुछ मोटे होते है। नदियों के किनारे की रेतीली जमीन में गहरा खोद कर इसे निकालते है। यह कन्द भीतर मे श्वेत होता है। इसे उबाल कर खाते हे। नेपाली लोग इसे बल-वर्धनार्थ बड़े चाव से खाते हैं। चरक ने इसके गुणधर्म गुरु (भारी) विष्टम्भी (मलावरोधक) तथा शीतल बतलाये हैं।

तरुलता (*QUAMOCLIT PINNATA*)

त्रिवृत् कुल (Convolvulaceae) की इस सूक्ष्म-लोमयुक्त लता के पत्र–पक्षाकार, ३-५ इञ्च लम्बे, २ इञ्च चौडे, पुष्प–१ इञ्च लम्बे पुष्पदण्ड पर पुष्प अल्प प्रमाण मे, लाल वर्ण के, नालिकार, ५ पखुडीयुक्त, ¾ इञ्च व्यास मे, फल–८ खण्डयुक्त, ¼ इञ्ची गोलाकार, चिकना, बीज–कृष्णवर्ण के होते हे। वर्षा के अन्त मे फूल और फल आते हैं।



इस लता का मूल देश अमेरिका है। बगाल मे प्राय सर्वत्र बाग, बगीचो एवं बजर भूमि मे पाई जाती है।

नाम—

सं०–कामलता। हि० व ब०–तरुलता (यह बगला नाम है)। कामलता। मराठी मे बम्बई की ओर सीता चे केश। ले०–क्यामोक्लिट पिन्नाटा।

प्रयोज्याग—पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग—

वग देश के कविराज इसे अति स्निग्धकर मानते है। यह अर्श और व्रण-नाशक है।

अर्श पर—इसके पत्तो को पीस कर सेवन कराने से, या १ तो० पत्र-रस मे समभाग गोघृत मिला, दिन मे दो बार सेवन कराने से लाभ होता हे।

पृष्ठ व्रण पर—पत्तो को पीस कर लेप करने से लाभ होता है। —भा० वनौषधि (बगला)

तरोई—दे०—तोरई।

तवाखीर[1] (*CURCUMA ANGUSTIFOLIA*)

हरिद्राकुल (Scitaminaceae) के इस छोटे गुल्म-जातीय क्षुप के पत्र–हल्दी-पत्र जैसे १-१½ फुट लम्बे, बरछी आकार के, तीक्ष्ण नोकदार, पुष्प–ग्रीष्म काल मे, १ फुट लम्बे, पुष्प-दण्ड पर पीत वर्ण के पुष्प, फल–

---

[1] यह अरारोट की ही एक जाति विशेष है, जिसका वर्णन भाग १ में है। इसका चित्र अरारोट के ही प्रसग में दे दिया गया है। कई लोग इसे ही तवाखीर मानते हैं। इसकी C Leucorhiza, C Montana, C Aromatica आदि कई जातिया हैं।

तुगाक्षीरी—सुश्रुत के टीकाकार श्री डल्हण जी ने जिस तुगाक्षीरी के विषय मे—"वसलोचनानुकारी द्रव्य विशेष लिखा है, मालूम होता है प्राचीन काल में वस-लोचन के अभाव मे यही प्रयोजित किया जाता था, सितोपलादि चूर्ण, च्यवनप्राशावलेह आदि मे यही डाला जाता था, जो वास्तव में तवाखीर (तीखुर) ही है, जिसका वर्णन यहा दिया जा रहा है। तथा आधुनिक काल मे भी असली वसलोचन के अभाव मे इसे ही लेना विशेष लाभकारी है।

—सम्पादक

गोल अनेक बीजयुक्त होते है ।

इसके क्षुप पूर्व भारत मे अधिक होते है, तथा अरारोट के क्षुप पश्चिम भारत मे पाये जाते हैं ।

यह हिमालय के अयनवृत्त (Tropical) के प्रदेशों मे, तथा अवध, पश्चिमी विहार, उत्तर वगाल आदि मे पाये जाते हैं ।

यह हमारे भारत की एक खास सर्वमान्य प्रचलित वस्तु थी, और अब भी किंचित् प्रमाण मे हैं। पाश्चात्यो ने अरारोट का ही विशेप प्रचार कर इसे तिरोहित सा कर दिया है । अरारोट भी एक प्रकार का तवाखीर ही है, जो कि अमेरिकन आरो नामक वनस्पति के कन्दो से सत्त्वरूप में निकाला जाता है । वैसे ही प्रस्तुत प्रसग की तवाखीर भी उक्त वर्णित वनस्पति के कन्द या जडो के पास के मोटे भागो से सत्त्वरूप मे प्राप्त की जाती थी, जो कि अमेरिकन तवाखीर (अरारोट) की अपेक्षा कम शुभ्र, किंतु अधिक ग्राह्य गन्ध एव स्वादयुक्त होती थी । खेद है अब यह वाजार मे लुप्तप्राय हो गई है । जो कुछ प्राप्त होता है, वह भी मलावार और ट्रावनकोर से आयात होती हैं ।

नाम—

सं०–तवक्षीर, तुगाक्षीरी । हि०–तवाखीर, तवखीर, तवाशीर, तेखुर, तिकोरा । म०–तवाकीर, तवकीर । वं०–टिक्कुर । अं० करक्युमा स्टार्च (Curcuma starch), ईस्ट-इ डियन अरोरूट (East Indian arroroot)। ले०–कर्क्यु मा आगस्टि फोलिया ।

रासायनिक संघटन—

इसमे स्टार्च, शर्करा, गोंद और वसा होती है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर, शीतवीर्य, मधुर, विपाक, सुगधित, स्निग्ध, पौष्टिक, कामोद्दीपक, वात-पित्त-शामक, ग्राही, हृद्य, मूत्रल, तथा क्षय, पित्त-विकार, कुष्ठ, दाह, अरुचि, अग्निमाद्य, तृपा, कास, श्वास, ज्वर, कामला, पाडु, वृक्काश्मरी, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, रक्तपित्त आदि मे पथ्यरूप मे प्रयुक्त होता है ।

(१) यह एक उत्तम शातिदायक, पौष्टिक पथ्य है। काजी, लपसी या रवडी वनाकर दी जाती है। कोष्ठगत वात, प्रवाहिका, ग्रहणी, हृद्रोग, अतिसार, शुक्र-दौर्वल्य मे तथा मथरज्वर, आत्र या मूत्र-नलिका के शोथ या व्रणो मे इसकी लपसी बनाकर देते है ।

(२) वार-बार मूत्र-प्रवृत्ति होती हो, किंतु मूत्र बहुत कष्ट से होता हो, तो इसकी बहुत पतली काजी (वार्ले-वाटर जैसी) बना, उसमे थोडा दूध व शक्कर मिला पिलाते है ।

(३) यह वालको के लिये, किसी भी रोग के बाद हुई कमजोरी को दूर करने के लिए, शक्ति-वर्धनार्थ उत्तम खाद्य है—इसे गोदुग्ध मे या जल मे पका, पतली रबड़ी जैसी वना थोडी मिश्री मिलाकर सेवन कराते है ।

(४) पित्त-विकारो पर—इसे घृत मे मिलाकर खिलाते हैं ।

(५) रक्त-प्रदर हर—इसमे राल और गेरू मिला, घृत के साथ सेवन कराते है ।

(६) दाह, अग्निमाद्य एव रूक्षता पर—इसमे थोडा इलायची-चूर्ण मिला शक्कर की चाशनी मे बनाई हुई वर्फी सेवन कराते है । यह शातिदायक, दीपन एव मार्दवकर पथ्य है ।

इसके शेष गुणधर्म अरारोट जैसे ही है ।

मात्रा—१-२ तो० विशेपत पेया के रूप मे दिया जाता है।

ताड़ (*BORASSUS ELABELLIFERA*)

फलवर्ग एव नारिकेल-कुल (Palmae) के इस शाखाहीन, सीधे वृक्ष की ऊचाई ६०-७० फुट, काण्ड-स्थूल, गोल, २-३ फुट व्यास का, खुरदरा काला उत्सेध-युक्त, पत्र–काण्ड मे निकले हुए ४-५ हाथ लम्बे, ३-६ इच चौडे, पत्र-दण्ड पर पत्र पखाकार ५-६ फुट लम्बे, उभरी हुई मोटी सिराओ से युक्त, चिमडे, कडे, धारीदार किनारी वाले, पुष्प–वसत ऋतु मे, कोमल, गुलावी व पीले रग के, एक लिंगी, पु जाति मे–अमलतास की फली

जैसे लम्ब गोल जटा या बालो के ऊपर ही ये पुष्प आते हैं। ये मोटी जटाये ही पुष्पदण्ड है। फल–शरद ऋतु मे, स्त्री जाति के वृक्षो के उक्त पुष्पदण्ड पर पुष्पो के स्थान पर, नारियल जैसे १५-२० फल, गोलाकार, कडे, कृष्णाभ धूसर, पकने पर पीताभ हो जाते हैं। कोमल कच्ची दशा मे फलो के भीतर कच्चे नारियल के दूधिया पानी के समान पानी होता है। पकने पर भीतर का गूदा सूत्र-बहुल, रक्ताभ पीत, मधुर होता है। बीज–प्रत्येक फल मे, अण्डाकार कुछ चपटे, कडे १-३ बीज होते हे। ये फल प्राय वर्षाकाल मे पकते है।

ये वृक्ष भारत के उष्ण एव रेतीले प्रदेशो मे, तथा बर्मा व सीलोन मे अधिक होते है।

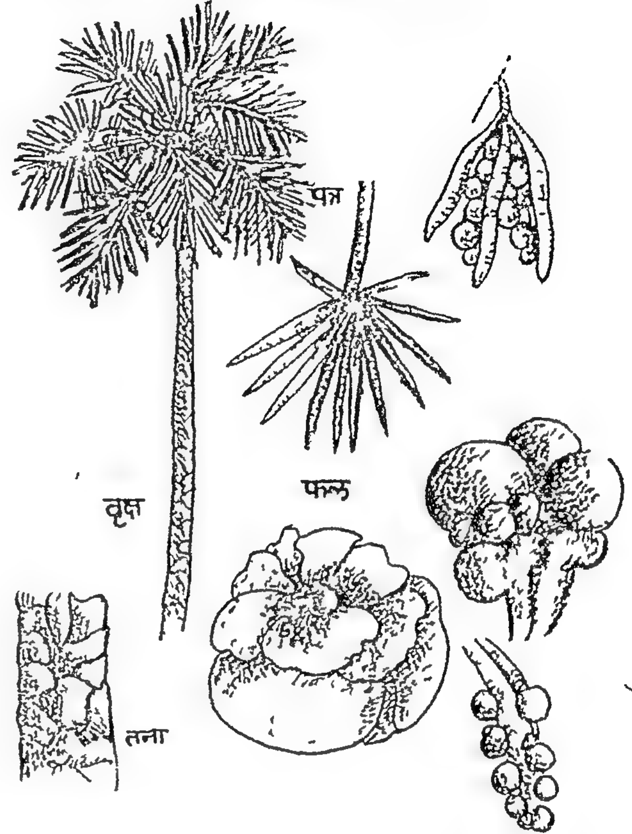
जिस प्रकार खजूरी वृक्ष से नीरा नामक रस (जो मदकर होने से ताडी भी कहाता है) प्राप्त किया जाता है, तैसे ही ताड वृक्ष से ताडी नामक रस प्राप्त होता है। इस पर पुष्पो के प्रारम्भ काल मे रस निकलना प्रारम्भ होकर वर्षा ऋतु मे बन्द हो जाता है। इस रस या ताडी को प्राप्त करने के लिये वृक्ष के शिखर पर पत्र-समूह के नीचे जो ताल-मजरी (Spadix) होती है उसके निम्न भाग पर लोह-शलाका से, शाम को ५-६ छेद करते है, जिससे यह रस स्रवित होने लगता है। उस पर मिट्टी का पात्र या कलईदार पात्र (चूने के जल से पोतकर) बाधते ह। इस पात्र को प्रात उतार लेते है।

स्त्री-जाति के वृक्ष से नर-जाति की अपेक्षा १॥ गुनी अधिक ताडी प्राप्त होती है। प्रत्येक वृक्ष से प्रतिदिन कम से कम ७ सेर तक ताडी प्राप्त होती है। तथा प्रत्येक वृक्ष ६०-७० वर्ष तक इस प्रकार स्रवित होता रहता है। इस ताडी मे १३-१५% शर्करा होती है। अत इसकी गुड, शर्करा, दक्षिण भारत मे अत्यधिक प्रमाण मे बनाई जाती है।

वृक्ष के उगने के १०-१५ वर्ष के बाद इसमे फल आते हैं। इसकी आयु ८० वर्ष की मानी गई है, तथा यह अपने आयु काल मे एक ही बार फलता है। सीलोन की ओर इसकी एक ताड-पत्र नामक जाति होती है, जिसकी ऊचाई १५० फुट तक, तथा पत्रदण्ड सहित इसके पत्र १८-२० हाथ लम्बे होते हैं। ये पत्र कुछ मुला-

ताड़

BORASSUS ELABELLIFER LINN.



यम होने से अब भी सिंहल द्वीप, कर्नाटक, द्रविड मे इन का उपयोग ग्रन्थ या मत्रादि लिखने मे किया जाता है। भूतकाल मे तो इन्ही पत्रो पर बडे बडे ग्रन्थ लिखे जाते थे। लिखने के पूर्व पत्रो को दूध, जल मे उबाल कर शुष्क कर, लोह-शलाका से, पक्की स्याही से लिखा जाता है। ये पत्र कागजो की अपेक्षा अत्यधिक वर्षो तक टिकते व सडते या गलते नही है। पत्रो से उत्तम पखे और छत्ते भी बनाये जाते है। ताड-पखो की वायु उत्तम त्रिदोषनाशक होती है।

ताड की ही एक जाति विशेष Metroxylon-Rumphii या Sagus Laevus लेटिन नाम के वृक्ष विशेषत बोर्नियो प्रदेश मे होते हे। इनके पिण्ड के भीतरी भाग को खूब महीन कर बार-बार धोकर एव शुष्क कर साबूदाना (Sago) तैयार किया जाता है। इसमे स्टार्च की मात्रा प्रचुर परिमाण मे होती है। साबूदाना प्राय बोर्नियो मे विपुल प्रमाण मे तैयार किया

जाता और सर्वत्र भेजा जाता है। विशेष वर्णन सावूदाने के प्रकरण मे यथास्थान देखिये।

चरक के मधुर स्कन्ध, कषाय स्कन्ध, पत्रासव मे तथा कास, अश्मरी, शिरोरोग, क्षतक्षीण आदि के प्रयोगो मे, तथा सुश्रुत के शालसारादि व शिरोविरेचन मधुरस्कन्ध मे इसका उल्लेख है।

इसीकी एक जाति-विशेष माडी (माड) (Caryota urens) है। माडी का प्रकरण देखें।

नाम—

स०-ताल, तृणराज, महोन्नत, लेख्य-पत्र इ०। हि० म० गु०-ताड। बं०-ताल गाछ। अं०-पामीरा पाम (Palmyra palm)। लै०-बोरेसस फ्लेबेलिफेरा।

रासायनिक संघटन—

इसमे गोद, वसा तथा अलब्युमिनाईडस पाये जाते है।

प्रयोज्याग—मूल, पत्र, फल, पुष्पदण्ड, पुष्प, ताडी, बीज, छाल, क्षार।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, तथा वातपित्त-शामक, दाह-प्रशमन, बल्य बृंहण, ज्वरघ्न, त्वग्दोष-हर रक्त-शोधक व कफ-निःसारक है।

मूल—शीतल, कफ-निःसारक, सुगन्धित, मूत्रल, मूत्रकृच्छ्र, वात, रक्तपित्त आदि मे उपयोगी है। इसका स्वरस कुक्कुर-कास मे देते है। कोमल मूल का रस हिक्का मे देते है।

(१) मूत्राघात एव पूयप्रमेह (सुजाक) जन्य मूत्र-दाह पर—इसके छोटे क्षुप के कोमल मूल की गोल गाठ या कद को, चावल के धोवन मे घिसकर या पीसकर, थोडी शक्कर मिला पिलाते है।

(२) उदर-कृमि पर—इसकी जड और सोठ के समभाग चूर्ण को काजी मे पीसकर, थोडा गरम कर नाभि पर लेप करने से कृमि नष्ट होते है।

(भा० भै० र०)

(३) विपूचिका (हैजा) पर—इसकी जड को चावलो के धोवन के साथ पीसकर नाभि पर लेप करनेसे लाभ होता है। (भा० भै० र०)

(४) मूत्रातिसार पर—जड के साथ समभाग खजूर, मुलैठी, विदारीकन्द और मिश्री का चूर्ण कर (प्रात-साय ३-३ मा०) शहद के साथ सेवन से लाभ होता है। (यो० र०)

(५) सुखपूर्वक प्रसवार्थ—वृक्ष के उत्तर दिशा की मूल को विधिपूर्वक लाकर कमर पर डोरे से बाधते है। कहा जाता है कि इसकी जड को मुख मे रखकर चबाने से दात स्वय गिर पडते है, कोई कष्ट नही होता।

पत्र—कोमल-पत्र, रक्त-स्तम्भन, रक्त-शोधक, दाह-प्रशमन, कफ-निःसारक, शोथहर, व्रण-रोपण, मस्तिष्क-बल-वर्धक है।

(६) रक्तस्राव, रक्तपित्त, दाह, उपदश, रक्त-विकार, शोथ और व्रण मे पत्रो का स्वरस दिया जाता है। उपदश की द्वितीयावस्था मे भी यह स्वरस लाभकारी है।

(७) सान्निपातिक ज्वरो मे—पत्र-स्वरस का अनुपान रूप से प्रयोग करते है। इससे ज्वर, दाह, प्रलाप, आदि शात होते तथा हृदय को शक्ति प्राप्त होती है।

(८) मेदो-वृद्धि पर—इसके पत्तो के क्षार को सम-भाग हीग मिला, चावलो के साथ सेवन करने से लाभ होता है। (वृ० नि० र०)

फल—मधुर, स्नेहन, पौष्टिक, मदकारक, मज्जा-वर्धक, कामोद्दीपक, कृमि-नाशक, त्वग्दोषहर तथा पित्त, दाह, तृषा, थकावट, वात-रोग, रक्त-विकार, मूत्र-दाह आदि नाशक है। अधिक मात्रा मे विष्टभी है।

कच्चा कोमल फल—गुरु, शीत, मधुर, स्निग्ध, पित्त-शामक, बृंहण, विष्टम्भी धातुवर्धक, तृप्ति-कारक कफ-कारक, मासवर्धक, तथा वात, श्वास, दाह, व्रण, क्षत, क्षय, रक्तदोष आदि मे उपयोगी है। इसमे कच्चे नारियल जैसा अन्दर पानी होता है, जो पिया जाता है। यह दूधिया रस हिक्का मे लाभकारी है। इसमे जोश देकर निकाला हुआ रस-पौष्टिक, मज्जावर्धक, कामोद्दीपक, मादक, कफनिःसारक, तथा तृषा-दाहनाशक हैं।

९ कृशता पर—इसके गूदे के छोटे-छोटे टुकड़े कर

तथा गुलाब जल मे तरकर मिश्री मिला, अल्प-मात्रा मे सेवन से दुर्वलता, कृशता तथा दाह तृषा घवराहट दूर होती है। अधिक मात्रा मे यह दुर्जर है।

पका फल—वृष्य, हृद्दौर्वल्यनाशक, वहुमूत्रल, कफकारक, दुष्पच, तन्द्राकारक, पित्त, रक्तवृद्धिकर, अभिष्यन्दी, शुक्रकर है।

चर्मरोग मे—इसके गूदे का लेप करते है। मूत्रदाह मे-गूदा खिलाते है।

बीज–लघु, मधुर मूत्रल, मृदुरेचक, पित्तशामक, कफकारी, स्निग्ध, वातपित्तहर, रक्तपित्तनाशक, शुक्रवर्धक, कुछ मादक हैं। मूत्रकृच्छ्र मे हितकर है। ये सब गुण बीज की गिरी के हैं।

पुष्प-दण्ड जटा और पुष्प—प्राय इसके राख या क्षार की योजना की जाती है।

भस्म या क्षार-विधि—पुष्पदण्ड या जटाओ के टुकडे कर, मटकी मे वन्द कर, शराव सपुट एव कपडमिट्टी कर, शुष्क हो जाने पर एक खड्डे मे रख कण्डो की आग मे फूंक दे। शीतल हो जाने पर अन्दर की भस्म को पीस छानकर शीशी मे भर रक्खे। यह लेखन, भेदन, आर्त्तवजनन एव उदर-विकार चर्म-रोगादि नाशक है।

१० उदर-सम्वन्धी विकारो पर—उक्त भस्म २ से ६ रत्ती तक, मुख मे डालकर ऊपर से वासी पानी पिलाते हैं। अजीर्ण, अम्लपित्त, अम्ल-वमन, भोजन के पश्चात का उदर शूल, मंदाग्नि आदि मे लाभ होता है।

पुष्पो की श्वेत राख या क्षार—शुष्क फूलो के गुच्छो को जलाकर श्वेत राख कर लेते है। या उक्त विधि से से जलाकर जो भस्म होती है, उसे क्षारविधि से क्षार निकाल कर काम मे लाते है।

११ हृदय की जलन पर या पित्त-विकार पर—इस राख या क्षार को पानी मे घोलकर पिलाते हैं।

१२. यकृद्दाल्युदर पर—उक्त राख या क्षार को थोडे पानी मे मिला पीडित स्थान पर लगाते हैं। छाला उठ कर लाभ होता है. प्लीहावृद्धि कम होती है।

१३. प्लीहावृद्धि एव गुल्म पर—उक्त राख या क्षार को गुड के साथ सेवन कराते हैं।

१४ जलोदर पर—पुष्प-गुच्छ को पेड से काटने पर जो ताजा रस निकलता है। जिसे ताडी भी कहते हैं उसे पिलाते है। इससे मूत्र-वृद्धि होकर लाभ होता है।

१५ मूत्र कृच्छ्र पर—पुष्प-मजरी के उक्त रस से दूध या घृत सिद्ध कर सेवन कराते है।

ताडी–(ताजी) दीपन, अनुलोमन, दाहप्रशमन, मूत्रल, वीर्यवर्धक, अप्रिय-गंधवाली, स्वाद मे कुछ खटमीठी है तथा—मूत्रकृच्छ्र, उदर कृमि, दौर्वल्य, शोथ आदि नाशक है।

इसे देर तक रखने से यह विशेष खट्टी एवं मद और पित्तकारी तथा वात-नाशक होती है।

मूत्रकृच्छ्र पर—ताजी ताडी मे मिश्री मिला पिलाते हैं।

रोगोत्तर कालीन दौर्वल्य तथा नपु सकता पर भी ताजी ताडी का सेवन करते है।

उदर-कृमिनाशार्थ—प्रात. साय खाली पेट, इसे पिलाते है।

१६ पित्ताभिष्यन्द पर—पित्त-प्रकोप से आई हुई आखो मे ताजी ताडी से सिद्ध किये हुए घृत की बूदें डालते है।

१७ प्रमेह पिटिका या जीर्ण क्षत पर—ताजी ताडी को चावल के आटे में मिला, मंद आच पर पका पुल्टिस वना कर वाधते हैं।

१७ उर क्षत मे—इसे या कच्चे फल के रस को नित्य प्रात साय थोडा-थोडा सेवन कराते हैं।

१६ उन्माद पर–ताजी ताडी मे शहद मिला नित्य प्रात सेवन कराने से वातपित्त प्रकोप जन्य या मानसिक आघात जन्य उन्माद मे लाभ होता है। मन प्रसन्न रहता व अच्छी निद्रा आती है, नियमित उदरशुद्धि होकर शरीर स्थूल व वलवान होता है। मानसिक निर्वलता दूर होती है। (गां औ र)

२० रग-परिवर्तनार्थ—कुछ चिकित्सको का मत है कि सगर्भा स्त्री को दिन मे ३ वार ताडी को पिलाते रहने से काले माता-पिता की की सतान गोरी होती है।

नोट–मात्रा प्रतिदिन प्रात इसे दो ग्लासों में उलटपलट कर पीते रहने से यह सारक होती है। ताजी ताड़ी

जलोदर में लाभकारी है। वासी खमीर आई हुई, मधुमेही को हितकर, मूत्रल व जीर्ण सुजाक में भी लाभ करती है।

ताड-गुड, शर्करा या मिश्री—उक्त ताडी से जो गुड शर्करा या मिश्री निर्माण की जाती है, वह पित्त-शामक, पौष्टिक, विपनाशक, यकृद्विकार, जीर्ण सुजाक कालाज्वर, म थर-ज्वर (टाइफाईडज्वर) आदि मे लाभकारी है।

२१ काला ज्वर—जिसमे गले के भीतर छोटे-छोटे घाव हो जाने से रोगी खाने पीने मे असमर्थ होकर वहुत निर्वल हो जाता है, ऐसी दशा मे यह ताल मिश्री गरम पानी मे घोल कर सेवन कराने से अपूर्व लाभ होता है। इसमे—विटामिन 'वी' एव 'डी' पर्याप्त मात्रा में होने से रोगी की निर्वलता शीघ्र दूर होती है।

२२ वालको की पुष्टि—वच्चा पैदा होने पर प्राय २-३ दिन माता का दूध नही पीता। तव उसे ग्लूकोज या गोदुग्ध दिया जाता है, जिससे कभी कभी उसे अतिसार हो जाता है। अत. उसे यदि ताल मिश्री का घोल थोडा थोडा पिलाया जाय, तो अतिसार का भय नही रहता, तथा यथेष्टवल की वृद्धि होकर पुष्टि प्राप्त होती है। मधुमेह के रोगी के लिये यह लाभप्रद है।

छाल—ताड़ वृक्ष की छाल को जलाकर, उस कोयले या राख से मजन करने से दात खूव स्वच्छ होते है।

छाल का क्वाथ वनाकर उसमे थोड़ा नमक मिला गण्डूप (कुल्ले) करने से मसूढे और दात सुदृढ हो जाते है।

विशिष्ट योग—

२३ ताड्यासव—शक्तिवर्धक, सग्रहण्यादि नाशक है।

ताजी ताडी ५ सेर ले, शुद्ध मटके मे भर, उसमे मिश्री ३ सेर और शहद १० सेर व धाय के फल आध सेर मिला, अच्छी तरह सधान कर लगभग ११ या १५ दिन रख कर छान लें।

मात्रा—१-२ तो. तक, थोडा ताजा पानी मिलाकर सेवन करने से शक्ति वढता है, सग्रहणी एव तज्जन्य पाडु रोग, अफरा, अग्निमाद्य दूर होता है। क्षुधा वृद्धि होती एव शरीर मे जोश रह मन प्रसन्न रहता है।

अन्य आसवो के योगो को हमारे 'वृहदासवारिष्ट सग्रह' मे देखिये।

नोट—मात्रा—स्वरस—१-२ तो.। ताडी—५-१० तो.। क्षार—१-२ माशा। गुड़ शर्करा या मिश्री १ तोला तक।

ताम्वरा कायमा) दे०—गेहूँ मे।

ताम्बूल (Piper Bettle)

गुडूच्यादिवर्ग एवं पिप्पली या मरिच-कुल (Piperaceae) की इस वहुवर्षायु, प्रसरणशील १५-२० फुट लम्बी लता का काण्ड—दृढ, कडा, ग्र थियुक्त स्थान पर मोटा, पत्र—३-८ इंच लम्बे, अण्डाकार, या हृदयाकृति के प्राय ७ सिरा युक्त, चिकने, अग्रभाग मे नोकदार, पत्रवृन्त—लगभग १ इंच का, पुष्प—काण्ड मे ही, अवृन्त गुच्छो, मे एक लिंगी, फल—गुच्छो मे छोटे २ लगभग ¼ इच लम्बे, चपटे, मासल होते हैं। पुष्प—वसत मे तथा फल ग्रीष्म मे लगते है। फलो को पान-पिप्पली कहते है।

यह लता लकडी या वास के मडपो मे लगाई जाती है। इस प्रकार मडप या टट्टियो मे यह पालित लता ही प्राय सर्वत्र (भारतवर्ष मे) लगाई जाती है। किंतु कही-कही वृक्षादि के आश्रय से इसकी वर्द्धित लताए भी होती हैं, जिनके पान अत्यन्त कडुवे, वहुत छोटे, तथा सिराजाल से व्याप्त होते है। यह निकृष्ट कोटि के माने जाते हैं।

इसकी उपज भारत के उष्ण एव आर्द्र प्रदेशो मे विशेषत विहार, मालवा, वनारस, महोवा, वगाल, उडीसा, दक्षिण भारत के वम्वई मद्रास आदि प्रान्तों मे तथा लका मे खूब होती है।

नोट (१)-देश-भेद से जैसे वगला, वनारसी (मगही) महोवा, साची (छपराही), महाराजपुरी, विलोआ, कपूरी सुहागपुरी, फुलवा, रामटेकी (नागपुर के पास रामटेक

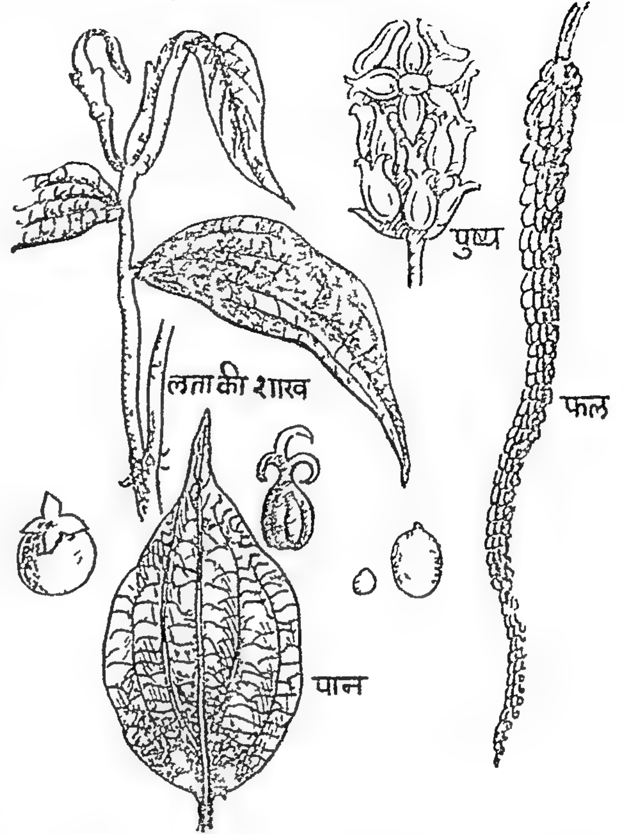
है) आदि इसकी कई जातियां हैं। तथा उन पानों के आकार, वर्ण, स्वाद, सुगन्ध और गुणधर्मों मे भी न्यूनाधिक अन्तर पाया जाता है। राजनिघण्टुकार ने श्री वाटी (सिरिपाडीपान), अम्लवाटी (अ बाडे पान), अम्लरसा (मालवा देशी पान), पट्टलिका (आंध्र देशी पान), सतसा (सातसी पान), गुहागरे (अडगर पान) और हंसणीया (समुद्रप्रान्ती पान) ऐसे इसके ७ भेदों तथा उनके भिन्न २ गुणों को दर्शाया है। बम्बई प्रान्त मे काली श्वेत व बेलची (छोटी) नामक इसकी तीन मुख्य जातिया प्रचलित हैं।

(२) अपने यहां अतिप्राचीन काल से इसका व्यवहार मुखशुद्धि, सुगंधि एवं रुचिवृद्धि के लिये तथा देवपूजनादि शुभकर्मों एव उत्सवादि में सुस्वागतार्थ किया जा रहा है। प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रंथों में यद्यपि कोई खास औषधिप्रयोग मे इसका उल्लेख नहीं है, तथापि चरक के सूत्रस्थान मे मात्राशितीय अध्याय मे रुचिसौगन्ध्य वर्धनार्थ जायफल, कस्तूरी, इलायची, कंकोल, सुपारी के साथ इसे मुख में धारण करने का विधान है। तथा सुश्रुत के अन्नपान-विधि अध्याय मे भी इसकाउल्लेख है।

प्राचीन महाभारत, रामायण आदि ऐतिहासिक एव साहित्य-ग्रन्थो मे इसका प्रचुर उल्लेख मिलता है। इसकी उत्पत्ति के विषय मे बरई (तम्बोली, पान का धंधा करने वाली जाति विशेष) लोगो मे यह कथा प्रचलित हैं, कि महाभारत-युद्धोपरान्त जब पाडवो को अश्वमेध प्रसग मे मागलिक कार्यार्थ इस प्रकार के विशिष्ट द्रव्य की आवश्यकता प्रतीत हुई, तब उन्होने पाताललोक मे इसकी प्राप्ति के लिए वासुकी नाग के पास अपना एक दूत भेजा। वासुकी ने अपनी करागुली का अग्रभाग काट कर दिया और कहा कि इसे भूमि मे रोपण कर देने से पान की बेल उत्पन्न होगी, जिससे पाडवो की अभीष्ट पूर्ति होगी। पाडवो ने वैसा ही किया, और इसकी उत्पत्ति हुई। इसीसे इसे 'नागवल्ली' नाम दिया गया है।

फिर शनैः २ इसके विशेष औषधि-गुणधर्मो के ज्ञान होनेपर वैद्यगण इसका व्यवहार औषधियों मे इसके रसकी भावनाएं देने मे या अनुपान रूप मे करने रहे थे (जैसा कि अब भी किया जाता है) और वेश्याए या गाने बजाने के व्यवसायी लोग इसका खाने मे उपयोग करते

तांम्बूल (पान)
PIPER BETLE LINN.



थे। मुगल-काल मे इसका इस रूप मे अधिक प्रचार हुआ। यह एक ऐश आराम एव व्यसन की चीज हो गई। तब से दिन दूनी व रात चौगुनी इसकी इसी रूप मे परिवृद्धि हुई, तथा आज समस्त भारत मे, छोटे २ ग्राम, खेडो मे भी इसका प्रचार हो गया है। और कुछ नही तो पानो की दूकान तो प्राय सर्वत्र ही देखी जाती हैं।

नाम—

सं –नागवल्ली, ताम्बूलवल्ली, ताम्बूली, पर्णवल्ली इ०। हि०—ताम्बूल, पान, नागरबेल इ०। म०–नागवेल, पानवेल, विडयाचेंपान। ब —पान। गु०-नागरबेल। अं —बीटल लीफ (Betel leaf)। ले —पाइपर बीटल, चविका बीटल (Chavica Betle)

रासायनिक संघटन—

इसके पत्तो मे एकसुगंधित, हलके पीतवर्ण का, तीक्ष्ण वातनाशक, दाहकारक उडनशील तैल ४% तक होता

है। तथा इस तैल मे पत्तियो को विशिष्ट गधयुक्त करने वाला एवं उनके व्यावहारिक महत्व को बढाने वाला फेनाल (Phenol), व एक अतिशीघ्र उडनशील, कार्बोलिक एसिड की अपेक्षा ५ गुना अधिक प्रतिदूषक (antiseptic) चविकाल (Chavicol), और पत्तो की तिक्तता व रूक्षता को अपनी मात्रा के अनुसार न्यूनाधिक प्रमाण मे रखने वाला सेस्क्विटर्पेन (Sesquiterpene) एव केडेनीन (Cadenene) नामक तत्व पाये जाते है। इसके अतिरिक्त कुछ स्टार्च, शर्करा एव कषाय द्रव्य भी पाये जाते है।

पुराने पानो की अपेक्षा नूतन पानो मे उक्त तैल, तथा डायास्टेस (Diastase) और शर्करा की मात्रा अधिक होती है।

उक्त उडनशील तैल कृमिघ्न है, तथा जुकाम, कठ-प्रदाह, स्वरनाली का भग, डिफ्थीरिया (रोहिणी रोग) एव खासी मे लाभदायक है। डिफ्थीरिया मे इस तैल की १ बूंद १०० ग्रेन पानी मे मिला कुल्ले कराने तथा इसका धुंआ सूंघने से लाभ होता है। इस तैल के अभाव मे १ बूंद तैल के स्थान मे ४ पानोका रस लिया जा सकता है।

उक्त तैल एव तत्वो के अतिरिक्त, सूक्ष्मान्वेषण से वैज्ञानिको ने ज्ञात किया है, कि प्राय सब पानो मे न्यूनाधिक प्रमाण मे पियोरिन, पियोरिडिन, एरेकोलीन मरक्यूरिक आदि विषैले तत्त्व भी होते है। किन्तु बगला और मद्रासी पान मे इनकी मात्रा अधिक होती है। मद्रासी पान मे पियेरोबेटीन नामक विष की मात्रा अधिक होती है, जो हृदय की गति को रोकती एव उसे शिथिल कर देती है। चूना, कत्था, सुपारी आदि के सम्मेलन से, विधिपूर्वक बनाए हुए, पान के बीडे मे उक्त विषैले तत्त्वो की मात्रा या उनका प्रभाव अधिकाश नष्ट हो जाता है। पान के डठल तथा अग्रभाग मे ये विषैले तत्त्व अधिक होते हैं। इसीसे भारत मे पान के डठल एव अग्रभाग को निकाल कर ही बीडा बनाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, फल और मूल। इसका फल पिप्पली के तथा मूल कुलिजन के प्रतिनिधि रूप से व्यवहृत होता है। कई लोग भ्रमवश इसकी मूल को ही कुलिजन मानते हैं। कुलिजन का प्रकरण देखिये।

गुण धर्म व प्रयोग—

पत्र—लघु, तीक्ष्ण विशद, कटु, तिक्त, कषाय, कुछ क्षार युक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य; तथा कफवातशामक, पित्तप्रकोपक, दीपन, पाचन, कातिकर, अनुलोमन, दुर्गन्धि-नाशक, मुखवैशद्यकारक, लालाप्रसेकजनन, हृदयोत्तेजक, वाजीकरण, शीतप्रशमन, कटुपौष्टिक, वशीकरण, व्रणरोपक, रक्तपित्तकर, वेदनाशामक है। एव वातरक्त, पीनस, कास, क्लेद, कडू, कृमि, शोथ, ज्वर आदि मे प्रयोजित होता है। पान के १३ गुण नीचे श्लोक मे देखें[1]।

नवीन या अर्धपक्व पान—त्रिदोषकारक, दाहजनक, अरुचिकर, सारक, रक्तदूषक एव वमनकारक है।

जूना या पका पान ही जब कुछ दिन पानी से सिक्त करते हुए सुरक्षित रक्खे जाते है तब वे पक कर रुचिकर सुगधित कातिकर, बल्य, त्रिदोषनाशक, कामोत्तेजक हो अग्निमाद्य, विबन्ध, हृद्दौर्बल्य, हृदयावसाद, मुखरोग, प्रतिश्याय, कास, श्वास, स्वरभेद, उदरशूल, कृमिरोग, बहुमूत्र, ध्वजभग आदि मे उपयोगी होते है।

इसमे डायास्टेस (Diastase) की पर्याप्त मात्रा होने से, स्टार्च आदि पिष्टमय पदार्थों के पाचन मे इससे विशेष सहायता प्राप्त होती है। अत चावल आदि पिष्टमय पदार्थों के अधिक खाने वालो को इससे विशेष लाभ होता है।

इसमे जो सुगधित द्रव्य है, वह मस्तिष्क-केन्द्रो को उत्तेजित कर मन को प्रफुल्लित कर कामोत्तेजना करता है। फिर इसके साथ जायपत्री, कस्तूरी, कपूर, सुपारी आदि मिलाकर सेवन से कामोत्तेजना अधिक होती है।

---

[1] ताम्बूल कटु तिक्तमुष्णमधुर क्षार कषायान्वित,
वातघ्न कफनाशनं कृमिहरं दुर्गन्ध निर्नाशनम्।
वक्त्रस्याभरण विशुद्धिकरण कामाग्निसंदीपनं,
ताम्बूलस्य सखे! त्रयोदश गुणा. स्वर्गेऽपिते दुर्लभाः॥
अर्थ स्पष्ट है। ऊपर ये गुण आ चुके है। (ध. नि)

जो निर्बल वीर्य वालो के लिये हानिकर होती है। कुछ व्यसनी लोग इसमे कोकेन रखकर खाते है, और अपनी कामवासना की पूर्तिकर शीघ्र ही मृत्यु के मुख मे जाते है।

कफ प्रधान रोगो मे यह विशेष लाभदायक होता है। तमक श्वास, नलिका-शोथ, स्वर यन्त्र-शोथ आदि मे—इसका रस पिलाते एव इसे ऊपर से वाधते है। सिर-दर्द पर पत्रो को कनपटी पर वाधते हे।

ग्र थि-शोथ, साधारण शोथ एव व्रणो पर पत्तो को गरम कर वाधने से शोथ व वेदना कम होती तथा व्रण अच्छा होता है। इससे दुर्ग ध युक्त पूयमय व्रणो का शोधन होता है।

१ स्तन-शोथ—कभी-कभी प्रसूता स्त्री के स्तन्य-वेग की अतिवृद्धि होकर स्तन पर तीव्र वेदना-युक्त सूजन होती है। ऐसी दशा मे पानो को गरम कर वावने से दुग्धवेग रुक जाता व सूजन कम होती है। अथवा पान के रस मे थोडा चूना मिला, गरम कर लेप करने या पान की लुगदी मे चूना मिला, पुल्टिस के रूप मे व्यवहार करने से भी उचित लाभ होता है।

इसी प्रकार पार्श्वशूल आदि मे भी पत्तो को गरम कर या पुल्टिस रूप मे वाधने से लाभ होता है। किंतु इस कार्य के लिए पके पान ही उत्तम होते हे। क्योकि कच्चे पान मे जतुनाशक फेनाल की मात्रा अत्यल्प होती है।

२ वाल–रोगो पर–रोहिणी (डिपथीरिया) नामक वालको को अधिक होने वाले घातक गले के विकार मे थोडे गरम पानी मे ४ पत्रो का रस मिला कुल्ले (गण्डूष) कराते है। अथवा ताम्बूल-तेल की १ बून्द की मात्रा को लगभग १० तो उष्ण जल मे मिला इसी प्रकार प्रयोग करते तथा उसकी वाष्प सु घाते है।

वालको के ज्वर, जुकाम और खासी पर, इसके रस का अनुपान रूप से व्यवहार करते हे। अर्थात् मुख्य औषधि के साथ इसके रस की २-४ वू दे मिलाकर सेवन कराते हे।

वालक की छाती मे कफ भर गया हो तो पान पर रेडी-तैल चुपड़कर, थोड़ा गरम कर छाती पर वाधने से कफ पतला होकर निकल जाता है।

वालक के अजीर्ण एव आध्मान मे इसके रस मे थोडा शहद मिला चटाने से अपानवायु की रुकावट दूर होकर शीघ्र लाभ होता है। शुष्क या कुक्कुर कास मे भी इससे लाभ होता है।

यदि कोष्ठबद्धता हो तो पान के डठल को रेंडी-तैल मे भिगोकर या उस पर थोडा साबुन का फेन लगाकर गुदा मे प्रवेश कराने से मल निकल जाता है तथा उदर-शूल, अफारा और वेचैनी दूर होती है।

३ श्लीपद पर—प्रतिदिन इनके ७ पानो को पीस कर कल्क बना उसमे सेंधानमक (६ मा तक) का चूर्ण मिला, जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

(वगसेन)

(यह प्रयोग २१ दिन सेवन कर, ३ दिन के लिये वन्द कर दे। यदि किसी कारण लाभ न हो तो भी हानि की कोई सभावना नही।)

४ नेत्राभिष्यन्द पर–पान के रस मे थोडा शहद मिला नेत्र मे डालने से नवीन विकार शीघ्र दूर होता है। रतौंधी मे भी लाभ होता है।

नेत्र की वात-पीडा पर भी उक्त प्रयोग अथवा पत्र-स्वरस की कुछ वू दें डालने से और पान पर घृत चुपड कर वाधने से लाभ होता है।

५ प्रतिश्याय पर–पान ३ नग और १०-१२ तुलसी-पत्र, इनके छोटे २ टुकडे कर या कतर कर १० तो पानी मे मिला पकावे। आधा शेष रहने पर छानकर उसमे १ तो शहद मिला दिन मे ३ वार पिलावें। प्रत्येक वार ताजा क्वाथ तैयार कर देने से उत्तम लाभ होता है।

अथवा–४ पानो का स्वरस निकाल, कुछ गरम कर पिलाने से भी लाभ होता है।

६ श्वास—श्वास का दौरा होने पर दो पानो का साधारण वीडा वनाकर उसमे काली मिर्च २ दाने और १ छोटी इलायची डालकर धीरे धीरे खूब चर्वणकर रस को निगलते रहने से श्वास का वेग कम होकर आराम मिलता है। वय एव प्रकृति के अनुसार काली-मिर्च २ से ५ तक डाल सकते है। वि. योगो मे शर्बत ताम्बूल न. १ देखे।

७ मुख-दौर्गन्ध्य पर—पान के बीडे में चूना, कत्था के साथ ही साथ शीतल मिर्च २ रत्ती, जावित्री तथा इलायची के दाने १-१ रत्ती, और कपूर १/४ रत्ती डालकर धीरे धीरे २ दिन मे २-३ बार चर्वण करें—

८ आमाशय की निर्बलता पर—इसके बीडे मे १ रत्ती सेंधा नमक मिला, दिन मे ३-४ बार सेवन करते है। इससे क्षुधामांद्य, आम व कफ की वृद्धि, आलस्य आदि दूर होते है।

९ कंठ मे कफ जन्य अवरोध, हो तो—पत्र-रस २तो मे ४ रत्ती कालीमिर्च-चूर्ण व ६ मा शहद मिला प्रात साय सेवन करे। अथवा—२-४ पान के बीड़ा बना उसमे ५ नग काली मिर्च डालकर खावे। अथवा—

शीत जन्य स्वर-भग हो तो पान के बीडे मे मुलैठी-चूर्ण मिला सेवन करते है।

नासास्राव अत्यधिक हो तो-दिन मे २-३ बार पान का स्वरस २-२ तो तक पिलाते है।

१० कर्ण-शूल पर—शीत वायु या शीत जल के आघात से कान का दर्द हो तो पत्र-रस को कुछ गरम कर कान मे डालकर ऊपर से सेंक करे। कर्णपाक होकर पूयस्राव होता हो तो उसमे भी लाभ होता है।

११ अण्डकोषों मे पानी उतर आने पर—प्रारभिक अवस्था मे ५-६ बगला पान गरम कर बाधते रहने से लाभ होता है। यदि इसमे अधिक गरमी मालूम पडे तो १-२ पान बाधे तथा १-२ दिन के अन्तर से बाधते रहे।

१२ हृद्दौर्बल्य पर—पत्र-स्वरस में दूनी शक्कर मिला शर्बत बना कर सेवन से, निर्बलता जन्य हृदय की बार बार बढने वाली तीव्र गति (धडकन) मे सुधार हो पाचन-शक्ति बढती है।

आगे विशिष्ट योगो में—श्वततताम्बूल का प्रयोग देखें।

१३ व्रणो पर—शमन-शोधन कार्यार्थ इसके ताजे कोमल पत्रो पर घृत या तत्कार्यार्थ सिद्ध तेल को चुपड-कर, फफोलो एव वेदनायुक्त व्रणो पर बाधते है।

मुख मे छाले हो जाने या मुख-पाक पर—पत्र-स्वरस को शहद से चटाते है।

१४ विषप्रतिकारार्थ—पारद के विष पर—इसके पत्तो के साथ भागरा, और तुलसी-पत्रो का स्वरस तथा बकरी का दूध मिला, शरीर पर ४-६ घटे तक मालिश कर, शीत जल से स्नान करते है। इस प्रकार ३ दिन के उपचार से विष-विकार शमन होता है।

कुचले के विष पर—इसके पत्र-वृन्त (पान के डठलो) का रस १०-२० तोला तक नित्य १ या २ बार, ३ दिन तक पिलाते है।

भाग, गाजा, अफीम एव मदिरा के मद-निवारणार्थ-पत्र-स्वरस को छाछ के साथ मिलाकर पिलाते है।

सर्प, बिच्छू तथा छिपकली आदि के दश पर इसके पत्रो का लगातार प्रयोग करने से विष का असर मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं पर नही होने पाता, ऐसा कुछ अमेरिकन डाक्टरो ने सिद्ध किया है।

बर्र, ततैया आदि के दश पर—पत्र-रस को मसलने से वेदना एव विष-प्रकोप की शाति होती है।

१५ गर्भ-निरोधार्थ—पान के रस मे कबूतर की बीट मिलाकर पिलाते है।

१६ ज्वर पर—पान का रस ४ मा तक गरम कर, दिन मे २-३ बार पिलाते है।

नोट—पान का बीड़ा भारतवर्ष मे अधिकतर पानों का सेवन-उसमे चूना, कत्था, सुपारी आदि लगाकर बीडे के रूप मे किया जाता है। इसमे चूना वातकफहर, कत्था पित्तहर और सुपारी कफपित्तशामक है। प्रात काल के समय सुपारी, दोपहर मे कत्था व रात्रि के बीडे मे चूना कुछ अधिक लेना हितकर होता है। किन्तु चूना अत्यधिक लगाने से दाँतों की जडे शिथिल हो जाती हैं। कई लोग इसमे तमाखू मिलाते है। किन्तु ध्यान रहे इससे बार २ थूकना पडता है, तथा लालास्राव जो पाचन-क्रिया मे अति हितकर है, उसकी बरबादी होती है, वह व्यर्थ जाती है, तथा लाला ग्रंथियां शिथिल पड जाती है। पान के व्यसनी लोग इस प्रकार तमाखू मिला हुआ पान दिन रात्रि मे अत्यधिक बार सेवन कर अपने स्वास्थ्य की हानि करते हैं।

अत इसका सेवन नियमित रूप मे ही करना, तथा उसमे तमाखू के स्थान पर, सौंफ, लवग छोटी-इलायची पिपरमेन्ट क्रिस्टल, आदि सुगधित एव उडनशील तैल

वाली वस्तु मिलाना हितकर है[१]। इससे अग्निप्रदीप्त होती है। तथा इसका असर रस रक्तादि धातुओं पर, आमाशय, आंत, फुफ्फुस, त्वचा, वात-नाड़ियों, मस्तिष्क आदि पर उत्तेजक, संशोधक व कीटाणु नाशक होता है।

भोजन के बाद पान [illegible], मुंह में [illegible] आदि [illegible] है। मानसिक प्रसन्नता होती है। [illegible] वायु बाहर निकल [illegible], तथा शौच-शुद्धि नियमित होती है। [illegible] भोजन में [illegible] अधिक आता है, और [illegible] अति लाभदायक होता है।

सेवनार्थ [illegible] पान [illegible] होते, वे तिक्त, उष्ण, [illegible] कर होते हैं। [illegible] कफ व वात के रोगों का नाशक, रोचक, दीपन व पाचक होता है। [illegible] है— "[illegible] कषाय [illegible]। [illegible] श्लेष्म वात [illegible] ॥—(अभिनव- निघण्टु।)

ताम्बूल-सेवन विधि में आयुर्वेद का आदेश है कि पान की मध्य शिरा को निकाल डाले, क्योंकि वह बुद्धि-नाशक है। तथा पान के अग्रभाग एवं मूल भाग को भी निकाल डाले, क्योंकि वे पाप या रोग-कारक होते हैं। वाचस्पति मिश्र जी का कथन है कि पान खाते हुए जो प्रथम पीक हो उसे थूक देवे, क्योंकि वह विष-तुल्य होती है, दूसरी पीक भी (मलभेदक) एवं दुर्जर (देर से पचने वाली) होती है। (किन्तु हमारे मत से-पान में यदि तम्बाकू डाली गई हो तो ये पीकें थूकना ठीक है। अन्यथा पीक थूकना अनावश्यक है।

पान लगाते समय उन्हें अच्छी तरह पोंछ कर पानी से धो डालना चाहिये। इनका सड़ा, गला भाग निकाल डाले। बाजारू बीड़ों से बचते रहना चाहिये, क्योंकि ये शुद्धता से नहीं लगाये जाते, तथा इनमें सड़ी सुपारी पानी में गलाया हुआ कई दिनों का कत्था, अधिक चूना आदि लगा होता है। ये बाजारू बीड़े दांतों में कृमि, पायोरिया आदि कारक होते हैं। इनसे मुख

१ बीड़े में उपयोजित द्रव्यों के संक्षिप्त गुणधर्म—चूना-उष्ण, दाहक है, किंतु पान के साथ यह हड्डियों एवं दांतों को दृढ़ करता व लाल रंग की वृद्धि करता है। कत्था-रक्तशुद्धिकारक, अन्न-नलिका की श्लेष्मल कला को आकुंचित करने वाला, मुख व्रणनाशक, दांतों का दृढ़ कारक है। सुपारी—हृदयोत्तेजक, मुख को स्वच्छ करने वाली है। सुपारी के मध्य का श्वेत भाग कुछ मादक है। लौंग—यकृत हितकारक, रक्ताभिसरण व श्वसन-क्रिया में उपकारक व कृमि एवं वातनाशक है। पाचन-क्रिया में सहायक है। इलायची—यकृत-क्रिया सुधारक, आंत्र के पाचक-रस का उत्तम स्रावक, पाचक, मूत्रमार्ग-दाहशामक है। नारियल-गिरी-पान में चूने की तीव्रता-शामक, बीड़े को मृदु करने वाली है। कबाब-चीनी (ककोल) -मुख दुर्गन्धनाशक, कण्ठशोधक, उदर-वातनाशक एवं पाचक है। कपूर-पाचक, जंतुनाशक, वातशामक, दांतों का दृढ़कारक, दंतशूल, शिर शूल आंत्रशूलशामक, श्रमहारक, मनप्रसन्न कारक, कफनाशक हृदय-रक्ताभिसरण-उत्तेजक है। गुंजा पत्र-बीड़े को मधुर करने वाला, श्वास-शुद्धि कारक है।

जायफल-आंत्र-वायु नियामक, पाचक, शुक्रस्तंभक, हृद्य, श्रम-परिहारक, उत्तम निद्राकारक है। मुलैठी—कण्ठशोधक, शुक्रवर्धक व स्वर्य है। केशर, कस्तूरी, सुवर्ण वर्क आदि भी विशेष गुणवर्धक हैं, किन्तु आजकल इनकी योजना बीड़े में विरले ही श्रीमान लोग करते हैं।

२—प्रात कफ का समय होता है, सुपारी रूक्ष होने से कफ की वृद्धि को रोकती है। मध्यान्ह पित्त का समय है, कत्था पित्त व शीत को शांत करता है, तथा दांतों को हितकर, कण्डु, कास, अरुचि आदि नाशक है। रात्रि वात का समय है, चूना उष्ण, क्षार, वातनाशक होता है। इस प्रकार ताम्बूल-सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। ध्यान रहे, पान में नई सुपारी हानिकारक है। बिना पान के अकेली सुपारी कभी नहीं खानी चाहिये। तथा बिना सुपारी के पान खाना भी अहित-कर है।

का केन्सर जैसा भयकर रोग भी होना सभव है [1]।

दिन भर मे ३–४ वार से अधिक पान खाना अहितकर है। पान को मुख मे दाब कर सोना भी हानिकर है। यदि अधिक चूना होने से मुख जल जाय तो तुरन्त दूध मे शक्कर मिला कुल्ली करे, या लोग और नारियल की गिरी चबावें। सुपारी लगने पर ठडा पानी पीना उत्तम है।

ताम्बूल-निषेध—ताम्बूल उष्ण एव पित्त प्रकोपक होने से रक्तपित्त, गर्भिणी स्त्री, वालक, उर:क्षत, क्षय, मद, मूर्च्छा रोग, तीव्र नेत्र-विकार, विष प्रकोप—आदि पैत्तिक विकारो मे एवं रूक्ष व्यक्ति के लिये तथा दन्त-दुर्बलता, व्रण पीडित, दुर्वल-ज्वर रोगी, मुख-शोषी आदि को हानिकर होता है।

फल—इससे फल (पान पिप्पली) का चूर्ण शहद के साथ सेवन से,कफ निकलकर कास मे लाभ होता है।

मूल—इसकी जड को–स्वरशुद्धि के लिये, मुख मे रख कर चूसते है। सतान–निरोधार्थ–इसे कालीमिर्च के साथ सेवन कराते है। सर्प-विष पर—मूल को बीडे मे रख कर खिलाते है, इससे वमन होते हैं। यदि एक वार मे न हो तो ऐसे २-४ बीडे खिलाते है।

कुचला के विष-प्रतिकारार्थ—मूल का या पान के डठलो का रस १० तो० तक पिलाते हैं। वमन न हो, तो पुन १ घटे वाद पिलाते है। इस प्रकार २–३ दिन प्रात साय सेवन कराने से लाभ होता है।

नोट-मात्रा-पत्र-स्वरस आध से १ तो० तक (मूल का चूर्ण १-२ मा०।

विशिष्ट योग

(शर्वत ताम्बूल न १—बगला पान के स्वरस २० तो० मे मिश्री ½ सेर मिला एक तार की चाशनी तैयार कर उसमे वश लोचन, छोटी पीपल, तथा छोटी इलायची के बीज और सोठ प्रत्येक चूर्ण ६–६ मा० तथा लौंग, तज व केशर ३–३ मा० चूर्ण कर मिलाकर खूब घोट-कर, शीशियो मे भर रक्खे।

मात्रा—६ मा० से १ तो० तक, दिन मे ३ वार चाटने से दूपित कफ निकल कर कासश्वास मे लाभ होता है।

—स्व०श्री०प०भगीरथ स्वामी के आत्मसर्वस्व से।

न० २—उत्तम पके हुए ५० पानो के छोटे-छोटे टुकडे कर १। सेर (१०० तो०) पानी मे पकावें। अर्धा-वशिष्ट जल रहने पर छान कर, उसमे ५० तो० शक्कर मिला, एक-तारी चाशनी पका कर नीचे उतार, ठण्डा हो जाने पर बोतल मे भर रक्खें।

२ से ३ तो० इस शर्वत मे समभाग जल मिला, दिन मे २ या ३ बार सेवन करने से हृदय बलवान होता व पाचन-क्रिया मे सुधार तथा हृदय-दौर्वल्य-जन्य श्वास का दौरा कम होता है। हृदय के विकारो पर यह विशेप लाभकारी है।

यदि इस शर्वत मे पाक-सिद्धि के बाद केशर, लौंग, व ज वित्री योग्य मात्रा मे चूर्ण कर मिला लिया जावे, तो यह और भी उत्तम गुणकारी हो वाजीकरण, तथा उत्तेजक एव हृदय को बलप्रद हो जाता है।

ताम्बूलासव न० १—प्रथम शुद्ध मटके को जामुन के नवीन हरे पत्तो के काढ़े से अच्छी तरह धोकर साफ कर, उसके भीतर लाख का लेप कर, सूख जाने पर, खाड व अगर की धूनी देकर जमीन मे ऐसा गाड दे कि आधा मटका जमीन के भीतर रहे। फिर उसमे १५०० पान कूट-पीस कर डाले तथा धायपुष्प २८ तो० सुपारी, कत्था-चूर्ण प्रत्येक ½ सेर, शहद ५ सेर, पानी ७½ सेर, ककोल व पीपल-चूर्ण ८-८ तो० एव हरड, बहेडा, आमला, जायफल, बडी इलायची तथा लौंग के फूलो का चूर्ण ४-४ तो० मिला, सबको ३ दिन तक स्वच्छ हाथो से विलोडन (मलता) करता रहे। जब सब द्रव्य एक रस हो जावे, तथा उसमे सू-सू शब्द होने लगे, तब १५ सेर गुड को १३ सेर जल मे मिला, आग पर गरम कर, अच्छी तरह घोल कर उसी मटके मे डाल दें, तथा मुख-मुद्रा कर १ मास तक सुरक्षित रक्खे। फिर छानकर

[1] पान के बीडो मे चूना आदि क्षारात्मक द्रव्यो के साथ ही तमाखू (जो केंसर का उत्पादक माना गया है।) का मिलान होने से मुख की अन्त त्वचा मे व्रण होकर उसका पर्यवसान केंसर जैसे भयानक रोगो मे हो जाना सभव है।

बोतलो मे भर रक्खे। इसका रग, सुगन्ध व स्वाद अत्यन्त उत्तम होगा। मात्रा–१ तो० सेवन से अर्श, सर्व प्रकार के कफज-विकार व अश्मरी मे लाभ होता है। यह बलवर्द्धक, कातिकर व वीर्योत्पादक है। १ वर्ष तक नियमपूर्वक सेवन से आयुष्य की वृद्धि होकर, शरीर सदा स्वस्थ रहता है। यह उत्तम रसायन है।

(गदनिग्रह)

ताम्बूलासव न० २—कफविकारादि नाशक—उत्तम पानो का रस १ सेर निकाल कर काच की बोतल या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर, उसमे शहद २॥ सेर शुद्ध खाड १ सेर, मद्यार्क (४५ प्रतिशत वाला) ½ सेर तथा सोठ, अतीस, अकरकरा, दालचीनी, नागकेशर व तुलसी की मजरी का चूर्ण ४-४ तो० मिला, अच्छी तरह सधान कर १५ दिन सुरक्षित रख छानकर, काम मे लावे। १ मा० से १ तो० तक सेवन से कफज-कास आदि विकार शीघ्र दूर होते है। सन्निपात की अन्तिम अवस्था मे उत्तम कार्य करता है। अग्निदीपक, कामोद्दीपक, बल-कारक तथा ज्वर-नाशक भी है।

नोट–उत्तमोत्तम आसवारिष्टों के प्रयोग हम ने 'बृ० आ० अ० सग्रह ग्रन्थ' देखें।

(३) अर्क ताम्बूल—पका हुआ पान ७ ढोली (१ ढोली मे लगभग १७५ पान होते है), धाय के फूल १० सेर, गुड १० सेर, शहद ९ सेर, तथा जाय-फल का मोटा चूर्ण ५ तो० इन सबको १½ मन जल मे २४ घटे भिगोकर १० सेर अर्क खीच ले मात्रा ६ मा० से १ तो० तक। यह कामोद्दीपक, बलवर्धक, शोथ-नाशक, पाचक एव शरीर के आभ्यतरिक अवयवो का पुष्टि-कारक है।

(वैद्यराज प० श्रीराम द्विवेदी, जौनपुर)

तारपीन-तैल—दे०—चीड मे व राल मे। तारामीरा—दे०—तोरी (सफेद सरसो)।

ताराली (*ZEHNERIA UMBELLATA*)

कोशातकी-कुल (Cucurbitaceae) कुल की इस लता के पत्रदण्ड छोटे, पत्र १-६ इञ्च लम्बे, मोटे, त्रिकोणाकार, नुकीले, वृन्त की ओर हृत्पिण्डाकृति, देखने मे हस्तागुली जैसे, तथा वृन्त पर चिकने लोम होते है। पुष्प–उभयलिंग, विशिष्ट, पुपुष्पदण्ड २-४ इञ्ची, स्त्रीपुष्पदण्ड छोटा, दण्ड पर १-१ छोटे पुष्प होते है। फल–वन-पटोल जैसे लम्बाकृति चमकीले लाल रग के; अग्रभाग की ओर क्रमश पतले। फल मे बीज २ से १२ तक होते है। पुष्प–ग्रीष्म व वर्षाकाल मे आते है। फलो के पकने मे २ मास लगते है। फल का स्वाद खटमीठा होता है।

यह लता प्राय सर्वत्र तथा कोकण व बगाल के जगलो के किनारे पर होती है। कोकण मे इसके फलो का साग बनाकर खाते है।

नाम—

स०–वनतुडी, गुथी। हि०–ताराली। ब०–कुदारी, बिलारी। म०–गोमेटी। ले०–जैनेरिया, अम्बेलाट्टा, मेलोथ्रिया हेटेरोफीला (Meothria Heterophylla) —

गुणधर्म व प्रयोग—

मधुर, शीतल, लघु, उत्तेजक, मृदुकर, उत्साह-वर्धक है। आगन्तुक उष्णता पर—इसके मूल के रस मे ताजा गौ-दुग्ध, मिश्री व जीरा-चूर्ण मिला, दिन मे दो बार पीवे। भिलावे की सूजन पर–इसके पत्तो के रस का लेप करने से शीघ्र लाभ होता है। पुष्टि एव उत्साह-वर्धनार्थ–मूल के चूर्ण मे, भूना हुआ श्वेत प्याज, जीरा-चूर्ण और मिश्री मिला एकत्र महीन पीस कर उसमे थोडा घृत मिला सेवन करे। यह छोटे बालको को भी दे सकते है। अथवा—इसकी मूल को गोदुग्ध मे पीस कर उसमे घृत व मिश्री मिला पीवे। सुजाक व मूत्रकृच्छ्र पर भी इसे देते है।

स्वप्नदोष या शुक्रमेह पर–मूल के रस मे जीरा और शक्कर मिला, ताजे दूध के साथ सेवन करावें। पित्तप्रकोप पर–इसके फूलो का चूर्ण घृत व शक्कर के साथ देते हैं।

नोट–मूल का चूर्ण २ से ४ रत्ती या १ माशा तक।

ताल मखाना (Asteracantha Longifolia)

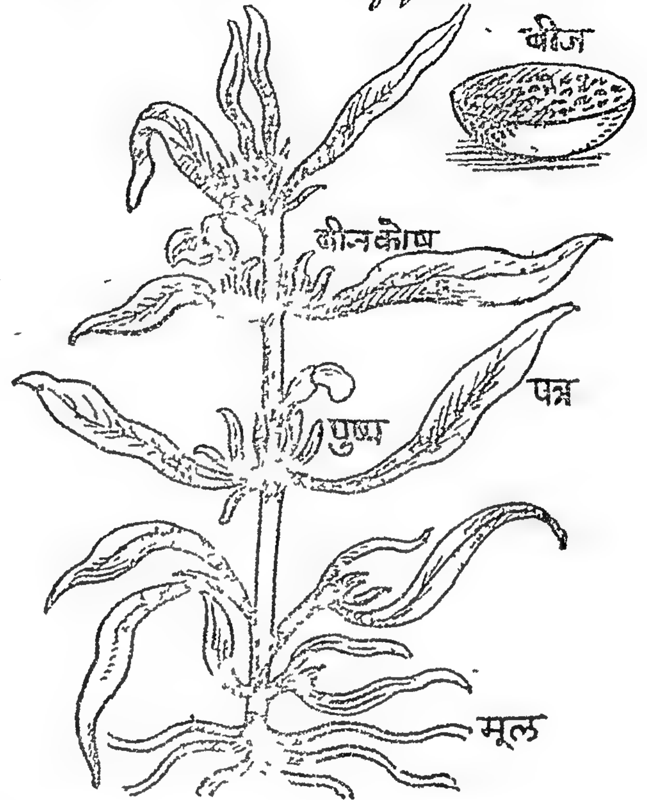
गुडूच्यादि वर्ग एव वासा-कुल (Acanthaceae) के इसके द्विवर्षायु क्षुप २-५ फुट तक ऊ चे, जलासन्न स्थानो मे तथा धान के खेतो मे स्वय उत्पन्न होते हैं। काण्ड-ईख के सदृश, पर्वयुक्त, पतले, श खारहित (किसी मे समुखवर्ती शाखाये होती है), चतुष्कोण, पत्र-पर्व-ग्र थियो पर चारो ओर, गुच्छाकृति, दोनो ओर कुछ रोमश, तमाखू सदृश गधयुक्त, स्वाद मे चरपरे, तथा पीतवर्ण के १ इ च लम्वे, १-१ काटा प्रत्येक पत्र के नीचे होता है। कोकण की ओर कोमल पत्रो का साग वनाकर खाते हैं।

पुष्प—उक्त पत्र व काटो के मध्य भाग मे या काड के चारो ओर नीले, भूरे या वैगनी रग के, वृन्तहीन, आधा से एक इ च तक लम्वे, सहज मधुर गन्धयुक्त, फल—शीतकाल मे पतले, चिपटे, ८ मि. मि. लम्वे, रेखाकार, कुछ नुकीले, चमकीले हरे, भूरे रग के ४ से ८ तक बीजयुक्त, वीज—चपटे, भूरे, निषमा कृति के, अन्दर से श्वेत, स्वाद मे फीके लुआवदार होते है। ये ही वीज-तालमखाना कहाते है। मूल-अ गूठे जैसीमोटी, भूरी, लाल, गध मे उग्र, स्वाद मे किंचित् कडुवी होती हैं। इसके क्षुप प्राय सर्वत्र, विशेषत वगाल, विहार, कोकण आदि मे प्रचुरता मे पाये जाते हे।

नोट--(१) इसकी एक जाति श्वेत पुष्प वाली भी होती है किंतु यह सर्वत्र प्राप्य नहीं है।

(२) चरक के शुक्रशोधन गण में इसका उल्लेख है।

(३) आचार्य श्री वल्लभराम विश्वनाथ वैद्य जी इसे क्षीर-काकोली का एक उत्कृष्ट प्रतिनिधि मानते है। उनका कथन है कि यह अश्वगंधा से अधिक शीतल एव पौष्टिक है। अतः यह क्षीरकाकोली के नाम और गुण को भी विशेष सार्थक करता है। यूनानी--हकीम लोग इसका अधिक प्रयोग करते हैं- मै तो करता ही हू, तथा आख का तेज व स्मृतिशक्ति वढाना, वीर्य का स्थिरीकरण करना आदि कई विशिष्ट गुण इसके वीजों मे मै देख भी चुका हू। (सचित्रायुर्वेद)



नाम—

सं०--कोकिलाक्ष (पुष्प के मध्य मे पीत विन्दु होने से), इक्षुगंधा (काण्ड मे ईख जैसी गध आने से) इक्षुरक हि०--तालमखाना, कोलैया, गोखुला। म०--तालमखाना कोलसु दा, कोलिस्ता, विखारा। गु० -एखरो। व० कुलेखाडा काटाकालिका। अं.--लाग लीव्हड वार्लेरिया (Long leaved barlaria) ले०--एस्टराकेंथा लागिफोलिया हायग्रोफिला स्पिनोसा (Hygrophila Spinosa)

रासायनिक सघटन—

वीजो मे—३१% मासल पदार्थ (अल्वुमिनाईड), कुछ क्षारतत्व तथा २१ से २३% एक पीताभ, मधुर, स्निग्ध तेल होता है।

प्रयोज्यांग— वीज, मूल, पत्र व क्षार या भस्म।

गुण धर्म व प्रयोग-

वीज—स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, मधुर, तिक्त, मधुर-विपाक, शीतवीर्य, वातपित्त-शामक, सतर्पक, शुक्रस्तम्भक,

वाजीकर, गर्भस्थापक, मलस्तंभक, यकृदुत्तेजक, मूत्रल, अनुलोमन, शोणितस्थापक, नाडी-बल्य, वृष्य व नृहण है, शुक्रप्रमेह, स्वप्नदोष, आमवात, तृषा, नेत्रविकार, वातरक्त, दाह, पित्त, रक्तपित्त, रक्ताल्पता, मूत्र कृच्छ्र, अश्मरी व वस्तिशोथ आदि मे प्रयुक्त होते हैं।

प्रवाहिका मे—इसबगोल के समान इनका प्रयोग किया जाता है। नाडी-दौर्बल्य मे—बीजा का चूर्ण देते हैं।

प्रमेह मे—बीजो का क्वाथ मिश्री मिलाकर पिलाते हैं।

१. शुक्र-क्षय मे—बीज-चूर्ण १ भाग के साथ कौंच बीज का चूर्ण १ भाव और शर्करा २ भाग मिला, धारोष्ण दूध के साथ सेवन करें। यह उत्तम वाजीकरण योग है (सु चि. अ २६) आगे योग न० ४ देखे।

२ वातरक्त मे—इसका क्वाथ या इसके पचाग का फाट पीने तथा इसके पत्तो का शाक खाते रहने से शीघ्र-लाभ होता है—(वा चि अ २२)

३ प्रमेह पर—बीज-चूर्ण के साथ, खरेटी, गगेरन, व गोखुरू का समभाग चूर्ण लेकर, तथा सबके समभाग मिश्री मिला, ४ मा की मात्रा मे दूध से सेवन करते हैं। अथवा—बीजो को दूध मे पका कर सेवन करते हैं। आगे वि योगो मे प्रमेहान्तक चूर्ण देख।

४ धातुपुष्टि तथा कामशक्तिवर्धनार्थ—बीजो के साथ गोखुरू, शतावर, कौंच-बीज (छिलके रहित), नागवला (गुलशकरी), तिल व उडद समभाग चूर्ण कर, रात्रि के समय ४-६ मा तक, दूध के साथ सेवन करे (ग नि)। अथवा—

बीज-चूर्ण के साथ श्वेत मुसली व छोटे गोखुरू का चूर्ण मिला, धारोष्ण दुग्ध के साथ, शक्कर मिलाकर सेवन करें।

अथवा—केवल इसीका चूर्ण शक्कर मिला सेवन करे। और ऊपर से धारोष्ण दूध लेवे। आगे वि योगो मे पाक देखे।

५ अतिसार पर—बीजो का कल्क मक्खन तथा दूध के छेने के पानी के साथ देते है। अथवा बीजो को दही मे पीसकर या इसके चूर्ण को दही के साथ देते है।

६ योनिसकोचनार्थ—बीजो के क्वाथ मे उसी का चूर्ण मिला [illegible] करते हैं।

७ शोथ पर—बीज २॥ तो को पानी २० तोला मे १० मिनट तक उबाल कर, छानकर, मात्रा—५ तो दिन मे ३ बार पिलावें।

८ श्वास-विकार पर—बीज-चूर्ण को शहद और गौ घृत के साथ देते हैं। यह योग [illegible] पर भी लाभकारी है।

मूल—कटु, तिक्त, मूत्रल, वेदनाशामक, बल्य, [illegible], सधि-पीडा, सुजाक आदि में उपयोगी है।

९ शोथ, मूत्रकृच्छ्र (सुजाक), अश्मरी सन्निपात वस्तिशोथ, तथा यकृतोदर मे—मूल का क्वाथ पिलाते हैं क्वाथ के लिये ५ तोला मूल को जौकुट कर ५३ तो पानी मे (अथवा—१ भाग मूल को २० भाग पानी, मे) ढके हुए पात्र मे लगभग २० मिनट से ३० मिनट तक पकाकर छान लेते हैं। मात्रा—५ तोला तक, दिन मे ३ बार पिलाते है। जलोदर पर भी इसे देते हैं। मूत्राशय एव जननेन्द्रिय के विकारो पर यह लाभकारी है।

१० जलोदर पर—मूलकोजौकुटकर २॥ तोला लेकर ५० तो पानी मे पकावें। लगभग ३६ तोला जल शेष-रहने पर, २॥ से ४ तोला की मात्रा मे प्रति-दो-दो घटे से पिलावे। इसकी जड के अभाव मे इसके पचाग की भस्म दी जाती है। आगे प्र० न १४ देखे।

११ प्रसवकालीन कष्ट-निवारणार्थ—मूल और शक्कर समभाग लेकर मुख मे रख चबाने से जो लार निकले उसे स्त्री के कान मे डालने से शीघ्र प्रसव हो जाता है।
(वगसेन)

१२ मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात व अश्मरी पर—मूल के साथ गोखुरू व रेडी की जड को दूध मे पीसछान कर पिलावे— (चरक)

पत्र—स्वादु, तिक्त, मूत्रल है व शोथ, शूल आध्मान, उदर-रोग पाडु, कामला, गल-रोग, मूत्र-विकार, वाताष्टभ आदि नाशक है। वातरक्त मे पत्रो का शाक खिलाते है।

१३ पाडु, कामला, जलोदर, मूत्र की जलन या दाह पर—इसके ताजे शुष्क पत्र ५ तो को २५ से ४० तो तक उत्तम परिस्रुत अगूरी सिरके मे ३ दिन तक घोलकर

अच्छी तरह निचोडते हुए छानकर रक्खे। मात्रा -१। तोला से ३ तोला तक, प्रति दिन ३ बार सेवन कराने से प्रशस्त लाभ होता है। (डा० कनाई लाल डे)

अथवा पत्रों–का फाट (१ भाग पत्र को १० भाग उबलते हुए पानी मे--) ३ दिन तक घोल, छानकर पिलाने से भी लाभ होता है।--

(नाडकर्णी)

क्षार और भस्म—इसके पंचाग का क्षार अथवा भस्म-उदर-रोग, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी व यकृतोदर मे--प्रयुक्त होती है। प्राय. गोमूत्र के साथ इसका प्रयोग करते हैं।

१४ जलोदर या यकृतोदर--इसके पचाग की राख कपडे से छानकर शीशी मे भर रक्खें, यह राख-एक चम्मच भर लेकर १० तोले पानी में मिला अच्छी तरह हिलाकर, इस पानी को २॥ तो. की मात्रा मे २-२ घटे के अन्तर से पिलाने से उत्तम लाभ होता है--

(डा अन्सली)

(१५) पित्ताशय के शूल व अश्मरी पर—इसके पचाङ्ग की राख मे से बनाया हुआ क्षार ४ से ८ रत्ती शीतल जल के साथ १–१॥ घटे पर २—३ बार देने से भयकर शूल आदि लक्षणो युक्त पित्ताशय की अश्मरी का नाश होता है। यह क्षार अश्मरी कण को पिघला कर निकाल देता हैं। शूल शमन हो जाने पर यह क्षार दिन मे ३ बार, घृत के साथ कुछ दिनो तक लेते रहने से पित्ताश्मरी की उत्पत्ति मे प्रतिबन्धक हो जाता है। तथा पित्ताशय मे उत्पन्न पथरी गल जाती है। आगे वि० योगो मे क्षारविधि देखें। (रसतत्रसार)

(१६) बैल के कधे कट जाने पर--इसकी भस्म को तेल मे पका कर लगाते हैं।

नोट–मात्रा-पचाङ्ग का स्वरस २-४ तो०। क्वाथ ५ १० तो०। मूल का क्वाथ-४ तो०। बीज-चूर्ण १-४ मा०; क्षार- २-४ रत्ती। भस्म-१-२ मा० अधिक मात्रा में बीजों का सेवन आध्मानकर व दुर्जर होता है। हानि-निवारणार्थ -मिश्री, मधु या दूध देते हैं।

विशिष्ट योग—

(१) तालमखाना पाक न०१-(पुष्टिकर, वीर्यवर्धक) तालमखाना खूब साफ किया हुआ १ पाव लेकर, ताजे दूध मे ३ बार तर कर, शुष्क कर, एक या दो नारियल के गोलो मे भर कर, ऊपर आटा लपेट दे। फिर आग के सामने-चूल्हे मे रखदे। जब धुआ निकल जाय, गोला सुर्ख होजाय, तब उसे निकाल, आटा दूर कर, पीस कर, उसमे तोदरी सुर्ख, तोदरी सफेद, गोखुरू छोटा व बड़ा, मूसली सफेद व स्याह, तथा गाजवा २–२ तो० सालम मिश्री, समुद्र सोख, इन्द्रजौ, मोचरस, इलायची छोटी, १–१ तो० दालचीनी ६ मा० सुरजान, शकाकुल मिश्री, बसलोचन १॥-१॥ तो० पिस्ता व चिलगोजा ५-५ तो० बादाम मिगी १० तो० इन सबको पीस कर मिलादे। १ सेर मिश्री की चाशनी मे सबको मिलाकर मोदक बना लें। २॥ तो० प्रात.साय दूध के साथ सेवन करने से शरीर पुष्ट होता व प्रमेह और नपुसकता दूर होती है।

पाक न०२—तालमखाना के साथ गोखुरू, कौच-बीज, खरेटी-बीज, स्याह मुसली, शतावरी, सालम मिश्री पजाबी मिश्री, और चोपचीनी इन सबका चूर्ण कर, घृत मे साधारण भून कर, उसमे खोवा तथा मिश्री की चाशनी मिला, एकत्र घोट कर, बादाम–गिरी, चिरोजी, पिस्ता, किसमिस, और अखरोट, इलायची, केसर, लौंग, जायफल, जायपत्री, दालचीनी एव गिलोय-सत्त्व मिला मोदक बना ले। नित्य २ तो० खाकर ऊपर से धारोष्ण गौदुग्ध पीवे।

नोट—इसके पाक के अन्य प्रयोग हमारे 'बृहत-पाक सग्रह' ग्रन्थ में देखें।

(२) तालमखाना—चूर्ण—(प्रमेहान्तक चूर्ण)—तालमखाना ५ तो० तथा जायफल २॥ तो० इनका कप-डछान चूर्ण कर, उसमे गिलोयसत २॥ तो० और मिश्री का चूर्ण १० तो० मिला, खूब खरल कर अच्छी डाट वाली शीशी मे भर रक्खे।

३ मा० से १ तो० तक यह चूर्ण लेकर उसमे प्रवाल-पिष्टी २ रत्ती मिला, दिन मे १ या २ बार गोदुग्ध के साथ सेवन से सर्व प्रकार के प्रमेह, विशेषत कफज व पित्तज मे लाभदायक है। यह वृष्यो को शक्तिप्रद है। रक्त को शुद्ध करता तथा मूत्र की वृद्धि कर दोष रहे दोषो को शीघ्र निकाल देता है। वीर्य को शीतल व गाढा

बनाता, मूत्राशय की उग्रता शान्त करता एवं स्वप्न दोष में भी लाभ करता है।

ध्यान रहे इस चूर्ण में प्रवाल-पिष्टी मिला, ५ तो० दूध में डाल कर थोड़ा चलाकर तुरत पी लेवे, फिर शेष दूध धीरे धीरे पीवे, अन्यथा यह चूर्ण तालु में चिपक जाता है। यदि पाचन-क्रिया अच्छी हो, तो मात्रा १ तो० ले सकते हैं। अन्यथा ३ या ६ मा० तक ही लेवे।

मैदा, शक्कर, गुड वाले पदार्थ कम खावे। रात्रि का भोजन हल्का होवे। खटाई, मिर्च, गरम-चाय, बीड़ी सिगरेट आदि से परहेज करे। प्रात एवं सायं १-२ मील या अधिक घूमते रहने से जल्दी लाभ होता है।

—रसतन्त्रसार।

(३) टिंचर तालमखाना—इसके पंचाङ्ग के चूर्ण १ भाग में ३ भाग मद्यार्क (अल्कोहल)—मिला, शीशी में डाट बंद कर (१ दिन रख) छान ले। मात्रा—२० से ३० बूंद, दिन में ३ बार सेवन से मूत्राशय के विकार, मूत्रकृच्छ, बारबार पीडा सहित मूत्र के होने आदि में लाभ होता है। —(नाडकर्णी)

(४) क्षार तालमखाना—इसके पंचाग को काट कर, छायाशुष्क कर जलादे। फिर इसकी राख में दुगुना पानी मिला, रात भर रक्खा रहने दे। प्रात नितरा हुआ ऊपर का जल अलग नितार कर, नीचे की राख में पुन दुगुना पानी डाल दे। दूसरे दिन प्रात उसे भी नितार कर, दोनों को एकत्र कर कडाई में डाल कर मन्द आँच से पकावे। धीरे धीरे पानी जब शहद जैसा गाढा हो जाय, तब नीचे उतार अलग रखदें। कुछ देर बाद कढाई की तलैटी में एक प्रकार का नमक जैसा क्षार प्राप्त होगा। यह पिताश्मरी एवं पित्तशूल की अमोघ औषधि है। मात्रा ६ रत्ती से १ मा० तक। इसे सहिजने की छाल के रस या शीतल जल से देने से शूल नष्ट हो जाता है। हृदय-शूल में भी यह लाभकारी है।

—ब्रह्मचारी स्वामी रामकल्याणानन्द (धन्वन्तरि के-शूल-रोगांक से)

तालमूली दे०—मुसली स्याह।

तालाबी अनार दे०—कुमुद।

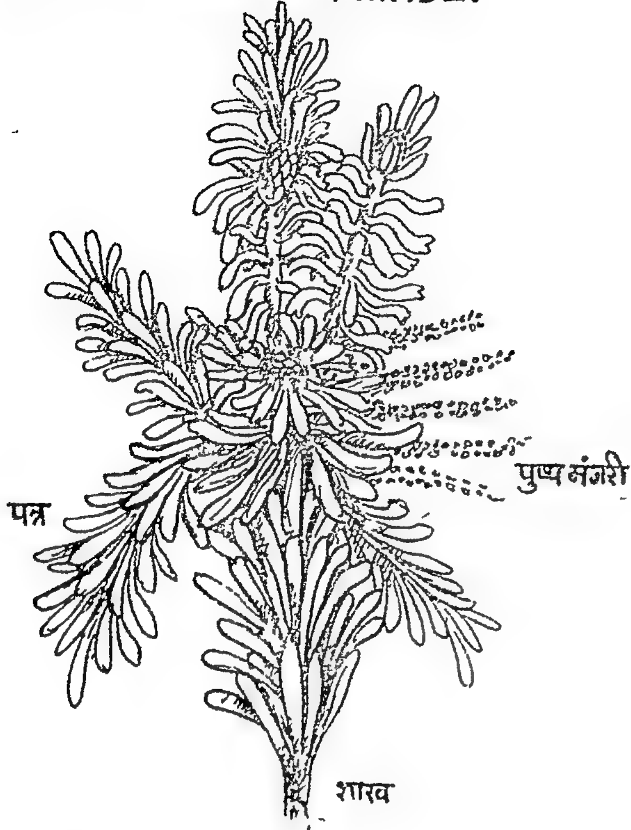
तालीसपत्र नं० १[1] (Abies webbiana)

कर्पूरवर्ग एवं देवदारु-कुल (Coniferae) के इसके सदैव हरित, रोमश, धूसर वर्ण के, सुदृढ, पत्राच्छादित वृक्ष १५०-२०० फीट ऊंचे, काण्ड की परिधि प्राय ३० फीट, छाल—भूरी या श्वेत वर्ण की, चिकनी शाखाएं—सूक्ष्म भूरे वर्ण के रोमों से व्याप्त, झुकी हुई, पत्र—काण्ड से पेचदार क्रम से, किन्तु दीखने में दो पंक्तियों में, रेखाकार नताग्रपत्र ¾ से १॥ इंच लम्बे, ·1/10 इंच चौडे, आमने सामने, मोटे, अग्रभाग में तीक्ष्ण, कठोर नोकवाले, ऊपरीभाग में फीके हरे, एक लम्बी रेखा द्वारा विभक्त, निम्न भाग चिकना, गहरे हरे रंग का, वृन्त बहुत छोटा सा होता है। पुष्प—नरफूल-परतदार मंजरी में, पखुडियों से आच्छादित, पतनशील मादाफूल पतली पतनशील परतवाले, लम्बगोल नलिकाकार होते हैं। जो आगे फलों में परिवर्तित होते हैं। फल—लम्बगोल २-४॥ इंच लम्बे, पकने पर बैंगनी या नीले वर्ण के, बीज-पक्षयुक्त ½ इंच लम्बे होते हैं।

ये वृक्ष काश्मीर, भूटान, कुमायूं, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, पूर्वीपंजाब आदि प्रान्तों के ऊंचे पहाडी

[1] इसके विषय में भी बहुत मतभेद है। देश-भेद से तीन प्रकार की बूटियां इस नाम से व्यवहृत होती हैं। (१) बंगाल का ता पत्र जिसका वर्णन यहां किया जाता है। (२) मध्य देशीय (Taxus Baccata)। यह युक्तप्रांत, उत्तरप्रदेश, राजपूताना, महाराष्ट्र, गुजरात आदि में प्रयुक्त होता है। (३) नेपाली (Rhododendron Anthogon) इनके अतिरिक्त आसाम आदि में पूर्व भारत के समुद्रतट वर्ती प्रान्तों में होने वाला (Flacoatia Catapracta)। इन सब का संक्षिप्त वर्णन आगे क्रमश किया जावेगा। तामील व तेलगु प्रान्तों में तमाल पत्र [Cinnamomum Tamal] को ता पत्र नाम से व्यवहृत होता है। इसका वर्णन 'दालचीनी' में देखिये।

तालीस पत्र
ABIES WEBBIANA LINDL.



प्रदेशो मे ८–१२ हजार फीट की ऊचाई पर विशेषत होते है ।

विशेषत बंगाल एव पूर्वीभारत मे इसी के पत्र तालीस पत्र नाम से प्रयोग मे लाये जाते है। इसे चिला, चिलीराध भी कहते है ।

नोट—सुश्रुत के शिरोविरेचन गण मे इसका उल्लेख है ।

मोरिण्डा नामक (Abies Pindrow) एक वृक्ष इसी जाति का, तथा इसके सदृश ही होता है । ये वृक्ष जौनसार मे प्राय १० हजार फीट के नीचे (देववन, मुंडाली आदि स्थानो) मे पाये जाते है । इसकी नवीन शाखाएं रोमरहित, पत्र–२–३ इंच लम्बे, दो कतारो मे निकले हुए होते हैं । ये शाखाएं दो दिशाओं मे फैली हुई होती हैं, तथा प्रस्तुत प्रसग के वृक्ष की शाखाए ऊपर की ओर हर दिशा मे फैली हुई होती है । इसके फल भी कुछ छोटे व मोटे होते हैं ।

नाम—

स —तालीस, पत्राढ्य, धात्रीपत्र इ. । हि०-तालीस पत्र, चिला, चिलिराध, बुदर इ० । म -गु बं-तालीस-पत्र, वर्मी । अं.—सिल्वरफर, [Silverfir] । लै०—एबीज वेब्बीएना ।

रासायनिक संगठन—

पत्र मे एक स्फटिकीय क्षारतत्व (Taxine), तथा एक उडनशील तल होता है ।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र ।

गुण-धर्म व प्रयोग–

लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, मधुर-विपाक, उष्णवीर्य, कफ-वातशामक, रोचन, सकोचन, दीपन, वातानुलोमन, वेदनास्थापन, श्लेष्म-श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न व बल्य है। तथा अरुचि, अग्निमाद्य, आध्मान, गुल्म, कास, श्वास, हिक्का, वमन, स्वरभेद, रक्तपित्त, अपस्मार, यक्ष्मा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रवहस्रोत के शोथ व वातश्लेष्मिक ज्वर आदि मे प्रयुक्त होता है ।

ब्राको-निमोनिया (Broncho Pneumonia) मे ताजे पत्तो का प्रयोग, ज्वर-शातिकर एव कफ-निस्सारक होता है । स्वरभग मे इसका फाट या क्वाथ देते है। इससे कठरोग, जीर्ण श्वास-नलिकाशोथ व यक्ष्मा मे भी लाभ होता है ।

इसके वृक्षो का गोद, गुलाब तेल मे मिला कर पीने से विष-प्रकोप होता है, इसे सिर दर्द तथा वातनाडी-शूल पर लगाते है ।

क्षय, श्वास, वातनाडीप्रदाह एव मूत्राशय के विकारो पर इसके शुष्क पत्तो को पीसकर अडूसारस व शहद के साथ देते है । इससे कास, श्वास और रक्तष्ठीवन में भी लाभ होता है ।

प्रसूता स्त्री को—पत्ररस गोदुग्ध के साथ पुष्टि के लिये दिया जाता है। इससे प्रसूतिजन्य शक्तिपात मे लाभ होता है ।

आध्मान पर—पत्र-चूर्ण मे अजवायन-चूर्ण मिला सेवन कराते हैं ।

उदर शूल मे—इसे काले नमक के साथ देते है ।

अतिसार मे—इसे इन्द्रजव के साथ, या शर्बत के

साथ देते है ।

बल-वृद्धि के लिये--इसे छोटी इलायची, वसलोचन तथा शहद के साथ देते है ।

अपस्मार पर—पत्र-चूर्ण में वच का चूर्ण मिला शहद से देते है ।

मूत्रातिसार में--इसके साथ सोठ को पानी मे पीस कर मूत्रनलिका पर लेप करते है ।

(१) बच्चो के दन्तोद्भव के समय होने वाले ज्वर एव कफ-विकारो पर—इसके ताजे पत्तो का रस ५-१० बूद मातृदुग्ध या जल के साथ देते है ।

(२) अरुचि पर--पत्तो का महीन चूर्ण कर, मिश्री की चाशनी मे मिला, तथा उसमे सुगन्धि-मात्र के लिये कपूर डालकर, छोटी २ वटी बना, सेवन कराने से विशेषत राजयक्ष्मा मे होने वाली अरुचि दूर होती है । (वाग्भट चि अ ५)

(३) राजयक्ष्मा पर—पत्र-चूर्ण १ भाग मे, सितोपलादि चूर्ण दो भाग मिला, रोगी के बलाबलानुसार घृत व शहद (विपम भाग) मिला प्रात साय चटाते है ।

(४) कास, श्वास पर—कुकुर खासी हो, तो पत्रो को गरम जल मे भिगो मल छानकर अदरख का रस मिला, थोडा २ पिलाते हैं।

साधारण सूखी खासी पर–पत्रचूर्ण को शहद के साथ चटावे । वि योगो मे तालीसादि चूर्ण देखे ।

श्वास पर–पत्रचूर्ण मे अडूसे का स्वरस और शहद मिला (दिन मे ३ बार) सेवन करने से तमक श्वास, स्वरभेद व रक्तपित्त मे लाभ होता है । (वृ मा)

पत्र-चूर्ण के साथ हल्दी-चूर्ण मिला चिलम मे भर कर धूम्रपान भी श्वास रोग मे कराते है ।

(५) प्रवाहिका तथा गुदभ्रंश पर–इसके पत्र ५ तो तथा हरड, माँफ, पोस्त के छिलके (डोडे), मुडी और अनार फल का छिलका १-१ तो लेकर सब का महीन चूर्ण कर व कडाही मे भून कर, उसमे अदाज से कालानमक मिला, ६ मा की मात्रा मे दूध या तक्र के साथ, दिन मे २-४ बार सेवन से अवश्य लाभ होता है ।

—स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य ।

(६) व्रणो पर—तालीसाद्य तैल–इसके पत्र, पद्माख, जटामासी, रेणुका (सभालू के बीज), अगर, चन्दन, हल्दी, दारु हल्दी, कमलगट्टा और मुलैठी, समभाग ३-३ तो० लेकर पीस कर कल्क बनावें, फिर उक्त प्रत्येक द्रव्य ४-४ तो० पानी ४ सेर ३२ तो० मे पका, चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें, और तैल २२ तो० मे कल्क व क्वाथ मिला तैल सिद्ध करले । इस तैल को लगाने से शीघ्र ही व्रण रोपण होता है—(मु० स०)

(७) वध्याकरण योग—इसके पत्र-चूर्ण के साथ सोना गेरू-चूर्ण समभाग मिला १ या २ तो की मात्रा मे, प्रात शीत जल से, स्त्री को रजस्वला होने के चौथे दिन से ४ दिन तक पिलाते है ।

नोट--मात्रा-चूर्ण ४ रत्ती से २ मा० तक । अत्यधिक मात्रा मे विषैला होता है ।

विशिष्ट प्रयोग —

(१) तालीसाद्य चूर्ण—तालीस-पत्र १ तो०, काली मिर्च २ तो०, सोठ ३ तो०, पीपल ४ तो०, वसलोचन ५ तो०, इलायची ७ मा०, दालचीनी ७ मा० और मिश्री ३० तो०, लेकर चूर्ण करले अथवा मिश्री की चाशनी मे चूर्ण को मिला गोलिया बनाले ।

मात्रा–२ से ४ मा० प्रात साय शहद के साथ लेवे । यह रुचिवर्धक व पाचक है। तथा कास, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोथ, अफारा, संग्रहणी, प्लीहा व पाडु-रोग नाशक है । (शा० स०)

उक्त चूर्ण बच्चो को १३ रत्ती की मात्रा मे, कस्तूरी वटी १ रत्ती मिलाकर ६ मात्रायें बना प्रति ४-४ घटे से शहद के साथ देने से श्वसनी-फुफ्फुसपाक (ब्राको नियोनिया) जिसमे ज्वर-ताप १०१ से १०३ तक रहता है, लाभकारी है ।

तालीसादि चूर्ण न० २–तालीस-पत्र, सोम, मुलैठी, अडूसे के फूल और पुष्करमूल समभाग, महीन चूर्ण कर ४-६ रत्ती की मात्रा से, दिनमे ३-४ बार शहद के साथ लेने से श्वास, कास, व जुकाम मे लाभ होता है ।

(सिद्धयोग संग्रह)

इसके अन्यान्य पाठ यो० र०, वं० सेन आदि ग्रन्थो मे देखें।

(२) तालीसाद्य गुटिका—तालीसादि-पत्र, चव्य, काली मिर्च २-२ तो०, सोठ–चूर्ण ६ तो०, पीपल, पीपलामूल-चूर्ण ४-४ तो० नागकेसर, दालचीनी, तेजपात, खस १-१ तो० तथा इलायची ½ तो० इन सबके चूर्ण से ३ गुना गुड़ लेकर, एकत्र मर्दन कर १।-१। तो० के मोदक बना लें। इसे, मद्य, यूप, दूध या पानी के साथ लेने से, अर्श, शूल, पानात्यय वमन, प्रमेह, विषम-ज्वर, गुल्म, पाडु, शोथ, हृद्रोग, ग्रहणी, कास, हिक्का, श्वास, अरुचि, कृमि, अतिसार, कामला, अग्निमाद्य व मूत्रकृच्छ्र मे लाभ होता है।

यदि उक्त द्रव्यो के चूर्ण मे ४ गुनी मिश्री मिला ले (गुड न मिलावें) तो यह पित्तज रोगो मे विशेष गुण-दायक हो जाता है।

यदि शोथ, अर्श, ग्रहणी, पाडु व शूल रोग की विशेषता हो, तो उक्त गुटिका मे हर्र और त्रिफले का चूर्ण और मिला ले। (ग० नि०)

(३) तालीसादि पाक या मोदक—तालीसादि-पत्र, काली मिर्च २, सोठ ३, वंसलोचन ४ (यदि रोग मे पित्त की प्रबलता हो, तो वंसलोचन लेवे, अन्यथा इसकी आवश्यकता नही), पिप्पली ५ भाग, तथा दालचीनी व छोटी इलायची ½-½ भाग, इन सबका महीन चूर्ण कर मिश्री ४० भाग (यदि वंसलोचन न मिलाया हो, तो पीपल ४ भाग लेकर, उसमे मिश्री या खाड ३२ भाग) की चाशनी मे मिला पाक जमाले या मोदक बनालें।

इसे १ से २ या ६ मा० तक सेवन से तालीसादि चूर्ण के समान ही लाभ करता है। यह अत्यन्त जठराग्नि दीपक है, एव मूढवात (रुके हुए मलवात) का अनुलोमन कारक है। उक्त चूर्ण से यह विशेष लाभकारी है, कारण अग्नि-सयोग से पक्व होने इसमे विशेष लघुता आ जाती है।

नोट—इसके तथा अन्य पाकों के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे 'वृ० पाक संग्रह' मे देखें।

तालीस-पत्र नं० २ (Taxus Baccata)

यह भी देवदारु-कुल (Coniferae) का है। इसके मध्यम ऊंचाई के सदा हरित वृक्ष कही-कही १०० फीट तक ऊचे, परिधि या गोलाई ५ से १२ फीट, शाखाए–सीधी, चारो ओर फैली हुई, छाल–पतली कोमल, किंचित् लाल, भूरे रग की, पत्र–दो पक्तियो मे, १-१½ इञ्च लम्बे, $\frac{1}{10}$ इञ्च चौडे, रेखाकार, चिपटे, कडे, नोकीले, ऊपरी भाग गहरे हरे रग का, चमकीला, निम्न भाग हल्के पीतवर्ण का, सूखने पर एक प्रकार की विशिष्ट गधयुक्त, पुष्प भी एकाकी, पत्रकोण से निकले हुए, पुष्प-वृन्त–परतदार, ⅓ इञ्च लम्बे, वेर जैसे गोल, उज्ज्वल लाल रग के, ऊपरी छाल बहुत कडी, बीज–हरिताभ, ऊपरी भाग मे खुला हुआ होता है।

ये वृक्ष हिमालय के काश्मीर प्रान्त मे, तथा पजाव के पहाडी प्रदेशो मे, एव गढवाल, अफगानिस्तान, अपर वर्मा आदि स्थानो मे ६-१० हजार फीट की ऊचाई पर, तथा उत्तरी एशिया, उत्तर अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका व यूरोप मे भी पाये जाते है।

नोट—कुछ आचार्यो ने इसे थूनेर (स्थौणेयक) जो सुगधित होता है, तथा जो गठिवन या एक प्रकार का तगर विशेष माना है। यद्यपि थूनेर और इसके गुणधर्म कुछ अंश मे मिलते हैं, तथा पत्तों का आकार प्रकार भी बहुत कुछ मिलता-जुलता है, तथापि इसे थूनेर मानना उचित नहीं जचता। आगे थूनेर का प्रकरण यथा स्थान देखें।

नाम—

हि०–तालीस-पत्र, बिर्मी आदि। वं० बिर्मी। अं०–हिमालयन यू (Himalayan yew)। ले०–टेक्सस बेकाटा।

रासायनिक सघटन–

बीज और पत्र मे एक विपैला द्रव्य होता है, तथा टेक्सीन (Taxin) नामक एक क्षाराभ, तत्व एव टेनिक एसिड, गैलिक एसिड पाये जाते है।

गुणधर्म व प्रयोग—

ग्राही, अवसादक, वेदना-शामक, आक्षेप या उद्वेष्टन

निरोधी, आर्त्तवजनन, वातानुलोमन, कफ-निःसारक, गर्भाशय-सकोचक है। इसकी क्रिया कुछ-कुछ डिजिटेलिस के जैसी होती है। यह उतना हानिकर नहीं, इसका प्रभाव शरीर मे सचायी नही होता। अल्प मात्रा मे यह नाडी एव श्वास की तीव्र गति को कम करता है। मध्यम मात्रा मे श्वास को बढाता तथा हृत्स्पन्द करता है। इससे गर्भाशय का सकोच होता है, गर्भपात के लिये प्रयुक्त करने पर, गर्भपात तो नही होता, किन्तु मृत्यु होने की सम्भावना होती है। वडी मात्रा मे—चक्कर,वमन, आक्षेप, नशा, आखो की पुतलियो का विस्तार, मद श्वास एव श्वासावरोध होकर मृत्यु होती है, तथा आमाशय, आत्र एव वृक्को मे शोथ भी हो जाता है।

इसके पत्राकुरो का अर्क सिरदर्द, भ्रम, निर्बल नाडी, त्वचा की शीतलता, अतिसार, अरुचि आदि मे देते है।

ज्वर मे भी इसके पत्तो का प्रयोग करते हैं, किन्तु यदि ज्वर मे नाडी व हृदय अशक्त हो, तो इससे हानि होती है। कफ-विकार, क्षय, श्वास-नलिका का जीर्ण-शोथ, श्वास, कास एव फुफ्फुस के अन्य विकारो पर विशेषत घवराहट दूर करने के लिये इसका प्रयोग होता है।

पहाडी लोग इसके वृक्ष की चाय वनाकर पीते है। और फलो को खाते है।



नोट—मात्रा—१ से ३ रत्ती या १ मा० तक।

यह उष्णप्रकृति के लिये हानिकारक है। हानिनिवारणार्थ सूखा धनिया दिया जाता है।

तालीस पत्र नं. ३ (Rhododendron-Anthopogon)

तालीशकुल (Ericaceae) के इसके सदाहरित सुगंधित छोटे २ क्षुप १-२ फीट ऊंचे, ¾ इच व्यास के, शाखाएं सघन, खुरदरी, छाल—गुलावी वर्ण की, पत्र—विशेषत शाखा के अग्रिम भाग पर ½ से १¼ इच लम्बे, ¼ से ¾ इच चौडे, अण्डाकार, मोटे, मुडे हुए किनारे वाले, दोनो सिरो पर कुठित, ऊपरी भाग चमकीले, अधोभाग भूरे रोमश एव छोटे वृन्तयुक्त होते हैं। पुष्प—शाखाओ के अन्त मे, किंचित् पीली छटा वाले, ¼ से ¾ इच व्यास के, छोटे वृन्तयुक्त, फली—¾ इच लम्वी, गोल, परतदार, वीज अण्डाकार छोटे-छोटे होते है।

इसके क्षुप हिमालय मे काश्मीरसे भूटान तक ११ से १६ हजार फीट की ऊचाई पर, तथा मध्यउत्तर एशिया मे विशेष पाये जाते हैं।

नोट—इसका उपयोग तालीसपत्र नाम से नेपाल और पजाब में अधिक होता है।

कहा जाता है कि प्राचीन आचार्यों का माना हुआ यही तालीसपत्र है।

इसके तथा इसकी उपजातियों के पत्र विषारी होते हैं।

नाम—

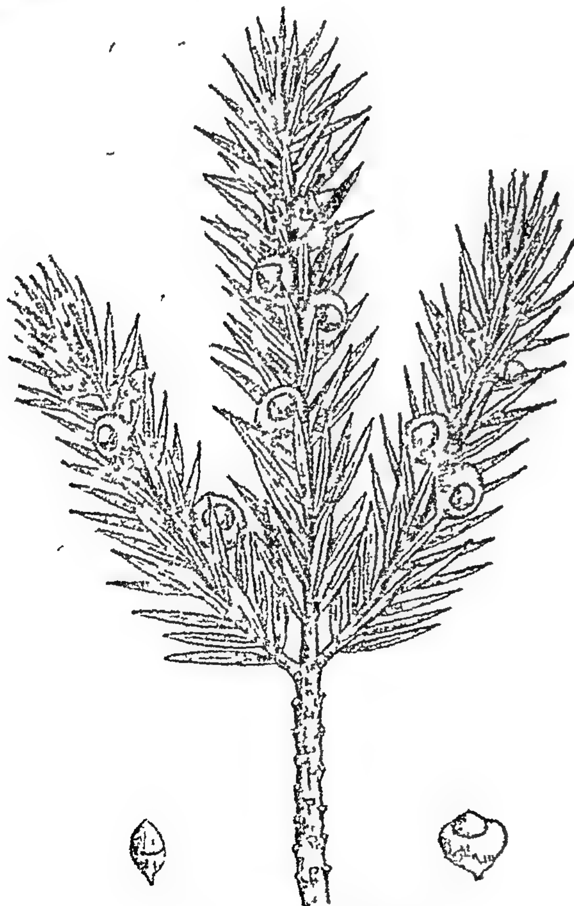
हि -म.-गु.—तालीसपत्र, तालीसफर, तालिस्त्री इ.। बं०—तालीशपत्र । ले०—रोडोडेण्ड्रोन एन्थोपोगान ।

गुण धर्म व प्रयोगः—

पत्र-उष्ण, सुगन्धित, उत्तेजक, शिरोविरेचन, श्वास, गलरोग आदि मे प्रयुक्त हैं। पत्र–चूर्ण से छीकें आती हैं। श्वास आदि कफ प्रधान रोगो मे पत्तो का धूम्रपान कराते हैं। मात्रा–२ से ८ रत्ती।

नोट—इसकी कई उपजातियां हैं-उनमे से (१) चैरेलु, ग्गार, चिमुल (Rho Campanulatuny) है। इसका क्षुप कुछ बड़ा होता है, पत्र–३–४ इंच लम्बे, अण्डाकार, आयताकार, दोनों सिरों पर गोल एव नीचे का पृष्ठभाग सघन रोमों से व्याप्त होता है।

यह भी हिमाचल में काश्मीर से भूटान तक पाया जाता है।



तालीसपत्र (थिर्नी)
TAXUS BACCATA LINN

गुण धर्म व प्रयोग—

पत्ते बकरियो के लिये विषैले होते है। अर्धविभेद व प्रतिश्याय मे इसका पत्र-चूर्ण तमाखु के साथमिला कर नस्य कराते है। जीर्ण आमवात, फिरग, तथा गृध्रसी मे पत्तो का आभ्यन्तरिक प्रयोग किया जाता है। जीर्णज्वर और राजयक्ष्मा मे पचाङ्ग का प्रयोग करते हे। मात्रा—२–८ रत्ती।

नोट—इस बूटी का विशेष वर्णन चिरायस्तू में देखिये। इसकी दूसरी उपजाति (Rho Lapidotum) लेटिन नामकी है। इसका क्षुप छोटा, गधयुक्त, पत्र—पौन से एक इंच लबे, प्रायः वृन्तरहित, ऊपर से लटवाकार, कुंठिताग्र या भालाकार, कुछ नुकीले, नीचे की ओर श्वेत रोमो से व्याप्त, फूल–लाल, बेंगनी या पीले वर्ण के, एकाकी या गुच्छो में, बीजकोष–छोटे, ५ दलवाले, तथा-बीज-गोल छोटे होते है।

यह भी काश्मीर से भूटान तक पाया जाता है।

नाम—

हि०–तालीसफर, सिमरिस।

गुण धर्म व प्रयोग—

ऊपर के Rho Anthopogon नामक तालीसपत्र के सदृश ही है।

नोट—पानी आवला, प्राचीनामलक को भी गुजराती आदि से तालीसपत्री कहा गया है। किंतु यह भिन्न कुल का, एव वास्तविक तालीसपत्र न होने से इसका (Flacourtia Cataprracta) वर्णन पानी आंवला में यथा स्थान दिया गया है।

तिखुर—दे० अरारूट (देशी)

तितली बूटी

यह बूटी चना के पौधो के समान ही होती, तथा चना, जौ, गेहूँ के खेतो मे साथ ही उगती और आसाढ तक बनी रहती है। पुष्प–कुछ पीताभ, पत्र–चने या छोटी नुनिया के पत्र जैसे, फल–अण्डी के समान तीन बीजो के कोष मे आते हैं।

बालकों के जमोवारोग (इसमे बच्चा चौंकता, झिझकता, नींद कम आती, जीभ व मुख के जबडे जकड जाते है, वह दूध नही पी पाता व रोदन ही कर पाता है।

तीसरे दिन बच्चे का सर्वांग जकड जाता, ऐंठ जाता, बार-बार झटके (दौरे) आते, मुख से फेन निकलता, मुट्ठिया बंध जाती व श्वास बढ जाता या कष्ट से आता है। इस प्रकार प्राय वातप्रधान लक्षण होते हैं। इस रोग के अन्त मे सूखा रोग भी हो जाता है) पर—इस बूटी का निम्न सिद्ध तैल उत्तम कार्यकारी है बूटी का स्वरस १ सेर, कडवा तैल ½ सेर मे मिला तैल सिद्ध करले। इसे प्रथम मस्तक पर लगावे- फिर दोनो और कनपटियो के बीच (जहाँ नाडी चलती है) लगावें, फिर कान मे १-१ बूद डालदें। इस प्रकार यह प्रयोग दिन मे २-२ घटे मे करे तथा इसका चमत्कार देखे।

—वैद्य गदाधर वर्मा 'गन्तु' (आयुर्वेद सदेश से)

नोट—तितली बूटी गोजिह्वा (गोजिया) को भी कहते हैं, गोजिह्वा का प्रकरण भाग २ में देखें। तथा सदाब (सिताब)को भी तितली कहते हैं सताब या सदाब का प्रकरण यथास्थान देखिये।[1]

[1]एक तितली बूटी वह है जिसे लेटिनमें (Euphorbia Dracunculoides) कहते हैं। यह सातला का या थूहर खुरासानी का एक भेद माना जाता है। इसका संक्षिप्त वर्णन थूहर प्रकरण के थूहर न ५ में देखिये। हमारे ख्याल से यही वह तितली है जिसका संक्षिप्त वर्णन उक्त लेटिन नाम से आगे थूहर न ५ के १७४ प्रकरण में किया गया है।

—लेखक

तितिडीक—दे०—समाकदाना।

तितपाती (Roylea Calycina)

तुलसीकुल (Labiatae) के इसके काष्ठमय छोटे-छोटे क्षुप होते है। पत्तिया विपरीत (आमने सामने) १—२ इच लम्बी, लट्वाकार, गोलदन्तुर, अध पृष्ठ सघन रुई सदृश रोमयुक्त, पुष्प—प्रत्येक पत्रकोणीयचक्र मे गुलाबी श्वेत वर्ण के ६ से १० तक होते हैं।

हिमालय के बाहरी भाग मे ५ हजार फीट तक (राजपुर, सइया आदि मे) इसके पौधे पाये जाते हैं। जौनसारी इसके पत्तो को ज्वरनाशक द्रव्य के रूप मे व्यवहार करते है।

इस बूटी को करानोई भी कहते हे। इसके पत्र अत्यन्त तिक्त होते है। (वनौषधि दर्शिका से साभार)

तितातिया दे०—दोडक। तिधारा दे०—निसोथ और थूहर मे। तिनपतिया दे०—चागेरी।

तिनिश (Ougenia Dalbergioides)

वटादि वर्ग एव शिम्बी-कुल के अपराजिता—उपकुल (Papilionaceae)के इसके वृक्ष २०—४० फीट ऊचे; काण्ड की गोलाई ५—६ फीट, छाल—चिकनी, धूसर, या भूरे रग की, पत्र—सयुक्त, पक्षाकार, त्रिपर्ण, नुकीले, पत्रक—किंचित् गोलाकार, पलाश—पत्र जैसे ३—६ इच लम्बे, आगे का पत्रक सबसे बडा, पुष्प—गुच्छो मे, रक्ताभ गुलाबी, शिम्बी (फली)—२—३ इच लम्बी, मूगफली जैसी, इसके भीतर २—३ चपटे बीज होते है। वसन्त मे पुष्प व ग्रीष्म मे फली आती हे।

ये वृक्ष हिमालय के वनो मे प्रचुरता से होते हैं, तथा मध्यप्रदेश, गोदावरी के किनारे एव अवध आदि प्रान्तो के जगलो मे या खेतो के किनारे भी पाये जाते है।

वृक्ष के काड की छाल मे क्षत करने से दानेदार लाल रग का गोद निकलता है।

नोट—सुश्रुत के सालसारादि गण मे इसका उल्लेख है। कोई कोई भ्रम से बंगाल की ओर होने वाले जरूल वृक्ष (LagerStroemia Flos Reginae) को तिनिश मानते हैं।

नाम:—

स०—तिनिश, स्यन्दन, नेमि, रथद्रु म (लकड़ी मजबूत

होने से इसके पहिये आदि बनाये जाते हैं) इ० । हि०-तिनिश, छानन, तिरिच्छा,स्यन्दन, तिनसुना, अरिल इ० म०-तिवस, कालापलास, तिमसा इ० गु०—तणछ, हर्म्यो । बं०-तिनाश, सादन, गाछ० । ले०-ओंउजिनिया डेल्बर्जिओइडिस, ऑऊ ऊजेइनेंनसिस(Ou OoJeinensis)

गुणधर्म व प्रयोग —

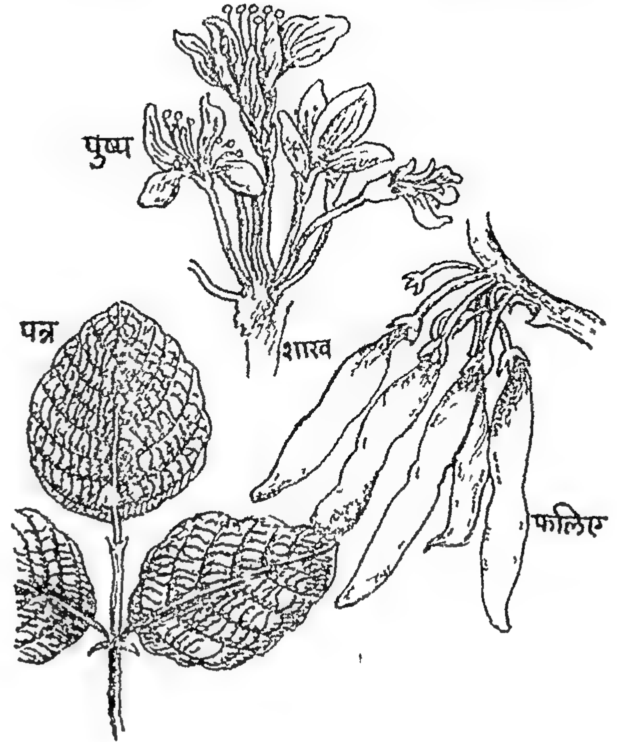
लघु, रूक्ष, कपाय, कटुविपाक, शीतवीर्य (किसी के मत से उष्णवीर्य), कफ वात या कफ पित्त शामक, स्तभन, शोणितस्थापन, मूत्र सग्रहणीय, सकोचक, दाह-प्रशमन, ज्वरघ्न, व्रण-रोपण और रसायन है।

रक्तातिसार, आमातिसार या प्रवाहिका, रक्तविकार, रक्तपित्त, पाडु, प्रमेह, कृमि-विकार, शोथ, कुष्ठ आदि मे यह उपयुक्त है।

ज्वर पर—छाल का क्वाथ देते है। यह क्वाथ मूत्र के बहुत पीला आने पर भी दिया जाता है। आमातिसार, रक्तातिसार आदि मे इसके गोद के साथ समभाग सोठ और मिश्री मिला कर चटाते हे ।

नोट-मात्रा—क्वाथ-१-१० तो० । ५-१० रत्ती।

तिनिश(सन्दान)
OUGEINIA OOJEINENSIS (ROXB).



तिपाती (*NAREGAMIA ALATA*)

निम्बकुल (Meliaceae) की यह क्षुपलता खेतो या बागो की बाड पर तथा प्राय मूंग-फली के खेतो में विशेष होती है। पत्र—त्रिदल, आकार मे मूंगफली के पत्र जैसे, पुष्प—पाच पखुडी युक्त, फल-कुल्ल लम्बगोल, बीज-छोटे छोटे दोनो सिरो पर मुडे होते हैं।

यह पश्चिम तथा दक्षिण भारत मे विशेष होती है।

नोट—यह विदेशी अनन्तमूल (Psychotria-Ipecacuanha) का ही एक भेद विशेष है (इपे के क्वाना का प्रकरण भाग१ में देखिए) इसे देशी अनन्तमूल (Couutry Ipe,) कहते हैं -

नाम—

सं०—त्रिपर्णिका, कन्दबहुला आदि । हि०—तिपाती म०—तिपाती, पित्तमारी । अं०—गोआनीज या कंट्री इपेका कुआना (Goanese or Country Ipecacuanha) ले०—नारेगेमिया एलेटा।

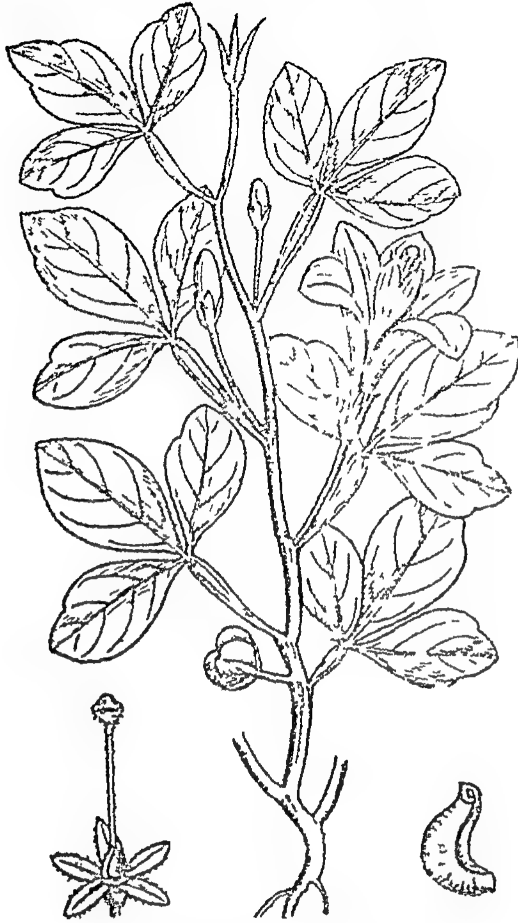
रासायनिक संघटन—

इसके मूल मे नरेगेमिन (Naregamın) नामक उपक्षार पाया जाता है। छाल मे वसा, गोद, स्टार्च आदि होते हैं। इसमे टेनिन नही होता ।

गुणधर्म व प्रयोग—

मूल-मधुर, शीतल, विषहर, कफनिसारक, पित्त-शामक, व्रणरोपण है, तथा श्वास, वातनलिका प्रदाह, पित्त-प्रकोपक, तीव्रातिसार, कडु आदि मे प्रयुक्त है।

इसका मूल एव काड या डठल इपिकाक के समान ही १२ से २० ग्रेन की मात्रा मे, वमनकारक है। अल्प मात्रा मे कफनिसारक, एव जीर्ण फुपफुस शोथ मे हितकारी इसका अर्क ५ से २० बूंद की मात्रा मे—कफनिसारक, धातुपरिवर्तक एव उपशामक होता है। इसकी १५ से ४० ग्रेन की मात्रा प्रवल वमनकारक है।



तिपाती (मिरा पडा।)
NAREGAMIA ALATA W & A

पत्र एव काड के क्वाथ मे कडुवे सुगधित-द्रव्य मिला कर पित्तप्रकोप मे देते हैं।

त्वचा पर जाडे, धब्बे एव खुजली हो तो इसका स्वरस नारियल के तेल मे मिला लगाते है।

व्रणो पर—पत्रो की राख को घृत में खरल कर लगाने से शीघ्र ही व्रणरोपण होता है।

तिरकोल-दे०-कन्दूरी (कुन्दरू)

तिरनोई

CIBURNUM PRUNIFULIUM

इस तिनक कुल (Gaprifoliaceae) के क्षुरो[1] के पत्र २॥-४ इंच लम्बे, १॥ इंच तक चौडे, अण्डाकार, आयताकार, नोकीले एव तीक्ष्ण दन्तुर, फल—लाल रग, के खट्टे स्वादिष्ट होने से चटनी बनाकर खाये जाते हैं।

इसकी छाल का औषधि-रूप मे व्यवहार नही सुना गया। किंतु स्थानीय नामो से इसके तिलक या तिल्वक होने का सदेह होता है।[2] अमेरिकन वार्डवर्नम (V Prunifolium) की मूल की छाल का व्यवहार नष्टार्त्तव तथा श्वास मे होता है। यह रक्तस्राव तथा गर्भपात रोकने मे भी समर्थ माना जाता है। भारतीय वार्डवर्नम (प्रस्तुत की तिरनोई बूटी) मे भी ये गुण सम्भवत हो सकते है। तिलक बूटी को भी निघण्टुकारो ने "स्त्री-निरीक्षण दोहद" की सज्ञा दी है और चू कि तिरनोई और थेल्का नाम तिलक तथा तिल्वक से मिलते है, इसलिए सम्भव कि तिरनोई शास्त्रीय तिलक या तिल्वक हो। ऐसा होने पर लोध्र और तिल्वक का पृथक्त्व भी सिद्ध होजायगा। प्राचीन समय से इन दोनो को ग्रन्थकारो ने एक मानकर जो गडबड कर रखी है वह भी दूर हो जायगी।

श्री ठा बलवन्तसिंह कृत वनौषधि-दर्शिका से साभार।

इसी कुल का एक पौधा नरवेल नामक होता है। "नरवेल" देखे।

नोट—तिलक या तिलकपुष्प—इस वृक्ष का पुष्प तिल के पुष्प जैसा होता है, किंतु इस से सुगन्ध आती है। फल—पीपल के समान एव मधुर होता है।

इसे स०—तिलक, वासतसुन्दर, दुग्धरूह, पुन्नाग-हि०—तिलक पुष्प। गु०—तिलक वृक्ष। म०—तिल पुष्पक।

गुण धर्मव प्रयोग—

लघु, मधुर, पौष्टिक, बलवर्धक मेदजनक, हृद्य उष्णवीर्य, कटु विपाक, रसायन व तीक्ष्ण है, तथा दन्तरोग, कृमि, कुष्ठ, त्रिदोष, कडु, व्रण, रक्तविकार आदि नाशक है।

इसे किसी भी क्षार मे मिलाकर देने से यह गुल्म, व उदररोग दूर करता है।

इसकी छाल कसैली, उष्ण, पुरुषार्थ-नाशक, दत-रोग, रक्तविकार, कृमि, व्रण व शोथ नाशक है— (व० च०)

तिरफल दे०—तुम्बरु मे।

[1] इस कुल के क्षुपों के पत्र अभिमुख, उपपत्ररहित, पुष्पवाह्यकोष के दल ३-५, आभ्यन्तर कोष के दल ५, पुंकेसर ४ या ५, बीजकोश २-८ कोष्ठयुक्त होते हैं।

[2] तिलक नाम की और एक बूटी होती हैं, जिसका वर्णन इसी प्रसंग में आगे देते है— —सम्पादक

तिल (Sesamum Indicum)

धान्यवर्ग एवं स्वकुल[१] (Pedaliaceae) के इसके वर्षायु क्षुप २-३ फुट ऊंचे, काण्ड—मृदुलोमश, पत्र—३-५ इंच लम्बे, छोटे बड़े अनेक प्रकार के, ऊपर के पत्र कुछ लम्बे, नीचे के त्रिधाकृति, पुष्प—कोमल लोमयुक्त, लम्बगोल, नीलाभ श्वेत, लाल या पीले चिन्हों से युक्त, बीज—छोटे, चिकने, वर्ण में श्वेत, लाल और काले, इन्हीं बीजों को तिल कहते हैं। फली—प्रतिपत्र के मध्य में लगती है, इसीमें उक्त बीज होते हैं। काले या लाल तिल को रामतिल भी कहते हैं। यह अन्य कुल का है। इसका संक्षिप्त वर्णन आगे अन्त के नोट में देखें।

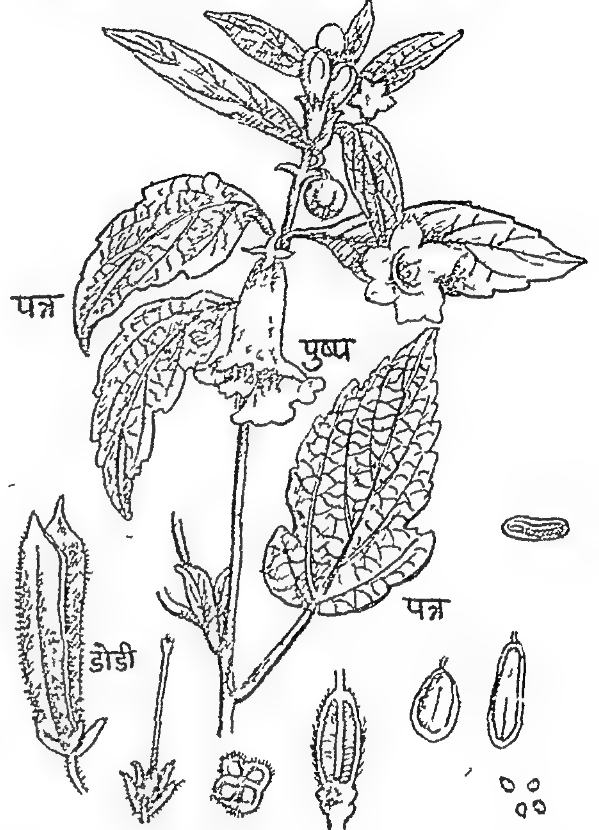
समस्त भारत में, विशेषतः उष्ण प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। यह प्राचीन काल से भारत का ही एक खास तिलहन धान्य है। अब तो कहीं-कहीं बाहर भी इसकी खेती होने लगी है।

नोट—(१) तिल के रंग भेद से श्वेत, लाल या भूरे और काले तीन प्रकार हैं। वनों में भी एक जाति के तिल होते हैं। उन्हें 'अरण्यतिल' कहते हैं।

इनमें से श्वेत तिलों से तैल अधिक निकलता है। लाल तिलों को 'रामतिल' भी कहते हैं, इनका क्षुप काले तिल के क्षुप जैसा, किन्तु पुष्प—चित्रविचित्र, पत्र—कुछ बड़े होते हैं। काले तिल—गुणधर्म की दृष्टि से, तथा होम पूजा आदि धार्मिक कार्यों के लिये प्रशस्त माने जाते हैं, औषधि-कार्य में—इनका विशेष उपयोग होता है। श्वेत-तिल—मध्यम कोटि के, किन्तु वीर्यवर्धक होते हैं। वन्य तिल हलके, निकृष्ट कोटि के हैं।

(२) आजकल अपेक्षाकृत तिल-तैल महंगा मिलता है। अतः इसमें मिलावट भी बहुत होती है, इसमें प्रायः मूंगफली, तीसी, बिनौला आदि का तैल मिला दिया जाता है।

शुद्ध तिल-तैल जैतून-तैल (Olive Oil) का एक उत्तम प्रतिनिधि है। अतः लिनिमेंट, मलहम आदि के निर्माण-कार्य में, जैतून तैल के स्थान में इसका प्रयोग किया जा



सकता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग अधस्त्वक् एवं पेशीगत इंजेक्शन द्वारा दी जाने वाली अनेक औषधियों के विलयन (सोल्यूशन) बनाने के लिये भी किया जाता है। अनेक प्रान्तों में घृत के स्थान में खाने के लिये भी इसीका उपयोग किया जाता है।

(३) सुश्रुत के सू. अ. ४५-४६ में इसके गुणधर्मों का विवरण दिया गया है।

नाम—

सं.—तिल, पूत,होम धान्य, पितृतर्पण इ०। हिं.-म०-बं०—तिल, तिल्ली इ०। गु.—तल। अं.—सिसेम, जिंजिली (Sesamem, Jinjili)। ले.—सिसेमम इंडिकम सिसेमम नायगरसीडस (SisamuM Niger Seeds)।

रासायनिक संघटन—

तिलों में स्थिर तैल ५०-६०% (श्वेत में ४८% लाल व काली में लगभग ४६%) मांसतत्व (Proteids)

१ इस कुल के क्षुप, पौधे, या वृक्षों के पत्र-अभिमुख, अखंड, उपपत्ररहित, पुष्पाभ्यंतर कोष के दल ५, नीचे से जुड़कर नलिकाकार, पुंकेशर ४ (दो छोटे २ बड़े), बीजकोश दो खंडों का, व बीज अनेक होते हैं।

२२%, कार्बोहायड्रेट (Carbohydrates) १८%, पिच्छिलद्रव्य (Mucilage) ४% इत्यादि, इसके अतिरिक्त लगभग १० तोले तिलो मे १०.५ मिलिग्राम लोहा, १.४५ ग्राम केलशियम, और .५७ ग्राम फास्फोरस पाया जाता है। मनुष्य-शरीर के लिये जितने केलशियम की जरूरत है। उतना १॥। छटाक तिल मे प्रतिदिन प्राप्त हो सकता है। साथ ही साथ लोहा व फास्फोरस भी उक्त मात्राओ मे प्राप्त होते है। यदि तिलो को गुड मे मिलाकर मोदक बनाकर सेवन करे तो और भी अधिक लाभदायक होता है। क्योकि १¾ छटाक गुड मे ११.४ मि ग्रा लोह, व .०४ ग्राम फास्फोरस अलग मिल जाता है। तिलो मे व्हिटामिन बी० (थियामिन) की भी अधिकता होती है, जो क्षुधावर्धक, पाचक, स्नायविक स्वास्थ्यरक्षक, एव बेरी बेरीनामक रोग-निवारक है।

प्रयोज्याग—तिल, तैल, पत्र पुष्प, पचाग तथा क्षार।

गुण धर्म व प्रयोग —

तैल, गुरु, स्निग्ध, मधुर, अनुरस मे-कषाय, तिक्त, मधुर (या कटु) विपाक, उष्णवीर्य व प्रभाव मे केश्य है तथा वातशामक, कफपित्तप्रकोपक व योगवाही होने से अन्य द्रव्यो के सयोग एव सस्करण से त्रिदोषशामक, दीपन, ग्राही, शूलप्रशमन, दातो को हितकर, वेदनास्थापक, सधानीय, व्रणशोधनरोपण, मेध्य, रक्तस्रावरोधक, श्वासनलिकागत रूक्षतानाशक, अल्पमूत्रकारक, वाजीकरण, आर्त्तवजनन, स्तन्यजनन, बल्य, वृष्य व त्वचा के लिये हितकर है। वातविकार, मस्तिष्क-दौर्बल्य, अग्निमाद्य, हिक्का, श्वास आदि वातप्रधान रोगो मे इसका प्रयोग होता है। तैल मे कृमिघ्न गुण की विशेषता होने से प्राचीनकाल मे मृत शरीर सुरक्षित रखने के लिये उसका उपयोग किया जाता था। ध्यान रहे तैल का सरलार्थ 'तिलस्येद' तिलोत्पन्न ही है। तथा व्यवहार मे भी तिल-तैल अधिक श्रेष्ठ होता है। कहा है—सर्वेभ्यस्त्विद तैलेभ्यस्तिलतैल विशिष्यते।

(सुश्रुत सू स्था अ ४५)

तिल—स्नेहन, मारक, पौष्टिक, मूत्रल, रजरयापनीय, दत्य एव स्तन्य है-दातो की दुर्बलता मे इसे चबाते हैं। अर्श-रोग मे, रक्तस्रावनिवारणार्थ मक्खन के साथ या अखरोट की गिरी के साथ खाते है। तथा—

(१) अर्श पर—तिल को पीस कर गरम कर अकुरो पर बाधते या लेप करते है। तिल-तैल की बासी (एनिमा) देने से गुदा के अन्दर १-१॥ बालिश्त तक आत्र स्निग्ध होकर मल के गुच्छे निकल जाने से इस रोग मे धीरे २ सुधार होता रहता है। अथवा—

प्रतिदिन काले तिलो को ४-५ तो खाने व ठडा जल पीने से दस्त साफ होकर भी लाभ होता है। रक्तार्श हो, तो २-३ तो तिलो को गरम पानी मे पीस कर, उसमे दो तो. ताजा मक्खन मिला, नित्य प्रात. पिलावे। और काले तिल ६ मा पीस कर, मक्खन दो तो मे मिला २१ या ४० दिन खायें। रक्तार्श मे लाभ होता है। अथवा उक्त काले तिलो के साथ समभाग खाड मिलाकर गाय के ताजे मक्खन के साथ चाटते रहने से पुराने, दुष्ट पित्तज अर्श नष्ट होते है (यो स.) उक्त प्रकार से काले तिलो को चबाकर खाने एव ठडा जल पीने से, अर्श मे तो लाभ होता ही है, साथ ही साथ दात सुदृढ व अग परिपुष्ट होते है। कहा है—"असिताना तिलाना प्रकुचे शीतवार्यनु खादतोऽर्शासि नश्यति द्विज दार्ढ्यङ्गपुष्टिकम्—चक्रदत्त।

(२) गुल्म पर—रक्तगुल्म हो, तो-तिल के क्वाथ मे गुड, घी व त्रिकुट (सोठ, मिर्च, पीपल) तथा भारगी चूर्ण मिलाकर सेवन से, (अथवा-क्वाथ मे केवल पीपलामूल-चूर्ण मिलाकर देने से भी) लाभ होता है और नष्ट पुष्प (रजोदर्शन का न होना रोग) भी दूर होता है।

(व से)

कफजगुल्म हो, तो तिल, एरड-बीज अलसी व सरसो का लेप लगाकर सुखोष्ण लोहपात्र द्वारा स्वेदन करें।

(भै र)

(३) अनार्त्तव, कष्टार्त्तव, अत्यार्त्तव पर—काले तिल लिसोडा व सौफ का क्वाथ कर उसमे गुड मिला पीने से अथवा २॥ तो तिलो को कूट कर १० तो पानी मे पकावे, ५ तो पानी शेष रहने पर १ तो पुराना गुड मिला छानकर कुछ दिन इसी प्रकार प्रात साय पीने से ७ या १४ दिन मे मासिक धर्म खुलकर होने लगता व

कष्टार्त्तव मे भी लाभ होता है। अथवा काले तिल, सोठ मिर्च, पीपल, भारगी और गुड समभाग का क्वाथ, नित्य, प्रात सायं १५ दिन पिलावे। अथवा–

तिल के क्वाथ में, वच, पीपलामूल और गुड मिला कर पिलाते है, तथा तिल के पत्तो के क्वाथ में रुग्णा को बिठाया जाता है। अथवा–तिल-चूर्ण-५ रत्ती तक दिन में ३–४ बार खिलाते, तथा ५ तो. तिल के कल्क मिले हुए गरम पानी में कटिस्नान (अवगाहन) कराते रहने से भी कष्टार्त्तव व नष्टार्त्तव-विकार दूर होता है।

अत्यार्त्तव मे—मासिकधर्म के समय अत्यधिक रक्त आता हो, तो तिल के क्वाथ में, त्रिकुट, भारंगी व लोध का चूर्ण मिला सेवन से वह बन्द हो जाता है। इस योग से रक्तप्रदर एवं दाह भी शात होता है। (यो त.)

(४) कास पर—तिलो के क्वाथ मे मिश्री पकाकर पिलाने से शुष्क कास मे कफ निकल कर शाति प्राप्त होती है। अथवा—क्वाथ मे त्रिकुट-चूर्ण मिलाकर सेवन कराते हैं।

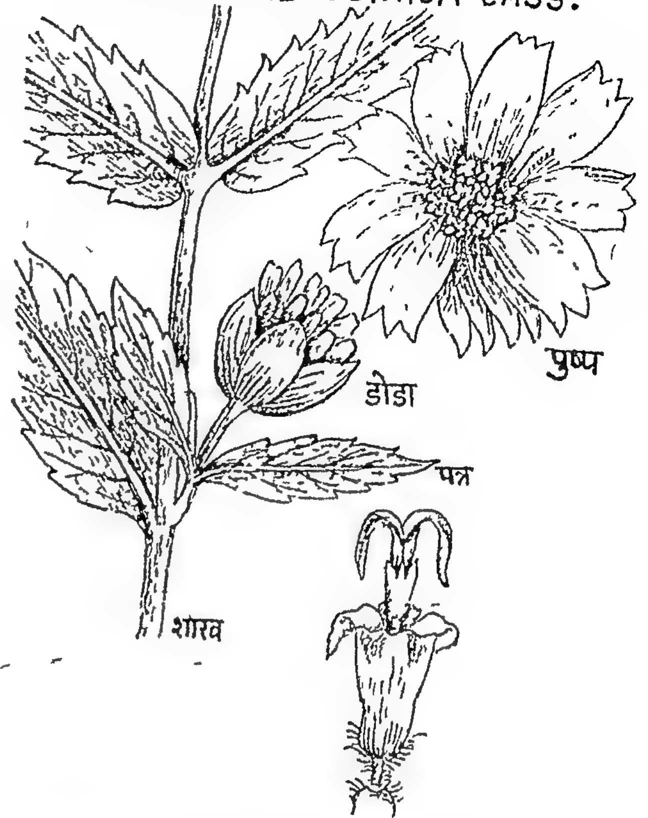
(५) गर्भस्राव तथा गर्भिणी या प्रसूता के रक्तस्राव के निवारणार्थ—तिल-चूर्ण १ तो पद्माख (पद्मकाष्ठ या लाल चन्दन) का चूर्ण ६ मा दोनो को सिलपर पीस, १० तो जल मे छानकर थोडी मिश्री मिलाकर, दिन मे १ या २ वार पिलाते रहने से, वार २ गर्भस्राव होने का कष्ट दूर होता है। ४० दिन सेवन करावे, सयम व पथ्य का पालन करना आवश्यक है।

गर्भिणी या प्रसूता को रक्तस्राव होता हो, तो तिल, जौ और शक्कर इन तीनो का चूर्ण शहद के साथ चटाते हैं।

(६) रक्तातिसार पर–काले तिल १ भाग और ५ भाग मिश्री को एकत्र पीस कर ४ भाग बकरी के दूध के साथ पीने से विशेष लाभ होता है। (ब०से)

(७) वात रक्त पर—तिलो को भाड मे भून कर दूध मे डाल कर (रात्रि के समय दूध व भुने हुए तिलो को प्राय समप्रमाण मे प्रात) पीस कर लेप करने से लाभ होता है। अथवा शास्त्रानुसार–तिलो को भून कर दूध मे बुझा कर तथा पीस कर लेप किया जाता है

रामतिल (काला तिल)
GUIZOJIA ABYSSYNICA CASS.



(भै०र०) यह लेप भी पित्त प्रबल वातरक्त मे, जब दाह हो, स्पर्शासह वेदना हो, शोथ हो, लाली हो तथा आक्रान्त स्थान अतिउष्ण हो, तब लगाया जाता है। (टीका-भै०र०)

(८) बहुमूत्र व प्रमेह पर—तिल½ सेर, खसखस और अजवायन १–१ पाव, इनको कढाई मे मदाग्नि पर सेक कर (आधी कच्ची भून कर) खरल कर छान ले। मात्रा २ तो०। इस चूर्ण मे ६ मा० मिश्री मिला दोनो समय सेवन करे। –अथवा–

तिल और अजवायन ३–३ तो० प्रात साय खाने से भी लाभ होता है।

प्रमेह हो, तो–तिल १ भाग तथा अजवायन ½ भाग दोनो को एकत्र महीन कर, समभाग मिश्री मिला सेवन करें।

(९) उदर शूल पर-२-३ तो० तिलो को चवाकर, ऊपर गरम जल पिलावें। तथा-तिलो को पीस कर लम्वा–

कार गोला सा बना, इसे तवे पर सुहाता हुआ गरम कर पेट के ऊपर फिराने से अति दारुण, एवं असह्य शूल शान्त होता है (भैं०र०)। उदर या किसी भी स्थान के शूल पर—तिलो के उष्ण क्वाथ की धारा देने से लाभ होता है।

(१०) सुजाक (पूयमेह)पर—काले तिल व मिश्री या खांड २-२ तो० महीन चूर्ण कर [यह १ मात्रा है) प्रात साय कच्चे गौदुग्ध की लस्सी के साथ सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

(११) राजयक्ष्मा, तथा धातु—शोप—जन्य क्षय (शोप) और पुष्टि के लिये—तिल, उडद व असगध, इन तीनो का समभाग चूर्ण कर (१॥ मा० से ३ मा० तक) वकरी के घी (१ तो०) और शहद (३ तो०)के साथ नित्य प्रात सेवन से रायक्ष्मा मे लाभ होता है।

(ग०नि)

शोप पर—तिल, वेर की गुठली की गिरी और धान की खीलो के समभाग मिश्रित चूर्ण को घृत (१ तो०) व शहद (४ तो०) के साथ (मात्रा २ तो० से ३ तो० तक) मिला कर चाट कर ऊपर से दूध पीने से १ मास मे शोप-रोग नष्ट हो जाता है। शोप पर यह एक अति-उत्तम योग है (यह चूर्ण वमन के लिये भी अत्युत्तम है)

(भा०भैं०र०)

पुष्टि के लिये—काले तिल १० तो० को कढाही मे सूखा भून कर कूट ले, फिर चावल का आटा १० तो० और घी १ पाव, तथा कूटा हुआ तिल—चूर्ण सबको एकत्र भून कर, दूनी शक्कर मिला कर रक्खें। मात्रा २३ तो० प्रात यह चूर्ण खाकर, ऊपर से १ पाव गौ-दुग्ध गरम कर मीठा मिला हुआ पीवे। यदि धारोष्ण दूध प्राप्त हो तो वहुत ही उत्तम है। इससे वीर्य की वृद्धि होती, वीर्य गाढा होता व बल- बढता है।

तिल के बीज पत्र, शाखा व पुष्प समभाग छाया शुष्क कर, महीन चूर्ण कर समभाग खाड मिलाले। ६ मा० की मात्रा मे प्रतिदिन २१ दिन सेवन से स्तभन-शक्ति बढती है। इस योग को यूनानी में 'दवाये नमरतक' कहते हैं।

(१२)कुष्ठ पर—तिल और वावची का समभाग मिश्रित चूर्ण, नित्य प्रति यथोचित मात्रानुसार नियम पूर्वक, पथ्यपालन पूर्वक १ वर्ष तक सेवन करने से भयकर कुष्ठ दूर होकर, बुद्धि व स्मरण शक्ति आदि की वृद्धि होती है।

(ग० नि०)

(१३) अर्धमस्तक शूल पर—तिल २ भाग व वायविडग १ भाग, दोनो को पीस कर, थोडा गरम कर मस्तक पर लेप करते, तथा प्रात साय गरम किये हुए दूध मे गुड मिला कर पिलाते है। ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

(१४) मुख के दाह, तथा मसूढो की सूजन पर—मुख के भीतर किसी कारण जल जाने से होती हुई दाह पर—तिल, नील कमल (नीलोफर), घी, खाड और लोध ४-४ तो० लेकर ८ गुने दूध मे मिला तथा दूध से ४ गुना जल मिला कर पकावे। दूध मात्र शेप रहने पर, छान कर कुल्ले करने से शांति प्राप्त होती है।

(यो०र०)

मसूढो मे सूजन हो, तो तिल, चित्रक और श्वेत सरसो समभाग, चूर्ण कर गरम पानी मे मिला, कवल-धारण करने से परम लाभ होता है। - (व०से)

(१५) व्रणो तथा भगदर पर—दाह एव वेदनायुक्त वातज व्रणों (घावो) मे तिल और अलसी को भून कर, तुरत गरम गरम ही दूध मे बुझा कर तथा उसी दूध के साथ पीस कर लेप करने से लाभ होता है।

(वं०से)

व्रण-शुद्धि के लिये—पिसे हुए तिल, सेधा नमक, हल्दी, दारूहल्दी, निसोत, मुलैठी एव नीम—पत्र का समान भाग चूर्ण लेकर, घृत मे मिला लेप करे (—यो०र०)। इसे तिलाष्टक योग कहते है। अथवा-काले तिल, हरड, लोध, नीमपत्र-इन्हे एकत्र कर पीस- कर लेप करने से दुष्टव्रण, नाडीव्रण, उपदशज व्रण एव भगदर का भी शोधन-रोपण होता है।

(भैं०र०)

रक्त एव वेदनायुक्त भगदर पर—तिल, अरण्ड की

जड, और मुलैठी को कच्चे दूध मे पीस कर, ठडा ठडा लेप करने से लाभ होता है। (व०से)

तिली की पुल्टिस बना वाधने से भी व्रणो मे लाभ होता है।

(१६) अग्निदग्ध पर—काले तिल ५ तो० और चावल २॥ तो० दोनो को शीतल जल से पीस, महीन लेप करे। दाह व पीडा तत्काल दूर होती है। ३ दिन लगातार लेप करते जावे। उस स्थान को धोने की आवश्यकता नही। उसी लेप पर लेप करते जावे। आराम होने पर इन लेपो की पपडी स्वयं दूर हो जाती है।

यदि भिलावा, जयपाल (जमाल गोटा), या अर्क दुग्ध का विष त्वचा पर लग जाने से दाह आदि पीडा हो, तो उस पर तिलो को बकरी के दूध मे पीस कर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

(१७) गर्भाशय की पीडा पर—तिलो को पीस कर इसी के तैल मे मिला, गरम कर नाभि के नीचे धीरे-धीरे मर्दन या लेप से, शीत जन्य पीडा दूर होती है।

(१८) वायुनाशार्थ एव नेत्रो के हित के लिये—तिलो को उबटन जैसा पीस कर, शरीर पर मर्दन कर स्नान करना चाहिये (यो०र०)।

मोच पर—शरीर पर कही मोच आ जाने पर तिलो को महुओ के साथ पीस कर बाधने से लाभ होता है।

तिलो के विशिष्ट योग—

१९ तिल सप्तक चूर्ण—तिल, चित्रक, सोठ, मिर्च, पीपल, बायविडङ्ग, और हरड के चूर्ण को (६ मा. तक की मात्रा मे) गुड (६ मा.) के साथ, गरम पानी से सेवन करने से—सर्व प्रकार के अर्श, पाडु, कृमि, कास, अग्निमाद्य ज्वर और गुल्म रोग नष्ट होते है।— (यो० स०)

तिलाष्टक का योग ऊपर प्रयोग न० १५ मे देखे।

२० तिल कुट्टम, या गजक, रेवडी, पापडी आदि-जो पदार्थ तिलो को धोकर सेंकने, छिलके उतार कर कूटने के उपरात शक्कर या गुड के साथ बनाये जाते है, वे वृष्य, वातनाशक, कफपित्तकारक, स्निग्ध एव मूत्र को कम करने वाले माने गये हैं। शर्करा मे बने हुए वे पदार्थ-विशेष रुचिकर, स्वादिष्ट तथा विशेष हानिकर नही होते। नये गुड के साथ बने हुए वे विष्टम्भी एव दोष-प्रकोपक होते हे। पुराने गुड के बने हुए सब से उत्तम होते है। जिनमे गोद मिलाया जाता है—वे विशेष रूप से वीर्यवर्धक, रसायन व वाजीकरण गुणो को प्रदान करते है।

तिल के बडे, शुष्क शाक, पापड आदि दोष-प्रकोपक होते है।

नोट—तिल-चूर्ण ३ से ६ मा तक। ध्यान रहे तिल गुरु होने से अधिक मात्रा मे देर से पचता तथा आमाशय को शिथिल कर देता है।

हानि-निवारणार्थ—प्याज या नीबू का रस देते है।

तिलो से सुगंधित चमेली आदि का तेल बनाने के लिये तिलो को उन विशेष महकदार पुष्पो के स्तरो के मध्य मे १०-१२ घटे रखकर कोल्हू मे पेर कर तेल निकाल लेते है।

तैल—इसके विशेष गुण ऊपर प्रारम्भ मे ही देखे। तिल के तेल मे दो परस्पर विरुद्ध गुण पाये जाते हैं—एक तो यह कृश व्यक्ति को पुष्ट करता है दूसरे पुष्ट या स्थूल को कृश करता है। इसके इसी चमत्कारिक गुण विशेष के कारण चिकित्सा-कर्म मे इसका विशेष उपयोग होता है। यह योगवाही होने से जिस द्रव्य का इसके साथ सस्कार किया हो, उसी के गुणधर्मो को एक दम ग्रहण कर लेता है। यह स्वय तीक्ष्ण, व्यवायी-(शीघ्र ही शरीर मे फैल जाने वाला) और सूक्ष्म से सूक्ष्म स्रोतो के अन्दर प्रवेश कर जाने वाला होने के कारण औषधीय तैल सिद्ध करने के लिये प्राय इसी का उपयोग किया जाता है।

किन्तु ध्यान रहे तेल का प्रयोग बगैर शुद्ध किये हुए करने से अनिष्ट परिणाम होना सभव है। कारण—विष के तीक्ष्ण, उष्ण, व्यवायी आदि उक्त लक्षण उसमे भी कुछ प्रमाण मे होने से विष के समान (सज्ञानाश को छोडकर) इसका प्रभाव शरीर पर शीघ्र ही होता है[1]

[1] किसी [illegible] का वचन है—'विषस्य तैलस्य च न किञ्चिदन्तरम्, मृदङ्ग [illegible] न किञ्चिदन्तरम्। तृणस्य [illegible] न किञ्चिदन्तरम्, मूर्खस्य काष्ठस्य न किञ्चिदन्तरम्।'

अत जैसे युक्तिपूर्वक विष की योजना करने मे वह अमृत के समान गुणकारी होता है, वैसे ही रोगनाशार्थ तैल की योजना बुद्धिमान वैद्यशास्त्रनिपुण वैद्यो को करनी चाहिए। प्रयोग बाह्याभ्यन्तर किया जाता है, ऐसे तैलो को सिद्ध करने के पूर्व तिल-तेल को इस प्रकार शुद्ध कर कर लेना आवश्यक है—

एक मटकी को पेन्दी में छिद्र करके उसमे शुद्ध कोयला (लकडी का) अर्धभाग भर कर, उसके नीचे दूसरा कलईदार पात्र रखकर, कोयले वाली ऊपर की मटकी मे तेल डाल देवे। यह तेल कोयलो मे से छनकर नीचे के पात्र मे शुद्ध रूप मे प्राप्त होगा। बाह्य प्रयोगार्थ, सुगंधित केश-तैलादि या मालिश आदि के लिए तो इसका ही उपयोग उत्तम होता है। यदि बाह्याभ्यन्तर दोनो ही कार्यो के लिये उपयोग करना हो तो उक्त शुद्ध तेल को पीतल की कलईदार कढाही मे डालकर आग पर रक्खें, और उसमे तेल का सोलहवा भाग मजीठ तथा मजीठ का चौथा भाग हल्दी, लोध, नागरमोथा, बहेडा, हरड, आवला, केवडे के फूल, दालचीनी व वड की जटा का कल्क डाल दे। इनमे से मजीठ व हल्दी का कल्क अलग अलग करें तथा शेष द्रव्यो का मिश्रित कल्क करें। जब चूल्हे पर रक्खा हुआ उक्त तेल गरम होकर झाग रहित हो जाय, तब नीचे उतार, उष्णता थोडी-कम होने पर उसमे प्रथम हल्दी का कल्क, फिर मजीठ का, पश्चात् शेष द्रव्यो का कल्क, तथा तेल से चौगुना पानी मिला पुन. मदाग्नि पर पाक करें। थोडा पानी शेष रहने पर उतार कर ७ दिन तक सुरक्षित रखें, पश्चात् तेल को छानकर तैल-पाक मे कही हुई औषधियो से सिद्ध करे।

उपरोक्त केवल शुद्ध मात्र किये गये तेल का अभ्यग त्वचा की रूक्षता को शीघ्र दूर करता है। छिन्न-भिन्न, भग्न, क्षत आदि मे इसका परिषेक, अवगाह आदि के रूप मे प्रयोग होता है। इसका घृत की भांति आहार मे भी उपयोग होता है। यह शरीर को पुष्ट करता एव तरी पहुँचाता है।

२१ यदि उत्तम गुणदायक अभ्यंगादि के लिए सुगन्धित तेल बनाना हो तो 'रसतन्त्रसार' का 'विश्व-विलास-तेल इस प्रकार बनावें—

काले तिल का तेल ७ सेर तथा नख (एक सुगन्धित द्रव्य) रास, छरीला, श्वेत चन्दन, तगर, नागरमोथा व जटामासी ५-५ तो. लेकर प्रथम तेल को खूब गरम करें। झाग रहित होने पर—उतार कर २-२।। तो. सांभर-नमक डाल दें, शीतल होने पर मैल नीचे जम जायेगा, व ऊपर का स्वच्छ जल सदृश तेल पतला हो जायेगा। उसे नितार कर अमृतबान या टीन के पात्र मे भर कर उपरोक्त वस्तुओं का जौकुट चूर्ण डाले, तथा मुख-मुद्रा कर ७ दिन धूप मे रखें। रोज २-४ बार पात्र को हिला दिया करें। यदि सुगन्ध व रंग मिलाना हो तो ८ वें दिन तेल को निकाल छान लें। फिर हरा रंग (Oil Colour green) १ तोला तथा विशेष सुगन्धार्थ जैसमिन (Jasmine) ½ औंस मिला, शीशियों मे भर लें।

मस्तिष्क पर मर्दनार्थ यह तेल अति हितकारक है। यह विद्यार्थी-वर्ग एव मस्तिष्क से श्रम लेने वालो के लिए अति हितावह है। मस्तिष्क की उष्णता को शांत कर मगज को सबल एवं मन को प्रसन्न रखता है। उष्णता के कारण बाल गिरते रहते हो, अधिक नही बढते हो, मुख निस्तेज रहता हो तो इससे लाभ होता है। असमय मे बाल श्वेत नही होने पाते। इसे सारे शरीर पर मालिश करने से त्वचा मुलायम एव तेजस्वी बनती है—

(र० तन्त्रसार)

२२ बलवृद्धि के लिए—उक्त शुद्ध तेल १। सेर मे गोरखमुण्डी के ताजे पचाग का (मुडी के पचाग को कुछ जल के छीटे देकर कूटकर) लगभग ५ सेर रस निकालकर औटावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान कर रखें। इसे ६ मा. से २ तोले तक खाली पेट प्रात साय सेवन ४१ दिन तक करने से बल-वृद्धि होती है। वीर्य पुष्ट होकर नपुसकता भी दूर होती है। प्रयोग-काल मे प्रसगादि कुपथ्य से बचना विशेष आवश्यक है।

२३ वातरोगनाशार्थ—४ सेर शुद्ध तेल मे, ४ सेर गोखुरु का रस, ४ सेर दूध तथा अदरख १२।। तो तथा गुड आध सेर इनका कल्क मिला मन्दाग्नि पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखे। यथोचित मात्रा मे सेवन करने तथा वस्ति लेने से गृध्रसी, पाद-कपन, कटिग्रह, पृष्ठग्रह, शोथ एव अन्य वातरोगो का नाश होता

हैं। यह तेल वध्यत्व, वीर्यविकार व मूत्रकृच्छ्र मे भी लाभकारी है।

२४ वंध्या के गर्भधारणार्थ—शुद्ध तेल, दूध, फाणित (पतली राव) दही व घृत समभाग लेकर, हाथ से भलीभाति मथकर, उसमे पीपल-चूर्ण मिला, सेवन से वंध्या स्त्री गर्भ धारण करती एव उत्तम पुत्र को जन्म देती है— (यो० र०)

ध्यान रहे—तेल-अल्पमात्रा मे—ऋतु-नियामक है और बडी मात्रा मे—गर्भपात-कारक होता है।

२५ गलगण्ड पर—काले तिल के तेल १ सेर मे ४ सेर भांगरे का रस तथा जटामासी, वच, गिलोय, त्रिफला, चित्रक, देवदारु और पीपल समभाग मिश्रित कल्क १० तो मिला मदाग्नि पर पकावें। तेल मात्रशेष रहने पर छान रक्खे। ६ मा. से १ तो की मात्रा मे, शहद मिला सेवन करे, तथा ऊपर से इसी तेल की मालिश करे।

२६. प्लीहा पर—शुद्ध तेल १ सेर मे—केले का व तालमखाने का और तिल के पंचाग का क्षार, तीनो क्षारों का समभाग मिश्रित कल्क १० तो. और पानी ३ सेर एकत्र मिला तैल सिद्ध कर ले। १ से ५ तोला तक प्रात. साय (खाली पेट) पिलाने से प्लीहा, विशेषत. कफवात जन्य) नष्ट होती है।

२७ मुख रोग-नाशार्थ—शुद्ध तेल दो सेर मे, खैर (कत्थे) का क्वाथ ८ सेर, तथा कल्क-द्रव्य—चन्दन अगर, केशर, मोथा, सुगन्धवाला या खस, देवदारु, लोध, दाख, मजीठ, दालचीनी, वायविडग, तगर, कायफल, और छोटी इलायची-१-१ तो. सबको पानी के साथ एकत्र पीस, मिलाकर तेल सिद्ध कर लें। इसके पीने, नस्य लेने एव गण्डूष धारण करने से मुख के समस्त रोग नष्ट होकर दृष्टि एव श्रवण-शक्ति तीक्ष्ण होजाती है।

मुख-पाक के कारण दात हिलते हो तो तेल मे सेंधा नमक मिला कुल्ले कराते हैं।

२८ टासिल्स (गलशुण्डिका) पर—तेल आधा सेर मे श्वेतसारिवा, वायविडग, दतीमूल और सेंधानमक १॥-१॥ तोला का एकत्र कल्क कर मिलावें। तथा इन्ही द्रव्यो का क्वाथ दो सेर मिलाकर पकावे। तैल सिद्ध होजाने पर छान ले। इस तेल के गण्डूष (कवल) धारण करने एव नस्य लेने से विशेष लाभ होता है।

२९ अपस्मार पर—तेल १० तो मे १ कनखजूर (कनसरिया, शतपदी कृमि विशेष) को डालकर पकावे। जब वह जल जाय तब तेल ठडा होने पर छानकर शीशी मे रख ले। रोगी के नासिका व कान मे इसकी कुछ बू दे छोडने से विशेष लाभ होता है।

३० अग्निदग्ध पर—तेल मे चूने का पानी समभाग मिला, खूब घोटकर, उसमे वस्त्र को भिगोकर उसे दग्ध स्थान पर धीरे धीरे बाध कर उस पर उक्त मिश्रण को थोडा २ डालते जाने से तत्काल शाति मिलती है। अथवा इस मिश्रण को मोर के पख से लेप करते रहे, लाभ होता है।

३१ सिर-दर्द पर—तेल २० तोले मे कपूर, चन्दन का तेल और दालचीनी का तेल ३-३ माशे अच्छी तरह मिलाकर सिर पर मर्दन करे।

३२ त्वचा के विकारो पर—तेल १०० भाग तथा वच्छनाग, करज का तेल, हल्दी, दारुहल्दी, अर्कमूल, कनेरमूल, तगर, लाल चन्दन, मजीठ, संभालू, सतौना (सप्त वर्ण) की छाल ४-४ भाग लेकर शुष्क द्रव्यो का चूर्ण कर उसमे तेल और गोमूत्र मिला पकावें तथा छान कर शीशी मे भर रक्खे। इसके लगाते रहने से त्वचा पर लाल चकत्ते पडना, खुजली (कण्डू), श्वेत कुष्ठ आदि पर लाभ होता है।

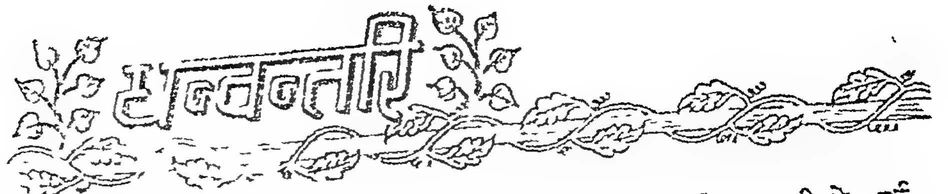
(नाडकर्णी)

पित्तजन्य त्वचा पर फोडो के होने पर—तेल १-२ मा अफीम, १ मा और साबुन १ रत्ती एकत्र मिला, थोड़ा गरम कर फोडो पर लगावे। (व० गु०)

नागफनी का काटा गड गया हो, निकलता न हो, पीडा देता हो, तो तेल को बार-बार लगाते रहने से कुछ समय में सहज ही निकल आता है।

३३ कुत्ते के विष पर—तिल-तेल मे तिलो का चूर्ण, गुड तथा अर्क दुग्ध समभाग एकत्र कर पिलाते हैं। (व० गु०)

धतूरे के विष पर—तेल और गरम पानी एकत्र कर



(व० गु०)

पिलाते है।

पत्र—तिल के पत्रो मे लुग्राव (पिच्छिलता) विशेष होने से ग्रामाशय, बालको के अतिसारादि गरमी के विकारो पर ग्रात्र-विकारो मे उपयुक्त होते है। शुष्ककास, प्रमेह आदि पर इनका प्रयोग उत्तम होता है। व्रणो पर इनकी पुल्टिस का शामक प्रभाव होता है। बालो को धोने के लिये इनके पत्तो और जडो का क्वाथ उपयोगी है, इससे केशो की वृद्धि होती तथा वे काले होते है।

(३४) अतिसार आदि पर—पत्तो के लुग्राव को—जल मे घोल, छान कर बार-बार पिलाने से अतिसार ग्रामातिसार तथा विसूचिका मे लाभ होता है। इससे मूत्र-नलिका के विकारो मे भी लाभ होता है। ग्रामातिसार मे इस लुग्राव मे किंचित् अफीम मिलाकर देने से विशेष प्रभाव होता है।

(३५) सुजाक व शुक्रमेह पर—जगली तिलो के पत्तो को छाया-शुष्क कर, चूर्ण कर रक्खे। नित्य रात्रि के समय ६ मा० चूर्ण को, काच के पात्र मे ५ तो० जल मे भिगोकर, प्रात अच्छी तरह मसल कर छान ले, फिर उसमे श्वेत जीरा-चूर्ण ३ मा० व १ तो० मिश्री मिला-कर, दिन मे केवल एक बार ७ दिन पिलाने से सुजाक मे विशेष लाभ होता है। अथवा—

श्वेत तिल की ताजी पत्ती ५ तो० लेकर आध सेर पानी मे हाथो से मर्दन कर, रसहीन लुगदा को बाहर फेक दे, फिर उस पानी मे, २ मा० काली मिर्च व १ तो० मिश्री मिला दो बार मे पिलावे। १५ दिन मे विशेष लाभ होता है।

शुक्रमेह या वीर्यपात पर—पत्तो को जल के साथ पीस (१ से ५ तो० पत्तो के साथ २० तो० तक जल हो), तथा उसमे १ से २॥ तो० तक मिश्री मिला, उसी समय पिला दे। देरी करने से पानी कुछ गाढा हो जाता व अच्छी तरह पिया नही जाता। प्रतिदिन १ बार इस प्रकार ७ दिन सेवन करावे। पूर्ण लाभ होता है।

(३६) अश्मरी पर—कोमल पत्र या कोपलो को छाया-शुष्क कर, भस्म करले। इसे ७ से १० मा० तक जल के साथ देते रहने से पथरी गल जाती है।

(३७) शुष्क-कास पर—गले की खराबी मे हुई, सूखी खासी मे ताजे फलो का हिम पिलाते है।

(३८) सिर-दर्द पर—पत्तो को सिरके मे या गरम पानी मे पीस कर लेप करते है।

पुष्प—तिल के पुष्प शीतवीर्य व मूत्रल है, तथा सुजाक, अश्मरी, नेत्र-विकार आदि पर महान उप-योगी है।

(३९) सुजाक या मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्राघात पर—ताजे फूलो को सायकाल मे लाकर, १० तो० पानी मे लगभग ४०-५० फूलो को भिगोकर, प्रात उन फूलो को स्वच्छ लकडी से अच्छी तरह हिलोरे। पानी गाढा सा लुग्रावदार होने पर फूलो को निकाल दे। और उस पानी (लगभग ४ तो०) मे मिश्री मिला पिलावे। इसे नित्य बनाकर ताजा लुग्रावदार पानी पिलाते रहने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। (व० गु०)

(४०) नेत्र-विकार पर—श्वेत तिलो के पौधो पर, शीतकाल मे जो ओस पडती है, उसमे से विशेषत पुष्पो पर पडी हुई ओस को प्रात एकत्र कर स्वच्छ शीशी मे भर रक्खे। इसकी १-२ बून्दे नेत्रो मे डालते रहने से, लालिमा, गरमी, खुजलाहट, दाह आदि विकार शीघ्र ही शात होते है।

अथवा—तिल-पुष्प ८० नग, पिप्पली के कण ६० नग, चमेली के फूल ५० नग तथा श्वेत मिर्च १६ नग, इन्हे छाया-शुष्क कर खूब महीन चूर्ण कर, महीन कपडे मे से छान कर, उसमे सफेदा (Zinc Oxide) १ तो० तथा भीमसेनी कपूर ३ मा० मिला, पलास-पुष्प के रस के साथ खूब खरल कर लम्बी-लम्बी बत्तियाँ बनाकर सुखा कर रख ले। इन्हे जल मे घिस कर आजने से तिमिर-फूला, मास-वृद्धि, अर्जुनरोग (नेत्र के श्वेत भाग मे एक लाल दाग सा होना—Ecchy mosis), ललाई आदि विकार शीघ्र ही नष्ट होते है।

शा० स० के उत्तरखण्ड अ० १३ मे जो कुसुमिका-वर्त्ति नामक प्रयोग है, उसमे 'कणाकणा' शब्द है, अर्थात् पिप्पली पर जो उभरे हुए दाने से होते है, उन्हे ६० नग लेना चाहिए। केवल तिल-पुष्प, पीपल के कण, चमेली-पुष्प व काली या श्वेत मिर्च इन चारो को लेकर

जल मे पीस वर्तिका बनाले। इसके प्रयोग की मात्रा १॥ सम्हालू-बीज के बराबर कही गई है।

(४१) इन्द्रलुप्त (खालित्य Alopecia) या गज पर—काले तिल के पुष्प जब फूलने लगे तब प्रतिदिन दिन मे ४ बार तथा रात्रि मे सोते समय धीरे-धीरे उस स्थान पर मले जहा खालित्य हो, बाल झडते हो, तथा इन्ही फूलो का रस निकाल कर उसी स्थान पर लगावे। काले तिल-पुष्प के अभाव मे, श्वेत तिल के पुष्पो को ले सकते हैं। अथवा—

तिल-पुष्प, घोडे के खुर का कोयला, घी और शहद समभाग घोटकर सिर पर लेप करने से गज नष्ट होता है। (वृ० मा०)

(४२) विपादिका (बिवाई, पग-तलो का फटना, खाज, दाह-वेदना होना (Chilblain) तिल-पुष्पो के साथ सेंधा नमक, गोमूत्र, कडुवा तैल (सरसो तैल) एकत्र, लोह-पात्र मे मर्दन कर धूप मे शुष्क करलें। इसके लेप से लाभ होता है। (भै० र०)

(४३) अश्मरी पर—पुष्पों की राख या क्षार, शहद और दूध एकत्र कर, ३ दिन तक पिलावे।

(व० गु०)

क्षार—तिल के पचाङ्ग को मूल महित जला कर, राख को पानी मे घोलकर, स्थिर पडा रहने देवे। सब राख नीचे बैठ जाने पर, पानी को नितार कर, आग पर पकावें। खड़ी जैसा हो जाने पर उतारकर सुखाले।

केवल पुष्पो का क्षार भी इसी विधि से बना ले।

(४४) मूत्रकृच्छ्र या सुजाक पर—क्षार को दूध या शहद के साथ देने से जलन कम होती तथा मूत्र साफ आता है।

(४५) मूत्राश्मरी पर—क्षार को शहद मे मिलाकर ३ दिन तक दूध के साथ सेवन से पथरी नष्ट हो जाती है।

(यो० र०)

अथवा—इसके क्षार के साथ अपामार्ग, केला, पलाश और यव का क्षार समभाग एकत्र मिला, यथोचित मात्रानुसार (१ या १॥ मा०) भेड़ के मूत्र के साथ सेवन से अश्मरी तथा शर्करा नष्ट होती है।

(वृ० मा०)

(४६) प्लीहा, यकृत् व गुल्म पर—इसके क्षार के साथ अरण्ड का क्षार, शुद्ध भिलावा और पीपल समभाग चूर्ण बनाकर उसमे सब के समभाग गुड मिला, पाचन-शक्ति के अनुसार (१॥ मा० तक, गरम पानी के साथ) सेवन से अति प्रवृद्ध-प्लीहा, यकृत् व गुल्म का नाश होता, तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है। (व० से०)

मूल—उष्णवीर्य है, तथा पुष्परोध व गुल्मादि नाशक है।

(४७) वातज गुल्म, तथा पुष्पावरोध पर—तिल-पौधे की जड के साथ, सहेजने की जड की छाल, ब्रह्म-दण्डी की जड और त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल) इन सबके चूर्ण के (३ मा० की मात्रा मे, तिल के क्वाथ या गरम पानी से) सेवन से वातज गुल्म तथा पुष्परोध (मासिकधर्म की रुकावट) दूर होती है।

(यो० र०)

पंचाङ्ग—

(४८) उदर-विकार पर—तिल के पचाङ्ग को, मटकी मे भरकर गजपुट मे भस्म कर, तथा महीन चूर्ण कर रखे। नित्य प्रात ३ मा० की मात्रा मे, ताजे जल के साथ सेवन से—अजीर्ण, शूल, आमाश, पेट की ऐंठन आदि विकार दूर होते है।

(४९) तिल-पौधे पर होने वाले कृमि-विशेष—खटमल भगाने के लिये—इसके पौधो पर एक प्रकार के कृमि होते है, जो इतस्तत फुदकते रहते है, जिस पौधे पर ये कृमि विशेष हो, उसे उखाड कर, तथा एक कम्बल मे बाध कर, घर मे लाकर, खोलकर रख देने से ये कृमि सब खटमलों को चट कर जाते हे। उनसे मनुष्यो को कुछ भी हानि नही होती।

खली (खल)—तिलों से तैल निकाल लेने के बाद जो खल प्राप्त होती है, वह मधुर, रूक्ष, रुचिकर, मल-स्तम्भक तथा कफ, वात, प्रमेह, नेत्र-विकार आदि नाशक हे। भावमिश्र जी ने इसे दृष्टिदूषक लिखा हे।

(५०) मूत्राघात तथा दाह पर—खली को जला-कर उसकी भस्म को गोदुग्ध के साथ, यथोचित मात्रा मे मिलाकर, तथा उसमे थोड़ा शहद मिला पिलाने से

विशेप लाभ होता है।

(५१) तारुण्य पिटिका (मुहासो) पर---जूनी खली को गोमूत्र मे घोटकर लेप करने से लाभ होता है।

(५२) नारू पर---खली को काजी मे पीसकर लेप करते हैं।

(५३) लूता (मकडी) के विप पर---खली को हल्दी के साथ पानी मे पीसकर लेप करते है।

भिलावे की शोथ पर---इसे मक्खन मे पीस कर लेप करते है।

(५४) अरुंपिका पर---इसकी पुरानी खल व मुरगे की विष्टा को गोमूत्र मे पीस लेप करने से सिर की छोटी-छोटी फुन्सिया शीघ्र नष्ट होती है।

(शा० स०)

नोट--इस खली में ३० प्रतिशत अल्बुमिनाइड्स (Albu minoids) नामक पौष्टिक तत्त्व होता है। यह गाय, भैंस आदि जानवरों को चरी के साथ देने से उन्हे पुष्ट कर दूध की वृद्धि करती है। दुष्काल के समय मे यह गरीबों का एक उत्तम खाद्य होती है।

विशिष्ट वक्तव्य--

काले तिल (Guizojia Abyssy nica) भृङ्गराज-कुल (Compositae) के इसके वर्पजीवी क्षुप का पौधा कोमल, रोमश, पत्र--३-५ इञ्च लम्बे, दन्तुल, पुष्प--विस्तारित, मोटे, ५ पखुडी वाले, हरित या हरिताभ श्वेत वर्ण के होते हैं।

इस अफ्रीका-देशवासी तिल की खेती भारत के कई प्रान्तो मे, विशेपत बगाल, बम्बई तथा दक्षिण मे की जाती है।

नाम--

स०--कृष्ण तिल, होम धान्य, पितृतर्पण इ०। हि०--काला तिल, करिया रामतिल, ब०--रामतिल, सरगुजो, गु--खारसनी, केसानी, रामतल। अ०--नायगर सीड (Niger Seed), केरसानि सीड (Kersani seed), ले०--गुई झोजिया एबि सिनिका, गुई० ओलीफेरा (G, Olcifera)।

रासायनिक संघटन--

बीजो मे ४१ से ८८% स्वच्छ चमकीला, पीतवर्ण का, पतला तैल होता है। इसके अतिरिक्त कुछ क्षारीय तत्त्व (Albuminoids), कार्बोहाइड्रेट, घुलनशील खनिज द्रव्य आदि पाये जाते है। इसकी खली मे लगभग ८८% अल्बुमिन होने से यह खली दूध देने वाले जानवरो के लिये, बहुत उपयुक्त होती है, तथा इसमे ४% नाइट्रोजन (Nitrogen) होने से ईख के खेतो मे खाद के लिये भी विशेष उपयोगी होती है।

गुणधर्म--

इसका तैल साधारण तिल-तैल की अपेक्षा साधारण व्यवहार के लिए, तथा औपधि-कार्यार्थ बहुत काम मे लिया जाता है, वैसे ही इसके बीज भी औपधि-कार्य मे विशेप उपयुक्त होते है। ये बडी रुचि के साथ चटनी आदि के रूप मे खाने के भी काम मे आते हैं। इसके तथा इसके तैल व पत्रादि का औपधि-रूप मे व्यवहार ऊपर के तिल के प्रकरण मे दिया जा चुका है।

तिलपर्णी--दे०--हुलहुल। तिलपुष्पी--दे०--डिजिटेलिस।

तिलिया कोरा
(Tilia Cora Racemosa)



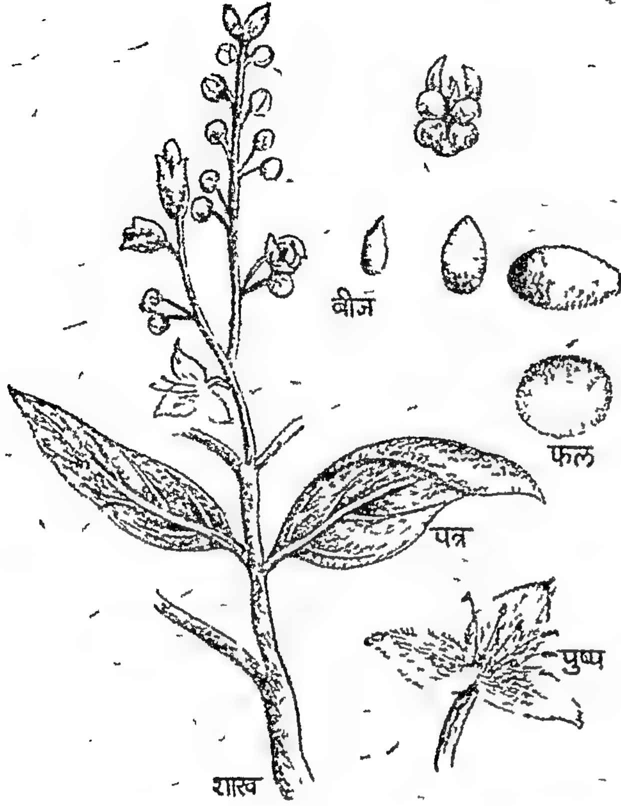
गुडूची कुल (Menispermaceae) की इस पराश्रयी, विस्तृत, पत्राच्छादित, धूसर वर्ण की लता विशेप के पत्र--कोमल, रोमश, २ से ६ इञ्च लम्बे, ३/४ इञ्च चौडे, डिम्बाकृति या गोल, अग्रभाग मे क्रमश पतले नोकदार, पुष्प--लगभग १/२ इञ्च लम्बे, ६ पखुडीयुक्त, त्रिकोणाकार, मूल--१ इञ्च-लम्बा होता है। फल--१/२ इञ्च लम्बा, पकने पर लाल रग का होता है।

यह लता वग देश, पूर्व बगाल से लेकर उडीसा तक तथा कोकण, सिगापुर, जावा, कोचीन, चायना आदि मे विशेषत पाई जाती है।

नाम--

तिलिया कोरा इस बगला नाम से यह प्रसिद्ध है। हिन्दी में-बगमूशदा, रगोई केरात, ले०--टिलिया कोरा रेसेमोसा, टि०--एक्यु मिनाटा (T Acuminata) इसमें

तिलिया कोरा
TILIACORA REACEMOSA COLEBR



तिलिया कोराईन (Tilia Corine) नामक एक उपचार पाया जाता है।

गुणधर्म –

सर्पदश पर—इसकी जड को पीस कर पानी में घोल छानकर पिलाते है।

●

तीतपाती—दे०—अफसतीन। तीता—दे०—त्राय-माण। तीमूर—दे०—तुम्बरू। तीसी—दे०—अलसी। तुङ्ग, तुङ्गला—रायतुङ्ग। तुम्बा—दे०—गूमा। तुम्बी, तुम्बटी—दे०—कद्दू न० १। तुख्म रेहा—दे०—तुलसी बवई मे। तुख्म बालगा—दे०—बालगा (तुलसी भेद)। तुम्री—दे०—पिंडार। तुगाक्षीरी—दे०—तवाखीर के प्रकरण मे पाद टिप्पणी।

तुम्बरू (नेपाली धनियां)

(*ZANTHOXYLUM ALATUM*)

हरीतक्यादि वर्ग एव जम्बीर-कुल (Rutaceae) के सदैव हरेभरे रहने वाले, इस छोटे क्षुप की शाखाए चिकनी, हरी, छ ल-फीकी बादामी रग की, पत्र—प्राय. धनिया के पत्र जैसे, फल—फीका-बादामी रंग का, देखने मे धनिया जैसा, किंतु अग्रभाग मे आधा तक फटा हुआ, छोटा वृन्त-युक्त, इसके भीतर छोटा सा गोल काला एव चमकीला बीज होता है। इसी फल या बीज को तुम्बरू, मोहफट आदि कहते है। इसकी गध एव रुचि भी धनिया जैसी, किंतु तीक्ष्ण एव ताव्र तथा सुगधित होती है। नेपाल की ओर से आने वाला ताजा फल (बीज) कुछ हरे रग का होता है, तथा इसका चटनी पीसकर भोजन के साथ खाते है, स्वाद मे यह अम्लता-युक्त, तीक्ष्ण एव थोडा सुगधित होता है। नेपाल की ओर अधिक होने से इसे नेपाली धनिया कहते है।

यह हिमाचल मे जम्बू से भूटान तक खासिया पहाड, टेहरी, गढवाल आदि मे ५–७ हजार फीट तक की ऊचाई पर पैदा होता है। तथापि सूडान व जेरबाद से इसका आयात विशेष होता है।

नोट:–न० १—तेजबल (zanth Hostile) नामक कंटकित गुल्माकार वृक्ष के फलो को भी तुम्बरू (तोमर) कहते है। गुणधर्मो मे प्राय साम्य है। तेजबल का प्रकरण देखे।

न० २–तिरफल-दक्षिण भारत विशेषत.गोवा, कर्नाटक और कोंकण मे तुम्बरू का ही एक भेद तिरफल, चिरफल, तिसड़ी (zanthoxylum Rhetsa) नामक होता है। इस कंटकयुक्त झाडी की छाल धूमर वर्ण की, काटे खूब चौडे, पत्र–कटे हुए किनारे वाले, पुष्प-छोटे, पीले या पीत वर्ण के तुर्रों से युक्त, गुच्छो के रूप मे, फल-तुम्बरू से कुछ बडे गुच्छों में, कच्ची अवस्था मे हरे, बाद में रक्ताभ काले से, स्वाद मे प्रथम कडुवे फिर अकरकरे के समान तीक्ष्ण एव चिरमिराहट करने वाले सुगन्धित होते हैं।

इसमें तुम्बरू के समान ही तैल, राल आदि पदार्थ रासायनिक सगठन के रूप मे पाये जाते है।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुण धर्मों मे वह प्राय तुम्बरू के समान ही

हैं। फल कुछ चरपर, उष्ण, दीपन, उत्तेजक, वातनाशक, तथा कुछ सकोचक हैं। जड की छाल सुगंधित, कडवी, मूत्रल व पौष्टिक है। शिथिलताजन्य कुपचन मे छाल का फाण्ट देते है। जीर्ण ग्रामवात मे भी यह लाभकर है। ग्राम प्रधान विकारो मे इसे शहद के साथ देते हैं। दत-शूल मे तथा लकवा से जिव्हा का काय ठीक न होता हो, तो छाल को चवाने के लिये देते है।

फलो का व्यवहार आध्मान, अजीर्ण, एव अतिसार मे किया जाता है। मछली-खाने वालो के लिये यह विशेष हितकर है। शरीर की वातवेदना पर—फल-चूर्ण शहद के साथ देते है। अजीर्ण मे फल-चूर्ण को गुड मे मिला १-१ रत्ती की गोलिया घृत के साथ सेवन कराते हैं। वातजन्य भ्रमरोग पर—फल-चूर्ण व काली-मिर्च-चूर्ण एकत्र नारियल तैल मे मिला मस्तक व कनपटियो पर मालिश करते है। मात्रा—बीज निकाले फल का चूर्ण १-२ रत्ती, मूल-छाल १-२ तो० (फाट के लिये।)

नं०३-तुमरा, तांबुल (zanth. Acanthopodium, zan-Hamiltonianum, zan Oxyphyllum) आदि इसी की अन्य जातिया हैं। इनके गुण धर्म प्रयोगादि भी प्रस्तुत प्रसंग के तुम्बरू जैसे ही है।

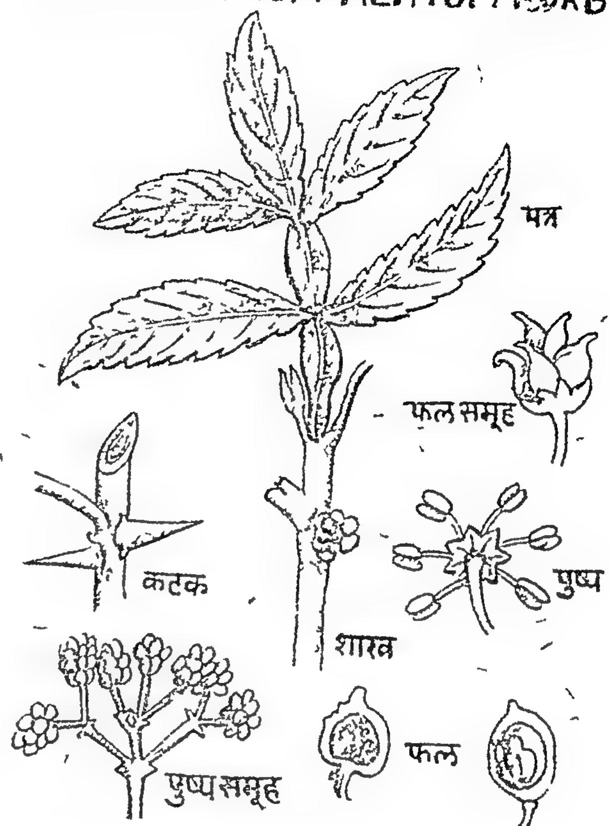
नाम—

स०—तुम्बरु, सौरभ, सौर० इ०। हि०-तु वरू, तुम्बुल, तोमर, मोहफट नेपाली धनिया, तीमरु, तूगरू, कबावा ई०, वं०—तम्बुल, नेपाली धनियाँ। म०-नेपाली धने, चिरफल। गु०-तम्वरु फल। लें०-जेंथोक्साइलम एलेटम।

रासायनिक सघटन०—

इसके फलो मे एक उडनशील तैल, जो यूकेलिप्टस (Eucalyptus) तैल जैसी गध एव गुण से युक्त होता है, इसके अतिरिक्त राल, एक अम्ल पदार्थ तथा एक रवेदार पदार्थ भन्थोक्साइलिन (Znathoxylin) पाये जाते है। छाल मे एक कडुवा-पदार्थ, उडनशील तैल व राल रहती है। छाल का यह कडुवा पदार्थ दारुहल्दी मे पाये जाने वाले वर्बेरिन (Berberine) के सदृश होना है।

प्रयोज्याङ्ग—फल (बीज), तैल, पत्र और छाल।



गुणधर्म व प्रयोग—

फल—लघु, मधुर, तिक्त, रूक्ष, उष्ण, रोचक, सुगन्धित, विपाक मे तिक्त, दीपन, पाचन, ग्राही, पौष्टिक, वातनाशक, क्षुधा-वर्धक, उत्तेजक, तृष्णाशामक, कृमिनाशक है तथा कफ, वात, अर्बुद, शूल, उदर-रोग, अजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र, मूत्ररोग, अतिसार, मस्तिष्क-विकार, उन्माद, सिर का भारीपन, रक्त-विकार, प्लीहा, हैजा, धवल रोग, श्वास, आध्मान, एव नेत्र, कर्ण, ओष्ठ और छाती के विकार मे प्रयोग किये जाते है।

इसका उत्तेजक गुण विशेषत ताजे पत्रो मे, फलो मे व शुष्क मूल-छाल मे होता है।

फल (बीज)—

(१) उदर तथा मस्तक-शूल पर—इसके बीज (फल) २तो०, लौंग, सेधा नमक, भूना हुआ जीरा १-१ तो०, काला नमक ६ मा० और भुनी हीग १॥ मा० लेकर, अलग-अलग कूट-पीस एव कपडछान कर, एकत्र

मिला रक्खे । ३ मा० की मात्रा मे, गरम पानी के साथ, ३-३ घंटे के अन्तर से सेवन करावे, जब तक दर्द बन्द न हो । (अ० योग भा० १) शूल गुल्मादि पर वि० योग देखिये ।

(२) दन्त-पीडा पर—फल २॥ तो० धूप मे खूब शुष्क कर, लोहे की तार वाली चलनी मे छानकर (कपडे मे छानने से इसका तैलीय भाग वस्त्र मे ही लग जाने से वह उतना गुणदायक नही होता) इस चूर्ण का मजन करने, तथा लार को टपकाते रहने से, दातो का दर्द शीघ्र दूर होता है थोडे से इस चूर्ण को अथवा बीजो को दातो के नीचे दबाये रहे । (अ० योग० भाग१)

इसके बीजो को पीस कर भी दन्त-मजन मे डालते है ।

(३) पित्तजन्य मदाग्नि एव पित्तातिसार पर—फल अथवा बीजो को मिश्री के साथ पीसकर सेवन कराने से मदाग्नि दूर होती है ।

फलो के चूर्ण को बेल के शर्बत के साथ सेवन से पित्तातिसार मे लाभ होता है ।

(४) व्रणो पर—फलों को खिलाते, तथा चूर्ण को व्रणो पर बुरकते और छाल के क्वाथ से धोते है ।

(५) श्वास पर—बीजो को हुक्के मे रखकर धूम्रपान कराते हैं ।

पत्र, छाल, आदि—

इसकी छाल दारु हल्दी जैसी गुणकारी व उत्तेजक है । छाल का क्वाथ अथवा पत्र-रस के सेवन से उत्तेजना सी होती है । आतरिक-विकार त्वचा के रास्ते, पसीने के साथ निकल जाता है । ज्वरो की शाति के लिये, एव श्लेष्मल त्वचा और व्रणो की शुद्धि मे विशेष लाभ होता है । छाल का या फलो का फाण्ट उत्तेजक व बल्य है । औषध के रूप मे ज्वर, कुपचन, अतिसार, हैजा, मदाग्नि आदि मे दिया जाता है । गठिया (सन्धिवात) पर छाल का क्वाथ पिलाते है ।

(६) कण्ठशोथ पर—ताजे पत्तो को पीस कर, चावल के आटे के साथ गरम कर बाधने से गले की सूजन दूर होती है ।

(७) दन्त-पीडा पर—इसकी शाखा तथा काटो को औटाकर कुरले कराते है । शाखा की दातून करते रहने से दात निर्मल होते है । दन्त-मजन मे बीजो (फल) का चूर्ण मिलाते है ।

तैल—इसके तैल की क्रिया शरीर पर गधा-बिरोजा या यूकेलिप्टस तैल की जैसी होती है । यह प्रतिदूषक, कीटाणु-नाशक एव दुर्गन्धिहर है । विषैली छूत की बीमारी मे यह तैल लगाते हैं ।

विशिष्ट प्रयोग—

(१) तुम्बुर्वादि चूर्ण—इसके फल के साथ सेधा-नमक, सोचर या विड नमक, अजवायन, पोहकर-मूल, यवक्षार, हरीतकी, हीग (भुनी) व वायविडग समभाग का चूर्ण बनाते। इसमे निसोत चूर्ण (श्वेत निसोत) ३ भाग मिला ले । मात्रा—३ मा० तक गरम पानी, या जव के क्वाथ के साथ सेवन से सर्वप्रकार के शूल, आध्मान, उदर-रोग नष्ट होते है । अथवा—

इसके फलो के साथ हरड, हीग (भुनी) पोहकर-मूल, सेधा नमक, बिड लवण और काला नमक, समभाग ले चूर्ण बना लो । इसे जौ के पानी के साथ पीने से वातज-शूल, और गुल्म नष्ट होते है । (च० स०)

कफज-शूल हो, तो इसके साथ पीपलामूल, अरण्ड-मूल, त्रिकुटा, हर्र, अजमोद, यवक्षार व सेधा नमक का समभाग चूर्ण बना, गरम पानी से सेवन करे । मात्रा—२—३ मा० । (हा० स०)

नोट—मात्रा-चूर्ण ७ से ८ रत्ती या २ मा० तक । छाल-मात्रा—१ से २ तो० तक, प्राय: फाट बनाकर दिया जाता है । अधिक मात्रा से यह सिर-दर्द पैदा करता है । हानि-निवारणार्थ नीलोफर और कपूर देते है । इसका प्रतिनिधि कबाबचीनी है ।

तुरजबीन —दे० जवासा मे ।

तुरमुस (*LIPINUS ALBUS*)

शिम्बीकुल (Leguminoceae) के वर्षायु प्रसिद्ध बीजों को यूनानी मे तुरमुस कहते है । ये बाकला जैसे चपटे गोल, स्वाद मे तिक्त होते है । औषधिकार्य में ये ही बीज लिये जाते है ।

ये क्षुप मिश्र लेवांट आदि देशों मे होते हैं।

बीजों मे लुपिनीन (Lupinine) लुपिनिनयन (Lupininin) व लुपामाईन (Lupamine) क्षारोद [Alkaloids] पाये जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, लेखन कृमिघ्न, मूत्रल, कासहर, वल्य, आर्तवजनन व शोथहर हैं। शोथ, व्यंग एव किलास (श्वेतकुष्ठ) पर बीजो की गिरी को पीसकर लेप करते है। उदर-कृमिनाशार्थ अन्य कृमिघ्न औषधि-द्रव्यो के साथ इसे सेवन कराते हे।

मात्रा—३ से ५ मा तक। यह अधिक मात्रा मे गुरु एव चिरपाकी है। इसके प्रतिनिधि—काकना और खरबूजे के बीज है।

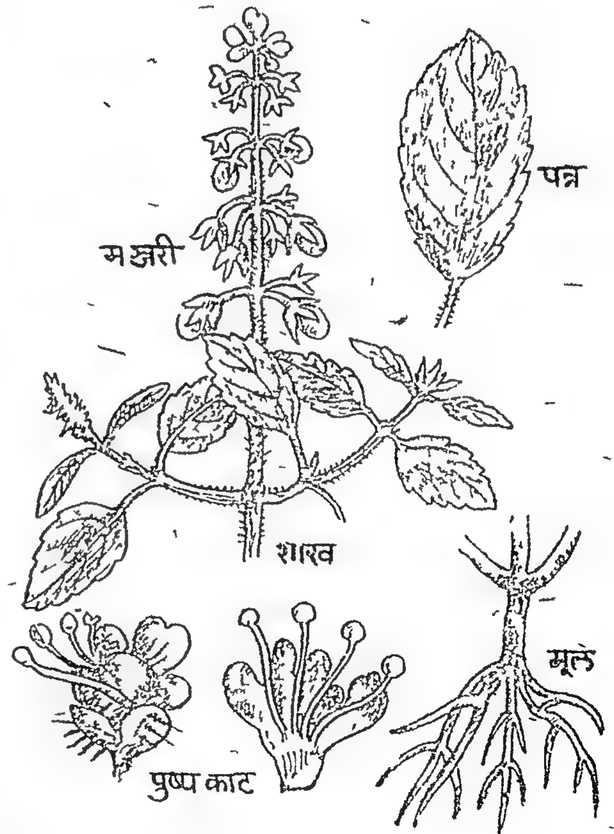
तुरार—दे० वाराहीकन्द मे।

तुलसी (Ocimum Sanctum)

पुष्पवर्ग एवं अपने तुलसी-कुल (Labiatae) की प्रमुख इस दिव्य बूटी के गुल्म जातीय क्षुप १-२ फुट ऊचे, शाखाएं पतली छोटी, सीधी, फैली हुई, पत्र—लगभग १ इंच लम्बे, कुछ कंगूरेदार, गोल एव सुगंधित, पुष्पमंजरी—५-६ इंच लम्बी, शाखाओं के अग्रभाग पर, बीज—चपटे, कुछ लाल वर्ण के होते हैं। प्राय शीत काल मे पुष्प एव फल आते है।

नोट—नं० १-श्वेत व कृष्ण (काली) भेद से इसकी जो दो जातियां हैं, जिनका वर्णन यहां किया जा रहा है, तथा जिनको प्रायः उक्त एक ही लेटिन नाम से पुकारा जाता है तथा जो केवल भारतवर्ष में ही प्राय. सर्वत्र उष्ण एव साधारण प्रदेशों के वनों उपवनो मे निसर्गतः होती एव घरों,मंदिरों में भी प्रचुरता से पूजा-कार्यार्थ तथा मलेरिया आदि रोगों के कीटाणुनाशार्थ वायुशुद्धि के लिये लगाई जाती है, उनमें से श्वेत तुलसी के पत्र,शाखाएं श्वेताभ (इसे ही कोई २ रामातुलसी कहते है, किंतु रामा तुलसी इससे भिन्न है, आगे के प्रकरणों में देखें) और कृष्णा या काली के पत्रादि कृष्णाभ होते हैं। गुण धर्म की दृष्टि से काली तुलसी श्रेष्ठ मानी जाती है।

नं० २—चरक और सुश्रुत ने सुरस या सुरसा नाम से इनका उल्लेख किया है, तथा सूत्रस्थानों में इनके गुणधर्म का संक्षिप्त वर्णनकिया है। सुश्रुत ने सुरसादिगण ही अलग कर दिया है। किंतु इस गण के कई द्रव्य अन्य कुल-जातियों के हैं। इनके अतिरिक्त तुलसी की कई जातियां जिनमें से मुख्यत तुलसी वबई, तुलसी जगली (वन तुलसी), राम तुलसी, कपूरी तुलसी, तुलसी मूरी इ०। इनका वर्णन आगे के प्रकरणों में देखिये। चौधारा (तुलसी) पीछे चौधारा के प्रकरण मे देखे।



नाम—

सं०—तुलसी, सुरसा, ग्राम्या, सुलभा, बहुमंजरी, वृन्दा, देवदुन्दुभी इ०। हिं०-व-म०-गु०—तुलसी, तुलस।

अं०—होली, सेक्रेड बेसिल (Holy, sacred Basil) ले०—ओसिमम सेंक्टम, ओ. हिरसटम (O Hirsutam)



ओ टोमेन्टोसम (O Tomentosum) ओ विरिडे (O Viride)

रासायनिक संघटन—

इसमें एक पीताभ, हरित्तवर्ण का, उडनशील तैल होता है, जो कुछ समय तक रखा रहने से स्फटिकाकार हो जाता है, जिसे तुलसी कपूर (Basil camphor) कहते है। कपूरी-तुलसी से यह कपूर अधिक प्रमाण मे निकाला जाता है। आगे कपूरी-तुलसी देखे।

प्रयोज्याग—पत्र, मूल, बीज, मंजरी, पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, तिक्त, कटुविपाक व उष्णवीर्य है। श्वेत और काली दोनो के गुणधर्म प्राय समान है, किन्तु काली अधिक प्रभावशाली है श्वेत तुलसी-उष्ण, स्वेदजनन व पाचक है। बालको के प्रतिश्याय व कफ-विकारों मे विशेष प्रयुक्त होती है। काली तुलसी-शीत स्निग्ध, कफनिःसारक, ज्वरनाशक, फुफ्फुसों के भीतर से कफनिःसारणार्थ इसे कालीमिर्च के साथ देते है, इसका शुष्क पत्र-चूर्ण पीनस एव कफ-विनाशार्थ दिया जाता है।

जीर्णव्रण, शोथ, पीडा मे दोनो का लेप आदि किया जाता है। अवसाद की अवस्था मे इसे त्वचा पर मलते है। अग्निमांद्य, छर्दि, हिक्का, उदरशूल, कृमि, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, प्रतिश्याय, कास, श्वास, पार्श्व-शूल मे ये उपयोगी है।

वैसे तो दोनो (श्वेत व काली) कफवातशामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृद्य (हृदयोत्तेजक), रक्तशोधक, कफघ्न, स्वेदजनन, ज्वरघ्न (विषमज्वर) कुष्ठघ्न व कृमिघ्न हैं।

आमाशय एव आंत्र मे इनका प्रभाव वातशामक होता है। इनका ताजा रस—वमनावरोधक एव कृमि-नाशक है। पत्ररस—मे दालचीनी-चूर्ण मिला वमन-निरोधार्थ पिलाते है। अतिसार मे शुष्क पचाङ्ग का क्वाथ उत्तम दीपक औषधि है। इससे लाभ न हो, तो पचाङ्ग के फाण्ट मे जायफल-चूर्ण मिला पिलाते है। प्रवाहिका (डिसेंट्री) एव अजीर्ण मे १ तो ताजे पत्तो के रस को नित्य प्रात पीने से लाभ होता है। उदरशूल मे इसका तथा अदरख का रस समभाग लेकर १ छोटे चम्मच भर कुछ गरम कर २-३ बार पिलाते हैं। दुपहर के भोजन के बाद इसके ४-५ पत्ते चबा लिया करने से मंदाग्नि, अरुचि, वमन, एव कृमिविकार मे लाभ होता है, मुख की दुर्गन्ध दूर होती, श्वास स्वच्छ होती व पाचन-क्रिया मे सुधार होता है।

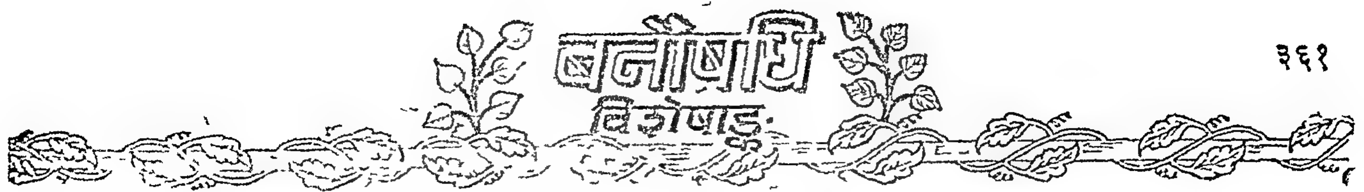
केन्सर मे—इसके २५ या इससे अधिक ताजे पत्तो को पीस ५ से १० तो तक तक्र के साथ ८ दिन पिलाने मे लाभ होता है।

शीतकाल मे ठड लग जाने से जुकाम, छींके, सिरदर्द एव ज्वर हो, तो पत्र-रस को शहद के साथ देते है। यह प्रयोग प्रारम्भ से ही करने पर आगे विशेष रोग-प्रकोप मे रुकावट होती है। ऐसी अवस्था मे कालीमिर्च के महीन चूर्ण मे इसके पत्ररस की २१ भावनाये देकर, इसे ४-६ रत्ती तक शहद से या उष्ण जल से देते है।

कफ प्रकोप-जन्य अनेक अवस्थाओ मे तथा श्वास-स्थान के रोगो मे इसका पत्र-रस, कफनिस्सारणार्थ अदरक, प्याज के रस और शहद के साथ देते हैं। कास एव कफ-प्रकोप से गला रुंध गया हो, बोला न जाता हो, तो इसके ताजे पत्तो को आग पर सेक कर नमक के साथ चबाते हैं। पोहकरमूल आदि कासहर द्रव्यो के चूर्ण के साथ इसे मिलाकर देते रहने से स्वरभेद, कास, श्वास एव पार्श्वपीडा मे लाभ होता है। मूर्च्छा या बेहोशी को दूर करने के लिये पत्र-रस मे थोडा नमक मिला नाक मे टपकाते है।

गृध्रसी एव वातजन्य मूल शोथ (Sciatica) आदि मे पत्र-क्वाथ से रोगग्रस्त वातनाडी को बफारा (नाडी-स्वेद) देते है। उरुस्तभ मे इसके पत्तो को पीस कर लेप करने से लाभ होता है (च चि अ २७)। अथवा इसके पचाङ्ग के उष्ण क्वाथ से रुग्ण भाग को धोकर, इसके बीजो को पीसकर लेप करते है।

इसमे पोषक एव वाजीकरण गुणो के होने से, यह वीर्य को गाढा कर पुंस्त्वशक्ति को बढाती है। इसके लिये प्राय इसके बीजो का प्रयोग किया जाता है। नपुंसकता-नाशार्थ बने हुए प्रयोगो मे इसके बीज डाले



इसके १ तोले पत्र को २० तो. जल मे पकावे १० तो. शेष रहने पर उतार कर छान कर सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर सुहाता सुहाता पान कराने से भी इन्फ्लुएंजा मे लाभ होता है। अथवा—

पत्र-चूर्ण के समभाग सोंठ-चूर्ण व अजवायन-चूर्ण एकत्र मिला, २-३ मा तक शहद के साथ चटाते रहने से भी लाभ होता है।

(इ) मथर ज्वर (टायफायड) पर——काली तुलसी, वन-तुलसी और पोदीना समभाग का स्वरस निकालकर ३ या ७ दिन तक सेवन करावें। अथवा——

रससिंदूर, अभ्रक भस्म, प्रवाल भस्म, मुक्ता भस्म, उत्तम केशर, जायफल, जावित्री व लौंग ४-४ मा असली कस्तूरी १ मा सबको यथाविधि घोट, तुलसी-रस-मे ३ दिन निरतर घोट कर मूग जैसी गोलिया बना ले। मात्रा—१ से २ गोली तक, तुलसी या पान के रस और शहद से दिनरात मे ३ बार देने से बच्चो के मौक्तिक ज्वर की सर्वावस्थाओं मे लाभ करता है। तथा ज्वर, खासी श्वास, अतिसार, वमन, दाह ज्वर का तीव्र-वेग, नाड़ी-क्षीणता, प्रलाप आदि दूर होकर दाने शीघ्र बाहर होते है। बल वर्ण की रक्षा होती है। बडी मात्रा मे बडो को भी लाभकारी है—

—डा० के एम लाल सक्सेना-मीरगज
बरेली यू पी

(ई) जीर्ण ज्वर मे—पत्र-स्वरस ३ माशे मे काली-मिर्च ३ नग का चूर्ण मिला (यह १ मात्रा है) कर कुछ दिनो तक सेवन करने से लाभ होता है।

(उ) साधारण, सर्व प्रकार के ज्वरो पर—इसकी २१ पत्तियो के साथ श्वेत जीरा ३ माशा, छोटी पीपल ३ माशे एकत्र कर ५ तो. शक्कर मिला प्रात तथा इसी प्रकार शाम को पिलावे।

(वि० योगो मे तुलसी-वटक देखे)

२ बालकों के विकार पर—पत्र-रस का शर्बत बना, ३ माशा तक चटाते रहने से सर्दी, जुकाम, खासी, वमन दस्त, पेट के फूलने आदि मे लाभ होता है।

अतिसार अधिक हो, तो पत्र-स्वरस मे धाय के पुष्पो को पीस कर केशर के दूध से पिलाते है। अथवा पत्तो का फाण्ट या चाय जैसी बना जायफल घिसकर पिलाते है। हरे पीले दस्त होते हो, तो पत्र-स्वरस मे थोडा भुना हुआ सुहागा मिला, पीस कर, मूंग जैसी गोलिया बना, १-१ गोली पानी मे देने मे लाभ होता है।

बालको के डिब्बा रोग पर—(बाल निमोनिया) पसली चलने के रोग मे जब कफ अधिक हो, ज्वर कम हो उस समय—काली तुलसी का स्वरस १ तो गाय का ताजा घृत १ तो दोनो को एक कटोरी मे रख कर आग पर थोड़ा गुनगुना कर ले। यह एक मात्रा है। इसके पिलाने मे पसली चलने का रोग दूर होता है। इसे प्रात. साय २-३ दिन देवे। यदि ज्वर साधारण हो, पेट तना हो व कब्ज हो तो इसे दे सकते हैं। तीव्र ज्वर मे नही देवें। अथवा—

तुलसी के पचाङ्ग और अमलतास की साबुत फली, दोनो जला कर भस्म कर ले। मात्रा २ रत्ती तक शहद या दूध से देवे।

बालको के नेत्र-विकारो (कुथई, रोहे आदि) पर—

इसके ५० पत्र, भुनी फिटकरी १ माशा अफीम १ रत्ती, बकरी की लेंडी जलाई हुई १० नग, लौंग ५ तथा हर्र १ लेकर, प्रथम हर्र को स्त्री के दूध से पीतल की थाली मे घिसे, फिर लौंग व शेष द्रव्यो को मिला महीन घिस ले। अन्त मे गोघृत समभाग मिला घोटकर काजल सा बना काच की शीशी मे रख लें। इसे लगाते रहने से बच्चो के नेत्र-विकार दूर होते हैं।

यकृत-विकार पर—पत्र का क्वाथ देते हैं।

तुलसी-पत्र १ तो को २० तो पानी मे चतुर्थांश क्वाथ कर, छानकर, दिन मे २-३ बार पिलाते रहने से यकृद्वृद्धि एव अन्य यकृद्रोग दूर होते है।

उदर-कृमि-नाशार्थ—इसके ११ पत्रो को वायविडङ्ग १ मा के साथ पीसकर दो गोलिया बना लें। प्रात साय १-१ गोली ताजे जल से ५ दिन तक देवें। यह योग बडो के लिये भी लाभकर है।

३ वमन पर——इसके पत्र, बेर की गुठली व खाड ३-३ मा तथा काली मिरच १ मा, पानी मे पीस कर गोलिया बना सेवन करावे।

अथवा——पत्र-रस मे दालचीनी-चूर्ण मिला पिलावे।

यह योग बड़ों के लिए भी लाभकर है। अथवा—

पत्र-स्वरस मे शहद मिला चटावें। या पत्र-स्वरस १ तो. मे छोटी इलायची के बीजो का चूर्ण १ मा. व शक्कर १ तोला मिला सेवन करें। इससे वात-पित्त का द्वन्द्वज वमन भी नष्ट होता है। त्रिदोषज-वमन मे—पत्र-स्वरस १ तो मे केवल छोटी इलायची बीज-चूर्ण ५ रत्ती तक मिलाकर चटाते है। पित्तज वमन मे—पत्र-स्वरस और अदरक रस १-१ भाग से नीबू-रस २ भाग डाल, मिश्री-चूर्ण मिला पिलाते है।

कास, श्वास, हिक्का पर—पत्तो का फाण्ट या चाय पीने से कास, छाती की पीडा व प्रतिश्याय विकार दूर होते हैं। कास के साथ ही ज्वर हो, तो पत्र-रस १¼ तो० शुद्ध शहद २½ तो० व अद्रक-रस ½ तो० एकत्र मिला, एक मात्रा मे ३० से ६० बून्द सेवन करावे। श्वास भी हो, तो पत्रो के साथ, सोठ, कटेरी, ब्रह्मदण्डी व कुल्थी समभाग लेकर क्वाथ बना सेवन करावें।

हिक्का और श्वास पर—पत्र-स्वरस १ तो० शहद ½ तो० दोनो मिला पिलावें।

(५) प्रसव-पश्चात् होने वाले शूल मे—पत्र-स्वरस मे पुराना गुड, मद्य और खाड मिला स्त्री को प्रसव के पश्चात् तुरन्त ही पिलाने से शूल नष्ट होता है।

(६) कर्णशूल तथा सूजन पर—पत्तो का ताजा रस गरम कर कान मे टपकाने से शीघ्र बन्द होता है। कान के पीछे सूजन हो, तो पत्तो के साथ रेंडी की कोंपलें और थोडा नमक पीसकर पानी मिला, गरम कर लेप करने से लाभ होता है।

(७) दद्रु, वातरक्त (कुष्ठ) आदि चर्म-रोग पर—दाद पर—पत्तो को नीबू के रस मे पीसकर लगावें। अथवा—पत्र-स्वरस, गोघृत और पत्थर का-चूना, कांसे के पात्र मे घोट कर लगाते है। गजकर्ण कुष्ठ पर—पत्र-स्वरस, गुड, चूना व पान का स्वरस एकत्र घोट कर लगाते हैं। शरीर के श्वेत दाग, चेहरे की झाई, कीलें, [illegible] आदि पर—इसके रस के सम-भाग [illegible] रस, [illegible] का रस इन तीनो को एक [illegible] कर, धूप में रख दें। कुछ गाढा होने पर लगाते रहने से झाई, काले दाग, कीले आदि नष्ट होकर चेहरा सुन्दर हो जाता है। इसे निरंतर लगाने से श्वेत कुष्ठ मे भी लाभ होता है।

(८) रतौंधी (नक्तान्ध्य) पर—पत्र-रस मे छिलका रहित काली मिर्च-चूर्ण को घोटकर वटी बना, छाया-शुष्क कर, शहद मे घिस, सायकाल अजन करें। अथवा—पत्र-रस को दिन मे कई बार नेत्रो मे लगाते रहे। काली तुलसी-पत्र-रस शीघ्र लाभ करता है।

(९) सर्प के विष पर—पत्र-स्वरस को बार-बार अत्यधिक मात्रा मे पिलाते, तथा इसकी मजरी एव जडो का लेप दश-स्थान पर बार-बार करते है। बेहोशी की दशा मे कान, नाक और नेत्रो मे रस को टपकाते है।

(१०) बिच्छू के विष पर—पत्रो को नीबू-रस तथा गौमूत्र मे पीस कर लेप करें। या पत्र-रस मे जायफल को घिस कर लगावे। या मूली के रस मे ¼ पत्र-रस को मिलाकर लेप करें। या पत्र-रस मे सेधा नमक मिला लगावें। पत्तो को चतुर्गुण जल मे पीस कर ५-५ मिनट के अन्तर से पिलाने व लगाने से शाति प्राप्त होती है।

(११) चूहे के विष पर—पत्र-रस मे अफीम घोट-कर लगाने से, अथवा—पत्र-रस मे हरताल, नीलाकमल व मैनसिल-चूर्ण की बहुत सी, भावनाए देकर, सुखाए हुए चूर्ण को इसके स्वरस मे घोलकर पिलाने से चूहे का बहुत तेज विष भी नष्ट हो जाता है।

(तुलसी पुस्तक से)

बीज-प्रयोग—

तुलसी (श्वेत या काली) के बीजो को यूनानी मे "तुख्म रेहा" कहते है। कोई-कोई बबई या जगली तुलसी के बीजो को ही तुख्म रेहा कहते है।

ये बीज—स्निग्ध, पिच्छिल (लुआबदार), शीत-वीर्य, स्वाद मे फीके, मूत्रल, वृष्य तथा प्रवाहिका, पूय-मेह (सुजाक), मूत्रकृच्छ्र, बस्तिशोथ, अश्मरी, जननेन्द्रिय एव मूत्र-सस्थान के विकारो मे प्रयुक्त होते है।

(१२) प्रवाहिका मे बीजो को शक्कर के साथ देते है। यह शुष्क कास, गले की खरखराहट मे भी लाभ-प्रद है।

(१३) सुजाक, वस्ति-शोथ, मूत्र-दाह तथा वृक्क की अश्मरी पर—बीजो का हिम (शीत-कषाय १ से २ तो० तक बीजो को कूटकर ६ गुने पानी मे, मिट्टी, काच या कलईदार पात्र मे ढाक कर रात भर भिगो, प्रात मल-छानकर) उसमे श्वेत जीरा, शक्कर और दूध मिलाकर ४ से ८ तो० तक की मात्रा मे, दिन मे ३ बार पिलाने से लाभ होता है।

(१४) रक्तातिसार मे—केवल उक्त हिम को (उसमे कुछ भी न मिलाते हुए) ही कुछ दिन पिलाने से लाभ होता है। अथवा—बीज १ तो० प्रात. गाय के दही के साथ ७ दिन तक सेवन कराते हैं।

(१५) वालकों के अतिसार और वमन पर—एक साल के बच्चो के लिए, बीज १ से १½ रत्ती की मात्रा मे पीसकर थोडे गौदुग्ध मे घोलकर पिलाते हैं। इसी मात्रा से यह-योग दिन मे ३ या ४ बार तक दिया जा सकता है। बडे बच्चो को उक्त मात्रा के प्रमाण से कुछ अधिक मात्रा मे देते है।

(१६) कास तथा फुफ्फुस के विकारो पर—बीजो के साथ समभाग गिलोय, सोठ तथा छोटी कटेरी की जड लेकर, महीन चूर्ण बना, मात्रा—२ मा० तक दिन मे २-३ बार उत्तम शहद के साथ देते है।

(१७) नपुंसकता एव वीर्य के विकारो पर—इसके बीजो के (या जड के) चूर्ण मे समभाग पुराना गुड मिला कर १॥ से ३ मा० तक की मात्रा मे, प्रात.-सा'य गाय के दूध (दूध ताजा हो या धारोष्ण हो, तो उत्तम) से लेते रहने से, ५-६ सप्ताह मे, वीर्य-विकार दूर होकर पुंस्त्व-शक्ति की यथेष्ट वृद्धि होती है। अथवा—

बीज ५ तो० के साथ पोस्त के डोडे ४ तो०, गोखुरू ५ तो०, कौच के बीज ३ तो० और मूसली (काली) ४ तो० तथा मिश्री ६ तो० सबका महीन चूर्ण कर, १० रत्ती की मात्रा मे गाय के दूध से सेवन करने से, काम-शक्ति प्रवल हो जाती है। वीर्य गाढा होता तथा उसकी बृद्धि होती है।

स्तम्भन के लिए इसके बीज (या जड) के चूर्ण को पान मे रखकर सेवन करते हैं। इससे वल की भी वृद्धि होती है।

(१८) योनिभ्रंश (Prolapsus Vaginae) पर—बीज और नई आमाहल्दी समभाग चूर्ण कर योनि मे बुरकते है।

मंजरी—

(१९) शुष्क-कास तथा बालकों के श्वास-विकार पर—तुलसी की मजरी, सोठ और प्याज को एकत्र कूट-पीस कर, शहद के साथ चटाते है।

खासी के रोगी को—मजरियो मे थोडा घृत मिला, निर्धूम अगारो पर रख, उठते हुए धुएं को नासिका द्वारा पिलावें।

या उक्त घृत-लिप्त मजरियो की बीडी बना पिलाने से भी उचित लाभ होता है।

कुकुर खासी (हूपिंग कफ) पर—मजरी के साथ वच, छोटी पीपर, मुलैठी १-१ तो० तथा मुनक्का व शक्कर ५-५ तो० लेकर जौकुट कर, १ सेर पानी मे क्वाथ करें। १ पाव शेष रहने पर छानकर यथोचित मात्रा मे सेवन करे। वालकों को भी यह दिया जा सकता है। अथवा—

मजरी, मुलैठी, छोटी कटेरी की जड, अडूसा-पत्र, वडी वच १-१ तो०, आक के फूल व लेंडी पीपल ½-½ तो०। इन सबका महीन चूर्ण कर, वडो को ½ से ३ मा० तक, तथा बच्चो को ३ रत्ती से ६ रत्ती तक की मात्रा मे, उत्तम शहद के साथ चटाते रहने से सर्व प्रकार की खासी तथा कफ-विकार दूर होते है।

(२०) तृष्णा, अरुचि अम्लता आदि आमाशय के विकारो पर—मजरी, सोठ, छोटी पीपल, मुनका, लौंग, ताम्बूल-पत्रो के डठल, दालचीनी व खजूर १-१ तो० तथा लोध ½ तो० लेकर क्वाथ कर, थोडा-थोडा पीते रहने से तृष्णा आदि विकार दूर होते हैं। यह तीनो दोषो को शांत करता है। (यो० र०)

(२१) शीतला (चेचक) के ज्वर—मजरी १ तो० तथा कूठ ३ मा० दोनो को चतुर्गुण जल मे क्वाथ करें चतुर्थांश शेष रहने पर, छानकर पिलाने से; अथवा—मजरी, अजवायन व अद्रक-रस समभाग, पीस कर थोडा-

थोडा चटाने से ज्वर की शान्ति होती है।

जड (मूल)—स्तम्भन, वीर्य शक्तिवर्धक है।

(२२) स्तम्भन के लिये—जड के चूर्ण मे, थोडा जिमीकन्द का चूर्ण मिला, १ से २ रत्ती तक पान मे रखकर खाने से वीर्य स्तम्भन-शक्ति बढती है। ब्रह्मचर्य एव पथ्यपूर्वक लगभग १ मास तक सेवन करे। अथवा—केवल जड का चूर्ण ही २-४ रत्ती की मात्रा मे पान मे रखकर सप्ताह मे दो दिन सेवन करे। इन योगो के सेवन से (स्वप्न मे वीर्यपात होना) दूर होता है।

(२३) नाहरू पर—नाहरु (नारू) के मुख पर तथा शोथ पर, जड को पानी मे घिसकर लेप करते है। थोडी ही देर मे २-३ इन्च नारू निकल आता है। इसे बाधकर पुन उसी प्रकार लेप करते रहने से २-३ दिन मे ही सारा नारू बाहर निकल आता है, सूजन कम हो जाती है। पश्चात् २-४ दिन और लेप करने से रोग समूल नष्ट हो जाता है। (तुलसी पुस्तक से)

(२४) प्रमेह पर—जड का चूर्ण १ तो० रात्रि मे १ पाव जल मे भिगोकर प्रात खूब मर्दन कर पान करने से लाभ होता है।

(२५) कुष्ठ पर—जड़ के चूर्ण मे थोडी सोंठ मिला कर उष्णोदक के साथ, प्रात नित्य पिलाते रहने से लाभ होता है।

(२६) बिजली के उत्पात से बचने के लिये जड को तावे के तावीज मे बन्द कर बाधे रहने से, बिजली लगने का भय नहीं रहता है।

पचाङ्ग—

(२७) इसके शुष्क-पंचाङ्ग के १ तो० जौकुट चूर्ण का १० तो० पानी मे क्वाथ कर पिलाने से जुकाम और खासी मे लाभ होता है।

(२८) मन्दाग्नि व अजीर्ण पर—इसके शुष्क पचाङ्ग के चूर्ण के साथ काली मिर्च का चूर्ण मिला, उष्णोदक मे सेवन करने से मदाग्नि एव अन्यान्य उदर-विकार नष्ट होते है।

विशिष्ट योग—

१ तुलसी की चाय—छाया-शुष्क तुलसी पत्र १॥ सेर, दालचीनी १ पाव, तेजपत्र ½ सेर, सौंफ आध सेर, इलायची आध सेर, तृणचाय (अगिया घास) १॥ सेर, बनफशा आध पाव, ब्राह्मी बूटी आध सेर तथा लाल चन्दन १ सेर इनको जवकुट करलें। १ सेर स्वच्छ उबलते हुए पानी मे १ तोला डालकर उतार लें। ढाककर रख दे। थोडी देर बाद यथेष्ट दूध व मीठा मिलाकर पान करे। यह गुरुकुल कांगडी की चाय बहुत ही उत्तम है। लिपटन आदि चायों की अपेक्षा यह अति उत्कृष्ट है। विदेशी चाय के स्थान मे इसका उपयोग करना स्वास्थ्य के लिए अति हितकारी है।

(तुलसी पुस्तक से साभार)

सर्दी, जुकाम, खासी आदि पर—तुलसी-पत्र ११, कालीमिर्च ५, तथा थोडी अदरक या सोठ मिला कर बनाई हुई चाय मे शुद्ध गुड या देशी शक्कर मिला कर पीने से प्रतिश्याय, खांसी, श्वास, जूडी, ताप व अन्त्रो की ऐंठन आदि दूर होती है।

वात-श्लेष्मज ज्वर। (इन्फ्लुएंजा) की दशा मे तुलसी २ भाग, बेल-पत्र, बनफशा दालचीनी, इलायची और कालीमिर्च १-१ भाग, तेजपत्र आधा भाग, तथा मिश्री ८ भाग एकत्र जौकुट कर फाट या चाय बनाकर पीने से परम लाभ होता है।

२ तुलस्यासव—(प्रसव-वेदना एव सूतिकाशूल-नाशक)—तुलसी-पत्र-स्वरस २॥ सेर शुद्ध चीनी मिट्टी के पात्र मे भर उसमे पुराना गुड १ सेर, मद्य ४० तोले तथा खाड १ सेर मिला, १५ दिन तक संधान कर रक्खे। पश्चात् छानकर शीशियो मे भर लें। मात्रा—१ माशे से १ तो तक। यह प्रसव की तीव्र वेदना तथा सूतिका के शूल को शीघ्र शमन करता है।

आसव नं० २—(जीर्ण-ज्वर तथा कास-नाशक) तुलसी-पत्र १ सेर, सोंठ, काली मिरच व पीपल १-१ पाव तथा अजवायन आध पाव लेकर सबको कूटकर १० सेर पानी मे भिगो रक्खे। पश्चात् भवके द्वारा अर्क खीचकर शीशियो मे भर रखे। मात्रा—आधा से १ तो. तक, सेंधव लवण युक्त उष्ण जल से सेवन करे। इसमे थोडा-हरड चूर्ण मिला लेने से शीघ्र लाभ होता है।

नोट--शेष तुलस्याद्यासवारिष्ट तथा अन्य प्रयोगों को हमारे 'बृहदासवारिष्ट संग्रह' ग्रंथ में देखें।

३. शर्बत-(अवलेह) तुलसी—(शुक्रप्रमेह आदि नाशक) तुलसी ५० तोला, चोबचीनी, तालमखाना, पीपरामूल, नागकेशर, अकरकरा २-२ तो, पुराना शहद २० तो, मिश्री या चीनी ५० तो लेकर प्रथम काष्ठद्रव्यो का महीन चूर्ण कर शहद मे मिला १४ घंटा रख दे। बादमे शक्कर की चाशनी बना शीतल होने पर, उक्त मधु मिश्रित द्रव्यो को मिला पुनः केसर, छोटी इलायची बीज तथा जावित्री का चूर्ण १-१ तो. मिला, स्निग्ध पात्र या शीशी मे रख दें। मात्रा—१-२ तो तक, गोदुग्ध के अनुपान मे (दूध मे थोडी मिश्री मिला ले) सेवन करने से शुक्र प्रमेह, धातु-क्षीणता आदि वीर्यविकार दूर होते है। सेवन-काल मे ब्रह्मचर्य एवं पथ्यापथ्य का ध्यान रखे।

४. तुलसी का रासायनिक योग—(कुष्ठ, विसर्पादि-नाशक)—तुलसी का स्वरस, शुद्ध पारद, शुद्ध अफीम १-१ तो तीनो को लोह-खरल मे एकत्र नीम के डण्डे से ६ घण्टे तक खरल कर, उसमे-शुद्ध सुहागा १ तो मिला, पुन तुलसी-स्वरस से ३ घंटे घोटकर-जावित्री, जायफल, अकरकरा, खुरासानी अजवायन का चूर्ण २॥-२॥ तो. मिला पुन तुलसी के पर्याप्त रस मे ३ घंटे मर्दन कर वंशलोचन और खैर प्रत्येक २४ तो के महीन चूर्ण को मिला, पुन पर्याप्त तुलसी रस से १ घंटा तक घोट कर चने जैसी गोलिया बना छाया-शुष्क करे। मात्रा—२-२ गोली के नित्य सेवन से विसर्प, उपदंश, गलित कुष्ठ, विस्फोटक आदि विकार नष्ट होते हैं। सेवन-काल मे प्रत्येक चरपरी चीज, खटाई व गुड आदि का परहेज रखे। इसके सेवन से पूर्व कोष्ठ-शुद्धि करलेना आवश्यक है—

(तुलसी विज्ञान से साभार)

५ तुलसी-तेल—शुद्ध तिल-तेल अथवा शुद्ध सरसो तेल २॥ सेर तक लेकर उसमे तुलसी-स्वरस ५ से १० तोला तक मिलाकर बोतल मे भर मजबूत डाट लगा कर ७ दिन तक तेज धूप मे रखे। फिर छानकर उसमे यथा रुचि सतरा या गुलाब का रूह या इतर मिला लें। इसे लगाने या नस्य लेने मात्र से पुरानी सिर-पीड़ा दूर होती है। सिर मे जूं, लीख हो तो इसे लगाने से नष्ट होते व मच्छर पास नही आते है। चेहरे पर लगाते रहने से कांति बढ़ती है। इसे शरीर मे भी लगा सकते है।

६ तुलसी-वटक—तुलसी पत्र २ तो, गिलोयसत्व १ तो, लौंग, वंशलोचन, धनिया, कासनी बीज छोटी इलायची दाने ६-६ मा, सबके महीन चूर्ण को तुलसी-स्वरस मे १२ घंटे खरल कर आधी रत्ती की गोलिया बनालें। बच्चो को ज्वर मे २ से ४ वटी जल से या अमृतारिष्ट सजल से दें। ज्वर अधिक हो तो प्रवाल भस्म आरंभिक दिनो मे एवं प्रवाल-पिष्टी अंतिम दिनो मे १-२ रत्ती मिला कर दें। अतिसार हो तो लक्ष्मी नारायण रस आध-आध रत्ती साथ मे देवे। यह वटी मोतीज्वर के विष को बाहर निकालने मे अति उपयोगी है।

(डा० के एम लाल सक्सेना मीरगंज बरेली)

नोट—वैसे तो तुलसी के कई प्रयोग हैं, किंतु हमने यहां पर चुने हुए एव अनुभूत प्रयोगों को ही लिखा है।

मात्रा—स्वरस १-२ तो। बीज-चूर्ण १ से २ या ६ मा तक। क्वाथ—२ से ५ तो तक। कल्क—१ से ४ तो. तक।

ध्यान रहे—कार्तिक मास मे तुलसी का सेवन नही करना चाहिये। तुलसी के साथ पान (ताम्बूल) नही खावे। इसे खाकर दूध नही पीवे, क्योकि इससे त्वचा के रोग, कुष्ठ आदि होने का भय रहता है।

बीजो का अधिक मात्रा मे प्रयोग करना मस्तिष्क के लिये कुछ हानिप्रद है। हानि-निवारणार्थ-गुलाब या गुलकन्द का सेवन करे।

तुलसी-कपूरी

OCIMUM KILIMANDSCHARICUM

कपूर विश्व की सभी चिकित्सा-पद्धतियो मे प्रचुरता से प्रयुक्त होने वाली औषधि ही नही, बल्कि हर कुटुम्ब मे किसी न किसी रूप मे प्रयोग होने वाली वस्तु है। परन्तु दुर्भाग्यवश आज जो कपूर हमे बाजार मे मिलता है वह कपूर वृक्ष (Cinnamomum

Camphora) या कर्पूर-उत्पादक अन्य वृक्षो से प्राप्त न न कर तारपीन के तेल से तैयार किया जाता है। तारपीन के तेल से निर्मित कृत्रिम कपूर भले ही धार्मिक कृत्यों मे धूप-दीप के काम आ सकता हो या अधिक से अधिक अभ्यङ्ग मे भी हानि न पहुचाता हो, परन्तु अन्त प्रयोगार्थ अर्थात् खाने की औषधियो मे इसका प्रयोग अवश्य ही हानिकारक है। शुद्ध कपूर Cinnamonum Camphora) के अतिरिक्त अन्य कई क्षुपो से भी प्राप्त होता है। जिनमे ओसिमम् किलिमन्दस्चैरिकम् (तुलसी-कपूरी) के क्षुप सब से अधिक महत्वपूर्ण हैं।

तुलसी कपूरी—तुलसी–कुल की ही वनस्पति है, परन्तु पवित्र तुलसी (Ocimum Sanctum) जो भारतीय घरो मे पूजा अर्चना के काम आती है उससे सर्वथा भिन्न है। तुलसी कपूरी के क्षुप बहुवर्षीय, सर्वथा विदेशी ४ से ५ फीट ऊचे होते हैं। पुष्प-मजरी-रूप मे गुच्छो मे आते है। पुष्प-काल भाद्रपद-अश्विन होता है। इसी समय इस पर पत्तो का भी बाहुल्य होता है। इन पत्तो से ही कपूर का निर्माण किया जाता हे। स्थानान्तर के अनुसार क्षुप पर से पत्ते आश्विन के प्रथम पक्ष, मार्गशीर्ष और चैत्र मास मे अर्थात वर्ष मे तीन बार सग्रह किए जाते है। सग्रह करते समय क्षुप की सभी शाखाओ-प्रशाखाओको काट लिया जाता है। केवल क्षुप के काण्डो को ज़मीनसे ४-६ इच ऊपर तक प्रस्फुटन के लिए छोड दिया जाता है। फिर इनको धूप मे सुखाकर डडे द्वारा धीरे-धीरे ताडन कर पत्तो को कपूर निर्माण के लिए पृथक कर लिया जाता है। और शुष्क शाखाओ को ईधन के काम मे ले लिया जाता है। वर्ष भर के सगृहीत पत्तो से कपूर शिशिर ऋतु मे जबकि कडाके की सर्दी पडती है निर्माण किया जाता है। क्योंकि इन महीनो मे पानी बहुत ठण्डा होता है और वाष्पीकरण के समय पानी जितना अधिक ठण्डा होता है उतना ही अधिक कपूर प्राप्त होता है, अन्यथा कपूर-तेल अधिक रहता है। १५ सेर शुष्क पत्तो मे एक से सवा पौड कपूर तथा कपूर-तेल प्राप्त हो जाता है। सभी योगो मे जिनमे कपूर डालना इष्ट हो, यह कपूर या कपूर-तेल निस्सकोच प्रयोग मे लिया जा सकता हे।

सर्वथा विदेशी उपज होने के कारण इसके गुणधर्मों का आयुर्वेद मे वर्णन उपलब्ध नही होता परन्तु कपूर और कपूर के सभी भेदो के गुणधर्मो का विशद वर्णन आयुर्वेद मे मिलता है (जिसके लिए वनौषधि विशेपाक भाग २ देखें)। क्षुप के भिन्न भिन्न अङ्गो का औपधार्थ प्रयोग तथा अध्ययन सिद्ध करता है कि गुणधर्म मे यह कटु-तिक्त, उष्ण तथा दीपक है।

(१) इसके पत्तो का प्रयोग पाचन-क्रिया के लिए अति उत्तम है।

(२) पके शोथ का विदारण करने के लिए इसके पत्तो को सिरके मे पीसकर लेप करना ही काफी है।

(३) पसली के दर्द को इसके पत्तो का लेप. देखते ही देखते शात कर देता है। इस कार्य के लिए पत्तो को पानी मे पीसकर कुछ गर्म कर लेना चाहिए।

(४) कर्ण-पीडा तथा अन्य वात व्याधियो पर-इसके पत्तो की लुगदी को तिल के साथ मन्दाग्नि पर पकाकर तेल मात्र रहने पर निथार कर रखले। कर्ण-पीडा तथा अन्य किसी भी स्थान की वात-जनित पीड़ा के लिए यह लाभकारी है।

इसके पत्तो से कपूर–निर्माण करते समय अन्त मे जो जल शेष रहता है, वह 'अर्क कपूर' होता है। जो पेट के सभी विकारो मे विशेषकर अजीर्ण, शूल तथा वमन आदि मे लाभप्रद होता है।

आयुर्वेदाचार्य श्री कृष्णचद जी भूषण, बी, ए आनर्स, आयुर्वेदरत्न, चण्डीगढ।

तुलसी बुबई
(*OCIMUM BASILICUM*)

तुलसी के ही कुल (Labiatae) की इस वनस्पति वर्षायु के पौधे सीधे, मृदु, बहुशाखायुक्त २-३ फीट ऊचे, स्निग्ध, सुगंधित, तना तथा शाखाओ का रग हरा या जामुनी रग की आभायुक्त; पत्र–१-३ इंच लम्बे, तीक्ष्ण, चिकने, हरे, अखडित कुछ दानेदार, मीठी प्रिय गधवाले,

पत्रवृन्त—१/२–१ इंच लम्बे, फूल–गोल, श्वेत, बैंगनी रंग के गुच्छो मे बहुनुगविन मजरी २–४ इच तक लम्बी, बीज–छोटे, १/१६–१/१२ इच लम्बे, अण्डाकृति, एक ओर को थोटे उभरे हुए, दूसरी ओर चपटे, गहरे काले वर्ण के होते हैं। बीजो मे सुगध नही होती, स्वाद मे तेलिया व कुछ चरपरे से होते हैं। पानी में बीजों को भिगोने पर लुआब बहुत निकलता है। इन्हे 'तुख्म रैहा या तुख्म शर्बती' कहते हैं। कहीं २ लोकमारी भी कहते है।

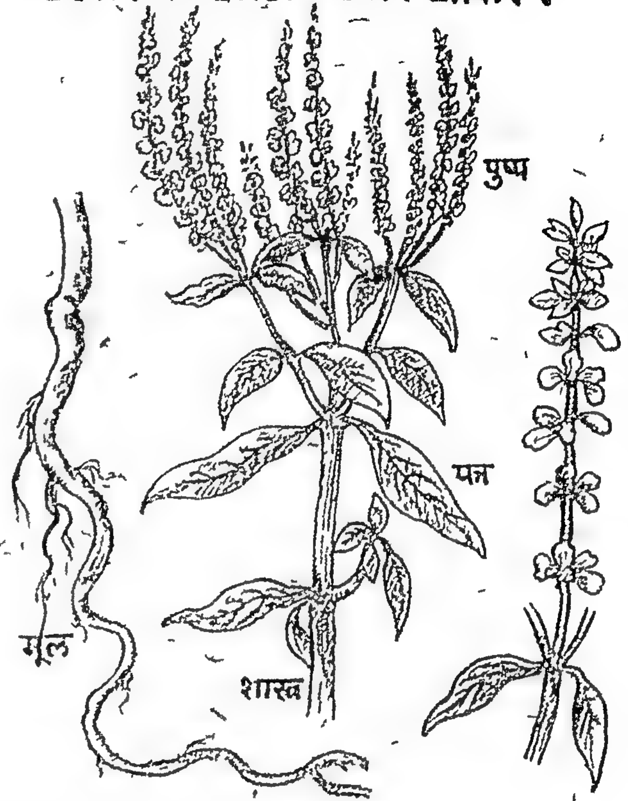
कोई २ इसे ही वन तुलसी, तथा मरुवा मानते हैं। किन्तु यह इन से कुछ भिन्न है। आगे के प्रकरणो मे वन तुलसी, मरुवा आदि देखें। वैसे तो फूल और शाखाओ आदि के भेद से तुलसी की कई जातिया है ही। इसके प्राय: रोमश क्षुप १-२ फुट ऊंचे बहुत पाये जाते हैं।

यह पशिया, सिंध देश व दक्षिण पूर्व एशिया का मूल द्रव्य है। किन्तु भारत के उष्ण प्रदेशो मे प्राय. सर्वत्र बाग, बगीचो में बोई जाती है। सिंध, पजाब आदि देशो के कम ऊंचे पहाडो पर यह निसर्गत उपजती है। बंगाल मे यह बोई जाती है। बम्बई मे इसके पौधो का विक्रय सैरबा (Salba) नाम से होता है। वहा मुसलमान प्रति शुक्रवार को इसे कब्रो पर चढाते हैं।

जैसे हम श्वेत या श्यामा तुलसी को बहुत मान्यता देते है। वैसे ही इसे मुस्लिम लोग विशेष मानते हैं। धर्म-कर्मों मे तथा विवाहोत्सव मे एवं दु ख के अवसरो मे भी इसका प्रयोग करते हैं। तथा अपने घरो मे मस्जिद, कब्रिस्तान मे इसे लगाते हैं। उनके सामाजिक कार्यों मे इसकी शाखाए अवश्य रक्खी जाती है। इसके पौधो को घर मे लाकर लटका देने से मक्खी, मच्छर आदि का विशेष उपद्रव नही होने पाता। सूखने पर इसकी गन्ध बढ़ जाती है।

भावमिश्र ने इसे ही 'वनतुलसी' मानकर, जिसके पुष्प श्वेत होते है, उसे-अर्जक, जिसके कृष्ण (नीलाभ या बैंगनी) होते हैं, उसे काली, कठिञ्ज या कुठेरक, जिसके पत्र वट (बरगद) पत्र जैसे; किन्तु छोटे होते है उसे वट पत्र, इस प्रकार इसके तीन भेदो का उल्लेख किया है।

तुलसी बबुई (न्याज़बो)
OCIMUM BASILICUM LINN.



नाम—

सं.-विश्वातुलसी, बर्बरी, वन तुलसी सुरभी इ०। हि०-बुबई, बबई, बबरी, बाबुल, रीहा, मालतुलसी, सबजा, ममरी, नियाजबो इ०। म०-सबजा। गु०-सब्जा, उमारी। ब.-बाबुईतुलसी। अं.-स्वीटबेसिल [Sweet Basil]। लै०-ओसिमम बेसिलिकम; ओ एनिसेटम [O. Anisatum]।

नोट-फूल आने के बाद, पौधे एकत्र कर अच्छी तरह शुष्क कर सूखे स्थान पर रखने से वे बहुत दिनों तक विकृत नहीं होते।

रासायनिक सघटन—

पत्तो को पानी के साथ वाष्पीकरण (Distill) करने से पीताभ, हरितवर्ण का उडनशील, पानी से भी हल्का, तीव्र गध वाला तैल प्राप्त होता है, जो रखा रहने पर स्फटिक जैसा ठोस हो जाता है। इसे अजगधा कपूर (Basil Camphor) कहते है इस तैल मे एक प्रकार का तारपीन (Terpene) होता है। जिसे ओसिमीन

(Ocimine) कहते है। बीजो मे पिच्छिल द्रव्य प्रचुर परिमाण मे होता है।

प्रयोज्य अग—पत्र, बीज, मूल, फूल एव पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कटुविपाक, उष्ण-वीर्य, कफवातशामक, पित्तवर्धक, रोचन, दीपन, विदाही, वातानुलोमन, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, रक्तशोधक, कफनि-सारक, मूत्रल, आर्त्तवजनन, स्वेदल व ज्वरघ्न है, व अरुचि, अग्निमाद्य, विष्टभ, कास श्वास, शोथ कण्डू आदि त्वग्दोषो मे उपयोगी है।

पत्र—वेदनास्थापन, शोथहर, शिरोविरेचन हैं। इनमे मसाले जैसी तीव्र सुगध होने से, इन्हे मसालो मे डालते हैं। इनकी चटनी भी बनाते है।

शोथ-वेदनायुक्त स्थानो मे इनका लेप करते हैं। मूर्छा, शिरोरोग व पीनस मे इनका नस्य देते है।

नकसीर मे—पत्र-रस नाक मे टपकाते है। बच्चो के गले के विकारो मे एव कुक्कुर खासी मे—पत्र-रस मे शहद मिला गरम कर चटाते हैं। दाह तथा बिच्छू के दश पर—पत्र-रस लगाते है। कर्णपीड़ा एव कुछ कम सुनने पर—पत्र-रस को कान मे टपकाते हैं। अजीर्ण, उदरशूल एव उदरकृमिनाशार्थ-पत्र-स्वरस पिलाते है। आध्मान मे इसे पिलाने से उदरवायु निकल जाती है तथा रोगी सुविधा से सास ले सकता है। विषमज्वर मे—पत्र-रस मे अदरख, सोठ या काली-मिर्च का चूर्ण मिला, ज्वर की विरामअवस्था मे देते हैं। उदरशूल मे—पत्र-रस को शक्कर के साथ भी देते हैं। वातनाडियो के शूलो में पत्तो का क्वाथ दिया जाता है। जोडो की पीडा-सधिवात में पत्र का हिम, शीत निर्यास या फाट देते है। मोच पर—पत्र-रस मलते हैं। दाद पर—पत्र-रस के लगाने से लाभ होता है। (दिन में कई बार लगावें)। दूषित व्रणो मे कृमिनाशार्थ-शुष्क पत्तो का चूर्ण छिडकते हैं। दूषित व्रण एव नाडीव्रण (नासूर) पर—पत्रो की पुल्टिस बना कर लगाते है। नेत्राभिष्यन्द पर (आख आने पर)—पत्र-रस, नेत्रबिन्दु की तरह नेत्रो में डालने से आराम होता है। अग्निदग्ध पर—पत्र-रस लगाते है। दत-कृमि—नाशार्थ—इसके पत्र-रस को कान मे डालते हैं।

(१) ज्वरो पर—पत्र २१, छोटी पीपल ३ नग, कपूर १ रत्ती लेकर, ५ तो पानी मे पीस कर, गरम कर, उसमे १ तो, शक्कर मिलाकर प्रात साय इसी प्रकार बनाकर सेवन से, ज्वर नष्ट होता है।

कासयुक्त ज्वर हो, तो उक्त फाट मे कपूर के स्थान पर लवग ७ नग मिलावें तथा शक्कर उक्त प्रमाण मे मिला, प्रात साय सेवन करे।

(२) जीर्ण ज्वर पर—पत्ते ५ तो अतीस, १ तो कपूर १ तो, कालीमिर्च ६ मा लेकर पानी से महीन पीस कर मटर जैसी गोलिया बना छाया-शुष्क कर रक्खे। ४-४ घटे से १-१ गोली दिन मे ४ बार मिश्री मिलाकर सेवन करे, तथा ऊपर से गाय या बकरी का गरम दूध १० तो तक पीवे। जीर्ण ज्वर दूर होता है।

जीर्णज्वरी को पत्र—क्वाथ से स्नान भी करावें। विधि—पत्र डठल सहित १० तो लेकर ५ सेर पानी मे उबाल ले। तथा ३ मा कपूर मिला गरम-गरम स्नान करावे तो अस्थिगत ज्वर भी निकल जाता है। साथ ही उक्त गोलियो का भी सेवन जारी रक्खे। १ मास मे पुराने से पुराना ज्वर दूर होता है।

जिन बुखारो को चढे हुए कुछ दिन ही हो गये हो या ऐसे ज्वर जिनमे शरीर टूटता हो, तथा अगो मे वेदना होती हो, उनमे पत्र-स्वरस को गरम कर पिलाने या इसके पचाङ्ग के क्वाथ को पिलाने से पसीना आकर रोगी को आराम मिलता है।

(३) आत्र के जीर्ण विकारो पर—इसके ताजे पत्ते तथा अदरख या सोठ २॥—२॥ तो. मिलाकर अच्छी तरह पीस कर, ४८ गोलिया बना, प्रात साय पानी के साथ दो दो गोलिया देते है।

(४) मूत्र एव आर्त्तव-प्रवर्त्तनार्थ—पत्र-स्वरस को उबाल के छानकर पिलाते हैं। इससे आमाशय को भी बल मिलता है।

(५) बालको के सूखारोग पर—पत्र-स्वरस ५ तो. मे कछुवा का खपरा, अतीस, वायविडग ६-६ मा., हीग

कच्ची १॥ मा, कपूर देशी ३ मा. लेकर प्रथम कछुवा के खपरे को पत्र-रस मे घिस कर, उसमे उक्त द्रव्य तथा घोघा की भस्म १ तो. मिलाकर बच्चे को दिन रात मे ४ बार पिलावें। अवश्य लाभ होता है।

घोघा तालावो मे बहुत होते है, उन्हे जिन्दा पकड कर मिट्टी की हाडी मे १०-१२ रखकर, गजपुट मे फूंक दे तथा इसकी पत्तियो को ताजी हरी पीस कर टिकिया बना, सिर पर तालु के गड्ढे मे, थोडा गुड रख कर ऊपर से उक्त टिकिया रख कर, कपडे से कस दें, तो जब तक सूखा रोग है, गुड गायब हो जायगा। जब गुड गायब न हो, तो जान ले कि सूखा रोग दूर हो गया।

(६) पीनस पर--पत्र-स्वरस १ तो कपूर १ मा एकत्र घोट कर प्रात साय ५-५ बूद नाक मे टपकाते है।

बीज---स्निग्ध, मधुर, कसैले, वातपित्तशामक, स्नेहन, स्तभन व रक्तशोधक हैं। वनतुलसी के बीजों की अपेक्षा ये अधिक शीतवीर्य हैं। तृषा, दाह, शोथ, सुजाक वाजीकरण, अतिसार, जीर्णातिसार आदि मे इनका प्रयोग किया जाता है।

जीर्ण मलबन्ध (कब्जी) मे इनका फाण्ट देते है- या शर्बत के साथ इनका घोल पिलाया जाता है। आत्र के क्षोभ की शाति के लिये इनका प्रयोग ईसब गोल की तरह किया जाता हैं। बीजो को (४ से ८ -मा० तक) थोडे से पानी मे भिगोकर, इनके लुआब या शीतनिर्यास मे खाड मिलाकर प्रवाहिका, अतिसार, विबन्धक, तेज पदार्थो के भक्षण से हुए आत्रक्षोभ आदि मे यह पिलाया या खिलाया जाता है। यह प्रयोग रक्तार्श मे भी लाभकारी है। छोटे बालको को ४ से ८ रत्ती तक बीजो का चूर्ण शर्बत के साथ देते रहने से मरोड, अतिसार विशेषत दन्तोदद्भव की पेचिश पर लाभ होता है। कफप्रधान रोगो व ज्वर मे बीजो का शर्बत बना कर देते हैं, इससे पेशाब साफ होता है। सुजाक या मूत्र-सस्थान के विकारो मे तथा मूत्राशय की शोथ मे उक्त प्रकार से बनाया हुआ बीजो का शीतनिर्यास या शर्बत विशेष लाभदायक है। वाजीकरणार्थ बीजो का चूर्ण ४ से ११ मा० की मात्रा मे दिया जाता है। प्रसवोत्तरकालीन वेदना की शांति के लिये इनका शीत-निर्यास दिया जाता है। दूषित व्रणो एव पाददारी पर लगाये जाने वाले लेपो मे बीजो को डालते हैं। दूषित व्रणो एव नासूरो पर इनकी पुल्टिस लगाते हैं। व्रण-शोथ पर लेप किया जाता है। बीजो के लसदार रस को नेत्रो मे टपकाते रहने से नेत्र-ज्योति बढती है। ये वीर्य को गाढा एव खुश्क करते है, अत स्तभन के योगो मे ये डाले जाते हैं। दाह पर-बीज १ तो० तक रात्रि के समय शीत जल मे भिगोकर प्रात उसमे ५--६ तो० तक दूध व थोडी शक्कर मिलाकर पिलाते है।

फूल-उत्तेजक, अग्निदीपक, मूत्रल, एव शाति-दायक है।

मूल या जड़--ज्वरघ्न है। विशेषत बालको के आत्र-विकारो मे उपयोगी है। तथा विषाक्त अवस्थाओ मे इसका प्रयोग होता है।

नोटः मात्रा-पत्र क्वाथ---५ तो० तक। बीज-१ मा० से ७ मा० तक। पत्र चूर्ण--६ मा० से १ तो० तक। पत्र-लौंग के प्रतिनिधि रूप मे बरते जाते है।

अधिक मात्रा मे ये दृष्टि दौर्बल्य-कारक है। हानि-निवारणार्थ-सिरका, खीरा या कुलफा का सेवन करते है।

इसके अभाव मे कलोंजी-प्रतिनिधि रूप मे ली जाती हैं।[1]

---

[1] इस तुलसी की ही एक जाति विशेष को यूनानी मे 'नगंधबाबरी' कहते हैं। यह तृष्णा व वातनाशक है। सुजाक मे इसके चूर्ण को दही में मिला पिलाते हैं। विषम ज्वर मे इसे दूध के साथ देते हैं। अर्श शोथ पर--इसे १ तो० कालीमिर्च १० दाने के साथ पीस कर ३ दिन सेवन कराते हैं। जीर्ण ज्वर मे इसे १ मा० की मात्रा में, नींबू-पत्र व कालीमिर्च के साथ पीस कर देते है। रक्त--विकार में इसे पित्तपापड़ा के साथ देते हैं। श्वेत-कुष्ठ पर-इसे ७ मा० की मात्रा में १५ दाने कालीमिर्च के साथ पीस, २० दिन सेवन कराते है। (व० च०)

तुलसी अर्जकी (वन तुलसी) (OCIMUM-CANUM)

यह उक्त ववई तुलसी का ही एक जगली भेद है। पौधा–बहुशाखी, छोटा, सीधा १॥–२ फुट ऊ चा, सुमधुर किंतु तेज गन्ध-युक्त, पत्र– कटावदार किनारे वाले, पुष्प–श्वेत रग के, चक्राकार गुच्छो मे, ग्रास-पास लगे हुए, प्रति गुच्छ मे प्राय ६ पुष्प होते है। बीज–किंचित् गुलाबी आभायुक्त काले-रग के, पोस्त बीज (खस-खस) के आकार वाले होते हैं।

वास्तव मे तो यह उक्त वर्णित ववई-तुलसी है, तथा इसीलिये भावमिश्रजी ने इसे ववई (बर्बरी) के अन्तर्गत ही माना है, किन्तु-यह जगली शुष्क वातावरण मे उगने से, उससे भिन्न नाम, रूपादि वाली हो गई है। इसके पत्र एव विशेषत पुष्प ववई से बहुत छोटे होते हैं। ववई (वर्बरी) की अपेक्षा इस पर छोटे छोटे खुरदरे रोम अधिक छाये रहते हैं। तथा इसकी गन्ध बहुत तेज होती है। इसके पत्रादि अधिक सूखने पर शीघ्र ही चूर-चूर हो जाते हैं, किंतु ववई के पत्रादि सूखने पर भी शीघ्र चूरा नही होते।

यह तुलसी वगाल, विहार, आसाम, मध्यभारत से दक्षिण (South Deccan) मे सीलोन तक के मैदानो मे, तथा छोटे पहाडो पर अधिक पायी जाती है। बाग बगीचो के आस-पास प्राय जंगली या अर्द्ध जगली-अवस्था मे बहुत उगती है। पजाव के मैदानो के सूखे प्रदेशो मे निसर्गत जगली स्वय उत्पन्न होती है। देहली के आस पास पहाड़ियो पर बहुतायत से उगी हुई है– (श्री रामेशवेदी की तुलसी पुस्तक से) इसके दो भेद हैं, काली व श्वेत। श्वेत का वर्णन तुलसी रामा मे देखें।

नाम–

स०–अर्जका, अर्जकी, क्षुद्र तुलसी, उग्रगधा, गभीरा (गभीर रोगों में उपयोगी होने से), तुगी (पुष्प मंजरी चक्राकार बड़ी होने से), खरपुष्पा (पुष्प, पत्रादि विशेष रोमश होने से), इ०। हि०–तुलसी अर्जकी, बन-तुलसी, काली तुलसी, बाबरी इ०। म०–रान-तुलस। बं०–बाबुई तुलसी। अ०–होरी बेसिल (Hoary asil)। ले०–ओसिमम केनम, ओ० एल्वम (O Album)।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, बीज, पुष्प, मूल एव पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर, रोचक, हृद्य, पित्तवर्द्धक, स्वेदल, कास-श्वास-हर व ज्वरघ्न है। क्षय, आमवात, नेत्र रोगादि मे प्रयुक्त होती है। शेष गुणधर्म व प्रयोग ववई या घर की सफेद तुलसी जैसे ही है।

पत्र-प्रयोग—

चर्म-रोगो पर—ताजे पत्रो को पीस कर लेप करते हैं। वात-शोथ मे–रोगी को पत्र-क्वाथ का वफारा देते हैं, पसीना आकर शोथ मे लाभ होता है। फिर रोगी को धूप मे बैठाकर गरम जल से स्नान कराते हैं। सुजाक की प्रारम्भिक अवस्था मे—पत्तो का ताजा रस पिलाते हैं। कास में पत्र-स्वरस मे समभाग अडूसा-पत्र-स्वरस मिला सेवन कराते हैं। श्वास में—पत्र-स्वरस शहद मिला कर चटाते हैं। अपस्मार मे पत्र-रस मे सेंधा नमक मिला नाक मे टपकाते हैं। पार्श्व-पीडा मे—पत्र-स्वरस मे, अद्रक-स्वरस तथा पोहकर-मूल का चूर्ण मिला, गरम कर लेप करते हैं। वाधिर्य मे—पत्र-स्वरस को छानकर कान मे डालते हैं। दन्त-कृमि मे—पत्र-स्वरस को कान मे छोडते है, दात के कीडे नष्ट होते हैं। उन्माद (वातज या कफज) मे पत्तियो को खिलाते, सु घाते तथा स्वरस लगाते हैं।

(१) ज्वरो पर—शीताङ्ग, ज्वर मे, हाथ-पैरो के ठडे पड जाने पर–पत्र-स्वरस को या कल्क को, हाथ-पैरो पर, उ गलियो एव नखो पर लगाते हैं। अथवा—इसके कल्क के साथ पत्र-स्वरस मिला, तैल सिद्ध कर इस तैल की मालिश की जाती है।

(२) विषम-ज्वर पर—पत्र ३ नग, काली मिर्च २ नग लेकर पानी के साथ पीस शहद मिला कर, या विना शहद के, किंचित् उष्ण कर ज्वर वेग के पूर्व ही ५ या ६ वार चटाते हैं।

आन्त्रिक-ज्वर (Typhoid), मसूरिका आदि विस्फोटक ज्वरो मे—आगे विशिष्ट योगो मे 'इन्दुकला वटी' देखें।



(३) विषूचिका (हैजा) पर—इसके पत्तों के साथ करञ्ज-बीजो की गिरी, नीम की छाल, अपामार्ग के बीज, गिलोय और इन्द्र जौ का मिश्रित जौकुट चूर्ण २ तो० लेकर, ६४ तो० जल मे अर्द्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर, छानकर, थोडा-थोडा बार-बार पिलाते रहने से बहुत तेज हैजा भी ठीक हो जाता है। (चक्रदत्त)

(४) अतिसार, आमातिसार एव ग्रहणी मे—इसके पत्तो के फाण्ट मे जायफल का चूर्ण मिला कर पिलाते हैं। आमातिसार मे—उक्त पत्र-फाण्ट मे, घृत मे भुनी हुई सौफ का चूर्ण और मिश्री मिला कर सेवन कराते हैं। ग्रहणी-विकार मे—पत्र-चूर्ण मे समभाग मिश्री मिला सेवन करते है।

(५) अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि उदर-विकारो पर—पत्र-स्वरस, सोठ-चूर्ण १-१ तो० लेकर दोनो को घोटकर, उसमे पुराना गुड २ तो० अच्छी तरह मर्दन कर छोटे बेर जैसी गोलिया बना, दिन-रात मे ३ बार सेवन से अजीर्ण, मन्दाग्नि तथा अन्यान्य उदर-विकार नष्ट होते हैं।

मन्दाग्नि के निवारणार्थ—इसके पत्र ४ मा० और काली मिर्च ५ या ७ नग लेकर, थोडे पानी के साथ पीसकर पिलाते है।

(६) सूतिका-रोग मे—१ पाव इसके पत्रो के कल्क के साथ, १ सेर मूर्च्छित तिल-तैल को सिद्ध कर मालिश करने से सूतिका की शारीरिक पीडा आदि की शाति होती है।

(७) नेत्र-विकारो पर—पत्र-रस को नेत्रो मे टपकाते है। नेत्राभिष्यन्द हो तो, पत्र-स्वरस मे शहद मिला कर आजने से शीघ्र लाभ होता है। (शोढल)

बीज—

ग्राही, पौष्टिक, पानी मे डालने से लुआबदार, प्रतिश्याय नाशक, सधि-पीडा आदि पर उपयोगी है।

(८) गर्भिणी स्त्री की छाती तथा पेट की खुजली पर बीजो को पीस कर मर्दन या लेप करने से लाभ होता है।[1]

(९) कोष्ठ की उष्णता एव मूत्र-दाह पर—बीजो को रात्रि के समय शीत जल मे भिगो, प्रात उसमे गाय का ताजा दूध १ पाव दूध तथा मिश्री २ तो० मिला, लकडी से हिलोर कर (हाथो से नही) पिलावे। इससे मूत्राघात मे भी लाभ होता है। इसे कुछ दिन सेवन से मूत्र एव वीर्य-सम्बन्धी अन्य रोग भी नष्ट होते है।

शारीरिक दाह की शाति के लिये बीजो के चूर्ण का सेवन करने से, या इसके लुआब मे शर्करा मिला पिलाने से दाह शमन होता है।

(१०) अतिसार पर—बीज भाग १ और ईसबगोल ४ भाग, दोनो के चूर्ण मे समभाग सौफ का चूर्ण मिला, इन तीनो का जितना वजन हो उतनी ही उसमे शक्कर मिला, नित्य १ तो० तक जल या दूध के साथ शक्ति अनुसार सेवन करे। इससे आन्त्रिक उष्णता का भी शमन होता है।

रक्त-प्रवाहिका पर—बीजो को पानी मे भिगोकर मिश्री या शक्कर का चूर्ण मिला, दिन मे दो बार देवें।

(११) वृक्क के रोगो पर—बीजो का फाण्ट सेवन कराते है।

व्रणो पर—बीजो को पीसकर गरम कर बाधते हैं। इससे व्रणशोथ मे भी लाभ होता है।

फूल—

सिर-दर्द पर—शुष्क फूलो को काली मिर्च के साथ, कोयलो की आग पर छोड़ने से जो धूम्र उठता है, उसे सुघाते हैं, इससे प्रतिश्याय मे भी लाभ होता है।

मूल—

अपस्मार की दशा मे—कठान्तर्गत कफ को निकालने के लिये, इसकी जड का क्वाथ पिलाते है।

पचाङ्ग—

ऊर्ध्वाङ्ग-वात, अर्दित-वात, ग्रन्थि-वात तथा पारद-दोषजनित वात पर—इसके पचाङ्ग के क्वाथ का बफारा (बाष्प-स्वेद) देते है।

[1] गर्भावस्था मे पेट की दीवार के खिच जाने से त्वचा की निचली रतह फट जाती है, जिससे पेट पर दरार सी दिखाई देती हैं। ये दरारें उर:स्थल के नीचे पड जाती हैं, इन्हे किक्किस (Stria gravidarum) कहते हैं। इनमें खुजली बहुत होती है। उस पर पत्रों—को या बीजों को पीस कर मर्दन या लेप करते हैं।

दीर्घकालीन ज्वर या अन्य रोगों की अवस्था में, खाट पर पड़े रहने से शय्याव्रण हो जाते हैं, उन्हें दूर करने के लिये, क्वाथ का स्पज करते हुए, पत्र के महीन चूर्ण को बुरकते हैं।

अतिसार में पचाङ्ग का रस उपयोगी माना जाता है।

विशिष्ट योग—

(१) इन्दुकला वटिका—आन्त्रिक-ज्वर तथा मसूरिका, विस्फोटक एव लोहित-ज्वर तथा सर्व प्रकार के व्रणों में उपयोगी है।

इसके पचाङ्ग के रस या पत्र-रस मे शिलाजीत, लोह-भस्म और स्वर्ण भस्म (समभाग) मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलिया छायाशुष्क कर रक्खें।

इसके प्रयोग से आन्त्रिक (Typhoid) ज्वर मे विशेष लाभ होता है। यह ½ से १ रत्ती की मात्रा में, दिन मे २ वार शहद के साथ चटायी जाती है। इनमें मुक्ता मिलाकर देने से निरन्तर रहने वाला ज्वर उतर जाता है। (भै० रत्नावली)

(२) सैंधवादि चूर्ण—क्षय पर—इसके ४ तो० पत्तों के साथ सैंधा नमक, सोंठ कालीमिर्च तथा श्वेत जीरा १-१ तो०, काला नमक व धनिया २-२ तो लेकर महीन चूर्ण कर, उसमे १२ तो० खाड मिला ले।

इस चूर्ण मे अम्लवेतस या आम्रातक तथा अनार-दाना ४–४ तो० मिला लेने से यह स्वादिष्ट बन जाता है। इसे ४ मा० तक की मात्रा मे क्षय के रोगियों को खाने-पीने के पदार्थों मे प्रयोग कराते हैं। इससे रोगी की भोजन मे रुचि बढ़ती व जठराग्नि प्रदीप्त होती है। खासी, सास लेने मे कठिनाई एव पसलियों के दर्द को दूर कर यह रोगी को बल प्रदान करता है।

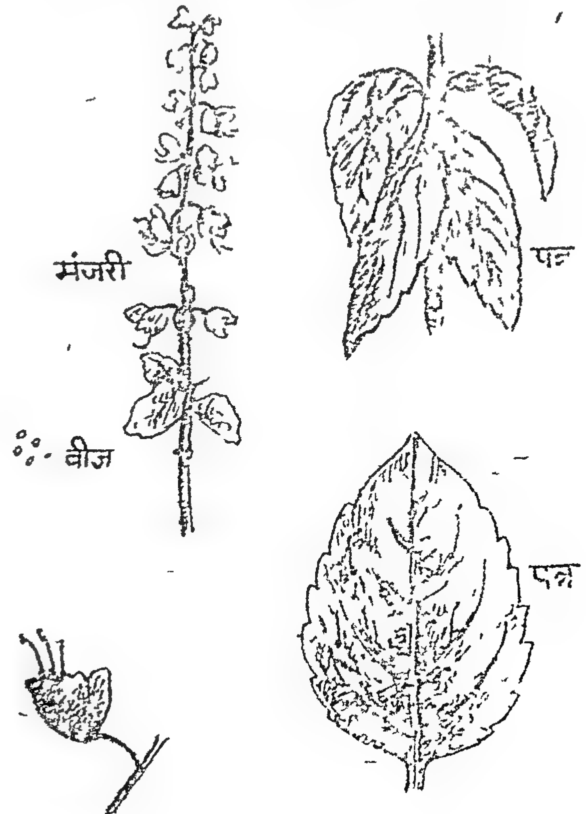
(च० चि० अ० ११)

नोट—इसकी मात्रा आदि का विचार तुलसी-बबई के समान ही है।

तुलसी रामा

(OCIMUM GRATISSIMUM)

यह उक्त तुलसी-वर्ग की ही श्वेत जाति है। इसके पौधे उक्त वर्णित सब तुलसियों की अपेक्षा बड़े १-६ फुट ऊँचे, बहुशाखायुक्त, झाड़ीदार होते हैं। तना या काड—चौकोर, रोमश, शाखाएं—तूल रोमश, पत्र—खुरदरे, २–४ इञ्च लम्बे दन्तदार, बड़े-बड़े रोमश एव सब तुलसियों की अपेक्षा अधिक सुगंधित, पुष्प-लम्बे तुर्रों या मजरियों मे श्वेत, पीताभ बहुत छोटे-छोटे; बीज—हरिताभ पीतवर्ण के, तिकोने, लगभग ½ इञ्च लम्बे, जीरे के आकार के, तथा मूल—लम्बी एवं सुगन्धित होती है। वर्षा व शीत ऋतु मे पुष्प आते हैं। शीतकाल मे बीज पक जाते हैं।



नोट—कोई-कोई इसे ही मरुवक या मरुवा मानते है। किन्तु मरुवा इससे भिन्न है। आगे तुलसी-मरुवा का प्रकरण देखिये।

यह सीलोन तथा दक्षिणी सामुद्रिक द्वीपो की निवासिनी है। किंतु बंगाल, नेपाल तथा भारत के दक्षिण-प्रदेशो के जलासन्न स्थानों में नैसर्गिक होती तथा बोई भी जाती है।

नाम—

सं०-अजेका, अमरी, राम-तुलसी। हिं०-तुलसी-रामा, राम तुलसी, बंजारी, अनवला इ०। म०-मालितुलस, अजवला इ०। गु०-अजवला, गुम्गेले। बं०-राम-तुलसी। अं०-श्रबी बेसिल (Shrubby basil)। लै०-ओसिमम ग्रेटिसिमम; ओ० सायट्रोनेटम (O Citronatum)।

रासायनिक संघटन—

इसमें पतला, पीला उड़नशील तैल, तथा थामयल (Thymol), यूजीनाल (Eugenol), मेथिल चेविओल (Methyl Chavicol) पाये जाते हैं।

प्रयोज्याग—पत्र, बीज तथा पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, उष्णवीर्य, उत्तेजक, मृदुकर, मूत्रल, रोचक, पित्तकर, वातानुलोमन, रजोरोधक व यकृदामाशय को बलदायक है तथा वात, कफ, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, मदाग्नि, कास, नेत्र-रोग, व्रण आदि पर प्रयोजित होती है।

जहां इस तुलसी की विपुलता है, वहा इसी का उपयोग साधारण तुलसी जैसा ही, सर्व कार्यों मे किया जाता है। खासी के मिश्रणो मे यह सामान्यत कफनिसारकद्रव्यो के साथ मिलायी जाती है।

पत्र—

सुजाक, मूत्रदाह, तथा प्रदर रोग पर—पत्र-स्वरस को चावल के धोवन के साथ पिलाते हैं। उदर-शूल मे—पत्र-स्वरस देते है। वीर्य की निर्बलता मे—पत्तो का क्वाथ या फाण्ट सेवन कराते है। मंदाग्नि में—पत्र स्वरस देते है, इससे वात और रक्त की भी शुद्धि होती है। आध्मान मे—पत्र-स्वरस मे साभर नमक मिलाकर पिलाते है। यकृत प्लीहा और अर्श-विकारो मे—स्वरस पिलाते तथा लगाते हैं। क्लान्ति (अनायास थकावट Asthenia) मे—पत्तो का फाण्ट बनाकर उसमे गोदुग्ध और शक्कर मिला पिलाते है। बालग्रह व पीनस पर—शुष्क पत्र-चूर्ण का नस्य देते है। घ्राण-दुर्गन्धि मे—पत्र-स्वरस का नस्य देते है।

(१) ग्रन्थिक (प्लेग आदि) ज्वरो पर—इसकी पत्तियो के साथ दवना (आगे दवना देखे) पत्र तथा छोटी पीपल का चूर्ण समभाग १-१ तो. और शुद्ध कपूर ३ मा. लेकर सबको एकत्र कर नीम की कोमल पत्तियो के स्वरस के साथ खरल कर ४-४ रत्ती की गोलिया बनाले। साधारण ज्वर मे ३-३ घंटे पर ४ गोली देवें, तथा तीव्र ज्वर मे १-२ घंटे पर ४ गोलिया देवें। इससे ग्रन्थिक ज्वर नष्ट होता है। (तु. विज्ञान)

चढ़े हुए ज्वर को उतारने के लिये पत्र-स्वरस मे काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पिलाने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

(२) वमन (वातज या पित्तज)—पत्र-स्वरस १ तो मे छोटी इलायची-दानो का चूर्ण १ मा मिलाकर पिलाते है।

(३) वात-रोगो पर—पत्र-स्वरस १ तो. मे काली मिर्च-चूर्ण १ मा तथा गोघृत ३ मा मिला सेवन कराते है।

(४) बालग्रह (बच्चो का आक्षेप (Infantile convulsions) पर—पत्र-चूर्ण के साथ मीठा वच का चूर्ण समभाग मिला, शहद से चटाते है।

बीज—पुष्टिकर होने से, पौष्टिक पदार्थों के रूप मे खाये जाते है। इससे सिरदर्द तथा वातनाडियो की पीडा मे भी लाभ होता है।

(५) स्तंभनार्थ—बीज-चूर्ण १-४ रत्ती तक पान मे रखकर खाते है। वीर्य-स्तभन होता है।

(६) सुजाक, मूत्रदाह आदि मूत्र-सस्थान के विकारो पर—बीजों का फाट या शीत-निर्यास २॥ तो. तक पिलाते है।

(७) बालको के वमन पर—बीज चूर्ण शहद से चटाते हैं।

मूल—इसकी सुगंधित जड का उपयोग वेदनाहर

मरहमो (Balms)मे किया जाता है। जड को पत्थर पर पीसकर वेदना-स्थान पर लगाने मे भी लाभ होता है।

पचाग--

(८) गठियावात या पक्षाघात पर--इसके पचाग के क्वाथ मे बफारा (वाष्प-स्वेद) देते हैं, तथा इसी क्वाथ से रुग्ण-स्थान का प्रक्षालन भी किया जाता है।

खटमलों को भगाने के लिये पचाङ्ग के रस को चारपाई आदि मे डाला जाता है।

नोट-मात्रा--बीज का या पत्र का क्वाथ ५-१० तो. तक। चूर्ण १-६ माशा तक। अतिमात्रा मे--यह सिर-दर्द पैदा करती है। निवारणार्थ-गुलबनफ्शा और सिकंजबीन देते हैं।

तुलसी-मरुवा

[Origanum Majorana]

यह उक्त राम तुलसी का ही एक भेद विशेष है। क्षुप--१-२ फुट तक ऊचे, पत्र-मेथी-पत्र सदृश, किंतु लम्बे अण्डाकार, किंचित् लालिमायुक्त श्वेत सुगधित, पुष्प-मजरी मे उक्त तुलसी जैसे ही होते हैं।

औषधियो मे प्राय उक्त राम तुलसी ही ली जाती है। यह अन्य कार्यो मे उपयुक्त है।

यह हिमालय के सम शीतोष्ण प्रदेशो मे तथा पाश्चात्य एशिया मे प्रचुरता से होती है। यह प्राय भारत के बाग वाटिकाओ मे सुगध के लिये बोई जाती है।

नाम--

सं०--मरुवक, मारुत, फणिज्जक, समीरण, मरु। हि०--तुलसी मरुवा, गेदरेत। म०--मरवा। गु०--मरवो। बं०--मरुवा, सुर, गंधतुलसी। अं०--स्वीट मारजोरम (Sweet Marjoram) लै०--ओरीगनम मारजोराना, ओ व्हल्गेर (O Vulgare) ओसिमसकयारियो फिलेटम (Ocimum Caryophilatum)

रासायनिक सघटन--

इसमे एक उड़नशील तैल (Oleum Marjoranae) होता है।

गुणधर्म व प्रयोग--

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, तीक्ष्ण, हृद्य, पित्तजनक, स्वेदल व आर्त्तव-प्रवर्त्तक है तथा कफ, वात, कुष्ठ, कृमि, रक्तदोष, ज्वर, कण्डू, शूल आदि नाशक है।

पत्र और बीज सकोचक, तीव्र उदर-शूल-नाशक है। इसके प्रयोग प्राय राम तुलसी ही जैसे है।

इसके ताजे पचाग का शीत निर्यास मज्जाततुओ की विकृति से होने वाले मस्तिष्क-शूल मे दिया जाता है तथा इसका सेक और बफारा वेदनायुक्त सूजन, सधिवात आदि पर किया जाता है। विरेचनार्थ--इसका फाट देते है। सरदी से इसके फाट से प्रस्वेद आता है, तथा शरीर मे उत्तेजना होती है। शीत के कारण होने वाला रजोरोध इस फाट से दूर होता है। इसका स्वरस या इसकी राख व्रण-रोपक और वेदना-नाशक है, जीर्ण व्रणो पर विशेष लाभकर है।

तैल--तीव्र उदरशूल, उदर, मस्तक, कर्ण और दातो के शूलो पर तथा सधिवात पर रुग्णस्थानो पर मेथल तेल जैसे ही लगाया जाता है। यह अजीर्ण, मदाग्नि, स्थौल्य एव रजोरोध मे पानी के साथ पिलाया भी जाता है।

नोट-मात्रा तैल की २-५ बूंद।

पचाग-- का फाट--१ से २॥ तोला तक। पजाब की ओर कहीं-कहीं इसका उपयोग पुदीना के सदृश चटनी आदि बनाने मे किया जाता है।

किसी शस्त्र से कट जाने, रगड लग जाने तथा वर्र, बिच्छू आदि के डंक से बने हुए छिद्र मे इसका स्वरस भर देने से, जख्म विषैला (Septic) नहीं होने पाता, तथा विष नहीं चढता। यह उस स्थान के दूषित कृमियो का नाशक है।

(राजमार्त्तण्ड)

तुलसी दवना[1]

(Artimesia Indica)

इसके क्षुप तुलसी से बहुत कुछ रूप आकार में छोटे

---

[1] यह-तुलसी कुल से भिन्न भृंगराज या सेवती-कुल की है। यह अफसतीन विलायती की ही एक जाति विशेष है। (देखे भाग १ में) देशी अफसंतीन है। तथा

वर्षायु, झाड़ीदार १-२ फुट ऊंचे, काड-भूरा, रोमश, सीधा, शाखायें व पत्र-अल्प प्रमाण मे, पत्र व पुष्प उग्रगंधयुक्त, पुष्पमंजरी-चवर के आकार की नीचे मोटी, ऊपर को पतली, पत्र-लम्बे, नोकदार गाजर के पत्र-जैसे वृन्तरहित, मध्य मे दो विभाग युक्त, दोनो ओर रोमश भूरे वर्ण के होते है ।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र पाया जाता है । कही कही बोया भी जाता है । इसकी एक जगली जाति पश्चिमी हिमालय मे ८ से १० हजार फुटकी ऊंचाई तक पाई जाती है ।

नाम—

स०-दमनक, तपोधन, गन्धोत्कट ब्रह्मजट, पुष्पचामर । हि०-दवना, दौना । म.-दवण, रानदवना । गु.-डमरो । बं०-दोना । ले०-आर्टिमिसीया इ डिका, आ. सिवर्सियाना (A Sieversiana)

रासायनिक संघटन—

इसमे एक तिक्त तत्व, हरिताभ कपूरगंधी उडनशील तैल तथा प्रचुर मात्रा मे यवक्षार होता है । यह इसके पौधो की राख कर क्षार विधि से निकाला जाता है ।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, पुष्प, पचाङ्ग, तथा क्षार—

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कषाय, कटु विपाक, उष्ण वीर्य (इसे शीतवीर्य भी माना जाता है ।) दीपन, पाचन, अनुलोमन, पित्तसारक, कटुपौष्टिक, वेदनास्थापन, वातहर, मस्तिष्क पर कपूर जैसी क्रिया वाला, हृदयोत्तेजक शोथहर, रक्तशोधक, कफघ्न, त्रिदोष शामक, मूत्रल, गर्भाशय-सकोचक, ज्वरघ्न, कृमिघ्न है । वात-व्याधि, अग्निमाद्य, विष्टम्भ, आध्मान, उदरशूल, यकृद्विकार, पित्तविकार, हृद्दौर्बल्य, कास, श्वास, रजोरोध, भूतबाधा, शोथ वेदनायुक्त-विकार, एव व्रणशोथ आदि पर इसकी योजना की जाती है । इसका लेप किया जाता है ।

जगली दौना वीर्यस्तम्भक' बल्य तथा आम दोष नाशक है ।

अग्निमाद्य मे इसका स्वरस देते हैं। उदरशूल, अफरा मे पत्र व पुष्पो का चूर्ण देते है, अपानवायु निकलकर वेदना, मलावरोध दूर होता है । मल का रंग-पीला होता है ।

(१) आम ज्वर पर—इसका फाट देते हैं, मूत्र खुल कर होता, स्वेद आकर शात निद्रा आती व पीडा-सह ज्वर दूर होता है ।

(२) कष्टार्त्तव एव रजोरोध पर—इसका अर्क या फाट-पूर्ण-मात्रा में पिलाने से पीडा कम होकर मासिक-धर्म साफ होता है । आवश्यकतानुसार यह फाट—पुन २-३ घटे से दिन मे २-३ बार देते हैं ।

जीर्ण ज्वर के बाद पाडु हो गया हो तो इसका चूर्ण लोह-भस्म के साथ सेवन कराते है । ज्वर सहित पाडु दूर होकर, क्षुधाप्रदीप्त होती है ।

जलोदर, हृदयोदर पर—इसका क्षार ४-८ रत्ती घृत के साथ दिन मे दो बार देते तथा ऊपर से सारिवा का फाट पिलाते है । मूत्र साफ होकर रक्तान्तर्गत अधिक जल को बाहर निकल जाता है ।

कफ-कास मे—क्षार को घृत के साथ चटाते है । उदर-रोगो पर तथा मूत्रकृच्छ्र मे भी इसका क्षार दिया जाता है ।

विस्फोटक-दूषित व्रणो पर—इसका रस लगाने या पुल्टिस बाधते रहने से लाभ होता है, तथा अन्यान्य चर्म-रोगो पर भी लाभकर है।

नोट—जिस स्थान पर इसका पौधा होता है । वहां सर्प नही आने पाता । सर्पदश पर—पशुओं को इसका रस पिलाते तथा मनुष्यों को भी पिलाते हैं ।

मात्रा—फाट के लिए १-२ तोला तक ।

स्वरस—आधा से १ तोला तक । क्वाथ या फाट २-५ तो तक ।

बीज-चूर्ण—१-३ माशे । पत्र-चूर्ण-५-१० रत्ती ।

क्षार—५ से १० रत्ती । अर्क—४ से ८ माशे तक ।

इसके फाट के पीने के बाद दूध या चाय नही पीना चाहिए । अन्यथा शीत पित्त जसे ददोरे शरीर पर उठते है । गरमी के विकारो पर—मरुवा तथा दवना का रस दिया जाता है ।

भावमिश्र जी ने इसे तुलसी के ही प्रकरण मे रक्खा है । अत' हमने भी इसे इसी प्रकरण मे देना उचित समझा है । ध्यान रहे यह नागदौना नहीं है, जैसा कि कई लोग भ्रमवश इसे नागदौना ही मानते हैं। नागदौना तालमूली कुल का है । आगे नागदौना देखें ।

तुलसी-मूत्रल
(Ocimum Grandiflorum)

यह तुलसी कुल का पौधा, १-२ फुट ऊंचा, तथा पत्रादि दवना जैसे होते हैं। यह दक्षिण भारत में, तथा आसाम, बर्मा आदि प्रदेशों में पाया जाता है।

नाम—

हि०-तुलसी-मूत्रल। म०-मूत्री-तुलस। ले०-ओसिमम ग्रेन्डिफ्लोरम, ओ० लांगिफ्लोरम (O Longiflorum) ऑर्थोसिफान स्टेमिन्यूस (Osrthoiphon stamineus) अं०-जावाटी (Java tea)

रासायनिक संघठन—

इसमें एक आर्थोस्फोनिन (Orthosphonin) नामक ग्लूकोसाईड तथा एक प्रभावशाली तेल होता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके प्रयोग से मूत्र खूब खुलकर साफ होता तथा मूत्र सम्बन्धी एवं वृक्क विकारों में विशेष लाभकारी है। उक्त विकारों पर इसके पत्रों की चाय या फांट बनाकर पिलाया जाता है। जननेन्द्रिय के रोगों में यह लाभदायक है।

तुलसी बालंगा (तुख्म बालंगा)
(Lallemantia Royleana)

तुलसी-कुल के ही इसके छोटे बहुशाखी क्षुप होते हैं। पत्र-साधारण तुलसी-जैसे किनारे कटावदार लम्बे, नोकदार, पुष्प-तुलसी की मंजरी जैसी मंजरियों में अनेक लगते हैं। बीज-इसबगोल के जैसे किंतु काले रंग के तिकोने, चिकने, १/८ इंच लम्बे होते हैं। इन्हें तुख्म-बालंगा, तथा कहीं कहीं तुख्म-रेंहा भी कहते हैं। पानी में भिगोने से ये शीघ्र ही चिपचिपे लुआबदार हो जाते हैं। ये बीज भारतवर्ष में प्रायः पर्शिया से तथा मेक्सिको और कैलिफोर्निया से आते हैं, जहां इसके पौधे बहुतायत से पैदा होते हैं।

इसकी ही जाति का एक भारतीय तुलसी का पौधा देहली से पश्चिम की ओर के तथा पंजाब के मैदानों एवं टेकाडियों पर व सिंध में होता है। इसे लेटिन में साल्व्हिया ईजिप्टियाका (Salvia Aegyptiaca) कहते हैं। इसके बीज भी उक्त तुख्म बालंगा के जैसे ही गुणकारी हैं। तथा प्रतिनिधि रूप में ये उपयोग में लाये जाते हैं। ये बीज स्वाद में अलसी (तीसी) जैसे होते हैं।

नाम—

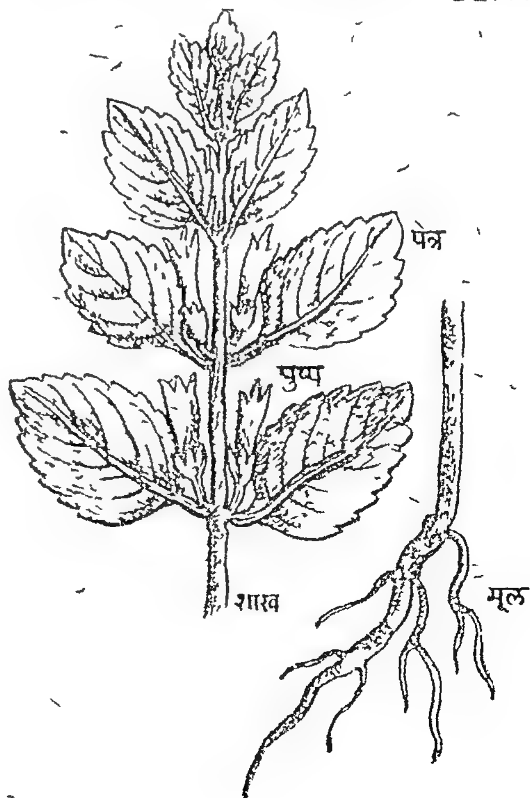
हि०--बालंगा, घारी, घरेई, करसालू, तुख्मबालंगा (मलंगा) म०—वालंगा। बालगू। गु०—तुतमलंगा, तोकमलंगा। ले०-- लालेमेंटिया राय लियना।

इसके बीज ही औषधि-कार्यार्थ लिये जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

बीज संग्राही, पौष्टिक-अतिसार, प्रवाहिका, सुजाक, व रक्तार्श आदि में उपयोगी हैं। ये हृदय की धड़कन, हृद्दौर्बल्य, रक्तातिसार में विशेष प्रयुक्त होते हैं।

तुलसी बालंगा
LALLEMANTIA ROYLEANA BENTH



बीजो को भून कर, जौकुट कर उसमे पानी और शक्कर मिला कर एक पेय पदार्थ बनाया जाता है, जो परम शांति दायक, तृषाहर होता है। व्रण, विद्रधि आदि पर बीजो की पुल्टिस बना कर लगाते हैं। प्रमेह पर—बीजो को ६ मा० की मात्रा मे गोदुग्ध और खाड मिला कर सेवन कराते हे।

नोट-मात्रा-५ ७ मा०। अधिक मात्रा से यह आमाशय को हानिकारक है। हानि-निवारणार्थ चीनी या मिश्री देते है। इसके अभाव में साधारण तुलसी के बीज लिये जाते हैं।

तुलातिपत्ति–दे०–टकारी। तुवरक—दे०–चालमोगरा। तुवरी–दे०–तोरी (सफेद सरसो) तूत—सहतूत। तूत मलगा—तुलसी बालगा।

तून (CEDRELA TOONA)

वटादि वर्ग एव निम्ब-कुल (Meliaceae) के इसके सघन शाखा युक्त, वड़े बडे वृक्ष ६०-७० फुट तक ऊचे, काण्ड का व्यास ६-१० फुट तक, काष्ठ-लाल वर्ण का, नरम, चमकीला, सुगंधित, छाल–½ इच मोटी, गहरे भूरे रग की, जिससे एक प्रकार का निर्यास (गोद) प्राप्त किया जाता है। पत्र–लम्बी सीको पर अभिमुख, नीम-पत्र जैसे, किंतु बहुत बडे, भालाकार, नोकदार लम्बे १–३ फुट तक, वसत मे ये झड जाने पर कोमल पत्रक २–७ इच लम्बे, ¾–३ इच चोडे आते हैं। पुष्प—वसंत मे श्वेत रग के, अच्छे मनोहर, गुच्छो मे, सुगंधित, ¼—१ इच तक लम्बे आते है। फल—लम्बे, लाल रग के झुमकों में मधु जैसे गंध वाले, पकने पर फल के छिलके ५ भागो मे विभक्त हो जाते हे। बीज—पतले, कोणाकार होते हैं।

हिमाचल प्रदेश मे सिंधु नदी से पूर्व की ओर, सिक्किम, बर्मा तथा मध्य एव दक्षिण भारत के पहाडी जगलो मे, बगाल तथा अवध मे भी ये लगाये हुए बहुतायत से पाये जाते है। देहरादून और सहारनपुर के जगलो में ३॥ हजार फीट की ऊचाई तक पर्वतो व वाटिकाओं मे तथा बागो एव सडको पर लगाए हुए मिलते हैं।

नाम —

सं०–तुणी, नन्दी, नन्दीवृक्ष, आपीन इ०। हि०–तून। म०–नांदरुख। गु०–तूणी। ब०–तूनगाछ, तूणी। अं० Red toon, Indian Mahogany tree (रेडटून, इडियन महोगनी ट्री)

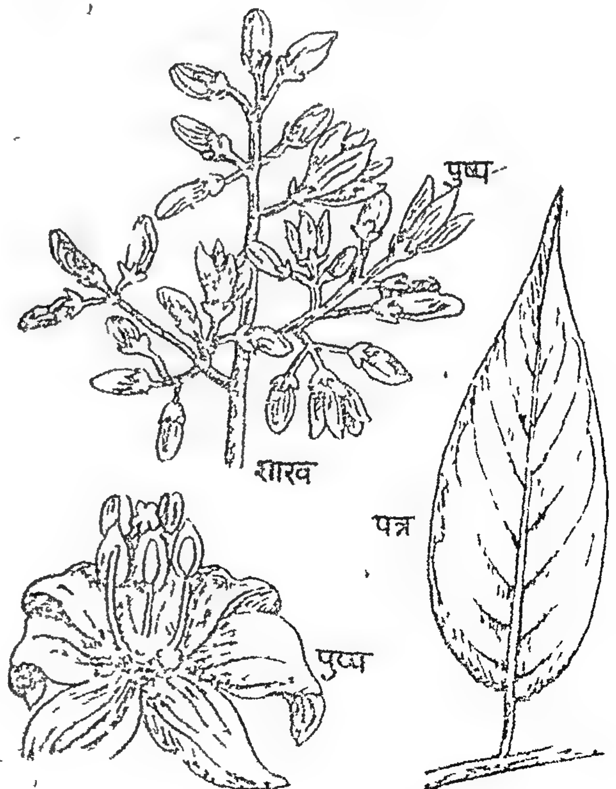
रासायनिक संघटन—

इसकी छाल तथा निर्यास मे एक कटु तत्व निकटेथिन (Nyctanthin) नामक पाया जाता हे।

प्रयोज्याग—छाल, पत्र, फूल, बीज और गोद।

गुण धर्म व प्रयोग -

लघु, तिक्त, मधुर, कषाय, कटु, विपाक, शीतवीर्य, वीर्यवर्धक, कटु-पौष्टिक, मलरोधक, तथा व्रण, कुण्ठ, रक्त पित्त, कडू, पित्त विकार, रक्त-विकार दाह आदि मे



उपयोगी है।

छाल–अति सकोचक (ग्राही), ज्वरघ्न, पौष्टिक, व थोडी मात्रा मे ज्वर नाशक है। बालकोके जीर्ण अतिसार मे तथा व्रणादि पर इसकी पुल्टिस बनाकर लगाते है।

(१) विषम ज्वर के साथ अतिसार हो, तो छाल का फाण्ट देते है। छाल का चूर्ण भी पानी के साथ दिया जाता है। यदि छाल के साथ लताकरज के बीजो को जौ कुट कर फाण्ट बना सेवन कराया जाय तो, विषम ज्वर शीघ्र दूर होता है, तथा पौष्टिक परिणाम होता है।

(२) बालको की प्रवाहिका या आमातिसार पर भी छाल का फाण्ट या क्वाथ ॥ से २ या २॥ मासे तक देते हैं। या छाल का घन क्वाथ बना कर ५—७ रत्ती की मात्रा मे दूध के साथ शहद से चटाते हैं। जीर्ण ज्वर पर-छाल का क्वाथ सेवन कराते हैं।

नोट–छाल के स्थान मे इसके गोंद से भी यही लाभ होता है। छाल के सब गुण धर्म गोंद में हैं।

(३) योनि–कन्द (Vaginal polypus)पर–छाल के साथ पठानी-लोध समभाग कूट पीस कर, तथा गरम कर लेप करते रहने से लाभ होता है।

(४) मस्तक के वातिक शूल पर–उसकी अन्तर–छाल के साथ इनके पत्तो को जौ कुट कर बफारा देने तथा सुहाता हुआ इसे वस्त्र मे लपेट कर मस्तक पर बाधने से लाभ होता है।

(५) गर्भाशय के शैथिल्य पर—छाल तथा इसके फूलो का फाण्ट सेवन कराते हैं।

(६) व्रणो पर—छाल का चूर्ण बुरकते है।

पुष्प–गर्भाशय-सकोचक तथा रज स्थापक है। स्त्रियो की मासिक धर्म की विकृति पर पुष्पो का फाण्ट देते है।

पत्र—वेदनास्थापन एव शोथहर है।

(७)अन्डवृद्धि पर—वृद्धि मे शूल या टीस मारती हो, तो इसके पत्तो के रस के साथ [illegible] तुलसी पत्र-रस मिला, तथा उसमे उतना ही घृत मिला पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर उतार कर, पुन दोनो पत्र-रसो को [illegible] पकावें। इस प्रकार २१ बार घृत को सिद्ध कर छान कर रख लें। इस घृत की धीरे २ मालिश कर वृद्धि रोग पर, दिन मे ४-५ बार कर, जूनी ईट को गरम कर वस्त्र मे लपेट कर सेक करते रहने से शीघ्र लाभ होता है। (व. गुणादर्श)

(८) अर्श पर–पत्र-रस पिलाते हैं।

बीज–अर्श पर—इसके बीज ½ सेर लेकर सिलपर पत्थर मे रगड़ने पर जब छिलका दूर हो जाय, तब २½ पाव पानी मे पकावे। १½ पाव पानी रहने पर, उतार कर छान लें, तथा उसमे से आध पाव पानी लेकर उसमे ७ तो बुझा हुआ चूना घोलकर आग पर चढादें। ज्यो-ज्यो पानी कम होता जाय त्यो-त्यो ऊपर से उक्त बचा हुआ पानी धीरे २ उसमे डालकर पकाते जावें। जब सब पानी जल कर गाढा अवलेह सा हो जाय, तब उतार कर बेर के बराबर गोलिया बनाले। इनमे से १ गोली रोज खिलाने से खूनी और बादी दोनो प्रकार की बवासीर ७ दिन मे आराम हो जाती है। यदि ३-४ मास बाद पुन यह रोग हो जाय तो ७ दिन पुन ये गोलिया खिला देने से हमेशा के लिये रोग-निवृत्ति हो जाती है। (व. च)

नोट—मात्रा-क्वाथ-५ तो० तक। फाट-१० तो० तक। छाल का सार या गोंद-१ से ३ मा तक।[1]

---

[1]गुजरात एवं महाराष्ट्र का एक तून (तूणी) वृक्ष इससे भिन्न होता है, जिसे लेटिन मे (Ficus Retusa) बंगला में कामरूप, गु०–नांदरुखीबड, पिंवड आदि कहते है। यह क्षीरीवृक्ष वट कुल (Urticaceae) का है। संभव है भावप्रकाश जी ने इसी का वर्णन किया हो।

इसका वृक्ष प्रस्तुत प्रसंग के तून वृक्ष से छोटा,मध्यमाकार का, छायादार, शाखा छोटी छोटी दूरी पर सवियुक्त, पत्र—वटपत्र जैसे २-४ इंच लम्बे, अन्तर पर, लम्बगोल चिमडे, मोटे, चमकदार, पत्रवृन्त आध इंच लम्बा, फल–वृन्तरहित, छोटे, गोल, लगभग चौथाई से आध इंच व्यास के, पकने पर श्वेत या बैगनी रंग के होते है।

यह बिहार, मध्यप्रदेश,दक्षिण, मद्रास, पर्व हिमालय, बम्बई व आसाम मे पाया जाता है। इसके वृक्ष मे बड के जैसे नये मूल लटकते है, जो नीचे जमकर वृक्षाकार में हो जाते हैं।

यह त्रिदोषघ्न, बल्य, कामोत्तेजक तथा कण्डु, कुष्ठ, व्रणादि-नाशक है। इसकी जड व पत्रों को पानी के साथ

तृण चाय (*ANDROPOGAN CITRALUS*)

इस यव-कुल (Graminae) की घास का वानस्पतिक वर्णन आदि हम इस ग्रन्थ के भाग १ मे अगिया के प्रकरण मे सचित्र दे चुके हैं। तथापि इसके विषय मे बहुत सी बाते वहा नही दे सके। उसकी पूर्ति यहा की जाती है।

इसका उपयुक्त अङ्ग—पत्र और तैल है।

ज्वर पर—पत्र के साथ तुलसी पत्र तथा बेल-पत्र मिला, चाय या फाण्ट बना पीने से ज्वर कम हो जाता है। साथ ही साथ एक बडे पात्र मे पानी मे इसे डालकर उबाले और रोगी को खाट पर सुलाकर, नीचे से इसका बफारा देवे। इस से प्रस्वेद आकर ज्वर दूर होता है। इसी बफारे से गले को अन्दर व बाहर मे सेक देने से शीत से बैठी हुई आवाज या स्वरभंग मे सुधार होता है।

प्रतिश्याय (जुखाम) पर—इसके साथ अदरख, दालचीनी अथवा पोदीना मिला फाट तैयार कर, उसमे थोडा गुड मिल कर, रात्रि मे सोते समय पीकर गरम कपडा ओढकर सोने से तीन दिन मे चाहे जैसा जुखाम हो दूर हो जाता है।

हृच्छूल, उदरशूल, आध्मान व सर्दी आदि लगने पर—इसके साथ सोठ, कालीमिर्च, पोदीना और दालचीनी मिला, फाण्ट बना, थोडी शक्कर मिला पिलावें।

छोटे बालको के लिये दीपन, पाचन तथा वातकफनाशक यह एक उत्तम औषधि है। इसके सेवन से बच्चो का उदर स्वच्छ रहता तथा आक्षेप-विकार भी दूर होता है। इसके फाण्ट मे केवल सोठ, दालचीनी और शक्कर मिलाकर पिलाते रहे।

नष्टार्त्तव, अल्पार्त्तव, पीडितार्त्तव के विकारो पर—इसे ताजा, गीला २॥ से ३ तो की मात्रा मे तथा काली मिर्च ३ मा. लेकर उसमे १० तो. पानी मिला पकावें। ७॥ तो. शेष रहने पर छानकर उसमे थोडा गुड या शक्कर मिला जब मासिक धर्म के समय उदर मे शूल हो तब अथवा नित्य भोजन के पूर्व लेते रहने से लाभ होता है। यदि इस फाण्ट या क्वाथ से विशेष उष्णता की प्रतीति हो, तो उसमे थोडा दूध मिला लेवे।

इसका तैल—इस घास का विशेष महत्व इसके तैल के कारण है। भिन्न २ प्रकार के इत्र तथा सेंट तैयार करने मे आवश्यक आयोनोन (Ionone) नामक विशिष्ट सुगन्धि-द्रव्य की प्राप्ति इस तैल से की जाती है।

तैल निकालने की विधि—इसके पत्तों को काट कर शुष्क होने के पूर्व ही, उन्हे भवके मे (वाष्प यन्त्र) मे भर कर, जिस प्रकार खस का अर्क निकाला जाता है, उसी प्रकार यह निकाला जाता है। अर्क पात्र से निकले हुए अर्क या जलांश मे इसका तैल ऊपर ही छाया हुआ रहता है। उसे धीरे से कपास के द्वारा निकाल कर शीशियो मे भर रखते है।

यह तैल इसके पत्तो से भी अधिक तीक्ष्ण, उष्ण, उत्तेजक तथा वातनाशक है। उदरशूल, अफरा, वमन, आर्त्तव-शूल आदि पर यह तैल ३ से ६ बूंद की मात्रा मे बतासे पर डालकर उस बतासे को चूर्ण कर जल के साथ पीते है।

सर्दी लगने या जुखाम से हुए सिर दर्द पर, तथा आमवात, सधिवात-जन्य पीडा पर, पैरो मे मोच आने आदि पर इस तैल मे दुगुना मीठा तैल मिला मालिश करने से लाभ होता है। केवल इस तैल के ही लगाने से त्वचा लाल होकर आग या दाह होने लगती है। दाद पर भी यह तैल लगाया जाता है।

पीस, ४ गुना तैल मे उबाल कर तैल को घाव व चोट पर लगाते हैं। स्तपीड़ा पर—छाल का रस १ तो० दूध मे मिला नित्य प्रातः पिलावें, भोजन, लघु शीघ्रपाकी हो तथा घृत व शक्कर बहुत कम देवें।

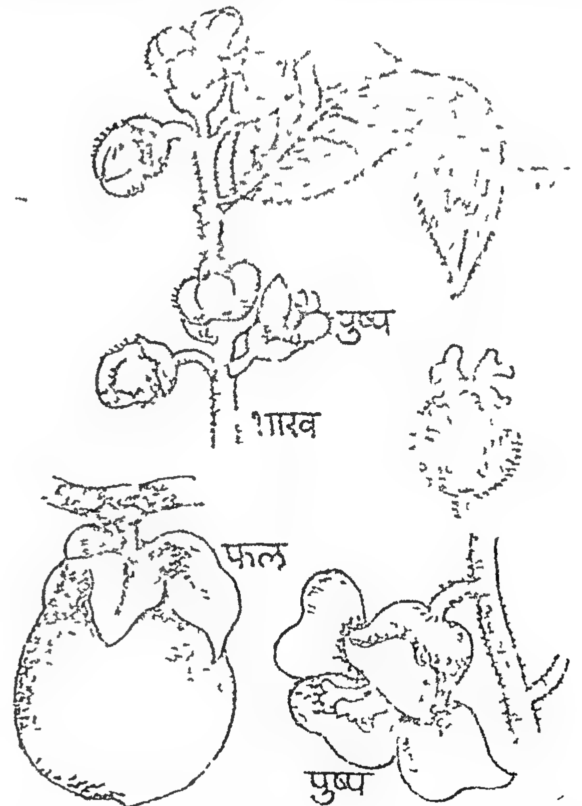
आमवातज सधिशोथ पर—पत्र व छाल को जल में पीस गरम २ मोटा लेप करते एवं पुल्टिस बाधते हैं।

आध्मान पर—पत्र-रस ४ सेर, काली तुलसी-पत्र रस ४ सेर और रेंडी-तैल १ सेर मिला, तैल सिद्ध होने पर तुरत छान लें। इस तैल की उदर पर हलके हाथों से ५-७ मिनट मालिश कर, ऊपर कपडा रख सेक करने मे उदरशूल और अफारा दूर होता है। (गावों में औ. र के आधार से।)

लकवा (अर्धांगवात) पर सफल योग—इमली तैल २॥ तो, महुवा-तैल व कुसुम-तैल १०-१० तो, सेंधा-नमक महीन पीसा हुआ १ तो मिलाकर मालिश करें, तथा लहसुन १ तवा भूनकर प्रातः साथ खावे। इसी प्रकार बढ़ाते हुए (प्रथम दिन १, दूसरे दिन २, एवं २१ दिन तक बढ़ा २ कर) खावें और ऊपर से दूध का सेवन करने से, लकवा में विशेष लाभ होता है। किन्तु इस योग का सेवन शक्ति के अनुकूल करना ठीक होता है। साथ ही प्रकृति का भी विचार करना चाहिए। गरम प्रकृति वालों को एवं गरम मौसम में इसे गरम योग अनुकूल नहीं होने व लाभ के स्थान में हानिकर होते हैं।

तेंदू ([illegible]) (*DIOSPYRUS EMBRYOPTÉRIS*)

फलादिवर्ग एवं अपने ही तिन्दुक-कुल[1] (Ebenaceae) का यह मध्यम प्रमाण का, बहुशाखा प्रशाखा युक्त २५ से ४० फुट तक ऊंचा, सघन, सदा हरित पत्रों से आच्छादित वृक्ष जंगलों में बहुत होता है। काण्ड—मजबूत व सीधा होता है। काण्ड या मोटी डालियों की लकड़ी कड़ी, काले रंग की, साधारण सुदृढ़ होती है[2]। काण्ड की छाल—गाढ़ी धूसर या काले रंग की, पत्र—हरे, स्निग्ध आयताकार, दो पंक्तियों में क्रमबद्ध, ५-७ इंच लम्बे १॥ से २ इंच चौड़े, चमकीले, पुष्प—श्वेतवर्ण के सुगंधित, फल—गोल, लड्डू जैसे कड़े, सिर पर या मुख पर पंचकोण युक्त ढक्कन से लगे हुये, कच्ची दशा में मुरचई रंग के, अति कसैले, पकने पर लालिमायुक्त पीले मधुर, होते हैं। इसके भीतर चीकू के समान मधुर, चिकना गूदा रहता है, जो खाया जाता है, इन्हीं फलों को तेंदू कहते हैं। बीज—प्रत्येक फल में, वृक्काकृति के बीज ३-४ रंग के चमकीले गूदे के अन्दर होते हैं।



इसके वृक्ष पंजाब और सिंध को छोड़कर, भारत वर्ष में प्रायः सर्वत्र जंगलों में पाये जाते हैं। इन वृक्षों से सरकारी जंगल-विभाग को बहुत आमदनी होती है। इनके पत्तों का ठेका बीडी तैयार करने वाले व्यापारी लोग लिया करते हैं। लकड़ी से अलग ही बहुत आमदनी होती है। वृक्ष की छाल चमड़ा रंगने के काम में आती है।

नोट (१)—चरक के उदर्द-प्रशमन तथा सुश्रुत के

---

[1] इस कुल के वृक्षों के पत्र—एकान्तर; पुष्प बाह्यकोष के दल ३-७, पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल भी ३-७ नलिकाकार दाहिनी ओर को मुड़े हुए, पुकेसर ४, बीजकोष ४-१० कोष्ठयुक्त, फल-गोलाकार, पुष्प बाह्यकोष से आवृत्त होते हैं।

[2] यह लकड़ी आबनूस के समान चिकनी, काले वर्ण की होने से यह फर्नीचर बनाने के काम में आती है। कोई २ इसे ही आबनूस मान लेते हैं। वास्तव में आबनूस इसी कुल का है, किन्तु इससे भिन्न है। आबनूस का प्रकरण इस ग्रन्थ के भाग १ में देखिये। चित्र इसी प्रकरण में दिया जा रहा है।

न्यग्रोधादि गणों में इसकी गणना की गई है।

(२) काकतिन्दू आदि इसकी भिन्न २ जातियों का वर्णन आगे के प्रकरणों में देखिये।

नाम—

सं०—तिन्दुक, स्फूर्जक, कालस्कन्ध, असितकारक इ०। हि०—तेंदू, तिन्दू, केंदू, गाव इ०। म०—टेंभुरणी। गु०—टीबरयो। बं०—गाब। अं०—इंडियन पर्सिमन (Indian Persimon) ले०—डायोस्पाइरस एम्ब्रियोप्टेरिस डायोस्पाइरस ग्लुटिनोसा (D Glutinosa), डा. कार्डिफोलिया (D Cordifolia)।

रासायनिक संघटन—

फलों में विशेषतः कच्चे फल और छाल में कषाय द्रव्य (Tannin) प्रचुर मात्रा मे होता है। तथा पेक्टिन (Pectin) और द्राक्ष-शर्करा (Glucose) भी पाया जाता है।

प्रयोज्य अङ्ग—छाल, फल, बीज काष्ठ आदि।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य, कफपित्त-शामक, स्तंभन, शोथहर, रक्तप्रसादन, वीर्यपुष्टिकर, मूत्र-संग्रहणीय है। उदर्द, ज्वरघ्न, शीघ्रपतन, प्रदर, कुष्ठादि चर्मविकारो में उपयोगी है।

पका फल—मधुर, स्निग्ध, गुरु है तथा वात, प्रमेह, एवं रक्तविकार-नाशक है।

छाल का क्वाथ या फांट प्रवाहिका, अतिसार, प्रमेह, कुष्ठ, उदर्द आदि में दिया जाता है। कास में—छाल का घनसत्व या गोलिया बनाकर चूसते है। विषम ज्वर में—छाल के क्वाथ मे मधु मिला कर पिलाते है।

(१) लकवा (अर्द्धांग या अर्दित) के कारण जिह्वा के लडखडाने या हकलाने पर—इसकी जड का क्वाथ पिलाने से, तथा छाल ६ मा और कालीमिर्च २ तो. पानी में पीस कर जीभ पर मलने से लाभ होता है।

(२) अग्नि दग्ध पर—छाल के क्वाथ मे तिल मिला कर, दग्ध-स्थान पर लगाने से शांति प्राप्त होती है।

(३) सिर के जू आदि के नाशार्थ—छाल को गोमूत्र में पीस कर लेप करते है।

विस्फोट तथा ग्रंथियो पर—छाल को पीसकर लेप करते है।

फल—कच्चा फल-शीत, रूक्ष, कसैला, कडुवा, ग्राही अरुचिकारक, मलस्तंभक, वातकारक है।

(४) शस्त्रादि लगने से जखम हो जाने तथा रक्त-स्राव होने पर, कच्चे फलो को पीस कर लेप करने से तत्काल ही रक्त-स्राव बन्द होता तथा रोपण शीघ्र होता है। अथवा-कच्चे फलो को छेदने से जो एक प्रकार का गाढा, कसैला रस निकलता है, उसे लगाते रहने से भी लाभ होता है। या शुष्क फलो के छिलको का चूर्ण जखम पर छिडकने से भी शीघ्र सुधार होता है।

(५) मुख-पाक, उपजिह्विका-शोथ पर—फलो के क्वाथ का गण्डूष धारण कराते है।

(६) श्वेत प्रदर पर—फलो का रस ७॥ मा० १ पाव पानी मे घोल कर योनि मे पिचकारी देते हैं। अथवा फलो के क्वाथ की योनि मे वस्ति देते है, जिससे स्राव तथा गर्भाशय की श्लेष्मल-कला का शोथ भी शमन हो जाता है।

(७) प्रवाहिका, अतिसार पर—कच्चे फलो के रस का सेवन कराते हैं। वैसे ही रक्त विकार एवं रक्त-पित्त मे इसके रस, या क्वाथ या फाण्ट की योजना करते तथा पके-फलो का सेवन कराते है।

(८) श्वास पर—कच्चे या पके फलो की छाल का शुष्क चूर्ण ३ मा० तक चिलम मे भर कर धूम्रपान कराते है।

काष्ठ (लकडी) (९) नेत्रस्राव पर—लकडी को पानी के साथ पत्थर पर घिस कर आंखो मे आंजने से ढलका (नेत्रस्राव) बन्द होता है।

(१०) भिलावे की सूजन पर—भिलावे के धुए से शरीर पर होने वाली सूजन पर लकडी को घिस कर लेप करते है।

(११) लकडी का काला सार या अर्क हैजा पर लाभ करता है। पित्त के फोड़े फुंसियो पर भी यह लगाया, तथा पिलाया जाता है।

बीज तथा बीजों का तैल—

प्रवाहिका तथा अतिसार मे उपयोगी है। अतिसार

मे बीजो का चूर्ण पानी के साथ देते है।

विशिष्ट योग —

(१२) फलो का सत्—इसके अर्धपक्व फलो को हाथो से मसल कर रस निचोड कर, उसे पकावे। अच्छा गाढा हो जाने पर जो भूरा लाल रग का घनसत्व तैयार होता है, वह अतिसार एव जीर्ण-ग्रह पर विशेष लाभकारी है। ध्यान रहे इसे तैयार करते समय लोहे का कोई पात्र काम मे नही लेना चाहिये। कलईदार पात्र मे इसे मद आग पर पकाना चाहिये। जीर्ण सग्रहणी मे १ से ४ रत्ती तक यह सत् पानी के साथ दिन मे २ बार देने से विशेष लाभ होता है।

(१३) तेदू का हलवा—अच्छे पके फलो का गूदा १ सेर, बिनौले की गिरी (मगज) तथा पिस्ता १०-१० तो०, बादाम का तैल ८ तो०, श्वेत छोटी इलायची-बीज २ तो०, केशर ३ मा०, गुलाब का शुद्ध अर्क ½ सेर और मिश्री दो सेर लेकर इन सबका यथाविधि हलवा बना ले। इसे २ से ४ तो० तक की मात्रा मे प्रतिदिन सेवन करने से काम-शक्ति बहुत बढती है, वीर्य पैदा होता तथा पीठ व गुर्दे को ताकत मिलती है।

(व० च०)

नोट—मात्रा-क्वाथ ४ से ८ तो० तक। बीज-चूर्ण-१-३ मा० तक। तैल-१०-२० बूद। अधिक मात्रा मे यह आत्र और आमाशय के लिये हानिकारक है। हानि-निवारणार्थ दूध और स्निग्ध पदार्थों का सेवन करें।

ध्यान रहे—भोजन के बाद तुरन्त ही इसके फल नही खाने चाहिए, तथा इन्हे खाकर तुरन्त ही पानी भी नही पीवे। अन्यथा जी मिचलाना व वमन होने की सम्भावना होती है।

तेंदू-काक (काकतेंदू)

(Diospyros Tomentosa)

तेंदू की ही एक उपजाति है। इसके वृक्ष, पत्र, फल आदि तेदू वृक्ष जैसे ही होते है।

वृक्ष की छाल—श्वेताभ कृष्णवर्ण की, तथा इसका नवीन भाग श्वेत, रोमश या मुरचई रग का होता है। पत्र—प्राय विपरीत, ३-६ इञ्च लम्बे, २-५ इञ्च चौडे आयताकार, फल—गोल, व्यास मे १-१½ इञ्च, चिकना, पकने पर पीला, तथा भीतर का गूदा पीला, मधुर एव गधयुक्त होता है।

ये वृक्ष बंगाल मे कई भागो के तथा यू० पी० मध्यप्रदेश, छोटा नागपुर, बिहार आदि के जगलो मे अधिक पाये जाते हैं। सहारनपुर शिवालिक के पश्चिम भाग मे भी ये वृक्ष अधिक होते है।

नाम —

सं०—काकतिन्दुक, काकेन्दु आदि। हि०—काकतेंदू, तुमल,माकर तेंदुआ। म०—टेमरू।

गुण-धर्म व प्रयोग —

फल—लघु कडुवा, कसैला, शीत-वीर्य, मलरोधक, आत्र-सकोचक, पका फल—पित्त वात-शामक। इसके पत्र मूत्रल, मृदु विरेचक, आध्मान-नाशक, रक्तस्राव रोधक। वृक्ष की छाल सकोचक, छाल का क्वाथ मंदाग्नि, रक्तातिसार तथा जीर्ण आम मे उपयोगी है।

नोट—इसी का एक उपभेद विषतिन्दुक (Diospyros Montana) है, जिसे हिन्दी मे-पिन्ना, लोहरसी; बगला में-बनगाल; मराठी में-कुन्दु कहते हैं। इसका फल विषैला होता है। इसका प्राय प्रत्येक भाग कडवा और दुर्गन्धयुक्त होता है। इसके कई भेद-उपभेद हैं, जो विस्तार-भय से यहां नहीं दिये जा सकते।

तेन्डी—दे०—निमोथ। तेबुर—दे० - तवाखीर।

तेजपात[1] (CINNAMOMUM TAMOLA)

कर्पूरादि वर्ग एव कर्पूर कुल (Lauraceae) की दालचीनी की ही जाति का यह भारतीय भेद है। इसके

१ यह दालचीनी एव सिंहली (सीलोन-लंका) दालचीनी (दारसिता) का ही एक विशेष भेद भारतीय-[illegible] है। [illegible] सूक्ष्म दृष्टि से इन दोनों का भिन्न-भिन्न वर्णन कर उपयुक्त कार्य [illegible] दृष्टिये।

वृक्ष सदैव हरे-भरे, मध्यमाकार के, लगभग २५ फुट ऊंचे, कुछ सुगन्धयुक्त होते हैं। छाल–पतली किन्तु खुरदरी, शिकनदार, गहरे भूरे रंग की कुछ कृष्णाभ, दालचीनी जैसी ही किन्तु कम सुगन्धित, वगैर स्वाद की होती है। यह सिलोनी दालचीनी की अपेक्षा कुछ मोटी, तेजी मे न्यून तथा पानी मे पीसने से पिच्छिलतायुक्त (लुआबदार) हो जाती है। यह छाल बाजारो मे सिलोनी दालचीनी के स्थान पर या मिलावट के रूप मे बेची जाती है।

इन दोनो छालो के गुणधर्म मे कोई विशेष अन्तर नहीं है। यह फीके रंग की, स्वाद मे फीकी एव निर्गन्ध होती है। इसे ही 'तज' कहते हैं।

पत्र—वट (बरगद) के पत्र जैसे, प्राय ५-७ इन्च लम्बे, २-३ इन्च चौडे, लट्वाकार, आयताकार या भालाकार, नोकदार, चिकने, चर्मवत्, शाखाओ पर विपरीत या एकान्तर, नीचे से ऊपर तक ३ सिराओ मे युक्त, सुगन्धित एव स्वाद मे तीक्ष्ण (चरपरे) होते है। नूतन-पत्र कुछ गुलाबी रंग के होते है।

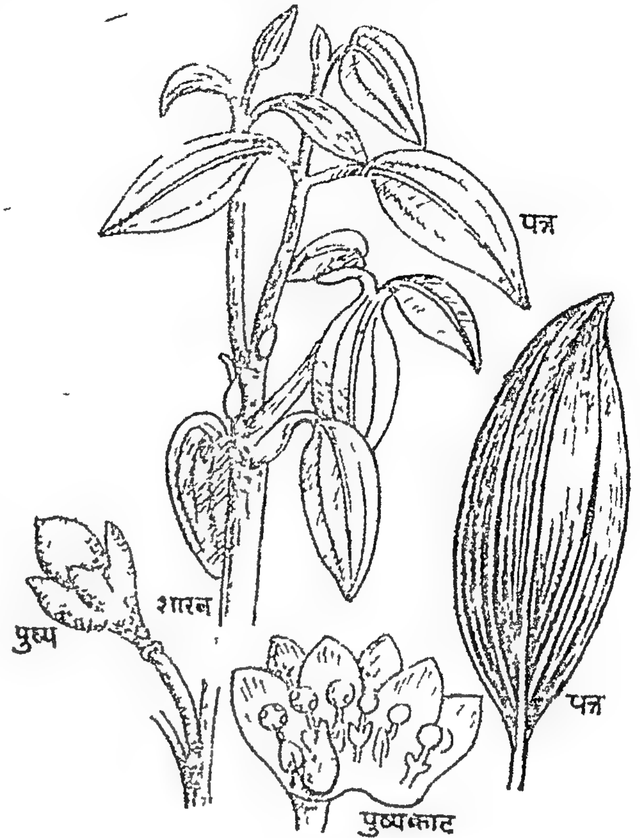
बाजारो मे ये ही सूखे पत्र तेजपात या तमाल-पत्र के नाम से बेचे जाते हैं। ये गरम मसाले के काम मे आते हैं। चीनी या सिंहली दालचीनी के पत्र भी आकार-प्रकार मे ऐसे ही होते हैं, किन्तु स्वाद मे इसके समान चरपरे नहीं होते। इनके अतिरिक्त इस वर्ग के और भी ?४ जाति के पत्र इसमें मिला दिये जाते है, किन्तु वे कम गुण वाले होते हैं।

फूल—¼ इन्च लम्बे, हल्के पीत वर्ण के, फल—½ इन्च लम्बे, अण्डाकार, मासल तथा काले रंग के होते हैं, अपक्व शुष्क फलों का 'काला नागकेशर' के नाम से दक्षिण-भारत में व्यवहार किया जाता है। अर्श के रोगो पर इस नागकेशर का उपयोग विशेष हितकर होता है।

इसके वृक्ष हिमाचल के उष्ण कटिबन्ध स्थित भागो मे, ३ से ८ हजार की ऊंचाई तक तथा उत्तर प्रदेश, पूर्वी बंगाल एव खासिया, जैन्तिया पहाडियों पर, और ब्रह्मा आदि के जंगलों मे पाये जाते हैं।

काश्मीर मे एक ऐसा ही वृक्ष होता है, जिसके पत्र तेजपात के जैसे ही किन्तु उससे बडे व मोटे होते हैं। इसे

तेजपात (तमालपत्र)
CINNAMOMUM TAMALA NEES



काश्मीरी-पत्र कहते है। पत्तो का महीन चूर्ण नस्य-रूप मे शिर शूल, प्रसेक तथा जुकाम मे प्रयुक्त होता है। यूनानी में इन पत्तो को वरगतम्बूल कहते है।

नाम–

सं०–पत्रक, पत्र, तमाल-पत्र, पत्र नामक (पत्र-वाचक सभी शब्द इसके पर्यायवाची है)। हि०–तेजपात, पत्रज, मज। म०–तमाल-पत्र तेजपात, रानाआदल। गु०–तमाल-पत्र। बं०–तेजपात, तेजपाता, नालुका। अ०–फोलियो मालाबाथी (Folio Malabathye), Indian Cinnamum। लै०–सिनैमम-तमाल, सि० आब्ट्यूसिफोलियम (C Obtusifolium), सि० निटिडम (C Nitidum)

रासायनिक संगठन–

पत्तो मे लौंग के समान गन्ध वाला, एक उडनशील तैल, यूजीनाल (Eugenol) टर्पीन (Terpene), तथा सिनामिक अल्डीहाइड (Cinnamic aldehyde) होता है।

प्रयोज्यांग—पत्र और छाल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर रसयुक्त, किंचित् तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य, स्वेदल, मूत्रल, मलशुद्धिकर, स्तन्यवर्धक, कफ, वात, अर्श, हृल्लास (उबकाई), अरुचि तथा पीनस पर उपयोगी है। पत्रों का विशेष उपयोग आम प्रकोप तथा कफ-प्रधान रोगों में होता है। अपचन, उदर-वात, शूल, अतिसार आदि पचनेन्द्रिय के विकारों पर, सर्व प्रकार के कफ रोगों मे, तथा गर्भाशय की शिथिलता दूर करने मे किया जाता है। इससे आगे गर्भस्राव या गर्भपात नहीं होने पाता।

प्रसवावस्था मे गर्भाशय मे से सब विकार बाहर न आया हो, गर्भाशय शैथिल्य के कारण भीतर रुक गया हो, तो त्रिजात (तेजपात, दालचीनी और छोटी इलायची) का चूर्ण या क्वाथ दिया जाता है।

यह बालकों के वातज, कफज एव आम प्रकोपज सब प्रकार के रोगों मे प्रयुक्त होता है।

(१) ज्वर की पूर्वावस्था मे इसका फाण्ट पिलाने से आम विष दूर होकर, पसीना आता है, मूत्रवृद्धि होती, एव ज्वर की सम्प्राप्ति रुक जाती है। यदि मद ज्वर आता हो तो पत्रों के साथ लताकरंज के भुने हुए बीज का चूर्ण देने से ज्वर-शमन हो जाता है।

(२) कुष्ठ पर—पत्र, कालीमिर्च, मनसिल और कसीस समभाग लेकर तैल मे घोटकर ताम्र-पात्र मे भर कर रख दे। ७ दिन बाद इसका लेप कर, थोडी देर तक, प्रतिदिन धूप मे बैठने से ७ दिन मे सिध्म कुष्ठ (सेहुआ, सफेद छीप Pityriasis Versicolor), और १ मास मे किलास कुष्ठ (श्वेत कुष्ठ Leucoderma) नष्ट हो जाता है। (चरक चि० अ० ७)

(३) श्वास पर—पत्र और छोटी पीपल के चूर्ण को, अदरक के मुरब्बे की चाशनी मे मिलाकर चटाते हैं।

(४) मूत्र तथा आर्तव-प्रवर्त्तनार्थ—पत्तों को सिरका मे पीसकर उदर तथा पेडू पर लेप करते और आन्तरिक उपयोग भी करते हैं।

(५) नेत्र-विकारों पर—फूली, धुन्ध, दृष्टिमांद्य और अर्म (नाखूना) पर पत्तों को अकेले या अन्य औषधियों के साथ सुर्मा जैसा महीन पीसकर नेत्रों में लगाते हैं।

(६) कास और जाघ (वक्षणस्थ) दुर्गन्ध दूर करने के लिए पत्रों के महीन चूर्ण को सिरका मे मिला लेप करते हैं। वस्त्रों को सुवासित करने या कीटों से रक्षा करने के लिये उनमे पत्तों को रखते हैं। मुख-दौर्गन्ध्य निवारणार्थ इसे मुख मे रखकर चबाते हैं।

छाल—शोथघ्न एव कफ-विकार, कास, श्वास तथा संधि-पीडा नाशक है।

(७) शोथ पर—देशी एन्टीफ्लोजिस्टन—छाल को पानी मे पीस कर, खूब लुआबदार हो जावे, तब मोटा लेप कर, ऊपर से वस्त्र-पट्ट बांध देने से सूजन उतर जाती है। ग्रन्थी या गांठ जो पकती न हो, उस पर उक्त रीति से बांधने से शीघ्र पक जाती है। यदि गांठ पक्व हो या फूट गई हो, तो इसका प्रलेप उसके मुख पर न कर, मुख के निम्न-भाग पर चारों ओर करने से मुख द्वारा राध बह कर गांठ बैठ जाती है। इस प्रकार पक्व, अपक्व व अर्धपक्व चाहे जैसा ग्रन्थिशोथ हो यह प्रलेप उत्तम लाभकारी है। संधिपीडा पर भी यह लेप लगाया जाता है।

(८) सिर-दर्द पर—पत्तों की डठल पर या छाल ६ मा० पानी के साथ महीन पीस कर (यह १ मात्रा है) सिर मे जहां दर्द हो, वहाँ मोटा लेप चढादे। ३ घंटे बाद, जब लेप सूखने लगे, उसे हटा दे।

(९) कास, प्रतिश्याय और श्वास पर—इसकी छाल और छोटी पीपल के चूर्ण को शहद के साथ सेवन करने से खांसी मे लाभ होता है, दुष्ट कफ की उत्पत्ति रुक जाती है, एव प्रतिश्याय भी दूर होता है।

श्वास-प्रकोप हो, तो उक्त दोनों के चूर्ण के मिश्रण को अदरक के रस और शहद के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

नोट—पत्र-चूर्ण या माजून के रूप में २-४ मा० तक। क्वाथ के लिये २ से ४ मा० तक।

अधिक मात्रा मे ये बस्ति और फुफ्फुस को हानिकर है। हानि-निवारणार्थ-मस्तंगी और बिही का शर्बत देते हैं।

तेजबल (*ZANTHOXYLUM HOSTILE*)

जम्बीर-कुल (Rutaceae) के होते हुए भी इसके कुछ बडे मध्यमाकार के वृक्ष होते है। इसके तने और छोटी बडी शाखाओ पर मोटे मोटे कांटे से होते है। ये कांटे तीक्ष्ण नोकवाले नही होते। छाल—काली, पीताभ व पतली होती है। पत्र—गूलर-पत्र जैसे किंतु छोटे छोटे होते है। पुष्प—नीबू के पुष्प जैसे श्वेत वर्ण के गुच्छो मे फल—बहुत छोटे गोल, कालीमिरच जैसे गुच्छो मे आते है।

नोट-(१) इसकी लकड़ी बहुत सुदृढ होती है। इसके ही छोटे बडे डंडे, गोल, चिकने बनाकर हरिद्वार के बाजारों में बेचे जाते है। बद्रीनाथ के यात्री इन डंडों को लेकर यात्रा करते है। औषधि घोटने के खरल के मूसल भी इसके बनाते हैं।

(२) इसके फलों को तुम्बरू (नेपाली-धनियां) तथा छाल को तेजबल कहा जाता है, उसके वृक्ष इसकी अपेक्षा बहुत छोटे झाडीदार होते है। उन्हें भी तेजबल कहते हैं। उनका वर्णन तुम्बरू के प्रकरण में पीछे देखिए।

इसके वृक्ष हरिद्वार एवं बद्रीनाथ के बीच के जगलो मे पाये जाते है। वृक्ष से एक प्रकार का निर्यास (गोद) भी निकलता हैं।

नाम—

सं०-तेजोवती, तेजस्विनी। हि०-म०-व०-गु०-तेजबल। अं०-टुथएकट्री (Toothache tree)। ले०-झैंथोक्सायलम होस्टाइल।

गुणधर्म व प्रयोग—

तीक्ष्ण (चरपरी) कडुवी, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, अरुचिकर, कठ-शुद्धि-कारक, त्रिदोष-नाशक, तथा कास, हिक्का, मन्दाग्नि, अर्श, मुख-रोग व दन्त-रोग आदि मे उपयोगी है।

इसकी छाल लाल मिरच जैसी चरपरी होने से बद्रीनाथ की ओर के ग्रामवासी इसे लाल मिरच जैसे ही उपयोग मे लाते है।

अफीम के विष पर—इसकी छाल या लकडी को पानी मे घोट छानकर, उस पानी को १ पाव तक, बार बार



तेजबल
ZANTHOXYLUM ALATUM ROXB

पिलाते है।

जखमो पर—इसके गोद को पीसकर बुरकते रहने से व्रण-रोपण होता है।

दन्तशूल पर—इसकी छाल का मजन करते है। या ताजी लकडी की दातौन करते है। शीघ्र ही शूल नष्ट होता है। इस विषय मे इसकी बड़ी प्रशसा की जाती हैं। इसीसे अंग्रेजी मे दंतशूल-वृक्ष (टुथ एक ट्री) नाम दिया गया है।

वातव्याधि पर इसके छालके चूर्ण १ सेर को गोदुग्ध ८ सेर मे पकावें। जब खोया (मावा) हो जाय तो उसमे त्रिकटु हर्र, सोया, वायविडङ्ग, चित्रक, पीपलामूल अजमोद, वच, कूठ, असगध व देवदारु का चूर्ण तथा

होती है। यह श्वेत पलाश कहीं-कहीं घने जंगलों [illegible] सौभाग्यशाली को या सिद्ध योगियों को ही प्राप्त होता है। इसके योग से त्रिकालदर्शी होना आदि कई चमत्कारिक क्रियायें सिद्ध होती हैं।

४—एक भूपलाश नामक अन्य [illegible] होता है। इसका वर्णन ढोल समुद्र के प्रकरण में देखें।

५—हलके पीत पुष्प वाले भी पलाश [illegible] होते हैं। इनके तथा प्रस्तुत प्रसंग के पलाश के गुणधर्म में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

नाम —

सं०—पलाश [मांसवत् रक्तवर्ण पुष्प होने से, या पत्र प्रधान होने से], किंशुक (शुकतुण्ड सदृश लाल वक्र पुष्प होने से], रक्तपुष्पक, क्षार श्रेष्ठ, ब्रह्मवृक्ष [ब्रह्मचारी इसका काष्ठ दण्ड धारण करते हैं] समिद्वर [यज्ञ में प्रयुक्त होने से], इ०। हि०—ढाक, टेसू, केसू, पलास, छिऊल इ०। म०—पलस। गु०—खाखरो। बं०-पलाश गाछ। अं०—बास्टर्डटीक [astard teak],दि फॉरेस्ट फेम [The Forest fame]। ले०—ब्युटिया फ्राडोसा, ब्यू. मोनोस्पर्मा (B Monosperma)

रासायनिक संघटन—

छाल व गोंद में काइनो टैनिक एसिड (Kinotannic acid), और गैलिक एसिड ५०%, पिच्छिल द्रव्य तथा क्षार २%, बीजों में पीतवर्ण का स्थिर तैल १८% इसे मुडूगो या काइनो आयल (Moodooga or Kino oil) कहते हैं और लगभग १८% अल्ब्युमिनाइड तत्त्व (Albuminoids substance) एवं कुछ शर्करा पायी जाती है। पत्र में एक ग्लुकोसाइड और पुष्प में एक पीला रंजक द्रव्य होता है।

प्रयोज्याग—छाल, पत्र, पुष्प, गोंद, फली, बीज, मूल, पचाङ्ग, क्षार।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, कटु, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्ण-वीर्य, दीपन, ग्राही, वीर्यपुष्टिकर, रसायन, वाजीकर, उदरकृमिनाशक, मूत्रार्त्तवजनन, कफवातशामक, यकृदुत्तेजक, अस्थिसंधानक, संग्रहणी, अर्श, गुल्म, व्रण आदि पर उपयोगी है।

छाल—स्तंभन, शीत, रूक्ष, प्रमेहघ्न, संधानीय, व्रण, अर्श, योनिस्राव आदि में इसके क्वाथ से परिषेक करते हैं। अतिसार, ग्रहणी, अर्श आदि में इसके [illegible] [illegible] और सुजाक आदि के लिए [illegible] मिश्री मिलाकर [illegible] हैं।

(१) श्वेत प्रदर, शुक्रमेह या शुक्रतारल्य में [illegible] पानी में भिगो [illegible] तथा चूर्ण कर, शक्कर मिला, यथाविधि [illegible] लाभ करते हैं।

शुक्रतारल्य में जड़ की छाल के चूर्ण को दूध के साथ सेवन से पुरुषार्थ एवं कामशक्ति की वृद्धि होती है।

(२) प्रतिश्याय एवं कफज्वर पर—छाल-चूर्ण १ तो० को १ पाव जल में, [illegible] दिन [illegible], छानकर, गरम-गरम ही, ३-४ दिन दोनों समय सेवन से जुकाम लगना आदि दूर होता है। [illegible] फाट-प्रयोग उत्तम है।

(३) अतिसार पर—छाल-चूर्ण १ भाग तथा दालचीनी चूर्ण आधा भाग एकत्र मिला, मात्रा १ रत्ती से १ मा० तक, आयु के अनुसार सेवन से बालकों एवं स्त्रियों के अतिसार में शीघ्र लाभ हो पाचन-शक्ति का सुधार होता है।

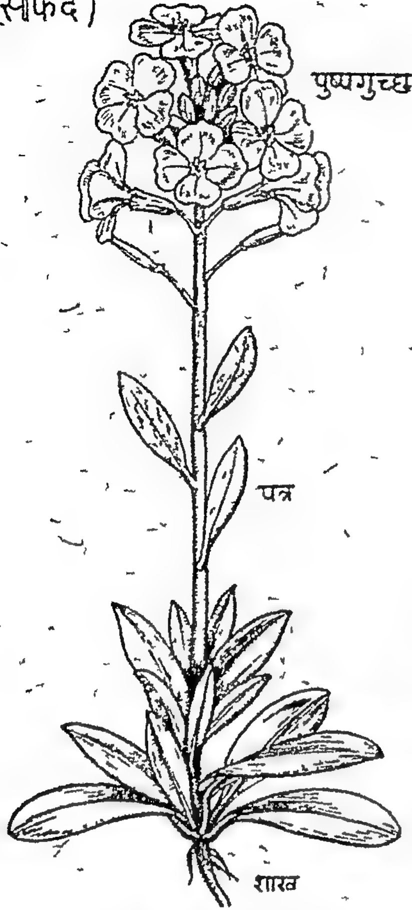
(४) पाडु तथा श्वेत प्रदर पर—इसकी छाल के साथ, रोहेड़े की जड़ की छाल और पाठा समभाग एकत्र जौकुट कर, यथाविधि क्वाथ सिद्ध कर, शहद मिला सेवन से लाभ होता है। (यो० नि०)

(५) अण्डवृद्धि और सर्प-विष पर—इसकी छाल का चूर्ण ७ मा० की मात्रा में जल के साथ सेवन करते तथा अण्डकोषों पर छाल की पुल्टिस बांधते हैं।

सर्प-विष पर—छाल और सोंठ को औटाकर, छानकर पिलाते हैं। अथवा—छाल को पीसकर ताजा रस निकाल, बलाबलानुसार ४ से १० तो० तक पिलाते हैं।

पत्र—(विशेषतः कोमल पत्र)—शीत, रूक्ष, संग्राही, शोथहर, वेदनास्थापक, अतिसार, योनिस्राव, शुक्रप्रमेह आदि पर उपयोगी हैं।

(६) योनिस्राव या योनिशैथिल्य पर—कोमल पत्र छाया-शुष्क कर, महीन चूर्ण कर, समभाग मिश्री मिला ३ मा० से ५ मा० तक प्रातः सायं ताजे जल के साथ



MATTHIOLA INCAVA ROXB

मुलायम, दोनो ओर सफेद धूसर वर्ण के; पुष्प—बैंजनी या रक्ताभ गुच्छो मे,प्राय बडी पखुडियां, सिर पर चौडी; फली—दोनो ओर से खुलने वाली ३–४ इच लम्बी, जिनमे श्वेत बीज छोटे २ भरे रहते है। ये बीज मसूर के दाने जैसे और चपटे चौडे स्वाद मे कडुवे होते है।

यह पश्चिमी भूमध्य सागरकी ओर विशेष होती है। अब भारत के बाग बगीचों मे भी बोई जाती है। इसे अग्रेजी मे Giliflower (गिलीफ्लावर) तथा लेटिन मे मेथिओला इन्केवा (Mathiola Incava) कहते है।

यह सफेद तोदरी, निम्नांकित लाल तोदरी की अपेक्षा रग मे केवल कुछ हलकी लाल होती है। यह तीनो तोदरियो से आकार मे कुछ बडी और अधिक चपटी होती हे। इसका एक भूरा भेद कभी कभी तोदरी स्याह (काली तोदरी) के नाम से बाजार मे मिलता है।

(३) तोदरी लाल या सुर्ख—इसके झाडीदार क्षुप, तना कोमल, शाखाएं कुछ रोमश, ऊपर को चढने वाली, पत्र—अखण्ड, नुकीले, बरछी के आकार के, पुष्प—बडे, मधुर, सुगन्ध युक्त, मजरी में, नारगी जैसे पीले रग के, फली—दोनो ओर से खुलने वाली, १॥–२॥ इच लम्बी होती है, जिनमे सुर्ख बीज भरे रहते हैं।

यह यूरोप की है, वर्तमान में भारत के बागो मे बोई जाती है।

इसे बगला मे–खुएरी, अग्रेजी मे—(Bleeding heart) तथा लेटिन मे—(Cheiranthus Cheiri) चिरैंथस-चेरी कहते है।

रासायनिक सघटन—

उक्त प्राय तीनो प्रकार के बीजो मे एक तिक्त तत्व (Lepidin) तथा उडनशील तैल और गधक होता है। लाल तोदरी मे चेरी-नाईन (Cheirinine) नामक एक उपक्षार ग्लुकोसाईड आदि पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—बीज।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, मधुर, तिक्त, मधुर विपाक, उष्णवीर्य, वातपित्तशामक, कफनि सारक, वृष्य, बृंहण, बल्य, वाजीकरण, स्तन्यजनन व मूत्रल है।

इन तोदरियो के विशेष प्रयोग यूनानी हकीम लोग किया करते है। कफनि सारक एवं पौष्टिक गुणो के कारण ये अन्यान्य प्रयोगो मे मिलाई जाती है। कही २ वैद्यलोग भी इनका प्रयोग करते है।

(१) वाजीकर, वृष्य, बृंहण एवं स्तन्य-जननार्थ अकेले इसका चूर्ण, या इसके साथ अन्य औषधि-द्रव्य मिलाकर दूध के साथ देते हैं। शतावरी के समान यह उत्तम स्तन्य जनक है। स्तन्य या माता की दुग्धवृद्धि के लिये बीज-चूर्ण और शक्कर ६-६ मा एकत्र मिला, दूध के साथ भी सेवन कराते हैं। वृष्य एव वाजीकरणार्थ इसे पोटली मे बाधकर दूध मे डाल देते है, फिर दूध को पकाकर, मिश्री मिला पिलाते हे। इससे शुक्रवृद्धि, कामोत्तेजना होती, क्षुधा बढती तथा वात-विकार भी दूर होता है। शुक्रवर्धक, वृष्य आदि औषधिया प्राय

विबन्धकारक होती है, किन्तु इसमे यह दोष नही है। इसके प्रयोग से मल की भी शुद्धि होती है।

(२) शुष्क कास, तथा कृच्छ्र श्वास एव श्वास नलिका-प्रदाह मे—इसका उपयोग फाट के या अवलेह के रूप मे किया जाता है। इससे छाती मे जमा हुआ शुष्क कफ ढीला होकर निकल जाता है, मूत्र का परिमाण बढ़ता है। यदि ज्वर हो, तो वह भी कम हो जाता है। बीजो के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से भी उपरोक्त लाभ होता है।

शोथ, व्रण एव सधिवात पर—स्थानीय या सर्वांग शोथ पर तथा कारवकल जैसे फोडो पर इसका लेप लाभकारी होता है।

(४) विषप्रकोप पर—विषैले जतुओ के एव पुराने विष-प्रकोप पर—१ तो बीज का फाट शराब मिलाकर पिलाते है। इसी प्रकार यह फाण्ट कर्कस्फोट (केसर Cancer) मे भी व्यवहृत होता है। (गा औ.र)

नोट—मात्रा ६ मा से १ तो० तक अधिक मात्रा मे यह आमाशय के लिये कुछ हानिकर तथा दाह एवं घबराहट पैदा करती है। हानिनिवारणार्थ जरिश्क (दारुहल्दी देखें) का फाण्ट देते हैं।

पीली व सफेद तोदरी के लिये सफेद बहमन, तथा लाल के लिये लाल बहमन प्रतिनिधि रूप मे लिये जाते हैं।

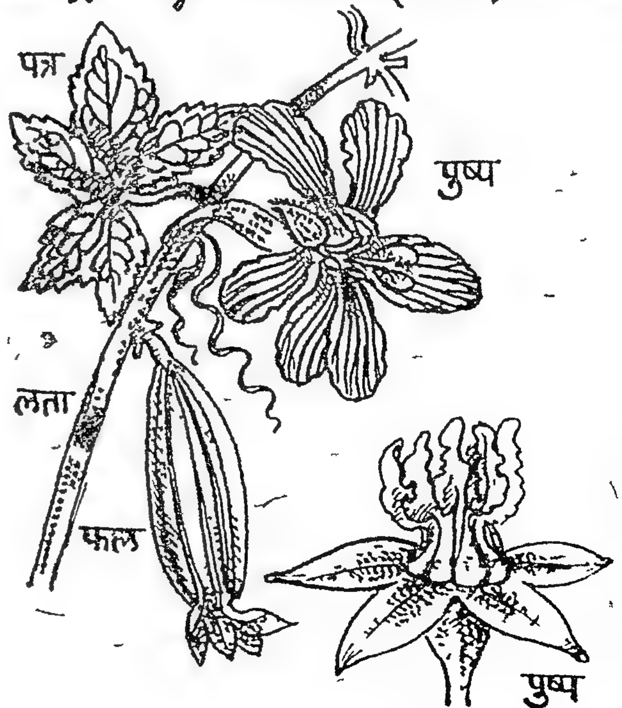
इसके फूल हृदय के लिये पौष्टिक एव ऋतुस्राव-नियामक माने जाते है। फूलो को जैतून या तिल के तैल मे पकाकर, उस तैल का उपयोग मालिश एव वस्ति के रूप मे किया जाता व पक्षवध और नपुंसकता मे भी व्यवहृत होता है।

तोरई (Luffa Acutangula)

शाक-वर्ग एव कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की इस खूब फैलने वाली लता के पत्र पचकोण विशिष्ट, दन्तुर, लगभग ६ इच व्यास के, पुष्प—हलके पीतवर्ण के, फल—३-५ इंच लम्बे, ऊपरी पृष्ठ भाग पर उभरी हुई धारीदार रेखाओ से युक्त, गुच्छों मे या अलग भी लगते हैं। कडवी तोरई के फलो का अपेक्षा यह फल बडे होते है। इसे खर्रा तोरई भी कहते हैं।

यह भारत के अनेक भागो मे, शाक के लिये, बागो मे या खेतो मे भी, ज्वार, मक्का के साथ, वर्षारंभ मे, बोई जाती है।

नोट-इसकी तीन जातियों मे से कडवी तोरई (Luffa Amura) और घिया तोरई (Luffa Aegyptiaca) का वर्णन यथास्थान इस अङ्क के दूसरे भाग में दिया जा चुका है। यहां प्रसगानुसार इसकी तीसरी जाति का जो विशेषत शाक रूप से व्यवहृत होती है, उसी का वर्णन किया जाता है।

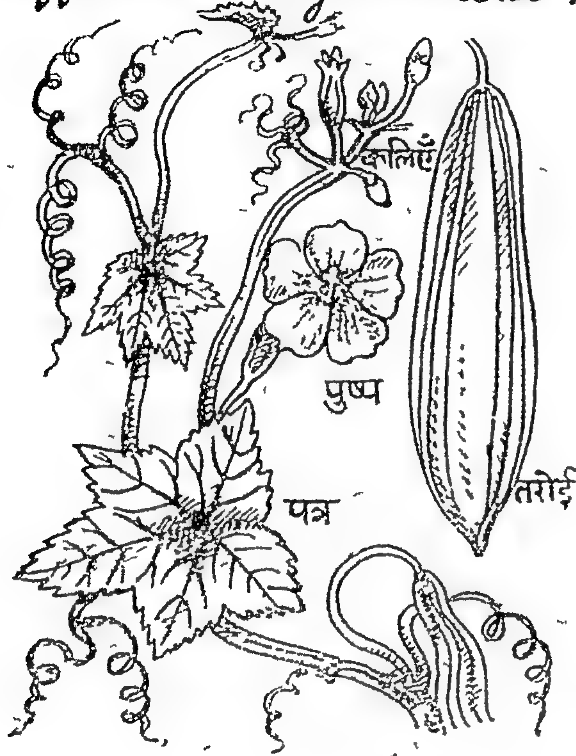


नाम—

सं०—धामार्गव राजकोशातकी, धाराफला इ०। हि०-तोरई तरोई, तोरी, झिगा। म०-दोडकी, शिराली। गु०—तुरिया। ब०—घोषालता। अ०—(Ribbed luffa)

झिंगा तोरई

Luffa acutangula Roxb.



रिव्डलूफा, (Towel gourd) टावेलगार्ड ले०—लूफा, एक्युटंगुला।

गुण धर्म व प्रयोग —

मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, पित्तशामक, कफवातवर्धक, हृद्य, मृदुरेचक, दीपन, कुछ मूत्रल, कृमिनाशक, तथा रक्तपित्त, ज्वर, कुष्ठादि-विकारो मे पथ्यकर व उपयोगी है।

उष्ण-प्रकृति वालो को एव पित्तजव्याधियो मे, तथा सुजाक, श्वास, रक्तमूत्र, अर्श आदि मे इसका शाक विशेष पथ्यकर एव हितकर है। घिया तोरई की अपेक्षा यह शीघ्र पाकी होती है। शाक बनाते समय इसके ऊपर का मुलायम छिलका नही निकालना चाहिये। तथा वाष्प पर उबाल कर इसे बनाना उत्तम होता है।

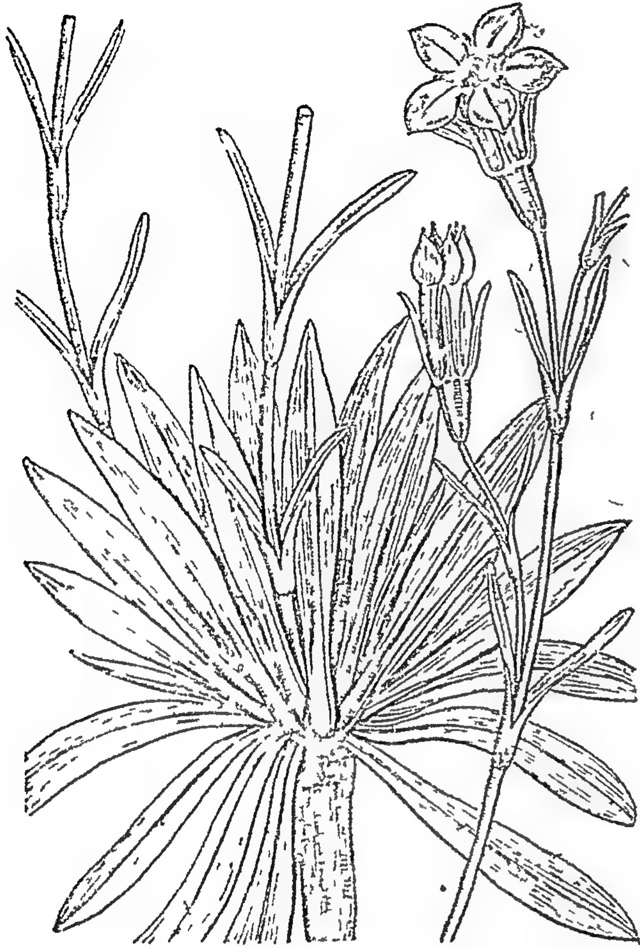
इसके जो कडे बीज हो उन्हे निकाल देना चाहिये। वे विरेचक एवं वामक होते हैं। इसके पत्तो का मरहम बनाकर व्रणो पर लगाते है, उनका शीघ्र रोपण होता है। इसकी जड को एरंडी-तैल मे पकाकर, उसे बगल एव जाघ की सधियो मे होने वाली बदगाठ पर लगाते है। पत्तो को पीस कर अर्श पर लगाते हैं। अश्मरी (पथरी) पर—इसकी जड को गोदुग्ध मे या शीतजल मे पीस छान कर प्रात पिलाते है। ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। नेत्र-पलको की फु सियो पर पत्तों का स्वरस नेत्रो मे डालते हैं।

तोरी-दे०—सरसो मे (सफेद सरसो)

त्रायमाण नं० १ (*GENTIANA KURROO*)

गुडूच्यादिवर्ग एव भूनिम्ब—कुल (Gentianaceae) के इसके छोटे-छोटे क्षुप ६-७अ गुल ऊ चे, पहाड़ी चट्टानो के बीच-बीच के गड्ढो मे मोटे मूलस्तभ (Root Stock) वाले होते हैं। पत्र—मूल से निकले हुए या मूलीय कोपमय आधार वाले, २-५ इ च लम्बे, रेखाकार, कम चौडे होते हैं। जड के समीप के पत्र, काण्डपत्रो की अपेक्षा बडे होते हैं। पुष्प—शरद ऋतु मे, मध्य भाग से निकले हुए लगभग ६ इ च लम्बे पुष्पदण्ड पर नीले रग की श्वेत चित्तिया या विन्दुओ-युक्त सुन्दर २-३ लगते हैं। फलिया—१८-मि. मि लम्बी, ५ मि मि चौडी, सामान्यस्फोटी प्रकार की (Capsules) होती है। बीज—चौडाई की अपेक्षा दुगुने लम्बे होते है। भौमिक-काण्ड (Rhizoma) बेलनाकार, व्यास मे २ से २॥ सें. मी. अग्रभाग पर वलयाकार रेखाओ से युक्त होता है।

मूल—हलके पीले रग का, चतुष्कोण, जमीन में ४-६ अ गुल गहरा जाता है। इसकी जड़ पर तथा भौमिक काड के अग्रिम भाग को छोड कर, शेष भाग पर लम्बी झुर्रीदार रेखाये होती है। उक्त भौमिक काड एव मूल बाह्यत. हलके पीले या भूरे रग से लेकर गाढ़े भूरे रग के होते है। चिकित्सा मे इसके भौमिक काड या तने तथा मूल का व्यवहार किया जाता है। इनके छोटे-छोटे टुकडे बाजार मे मिलते है।



गाफिस देशी

GENTIANA KURROO ROYLE

त्रायमाण बूटी के विषय मे बहुत मतभेद है। सुप्रसिद्ध विज्ञ चिकित्सको द्वारा स्वीकृत त्रायमाण के विषय का ही वर्णन हम प्रस्तुत प्रसङ्ग मे कर रहे है। भिन्न-भिन्न बूटिया जो त्रायमाण नाम से व्यवहृत हैं उनका भी वर्णन प्रसंगानुसार यही पर आगे किया जाता है।

प्रस्तुत प्रसङ्ग का त्रायमाण ही कुटकी तथा ईरानी विदेशिय जेंशियन (गाफिस) नाम से ईरान मे होने वाला जेंशियाना डेहारिका (Gentiana Daharica) या डेल्फीनम जलील-(Delphinium zalil) के स्थान पर बहुधा प्रयोग मे लाया जाता है। वस्तुत. यह बूटी ईरान मे पाई जाने वाली हकीमो की प्रसिद्ध बूटी गाफिस की भारतीय उपजाति है। अत इसे भारतीय या देशी गाफिस कहा जाता है। काश्मीर मे इसका स्थानिक नाम 'त्रामाण' है। तथा यही आयुर्वेदोक्त 'त्रायमाण' कहा जा सकता है। पजाब के बाजारो में यह इसी नाम से प्राप्त होता है।

यह बूटी काश्मीर एव उत्तर पश्चिम हिमाचल प्रदेशो मे ५ मे ११ हजार फुट की ऊंचाई पर, पहाडी ढालो पर बहुतायत से पाई जाती है।

तिक्त, सारक आदि गुण तथा ज्वर, गुल्म-आदि मे विशेष लाभदायक होने के कारण एव पर्वतीय स्थानो पर होने से इस अत्यन्त उपयोगी द्रव्य ही के प्राचीन त्रायमाण होने की अधिक सभावना है।

चरक के तिक्तस्कन्ध मे तथा सुश्रुत के लाक्षादि गणों मे इसका उल्लेख है। तथा चरक के चि स्थान अ ३ मे ज्वर पर, अ. ४ मे रक्तपित्त पर, अ ५ मे गुल्म पर, अ ७ मे कुष्ठ पर, अ ८ मे राजयक्ष्मा पर, अ ९ मे उन्माद पर, अ. १५ मे ग्रहणी पर, अ. १६ मे पाडुरोग पर, अ १८ मे कास-रोग पर, अ १९ मे अतिसार पर, अ २१ मे विसर्प पर व अ ३० मे स्तन्य-शुद्धि के लिये इसका योजना अन्यान्य द्रव्यो के साथ की गई है।

नाम—

सं —त्रायमाण, त्रायन्ती, गिरिसानुजा, बलभद्रा। हि०—त्रायमाण, करू, नीलकठ, तीता, कडू इ। यूनानी—गाफिस। म त्रायमाण। अ.—Indian Gentian root। ले०—जेंशियाना कुरू।

रासायनिक सघटन—

इसमे एक तिक्त द्रव्य, तथा एक राल के समान पीले रङ्ग का स्वादहीन पदार्थ २० / पाया जाता है। इसमे जेंशियोपिरिन (Gentiopierin) नामक तिक्त द्रव्य, जो विदेशी जेंशियन मे पाया है, वह नही होता। इसके ताजे मूल से वह शायद प्राप्त हो सकता है।

इसके अतिरिक्त इसमे जेंशियानिक एसिड, पेक्टिन आदि पाये जाते है। इसमे टेनिन नही होता।

प्रयोज्याग—पचाग और मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफवात-शामक, पित्तसशोधक, दीपन, आमपाचन, पित्त-

सारक, अनुलोमन, रक्तशोधक, कृमिघ्न, शोथहर, कटु-पौष्टिक, ज्वरघ्न, मूत्रल, स्तन्यशोधन, स्वेदल, कुष्ठघ्न, व्रण शोधन व रोपण आदि गुणधर्म विशिष्ट है।

अग्निमांद्य, आमदोष, यकृद्विकार, अर्श, आध्मान, शूल, गुल्म, उदर-रोग, रक्तविकार, भ्रमविकार, मूत्रकृच्छ्र, कष्टार्त्तव, पाडु तथा उत्तरोत्तर दौर्बल्य मे प्रयुक्त होता है।

यह कटुपौष्टिक है। तथा इससे आमाशयिक रसो की अभिवृद्धि होने से क्षुधा बढती है। अधिक मात्रा मे यह विरेचक है। स्वाद और गन्ध मे अप्रिय न होने से अनेक वल्य एवं पाचक औषधियो के साथ इसका प्रयोग किया जाता है। टेनिन इसमे न होने से यह ग्राही भी नहीं है। अत ज्वर मे यह विशेष लाभकारी है।

१ ज्वर पर—इसके साथ कुटकी, मोथा, लाल-चन्दन-खस, सारिवा, पटोलपत्र, मुलैठी और महुये के फूल १-१ तो. लेकर, क्वाथ बनाकर, ठडा कर उसमे शहद मिला पीने से कफपित्त ज्वर नष्ट होता है। (ग० नि०)

२ हारिद्रक सन्निपात—(पाण्डु ज्वर)—इसके साथ मुलैठी, पीपलामूल, मोथा, अडूसा, गिलोय, नीम की छाल और चिरायता, इनके क्वाथ को ठडा कर शहद मिला, सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है। (ग० नि०)

३ सततादि ज्वरो—मे वातादि दोषो की शाति के लिये इसके साथ कुटकी, अनन्तमूल और सारिवा क्वाथ सेवन करावे। (व० से०, यो र)

४. पैत्तिक ज्वर पर—इसके साथ, पित्तपापडा, खस, कुटकी, नीम की छाल और धमासा, मिला क्वाथ सिद्ध कर शहद मिला पिलाने से लाभ होता है। (यो० चि०)

इसके साथ—मुलेठी, पिपरामूल, चिरायता, मोथा, महुए के फूल और बहेडा मिला, क्वाथ सिद्ध कर उसमें खाड मिला सेवन कराावें। (भैं० र०)

५ पैत्तिक गुल्म पर—इसे ८ तो की मात्रा मे लेकर लगभग १॥ सेर पानी मे पकावे। पाव सेर तक पानी शेष रहने पर छान लें। रोगी को प्रथम विरेचनादि द्वारा शरीर-शुद्धि करा देने के पश्चात् उक्त क्वाथ मे समभाग दूध मिलाकर मन्दोष्ण पिलाकर ऊपर से यथा शक्ति उष्ण दूध पिलावें। पित्तज गुल्म की निवृत्ति होती है। (वा भ चि स्था १४, च चि. अ० ५)

६ पैत्तिक शूल पर—इसके साथ पीपरामूल, निसोत, मुलैठी, सोठ, अमलतास हरड, मुनक्का और पियाबासा मिला क्वाथ सिद्धकर सेवन करावे। (वृ नि. र)

७ विसर्प पर—इसके साथ पटोल-पत्र, पित्तपापडा, धमासा और कुटकी को जवकुटकर रात को पानी मे भिगो दें। प्रात मन्दाग्नि पर पकाकर छानकर सेवन करे। द्वन्द्वज, विषम एव अन्य सर्व प्रकार के विसर्प नष्ट होते है। यदि इसमे शुद्ध गूगल मिला लिया जावे तो और भी अधिक गुणकारी होता है। (भा भै र)

८ स्तन्य शुद्धि के लिए—यदि बालक की माता का दूध भारी हो तो उसे इसके साथ गिलोय, नीम की छाल, पटोल, एव त्रिफला मिला क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावे। (च० सं० चि० अ० ३०)

विशिष्ट योग—

९ विद्रधि, गुल्म, विसर्प आदि पर—त्रायन्त्यादि क्वाथ—इसके साथ त्रिफला, नीम-छाल, कुटकी और मुलैठी १-१ भाग निसोत और पटोल ४-४ भाग तथा छिलके रहित मसूर ८ भाग लेकर क्वाथ कर घृत मिला सेवन से विद्रधि, गुल्म, विसर्प, दाह, मोह, मद, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, वमन, हृद्रोग, रक्तपित्त, कुष्ठ और कामला का नाश होता है। (वा० भ० चि० अ० २३)

१० त्रायमाणाद्य घृतम्—त्रायमाण १६ तो. को १० गुने जल मे पका ३२ तो जल शेष रहने पर, छान लें। कल्कार्थ-कुटकी, मोथा, त्रायमाण, धमासा, मुनक्का, भुई आमला, खस, जीवन्ता, लाल-चन्दन, और नीलोफर १-१ तो. जल के साथ पीस ले। पश्चात् उक्त क्वाथ मे यह कल्क तथा गोघृत, आमले का रस और गोदुग्ध ३२-३२ तो. मिला, यथा-विधि घृत सिद्ध कर लें।

मात्रा-३ तो. सेवन से पित्तज व रक्तज-गुल्म, विसर्प, पित्त-ज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्ठ नष्ट होता है। (च०स०चि०अ० ५०)

११ तिक्तक घृतम्-त्रायमाणा, पटोल पत्र, कुटकी, नीम-छाल, दारु हल्दा, पाठा, धमासा, पित्त पापडा, ४-४ तो जौकुट कर ६३ सेर जल मे पकावे, ६४ तो. पानी शेष रहने पर, छान कर उसमे त्रायमाण, मोथा, चिरायता, इन्द्रजौ, पीपल, और चन्दन १-१ तो का कल्क तथा ५० तो घृत मिला कर घृत सिद्ध कर ले। यह घृत-पित्त कुष्ठ, वीसर्प, पिटिका, दाह, तृष्णा, भ्रम, खुजली, पाडु, नाडीव्रण (नासूर) अपची (गण्डमाला), विस्फोटक, विद्रधि, गुल्म, शोथ, उन्माद, मद, हृद्रोग, तिमिर, व्यग, ग्रहणी, अर्श व रक्तपित्तादि नाशक है। (ग नि)

१२ त्रायमाणासव–कास, श्वासदिनाशक। त्राय-माण, कायफल, दन्ती, पोहकरमूल, कटेरी, (छोटी), धमासा, रसौत (रसाजन), वडी कटेरी, पीपलामूल, आमला, वायबिडग, भारगी, मकोय, एलुवा, हरड, कचूर व इन्द्रायण प्रत्येक ३२-३२ तो जौकुट कर, १ मन १२ सेर जल मे पका, १३ सेर क्वाथ जल शेष रहने पर छान कर, शुद्ध सधान-पात्र में भर, ठडा होने पर उसमे शहद १७ सेर, धाय के फूल १ सेर, छोटी-पीपल १६ तो. तथा इलायची (बडी), दालचीनी, तेजपात और नाग केसर ८-८ तो चूर्ण कर मिलावें। मुख-सधान कर, १ मास पश्चात् छान लें। १ से २ तो. तक समभाग जल मे मिला सेवन से कास, श्वास, हृद्रोग, गुल्म, अर्श और सन्निपात ज्वर नष्ट होता है। आसवा-रिष्ट के अन्य योग हमारे बृ०आसवारिष्ट सग्रह मे देखें।

१३. घनसत्व–इसका घनसत्व (Ext gent.Ind.) भी निकाला जाता है। इस सत्व की सुरक्षा के लिये इसे ठडे स्थान मे रखते तथा नमी से बचाते हैं। मात्रा-२ से ८ ग्रेन (१ से ४ र०) है। यह भी उक्त विकारो मे पूर्ण लाभ पहुंचाता है।

नोट – मात्रा-चूर्ण ५ से १५ रत्ती तक। स्वरस १-२ तो०। अधिक मात्रा मे देने से यह अधिक दस्त लाता तथा प्लीहा को भी हानिकारक है। विदाहयुक्त शोथ पर इसे जौ के साथ पीस कर लेप करें।

त्रायमाण नं० ३ (*GENTIANA DAHURICA*)

यह भी भूनिब-कुल (Gentianaceae) का है। इस क्षुप के पत्र छोटे, पीताभ, पुष्प–चमकीले, पीतवर्ण के, मृदु रोमश तथा निम्न पृष्ठ भाग पर कोमल कटक-युक्त, फल-छोटे-छोटे, त्रिकोष्ठयुक्त, सिरा जाल से व्याप्त, नोकदार, डठल युक्त, बीज-हलके-भूरे रग के, कोण युक्त होते है। मूल–लम्बी होती है।

यह-बूटी विशेषत अफगानिस्तान, तथा पर्शिया के बदगीज, खोरासान आदि देशो मे बहुतायत से पैदा होती है। भारत के काश्मीर तथा पजाब की ओर भी यह पैदा होती है।

इस बूटी का अन्य भेद वत्सनाभ-कुल (Ranun--culaceae) का है। नाम उक्त न. २ के और इसके प्राय समान ही है–

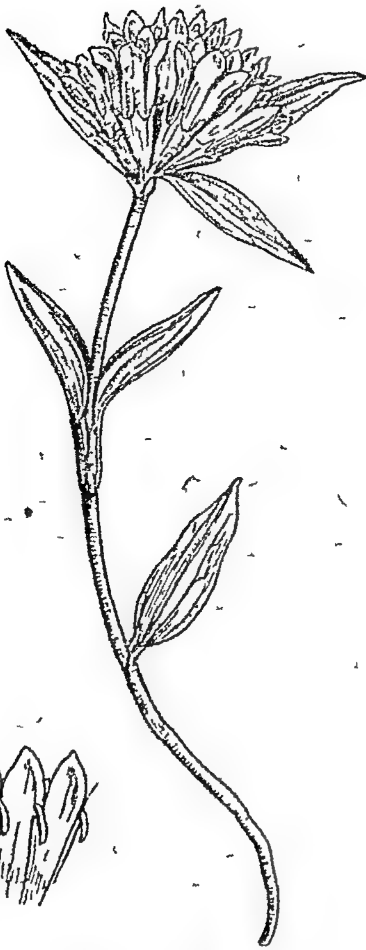
हिन्दी मे–त्रायमाण, गाफिस, असवर्ग, गुल जलील आदि, किंतु लेटिन मे उक्त न० २ का जशियना डाहु-रिका और इसका डेलफीनियम जलील (Delphinium zalil) है।

इस बूटी के बहुवर्षायु क्षुप १–२ फुट ऊचे, कुछ जमीन पर फैले हुए से होते हैं।

पत्र–मूल से सम्बन्धित २ से ६ इच व्यास के ५ से ६ विभाग-युक्त, पुष्प–हलके नीले, लगभग ½ इंच लम्बे, अनेक शाखा युक्त मजरी मे, फल–त्रिकोष्ठयुक्त होते है।

बाजार मे इसके तथा उक्त न० २ के भी पचाङ्ग के मिश्रित टुकडे मिलते हैं। इनका रंग-किंचित् हरिताभ पीतवर्ण का, पुराना होने पर श्याम वर्ण का होता है। ताजे टुकडो मे शहद जैसी सुगध आती है। इन्हे पानी मे डालने से पानी पीला व कडुवा हो जाता है। पहले रगरेज लोग इसे कपडे रगने के काम मे लाते थे। विशेषत रेशमी कपडे इससे रगे जाते थे।

एक अन्य विदेशीय त्रायमाण और होता है, उसे भी गाफिस तथा लेटिन मे जेशियाना ओलिव्हिएरी Gentiana Olivieri कहते है। कोई कोई इसे ही वा–



गाफिस (गुले गाफिस)
GENTIANA DAHURICA FISCH

स्तविक गाफिस बतलाते हैं। इसकी ही एक भारतीय जाति पजाब की ओर होती है, जिसे लेटिन मे डेलीफीनियम सैरीकुली (Delphininum Sariculae) कहते है। इन सबके पंचाङ्ग के टुकडे प्राय उक्त जैसे ही होते हैं।

नाम—

हि०—गायमाण, असवर, गाफिस, जरीर, असवर्ग। ब०—गुल जलील। ले०—जेंशिआना डाहुरिका, डेलफीनियम जलील आदि।

रासायनिक संघटन—

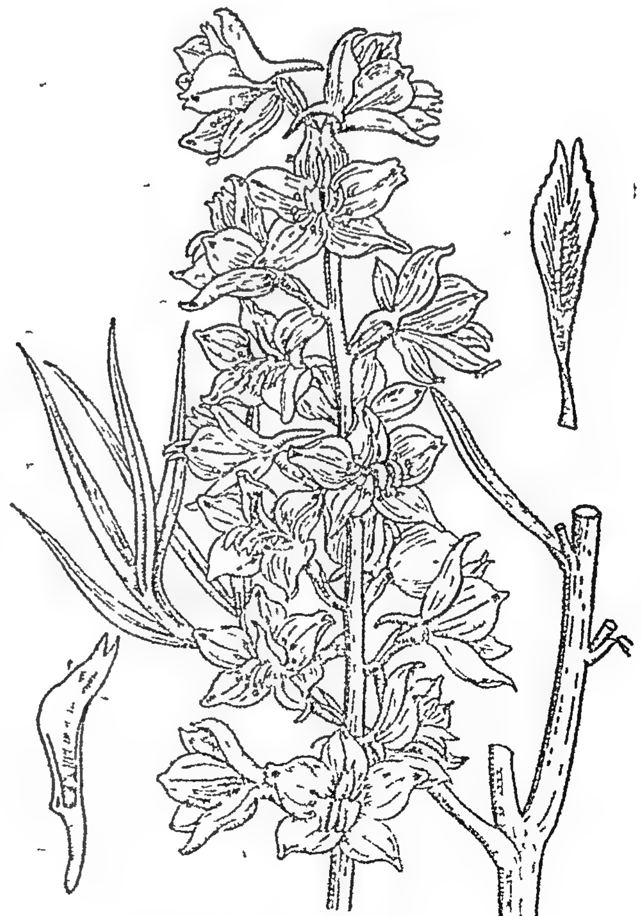
उक्त बूटियो मे प्राय आइसोरहेम्नेटीन (Isorhamnetin), केर्सेटीन (Quercetin) तथा सम्भवत केम्फेराल (Kaempherol) नामक तत्त्व पाये जाते हैं। (श्री गगासहाय पाडे)

गुणधर्म व प्रयोग—

कटु पौष्टिक, उष्ण-वीर्य, मूत्रल, कोष्ठवात-प्रशमन, लेखन, सशोधन, वातानुलोमक, दीपन, वेदनाहर, व्रण-शोधन, रोपण, शोथहर। पित्तस्रावक होने से, पाचन-क्रिया उत्तेजित हो, क्षुधा-वृद्धि होती है, शौच साफ होता है।

इसका फाण्ट या क्वाथ—पित्त-ज्वर, जीर्ण-ज्वर, अजीर्ण, आध्मान, अग्निमाद्य, उदरशूल, अर्श, कामला, प्लीहावृद्धि, शोथ, उदर-रोग आदि मे सफलता से दिया जाता है।

खुजली, दाद, जखम आदि त्वचा के रोगो पर इसकी राख नीबू-रस मे या घृत मे मिलाकर लगाते हैं।



हि०-असवर्ग, फा०-जरीर।
DELPHINIUM ZALIL AITCH

उष्ण-वेदनायुक्त शोथ पर—इसके क्वाथ मे जौ का आटा मिला, पुल्टिस बनाकर बाधते हैं।

प्लीहा-वृद्धि, जलोदर तथा कामला-रोग पर—इसे मुनक्का के साथ उबाल कर, ३ दिन पिलाते है लाभ होने पर और भी अधिक दिन तक इस प्रयोग को जारी रखते है। अथवा—इसे २। तो० की मात्रा मे पीसकर शहद के साथ चटाते है।

रक्तपित्त पर—इसके क्वाथ तथा इसी के कल्क से गोघृत को सिद्ध कर उसे सेवन कराते है। घृत से कल्क चतुर्थांश तथा क्वाथ ४ गुना लिया जाता है। ऊर्ध्व-रक्तपित्त मे-इसके चूर्ण मे शहद और मिश्री अधिक प्रमाण मे मिला विरेचनार्थ देते है।

ज्वर और विसर्प मे—इसे दूध के साथ विरेचनार्थ देते हैं।

पैत्तिक गुल्म पर—इसे १ तो० तक लेकर क्वाथ सिद्ध कर उसमे समभाग गरम दूध मिला, सुखोष्ण पिलाने तथा ऊपर से और भी दूध पिलाने से विरेचन होकर दोष निवृत्ति हो रोग शमन होता है।

पैत्तिक अतिसार मे भी इसे इसी प्रकार देते है।

दुष्ट-व्रणो पर—जो शीघ्र रोपण नही होते, उन पर इसे सूकरवसा (सूअर की चर्बी) मे मिला कर लेप करते है।

इसके पचाग की राख शामक एव कीटाणु-नाशक है। इसके शेष प्रयोग त्रायमाण न० १ के अनुसार ही किये जाते है।

मात्रा—क्वाथ या फाण्ट के लिये १½ मा० से ३ मा० या १½ तो० तक। चूर्ण-४ से १० मा० तक।

अधिक मात्रा मे देने से प्लीहा तथा अण्डकोषो के लिये हानिकर है। हानि-निवारणार्थ अनीसून (सौफ) का अर्क देते है। अधिक मात्रा मे यह सिर-दर्द भी पैदा करता है—इस पर सिकंजबीन देते है। इसका प्रतिनिधि मजीठ है।

कुछ वैद्यगण ममीरी (Thalictrum Foliolosum) जो वत्सनाभ कुल का ही है, त्रायमाण मानते हैं। इसका विस्तृत विवरण यथास्थान पियारागा या ममीरी मे देखिये।

कुछ बगीय वैद्यगण तथा डॉ० चोपडा ने भी उदुम्बर जाति के Ficus Hetrophylla को ही त्रायमाण मान रक्खा है। वे उक्त उदुम्बर जातीय—जलाडूमर, भुईडूमर या इसके भेद 'पाखुर' का प्रयोग त्रायमाण के नाम से करते है। इसका विशेष खुलासा 'पाखुर' के प्रकरण मे देखें।

त्रिकटक—दे०—गोखुरु (छोटा)। त्रिवृत्—दे० —निसोथ।

थंथार (*RHAMNUS VIRGATA ROXB*)

वदर-कुल[1] (Rhamnaceae) के इसके क्षुप या छोटे वृक्ष होते है, जिनमे प्राय दो शाखाओ के बीच एक दृढ कटक होता है। छाल पतली, चिकनी, चमकदार होती, तथा छूट कर आडी दिशा मे लपेट उठती है। पत्र—कुछ-कुछ विपरीत, टहनियो पर समूहबद्ध, ½-२ इञ्च लम्बे, १-२ इञ्च चौडे, प्राय लट्वाकार व भालाकार तथा पतली झिल्ली के समान होते है। फल—व्यास मे १॥-२॥ इञ्च, गोल होते है। ३ से ९ हजार फीट ऊचाई के बीच जौनसार जिले मे तथा देहरादून के विदाल नाला पर भी ये वृक्ष पाये जाते है। 'थथार' जौनसार का हिन्दी नाम है।

इसके फल कटु वामक व रेचक होते तथा प्लीहा-विकार मे दिए जाते है।

नोट—दक्षिण भारत मे इसकी दूसरी जाति Rhamnus Wightii (लेटिन नाम की) होती हैं- जिसकी रक्त-त्वचा रक्तरोहिड़ा नाम से बिकती है।

इसकी कुछ विलायती जातिया भी होती हैं, जिसकी रक्ताभ छालो का पाश्चात्य-चिकित्सा मे कैस्केरा सैग्रेडा

[1] इस कुल का विवरण 'उन्नाव' भाग १ में या आगे 'बेर' के प्रकरण मे देखें।



थथार (चडुवा चेदवेला)
RHAMNUS D HURICUS PALL

(Cascara Sagrada) और एल्डर वकथार्न (Alder-Buckthorn) के नाम से रेचक रूप मे प्रयोग होती है। (व० दर्शिका से साभार उद्धृत)

इसका विशेष विवरण यथास्थान 'रक्त-रोहिडा' के प्रकरण मे देखिये।

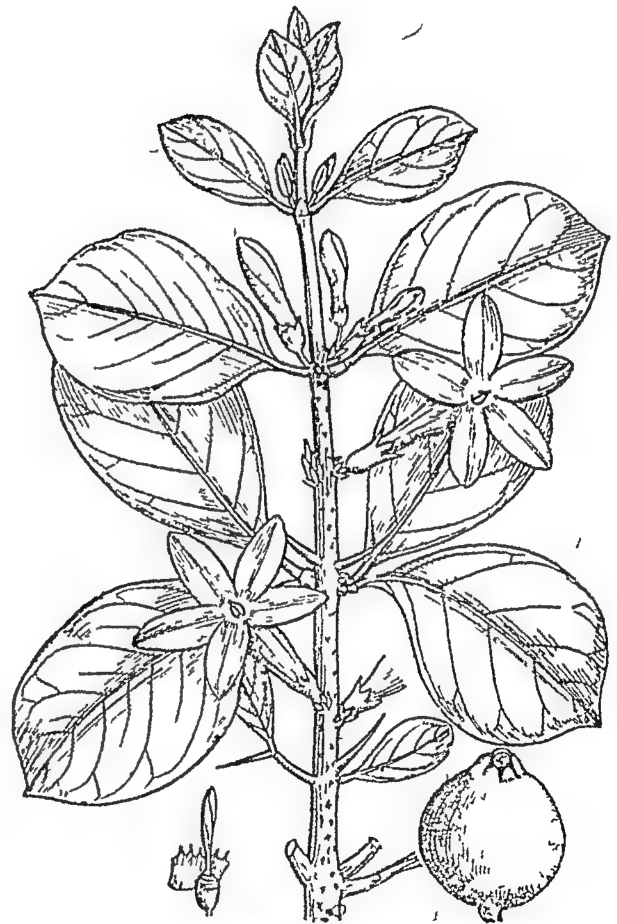
थनैला

(GARDENIA TURGIDA)

मजिष्ठ कुल (Rubiaceae) के इसके छोटे-छोटे काटेद र वृक्ष होते हे। शाखाए मोटी और पत्र कोणीय (पत्रकोण मे स्थित Axillary) काटे सीधे सख्त तथा प्राय पत्रयुक्त (Leafy) होते है। छाल चिकनी व नीलाभ श्वेत, पत्ती १-४ इञ्च लम्बी एव विभिन्न आकार की होती है। फल–कपित्थ (कैथ) फल के समान, व्यास मे १-२ इञ्च, गोल व चिकना होता है। फल प्राय स्तनपाक मे लिया जाता है, इमीसे इमका थनैला नाम पडा हे। कुछ लोगो का कहना है कि यदि गर्मी के दिनो मे काण्ड को एक स्थान पर पकड लिया जाय तो वृक्ष तथा पत्तियो मे कम्पन पैदा हो जाता है।

इमके वृक्ष देहरादून मे कम परन्तु सहारनपुर व शिवालिक मे अधिक पाये जाते है।

(व० दर्शिका से साभार उद्धृत)



थनैला
GARDENIA TURGIDA ROXB

वम्बई की ओर इसे खुरपेड़ा तथा लेटिन मे गार्डेनिया टुरगिडा कहते हे।

यह वालको के अजीर्ण-रोग मे भी उपयोगी हे। स्तनपाक मे फल के गूदे की पुल्टिस वाधते है।

थूनेर—दे०—गठिवन मे।

थकार[1] (Thakar)

यह मनुष्य के आकार का एक वृक्ष है, जो बंगाल मे अधिक होता है। शाखाएं गठीली व विकीर्ण होती है। इसकी प्रत्येक गाठ पर एक या दो बारीक शाखाएं होती ह, जिन पर छोटे छोटे पत्र लगे होते हैं। स्वाद मे ये तिक्त एवं किंचित् कषाय (कसैले) होते हैं। फूल छोटा, श्वेत वर्ण का होता है।

गुणधर्म व प्रयोग--

यह दूसरे दर्जे मे उष्ण एवं रूक्ष है। स्वेदन और वेदनाहर है।

श्लेष्म-ज्वर और अगवेदना (विशेषत हाथ-पैर की वेदना) मे इसके पत्र ७ से १० मा० तक थोडी सी अद्रक के साथ पीसकर सेवन कराते है। इससे खूब खुलकर स्वेद आता, व कफ-ज्वर तथा अग-वेदना नष्ट हो जाती है। इसके पत्तो को जल मे क्वाथ कर अग-घात और अंग-वेदना के रोगियो को इसका बफारा देते हैं, जिससे पसीना आ जाय।

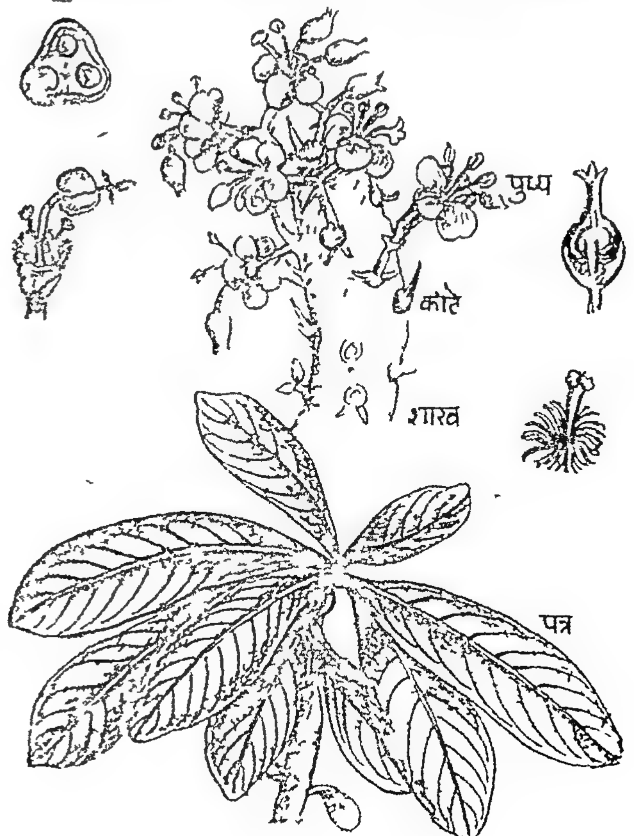
मात्रा--७ से ९ मा० तक। उष्ण-प्रकृति को अहितकर है। हानि-निवारणार्थ शीतल और तर द्रव्य देवे।

[1] इस बूटी के कुल, जाति तथा विशेष नामो का पता नही चलता। जैसा कुछ 'यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान' में इसके विषय में लिखा है, वही यहां साभार उद्धृत करते हैं। (लेखक)

थूहर (सेहुण्ड[1]) नं. १ (Euphorbia Nerifolia)

एरण्ड कुल (Euphorbiaceae) इसके--क्षुप १०-

थूहर(कांटा) -
EUPHORBIA NERIIFOLIA, LINN.



[1] इसके कई प्रकार हैं। एक प्रमुख सेहुंड वह है, जिसका कांड या दण्ड मोटा एव गोल तथा विशेष कटक युक्त होता है। उसी का वर्णन प्रस्तुत प्रसग मे किया जाता है। दूसरा सेहुंड वह होता है, जिसके दण्ड मे तीन और धारियाँ या कोर तथा जो पतला एवं सामान्य काटो से युक्त होता है। इसे थूहर तिधारा (E Antiquorium) कहते हैं, यह प्राय. रस कर्म मे विशेष उपयोगी होता है। इस तिधारा थूहर का भी एक भेद और होता है, जिसे E Trigona कहते हैं। तीसरा थूहर वह है जो उक्त नं १ का ही एक खास भेद है, जो मोटाई मे उससे कुछ कम तथा चारों ओर उभार या कोर तथा वैसा ही विशेष कटकयुक्त होता है। इसे चौधारा थूहर (सेहुण्ड) (E Niontra) कहते है। (चौधारा नामक एक अन्य बूटी तुलसी कुल की है उसका वर्णन चौधारा में देखिए)। इन तीनों से दूध निकलता है। चौथा वह है जिसे थूहर-खुरासानी या अगुलिया थूहर (E Tirucalli) कहते है। पांचवा थूहर पत्तगारा (E. Ligularia) है। तथा छठवा एक सेहुंड भेद-थोर, थुहर (E Roylcana) है। ७ वां थूहर नागफनी है। इन सबका वर्णन क्रमश आगे के प्रकरणों मे देखिये। भारत मे थूहर शब्द से प्राय ये उक्त ७ थूहर विवक्षित होते है। ये थूहर परस्पर नागफनी को छोड़कर प्रतिनिधि रूप से लिये जा सकते है। इनके अतिरिक्त और भी कई थूहर हैं, जो विदेशों में होते हैं।
--सम्पादक



१५ फुट ऊंचे, काड और शाखायें गोलाकार, पोली, गूदेदार, कण्टकित, (काड से लेकर शाखाओ के अग्रभाग तक स्थान-स्थान पर अंग्रेजी अक्षर 'वी' के आकार के) कांटे चौथाई से आध इंच तक लम्बे, जोडे मे होते है।

पत्र—शाखाओ के अन्त मे चारो ओर से पत्ते गुच्छाकार लगे रहते है। पत्र ६-१२ इंच लम्बे, स्थूल, मांसल, मोटे अग्रभाग मे कुछ गोल होते हैं। वसंतऋतु मे ये पत्र आते हैं तथा शीत या ग्रीष्म-काल मे झड़ जाते हैं। इसकी शाखा या पत्तो को तोड़ने से दूध निकलता है। इसके काट पर खडी या पेचदार घूमी हुई रेखाओ पर २-२ संयुक्त कांटो से युक्त उन्नत स्थान होता है।

पुष्प—लाल रङ्ग के या पीताभ श्वेत या हरिताभ-पीतवर्ण के कलगी पर विशेषत वर्षाऋतु मे लगते है। बीजकोष या फल-½ इंच तक चौडा होता है। इसकी शाखा तोडकर आर्द्र भूमि मे लगा देने से उसका क्षुप तैयार हो जाता है। बीज-चपटे व रोमश होते है।

यह प्रायः समस्त भारत वर्ष मे विशेषत. दक्षिण के पहाड़ी प्रदेशो मे तथा बगाल विहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिमोत्तर प्रदेश, पजाब, सिक्किम, भूटान आदि मे अधिक होता है।

विशेषतः ग्रामो की वाडों पर-बागो की चहार दीवारो पर सुरक्षार्थ इसे लगाते है।

(१) उक्त थूहर का ही एक खास भेद चौधारा या कट थूहर है, इसका वर्णन आगे के थूहर न० २ मे देखें।

सातला भी सेहुण्ड का एक भेद है। इसका वर्णन अन्तिम प्रकरण मे देखें।

(२) चरक के विरेचन, मूलिनी तथा सुश्रुत के अधो भागहर एव श्यामादि गणो मे इसकी गणना की गई है। चरक के कल्पस्थान अ० १० मे इसके विविध कल्पो के योग दिये है वे वही देखने योग्य है। प्रसङ्गानुसार उनमे से कुछ योग आगे देखिये।

(३) चरक तथा वाग्भट ने भी सेहुण्ड के तीक्ष्ण बहुकटक युक्त तथा तीक्ष्ण किंतु अल्पकटक युक्त ऐसे दो प्रकार दर्शाये हैं [1]। इनमे अल्प कटक की अपेक्षा बहु-कटक युक्त सेहुण्ड श्रेष्ठ होता है।

(४) इसके दुग्ध-सग्रह की विधि चरक तथा वाग्भट ने भी इस प्रकार बतलायी है—तीक्ष्ण एव बहुकंटक-युक्त सेहुण्ड के २ या ३ वर्ष के क्षुप को तीक्ष्ण शस्त्र से छेदकर शिशिर ऋतु के अन्त मे या शिशिर के पश्चात् दूध का सग्रह करले। कही कही शरदऋतु मे भी दूध-सग्रह का विधान है, किंतु उसे अपवाद समझना चाहिए।

(च क. अ. १०)

नाम—

स —स्नुही, (दोषों को बाहर निकालने वाली) स्नुक्, गुडा (गोलाकार), सुधा (श्वेत या अमृत सदृश दुग्ध युक्त) समन्त दुग्धा (सर्व अंगों में दुग्ध होने से) वज्री (वज्र जैसी तीक्ष्ण) सेहुण्ड, निस्त्रिंश पत्र (तलवार के सदृश पत्र) इ०।

हि०—सेहुण्ड, सेण्ड, थूहर, थोर, घोटा थूहर, कांटा थूहर इ०। म०—वड़ें निवडुंग, सावर-कांड, कांटे थोर। गु०—थोर डीडुलीयो, कांटली, सुंगराथोर। बं-मनसासीज अं—कामन मिल्क हेज (Common Milk hedge)। लै०—युफर्बिया नेरिफोलिया।

रासायनिक संगठन—

इसमे यूफर्बन (Euphorbon), राल, निर्यास, रवड के सदृश पदार्थ, कैलसियम मेलेट आदि पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—ताजा या शुष्क दुग्ध, मूल, काड, पत्र आदि।

गुण-धर्म व प्रयोग—

लघु (गुरु भी माना जाता है), स्निग्ध, तीक्ष्ण,

---

[1] "द्विविध. स मतो यश्च बहुभिश्चैव कण्टकैः।
सुतीक्ष्णै-कण्टकैरल्पै. प्रवरो बहुकण्टकः॥"
(च० क० अ० १०)

"सा श्रेष्ठा कण्टकैस्तीक्ष्णैर्बहुभिश्च समाचिता।"
(वाग्भट अ० २)

बंगला भाषा में बहुकंटक सहुड को मनसासीज तथा अल्पकण्टक को सोहन्न कहते हैं।

कटु, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफवातहर, दीपन, रेचन, (तीक्ष्णविरेचक द्रव्यो मे यह उत्तम माना गया है १), रक्तशोधक, कफनिःसारक,त्वग्दोषहरव व्रणशोधक हैं। मेद-रोग, उपदश, आमवात, वात-रक्त, शोथ, शूल, आमदोष आदि पर यह प्रयोजित है। इसके काड और पत्र वेदना-स्थापक हैं।

दूध—लघु, कटु, स्निग्ध, उष्णवीर्य एव–लेखन, क्षोभक है। त्वचा पर लगने से दाह होकर छाला या फोडा हो जाता है। इसे दद्रु आदि चर्म-रोगो मे लगाते है। क्लैव्य (ध्वजभग) पर इसे अन्य औषधियो के साथ मिलाकर शिश्न पर लगाते हैं। अर्शांकुरो पर इसका लेप करते अथवा दुग्ध भावित सूत्र से अकुरो को बाधते है। अकुर नष्ट होजाते हे, किंतु तीव्र वेदना सहनी पडती हे। आगे विशिष्ट योगो मे क्षार-सूत्र देखें।

दत-शूल मे—जहा शूल हो उसी स्थान पर इसे रुई के फाहे मे लगाकर रखते है। दातो को शीघ्र उखाड़ने के लिए दातो पर दूध टपकाया जाता है। व्रणो पर इसे घी के साथ मिलाकर लगाते हैं।

अग्निमाद्य, उदर रोगादि मे दुग्ध-प्रयोग-विधि—ध्यान रहे, सर्व विरेचन द्रव्यो मे यह तीक्ष्णतम विरेचन हे। यह दोषो के सघात को शीघ्र ही तोडता है, किंतु इसका सम्यक योग न हो तो अत्यत कष्ट होता है। (बार बार पानी जैसा मल त्याग व वमन होता है) अत मृदुकोष्ठ वाले पर इसका कभी प्रयोग न करना चाहिए। यदि दोष सचय अल्प ही हो तो भी इसका प्रयोग निषिद्ध हे। यदि अन्य किसी भी उपाय से काम न चलता हो तथा इसका प्रयोग करना परम आवश्यक ही हो तो इसका प्रयोग निम्नविधि से पाडु रोग, उदर, गुल्म, कुष्ठ, दूषीविष, शोथ, मधुमेह, दोष जन्य उन्माद, अपस्मार आदि चित्त-विभ्रम आदि रोग ग्रस्त सबल रोगियो पर ही इसका प्रयोग करें। यदि ठीक प्रकार से इसका प्रयोग हो तो यह दोषो के महान सचय को भी शीघ्र दूर करता है।

(चरक क० स्था० अ० १०)

रोगी को सेवनार्थ देने के पूर्व इस दुग्ध की शुद्धि चरक एव वाग्भटानुसार इस प्रकार है—

१ स्नुक्पयस्तीव्र विरेचनानाम् (च० सू० अ० २५)

बृहत्पचमूल (बेल, गभारी, पाढल, अरनी व अरलू वृक्षो के मूल) तथा बडी कटेरी और छोटी कटेरी, इन ७ द्रव्यो मे से किसी भी एक के क्वाथ मे, समभाग इसका दूध मिला, आग पर शुष्क करले। और छोटे बेर जैसी (आधुनिक काल मे चने जैसी) गोलियां बनाले। इनमे से १–१ गोली, सुविधानुसार काजी या सतुष यवकृत काजी या बेर का रस या आवले के रस या सुरा या दही के जल या बिजौरा नीबू के रस के साथ (उक्त रोगो मे) विरेचन कराने योग्य रोगी को पिलावे[१]। (च० क० अ० १०)।

अथवा—सोठ कालीमिर्च, पिप्पली, हरड, बहेडा, आवला, दन्तीमूल, चित्रक तथा निसोथ (चना, लौंग) इनमे से किसी भी एक के महीन चूर्ण को इसके दूध मे गूंथ कर (दूध की भावनाए देकर चना जैसी गोलिया बनाकर) रोगी के बलानुसार गुड के शर्बत के साथ पिलावे। अथवा—

निसोथ का क्वाथ, इसका दूध, घृत और राब इन्हे एकत्र कर लेहपाक कर विरेचनार्थ व्यक्ति को मात्रानुसार चटावें (अन्य रोग आगे दिए हुए प्रयोग मे देखे)।

(च० क० अ० १०)

नोट—वैसे तो इसके विशुष्क दूध की मात्रा १ रत्ती से ८ रत्ती तक है। किन्तु यथायोग्य मात्रा निश्चित करना बड़ी टेढी खीर है, इसीलिये उक्त प्रकार से इसका प्रयोग करना श्रेयस्कर है। उक्त चना, कालीमिर्च आदि द्रव्यो के चूर्ण को इसके दूध की ६ या ७ बार भावनाएं देकर छायाशुष्क कर लिया जाता है। इसे देने से विरेक होकर रोगजनक-दोषों का उत्सर्जन होता है। यह कफज-कास, श्वास, फिरंग, आमवात, जलोदर में एवं दीर्घ-कालीन रोग-ग्रस्तों को हितकारक है। अथवा—

दशमूल-क्वाथ और यह दूध समभाग लेकर आग पर पकावें। गाढ़ा हो जाने पर चने जैसी गोलियां बना लें। १-१ गोली गरम जल से देवें। अथवा इसके दूध में

१ हमारे अनुभव से रसेन्द्रसार-सग्रह में दी हुई इसकी शुद्धि उत्तम एवं सरल है—८ तो० इसके दूध मे, इमली के पत्तों का वस्त्रपूत रस १ या दो तो० तक मिट्टी के पात्र मे मिलाकर धूप में रख दें। शुष्क हो जाने पर उक्त चरकोक्त अनुपान के साथ सेवन करायें।

(सम्पादक)

समभाग सेंधा नमक मिला, धूप से शुष्क कर ले। मात्रा २-३ रत्ती तक, जल के साथ देवें।

गावो मे श्री० र० कार लिखते हैं कि "कई चिकित्सक वडे मोटे थूहर या कटथूहर के तने मे गड्डा कर उसमे लौंग या कालीमिर्च को महीन कपडे मे बाधी हुई पुटली को रखकर ऊपर से खड्डे को वन्द कर देते हैं। १४ दिन के बाद जब लौंग या मिर्च नरम हो जाती हैं, तब निकाल कर छाया-शुष्क कर लेते हैं। इसके सेवन से उदर-शुद्धि होती है।" इसके दूध की १ या २ बून्दे गुड मे मिला कर देने से भी उदर-शुद्धि होती, क्षुधा वढती है।

(१) उदर-रोग पर—छोटी पीपलो को इसके दूध की भावना देकर सुखा ले। नित्यप्रति २, ५, ७ या अधिक पीपलो को दूध मे पका, दूध पीना चाहिए और वे दुग्ध-पक्व पीपल भी खा लें। भूख-प्यास मे केवल दूध ही पीवे। शक्ति अनुसार पीपलो की संख्या बढाते जावे। इस कल्प प्रयोग से उदर-रोग नष्ट होता है।

स्नुहि-घृत योग—४ सेर गोदुग्ध मे १ सेर इसका दूध मिला, पकाकर, दही जमावे तथा उसे मथकर घृत निकाल ले। एक भाग इस घी मे दूध, गोमूत्र, गाय के गोबर का रस, दही और स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) का रस १—१ भाग मिला कर पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान ले। मात्रा—यह घृत ३ मा० की मात्रा में उदर-रोगी को विरेचनार्थ पिलाने से उदर-रोग नष्ट होता है। (भा० भै० र०)

उदर-रोगो पर चरक चि० अ० १३ के प्रयोग इस प्रकार हैं—

१२ सेर ६४ तो० गो के दूध में ३२ तो० इसके दूध को मिला, पका कर तथा जमा कर घृत निकाले। इस घृत मे चतुर्थांश निसोथ का कल्क और घृत से ४ गुना पानी मिलाकर पकावे। घृत-मात्र शेष रहने पर, छान २ या ३ मा० की मात्रा मे सेवन कराने से—अथवा—

उक्त प्रकार से दूध को जमाकर निकाले हुए ६४ तो० घृत मे गोदुग्ध ४ गुना और कल्कार्थ इसका दूध ४ तो० और निसोथ २४ तो० एकत्र मिला यथाविधि घृत सिद्ध कर मात्रा—३ मा० तक सेवन से—अथवा—

गव्य-घृत १२८ तो०, दही का पानी ६ सेर ३२ तो० और इसका दूध ४ तो० एकत्र मिलाकर घृत सिद्ध कर ले। मात्रा—३ मा० तक सेवन (उक्त तीन घृत योगो मे से किसी भी एक योग का सेवन कर) अनुपान रूप मे, प्रकृति, अग्निवल आदि का विचार कर पेया, दूध या मधुर मास-रस को पीवे। घी के जीर्ण एव उसके द्वारा रोगी को विरेचन हो जाने पर प्रथम दिन रूक्ष देह पुरुष लघु आहार के पश्चात् सोठ का क्वाथ अथवा उससे षडङ्ग पानीय[1] विधि के अनुसार साधित सुखोष्ण जल पीवें। दूसरे दिन इसी प्रकार घी के पच जाने पर और यथायोग्य विरेचन हो जाने पर लघु आहार के वाद पेया[2] पीवें। तीसरे दिन भी पचने पर और विरेचन होने पर लघु आहार के वाद कुलथी का यूष पीवें। इस प्रकार ३ दिन सेवन करे। यदि दोष अधिक हो, और रोगी वलवान हो, तो ३ दिन से अधिक भी इसी क्रम से पुनः-पुनः घृतपान कराया जाता है। कुशल वैद्य को चाहिए कि उक्त लाभकर घृतो को यथाविधि साधित कर गुल्म, उर-दोष एव अन्य उदर-रोगो की शाति के लिये रोगियो को प्रयोग करावे। (च० चि० अ० १३)

२. जलोदर पर—इसके दूध मे भुने हुए चनो की दीली फुला देवे, तथा २—२ मा० पीस कर शहद के साथ, प्रातः-साय सेवन करा, ऊपर से गरम दूध पिलावे। इससे मल-मूत्र द्वारा उदर का दूषित जल निकल कर पेट मुलायम होकर रोगी ठीक हो जाता है। इससे कभी-कभी वमन भी हो जाया करती है, गर्मी विशेष मालूम देती है, ऐसी दशा मे दूध पीना परमावश्यक होता है। (भा० गृ० चिकित्सा)

---

[1] २ तो० सोंठ-चूर्ण को ४ सेर जल मे पकावें। आधा जल शेष रहने पर छानकर पीने के काम मे लावे। यही षडङ्ग जल है। यह सोंठ का षडङ्ग जल हुआ। इसी प्रकार अन्य द्रव्यों का वनाते हैं।

[2] पेया—द्रव्य में ६ गुना अथवा १४ या १५ गुना जल मिला कर पतली फेन जैसी कुछ गाढ़ी लसदार चावल सहित औटाई हुई चीज को पेया कहते हैं। यह पचने में वहुत हल्की, मलमूत्रादि का स्तम्भन करने वाली है, और वल्य है। (लेखक)

३ मूत्रदाह पर—मूत्रप्रसेक-नलिका मे सूजन आने पर मूत्र की रुकावट होती, मूत्र बून्द-बून्द होता, या जलन होती है। सुजाक हुआ हो, तो पेशाब मे पीप भी आता है। ऐसी दशा मे चने के चूर्ण (बेसन) मे इसका दूध मिला गोली बनाकर, यथोचित मात्रा मे दी जाती है। इससे मलमूत्र की शुद्धि होती एव मूत्रदाह दूर होता है। (गा० औ० र०)

४ कामला पर—इसका दूध दो बून्द गुड मे मिलाकर प्रात देने से कामला शमन हो जाता है। भोजन मे दूध-भात दे। आवश्यकतानुसार यह प्रयोग २-३ दिन तक देना चाहिये। (गा० औ० र०)

५ छाजन (इसब, ब्युची, उकौत), मस्से, खाज, व्रण आदि पर—छाजन जो बहुत पुरानी व दु खदायी हो, उसमे भयकर खुजली चलती हो, तो उसके कीटाणुओ के नाशार्थ, उस पर प्रथम इसका दूध लगाते हैं, जिससे वह पक जाता है, फिर उस पर कपूर, कत्था और शतधौत घृत एकत्र मिलाकर बनाया हुआ मलहम लगाते है।

मस्से (Wart)—शरीर के किसी भी स्थान मे हुए हो, उन पर इसे सावधानी से (अन्य स्थान पर न लगने दे) लगाने से वह गिर जाते हे।

खाज (कण्डू) पर—इसका दूध, आक का दूध और धत्तूर-पत्र १–१ भाग लेकर सबको एकत्र गोमूत्र के साथ महीन पीस ले। इसे तैल मे मिला कर लेप करने से खाज तथा सिर के व्रण नष्ट होते हे। (व० से०)

६ अर्श, भगन्दर, नाडी-व्रण आदि पर—इसका दूध और हल्दी का चूर्ण समभाग एकत्र गोमूत्र के साथ पीस लेप करने तथा गौ-दुग्ध मे चित्रक-मूल का चूर्ण मिलाकर पीने और उसीके साथ पथ्य भोजन करने से अर्श नष्ट होता है। (भा० भै० र०)

भगन्दर, नासूर आदि पर—१ तो० इसके दूध के साथ, दारु हल्दी का चूर्ण १ तो० खरल करे। घोटते समय खरल धूप मे रहे। इसी प्रकार १० दिन तक, प्रतिदिन एक तो० दूध डालकर उसे खरल करें। फिर ७ दिनो तक उसी मे प्रतिदिन १–१ तो० अर्क-दुग्ध डालते हुए खरल कर पतली सलाई जैसी बत्तिया बना, छायाशुष्क कर ले। उस बत्ती को कठिन भगन्दर मे, नासूर—नाडीव्रण मे भीतर प्रवेश करे। इससे शीघ्र घाव शुद्ध होकर रोग आराम होता है। (अ० तन्त्र)

७ शिश्न शैथिल्य पर—इसके दूध और प्याज के अर्क (रस) मे महीन मलमल के कपडे को तीन बार भिगोकर सुखाले। फिर उसे अलसी के तैल मे ८ प्रहर (२४ घण्टे) पडा रक्खे। पश्चात् कामेन्द्रिय पर सुपारी वाले भाग को छोड कर और मक्खन लगाकर उस कपडे को लपेट दे। इस पट्टी को ३ घण्टे तक बधी रखकर खोल दे। इस प्रयोग मे शिथिलता नष्ट होकर शिश्न पुष्ट होता है। (व० च०)

८ मूढगर्भ (योनिमार्ग मे अयोग्य रीति से आया हुआ सर्वावयव सम्पन्न गर्भ—Mal-presentation of the Foetus) पर, तथा पशुओ के सीग या हड्डी के टूट जाने पर—

मूढगर्भ वाली स्त्री के सिर पर जरा सा यह दूध लगा देने से गर्भ तुरन्त निकल आता हे। (भा० भै० र०)

किसी पशु का सीग या हड्डी टूट गई हो, तो सन या पटसन की राख को इस दूध मे सान कर लेप कर, ऊपर से पट्टी बाध देते है।

९ पाददारी (बिवाई, Rhagades, cracks in the sole or hands) पर—यह दूध ५ तो० और सरसो-तैल २० तो० एकत्र मिला पकावे। तैल-मात्र शेष रहने पर छान ले। इस तैल मे सेधा नमक मिला लगाने से पैरो की बिवाई नष्ट होती है। कैसी भी भयङ्कर पाददारी हो शीघ्र ही लाभ होता है। (भा० भै० र०)

आगे नोट मे—'फरफियून' देखिये।

काण्ड (तना या शाखा)—

इसको आग पर गरम कर निकाला हुआ रस भी रेचक है, किन्तु दुग्ध जैसा तीव्र रेचक नही है। कफ-विकार नाशक है। आमवात, वातरक्त तथा वात-विकारो मे इसे देते है।

१० कफ-विकारो मे—काण्ड के टुकडो को पुटपाक-विधि से आग के भूभल में गाडकर भून ले। नरम हो जाने पर उसका रस निचोड ले। यह रस २ से ८ बून्द तक तथा अडूसे का रस ३ मा० और भुना सुहागा १ या २ रत्ती तक एकत्र शहद मिलाकर चटाने से कफ पतला पडकर निकल जाता है, तथा कास, श्वास, प्रतिश्याय आदि विकारों की शांति होती है।

इसका १ फुट लम्बा डंडा लेकर, चाकू से बीच का गूदा निकालकर खोखला कर, उसमे ५ तो० फिटकरी के टुकडे डालकर पुन निकाले हुए गूदे से उसे बन्द कर, कपरौटी कर १५ सेर कण्डो मे फूक दें। शीतल होने पर उसे निकाल कर पीस ले। १ रत्ती की मात्रा मे शहद मे मिला दिन में ३ बार चटाते रहने से श्वास, कास मे अपूर्व लाभ होता है।

अथवा—इसकी, काड या शाखा या चौवारा थूहर की शाखा का रस २-४ बून्द मक्खन या शहद मे मिला कर देने से अन्दर जमा हुआ कफ सरलता से निकलकर विकारो की शाति होती है। जीर्ण श्वास रोगी के लिये मात्रा अधिक देनी पड़ती है। कफ-प्रकोप सामान्य हो, तो इसकी शाखाओ को जलाकर, काली राख कर वह भी शहद के साथ दी जाती है।

छोटे बालको के कुकुर-कास आदि कफ-विकारो पर—इसका काण्ड लगभग ६ इञ्च लम्बा तोडकर, ऊपर के काटे निकाल डालें, तथा चूल्हे पर मद आच पर या गरम राख (भूभल) मे थोडी देर रखकर, उसका रस निचोड ले। फिर छानकर ३ मास से १ वर्ष तक के शिशु को चाय पीने के छोटे चम्मच मे आधा भर कर इस रस मे उतना ही माता का दूध मिला प्रात-सायं पिलावे। ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

१ से ३ वर्ष के बालक को १ पूरा चम्मच रस, समभाग जल मिला, प्रात-साय ६ दिन तक पिलावें। ३ वर्ष के ऊपर की अवस्था वाले युवा व वृद्धो के लिये यह रस २ चम्मच भर, समभाग जल के साथ ३ दिन तक, प्रात-साय पिलावे। अवश्य ही पूर्ण लाभ होता है। हमारा अनुभूत प्रयोग है। बच्चे का गला कफ से रुधा हो, तो उक्त स्वरस की ३ बून्दें व मधु ६ बून्दें एकत्र मिला, मुख के तालु व जीभ पर रगडे।

(११) आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, पक्षवध, अर्दित आदि वात-विकारो पर—कोमल काण्ड या शाखा के टुकडो से पुटपाक विधि से निकाले स्वरस मे समभाग तिल-तैल सिद्ध कर मर्दन करते है।

जीर्ण आमवात-जन्य संधि पीडा हों, तो उक्त स्वरस मे नीम के फलो (निबोली) का तैल मिला मर्दन करते हैं।

कर्णशूल मे—उक्त स्वरस की २-४ बून्दे कान मे डालते है। कान को शीत वायु एवं जल से बचाना चाहिये।

(१२) जाघे जुड जाने या जकड जाने पर—इस थूहर या चौवारे थूहर की शाखा के टुकडे कर १६ गुने जल मे उबालें। पीडित व्यक्ति के शरीर पर तैल की मालिश कर उसे बद कमरे मे खाट पर १-२ बोरा बिछा कर सुलावें या बैठावें। शिर को खुला रखे, शेष भाग कम्बल से ढक देवे, फिर उक्त थूहर के जल के घडे को खाट के नीचे रख कर बफारा देवें। इससे पसीना आकर जाघो की जकडन दूर होती, तथा रक्त मे रहा हुआ विष जल जाता है। स्वेदन के पश्चात् कण्डो की राख शरीर पर लगा देवे। (गा औ. र.।)

नोट—उक्त बफारे से शरीर के रोमरन्ध्र खुल कर जकडन एवं शरीर की रुधी हुई गर्मी निकल जाती हैं। शरीर पर ठण्डी हवा न लगने दें, ठण्डा जल न पीवें। घृत और चावल का पथ्य लेवें।

(१३) कामला पर—इसके ३ मा स्वरस मे ६ मा अदरख-रस और १ तो घी मिलाकर (शक्ति एव आयु के विचार से मात्रा घटा बढा कर) पिलाते हैं।

(१४) जलोदर पर—१० तो इस थूहर की महीन पीसी हुई चटनी मे पानी निकाला हुआ दही (दही को मोटे कपडे मे बाध कर लटका देने से पानी टपक २ कर निकल जाता है) ४० तो, सूक्ष्म पीसी हुई राई ६ मा., सेधा नमक १ तो, देशी कलमी नौसादर २ रत्ती लेकर, प्रथम उक्त थूहर के कल्क को पानी मे उबाल, कपडे मे डालकर निचोड़ लें। पानी फेंक दें और निचुडा हुआ कल्क दही मे मिला दें, तथा शेष सब चीजे भी मिला रायता सा

बना ले। इस सब रायते को गेहू की रोटी के साथ एक वार मे खाले (एक वार मे न खा सके तो २-३ वार करके खावें), फिर भूख लगने पर दही और रोटी खावे। घी, दूध, चीनी या अन्य कुछ भी न खावे। इस प्रकार नित्य सेवन करें, दस्त लगे तो रोटी वन्द कर दे, तथा उक्त रायते को सेधानमक युक्त खिचडी के साथ खावे। इस प्रकार ७ दिन (या इससे न्यूनाधिक दिन) सेवन करने से लाभ हो जाता है। थोडी बहुत कसर रहे तो वीच मे ३-४ दिन उक्त रायता खाना वन्द कर, केवल विना घी की खिचडी खाते रहे, और चौथे दिन से पुन उक्त रायते वाला प्रयोग प्रारभ कर दे। फिर पेट साफ होने और रोग मिटने तक इसे जारी रखे। इस प्रकार करने से जलोदर रोग का पानी मल व मूत्र-मार्ग से निकल कर रोगी स्वस्थ हो जावेगा, और फिर रोग के होने का भय भी नही रहेगा। इस प्रयोग को पूरा करने के वाद एक सप्ताह तक दही और खिचडी के सिवाय और कुछ भी न खाना चाहिये। (भा ज बूटी)

(१५) नाडीव्रण, दुष्ट व्रण तथा अर्बुद पर—इसी थूहर (न कि चौधारा थूहर) के काण्ड को ऊपर से छील कर अन्दर की मज्जा ५ तो के छोटे २ टुकडे कर कडाही मे खूब गरम किये हुए २० तो सरसो-तैल मे डाल देवे। जब वह पक कर लाल हो जाय तब उतार कर तैल छान लेवे।

इस तैल को भयकर व्रण, नाडी व्रण, मसाव्यव्रण मे कच्चा या पका हुआ कैसा भी हो, लगाने से लाभ होता है। किंतु व्रण को पानी से बचाना आवश्यक है। उस पर पानी न पडने पावे। अन्यथा वह ठीक नही होता। कर्णमूल-शोथ पर—इस तैल को दिन-रात मे ४ वार कान मे डाले तथा उस तैल की मालिश करे। वात-ज्वर, पित्त-ज्वर, वात-पित्त ज्वर मे इसकी मालिश से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

व्रण मे यदि दुर्गन्ध आती हो, कीडे पड गये हो, तो इसके काण्ड को [illegible] कुछ गरम कर बाधने से कृमि नष्ट होकर व्रण शुद्ध हो जाता है।

अर्बुद। शरीर के किसी भी भाग मे उठी हुई गोलाकार, कम पीडा वाली, गहरी, बहुत दिनो बाद बढने वाली ग्रथिल शोथ-Tumour) पर—काण्ड के टुकडो को पानी मे उबाल कर बफारा देवे। इस प्रकार भाप की सहायता से वार वार अर्बुद को गरम या स्वेदित कर, उस स्थान पर उन टुकडो को रख कर बाध देवें। इस प्रकार स्वेदित करते रहने से उसका नाश हो जाता है। श्लीपद पर भी यही क्रिया की जाती है।

(व०से०)

(१६) पागल कुत्ते के विष पर—इसके काण्ड के, गरम कर निकाले हुये स्वरस को १० तो तक पिलाने से विष का असर बहुत कुछ कम हो जाता है। पुन १-२ वार इसी प्रकार पिलाते तथा साथ ही साथ दही का घोल भी पिलाने से विष पूर्ण तया नष्ट होकर, रोगी स्वस्थ हो जाता है।—अथवा—

इसके डण्डे का गूदा, (काण्ड के भीतर की मज्जा) मे अदरख मिला कर खिलाने से भी लाभ होता है।

पत्र—इसके पत्ते अरुचिकर, चरपरे, दीपन, कुष्ठ, अष्ठीला, आध्मान, वात-शूल, शोथ, उदर-रोग, कफ-विकार, आम-वात आदि नाशक होते है। पत्र-रस-मूत्र-जनन है।

शोथवेदना-युक्त स्थान पर—पत्तो को गरम कर वाधते है। इससे सिद्ध किये हुए तैल का अभ्यग- वात व्याधियो मे करते है। कर्णशूल मे-पत्र-रस को गरम कर सुहाता हुआ डालते हैं। तमक श्वास मे—पत्र-रस शहद के साथ चटाते है। उदर-रोगी को विवन्ध होने पर, भोजन के पूर्व पत्तो का शाक खिलाते हैं। आम-वात मे भी इसके कोमल पत्तो को कतर कर, साग बना कर खिलाते हैं। इससे जीर्ण रोग जन्य वेदना व सधि-स्थानो का शोथ दूर होता है। किंतु रोगी को गुड शक्कर नही खाना चाहिये।

(१७) कफ-विकारो पर—पत्तो को आग पर सेक कर ३ तो रस निकाल उसमे भुना सुहागा २ रत्ती और शहद ४ तो० तक मिला, थोडा थोडा चटाते रहने से, कफ ढीला होकर निकल जाता है।

(१८) डिव्वा रोग (वालको की पसली चलना) पर इसके (विशेषत चौधारी थूहर के) पत्तो को आग पर गरम कर, रस निचोड कर उसमे थोडा एलुवा, बोल

छोटी हर्र अथवा रेवन्द चीनी या उसारे रेवन्द का चूर्ण मिला, आग पर पका कर, सहन करने योग्य इसका लेप पेट पर करे, नाभि पर इसे न लगावें। उससे कफ पतला होकर दस्त या मुख के रास्तो से निकल कर विकार की शांति होती है।

वड़ी अवस्था का रोगी निर्बल हो, तथा कफ-प्रकोप मे इसके काण्ड का उक्त प्रयोग नं०१० का सेवन उसके लिये यदि असह्य हो, तो इसके पत्र-रस के साथ अडूसा-पत्र-रस तथा सुहागे का फूला मिलाकर सेवन करे। अवश्य लाभ होता है।

वालको के कुक्कुर-कास (काली खासी, हूपिंग कफ) पर—इसके दो कोमल पत्तो को आग पर गरम कर रस निकाल, उसमे थोडा सेंधा नमक मिला पिलाते है।

(१९) कुष्ठ, दाह आदि पर—इसके पत्तो के साथ आक, चमेली करंज और धतूरा के हरे पत्ते समभाग लेकर सबको गोमूत्र मे पीस कर लेप करने से श्वित्र कुष्ठ, दाह, और व्रण का नाश होता है। —(वं०से०)

(२०) उदर-पीडा पर—कोमल पत्तो को महीन कतर कर, उसमे सेंधा नमक मिला कर खिलाने तथा उदर पर पत्तो को पीस मोटी रोटी सी बना, कुछ गरम कर बांधने से उदर नरम हो जाता है। आध्मान एवं मलावरोध दूर होता और वेदना शात होती है।

(२१) व्रणो पर—नवीन तथा पुराने कठिन व्रणो पर पत्तो को उबाल कर, पीस कर लेप करते रहने से वे ५-६ दिन मे नष्ट हो जाते है।

(२२) अर्श पर—पत्तो को आग पर सेक कर तथा मल कर गुदा पर बांधने से कृमि, खाज, शोथ एवं पीड़ा-युक्त अर्श मे लाभ होता है। (भा०भै०र०)

अर्श पर पत्तो का साग भी निम्नविधि से बना कर खिलाते है—कोमल पत्र ½ पाव कतर कर पानी से अच्छी तरह धो कर रक्खें। फिर पात्र मे गोघृत १ तो० को गरम कर उसमे जीरा-चूर्ण ३ मा० डाल कर, उक्त पत्तो को छोक दे। ऊपर से सोठ, हरड, काला नमक ३–३ मा० तथा कालीमिर्च १½ मा० और धनिया-चूर्ण १ तो० मिला साग पकाले। यह साग रुचि के अनुसार थोड़ा थोडा दोनो समय भोजन के साथ खिलाते है।

मूल—इसकी जड का रस उत्तेजक तथा उद्वेष्टन-निवारक है। जागम विषो का प्रतिरोधी है। जांगम विषो पर इसका अन्त. व बाह्य प्रयोग किया जाता है। जड को कालीमिर्च के साथ पानी मे पीस व छान कर सर्पदश पर पिलाते तथा दश-स्थान पर लेप भी करते है। यह सूतिकाज्वर पर भी काली मिर्च के साथ पिलाया जाता है। निद्रानाश मे इसका चूर्ण गुड के साथ खिलाते है[1]।

२३ नारु पर—नारू का कृमि यदि बाहर को कुछ निकल आया हो, तो जड को पीसकर पुल्टिस बनाकर बाध देने से वह शीघ्र ही बाहर निकल जाता है। वेदना दूर होती है। यह पुल्टिस सूजन, घाव और दाह पर भी लगायी जाती है। (ग्रा औ र)

क्षार—इसके पचांग को काटकर तथा शुष्क कर जला लेते है, और क्षार-विधि से इसका क्षार निकाल लेते है।

यह क्षार हृद्रोग, यकृत, प्लीहा के विकार, उदर-रोग तथा कास-श्वासादि कफ के विकारो मे विशेष लाभकारी है। इन विकारो मे इसे शहद या जल के साथ सेवन कराते है। अर्श मे इसे लेप करते हैं।

(२४) खुजलीयुक्त जीर्ण किटिभ (क्षुद्र कुष्ठ Psoriasis) रोग पर, क्षार को रेंड़ी-तेल मे मिलाकर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है। (भा भै र)

(२५) कफज शोथ पर—क्षार को पानी मे मिला, इस क्षार युक्त पानी मे छोटी-पीपल को भिगोकर सुखा ले। इस प्रकार ११ बार भिगोकर, सुखा कर चूर्ण कर ले। उचित मात्रा मे शहद के साथ इसका सेवन करने से कफजन्य सूजन दूर होजाती है। (व० से०)

साधारण कफ-प्रकोप पर—इस थूहर के कांडो को जलाकर काली राखकर शहद के साथ चटाते है।

कफ को निकालने के लिए उक्त श्वेतक्षार को

---

[1] क्षारविधि—इसके पंचांग अथवा शाखाओं को जला कर श्वेत राख कर उसे ४ या ८ गुने पानी मे मिला खूब घोल दे। कुछ देर बाद ऊपर के पानी को सम्हाल-पूर्वक निथार ले और इसी पानी को आग पर रख दें। पानी नि शेष हो जाने पर नीचे जमे हुए श्वेत क्षार को खुरच कर सुरक्षित रक्खे।

२ से ४ रत्ती की मात्रा मे थोडा घृत मिलाकर चटाते है।

अर्श के मस्सो पर यह क्षार लगाने से वे गिर जाते हैं। (गा औ. र)

यकृत व प्लीहावृद्धि पर, इसे मधु या मूली के रस से देते है।

विशिष्ट प्रयोग—

(१) वज्रक्षार—इसका दूध और आक का दूध ४०-४०, तोला पाचों नमक (सेधा, काला, विड, काच, सामुद्र), जवाखार, पलाशक्षार, सज्जीखार, तिलक्षार २५-२५ तोला, इसी थूहर के पत्र २० तो० तथा आक के पत्र १०० नग लेकर कूटने योग्य चीजो को कूटकर सबको सुदृढ मृत्पात्र मे बन्दकर, गजपुट देवे। स्वाग शीतल हो जाने पर, भीतर का क्षार निकाल उसमे त्रिकटु और हीग ४-४ तो. मिला महीन चूर्ण कर रक्खे।

मात्रा–१ मा० तक, तक्र के साथ सेवन से गुल्म, अग्निमाद्य, विसूचिका, अरुचि, पाडु, कास, श्वास, वातव्याधि, कफ-विकार नष्ट होते हैं। यह क्षार मास जैसे गुरु द्रव्यो को भी २ घडी मे गला देता है, फिर अन्न की तो बात ही क्या है? (यो० त०)

क्षार-गुटिका–इसका काड १६ तो, सेधा, सोचल विड-नमक १२-१२ तो. बड़ी कटेली (या बेगन) १६ तो, आक की जड ३२ तो और चित्रक ४ तो इन्हे अन्तर्धूम दग्ध कर बेगन के रस मे घोट गोलिया बनाले। (मात्रा-४ रत्ती से १ मा०) ये गुटिका जितनी बार भी भोजन किया जाय शीघ्र पचा देती है। कास, श्वास, एव अर्श के रोगी के लिए हितकर है। विसूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग को शात करती है।

(चरक स. चि अ १५)

(२) स्नुह्यादि तेल (खालित्यनाशक)—इसका दूध, आक का दूध, भागरा, कलिहारी, घुघची, इन्द्रायण मूल, श्वेत सरसो १-१ तोला लेकर सबको एकत्र पानी के साथ पीस कल्क बनालें।

सरसो तेल १ सेर मे यह कल्क तथा बकरी का दूध व गोमूत्र २-२ सेर मिला, मद-आग पर तेल सिद्ध करलें। इसकी मालिश से गज दूर होता है। (भै र)

(३) वज्री तैलम्—(कुष्ठ नाशक)—इसके दूध के साथ समभाग ५-५ तो. आक-दूध, धत्तूर-पत्र-रस, चित्रक मूल का क्वाथ, भैंस के गोबर का रस तथा तिल-तैल २५तो और गोमूत्र १।सेर एकत्र मिला तेल सिद्धकर ले। इस तैल मे गन्धक, चित्रक-मूल, मैंनसिल, हरताल, वायविडङ्ग, अतीस, बछनाग, कडवी कूठ, वच, जटामासी, त्रिकटु, दारुहल्दी, मुलैठी, सज्जी, जवाखार, जीरा और देवदारु का महीन चूर्ण ४-४ मा० मिला अच्छी तरह घोट बोतल मे रखते। इसकी मालिश से सर्व प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते है—(शा स) (उक्त गधकादि-चूर्ण को तैल पाक की अवस्था मे ही मिलाकर तैल सिद्ध हो जाने पर नीचे उतारकर छानकर रख लेना उत्तम है।

(४) सुधा-तैल–इस थूहर की (अथवा कटथूहर या खुरासानी थूहर) शाखाओ के टुकडे १ सेर लेकर कल्क करलें, उसमे तिल तैल ८ सेर और मट्ठा या दही का जल ३२ सेर मिला मद आग पर तैल सिद्ध करले। इसकी मालिश से सधियो की जकडन, खुजली, जहरी जन्तु के काटने से हुई सूजन दूर होती है। (गा औ. र.)

(५) सुधावटी–इस थूहर का काड १६ तो. सैंधा-काला, और विड नमक ४-४ तोला, बडी-कटेरी १६ तो अर्कमूल ३२ तो, तथा चित्रक-मूल ८ तोला, (कटेरी के स्थान मे पका हुआ सूखा बेंगन ले सकते हैं), सबको मटकी मे भर बन्दकर के जलावें। फिर बारीक चूर्ण कर उसे कटेरी या बेगन के रस मे घोटकर गोलिया बनालें। भोजन के पश्चात् (१ मा.) खाने से आहार शीघ्र पच जाता है। यह कास, श्वास, अर्श, विषूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग मे लाभकारी है।

(वा० चि० अ० १०)

उक्त कुछ योगो के अतिरिक्त–उदरारि लौह, कफ-कुंजर रस, काचन लौह, कास, श्वासावधूनन रस, गन्धकादि पोटली, जलोदरारि रस, ज्वर कालकेतु रस, पानीय भक्त वटी, प्रभावती वटी, प्लीहोदर-गुल्म हृद्रस, वडवानल रस, शखद्राव, सूर्यावर्त रस, शीत-ज्वरारि आदि रस प्रयोगो मे इसके दूध या क्षार का योग दिया जाता है।

मात्रा—मूल चूर्ण—२-४ रत्ती। काड-स्वरस १ तो. तक। दूध ½-१ बूद। पत्र-स्वरस—२-५ बूद। क्षार—१-२ रत्ती।

यह उष्ण प्रकृति वालो को हानिकर है। हानि-निवारणार्थ दूध का सेवन कराते हैं।

विपाक्त प्रभाव—इस थूहर या उसके भेद कटथूहर (जिसका वर्णन आगे थूहर नं० २ मे दिया है) या नागफनी थूहर (इसका वर्णन आगे के प्रकरणो मे देखिये) के दूध या रस की मात्रा अधिक हो जाने से दाह वमन या रेचन (जुलाव) होते हैं। साधारणत इससे मृत्यु नही होती, किन्तु अधिक दस्त आने से कभी २ दस्तो के साथ खून भी आता, तथा अन्य उपद्रव बढ कर मृत्यु भी हो सकती है।

उक्त विपाक्त प्रभाव प्रकट होते ही इमली के पत्ते पीसकर मारे शरीर मे लेप करे, तथा इमली का पना पिलादे। साथ ही साथ शीत जल मे चीनी का शर्वत वनाकर पिलादें। या गाय के ताजे दूध मे मिश्री और घी मिला पिलावे। अथवा—मक्खन, मिश्री, वंशलोचन, और छोटी इलायची का चूर्ण मिश्रित कर चटावे। अथवा—स्वर्ण गेरू या सादा शुद्ध किया हुआ गेरू पानी मे घोलकर पिलावे, इससे थूहर और मन्दार का विष नष्ट होता है। यदि थूहर का दूध या रस शरीर मे पड़ने से छाले आ गये हो, और दाह होता हो, तो बकरी के दूध मे काले तिल पीसकर वार २ लेप करे या इमली-पत्र पीसकर वार-२ लेप करें। (अ. तत्र)

फरफियून या अफरनियून (Euphorbium) अरबी नामो से बाजार मे, विशेषत यूनानी-चिकित्सा मे प्रसिद्ध यह मोरक्को देश के सेहुड थूहर (Euphorbia Resinfera) का सुखाया हुआ दूध है। ताजी अवस्था में पीताभ भूरे रंग के, रालदार, चमकीले, मोम जैसे, किंतु तीक्ष्ण गध व तिक्त चरपरे स्वाद वाले, छोटे-छोटे वेढगे इसके टुकडे बाजार मे मिलते है। पुराने हो जाने पर, लगभग ४ वर्ष वाद ये काले या पीताभ लाल वर्ण के एव प्रभावहीन हो जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह उष्ण रूक्ष, लेखन, विस्फोटजनक, उत्तेजक, विरेचक तथा अर्दित, पक्षवध, कम्पवात, गृध्रसी आदि वात एवं कफजन्य रोगो पर प्रयोजित है। जैतून-तैल मे मिलाकर इसका लेप या अभ्यग किया जाता है। जलोदर तथा शूल मे विरेचनार्थ इसे देते है। इसका आभ्यतरिक प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है। रजोरोध-निवारण तथा गर्भपात कराने के लिये इसे रोगन गुलाव मे मिला पिलाते है। अथवा विशेषत इसकी बत्ती बना योनि-मार्ग मे धारण कराते हैं। किन्तु इसकी १ रत्ती की मात्रा मे बनाई गई वर्तिका योनि मे धारण कराने से गर्भाशय का मुख सकुचित होकर गर्भपात नही होने पाता, अधिक मात्रा की वत्ती अवश्य गर्भपातकारक एव रजोरोध-निवारक होती है।

वाजीकर तिलाओ मे यह मिलाया जाता है। पूययुक्त नेत्राभिष्यन्द पर इसे शहद मे मिलाकर लगाते है।

मात्रा—२ से ४ रत्ती है। यह विशेषत रोगनगुलाब, मुलैठी का घन क्वाथ, कतीरागोद के घोल आदि मे मिलाकर सेवन कराया जाता है। अधिक से अधिक १०½ मा. की मात्रा में यह तीव्र मारक है। आमाशय व पक्वाशय मे व्रण पैदा कर देता है। इसके विषाक्त प्रभाव के निवारणार्थ खट्टा मट्ठा, खट्टे अनार का रस, और कपूर का सेवन कराते हैं।

थूहर नं० २ (चौधारा)

(*EUPHORBIA NIVULIA*)

यह थूहर नं० १ का ही एक विशेष भेद है। इसके वृक्ष १०—२० फुट तक ऊचे, काण्ड—सीधा, गोल, ३-४ फुट व्यास का चारो ओर किनारेदार, शाखाएं—सीधी, कुछ ऊपर को मुडती हुई, खंडमय, चक्राकार, चारकोर वाली, क्रम से निकली हुई, दो-दो एक साथ निकले हुए सीधे-कटक युक्त उपपत्रो से युक्त होती है। पत्र—उक्त प्रकार के सयुक्त काटो के वीच से निकले हुए, मासल, अस्थायी, ६ इञ्च लम्बे, २½ इञ्च चौडे मुद्राकार, कुठिताग्र एव वृन्तरहित होते है। शीत और ग्रीष्म काल मे पत्ते नही रहते। पुष्प—शलाकाओ पर

३–३ फूल पीतवर्ण के, बीच मे नरपुष्प तथा ऊपर नीचे द्विजातीय पुष्प होते है, तन्तु शीर्ष बेंगनी और पराग पीला होता है। फल—त्रिदोषयुक्त ¼ इञ्च चौडा होता है।

इसके वृक्ष उत्तर पश्चिम हिमालय के शुष्क एव पहाडियो के निम्न भागो मे, तथा गुजरात, सिन्ध और दक्षिण भारत मे अधिक पाये जाते है।

नाम—

स–वज्रवृक्ष, वज्री, सेहुण्ड आदि उक्त नम्बर १ के ही नाम है। हि०–चौधारा थूहर, कटथूहर, एटके, सिज आदि। म०–कांटे निव डुग। गु०–काटालोथोर। ले०–यूफोरबिया निव्हुलिया।

इसका रासायनिक सगठन तथा गुणधर्म-प्रयोगादि प्राय थूहर न० १ के ही सदृश है।

थूहर नं० ३ तिधारा

EUPHORBIA ANTIQUORUM

इसके झाडीदार वृक्ष या क्षुप १२–२५ फुट तक ऊचे कटकयुक्त (काटे छोटे छोटे इसके अग्रभाग मे, सर्वाग मे नही होते), काण्ड—छोटे २ खण्डयुक्त, (ऊपर के काण्ड के ये खण्ड प्राय उतने ही लम्बे होते है, जितने कि वे मोटे), शाखाए—नरम, पतली, गहरे हरे रग की, तथा तीन (कभी कभी चार या ५) धारो या पक्षोवाली, जिन पर कटक प्रचुर उपपत्र छोटे-छोटे (प्राय सब वृक्षो पर ये पत्र नही भी होते है), पुष्प—प्राय ½ इञ्च बडे हरिताभ पीत या लाल रग के, द्विलिंगी, फल—½ इञ्च व्यास के गोल होते है।

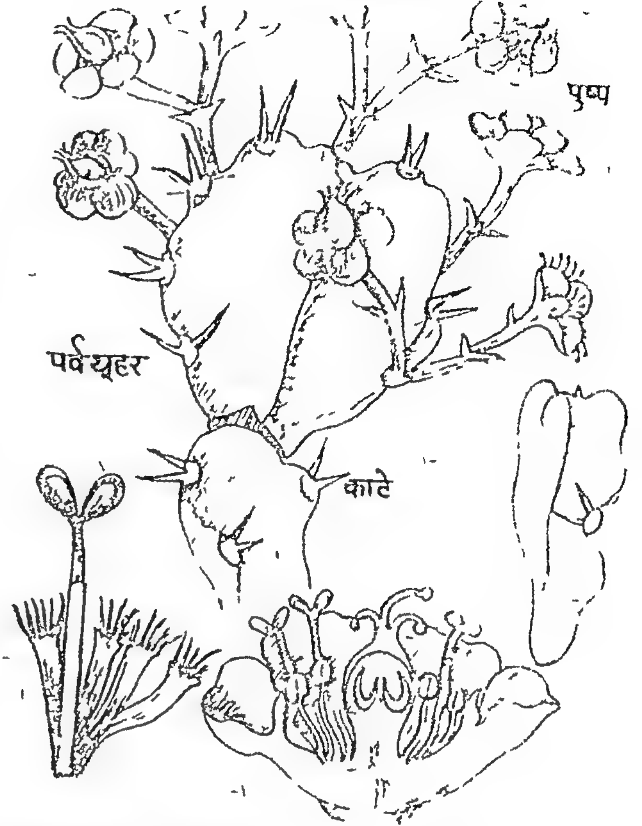
इसके क्षुप प्राय सभी उष्ण, शुष्क स्थानो मे पाये जाते है। ये प्राय खेतो की बाडो मे लगाये जाते है।

नोट–इसका एक भेद और होता है, जिसे लेटिन मे यू टायगोना (E Trigona) कहते हैं।

कहा जाता है कि जिस घर की छत पर तिधारा थूहर के गमले होते है, उस घर पर बिजली नही गिरती।

नाम—

सं०–त्रिकटक, वज्री इ०। हि०–तिधारा थूहर (सेंहुड)



म०–तीनधारी निवडुंग। गु०–त्रणधारियो थूहर। बं०—तेकांटासिज, तेशिरा मानसा, नारसिज। अं–ट्रायंगुलर स्पर्ज (Triangular spurge)। ले०–युफोर्बिया एंटिकोरम।

रासायनिक संगठन—

इसमे युफोर्बिन २५%, दो प्रकार की राल (एक राल ईथर मे घुलनशील व दूसरी न घुलने वाली), गोद एव रबड जैसा पदार्थ १.५% आदि द्रव्य पाये जाते है।

नोट–थूहर की जाति मे पाया जाने वाला दाहजनक द्रव्य इसमें बहुत अल्प मात्रा मे होने से यह अन्य थूहरों की अपेक्षा कष्टदायक है।

प्रयोज्याङ्ग—दूध या रस, मूल, काण्ड या शाखा।

गुण धर्म व प्रयोग—

रेचन, कफघ्न, ज्वरघ्न, रक्तशोधक, उष्णवीर्य, कफ को पतला कर मुख एव गुदमार्ग से निकालने वाला, प्लीहावृद्धि, कामला, कुष्ठ, आमवात, कृमिविकार, गाठ

शोथ आदि पर इसका प्रयोग किया जाता है। दूध का लेप करने से शोथ दूर होकर गाठ वैठ जाती है।

दूध या काण्ड का रस तीव्र विरेचक है, इसे आमवातिक पीडा, दतशूल एव मस्से आदि मे लगाते है। दाद पर इसे लगाने से मोटा चमडा निकल कर लाभ होता है।

सुजाक पर—चने के वेसन को दूध या रस मे मिला आगे पर कुछ पका कर, गोलिया वना सेवन कराते है।

जीर्ण विषमज्वर जन्य जलोदर मे, तथा विस्फोटक रोगो मे इसका रस काम मे लिया जाता है।

वाधिर्य—वहरेपन मे इसके दूध मे तैल को सिद्धकर कानो मे डालते है।

(१) कास पर—इसके रस मे अडूसे के पत्तो को पीसकर छोटी २ गोलिया वना चूसते रहने से खासी मे लाभ होता है। यदि काली खासी (हूपिंग कफ) हो, तो १-१ वूंद इसका दूध मक्खन मे मिला, चटाने से कफ निकल कर शाति प्राप्त होती है।

(२) वालको के कफ प्रकोप और डिब्बा रोग पर—इसके काण्ड या शाखा के टुकडो को गरम राख मे दवा कर, नरम हो जाने पर निकाले हुए स्वरस मे फुलाया हुआ सुहागा, अडूसा रस और शहद मिला कर उचित मात्रा मे दिन मे २-३ बार देने से विशेप लाभ होता है। इससे कोई हानि नही होती। यदि मात्रा अधिक हो जाय तो १-२ वमन और दस्त होकर कोठा साफ हो जाता है। यह प्रयोग वडी अवस्था वालो को भी हितकारी है।

(३) प्लीहा या यकृद्वृद्धि पर—३-४ दिन तक नित्य प्रात इसका दूध लगभग ५ वूद तक, शक्कर के साथ मिला, सेवन कराने से, विरेचन होकर उदर शुद्धि क्षुधावृद्धि, प्लीहा या यकृत का ह्रास तथा ज्वर शमन हो जाता है। किन्तु रोगी को भोजन मे खिचडी या दही भात देवें। यदि यकृत्वृद्धि हो तो घृत, शक्कर अति अल्प प्रमाण मे या विलकुल ही नही देवे। (गा औ र)

प्लीहा वृद्धि के साथ हुई यकृत वृद्धि या यकृद्दाल्युदर (Enlargement of the spleen with enlarged liver) हो या कफोदर हो, तो इसके दूध मे चावलो को भिगोकर सुखाकर, उसकी यवागू (काजी वनाकर ७ दिन तक प्रात सेवन करावे। इससे जल सदृश पतले दस्त होकर रक्त मे से वहुत दूषित जल कम हो जाता है, तथा उदर्याकला और शोथ का जल रक्त मे आकर्षित हो जाने से जलोदर एव शोथ दूर हो जाता है। इस प्रकार उदर शुद्धि हो जाने से उक्त रोगो मे लाभ होता है। (गा. औ. र)

(४) सधिवात तथा गठिया पर—इसके दूध को नीम की निवोली के तैल मे मिला लेप करते रहने से पीडा और शोथ दूर होती है।

गठियावात पर—इसके दूध या काड के रस को तेलनी मक्खी के सत्व (Cantharidin)[१] के साथ मिला प्लास्टर वनाकर लगाते हैं। किंतु इसमे सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि यह वहुत दाहजनक है। दाह होते ही प्लास्टर को निकाल डाले और पुन थोडी देर वाद लगा दे। ऐसा करने से लाभ हो जाता है।

सधिपीडा और शोथ मे इसके दूध या रस को सुहागे का फूला और नमक के साथ पीसकर लेप करने से भी लाभ होता है।

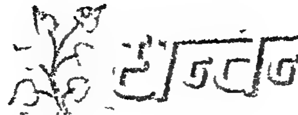
(५) श्वास पर—मन्दार के फूल, अपामार्ग-मूल, गोकर्णी (श्वेत-विष्णुकाता) की जड इन तीनो को सम-

---

१ तेलनी मक्खी लगभग १ इंच लम्वी होती है। तथा काले रंग के इसके दो पर होते, जिन पर नारंगी रंग के विन्दु होते है। यह मक्खी काश्मीर एवं उत्तरी भारत में वर्षा काल में पाई जाती है। युरोप से इसकी विदेशी जाति (Cantharis Vesicatoria) का प्रयोग किया जाता है।

इस मक्खी में कैन्थराइडिन नामक उक्त सत्व २ से ६ प्रतिशत तथा उडनशील तैल, कषाय द्रव्य और वसा होती है।

इसका वाह्य प्रयोग रक्तोत्क्लेशक व विस्फोट-जनन है। इसका लेप वाजीकरणार्थ, तिल तैल में मिला शिश्न पर करते है। तथा शिवत्रकुष्ठ, वात व्याधि, व्यग व खालित्य में भी यह लेप करते है। आभ्यन्तर प्रयोग से यह वाजीकरण, मूत्रल व आर्तवजनन है। मात्रा—आध से २ रत्ती तक।



भाग लेकर वैसे ही शुष्क पीसकर या चूर्ण कर उसमें इसके दूध या स्वरस की १४ भावना देकर मटकी में भर कपडमिट्टी कर गजपुट में भस्म कर ले। मात्रा २ रत्ती, यह भस्म बहेडे का चूर्ण ३ मा० और शहद एकत्र मिला नित्य चटाते रहने से लाभ होता है।

(६) बालकों के दुग्ध-विकार पर—काड या शाखा के टुकडों को आग पर सेक कर निकाला हुआ रस ३ मा तक तथा घुमासा (गृहधूम्र) ४ रत्ती और कस्तूरी ½ रत्ती को एकत्र मिला बालक की शक्ति के अनुसार देते रहने से दुग्ध-विकार शात हो जाते हैं।

(७) व्रणों पर—इसकी शाखाओं को आग पर भून कर तथा महीन चूर्णकर जीर्ण व्रणों पर बुरकने से उनका शीघ्र रोपण हो जाता है।

उंगली या नख में होने वाला व्रण (गलका Whitlow) हो, तो इसकी शाखा को पीस कर गरमकर पुल्टिस जैसा बाध देने से उंगली या नाखून का वह भाग मुलायम पडकर, धीरे-धीरे वह फूटकर अन्दर का दूषित द्रव बहने लग जाता तथा व्रण ठीक हो जाता है।

इस थूहर में गोंद या राल जैसा जो पदार्थ पाया जाता है, उसे तैल में पकाकर गण्डमाला या अन्य दुष्ट व्रणों पर लगाने से लाभ होता है।

मूल—इसके जड की छाल विरेचक है। जीर्ण आमवात तथा उपदंश पर—जड का क्वाथ बनाकर पिलाते हैं।

(८) बालकों के उदर एवं आन्त्रकृमि-नाशार्थ-इसकी जडों को हीग के साथ पीस कर वस्त्र पर लगाकर एक पट्टी तैयार कर उसे उदर-भाग पर बाध देने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा-काड या शाखा का स्वरस बालकों को १½ से ३ माशे तक, बडों को १½ से २ तोला तक। दूध—शक्ति अनुसार १ से ६० बूंद तक।

थूहर नं. ४ खुरासानी [सातल[1]]

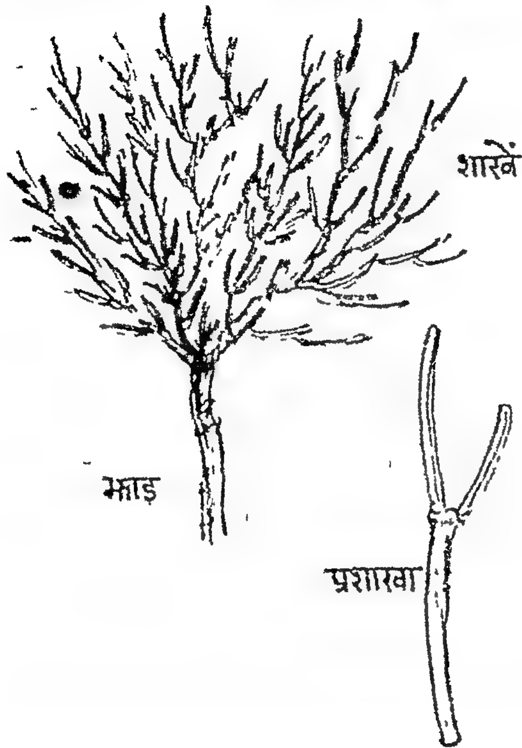
[*EUPHORBIATIRUCATLLI*]

यह थूहर की ही काटे रहित एक विशेष जाति है। इसके पौधे प्राय खेतों की बाडों में लगाये, जगन्नाथ पुरी, बिहार, सिंध, गुजरात तथा दक्षिण में कोंकण आदि स्थानों में अधिक पाये जाते हैं। इसका मूल उत्पत्ति स्थान, अफ्रीका व अमेरिका है।

[1] सातला—भावप्रकाश में सेहुण्डभेद शातला (सेहुण्ड थूहर का भेद मानकर) तथा उसके नाम व गुणों का उल्लेख है। किंतु यह सदिग्ध-बूटी है। सप्तला शखिनी कल्प के वर्णन (च. क. अ. ११) में लिखा है कि सप्तला (सातला) के मूल एवं शंखिनी के फल का व्यवहार कफ प्रधान गुल्मउदर रोग, हृद्रोग, कुष्ठ आदि में करना चाहिये। यह विकासि, तीक्ष्ण और रूक्ष है। निघण्टु ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है। सुश्रुत श्यामादिगण में एवं उभयतोभाग हर गण में इसके स्वरस का तथा अधोभागहर द्रव्यों में मूल का उपयोग लिखा है। सप्तला व शंखिनी इन दोनों द्रव्यों का उल्लेख प्राय साथ ही मिलता है। टीकाकारों ने शखिनी को यवतिक्ता या यवतिक्ता भेद कहा है। सप्तला के लिए कहीं सेहुण्ड भेद व कहीं यवतिक्ता भेद कहा गया है। कहीं-शुष्ना तो कहीं श्री-फलिका व कहीं पीतदुग्ध सेहुण्ड को सप्तला माना गया है। अधिकाश टीकाकारों के मत से यही मालूम होता है, कि सातला यह सेहुण्ड का ही एक भेद है। आधुनिक विद्वानों में कई इसे जिस सेहुण्ड का भेद मानते हैं उसी का वर्णन यहा किया जाता है। प्रसिद्ध वनस्पति-वेत्ता श्री बलवन्त सिंह जी ने सातला को तितली बूटी (E. Dracunculodes) होने की सभावना प्रकट की है, इसका वर्णन भी आगे देखें। कई इसे शिकाकाई मानते हैं, शिकाकाई का वर्णन यथा स्थान देखें। कई इसे साथरा बूटी मानते हैं, साथरा का प्रकरण भी यथास्थान देखें।

अंगुलियाथूहर खुरासानी

Euphorbia tirucalli Linn



इसके विषय मे वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा लिखते है कि यह झाड जमीन से १० फीट ऊंचा होता तथा तने के ४ फीट ऊपर केर वृक्ष के समान बिना कांटों की शाखा प्रशाखाओ का फैलाव होजाता है। इसकी सबसे पतली प्रशाखा भी मोटाई तथा लम्बाई मे पेंसिल के समान होती है। यह सदा हरा-भरा रहने वाला झाड है। इसकी कोमल शाखा प्रशाखाओं में लम्बाई के रुख मशीन के डोरे जैसे-उभार और गहराइया होती है। राजस्थान के उदयपुर जिले मे राजसमन्द, नाथद्वारा, उदयपुर, देलवाड़ा आदि कस्बो के आस पास के खेतो के बन्धो पर अक्सर इस थूहर के झाड लगे हुए देखे जाते हैं।

नामः–

सप्तला, सातला, सारा बहुक्षीरा, चर्मकषा इ.। हि.-खुरासानी थूहर, अ गुलिया-थूहर, कोंपाल सेहंड वारकी थोहर छिमिया सेहुड इ०। म.—शेर कांडवेल, चिकाटा। गु.—खरसाणी थोर। ब.-लंका सिज। अं. मिल्कहेज-(Milkhedge)। ले०-यूफोर्बिया टिरुकाल्ली।

रासायनिक संघटन—

थूहर नं० १ के जैसा ही है।

प्रयोज्यांग—दूध, पत्र और छाल।

गुणधर्म व प्रयोग —

कटु, तिक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य, लघु, प्रभाव मे रेचक, तथा शोफ, आध्मान, पित्त उदावर्त्त, रुधिर विकार आदि नाशक है। यह मछलियो के लिये मारक होता है।

दूध—विरेचन, दाहक एव विषाक्त है। त्वचा पर लगने से यदि तुरत पोंछा न जाय तथा तैलादि स्निग्ध पदार्थ न लगाया जाय तो छाला पड जाता है। इसे सेवनार्थ मधु या नमक के साथ देते है, अथवा काली-मिरच या चावल या चने की दाल मे इसकी कई भावनाए देकर उसका प्रयोग वमन-विरेचनार्थ किया जाता है।

१. वातनाडी एव मज्जातन्तुओ की पीड़ा मे इसके दूध का लेप तिल तेल मिलाकर किया जाता है।

२ चर्मकील या मस्सो पर ताजा दूध २-३ दिन तक लगाने से वे सूखकर गिर जाते हैं।

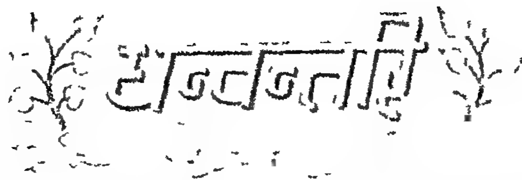
३ न्यूरेलजिया एव वात विकार मे त्वचा पर छाला लाने के लिए इसका दूध लगाते है। विच्छू के दश-स्थान पर यह दूध लगाते हैं।

४ शुष्क खाज पर—इसके झाड के नीचे जो इसकी कलमे सूखकर नीचे गिरी हो उन्हे जलाकर तेल मे खरल कर मालिश करे।

५ उपदश-विकार जन्य-सधि पीड़ा में इसके ताजे दूध मे नीम-पत्र-रस और शहद मिला कर देवे।

६ हिक्का व श्वास मे इसका दूध शक्ति के अनुसार २ बूद से १०-१२ बूद या आवश्यकता हो तो २-३ मा. तक मक्खन मे मिलाकर (मक्खन १ से ५ तो. तक) देवें। इससे वमन-रेचन होकर पेट साफ होकर, दोष शात होते एव हिक्का वन्द होती है। पथ्य मे दही और चावल देवे।

७. दाद पर—कैसा ही दाद हो केवल एक बार इसका दूध लगा देना ही काफी है। वह स्थान जलेगा नही



दूसरे दिन वहां ललाई पैदाकर फफोला उठाकर दूषित पदार्थ एवं कीटाणु आदि को नष्टकर, २-३ दिन में पुनः प्रदाह और ललाई को मिटाकर रोग को बिल्कुल निर्मूल कर देगा। निजी परीक्षित है।

—वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा दवनढ (उदयपुर)

८ पामा पर—अंगुलियों के मूल पर या चूतड़ पर जो पीले पूय वाली पामा (छाजन, उकवत) होती है, जिसमें खूब खुजली होती है, उस पर इस थूहर की कलमों या शाखाओं को जलाकर काले कोयले कर (धुआं निकलने पर पात्र को ढक देने से काले कोयले हो जाते हैं) उसे पीसकर तैल या धोया हुआ घी मिलाकर लगाने से पामा दूर हो जाती है। (गा औ र)

९ विषम ज्वर पर—इसकी पकी हुई कलमों को केले के हरे पत्ते में लपेट कर आग में सेंक कर रस निकाल, उसमें खपरे के टुकडे को आग में रख लाल होने पर डालदे, फिर उस टुकडे को निकाल डाले और उस रस में भुनी हींग मिला कर लगभग ४ तो तक (या ३ माशे से १ तोला तक) पिलावे। (व गुणादर्श)

१० नाभि टलने पर—नाभि के आस-पास इसके दूध का लेप करे। (व गु)

११ कर्णशूल पर—इसकी शाखाओं का निकाला हुआ रस कान में डालें, अथवा इस रस में समभाग बकरी का गरम किया हुआ दूध मिलाकर कान में डाले। (व० गु०)

१२ विषखपरा के विष पर—इसके रस को तलुवों पर तथा दंश-स्थान पर मलें। साथ ही २ चम्मच यह रस (या १ तो तक) पिलावे। (व गु)

१३ उदर-पीडा पर—इसके कोमल पत्तों को कतर-कर उसमें नमक को खूब अच्छी तरह मसल कर खिलाते हैं अथवा इसके कोमल काड या मूल का क्वाथ पिलाते हैं।

मात्रा—दूध १ से २ बूंद तक। अधिक मात्रा में देने से जो इसका विषाक्त प्रभाव होता है, उसके निवारणार्थ पानी में शहद मिलाकर पिलावे, या मक्खन खिलावे तथा मक्खन का लेप भी करे।

इसकी लकडी के कोयलों का उपयोग बारूद बनाने में किया जाता है। इसके दूध में पारद को ७ दिन तक गरम करने से यह [illegible] हो जाता है। [illegible] हो जाती है। (व गु.)

थूहर नं. ५ (तितली-सातला)
(Euphorbia Dracunculoides)

ऊपर के प्रकरण (थूहर नं ४) के प्रारम्भ की पादटिप्पणी में जिस तितली के सातला होने की सम्भावना की गई है। इसके क्षुप वर्षायु प्रायः ४-८ इंच लम्बे, चिकने, सामान्यतः धूसर वर्ण के होते हैं। इनमें पीताभ क्षीर होता है (चरक के कुछ प्राचीन टीकाकारों ने पीतदुग्ध स्नुही को सातला माना है, शायद वह यही तितली हो—लेखक)। शाखाएं प्रायः द्विविभक्त क्रम से निकली हुई रहती हैं। पत्र—अविभक्त (नीचे कुन्तल—प्रवृन्त, भालवत् या आयताकार रेखाकार, एवं ०.५-२ इंच लम्बे, पुष्प—पुष्पाकार-व्यूह एकाकी और द्विविभक्त काण्ड के बीच में होते हैं।

इसे कुछ लोग यवतिक्ता भी मानते हैं, क्योंकि जव आदि के साथ खेतों में ही इसके क्षुप अधिकतर पाये जाते हैं। (किन्तु यवतिक्ता कालमेघ को भी कहते हैं। कालमेघ का प्रकरण देखिये-लेखक) श्री ठा० बलवन्तसिंह जी ने इसे सप्तला या शंखिनी (यवतिक्ता को भी शंखिनी कहते हैं-लेखक) होने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है, तथा उनके मत से इसकी सातला होने की अधिक सम्भावना है।

नाम—

हिन्दी—तितली, यावची, कागी। व०—छागल पुटरी, जायची। लें०-युफोर्बिया ड्राकनक्युलायेड्स।

गुण धर्म व प्रयोग—

चर्म-रोगों में यह उपयोगी बतलाया जाता है। ग्रामीण लोग इसके बीज के तैल को जलाने के काम में लेते हैं। (भा निघंटु के विमर्शकार श्री कृष्णचन्द्र चुनेकर ए एम एस)

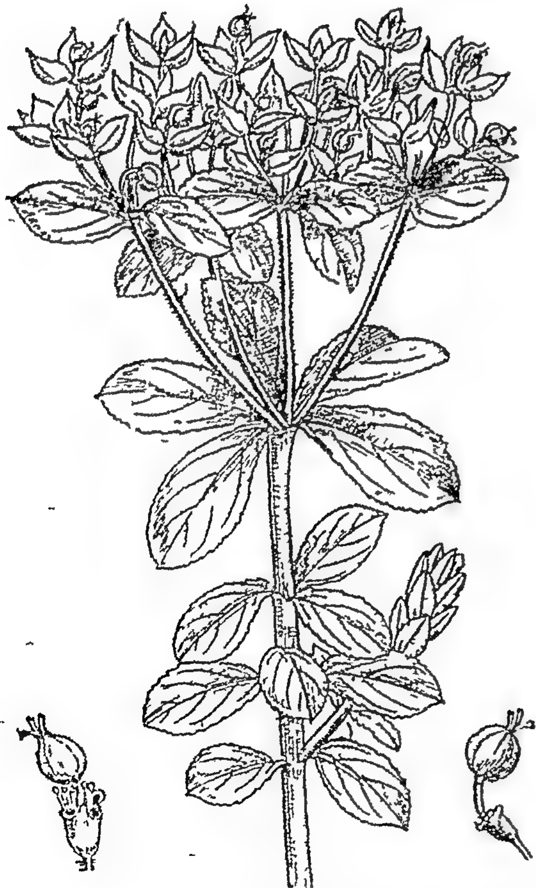
हमारे मत से यह वही तितली बूटी है, जो बालकों

के जमौघा रोग पर आश्चर्यकारी कार्य करती है, जिसका वर्णन पीछे के प्रकरण मे किया गया है। –लेखक

थूहर नं ६ (थोर,सुर)

EUPHORBIA ROYLEANA

इसके वडे-वडे काटेदार क्षुप वाहरी हिमालय तथा जौनसार की घाटियो मे ५ हजार फीट की ऊंचाई तक (कालसी व सैया मे) पाये जाते हैं। काण्ड–५-७ कोणो से युक्त रहता है। पत्तिया विशाल (वृन्तरहित) ४-६ इञ्च लम्वी, अग्रभाग पर चौडी एव नीचे की ओर क्रमश पतली होती है। —ठा वलवन्तसिहजी के व. दर्शिका से साभार



थूहर (हिर्स स्याह)
EUPHORBIA HELIOSCOPIA LINN

इस थूहर को हिन्दी व वगला मे शकर पितान, थोर, सुरु, सुराई आदि और लेटिन मे यूफोर्विया रायलिएना कहते है।

इसके सर्वाग मे दूध रहता है।

गुण धर्म–इसका दूध विरेचक, कृमिनाशक है।

थूहर नं. ७ (हिर्स सियाह)

EUPHORBIA HELIOSCOPIA

इसके भी छोटे २ पौधे सर्वाङ्ग, दुग्धपूर्ण होते है। यह पजाव मे सर्वत्र तथा नीलगिरि एव पश्चिमी हिमालय के प्रदेशो मे विशेष पाया जाता है। इसके पौधे आकार मे कुलफा जैसे होते है।

नाम–

हि०–हिरु सियाह, महुवी, गंडालवुटी, दुदई, कुल्फा डोडक, चतरी वाल आदि ये प्राय. पजावी नाम है। ले०–यूफोर्विया हे लयोस्कोपिया।

इसमे सेपोनिन फेमिन (Saponin pha'ni) नामक एक सत्त्व होता है।

गुणधर्म व प्रयोग–

यह मूत्रल है। इसका दूधिया रस त्वचा पर हुए फफोलो व छालो पर लगाया जाता है। तथा इस रस का लेप सधिवात एव स्नायुशूल पर किया जाता है।

हैजा (कालरा) पर––इसके वीजो को भुनी हुई काली मिर्च के साथ देते है।

इसकी जड कृमिनाशक एव विरेचक है।

थूहर नं० ८–नागफनी

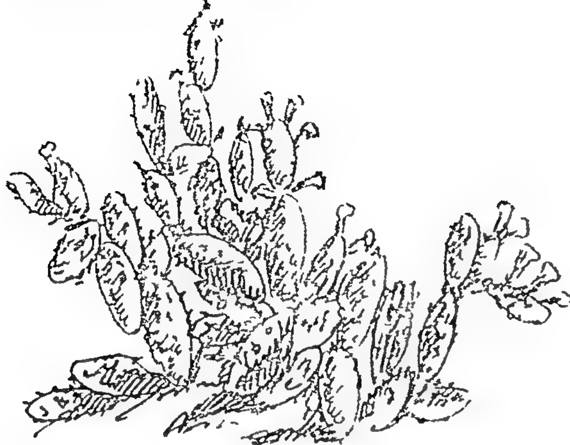
(*OPUNTIA DILLENII*)

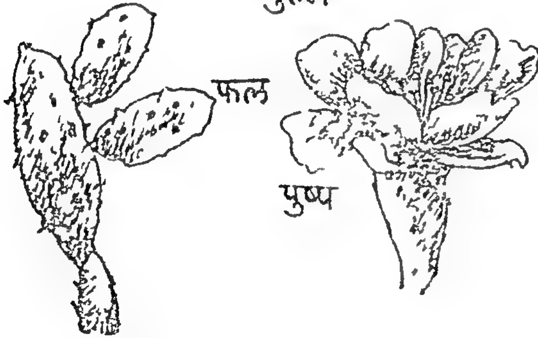
यह अपने ही फनी कुल[1] (Cactaceae) का

---

[1] इस कुल के पुष्पवाहक द्विवीजपर्ण विभक्त दल, मांसल काण्ड, एकहरा फूल, वृन्तरहित, फूल ? न या दल के वगल मे आते हैं। पुष्प की पखुडिया और नर-केसर अनियमित, वीज-कोष अधरस्थ, कई वीजयुक्त होता है। हाथतल के या सांप के फण के समान दल होते है, जिन्हे चाहे पत्ते समझें या काण्ड। दल पर दल होते जाते एव क्षुप का विस्तार होता जाता है। दल महीनों पड़ा रहता एवं थोड़ा पानी पाकर वढ़ने लग जाता है।

नागफनी थूहर
OPUNTIA DILLENII HAW.





प्रधान क्षुप है, जो चारो ओर फैलने वाला घना तीक्ष्ण कटकमय, विशेप ऊचा नही होता। पत्र या काण्ड के बीच-बीच का भाग कांटो के रूप मे परिणत होता है। ये काटे, सीधे, सुदृढ, तीक्ष्ण, नोकदार ½-१ इन्च लम्बे, श्वेताभ होते, तथा बडे काटो के आस-पास छोटे-छोटे काटे होते हैं। काटा शरीर मे चुभ जाने से घाव हो जाता है, जो शीघ्र अच्छा नही होता। पुष्प—लाल आभायुक्त पीले या नारगी रग के, त्ता-पुष्प के नीचे कच्ची दशा मे हरा एवं पकने पर लाल, चमकीला रस-युक्त फल आता है। इस पर भी बारीक काटे होते है। फल का रस स्वादिष्ट, मीठा होता है।

थूहर की यह एक भिन्न जाति अमेरिका से भारत-वर्ष मे पोर्तुगीज लोगों से लाई गई थी, जो यहा नैसर्गिक होगई है। चारो ओर इसे खेत की बाटो मे बो देते है। अत्यधिक विस्तीर्ण होकर कष्टदायक हो जाने से इसका मूलोच्छेद करने के लिये, इसके भक्षक कीटाणु मे या मारक विषो का प्रयोग इस पर किया गया, तथापि इसका विस्तार यत्र-तत्र प्रचुरता से है। औषधि-दृष्टि से यह बहुत ही लाभदायक है।

नोट—प्राचीन ग्रन्थों में तो इसका उल्लेख या उपयोग नहीं मिलता। भावप्रकाश आदि आधुनिक निघण्टुओं में भीइसका उल्लेख नहीं के बराबर है। इसे कोई सातला का ही एक भेद मानते हैं किन्तु ऐसा मानना भ्रमपूर्ण है।

इसी स्नुही—फणी (नागफनी) का एक भेद पच-कोणी थूहर है, जिसका वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिये।

नाम—

सं-कंथारि, कंथार, कुंभारी इ०। हि०—नागफनी थूहर, हत्ता या थापा थूहर। म०—फणी निवडुंग। गु०—दखणी थोर, हायला थोर, नागन वेल। बं०—फणि मनसा, नागफना। अं०—प्रिक्ली पियर (Prickly-pear)। लै०—ओपंशिया डिल्लेनाय।

रासायनिक संघटन—

इसमे मेगनीज का उपक्षार (Malate of Manganese) एक वसामय क्षार, कुछ सायट्रिक एसिड (Citric acid), मोम, रालमय-द्रव्य, शर्करा आदि है।

फल मे—शर्कराजन्य-द्रव्य (Carbolic-hydrates) ४१.२९%, गूदा या तनु ३२%, मासघटक-द्रव्य (Albuminoides) ६.२५%, वसा ३.६३%, जलाश ५.६७%, जलाने पर इसकी राख १७.५६% होती है। किसी-किसी पके फल मे शर्कराजन्य द्रव्य भाग केवल ३०% और जल भाग २६% होता है) इसका क्षार लालिमा-युक्त श्याम वर्ण का होता है, जिसमे अयस्कात लौह का भाग अधिक रहता, तथा जम्बीराम्ल (सायट्रिक एसिड) और सेव का भी तुरसी मिश्रित रहती है। यह जल मे घुलनशील है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, पत्र, मूल, पचाङ्ग व क्षार।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, उष्णवीर्य, दीपन, रोचन, रक्तदोष, कफ, वात, श्वास, हृद्रोग, आध्मान, ग्रन्थि, व्रण, शोथ, स्नायुक (नारू), अर्श आदि पर प्रयोजित होता है।

फल—फलो का रस दाहशामक, कफहर, आक्षेप-निवारक, जलोदर, अर्बुद, उदरशूल, सुजाक आदि नाशक, अधिक पित्तस्राव-कारक है। इस रस के सेवन से मूत्र लाल होता है।

(१) कास-श्वास पर—इसकी कली या अधपका या कच्चा फल आग पर सेक कर, ऊपरी छाल अलग कर, फल को मसल कर, कपडे मे डाल रस निचोड कर उसमे चीनी या मिश्री मिला पिलाने से, विशेषत बालकों की कुकुर खासी (काली खासी) मे अच्छा लाभ होता है।

उक्त रस १ तो० मे मधु २ तो० और सुहागे का फूला ३ रत्ती मिला सेवन से श्वास एवं कास मे लाभ होता है।

उक्त प्रयोगो से कास की घबराहट कम होती, कफ का विशेष प्रकोप नही हो पाता है। जीर्ण कफ-प्रधान रोगों मे इससे विशेष लाभ होता है। यह सगर्भा स्त्री को भी दे सकते हैं। उक्त प्रयोग के स्थान पर इसका शर्वत भी दे सकते हैं। आगे विशिष्ट योगो मे शर्वत और वालामृत देखें।

(२) कष्टार्त्तव पर—मासिक-धर्म वडे कष्ट से, अति पीडा-पूर्वक आता हो, तो—इसके फलो को कुचल कर १० तो० रस निकाल, उसमे समभाग कूप-जल मिलाकर पकावें, उवाल आने पर उतार कर उसमे से आधा गरम-गरम रात्रि के समय पिलावे। शेष आधा क्वाथ फेंक दे। इस प्रकार कुछ दिन पिलाने से आराम हो जाता है। (भा० ज० बूटी)

(३) यकृत् की विकृति पर—इसके कच्चे या अधपके फलो को वारीक कतर कर, आग पर ढाक कर थोड़ी देर रख, नीचे उतार कर उसमे दही, भुनी हीग, भुनी राई, खाने का सोडा, सेंधा नमक पीसकर मिलावे, व पत्थर या मिट्टी के पात्र मे रखे। इस रायते को नित्य थोडा-थोडा सेवन करे। यकृत् का सुधार होगा। (गृ० चिकित्सा)

नोट—कच्चे फलों को छेदने से जो पीताभ श्वेत रस निकलता है, उसे ५ से १० बून्द की मात्रा मे शक्कर के साथ विरेचनार्थ देते हैं।

पत्र या काण्ड—

(४) ग्रन्थि, विद्रधि या छोटे-बडे जो पकते न हों और न फूटते हो, उग्र शोथ, नारु आदि पर—इसके मोटे पत्तो का गूदा निकाल, उसमे हल्दी-चूर्ण और थोडा नमक मिला, एकत्र पीस कर मोटा-मोटा लेप चढादे, तथा ऊपर से रेंडी के या वड के पत्ते रखकर, कपडे से बांध दे, और ऊपर से सेक करे। यदि ग्रन्थि नयी उठी हो, तो वैठ जावेगी, और पुरानी हो, तो कुछ दिन के उपचार से फूटकर वह जावेगी।

काख मे होने वाली (बगल विलाई) या जाघ मे होने वाली सदाह, शोथयुक्त ग्रन्थि, प्लेग ग्रन्थि आदि पर भी उक्त उपचार करे, अथवा—मोटे पत्ते को आग मे डाल दे, उसके कांटे जल जाने पर वीच से चीर कर या काटकर, उस पर हल्दी-चूर्ण लगाकर, कपडे मे वाधकर, दो पोटली वना आग पर रख कर सेक करे। इस प्रकार के सेंक से भी ग्रन्थि फूट कर वहने लग जाती है।

प्लेग की अति पीडादायक ग्रन्थि हो, तो पत्र के काटे अलग कर, वीच से चीरकर, दोनो चिरे हुए पत्रो के बीच के पूरे भाग मे यथा प्रमाण—राई, हल्दी, अजवाइन और हीग भर दे। फिर इन पत्रो को वन्द कर, लोहे के तवे मे रख, आग पर रख दे। जव उपर्युक्त द्रव्य उन पत्रो के दोनो ओर के भागो मे भिद जावें तब सुहाते-सुहाते ग्रन्थि या गिल्टी वाले स्थान पर वाध दें। आध घटा के भीतर ही गिल्टी वैठ जावेगी। यदि कुछ शेष रहे तो फिर यही क्रिया करे। (धन्वन्तरि भाग २२ अङ्क ११ का परीक्षित प्रयोग)

ध्यान रहे उक्त उपचार एक प्रकार के नैसर्गिक-आपरेशन के सदृश है। इससे उदर या आन्त्र की विद्रधि भी फूटकर वह जाती है। किंतु पक्वापक्व को देख देना आवश्यक है। अपने हाथो के पृष्ठभाग से स्पर्श कर देखे, यदि वहा का स्थान कुछ गरम प्रतीत हो, तो समझे कि अन्दर पक्व दशा है। तव उक्त उपचारों को करें, तो शीघ्र पक कर रोग या विकृति वह जाती है। ग्रन्थि के फूट कर वहने तथा उसके मुख के खुल जाने पर उस पर असली शहद की पट्टी (वस्त्र या कपास को शहद

में भिगोकर) उस पर रख, खाने का पान ऊपर से रख बाधते है। रात्रि के घाव पर फिर सिन्दूरादि मलहम बाधते रहे। शीघ्र ही आराम हो जाता है।

घुटनों की शोथयुक्त पीड़ा या गृध्रसी पर भी उक्त प्रकार से इसके सेक की क्रिया से शीघ्र लाभ होता है। उक्त ग्रन्थी, विद्रधि, शोथ आदि की दशा मे रोगी को पथ्यापथ्य का पालन करना आवश्यक है। (सम्पादक)

[illegible]-जनित शोथयुक्त विद्रधि पर—पत्तो का गूदा निकाल पुल्टिस बना कर बाधने से लाभ होता है।

(५) स्तन-गुल्म (Fibrosis Uteri.) पर—पत्तो का गूदा ५ तो० को थोड़े पानी मे पकाकर उसमें सेंधा नमक, भुनी हीग, भुनी राई, अन्दाज से मिला शाक की भाति बना, रुग्णा को खिलावें। प्रात-साय ऐसा करने से स्तनगुल्म दूर होगा। साथ ही साथ लेपार्थ—एलुआ (मुसब्बर, काला बोल) १ तो०, कडू जीरा ६ मा०, इन्द्रायन-मूल ६ मा०, हीग कच्ची व सेंधा नमक १-१ मा० सबका चूर्ण गोमूत्र मे पीस, कुछ गरम कर गुल्म स्थान पर लेप कर ऊपर से नरगद का [illegible] पर कडुवा तैल चुपड़ कर कुछ गरम कर बाध दो। ३ घंटे बाद गरम पानी से धोकर, कपड़े से पोछ दो। प्रात-साय लगभग २१ दिन के इस उपचार से विशेष लाभ होगा। खाने मे वातकारक कोई चीज न खावे। (गृ० चिकित्सा)

(६) [illegible] पर—पत्र को आग में भूनकर, उसके भीतर का गूदा १ से २ तो० तक, प्रात-साय खाकर, [illegible] दो तोले तक पीवे। यदि मस्से [illegible] पीड़ा करते हो तो गंदा के पत्तो को पीस, घी में भून कर टिकिया सी बना कुछ गरम-गरम ही [illegible] दे, तत्काल आराम मालूम होगा।

(श्री [illegible] मिश्र, वैद्यभूषण पानागढ [illegible])

पत्तो को शुष्क कर, आग पर डालकर इसकी धूनी देने से भी लाभ होता है।

(७) सर्प-विष पर—काटे अलग कर पत्तो को कुचल कर रस निचोड कर पिलाते है। इसकी जड़ को भी पीसकर देते, तथा जड को पीस कर दश स्थान पर लगाते है।

(८) नेत्र-पीडा पर—पत्तो के गूदे को गरम कर नेत्रो पर बाध कर रात्रि मे शयन करें। पीडा व लालिमा दूर होती है।

(९) प्लीहा-वृद्धि पर—पत्र को छीलकर छोटे-छोटे टुकडे कर १–१ तो० प्रात-साय नमक के साथ सेवन करने से, मलेरिया-ज्वर आदि के कारण बढी हुई प्लीहा शीघ्र ही कम हो जाती है।

मूल—

रक्तशोधक, शोथ-पीडा, विष-विकार नाशक है—

(१०) जीर्ण आमवात एव सधि-पीडा पर—इसकी जड का क्वाथ बनाकर पिलाते, तथा पत्र को आग पर भून, बीच से चीर कर, उस पर हल्दी व नमक बुरक कर, आग पर खूब गरम कर, बाधते हैं। शोथयुक्त पीडा दूर होती है। (व० गु०)

(११) छोटे बालको की फुन्सी या गाठ पर—प्रथम चन्दन घिसकर लगावें, फिर उसके ऊपर इसकी जड पीस कर लेप करदें। (व० गु०)

(१२) निद्रानाश पर—बराबर निद्रा न आती हो, तो जड के चूर्ण को गुड के साथ खावे। (व० गु०)

(१३) नारु पर—इसकी जड को गोमूत्र से पीस कर लेप करे। (व० गु०)

(१४) मूषक-विष पर—चूहा काटने पर जो विकार होते है, उनके शमनार्थ—जड को गोदुग्ध मे पीसकर दोनो समय, ७ दिन तक पिलावे। नमक या नमकीन कोई भी पदार्थ न खावें। (व० गु०)

पुष्प—

इसके फूल कफ-विकार, कास-श्वास नाशक है।

पचांग—

इसके पचाङ्ग के स्वरस की क्रिया हृदय पर सामान्यत तिलपुष्पी (डिजिटेलिस) के समान होती

है, तथा यह रेचक है। यह रस हृदय की तीव्र धडकन को शमन कर, उसकी गति मे सुधार करता है। किन्तु यह तीव्र धडकन (स्पन्दन) किसी अन्य रोग के उपद्रव या लक्षण-स्वरूप मे पैदा होती है। यदि हृदय के ही विकार से यह स्पन्दन-वृद्धि हो, तो इससे लाभ नही होता।

(१५) पचाङ्ग की भस्म (या क्षार)–रेचक, मत्रल तथा हृद्य है। हृद्विकार के पश्चात् होने वाले हृदयोदर, आध्मान तथा जलोदर मे–पचाङ्ग को जवकुट कर मटकी मे भर, कपट-मिट्टी कर, गजपुट मे भस्म करलें। यह भस्म १ मा० तक, शहद के साथ देते है।

पचाङ्ग को सुखाकर जलावें, तथा क्षार-विधि से, इसका क्षार निकाल लें। यह क्षार भी हृदय-रोग, यकृत्, प्लीहा, उदर-रोग एव अर्श मे लाभदायक है। मात्रा–१ से ४ रत्ती।

विशिष्ट योग–

(१६) शर्वत फणी–इसके पके फलो का रस ३ सेर, स्वच्छ शक्कर १½ सेर, इन दोनो को मिलाकर मन्द आग पर पकावें। शर्वत की चाशनी हो जाने पर नीचे उतार कर ढक्कनदार पात्र मे रख दे। १२ घटे वाद उस पात्र को धीरे से विना हिलाये, ऊपर जो पपडी आगई हो उसे अलग कर दे। और शेष शर्वत को दूसरे पात्र मे छान ले, नीचे की जमी हुई गाद को फेक देवे। इसे दिन मे ३-४ वार अवस्था एव रोग के विचार से ६ मा. से १ तो तक की मात्रा मे देने से कुक्कुर कास, श्वास आदि मे विशेष लाभ होता है। यह कफनिस्सारक है। यदि तुरन्त लाभ न हो तो कुछ दिनो तक इसके लगातार सेवन से अवश्य कार्य सिद्धि होती है। आवश्यकतानुसार इसके साथ प्रवाल-भस्म, शुक्ति या शख-भस्म या सितोपलादि-चूर्ण मिला कर चटावें। यह क्षय की खासी एव किसी भी कफ-विकार मे दिया जा सकता है। गर्भवती स्त्री को भी यह दे सकते हैं। मूत्रकृच्छ्र या सुजाक पर— इसका शर्वत मात्रा ४ मा मे चन्दन-तैल की १५ बूद मिला कर पिलाने से लाभ होता है।

(१६) फणी मद्यार्क या आसव—इसके अथवा पचकोणी फणी के फूल और कोमल पत्रो को कुचल कर १ भाग लेवे, तथा १०% वाली स्पिरिट या मृतसजीवनी सुरा ५ भाग उसमे मिला एक बोतल या कडे ढक्कनदार शीशी के पात्र मे वन्द कर ७ दिन रहने दे। फिर छानकर शीशियो मे भर लेवे। मात्रा ५ से २० बूद तक। हृद्रोग एव उदर-रोगो मे लाभकारी है। गलगण्ड और गण्डमाला को भी नष्ट करता है। पचकोणी फणी थूहर का वर्णन आगे के प्रकरण मे देखे।

(१७) फणी बालामृत—इसके लाल पके फलो का रस तथा कली चूने का नितरा हुआ जल ३०–३० तो लेकर (चूने की कली ५ तो एक बोतल मे डाल ऊपर से जल भर दे, चूना गल जाने पर, बोतल को खूब हिलाकर रखदे। २४ घटे बाद चूने का नितरा हुआ जल अलग निकाल कर नीचे के चूने को फेक दे या अन्य कार्यों के लिये रख ले। केवल इस नितरे हुए जल को ही प्रयोगार्थ लेवे) प्रथम वायविडग, सौफ और सतावर ५-५ तो. को एकत्र जौकुट कर १½ सेर जल मे भिगोदें, १४ घटे बाद चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर, छानकर, उसमे उक्त फल-रस व चूने का जल तथा साफ चीनी २¼ सेर मिला, शरबत की चाशनी तैयार करले।

मात्रा १ तो प्रात साय (यह १ साल के बच्चे की मात्रा है, छोटे बच्चे को ½ तो) चटावें, या दूध मे मिलाकर देवे। इससे बच्चो का बढा हुआ यकृत्, साधारण बढी प्लीहा, दूध के अजीर्ण से होने वाले वमन, पतले दस्त, मदाग्नि, उदर-कृमि, दौर्बल्य एव हड्डियो की कमजोरी दूर होती है। (अनुभूत योग)

अथवा–इसके फलो का रस (फलो को थोडे घृत मे भून लें, जिससे ऊपर के तीक्ष्ण रोम जल जावें, फिर उन्हे पानी से धोकर, प्रत्येक फल मे छिद्र कर रस निकाल लें, या कपडे मे मसल कर रस निचोड ले) १ सेर लेकर उसमे समभाग शक्कर या मिश्री मिला, मंद आग पर पकावें। शर्वत की चाशनी आ जाने पर, नीचे उतार कर उसमे पिपरमेंट, कपूर, अजवाईन का सत प्रत्येक १½ मा मिला, शीशी मे सुरक्षित रक्खे।

वालको को १ तो. तक की मात्रा मे दिन मे २-३ वार चटाते रहने से ज्वर, हरे पीले दस्त, अजीर्ण, उदर-

शूल, अफरा, सर्दी, खासी, दूध डालना एव दात-निकलते समय के विकार दूर होते हैं। बालक बलवान होता है।

—श्री डा शिवकुमार शर्मा, सागर म प्र

थूहर नं. ६ पंचकोनी (नागफणी)

(CEREUS GRANDIFLORUS)

यह नागफनी के समान फैलने वाली एक प्रकार की जगली थूहर है जो शुष्क जमीन मे पैदा होती है। यह नागफनी की ही एक जाति है।

डा देसाई ने औषधि-सग्रह मे लिखा है कि इसके पत्ते नही होते। इसकी जडे काण्ड के बाजू मे होती, तथा जैसे-जैसे ये जडे आगे को जमीन मे जमती है, वैसे-वैसे इसकी बेल बढती जाती है। काण्ड या दण्ड जो सीधे उठते है उनमे सधि (जोड) होते तथा दण्डाधार मे काटे होते है, अर्थात् काण्ड मे जगह २ पर जोड होते और उनके किनारो पर काटे होते है। पुष्प—अत्यन्त सुन्दर बडे एव सुगन्धित, रात्रि मे खिलने तथा दिन मे सिकुडने वाले होते है। फूल का भीतरी भाग पीला एव ऊपरी भाग जामुनी रग का होता है। रात्रि के समय विकसित होने पर ये फूल तारो की तरह दिखाई देते है। वर्षा के प्रारम्भ मे ये फूल लगते है। फल नही आते।

नाम—

सं.-रात्रिप्रफुल्ल, उत्तम पुष्प, महापुष्प, विसर्पिन। हि०—थूहर पंचकोनी। म०—पाचकोनी निवडुंग। अं-केकटस (Cactus)। ले०-सेरियस ग्रे डिफ्लोरस।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह मूत्रल और हृद्य है। हृदय के लिये बलदायक है। हृदय पर इसकी क्रिया साधारणत डिजिटेलिस की जैसी होती है। धडकन (स्पन्दन विशेष) मे यह उत्तम उपयोगी है। हृदय की एक पीडा ऐसी होती है, जिसमे बिजली के करेण्ट जैसी पीडा की लहर उठती है, उसमे भी इसका अच्छा उपयोग होता है। गलगण्ड (गाइटर) और हृदयोदर मे इसकी पूर्ण मात्रा देनी चाहिये। मात्रा—५ से २० बूद तक है।

इस थूहर का अग्रेजी, लेटिन नामादि युक्त संक्षिप्त वर्णन स्व. डा वा ग देसाई कृत औषधि-सग्रह नामक पुस्तक के आधार पर यहा दिया गया है। हमे ज्ञात हुआ है कि यह थूहर भारत मे वम्बई की पास होती है, मैसूर व कुर्ग प्रान्त के बने उज्जड जगलो मे कही २ देखी गयी है। इसके काण्ड कुछ अस्पष्ट पच-कोणयुक्त होने से ही यह पंचकोणी कही जाती है।

पचधारा थूहर (E Ligularia), चौधारा थूहर के समान ही, थूहर न० १ का एक भेद विशेष है, जो प्राय भारत मे नही पाया जाता। —सम्पादक।

थूहर नं. १० (हड़जोड़)[1]

(VITIS QUADRANGULARIS)

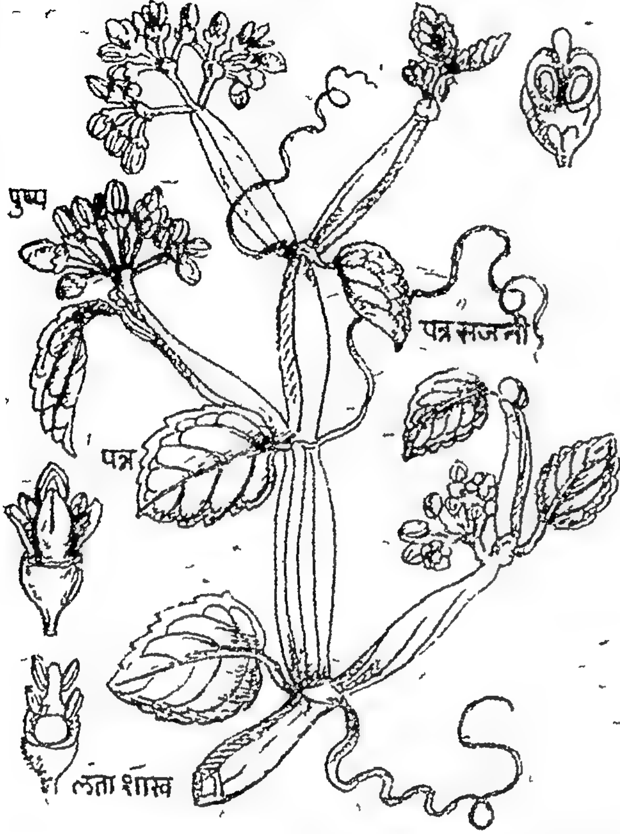
गुडूच्यादि वर्ग एवं द्राक्षाकुल (Vitaceae) की इसकी चिरायु लता, अन्य लताओ जैसी वृक्षो पर उनके काण्ड एव डालियो से लिपटते हुए नही चढती, किन्तु वृक्ष आदि का सहारा मात्र लेकर उन पर चढती और लटकती रहती है। काण्ड—अगुष्ठ समान मोटा चौपहल हरा, बीच-बीच मे सधियो से युक्त एव मासल होता तथा देखने मे शृंखला (साकल) सदृश मालूम होता है। इसके काण्डो से कुछ अप्रिय गध आती है, स्वाद मे कुछ खट्टापन होता है। इसे जीभ पर लगाने से यह तुरन्त मोटी एव खुरदरी बनती है। पत्र—अल्प सख्या मे, साधे की गाठ की बाजू से निकले हुए, मोटे, एकान्तर, हृदयाकृति के चिकने, दातेदार, ३-५ भागो मे विभक्त, ¾ से २ इन्च तक लम्बे, ½ से १½ इन्च तक चौडे, लसदार, खट्टे रस वाले, अग्रभाग पर नीली छाया वाले, ½ से ¾ इ च लम्बे वृन्तयुक्त, पुष्प—छोटे, हरिताभ श्वेतवर्ण के, रोमश, वाह्य एव आभ्यन्तर कोष की ४-४ पंखडी वाले, फल—गोल सिर पर चौडे, रसयुक्त, लगभग ६ मि मि बडे

---

१ यह द्राक्षाकुल का होता हुआ भी साधारणतः थूहर ही माना गया है। तथा कई लोग इसे थूहर की ही एक जाति विशेष मानते हैं। अत. थूहर के साथ ही यह प्रकरण यहां दिया जाता है। तिधारी थूहर से बिल्कुल मिलती हुई ४ या ६ अ गुल की छोटे २ पोर या ग्रंथियुक्त यह लता होती है। —लेखक।

हाड़जोड़

VITIS QUADRANGULARIS WALL.



मटर जैसे पकने पर लाल वर्ण के, एव एक बीज युक्त; तथा बीज—हल्के भूरे रग के ५ मि मि. वडे एव चिकने होते हैं।

लता की एक ग्र थि जमीन मे गाड़ देने से लता उग आती है। दक्षिण मे तथा लंका मे इसके कोमल पत्र एव काण्डो का शाक बनाकर खाते है। काड या प्रशाखा तोडने पर बहुत रसस्राव होता है।

यह समस्त भारत के प्राय उष्ण प्रदेशो मे सीलोन तथा मलाया-द्वीप-समूह और अफ्रीका मे पाया जाता है।

प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थो में इसका उल्लेख नही मिलता। भावप्रकाश तथा चक्रदत्त के समय से इसे निघण्टु-ग्रन्थो मे स्थान प्राप्त हुआ है।

नाम—

स—अस्थिसंहारी, ग्रन्थिमान, काण्डवल्ली, वज्रवल्ली, अस्थिशृंखला (अस्थि-हड्डी) को साकल जैसी जोड़ने वाली होने से, या अस्थि जैसी कड़ी शृंखला रूपी लकड़ी ग्रन्थि द्वारा जुड़ी रहने से)। वज्राङ्गी (वज्र के आकार से मिलती हुई सी लता विशेष)। हि॰—हड़जोड़, हरजोरा। म॰ कांडवेल। गु॰—हाड़साकला, वेदारी। वं॰—हाड़मांगा। अं॰—एडमांट क्रीपर (Admant creeper) ले॰—व्हिटिस क्वाड्रागुल्यारिस। सिसस क्वाड्रां गूलरिस (Cissus Quadrangularis)।

रासायनिक संघटन—

१०० ग्राम ताजे पौधे मे १६७ मि ग्रा केरोटीन (Carotene), तथा विटामिन सी ऊपरी काण्ड मे ३९८ मि ग्रा. निम्न भाग मे २३२ मि गा और ताजेस्वरस मे ४७९ मि. ग्रा, पाया जाता है। कुछ केल्सियम आक्जलेट (Calcium oxalate) भी होता है।

प्रयोज्याङ्ग—काण्ड और पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, मधुर, तिक्त, कटु, अम्लविपाक, उष्ण-वीर्य, वातकफशामक, रेचन, दीपन, पाचन, पित्तकारी, वीर्यवर्धक, कामोद्दीपक, रक्तशोधन व रक्तस्तभन, तथा कृमि, उदरविकार, अग्निमाद्य, प्लीहा, शूल, वातविकार, व नेत्रविकारो आदि पर उपयोगी है। चारधार युक्त कांडवाली लता अत्यन्त उष्ण, आध्मान, तिमिर, वातरक्त, अपस्मार, वातव्याधि, शूल तथा भूतोन्माद नाशक होती है।

(१) वातविकार पर—काण्ड की ऊपरी छाल को छीलकर भीतर के गूदे मे अर्धभाग छिलकारहित उर्द की दाल मिला, जल के साथ सिलपर पीसकर, तिलतैल मे पकौडी पकाकर खिलाने से लाभ होता है। (भा. प्र) ये पकोडिया ऊरुस्तम्भ मे भी लाभदायक है।

(२) अस्थिभग्न अभिघातज शोथ आदि पर—हड्डी मुड गई हो, तो इसके काण्ड को कूट पीस कर, गरम कर, पुल्टिस बना कर बाधते इसका गरम-गरम लेप करते है। इसके जड के चूर्ण की पुल्टिस बना बाधते ह। तथा इसके रस द्वारा सिद्ध तैल की मालिश करते और काड के स्वरस मे घृत पकाकर पिलाते हैं। शीघ्र लाभ होता है।

अभिघातज वेदना तीव्र हो, तो इसका कल्क १ पाव

व इसके स्वरस ४ सेर मे १ सेर तिल तैल मिला तैल सिद्ध कर मालिश करे।

रीढ की हड्डी मे विशेष पीडा हो, तो इसके कोमल काण्डो का बिछौना बना, उस पर रोगी को सुलाते है। कटिवेदना-निवारणार्थ इसकी पुरानी शाखाओ को कूटकर कमर पर बाधते है।

(३) उपदश-विकार जन्य शारीरिक स्थायी ऊष्मा पर—काड को आग के भूमल मे गरम कर, मसल कर निकले हुए २-२ तो रस मे समभाग गौघृत मिला दिन में १ या २ बार, ७ दिन तक पिलावे। नमक से परहेज करें। (व गु)

फिरग (उपदश) पर—इसके उक्तरस को वाकेरी-कन्द (Caesalpinia Diyyna) के साथ ७ दिन तक सेवन कराया जाता है। (औ सग्रह)

(४) अनियमित मासिक धर्म पर—१ मास मे कई बार ऋतुस्राव होता हो, तथा कई दिनो तक जारी रहता हो, तो उक्त (प्र०३) गौघृत युक्त रस मे गोपी चदन या सेलखडी और मिश्री—चूर्ण १-१ तो. मिला पिलावे। (व०गु०)

(५) उदर-विकारो पर—इसके नरम काण्ड या कोपलो को आग पर थोडा सेक कर चटनी बना खिलाने से क्षुधा-वृद्धि होती है।

मदाग्नि पर—काड का चूर्ण सोठ के साथ सेवन कराते है।—आगे विशिष्ट योगो मे मुरब्बा देखे।

उदर-शूल पर—काड को चूने के पानी मे उबाल कर पिलाते है।

अजीर्ण तथा कुचपन हो, तो—काण्ड के टुकडो को मटकी मे भर, गजपुट मे काली भस्म तैयार कर ३-३ मा० जल के साथ दिन मे दो बार देते रहने से जीर्ण अजीर्ण-विकार दूर हो जाता है। कष्टदायक अतिसार, बार बार थोडा थोडा दस्त होता हो, तो वह भी इस भस्म के प्रयोग से शान्त हो जाता है।

हाजमा ठीक न हो, कुचपन हो, तो इसके कोमल काण्डो का या पत्तो का सार बनाकर खिलाते है।

इसके छोटे छोटे कोमल काण्ड तथा पत्र धातुपरिवर्तन एव अजीर्ण जन्य अतिसार आदि आन्त्र विकारो पर हितकारी है। इन कोमल काण्डो तथा पत्रो को सुखाकर, चूर्ण रूप मे भी दिया जाता है।

विद्रधि या दुष्ट व्रण को शीघ्र पकाने के लिये इसके पत्तो को कूट कर, तैल मे पका कर पुल्टिस जैसी बना बाधते है।

(६) कर्णस्राव तथा नासारक्तस्राव (नकसीर) पर—कान से राध (पीव) निकलती हो, तो काण्ड का रस कान मे डालते है। नाक से रक्तस्राव हो, तो इसके रस का नस्य कराते हैं।

(७) वाजीकरणार्थ—वज्रवल्ली लेप—इसके कोमल काण्ड, वच, असगन्ध, जलशूक (जल की काई, सिवार या सिरवाल) तथा कटेरी के पके फलो का चूर्ण समभाग लेकर, सबको पानी के साथ पीस कर लेप करने से लिङ्ग अत्यन्त स्थूल हो जाता है। (भा०भै०र०)

विशिष्ट योग—

(१) मुरब्बा हडजोड—इस लता के नवीन और कोमल प्रकाण्डो के छोटे छोटे टुकडे कर, उनको आंवलो की तरह कोचनी से छेद डालें। फिर पानी मे डाल कर मुलायम होने तक उबाल कारबोनेट आफ सोडा मिश्रित जल से धोकर, शक्कर की चाशनी मे डाल दें। ७ दिन के बाद काम मे लावें। लगभग ८ मा० से १६ मा० की मात्रा मे दिन रात में २ या ३ बार सेवन करने से चिरकाल का हठीला अजीर्ण रोग, लगभग ४० दिन मे दूर हो जाता है। —डा०मुहिउद्दीन शरीफ।

(२) वज्रवल्यादि-गुग्गुल—हडजोडी, अर्जुन छाल, अडूसे के जड की छाल, इन्द्रायन की जड, लोह भस्म, सुहागे की खील, शुद्ध पारद, शुद्ध गधक और सेंधा नमक, सब समभाग एव शुद्ध गूगल सबसे ३ गुना लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावें, फिर गूगल मे थोडा थोडा घृत डालते हुए कूट ले। जब गूगल पतला हो जाय तो उसमे शेष द्रव्यो का महीन चूर्ण मिला, अच्छी तरह कूट कर, सुरक्षित रक्खे।

मात्रा—१ मा० सेवन से अनेक प्रकार का अस्थि-भग्न ठीक हो बल, वीर्य एव अग्नि की वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त यह गूगल, कृमि, कुष्ठ, नेत्र-विकार,

ग्रन्थि (शरीर मे गाठे उठना) कटि-वेदना, हृद्रोग, और आमवात को भी नष्ट करता है। —(र०र०)

नोट-मात्रा-स्वरस १-२ तो०। चूर्ण ११ से २० रत्ती तक।

ददना—दे०—गंदना। दपेल—दे०—ग्रोटफल। दग्धरुहा—दे०—रामेठा।
दडवल—दे०—गूमा। दन्तबीज- दे०—अनार या जमालगोटा।

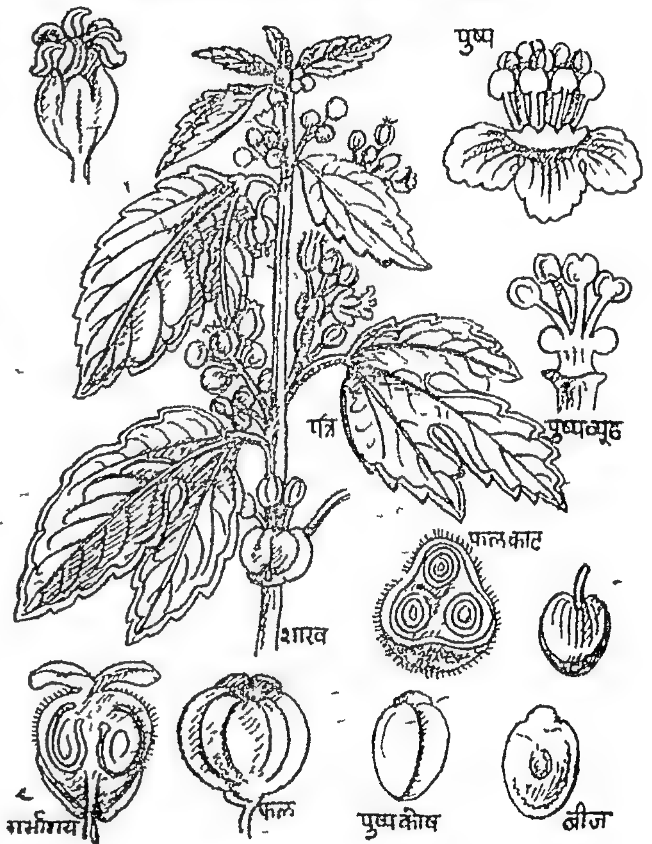
दन्ती (छोटी) (Baliospermum Montanum)

गुडूच्यादि वर्ग एव एरण्ड कुल (Euphorbiaceae) के इसके गुल्म ३-६ फुट ऊ चे, प्राय मूल से ही निकली हुई अधिक शाखा वाले, शाखाए श्वेत,हरित,-सुदृढ, पत्र-शाखाओं पर विपर्मवर्त्ती, विभिन्न आकार के, ऊपर के पत्र प्राय २-३ इंच लम्बे गूलर पत्र जैसे भाला-कार गिराजाल से युक्त, नीचे के पत्र अजीर-पत्र जैसे ६-१२ इच लम्बे, लट्वाकार या करतलाकार, ३- से ५ भागो मे विभक्त, किंचित् नुकीले, पत्रवृन्त -४-५ इच लम्बे, पुष्प—वसत ऋतु मे; हरिताभ, गुच्छाकार, एक लिंगी; फल-३/४-१ इंच लम्बे, गोल, कुछ रोमश, एरण्ड-फल (रेडी) के आकार के, त्रिकोणीय, बीज—फल के प्रत्येक कोण या कोष्ठ मे १-१ तथा प्राय एक रत्ती वजन के, रेडी-बीज से छोटे होते है।

मूल—ऊगली जैसी मोटी, सीधी, कही कही टूटी हुई, मूल-छाल—भूरे रग की, खुरदरी, भीतरी काष्ठ भाग श्वेत, पीताभ, मुलायम किंतु चीमडा होता है। इसमे घुन शीघ्र ही लग जाता है।

छोटी और वडी भेद से दन्ती दो प्रकार की मानी गई है। छोटी दन्ती जिसका प्रस्तुत प्रसग है इसके विषय मे कोई द्विमत नही है। किंतु वडी दन्ती (द्रवन्ती) के सम्बन्ध मे मतभेद है। आगे दन्ती (बडी) का प्रकरण देखे।

बीजो के विषय मे, भावप्रकाशकार ने जो लिखा है कि "जयपालो दन्ति बीज विख्यात तितडी-फलम्-ङ" यहाँ बीज शब्द से वडी दन्ती के बीज मानना उपयुक्त जचता है, कारण जयपाल (जमालगोटा) यह वडी दन्ती के एक भेद (Croton Tiglium) का बीज है, न कि प्रस्तु-



त प्रसंग की छोटी दन्ती (जगली जमालगोटा) का-विशेष वर्णन जमाल गोटा के प्रकरण मे देखें।

ध्यान रहे Croton Polyandrum यह लेटिन नाम प्रस्तुत प्रसग की छोटी दन्ती के वृक्ष का, या इसका ही एक पर्यायवाची माना जा सकता है, न कि वडी दन्ती (या जयपाल वृक्ष) का जैसा कि कई लोगो ने मान रक्खा है।

चरक के विरेचनीय, मूलिनी एव मूलासव, तथा

सुश्रुत के अधोभाग हर और श्यामादिगण में इनकी गणना है ।

इसके गुप्त विशेषत काश्मीर से भूटान तक तथा आसाम व खासिया पहाड़ में चटगाव तक, बंगाल, बिहार, दक्षिण में कोकण से ट्रावनकोर तक, तथा गुजरात के पावगढ और डांग के जंगलो में, आर्द्र या जलयुक्त स्थानो में अधिकता से पाये जाते हैं ।

नाम—

सं०-दन्ती (हाथी दांत जैसी इसकी जड़ होने से) उदुम्बरपर्णी, एरण्डफला (एरंडी के फल जैसे फल वाली), शीघ्रा (तीक्ष्ण आशुकारी), घुणप्रिया (शीघ्र घुन लगने से), निकुम्भा (कुंभाकार फल होने से), उपचित्रा, श्रेणी (क्षुप समूह-बद्ध होने से)। हिं०-दंती दांती, जंगली जमालगोटा, तिरफला हाकनी इ०। म०-दांती, दातरा। गु०-दांती मूल। बं०-हाकुन, दन्तीगाछ। ले०-बेलिओस्पर्मम मोन्टेनम जेट्रोफा मॉन्टैना (Iatropha Montana), बेलि एग्जिक्लारे (B. Axillare) क्रोटॉन पोलियनड्रम (Croton Polyandrum)।

रासायनिक संघटन—

मूल में राल और स्टार्च, बीजों में—तीक्ष्ण तैल होता है।

नोट—बाजारों में इसकी जड़ के स्थान में लाल रेंडी की जड़ बेची जाती है । अतः सावधानी से परख कर इसे लेना चाहिए।

प्रयोज्यांग—मूल, बीज और पत्र ।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण, पटु, विपाक में कटु उष्ण-वीर्य, कफपित्त हर वात प्रकोपक, यकृदुत्तेजक, पित्त-सारक, विरेचन, रक्तशोधक, स्वेदजनन व विकासी[1] है तथा आमदोष, अग्निमांद्य, यकृद्विकार, उदर रोग, अर्श, कृमि, सर्वाङ्ग-शोथ, अश्मरी, त्वचा के समस्त विकार, विबन्धयुक्त ज्वर, कुष्ठ आदि पर प्रयुक्त किया जाता है।

मूल-संग्रह विधि—इसकी स्थिर (कड़ी), मोटी, जो हाथी दांत के सदृश हो ऐसी कृष्ण-पीताभ मूल लेकर उस पर पिप्पली-चूर्ण एवं मधु का लेप कर ऊपर से कुशा लपेट, उसके ऊपर मिट्टी लगा पुटपाक से स्विन्न करें । फिर उसको निकाल कर धूप में सुखा लें । इस [illegible] जाता है । ([illegible])

[illegible]

१ पाण्डु-रोग [illegible]

[illegible] है । ([illegible])

[illegible]

उसकी जड़ १६ तोला [illegible] जल में पका, चतुर्थांश शेष रहने पर उतार लें । फिर उसमें [illegible] और [illegible] का समभाग मिश्रित [illegible] (कोई कोई वैद्यगिरी [illegible]) [illegible] लेते हैं । [illegible] घृत सौम्य होता है । [illegible] में 'दन्तीद्रवन्तीभ्यां' ऐसा पाठ है, जिसका अर्थ दन्ती मूल तथा [illegible] दन्ती और [illegible] दोनों होता है) १६ तो. और गोघृत ६४ तो (क्वाथ से सम-भाग ही यहां लेना ठीक है) मिला—कर आग पर घृत सिद्ध करलें । घृत को और भी सौम्य करने के लिए पाक करते समय उसमें घृत से ४ गुना जल मिला लिया जाता है।

रोगी को यथोचित मात्रा में इसका सेवन कराने से यह पांडु, प्लीहा और शोथ को दूर करता है ।

(च० चि० अ० १६)

यदि रोगी केवल कामला से पीड़ित हो तो दन्ती-मूल के कल्क में समभाग गुड़ मिलाकर, उचित मात्रा में, शीतल जल के साथ पिलावे । यह उत्तम विरेचक एवं

---

[1] जो द्रव्य धातुओं को हानि पहुंचा कर, सन्धिबन्धनों को खोल देता है, उसे विकासी कहते हैं। अग्नि और सूर्य द्वारा उसका विकासी गुण नष्ट कर देने से हानि की सम्भावना नहीं रहती ।

कामलानाशक है।

इस प्रयोग को आसव-विधानानुसार जल मे दन्ती-मूल का कल्क और कल्क के समभाग गुड डालकर आसव प्रस्तुत कर लेना और भी उत्तम है। तथा चरक का पाठान्तर 'शीतपारासुत' भी है।

२ परिणाम शूल पर—इसकी जड़ के चूर्ण के साथ निसोत, काली निसोत, सेवती के फूल, कुटकी, नील का पचांग और सोठ का चूर्ण अर्ध-अर्ध भाग मिलाकर (बलवान पुरुष के लिये चूर्ण ६ माशा तक की मात्रा मे) अण्डी के शुद्ध तेल (मात्रा ४ तो तक) मे मिलाकर देने से विरेचन होकर शूल तुरन्त नष्ट होता है। (से)

३. विषूचिका पर—दन्ती, चित्रक और पिप्पली समभाग, पत्थर पर जल के साथ पीसकर मन्दोष्ण जल से पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। (व से.)

४ दंतकृमिनाशार्थ—दन्ती, सत्यानाशी-मूल, कसीस, वायविडङ्ग और इन्द्र जौ का समभाग चूर्ण बनाते। इस चूर्ण को कृमि वाले दात मे भरने से कृमि नष्ट हो जाते है। (व. से.)

५ श्लीपद पर—इसकी जड़ और निसोत ४-४ तो, त्रिफला, अतीस, चित्रक और वायविडङ्ग २-२ तो. सबको जल के साथ पीसकर ४० तोला घृत मे यह कल्क और सेहुण्ड (थूहर न० १) का दूध २० तोला (तथा पानी दो सेर तक) मिलाकर घृत सिद्ध करते। इस घृत को १ से ४ बूंद की मात्रा मे सेवन से विरेचन होकर दुस्साध्य श्लीपद रोग भी नष्ट हो जाता है। (व. से)

६ कुष्ठ रोगी के विशोधनार्थ—इसकी जड़ २५६ तो जौकुट कर १०२४ तोला पानी मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर, छानकर उसमे २५६ तोला घृत और ६४ तो. तोरई का कल्क मिला घृत सिद्ध करले। (मात्रा २ से ४ तो तक) पिलाने से वमन विरेचन द्वारा रोगी का विशोधन होकर रोग का प्रभाव कम हो जाता है। (वा भ)

७ अर्शांकुर नाशार्थ दन्त्यादि तेल—इसकी जड के साथ कनेर की जड, कसीस, वायविडङ्ग, इलायची, चित्रक व सेंधा नमक समभाग मिला मिश्रित २० तो कल्क कर उसे सरसों तेल २ सेर, आक का दूध २ सेर (कोई-कोई अर्क दुग्ध कल्क के समभाग लेते है) और ८ सेर पानी मे मिला, तेल सिद्ध कर लेवे। इस तेल की मालिश से गुदा के मस्से नष्ट होते हैं।

८ भगन्दर पर—इसकी जड, हल्दी और आमलो को जल के साथ पीस कर लेप करते रहने से दुस्साध्य भगन्दर भी शीघ्र नष्ट हो जाता है। (भा भै र)

९ कृमि, कुष्ठ एव कफदोष पर शिरोविरेचन-नस्य—दन्ती मूल, सेंधानमक, मुलैठी, तुलसी (मरुवा) के बीज, पिप्पली, वायविडङ्ग और करज-फल का समान भाग महीन चूर्ण कर रोगी को नस्य देने से उक्त विकारो मे लाभ होता है। (च चि अ ७)

कफज कास व श्वास वेग के शमनार्थ-जड का धूम्रपान भी कराते है।

१०. ज्वर मे—मूल को तक्र के साथ पीस छानकर पिलाने से यकृत-क्रिया ठीक होकर, शौच द्वारा दूषित पित्त के निकल जाने से ज्वर हलका पड जाता है।

११ जलोदर, यकृतोदर, हृदयोदर, वृक्क विकृतिजन्य-उदर, कामला आदि पर, एव त्वचा के प्राय समस्त विकारों पर—मूल के साथ सौफ आदि सुगधि द्रव्यो को मिला क्वाथ रूप मे विरेचनार्थ देते है। मूल के चूर्ण को ३ मा तक की मात्रा मे गरम जल के साथ और यदि ताजी जड मिले तो १ तो. तक की मात्रा मे शीत जल मे पीस छानकर विरेचनार्थ पिलाते है।

मूल का लेप शोथहर एव वेदना-स्थापक है।

बीज—रस और पाक मे मधुर, मल-मूत्रनिसारक है। विष, शोथ, तथा कफ-रोग-नाशक, जमालगोटा या उससे भी अधिक तीक्ष्ण एव तीव्र-रेचक व अधिक मात्रा मे प्राणघातक है।

बीजो का लेप शोथहर, उत्तेजक व वेदनास्थापक है। सर्प-विष पर—बीजो का नेत्रो मे अ जन लगाते है।

१२ पिटिका या फुसियो पर—बीजो के साथ अण्डी के बीजो को पानी के साथकर लेप करने से सभी दोपो से उत्पन्न पिटिकाये अति शीघ्र नष्ट हो जाती हे। (भा भै र)

तैल—बीजो का तेल वात व्याधि मे अभ्यङ्ग के लिए प्रयुक्त किया जाता व रोग एव अवस्था या आवश्यकतानुसार पिलाया भी जाता है। कुष्ठ मे इसका लेप करते है। गठिया पर इसका मर्दन किया जाता है। यह जलोदर और पित्त नाशक है।

पत्र—श्वासहर, एव व्रण रोपण है। श्वास पर—पत्रो का क्वाथ देते हैं। व्रण रोपणार्थ पत्रो का प्रलेप करते हैं।

१३ शरीर मे कही छिन्न-भिन्न होने से रक्त-स्राव होता हो तो इसके कोमल पत्तो का रस लगाने तथा ऊपर से इसके पत्रो को बाध देने से रक्तस्राव वन्द होकर पूय-निर्माण या पकाव नही होने पाता तथा वेदना आदि उपद्रव शीघ्र ही दूर हो जाते है।

विशिष्ट प्रयोग—

(१) दन्ती हरीतकी—१ द्रोण (१२ सेर ६४ तो) जल मे दन्तीमूल १ सेर २० तो तथा उतना ही चित्रक, दोनो का जौकुट-चूर्ण पकावे। साथ ही उसमे बडी हरड २५ नग एक पोटली मे वाध कर डाल दे। अष्टमाश क्वाथ शेष रहने पर हरड की पोटली निकाल कर अलग रख दे और क्वाथ मे १ सेर २० तोला गुड घोल कर छान लेवें। उक्त हरडो को पोटली से निकाल, १६ तोले तिल-तैल मे भूनकर गुडयुक्त क्वाथ मे डालकर पाक करें। जब यथावत् लेहवत् पाक होजाय तब निसोत-चूर्ण १६ तोले, पिप्पली, सोठ का चूर्ण २-२ तो , इनका प्रक्षेप देकर उतार ले। शीतल होने पर उसमे चातुर्जात (दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर) का चूर्ण ४ तोला और शहद १६ तोला मिला दे। इस अवलेह मे मे हरडो को अलग निकाल कर काच की वरणी मे रख दे।

मात्रा—१ से २ तोला तक लेह को चाट कर ऊपर से आधी या १ हरड के खा लेने से सुखपूर्वक विरेचन होता है तथा कुछ दिन के सेवन से प्लीहा, शोथ, गुल्म, अर्श, हृद्रोग, पाडु, ग्रहणी, उत्क्लेश (जी-मिचलाना), विषम-ज्वर, कुष्ठ, अरुचि (कामला, अफरा) आदि रोग नष्ट होते हैं। (भैं० र०)

(२) दन्ती मोदक—दन्ती मूल और चित्रक-४-४ तो , हरड २० नग, निसोत, पिप्पली २-२ तो इनके चूर्ण को एकत्र मिला ३२ तो गुड के साथ घोटकर १० मोदक बनाते। १०-१० दिन के बाद १-१ मोदक खावें, ऊपर से गरम जल पीवे। इससे सब रोग नष्ट होते हैं।

ग्रहणी, पाडु, अर्श, कण्डू, कुष्ठ और वात-विकृति पर विशेष लाभप्रद है। सेवन-काल मे उष्ण पदार्थ सेवन करे। अन्य किसी प्रकार के पथ्य परहेज की आवश्यकता नही है—च० क० अ० १२ और व० से०। इस योग को अगस्ति मोदक भी कहते हैं।

(३) दन्त्यादि गुटिका—(रक्तगुल्म व कष्टार्तव निवारक)—दन्तीमूल, हीग, यवक्षार, कडुवी तुम्बी बीज, पिप्पली और गुड समभाग चूर्ण कर, उसे सेहुण्ड (थूहर न० १) के दूध मे घोटकर १-१ तोला की (आधुनिक मात्रा १३ मा तक की) गोलिया बना ले। इसके सेवन से रक्त गुल्म नष्ट होता तथा रुका हुआ मासिक-धर्म खुल कर होने लगता है। (यो० र०)

प्रति दिन प्रात साय अथवा केवल एक बार साय काल मे १ या २ गोली खाकर ऊपर से गरम जल पीवे। शीत पदार्थ का सेवन न करे।

(४) दन्ती (गुडाष्टक)—दन्तीमूल, सोठ, मिर्च, पिप्पली, निसोत, चित्रक मूल की छाल और पीपलामूल समभाग का महीन चूर्णकर सबको समभाग उत्तम गुड मिलाकर सुरक्षित रखे।

३ से ६ माशे की मात्रा मे गरम जल से प्रात सेवन करने से-बल, वर्ण, अग्नि की वृद्धि होती तथा शोथ, उदावर्त्त, शूल, प्लीहा, पाडु, मेदोरोग आदि का नाश होता है। —(भा० भैं० र०)

(५) दन्त्यरिष्ट (अर्श, ग्रहणी आदि नाशक)—दन्ती-मूल, चित्रक-मूल, दशमूल, सरिवन, पिठवन छोटी व बडी कटेरी, गोखुरू, वेल, सोनापाठा, कुम्भेर, पाटल और अरनी इन सबकी जडे) तथा हरड, वहेडा, आमला प्रत्येक ४-४ तो लेकर सबको जौकुट कर १३ सेर जल मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर, छान कर, ठडा हो जाने पर उसमे ५ सेर गुड मिला चिकने मटके मे

(प्रथम धाय के फूल और लोध को पीसकर लेप करदे, लेप के सूख जाने पर इस मटके मे) भर, अच्छी तरह मुखसधान कर १५ दिन सुरक्षित रक्खें। फिर छानकर बोतलो मे भर रक्खे। १ से २॥ तो तक समभाग जल मिला, सेवन से अर्श, ग्रहणी, पाडु, कब्जी, अरुचि आदि नष्ट होते ह। मल व वायु का यथोचित निस्सरण होकर जठराग्नि दीप्त होती है। (चरक)

नोट—अन्य आसवारिष्ट के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह में देखिये।

नोट—मात्रा—मूलचूर्ण १-२ मा.। मूल-क्वाथ २॥ तो. तक। पत्र-क्वाथ ४-८ तो. तक। बीज आधे से १ रत्ती तक।

अतिमात्रा में यह क्षोभक, मादक और कभी २ घातक भी है। हानि निवारणार्थ—मधुर, स्निग्ध पदार्थ, शर्वत, दूध आदि तर द्रव्यो का सेवन करावे।

दन्ती (बड़ी) Jatropha Glandulifera

गुडूच्यादिवर्ग एव एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इसके झाडीनुमा क्षुप अण्डी (मुगलाई एरण्ड) के क्षुप जैसा ही होता है, पत्र—लाल रग के, पुष्प—हरिताभ पीतवर्ण के, फली—१-३ से मी. लम्बी गोल, चिकनी, तथा बीज—काले, चमकीले होते है। मूल—गुच्छबद्ध अनेक होते है।

इसके क्षुप भारत के दक्षिण प्रान्तों मे, तथा बगाल मे भी पाये जाते है।

कई लोग मुगलाई एरण्ड (Jatropha Curcas) को बडी दन्ती मानते है। किन्तु इसके मूल मे विरेचक गुण की विशेषता न होने से स्व. श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य तथा अन्य विद्वानो ने इसे बडी दन्ती स्वीकार नही किया है। आगे दन्ती (बडी) भेद न० २ मे इसका वर्णन देखिये।

हमारे विशेष अनुसधान से हमे ज्ञात हुआ है कि बडी दन्ती (द्रवन्ती) यह जमालगोटे (जयपाल) की ही एक जाति विशेष है, जिसका सक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत प्रसंग मे किया जा रहा है। भद्रदन्ती इसीका एक भेद है, इसका विवरण इसी प्रसग मे आगे देखिये।

चरकसहिता मे दन्ती के एक अन्य भेद नागदन्ती का उल्लेख है। इसका वर्णन पीछे द्वितीय खण्ड के घनसर के प्रकरण मे देखे।

नाम—

स—बृहद्दन्ती, द्रवन्ती, शतमुलिका इ०। हि०—बडी दंती, जङ्गली अरण्डी, चन्द्रजोत, लाल भोडा इ०। म०—रानएरंडी विलायती, एरण्डी उन्दरबीवी। बं०—लाल भेरड। लै०—जेट्रोफा ग्लेडयूलिफेरा।

गुणधर्म व प्रयोग—

पत्रादि तोडने पर इसके क्षुप से जो एक प्रकार का रस निकलता है, वह दाहकारक है, त्वचा पर लगने से जलन एव छाला उठ आता है, खुजली होती है।

मूल—प्रदाह, श्वास, वातनलिका प्रदाह, गुल्म, अर्श कटिवात, पक्षघात आदि मे उपयोगी है।

(१) गुल्म पर—दन्ती गुग्गुल—

इसकी मूल के साथ छोटी दन्ती मूल, शुद्ध गूगल, निसोत, सेधानमक और वच का चूर्ण समभाग लेकर, सबको एकत्र मिला उसमे थोडा घृत मिला, खूब कूटकर १-१ मा की गोलिया बनाले। दोषानुसार इसे गोमूत्र मद्य, दूध या द्राक्षारस के साथ (१ से ३ गोलिया तक) सेवन से गुल्म रोग दूर होता है। (ब. से)

नोट—इसके मूलो की सग्रहविधि, छोटी दन्ती के मूल संग्रहविधि के अनुसार ही है। संग्रहणार्थ—ताम्रवर्ण की उत्तम मोटी जडें लेनी चाहिये। प्राचीन छोटी और बडी दोनों दन्तियों के मूलों के प्रयोग प्राय एक साथ ही मिलते है।

(२) बालको की प्लीहा या यकृत या दोनो की वृद्धि पर—मूल को जल के साथ पीस और रस निचोड कर १ से ४ मा तक की मात्रा मे पिलाने से जुलाब होकर वृद्धि दूर होती है। आध्मान दूर होता है, सधिशोथ पर भी लाभ होता है।

(३) नेत्रो की स्वच्छता के लिये इसके उक्त रस को लगाते हैं। कीचड आदि दूर होता है। शेष प्रयोग छोटी दती मूल जैसे ही है।

बीज—तीव्र रेचक है। इसके तैल को जीर्ण-व्रण,

दाद, सन्धिवात, पक्षाघात आदि पर लगाते है। बीजो के प्रयोग जमालगोटे (जैपाल) के बीजो के प्रयोग जैसे ही है। ये दोनो परस्पर प्रतिनिधि है।

पत्र—इसके पत्तो का स्वाद अरुचिकर है। पत्रो का उपयोग विशेषत ऋतुस्राव–नियमनार्थ एव वेदनास्थापनार्थ किया जाता है। बिच्छू के विष पर पत्रो को पीस कर लेप करते है।

(४) गण्डमाला पर—पत्तो को पीसकर, वस्त्र से निचोडकर स्वरस निकाल ले। फिर इस रस को छाया मे सूखने के लिये रख दे। जब कुछ गाढा हो जाय, बड़ी बडो गोलिया बना ले। इसे पानी मे पीस लेप लगाते रहने से लाभ होता है (व गु)

नोट—बडी दन्ती के शेष प्रयोग आगे के प्रकरण मे (दन्ती भेद न० १)मे देखे। उसका भी उपयोग बडी दन्ती मानकर किया जाता है -

भद्र दन्ती–यह प्रस्तुत प्रसग की बडी दन्ती का ही एक छोटा भेद है। इसके सुन्दर छोटे २ शोभायमान क्षुप होते है, जो प्राय बाग-बगीचो मे शोभा के लिये लगाये जाते है। पत्र आदि उक्त दन्ती के जैसे ही, बीज-दंती बीज की अपेक्षा बहुत छोटे होते है।

इसे स० हि० म० और व० मे भद्र दन्ती अग्रेजी मे कोरल ट्री (Coral tree) तथा ले०–जेट्रोफा मल्टिफिडा (Jatroha Multifida) कहते है।

इसके बीजो मे वसायुक्त स्थिर तैल तथा कुछ तिक्त द्रव्य पाये जाते हैं। यह तीव्र-रेचन व वामक है। इसका एक ही बीज घातक हो जाता है। इसे अग्रेजी मे स्माल फिजिक नट (Small physic nut) कहते है। औषधि–कार्यार्थ प्राय इसका उपयोग नही किया जाता है।

दन्ती (बड़ी) भेद नं. १ [चन्द्रजोत, रतनजोत]
(Jatropha Curcas)

उक्त दन्ती की ही जाति के इसके क्षुप, सदैव हरे-भरे, शाखा-प्रशाखायुक्त १०-२० फुट तक ऊचे, रेडी के वृक्ष जैसे, तना या काड–अनियमित, सीधा या टेढा-मेढा छाल-धूसर वर्ण की चिकनी, चमकीली, भीतर का काष्ठ-श्वेत वर्ण का पोला या छिद्रयुक्त, पत्र-चिकने, बडे, गोल, चित्र-विचित्र रङ्ग के ४-६ इच व्यास के, ३ या ५ भागो मे विभक्त, प्राय रेडी पत्र जैसे, पुष्प-पीताभ-हरित वर्ण के, पुष्प-दण्ड पर अनेक पुष्प, फल-हरे रङ्ग के १-१॥ इच, रेडी के फल जैसे, सूखने पर कुछ काले पडकर बहुत दिनो तक पेड मे लगे रहने वाले, बीज-रेडी के बीज जैसे होते है। प्राय ग्रीष्म काल मे फूल व फल आते हे।

इसके पत्तो को तोडने से श्वेत या ताम्र वर्ण का बहुत दूध निकलता है।

यह दक्षिण अमेरिका का आदिवासी पौधा, प्राय भारत के सब प्रान्तो मे नैसर्गिक रूप मे पाया जाता हे। यह ग्रामो के निकट या बाग-बगीचो की मेडो पर भी लगाया जाता है। विशेषत दक्षिण के कारोमडल कोस्ट, ट्रावनकोर, बगाल, बिहार, पश्चिमोत्तर प्रदेश आदि प्रातो मे अधिक पाया जाता है।

नोट—इसका एक भेद चन्द्रजोत-लाल (J Gossypifolia) है। आगे के प्रकरण मे इसका वर्णन देखिए।

नाम—

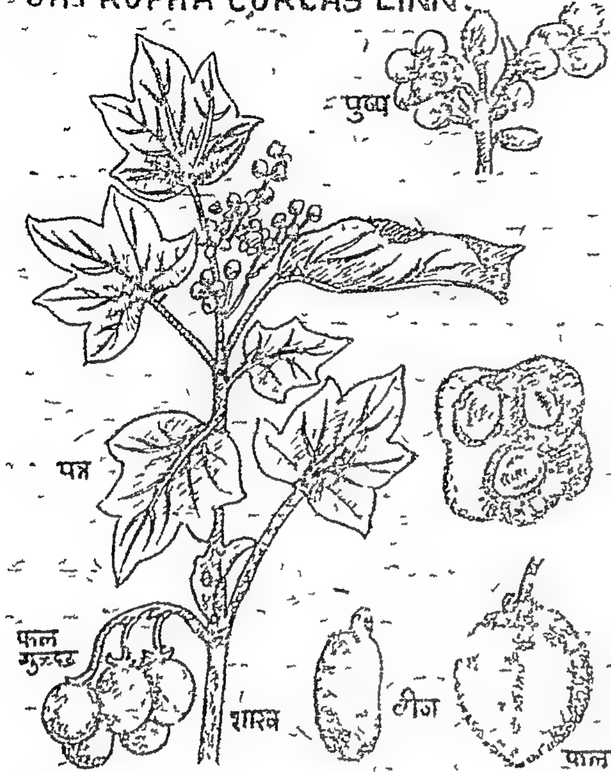
स०—व्याघ्रैरण्ड, कानन एरण्ड, दुग्धगर्भा, वृहद्-दन्ती आदि। हि०–चन्द्रजोत, रतनजोत, विदेशी अरण्डी, जगली-अरण्डी इ०। म०–मोगली एरण्ड। गु०–मोगली एरण्डो रतनजोत नेपाल। ब०–बाघ भेरड, बनभेरड। अ०–पर्जिंग नट (Purging nut) ले०–जेट्रोफा कर्कस।

रासायनिक संघटन—

बीजो मे हलके पीले रङ्ग का स्थिर तेल ३०%तथा शर्करा, स्टार्च, कर्सिन (Curcin) नामक एक विषैला-पदार्थ, केसीन (Caseine) आदि पाये जाते है। उक्त तेल मे इसका मुख्य कार्यकारी तत्व जेट्रोफिक एसिड (Jatrophic acid) होता है।

दन्तीबडी नं १

JATROPHA CURCAS LINN.



गुण धर्म व प्रयोग——

तिक्त, कटु, उष्ण, दीपन व अर्श, व्रण, शूल आदि नाशक है।

दूध—पौधे से जो ताम्रवर्ण का रसस्राव होता है, वह रक्त मार्गावरोधक एवं व्रण रोपक है। इस चिपचिपे दूध को जखम, व्रण या शरीर में कहीं छिन्न-भिन्न होने से रक्तस्राव को बन्द करने के लिए लगाते है। इसके लगाने से उस स्थान का संकोच होता, तथा उस पर दूध सूखकर कोलोडियन (Collodion) के समान पतला पर्दा छा जाता है, जिसमे वायु एवं वायु मे रहे हुए कीटाणुओ से व्रण की रक्षा होती रहती है। अत. व्रण, जखम आदि शीघ्र भर जाता है। इससे किसी प्रकार की हानि नही होती है। (डा० देसाई)

(१) गरमी या उपदंश के चट्टे या व्रणो पर—दूध को लोहे के तवे पर लेकर उसमे बासी मुख का थूक मिलावें और थोडा रसकपूर घिसकर लेप करें। दो दिन मे लाभ हो जाता है। (व० गु०)

उपदंश जन्य शुष्क चट्टो पर—प्रथम रीठे के पानी से चट्टो को धोकर, पोछ डाले। फिर इसके दूध मे थोडा मक्खन मिला लेप करे। (व० गु०)

(२) बिच्छू के विष पर—दूध को हाथ मे लेकर उंगलियो से रगडने पर जब वह गाढा हो जाय तब उसे ४-५ बार दंश स्थान पर लगावें। (व० गु०)

(३) मसूढो की सूजन तथा दंत-रोग पर—दूध को दिन मे २-३ बार लगावे। तथा इसकी ताजी लकडी की दातौन करे।

बीज—मधुर, गुरु, स्निग्ध, रेचक, वामक, कफपित्त-प्रकोपक, दाहजनक, वात-रोग गुल्म, कास आदि पर उपयोगी है।

बीज या उसका तेल जमालगोटे जैसा या कुछ कम तीव्र-रेचक है, किंतु इसकी क्रिया अनियमित होने (कभी तो इससे तीव्र विरेचन होता है, और कभी बहुत ही कम रेचन होता है) से इसका आन्तरिक व्यवहार नही किया जाता है।

"विशेष कर बीज के अकुर मे चरपरी, वामक, एवं अतिरेचक शक्ति है। यदि ये अकुर निकाल दिये जांय तो इसके ४-५ बीजो से साधारण निरुपद्रव विरेचन हो सकता है। इसके साबित बीज विष के समान हानिकारक होते है। इनके खाने से मुख मे दाह, पेट फूलना, उदर-पीडा, हृल्लास, वमन, तीव्र विरेचन, हाथ-पैरो मे दाह, छाती मे कफ का जम जाना, प्रलाप, मूर्च्छा आदि उपद्रव होते है। (स्व लाला रूपलाल जी-वैश्य के एक लेख मे)

इसके तेल की १० से २० बूंदो का रेचन-प्रभाव २।। तोले रेंडी-तेल के बराबर है। किन्तु यह तीव्र वेदना, ऐंठन पैदा करता है। नीबू का रस पिलाने पर शांति प्राप्त होती है।

खुजली, चर्म कुष्ठ, विसर्प, छाजन एवं अन्य चर्म-रोगो पर तथा आमवात मे इसे लगाते है। व्रण-शोधनार्थ भी यह तेल उपयोगी है।

(४) शीत-पित्त तथा भगन्दर आदि व्रणो पर—बीजो के अन्दर की गिरी निकाल कर पीसकर जल मे मिला पात्र को आग पर रखें। जब जल थोडा रह जावे

तब नीचे उतार कर, पानी पर जो तेल उतराता है, उसे धीरे से कपास के फाये से निकाल शीशी में भर रक्खे। इसे व्रणों पर कपास के फाये से लगावे। शीत पित्त पर इसे शरीर पर दिन में ४-५ बार लगावे। (व० गु०)

(५) ग्रंथि या वद आदि के फूटने पर जो क्षत होता है उसके पूरणार्थ—बीजों का तेल (जितना पुराना मिले उतना उत्तम) लेकर कपास की जाडी पट्टी बना कर, तेल में भिगोकर क्षत पर रक्खें, तथा उस पर बार-बार उक्त तेल की बूंदें डालते रहें। इस प्रकार प्रात काल की क्षत पर जमाई हुई पट्टी को सायकाल निकाल कर दूर करें, तथा पुन नवीन पट्टी जमा दें। कुछ दिन इसी क्रम से उपचार करने पर व्रण भर कर ठीक हो जाता है। (व० गु०)

(६) आमवात जन्य सन्धि-पीडा पर—इसके तैल में २ से ४ गुना सरसों तैल मिलाकर मालिश करते रहने से लाभ होता है।

मूल—वातानुलोमक, पाचक और ग्राही है।

(७) अजीर्णजन्य अतिसार या विसूचिका तथा उदर-शूल पर—इसकी एक अंगुल लम्बी ताजी जड को ७ नग कालीमिर्च और थोड़ी (१ रत्ती तक भूनी हुई) हींग के साथ पीस कर तक्र में घोल, छानकर पिलाते हैं। यह प्रयोग कोकण की ओर बहुत प्रचलित है।

(८) वमन, रेचन बन्द करने के लिए—शक्ति के अनुसार मूल को, तक्र या चावल के धोवन में लगभग १ तो तक घिसकर पिलावें।

(९) बालकों के उदर-शूल पर—छोटे या बड़े बालक के पेट में दर्द हो, तो मूल को तक्र के जल में पीसकर उसमें थोडी हींग मिला पिलावे। (व० गु०)

(१०) गठिया (आमवात) पर—मूल की छाल पानी के साथ पीसकर, गरम कर लेप करते हैं।

पत्र—स्तन्यजनन, संकोचक व्रण-रोपक है। पत्तों के क्वाथ से व्रणों को धोते रहने से वे शीघ्र ठीक हो जाते हैं। क्वाथ से कुल्ले करने से मसूढों से होने वाला रक्तस्राव बन्द होकर मसूढे व दांत मजबूत होते हैं।

(११) दुग्ध-वृद्धि के लिए—स्तनों पर पत्तों के क्वाथ का बफारा देकर, उन्हीं उबले हुए पत्तों को बांध देते हैं। अथवा—ताजे पत्तों को कुछ गरम कर स्तनों पर बांधते हैं। कुछ दिनों के इस उपचार से स्तनों में दूध का परिमाण बढ जाता है।

(१२) व्रण या फोडे को पकाने के लिए—पत्रों पर रेडी-तेल चुपड़ कर गरम कर बांधते हैं।

दन्ती [बड़ी] भेद नं० २ (लाल चन्द्रजोत)
(Jatropha Gossypifolia)

उक्त दन्ती की ही जाति के इसके क्षुप ३-६ फुट ऊंचे, पत्र—३-४ लम्बे गोल, ३-५ खण्डों में विभक्त, पुष्प—लाल रङ्ग के, फल—छोटे, चिकने, गोल ½ इंच व्यास के प्राय त्रिखण्डयुक्त, बीज—चिकने, कुछ लम्बे, काले रङ्ग के, चमकीले होते हैं। फूल और फल प्राय वर्षाऋतु में आते हैं।

इस क्षुप की शाखाओं, पत्रों, पत्रवृन्तों या उपपत्रों पर, [illegible] सूक्ष्म [illegible] रोमों के रूप में रहती हैं, जिनसे यह पौधा अति चिपचिपा हो जाता है। इसे आदि तोड़ने पर इससे चिपचिपा पीताभश्वेत रस निकलता है। इसकी जड़ में कपूर जैसी गंध आती है।

नाम—

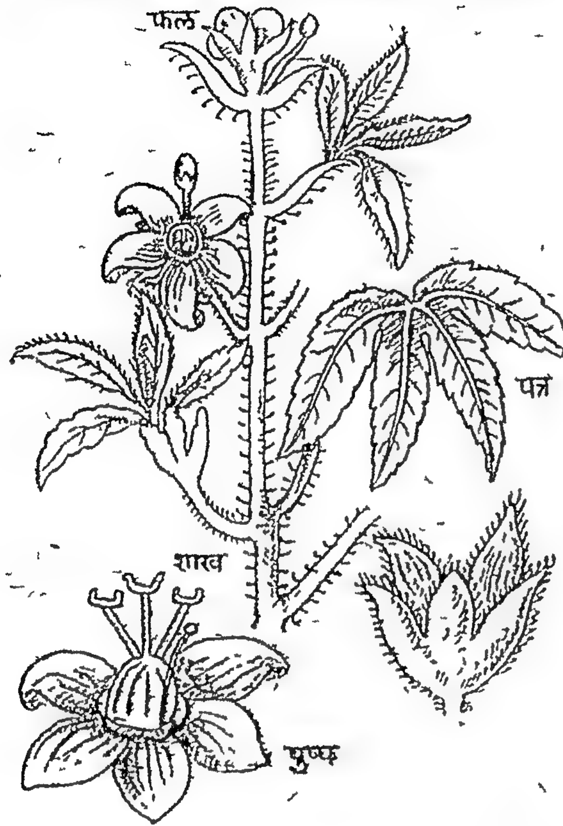
सं—रक्त व्याघ्रैरण्ड, निकुंभ। हि०—लाल चन्द्रजोत। बं०—लाल भेरण्डा। ले०—जेट्रोफा गॉसिपिफोलिया।

यह भी अमेरिका का मूल निवासी है। भारत के उष्ण प्रदेशों के जंगली रास्तों के किनारे या ऊसर भूमि में बहुतायत से पाया जाता है। इसका रासायनिक संघटन उक्त भेद नं० १ के ही अनुसार है।

बीज उन्मादकारक और वामक होता है। इसकी

दन्तीबड़ी नं० २

JATROPHA GOSSYPIFOLIA LINN.



छाल का क्वाथ ऋतु-स्राव नियामक है। पत्तो का प्रयोग व्रणों पर तथा छाजन, खुजली आदि चर्म-रोगो पर किया जाता है। शेष गुण धर्म व प्रयोग उक्त दंती भेद नं० १ के अनुसार ही हैं।

दमजरी—दे०—अजगर। दमनक—दे०—तुलसी दौना। दमन पापड़ा—दे०—पित्त पापड़ा दम्मुल अखवैन—दे०—खूनखराबा (हीरादोखी)

दरियायी नारियल

(*LODOICEA SECHEUARUM*)

नारिकेल-कुल (Palmae) के इसके वृक्ष नारियल के वृक्ष जैसे, किंतु उनसे बहुत ऊंचे, सीधे, ताड़वृक्ष जैसे ५५-१०० फुट ऊंचे; पत्र-नारियल वृक्ष के पत्र जैसे खूब बड़े-बड़े, पत्ते परिपक्व होकर शुष्क हो जाने पर, तने पर लगे हुए लम्बे वृन्त सहित नीचे गिर पड़ते हैं, पुष्प—छोटे-छोटे, पुंकेशर प्राय ६ दो कतारो मे, फल-आकृति मे नारियल के फल जैसे किंतु उससे अत्यधिक बड़े, लम्बे, जुड़वा या दो खड वाले, बहुत बड़े, स्थूल, भारी लगभग २०-२५ सेर वजन के होते है। फलो का ऊपरी कवच भी बहुत कड़ा होता है, इसे तोड़ने पर भीतर जो गिरी (गोला) निकलता है, वह प्रथम गीला रहता है, स्निग्धांश या तैल का अंश इसमे नही होता। यह गिरी सूखने पर पत्थर जैसी कड़ी हो जाती है। इसके कटे हुए, श्वेत रंग के बेडौल टुकड़े बाजार मे मिलते हैं। यह गिरी के टुकड़े भी बहुत बड़े एवं २ अंगुल तक मोटे होते हैं। इन्हें औषधि-कार्यार्थ रेती से रेतवा कर चूर्ण किया जाता है। इसके फल वृक्ष पर १० वर्ष तक आते हैं। फल के ऊपरी कवच या कड़े काष्ठमय भागो के कमण्डल बनाये जाते है, जो प्राय. जल-पात्र के रूप मे सन्यासी अपने पास रखते हैं।

समुद्र-तट पर होने वाले ये वृक्ष पूर्व आफ्रिका के सिकेलीज Seychelles नामक टापू (द्वीपकल्प जिसे लेटिन मे सिचेलेरम Sechellarum कहते हैं) एवं अमेरिका के समुद्र तट के आदिवासी है। कुछ वर्षों मे ये मलाबार और भारत के पश्चिमी समुद्र तट व बम्बई के निकट के समुद्र के किनारे पर भी होने लगे है।

नाम—

हि०-दरियायी नारियल। म०--दर्याचा नारल। गु०--भेरी नारियल, दरियाभू नारल। अं०-सी कोकनट Sea cocoanut लै०--लोडॉयसिया सिचेलेरम्।

प्रयोज्य अंग—गिरी (गोला या मगज)

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, मधुर, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, कफवात-शामक तृष्णा-निग्रहण, वामक, हृदयोत्तेजक, शोथहर, वेदनास्थापन, विषघ्न, मूत्रगत शर्करा न्यूनकारक, शीतप्रशमन, प्राकृतदेहाग्निवर्धक है। तथा अजीर्ण अतिसार, विषूचिका, मधुमेह (मधुमेह), शीतज्वर आदि मे विशेष उपयुक्त है।

इसकी ताजी गिरी मधुर, मज्जावर्धक होती है। सूखी

पुरानी हो जाने पर फीकी, कडुवी तथा जितनी-अधिक पुरानी होती है, उतनी ही अधिक उष्णताकारक व रूक्ष हो जाती है ।

(१) वमन, हृल्लास, अतिसार तथा विसूचिका मे इसे गुलाब जल मे घिस कर पिलाते हैं, इससे जब तक शरीर मे रोग का विष रहता है, तब तक वमन, अतिसार होते रहते है, किंतु तृष्णा शात हो जाती है, तथा रोगी का सुधार होता है । केवल वमन होते हो, तो इस का चूर्ण २-रत्ती तक मुनक्का मे रख कर खिलावे, शीघ्र लाभ होता है ।

(२) हृद्दौर्बल्य मे—हृदय की गति विशेष बढ जाने पर—इसे अर्क गुलाब अथवा अर्क बेदमुश्क मे घिस कर पिलाते रहने से शीघ्र ही हृदय स्वस्थ हो जाता है । इस विकार मे इसे जहर मोहरा खताई के साथ भी देते है ।

यकृत-दौर्बल्य मे इसे अनार के रस के साथ सेवन कराते है ।

(३) ज्वरो पर—कफ ज्वर या शीत ज्वर आने के पूर्व इसे १-२ रत्ती की मात्रा मे पीस कर गुलावजल के साथ देने से, ज्वर नही आता ।

मोतीझरा (मथर ज्वर) मे इसे स्त्री के दूध मे घिस कर दिन मे दो बार देते है ।

पित्त जन्य विकारो पर इसके कच्चे फल का पानी अथवा ताजी गिरी खिलाते हैं ।

(४) विषो पर—अफीम या वछनाग के विष मे, इसे ताजे दूध मे घिस कर, बार बार पिलाते है । इससे जब तक शरीर मे विष का असर रहता है, तब तक बराबर वमन होते है और रोगी स्वस्थ हो जाता है ।

इसे १ मा० की मात्रा मे पीसकर पिलाते रहने से सर्व प्रकार का विष-विकार दूर हो जाता है ।

सर्प, बिच्छू, ततैया, कनखजूरा आदि के दश पर—इसे अर्क गुलाब मे घिस कर मोटा लेप करते है, पीडा व जलन की शाति होती है । इसे गुलाबजल के साथ ही पिलाने से विष का असर दूर हो जाता है ।

(५) ग्रथि, वृद्धि, ग्रथि-शोथ-तथा उपदश के जख्मो पर—इसे साभर मृग के शृग के चूर्ण तथा कुचला-चूर्ण के साथ पीसकर प्रलेप बनाकर लगाते रहने से ग्रंथि, वृद्धि एव शोथ दूर होती है ।

उपदश के व्रणो पर इसे गुलाबजल में घोट कर लेप करते है ।

(६) मधुमेह मे—इसका क्वाथ ५ तो० से ७॥—तो० की मात्रा मे, दिन मे २-३ बार देते है ।

(७) बालको के उदर शूल पर—इसे कुचले की जड के साथ पीस कर पिलाते है ।

अर्श पर धूम्र—इसके साथ सडी सुपाडी और कुचला समभाग कूट कर, आग पर डालने से जो धुआ निकले, उससे अर्श-कष्ट दूर होता है ।

मात्रा—चूर्ण २ से ४ रत्ती, अधिक से अधिक ८ रत्ती तक । यह उष्ण प्रकृति तथा उष्ण व्याधियो मे अहितकर है। हानिनिवारणार्थ गुलाब पुष्पो का अर्क, ताजा दूध और कालीमिर्च उपयुक्त है ।

विशिष्ट योग—

जवाखार मोहरा के योग मे यह डाला जाता है ।

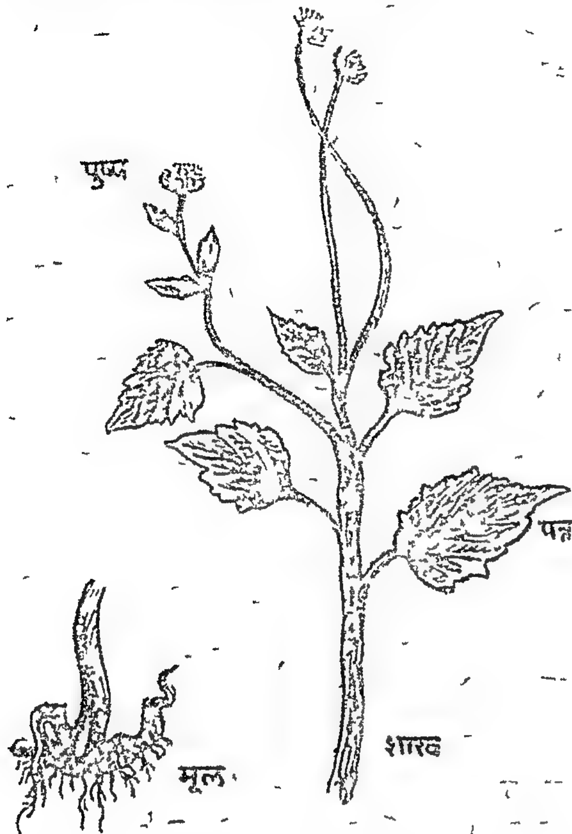
इसे यदि सप्ताह मे १ या २ बार १ रत्ती से ८ रत्ती तक की मात्रा मे, गुलाबजल के साथ घोटकर पी लिया जाय, तो शीतज्वर, विषमज्वर, गठिया, लकवा आदि के आक्रमण नही हो पाते । क्योकि यह खराब दोषो को तथा रोग-विष को वमन द्वारा बाहर निकाल देता है। यदि शरीर मे विकृत दोष या कोई भी विष न हो, तो इससे बिल्कुल वमन नही होती । (व च०)

इसका सेवन प्राय खाली पेट नही किया जाता ।

दरूनज अकरबी (Doronicum-Roylei)

भृंगराजकुल (GomPositae) के इसके बहुवर्षायु, बहुशाखायुक्त, सदैव हरे भरे पौधे सीधे, खडे २-४ फुट ऊचे, कुछ रोमश होते है । पत्र—गोल, ४-५ इच लम्बे तीक्ष्ण नोकवाले, बादाम के पत्र जैसे कुछ पीताभ, दतुर, नीचे के पत्ते जमीन पर बिछे हुए पत्र-वृन्त ४-६ इच लम्बे, कोमल वृन्त पर कुछ फूली हुई सी घुडीदार पीले

दरुनज अकरबी (प्लेगनाशक जडी)
DORONICUM ROYLEI, DC.



रग की ग्र थिया १-२ इ च व्यास की होती हैं। पुष्प—छोटे २ पीले रग के, पुष्प की पंखुडिया लगभग ½ इंच लम्बी, नोकदार पीतवर्ण की होती हैं। मूल—विच्छू के आकार की (अरबी भाषा मे अकरबी का अर्थ विच्छू होता है) छोटी, गाठदार, ऊपर से भूरी या मटियाली, भीतर श्वेत रग की, स्वाद मे फीकी, उष्णता व चुनचुनाहट कारक होती है। यह जड १० वर्ष तक हीनवीर्य नही होती।

नोट—रूमी और फारसी भेद से इसके दो भेद हैं। रूमी जो कडुवी व सुगधित होती है, उत्तम मानी जाती है। औषधिकार्यार्थ ऐसी जडी लेनी चाहिये जो कुछ कडुवी, सुगधित, कडी व अन्दर से श्वेत हो।

भारतवर्ष मे इसके पौधे पश्चिमी हिमालय मे काश्मीर से गढवाल तक १० हजार फीट की ऊचाई पर पैदा होते है, तथापि इसकी जडे पर्शिया से यहा के बाजारो मे आती है। पर्शिया के अतिरिक्त यूरोप, सीरिया, श्याम व अफ्रीका मे यह अधिक पैदा होता है। इस विदेशी जडी का लेटिन नाम डोरोनिकम पेरेडेलिए चेस (Doronicum Paradalianches) है। प्रस्तुत प्रसग मे भारतीय जडी का वर्णन किया जाता है। विदेशीय जडियो मे इसकी अपेक्षा मादक अम्ल द्रव्य (Narcotic acid) का परिमाण अधिक होता है।

नाम—

स.—वृश्चिकमूला (वृश्चिकाकार मूला)। हि०—दरुनज (दरूज) अकरबी, प्लेगनाशक जडी। अं०—ल्युपार्डसबेन (Leopards bane)। लै०—डोरोनिकम रोयली, डो. हूकेरी (D, Hookeri)।

प्रयोज्याग—मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, उष्ण, रूक्ष, पौष्टिक, हृद्य, दीपन, कफवातशमन, प्लेग-नाशक, बुद्धिशक्तिवर्धक, गर्भाशय एव गर्भरक्षक, उदरवातहर, वेदनानियामक, विषनाशक है। व कास, पुष्फुसविकार, शिरपीडा छाती की जलन, उदरशूल, वद, प्लेग-ग्रंथि, यकृत व आमाशय की दुर्बलता आदि मे प्रयुक्त होती है। तथा वातकफजन्य अर्दित, पक्षवध, वातिकउन्माद, अपस्मार आदि व्याधियो मे विशेष लाभकारी है।

हृत्स्पन्द, हृद्दौर्बल्य, हृच्छूल, अवसाद आदि प्राय सर्वप्रकार के हृद्रोगों पर यह एक प्रधान औषधि मानी जाती है। हृद्विकार सम्बन्धी दवाए मस्क आदि कई यूनानी प्रयोगो का यह एक उपादान है।

(१) प्लेग—(ग्रंथिक सन्निपात) निवारण की इसमे अद्भुत शक्ति है। प्लेग की ग्र थि पर इस जडी को अजीर के रस, या अगर या पानी के साथ घिसकर लेप करते हैं, गाठ बैठ जाती है। कहा जाता है कि घर के दरवाजे पर इसे लटका देने से घर मे प्लेग का प्रवेश नही हो पाता तथा इसे गले पर लटका लेने, एव थोडा थोडा इसके सेवन करते रहने से प्लेग का आक्रमण नही हो पाता। इस बात का समर्थन स्वर्गीय प्रसिद्ध

वनस्पति-अन्वेषक श्री भगीरथ स्वामी जी ने किया है। इसीलिए उन्होने ही इसका नाम प्लेग नाशक जडी रक्खा है।

२ जिस स्त्री को गर्भपात होने की तथा गर्भाशय मे अनियमित सकोच या शूल होने की शिकायत हो, उसे इसका सेवन कराते हैं। कष्टकर प्रसव के समय इसे स्त्री की जाघ पर वाध देने से शीघ्र ही प्रसव सरलता से हो जाता है। गर्भाशय की पीडा–निवारणार्थ इसे गर्भाशय मे धारण करते है।

३ उन्माद की दशा मे मस्तिष्क की उष्णता शात करने के लिए इसे कपूर के साथ देते है। दु स्वप्न-नाशार्थ इसे सिर पर बाधते हे।

४ सर्प, विच्छू, छिपकली या अन्य विषैले जतु के विष पर इसे पानी मे पीसकर पिलाते तथा दश-स्यान पर इसका लेप करते हैं।

नोट–मात्रा–१ से ३ या अधिक से अधिक ७ मा तक। उष्ण प्रकृति वालो को यह हानिकारक है। सिरदर्द आदि पैदा करता है। हानि-निवारणार्थ सोफ, इलायची, मिश्री या गेहूं का निशास्ता[1] देते है।

इसके प्रतिनिधि रुप मे–नरकचूर, अकरकरा, मीठी कूट, सुरजान या लौंग इनमे से कोई भी द्रव्य लिया जा सकता है।

स्व श्री भगीरथ स्वामी जी ने लिखा था कि–कलकत्ता मे इस जडी को कविराज ठा मक्खन सिंह जी ११३ हरिसन रोड मुफ्त बाटते है। जिन्हे आवश्यकता हो उक्त पते से मगा सकते हैं।

दवना–दे–तुलसी मे तथा नागदौन मे।

---

[1] गेहूँ को पानी में भिगोकर प्रातः सिल पर पीस पानी के साथ कपड़े में छान, आग पर घी में सेकना चाहिए। सेंकते समय उसमें ककडी, खरबूजा, तरबूज और बादाम की गिरी को पीसकर डाल देवें। जब खुशबू आने लगे तब मिश्री मिला हलवा बना लें। यही निशास्ता कहलाता हैं। (व० च०)

दशमूली

(DAEDALAC'NTHUSROEUS)

वासाकुल (Acanthaceae) के इसके पौधे ४-५ फुट ऊचे, शाखाये चतुष्कोण, पत्र–अभिमुख, लम्बे,–नीले, वेगनी रग के तीक्ष्ण अप्रियगधयुक्त, फली–३ इंच लम्बी होता है। मूल–कुछ लम्बी १० भागो मे विभक्त होने से यह दशमूली कहाती है।

यह घनी झाडियो या झरनो के किनारे एव पहाडी स्थानो पर बबूल आदि कटीले झाडो के नीचे विशेषत. पश्चिम भारत कच्छ आदि तथा दक्षिण मे कोकण आदि प्रान्तो मे पाई जाती है।

नाम—

हि०–दशमूली, गुलशाम। म०–दशमूलि। लै०–डिडालकेन्थस रौसियस।

गुणधर्म व प्रयोग—

शीत, पौष्टिक कुछ उष्ण व स्तन्य है तथा प्रदरादि नाशक है।

श्वेतप्रदर पर–जड को ४ मा तक की मात्रा मे दूध के साथ उबाल कर सेवन कराते है।

ज्वर, सधिवात आदि रोगो पर जड का क्वाथ देते हैं।

स्तनो मे दुग्धवृद्धि के लिए, विशेपत गाय, भैंस आदि जानवरो को दुग्ध बढाने के हेतु गर्भधारण होने पर इस जडी के चूर्ण को हलवा, दूध, खली या चरी के साथ खिलाते हैं।

दहिया–दे–सिहोरा

दाक

[Ribes Rubrum]

पाषाणभेद-कुल (Saxifragaceae) के इसके छोटे-छोटे क्षुप होते है। पत्र–अनार-पत्र जैसे हलके हरे रग के कोमल, फल–गोल, चिकने, बाह्यवर्ण हरिताभ लाल तथा अन्दर से गहरे नील वर्ण के चेपदार एव सुचिक्कण होते है।

यह वनस्पति लाल और काले फलों के भेद से दो प्रकार की होती है तथा उत्तरी एशिया मे विशेषत सेव, नासपाती, वलूत (वज) आदि वृक्षो की जड़ो के पास देखी जाती है।

बाजारो मे दाक के नाम से एक प्रकार के दाख (द्राक्षा) के शुष्क फल वेचे जाते हैं। अत सावधानी से देख-भालकर इसे लेना चाहिये।

प्रयोज्य अङ्ग—फल।

नाम—

हि०-दाक (यह पंजाबी नाम है)।
अं०-रेड व ब्लेक करेंट्स (Red and black Currants)

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, शोथहर, पौष्टिक, शीतवाधाहर, वात-कफ शमन, आन्तरिक दोष हर व केश्य है।

फलो को पीसकर लेप करने से शोथ या व्रणान्तर्गत विकृत दोष, मवाद आदि वाहर निकल जाते है।

दूषित वात-कफ के विकारो पर—इसे गरम जल मे भिगो, बीजो को दूर कर अखरोट या अण्डी की गिरी के साथ पीसकर सेवन कराते है।

फलो का लेप—वात जन्य शोथ, कफ प्रधान-शीत-पित्त, सविवेदना, व चेहरे की झाई पर किया जाता है। सिर के गज पर—इसे मेहदी-पत्र के साथ पीसकर लेप करते हैं। केशवृद्धि के लिए इसे रोगन गुल में मिला कर लगाते हैं। प्लीहा वृद्धि पर—इसे चूने के पानी के साथ पीसकर लेप करते है।

नोट—मात्रा—२ मा तक।

अधिक मात्रा मे यह सिर पीडा, उदर-शूल पैदा करता तथा हृदय के लिए हानिकर है।

हानि-निवारणार्थ—जल मिश्रित शहद से वार-वार वमन कराते, वस्ति (एनिमा) देते और बाद मे शिकज-बीन पिलाते है। खिल्लीलोटन, गावजवा, और नरकचूर भी इसके हानि-निवारक है।

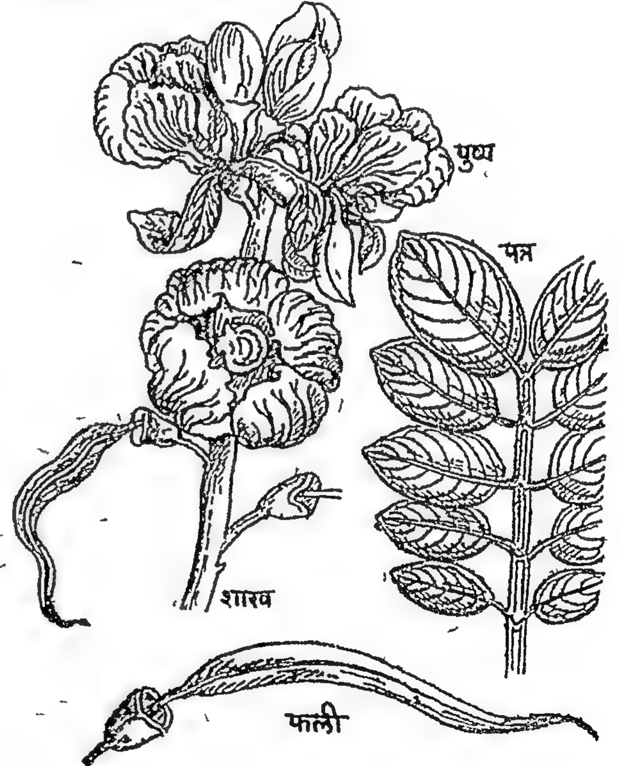
दाख—दे०—अगूर मे। दाड़िम—दे०—अनार।

दाद मर्दन

(*CASSIA ALATA*)

शिम्बीकुल (Legyuminosae) के पूतिकरंजादि उपकुल (Caesalpiniaceae) की इस बूटी की बडी झाड़िया होती हैं। शाखाये उंगली जितनी मोटी, अवनत एव कोमल; पत्र—लगभग १ से २ फुट तक लम्बे स्वाद मे सनाय जैसे, पुष्प—½ से १ फुट लम्बे पुष्प-दण्ड पर कुछ बडे पीतवर्ण के पखुडीदार-फूल अक्टूबर मास मे आते हैं। फली—लगभग ४ इंच से ८ इंच लम्बी, ½

दादमर्दन
CASSIA ALATA LINN.



इञ्च चौडी, ४ से ८ इञ्च लम्बी, ½ इञ्च चौडी, चपटी, कुछ पीतवर्ण की चमकीली तथा प्रत्येक फली में गोल चपटे छोटे-छोटे बीज, भूरे रग के ५० से भी अधिक होते है। फली फरवरी मास मे आती है।

यह अमेरिका देश का मूल निवासी, भारत के वगाल एव दक्षिणोत्तर प्रान्तो मे विशेष पाया जाता है।

बर्मा मे भी यह खूब होता है।

नाम–

सं०–दद्रुघ्न। हिं० म० दं०–दादमर्दन। बम्बई में और विलायती आगटी। अं०–रिंगवर्म श्रब (Ringworm Shrub)। लै०–कैसिया एलेटा; कै० ब्रेक्टियाटा (C Bractea), कै० हरपेटिका (C Herpetica)।

इसमे क्रायसोफेनिक एसिड (Chrysophanic acid) पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग––

पत्र-कृमिघ्न, कण्डू, दद्रु आदि चर्मरोग-नाशक एव रेचक है। बीज-कसैले, रेचक, वात-कफ नाशक, व कुछ मूत्रल है।

१ दाद, खुजली, छाजन आदि पर—पत्तो को कूट-पीस कर नीबू का रस मिला लेप करने से नवीन चर्मरोग शीघ्र दूर होते हैं। अथवा—पत्तो को पीस कर समभाग सुहागे की खील मिलाकर लगाते हैं।

२ मुख के छालो पर—पत्र-क्वाथ के साथ अडूसा-पत्र मिलाकर धीरे-धीरे चबाते हुए चूसते हैं।

३ शुष्क-कास पर—पत्तो के साथ अडूसा-पत्र मिला कर धीरे-धीरे चबाते हुए चूसते है।

४ कोष्ठबद्धता पर—पत्र-चूर्ण जल के साथ देते हैं।

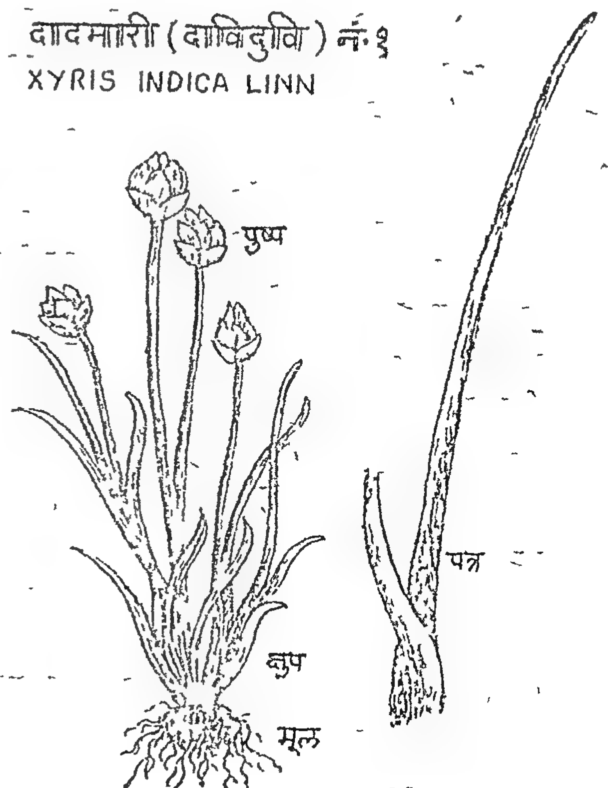
५ कष्ट-प्रसव पर—पत्र-क्वाथ पिलाते है।

६. श्वासनलिका शोथ-जन्य कास, श्वास पर—इसके पत्र और फूलो का क्वाथ देते हैं, बेचैनी दूर होती व कफ छूटने लगता तथा मल-मूत्र साफ होता है।

दादमारी नं० १ (XYRIS INDICA)

दद्रुघ्न-कुल (Xyridaceae) की २-३ बूटियो मे प्रधान इस वर्षायु बूटी के पत्र सीधे-लम्बे, पुष्प–लम्बे पुष्प-दण्ड पर गहरे लाल या बादामी रग के चमकीले पुष्प बडे शोभायमान, फल–छोटे-छोटे गोल होते हैं।

यह बूटी बगाल, बर्मा, आसाम, दक्षिणी कोकण तथा पश्चिमी प्रायद्वीप मे विशेष पाई जाती है।



नाम—

हिं०–दादमारी, दावी दुवी। बं०–चिनावाग, दावी दूबी। लै०–क्षायरिस इंडिका।

इसमे चर्मरोग नाशक क्रायसोफेनिक एसिड जैसा ही एक लाल रग का द्रव्य पाया जाता है, जो शराब मे घुलनशील है

गुणधर्म—

यह खाज और दाद की एक श्रेष्ठ, सरल एव साधारण औषधि मानी जाती है। पत्तो को पीस-दाद या खाज पर लगाते हैं।

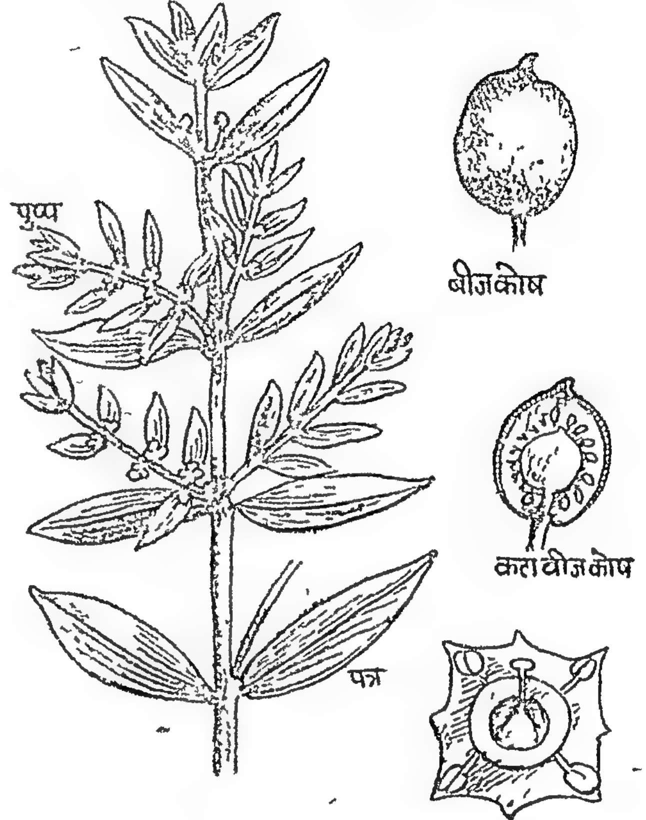
दादमारी नं० २ (*AMMANNIA BACCIFERA*)

मदयन्तिका कुल[1] (Lythraceae) के वर्षजीवी ये पौधे छोटे-छोटे ६-८ इञ्च ऊंचे कहीं-कहीं दो फुट तक ऊंचे, पत्र—अभिमुख, चमेली या कन्नेर-पत्र जैसे १–२½ इञ्च तक लम्बे, कुछ गोल, पतले अग्रभाग व किनारे पर कुछ कडे, पत्र-मूल मे नीलाभ गुलाबी डण्डी निकलती है, जिस पर छोटा घुण्डीदार, चिपटा सा बीज-कोष होता है। बीज—नन्हे-नन्हे गोल काले होते हैं। पुष्प—गुच्छो मे रोमश, श्वेत रग के छोटे-छोटे होते हैं। वर्षा ऋतु के अन्त मे फूल व फल आते हैं।

इसके पौधे जलाशय के समीपवर्ती स्थानो मे, विशेषत: बगाल आदि प्रान्तों मे अधिक होते हैं।

नोट—इसके पत्तों का स्वाद लाल मिर्च जैसा चरपरा, किन्तु अधिक जलन पैदा करने वाला होता है।

प्रथम भाग मे जिस अगिया (अगिन) बूटी का वर्णन है, वह इससे भिन्न है।



नाम—

सं०-अग्निगर्भ, अग्निपत्री इ०। हि०-दादमारी, कुरवड जगली मेंहदी अगिया इ०। म०-आग्या, भुरा-जांबोल इ०। गु०-जल आग्यो। बं०-आग्या दादमारी, वनमिरच। ले०-अमेनिया बेसिफेरा; अ. हैं सिकेटोरिया (A Vesicatoria)।

प्रयोज्य अग—पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त कटु, विबन्ध नाशक व उष्ण-वीर्य है।

पत्र—अति दाहजनक, पीसकर त्वचा पर लगाने से, शीघ्र ही जलन होकर आधे घंटे के अन्दर छाला या फफोला उठ आता है।

वात-प्रधान सन्निपात ज्वर मे इसके द्वारा पीठ या छाती पर छाला (Blister) उठाकर, दूषित पानी निकाल देने वैसे पीडा दूर होती है। से ही ज्वरयुक्त आमवात और प्लीहा-वृद्धि पर भी इसके द्वारा छाला उठाकर पानी निकाल देने से लाभ होता है। सरलता से छाला उठाने के लिये पत्र-कल्क को ईथर मे मिला टिंचर बनाकर लगाना उत्तम होता है। केवल पत्रो को ही पीस कर लगाने से कभी-कभी छाला नही भी उठता, व्यर्थ मे जलन होती रहती है।

१. विषम-ज्वर एव प्लीहा-वृद्धि पर—इसके ताजे पत्र या शुष्क पचाङ्ग के जौकुट चूर्ण के साथ समभाग (लगभग ४-४ मा०) नागरमोथा व सोठ लेकर क्वाथ बनाकर देते हैं। शुष्क-चूर्ण १ भाग मे २० भाग जल मिला चतुर्थांश क्वाथ बना १¼ तो० की मात्रा मे सेवन कराते है।

२ ज्वरयुक्त आमवात तथा सतत् ज्वर पर—इसके साथ समभाग नागरमोथा का चूर्ण मिला, क्वाथ बना कर सेवन कराने से पीडायुक्त शोथ दूर होती है, तथा

[1] इस कुल का वर्णन मेहदी (मदयन्तिका) के प्रकरण में देखें।

ज्वर की शांति होती है।

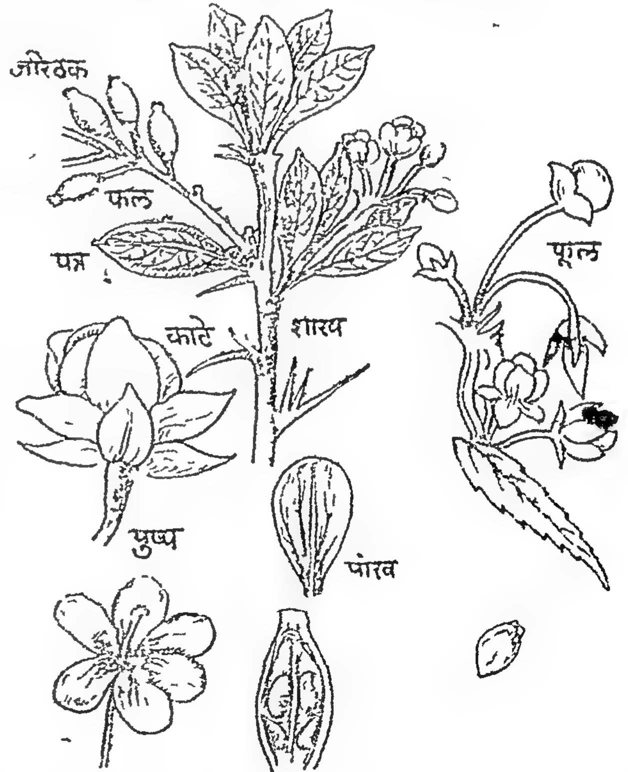
३ जिन विकारों में शीतपित्त जैसे या लूता (मकड़ी) के विष के लगने से ददोरे से शरीर पर उठ आते हैं, उनपर इसके पत्र-चूर्ण को या इसकी पचाङ्ग की राख को तैल में मिलाकर लगाते हैं। जिस दाद पर ददोरे उठ आते हैं उस पर भी यह इसी प्रकार लगाया जाता है। अथवा—इसके शुष्क पत्र-चूर्ण के साथ कुचला-पत्र का चूर्ण और अधाड़ा (वसा) पत्र-चूर्ण समभाग मिला, मटकी में भर, गजपुट में काली राख बनाकर, उसे कुसुम के तैल में मिलाकर लगाने से विशेष लाभ होता है।

नोट—किन्तु दाद आदि चर्मरोगों पर इसका कोई प्रभावशाली योग हमें नहीं प्राप्त हुआ। मालूम नहीं इसे दादमारी क्यों कहा गया है।

दाभ—दे०—कुश। दारचीनी—दे०—दालचीनी।

दारुहल्दी (Berberis Aristata)

हरीतक्यादिवर्ग एवं अपने ही दारुहरिद्रा-कुल[1] (Berberidaceae) के इसके सदा हरे भरे, कंटकित गुल्म ४-८ या १५ फुट तक ऊंचे, काण्ड ८ इञ्च व्यास के चिकने, चमकीले, छाल—ऊपर से धूसर वर्ण की अन्दर से पीली, अन्तः काष्ठ-गहरे पीत वर्ण का, तथा कड़ा होता है। पत्र—चर्मवत् मोटे, कड़े, मजबूत, सूक्ष्म सिरा-जाल युक्त, सरलधार वाले, टहनियों पर दो-दो या ३-३ इञ्च के अन्तर पर, आकार में इङ्गुदी या सनाय-पत्र जैसे नोकदार या कुछ कटे हुए कंगूरेदार तथा कंगूरों के चारों ओर सूक्ष्म कांटे होते हैं, १ से १½ इञ्च लम्बे ¾ इंच चौड़े। पत्र-गुच्छ के निकट टहनियों पर ३ कांटे होते हैं और इन गुच्छों में एक छोटा सा पुष्प-घोप (घुमचा) निकलता है। पुष्प—छोटे २ निम्बपुष्प जैसे पीतवर्ण के उक्त २-३ इंच लम्बी पुष्प-घोप या मंजरी में वसन्त ऋतु में आते हैं (किसी २ का पुष्प बड़े आकार प्रकार का भी होता) है। फल—ग्रीष्मारम्भ में पुष्पों के झड़ जाने पर फल हरे रंग के आते हैं, जो फिर क्रमशः नीले या लाल रंग के रजावृत्त, किशमिश जैसे हो जाते हैं। यूनानी में ये फल जरिष्क नाम से प्रसिद्ध हैं। ये फल विशेष गूदेदार नहीं होते। मूल—मोटी तथा स्थान-स्थान पर बहुत शाखाओं में विभक्त होती है। ये मूल की शाखाएं एक ओर को विशेषतः भूमि की ओर झुकी रहती हैं। इस पौधे की ताजी लकड़ी (अन्तः काष्ठ) गुणवित, स्वाद में कड़ुवी और कसैली होती है। इसे कितना भी उबाले तो भी यह पीली ही रहती है।



[1] इस कुल के पौधे विनक्त दल द्विबीजपर्ण पत्र सादे या संयुक्त, पुष्पबाह्यकोष एवं आभ्यन्तरकोष के दल दो चक्रों में, अधःस्थबीजकोश, बीजकोश एक फल मांसल होते हैं, इस कुल में यह तथा इसकी कुछ उपजातियां तथा गिरिपर्पट (Podophyllum Emodi) है।

हिमालय प्रदेश मे काश्मीर व गढवाल मे लेकर आसाम तक तथा नेपाल मे अधिक होने वाली (५ से १२ हजार फीट की ऊंचाई पर पैदा होने वाली, जितनी अधिक ऊंचाई पर पैदा हो, उतनी ही अधिक गुणवाली) प्रस्तुत प्रसंग की दारुहल्दी (पहाड़ी भाषा मे चौतरा) के अतिरिक्त निम्नाकित इसकी कुछ उल्लेखनीय प्रसिद्ध जातियां उक्त प्रदेशो मे तथा पारसनाथ, भूटान, नीलगिरि अफगानिस्तान आदि मे पाई जाती हैं। वैसे तो कई उपजातिया हैं, किन्तु चिकित्साकार्य मे प्राय: प्रस्तुत प्रसग की दारुहरिद्रा एव सक्षेप मे वर्णित निम्न जातियो का ही विशेष उपयोग किया जाता है। रासायनिक सघटन एव गुणधर्म की दृष्टि से इनमे कोई विशेष अन्तर न होने से सभी के गुणधर्म प्रयोग आदि यहा आगे एक साथ दिये जा रहे हैं।

(A) किलोमोरा, किंगोरा, चित्रा आदि (B Asiatica) नामक दारुहल्दी के क्षुप लगभग ८ फुट ऊंचे, शाखाए धूसरवर्ण की, पत्र—आयताकार १-३ इंच लम्बा चर्मवत्, घन एव दृढ सिराजाल युक्त, पुष्प—उक्त दारुहरिद्रा जैसे ही मजरिया मे तथा फल भी वैसे ही काले या नीले होते है।

(B) जिसे गढ़वाली भाषा मे चतरोड़, काशमल तथा लेटिन मे (B Lycium) कहते है, उस दारुहल्दी के क्षुप प्राय छोटे-छोटे समूहबद्ध होते हैं। पत्र—प्राय: पतले, लम्बे, पुष्प—एप्रिल मास मे, मजरियां आती है, फल—उक्त जैसे ही होते तथा विशेष मासल या गूदेदार नही होते। ये क्षुप पश्चिम हिमालय प्रान्त के शुष्क एव उष्ण स्थानो मे गढवाल से हजारा तक पाये जाते हैं।

(C) B Chitria लेटिन नामकी दारुहल्दी उक्त न A का ही एक भेद विशेष है। इसे जौनसार मे काशमोई तथा गढवाल मे किंगोरा कहते है। यह हिमालय प्रान्त मे ६–६ हजार फुट की ऊंचाई पर पाई जाती है। शाखाए गहरे लाल रग की चिकनी एव चमकीली, पत्र—चर्मवत्, अस्पष्ट सिराजाल युक्त, दोनो पृष्ठ चमकदार, पुष्प–उक्त न B, के पुष्प की अपेक्षा बडे, झुकी हुई मजरियो मे; फल—लाल रग के, रगहीन, विशेष गूदेदार, सूखने पर काले अगूर जैसे दिखाई देते है। किन्तु ये अधिकाश मे बीजरहित और अगूर से छोटे, स्वाद मे खट्टे या खटमिट्ठे होते हैं। वास्तव मे ये ही यूनानी जरिष्क है।

(D) B Vulgaris पजाब मे झिरिसी, काशमल, चौहार आदि तथा अग्रेजी मे ट्रू बारबेरी True Barberry नामकी यह दारुहरिद्रा भी उक्त न A की ही जाति की, तथा वैसे ही रूप रग की है। विदेशो मे तथा भारत के हिमालय प्रान्त के नेपाल, तिब्बत से लेकर अफगानिस्तान तक इसके क्षुप पाये जाते है।

(E) B. Nepalensis–पजाब मे आमुडाडा, चिरोर तथा नेपाल मे चत्री, मिलकिसी नामवाली इस दारुहरिद्रा के क्षुप हिमाचल के बाह्य प्रदेशो मे रावीनदी के पूर्व की ओर खासिया और नागा पहाडियो पर, तथा नीलगिरि पर भी पाये जाते हैं। रूपरग मे प्राय उक्त न० B के अनुसार है।

एक गुडूच्यादिवर्ग की लता दारुहरिद्रा (झाड की हल्दी) होती है, जिसका मिश्रण असली दारुहल्दी मे कर दिया जाता है। इनका वर्णन आगे के प्रकरण मे (दारुहल्दी लता) मे देखिये।

चरक के अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, लेखनीय गणो मे तथा सुश्रुत के हरिद्रादि, मुस्तादि और लाक्षादि गणो मे इसकी गणना की गई है।

नाम—

स०–दारुहरिद्रा (हल्दी जैसी पीली लकडी होने से), दार्वी, पजन्या पीत दारु। हि०–दारुहल्दी, काशमोई, किंगोरा, चौतरा इ०। म०–दारुहलद। गु०–दारुहलदर। ब० – दारुहरिद्रा। अ०–Indian or Nepal or opthalmic berberry, False Calumba। ले०–बर्बेरिस एरिस्टेटा।

रासायनिक सघटन–

इसकी जडो मे तथा काण्डभाग मे एक पीतवर्ण का तिक्त सारतत्त्व बर्बेराईन[१] (Berberine) नामक पाया

[१] यह अत्यन्त विषैला नहीं, किंतु अधिक मात्रा मे यह घातक भी हो जाता है। अधिक मात्रा मे देने से फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य का सचय होता एव हृदय की धमनी का विस्फारण होकर मृत्यु होती है। अल्पमात्रा मे १-१० मिलिग्राम तक इजेक्ट करने से आन्त्र, गर्भाशय एव श्वास नलिकाओं, को व अनैच्छिक मासपेशियों को उत्तेजित करता है।

जाता है। फल मे–चिचाम्ल (Tartaric acid) और सेवाम्ल (Malic acid) होता है।

उक्त मारतत्त्व काष्ठ एव छाल की अपेक्षा जड मे अधिक होता है, तथा यह और भी कई वनस्पतियो मे पाया जाता है। यह जल मे घुलनशील है मद्यसार मे कम घुलता है। इस क्षाराम्ल के अतिरिक्त इसमे कुछ कषाय द्रव्य, गोंद एव स्टार्च भी होता है।

प्रयोज्याङ्ग—मूलत्वक, अत काष्ठ भाग, फल, व घनसत्व (रसाजन)।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफपित्तशामक, दीपन, पित्त-सारक, वर्ण्य, यकृदुत्तेजक, मृदुरेचन, कटुपौष्टिक, रक्तशोधक, स्वेदल, शोथहर, वेदना स्थापन, चक्षुष्य, विपमज्वर-प्रतिवधक, तथा अग्निमाद्य प्रवाहिका, कामला, प्रमेह, यकृद्विकार, कास, प्रदर,व्रण, नेत्रकर्णविकार, गर्भाशय का शोथ व स्राव, उपदश, कडू विसर्पादि चर्मविकारो पर यह उपयोगी है।

इसके गुणधर्म प्राय हल्दी के जैसे ही हैं, किन्तु आख, मुख, व कान के रोगो मे विशेप हितकर हैं। यथोचित साधारण मात्रा मे यह कटुपौष्टिक (सामान्य दौर्वल्य-निवारक), दीपक तथा सौम्यग्राही एव हृदयोत्तेजक है।

यह पित्त एव मूत्रमार्ग की विकृति मे लाभकर है। शोथ-वेदनायुक्त स्थानो पर इसका लेप किया जाता है। वस्तिशोथ तथा प्रमेह आदि पर आवले के रस व शहद के साथ इसे देते हैं। गर्भाशय शैथिल्यजन्य रक्त या श्वेत-प्रदर मे इसका क्वाथ शहद मिला सेवन कराते है। कामला मे भी यह इसी प्रकार दिया जाता है।

मूल–त्वक् एव काष्ठ—

(१) ज्वर पर—पित्तप्रधान ज्वर एव विपमज्वरो मे जबकि हृल्लास, वमन, विरेचन, शिर शूल तथा थकावट अधिक होती हो, तो इसका क्वाथ चिरायता मिला कर देवें, किंतु क्वाथ देने के पूर्व सौम्य विरेचन द्वारा रोगी की कोष्ठशुद्धि कर लेना ठीक होता है। इसके क्वाथ सेवन से पसीना आकर ज्वर शात हो जाता है, कुनेन की तरह हृदयावसाद, बाधिर्य आदि उपद्रव इससे नही होते, तथा प्लीहा वृद्धि कम हो जाती है। क्षुधा की वृद्धि होती है। इसके घनसत्त्व या क्षाराम्ल का भी इन प्रकार के ज्वरो पर प्रयोग किया जाता है किंतु क्वाथ को उपयोग उत्तम होता है। आगे घनसत्त्व (रसाजन) के प्रयोग देखें।

क्वाथ योग—इसकी जड का जौकुटचूर्ण १५ तो. का १ सेर जल मे अर्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर, छान कर, २॥ तो से ५ तो तक की मात्रा मे देते हैं और रोगी के शरीर को ढाक कर सुला देते हैं। प्रस्वेद आकर ज्वर उतर जाता है। यह चढे हुए ज्वर मे भी दिया जा सकता है। ज्वर के पूर्व देने से ज्वर चढने नही पाता।

सतत या सतत ज्वर की दशा मे इस क्वाथ के सेवन से ज्वर उतर उतर कर आने लगता है। इसे २॥ तो की मात्रा मे २-२ या ३-३ घटे के अन्तर से ज्वर की वारी के दिन देने से वहुत पसीना आकर ज्वर छूट जाता है। शोथयुक्त ज्वर मे भी यह लाभदायक है। दूषित वायु जन्य ज्वर को भी यह दूर करता है। इस क्वाथ से प्लीहा या यकृत-वृद्धि मे भी लाभ होता है।

सन्निपातजज्वर की मूर्च्छा-निवारणार्थ—इसके साथ नागरमोथा, चिरायता, त्रिफला, छोटी कटेरी-मूल, पटोलपत्र, हल्दी और नीम की छाल मिला, क्वाथ बना कर पिलाने से मूर्च्छा जाती रहती है। (यो. र)

(२) नेत्रविकारो पर—इसके ४ तो. मोटे चूर्ण को ६४ तो जल मे पकावे, अष्टमाश पानी शेष रहने पर वस्त्र से छान ले। इसमे उत्तम शहद १–२ तो. मिला, वारीक धार से नेत्रो के भीतर थोडा २ डालते हुए, प्रक्षालन करे। क्वाथ थोडा गरम ही हो, जिससे नेत्रो में सुखोष्ण सेक हो। प्रात साय इस प्रकार आखो के प्रक्षालन से समस्त विकार दूर होते है। आई हुई आखो (नेत्राभिष्यन्द) के लिये विशेप हितकर है। अथवा—

इसके साथ त्रिफला, और नागरमोथा समभाग मिला क्वाथ सिद्ध कर, उसमे खाड, शहद और स्त्री का दूध थोडा-थोडा मिलाकर, उसका बू दें नेत्रो मे वार-

बार डालते रहने से पित्तज, रक्तज व वातज नेत्राभिष्यंद मे लाभ होता है। (ग नि.)

इसके साथ समभाग मुलैठी, गिलोय और त्रिफला लेकर क्वाथ करे (प्रत्येक द्रव्य १-१ तो., जल ४८ तो. शेष क्वाथ १२ तो) प्रात. साय यह क्वाथ ६-६ तो. पीने से सर्वदोषज नेत्ररोग नष्ट होते है। (यो र)

पित्तज तिमिर तथा नेत्रपीडा पर—इसके साथ त्रिफला और मुलैठी का चूर्ण १-१ भाग लेकर, आठ गुने नारियल के पानी मे मदाग्नि से पकावे। अष्टमांश शेष रहने पर छान कर, पुन पकावे। अच्छा गाढा हो जाने पर नीचे उतार कर उसमे सेंधानमक, कपूर व सुवर्णमक्षिक भस्म १-१ भाग मिला, खूब घोटकर काच की शीशी मे रख ले। इसे नित्य प्रात साय आजने से तिमिर (रात्र्यन्ध) नेत्र पीडा, नेत्र-व्रण मे लाभ होता है। (यो र)

आगे विशिष्ट योगो मे 'नेत्राभिष्यन्द और दार्व्यादि रसक्रिया' देखिये।

(३) कामला व पाण्डु-रोग पर—इसके मूल की छाल के साथ त्रिफला, त्रिकुट, वायविडंग और लोहभस्म समभाग लेकर, एकत्र खूब खरल कर इसमे शहद व घृत मिला, सुरक्षित रक्खे, अथवा चूर्ण को (४ रत्ती की मात्रा मे) शहद व घृत के साथ चटाने से कामला व पाडु मे विशेष लाभ होता है। (च. स चि. अ. १६)

अथवा—इसके साथ त्रिफला, हल्दी, कुटकी, और लोहभस्म समभाग एकत्र खरल कर (४ रत्ती की मात्रा मे) शहद व घृत के साथ चटाने से कामला का नाश होता है। अथवा—

रक्त मे गये हुए पित्त के निवारणार्थ तथा पित्तस्राव को व्यवस्थित करने के लिये इसके सिरका का या इसके क्वाथ में हल्दी मिला कर सेवन करावें, कामला-विकार दूर हो जाता है। अथवा—

इसकी छाल का ताजा रस शहद के साथ या उसके क्वाथ मे शहद मिलाकर नित्य प्रात सेवन करावे।

(४) प्रमेह और प्रदर पर—इसके साथ देवदारु, त्रिफला और नागरमोथा समभाग लेकर जौकुट कर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने मे प्रमेह दूर होता है। (च. सं. चि॰ अ. ६)

यदि पिष्टमेह-या शुक्लमेह—(Chyluria) हो (यह कफ-प्रमेह का एक भेद है, जिसमे-मूत्रत्याग के समय शरीर मे रोमाच होकर पिष्टयुक्त जल के समान पेशाब होता है) तो रोगी को इसके साथ हल्दी मिला, क्वाथ बनाकर सेवन करावे (पिष्ट-मेहिने हरिद्रा दारुहरिद्रा कषाये पाय-येत्—सुश्रुत चि० अ० ११) दिन मे दो बार प्रात.साय, पथ्य-पूर्वक इस क्वाथ के सेवन से थोडे दिन मे लाभ हो जाता है। प्रात साय शुद्ध वायु मे घूमना एव लघु भोजन करना आवश्यक है। अथवा—

हल्दी और दारुहल्दी का मिश्रित चूर्ण ४ मा. मात्रा मे शहद के साथ चटाकर, ऊपर से आवले का रस या हिम आधा तो प्रात साय पिलावे।

प्रदर पर—इसके क्वाथ मे शिलाजीत ३ मा. तक मिला ७ दिन तक सेवन करावे।

मूत्रकृच्छ्र पर—इसके चूर्ण के साथ ककडी बीज और मुलेठी का चूर्ण-मिला ३ मा की मात्रा मे चावल के धोवन के साथ पीने से, अथवा केवल इसीके चूर्ण को आमले के रस मे मिला उसमे शहद डालकर पीने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। (यो. र)

(५) अतिसार पर—इसके साथ इन्द्र जौ, पिप्पली, सोठ, दाख और कुटकी का समभाग मिश्रित कल्क ६तो. ८ मा. तथा इन ६ द्रव्यो के समभाग मिश्रित जौकुट-चूर्ण का क्वाथ (२ सेर चूर्ण मे १६ सेर पानी मिला सिद्ध किया हुआ चतुर्थांश क्वाथ) और १ सेर घृत एकत्र मिला घृत सिद्ध करलें। इस घृत को पेया या मण्ड के साथ पीने से त्रिदोषज अतिसार भी नष्ट हो जाता है। (च० स० चि० अ० १६)

इस घृत योग को 'षडङ्गघृत' भी कहते हैं।

वातज तथा पित्तज अतिसार के निवारणार्थ—इसके साथ वच, लोध, इन्द्र जौ और सोठ समभाग का मिश्रित चूर्ण ३ या ४मा की मात्रा मे अनार के रस के साथ सेवन करावे। वात-पित्तज द्वन्द्वातिसार मे भी यह लाभकारी है। (यो र)

(६) अण्डवृद्धि पर—इसके चूर्ण को (३ मा की मात्रा मे) गोमूत्र के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। (भा. भै. र)

अथवा—इसके क्वाथ मे गोमूत्र मिलाकर सेवन कराते है ।

(७) वालको के कर्ण-विकार एव मुख-पाक पर—इसके चूर्ण के साथ मुलैठी व हरड का समभाग महीन चूर्ण एकत्र खरल कर उसमे चमेली-पत्र रस और शहद मिला, कपडे मे छानकर कान मे डालने से स्रावयुक्त कान का व्रण ठीक होता है। तथा इसी वल्क को मुख के भीतर लेप करने से मुख के छाले जाते रहते है । (यो र)

(कर्ण-रोगो पर दार्व्यादि तेल) वि योगो मे देखे ।

मुख-पाक पर—बडो के लिए—उक्त योग का क्वाथ कर उसमें शहद मिला कुल्ले (गण्डूषधारण) करावे ।
(यो० र०)

अथवा—इसके स्वरस मे (या क्वाथ मे) शहद मिला गण्डूष करावें, तथा इसके घन क्वाथ मे (या रसौत मे शहद मिला मुख मे लेप करने से मुख-रोग, रक्त-विकार एव मुख का नाडी-व्रण नष्ट होता है ।
(भा प्र)

अथवा—इसके गाढ़े क्काथ मे गेरू का चूर्ण मिला ले । फिर इसमे थोडा शहद मिला मुख मे रखने से मुख पाक, एव मुख का नाडीव्रण (नासूर) दूर होता है ।
(वा० भ० उ० स्था० अ० २२)

(८) मुख-रोग एवं दत विकारो पर—इसकी जड की छाल २½ सेर, कूटकर १२ सेर ६४ तो पानी मे पकावे, चतुर्थां श शेप रहने पर, छानकर उसमे चिरायता, दारुहल्दी, खैर की छाल व इरिमेद (दुर्गंधित खैर) की छाल प्रत्येक का जौकुट चूर्ण १६-१६ तो. मिला, पुन पकावे, चतुर्थां श (लगभग ६४ तो) पानी शेप रहने पर छानकर उसमे १६ तोला गेरू का चूर्ण मिला मन्दाग्नि पर गाढा कर उसमे ६४ तो शक्कर मिला दे । ठडा हो जाने पर थोडा शहद मिला घृत से चिकनी की हुई मटकी मे सुरक्षित रक्खें ।

अनेक प्रकार के दारुण मुख रोग, दातो की निर्वलता, दातो के दूपित व्रण (पायोरिया) आदि मे इसे प्रयुक्त करने से लाभ होता है। (ग नि)

(९) व्रणो पर—इसकी जड की छाल, मुलैठी, लोध, नागकेशर, पटोल-पत्र और त्रिफला प्रत्येक २-२ तो लेकर पानी के साथ पीसकर कल्क बना उस मे १½ सेर घृत तथा घृत से चौगुना पानी मिला घृत सिद्ध कर लें । अथवा—उक्त छाल आदि ८ द्रव्यो के चूर्ण को लगभग दो सेर पानी मे मिला अर्धावशिष्ट क्वाथ कर छान कर उसमे १० तो घृत और १ तो ८ मा. मुलैठी का वल्क मिला घृत सिद्ध कर ले । इस घृत के लगाने मे व्रण शीघ्र ही भर जाते है । (ग. नि)

इसकी जड की छाल का क्वाथ कीटाणुनाशक होने से जीर्ण व्रणो मे प्रक्षालनार्थ विशेप उपयोगी एव लाभदायक है ।

(१०) उपदश पर-इसकी छाल, शख की नाभि, रसौत, लाख, गाय के गोबर का रस, तेल, शहद, घृत और दूध सब समभाग लेकर पीसने योग्य चीजो को महीन पीस सबको एकत्र मिला रक्खे । इसे उपदश के व्रणो पर लगाने से वे तथा उनकी सूजन नष्ट होती हैं । (यो र)

रोगी को साथ ही साथ इसकी छाल का क्काथ भी सेवन कराते रहना चाहिए ।

निम्न 'दार्व्यादि तेल भी उपदश-व्रणो के लिए उत्तम है—'

इसका स्वरस अथवा क्वाथ ८ सेर, तिल-तेल २ सेर, कल्कार्थ द्रव्य—मुलैठी, घरका धुंआ और हल्दी समभाग मिश्रित १० तो यदि क्काथ के साथ पकाना हो तो १३तो ४मा मिलाकर तेल सिद्ध करले । (भा भै र)

नोट—उक्त तैल योग मे—पाकार्थ पानी तेल से ४ गुना मिलाना आवश्यक है । यह तेल वास्तव मे शूकदोप[1] आदि शिश्न-रोगो मे अभ्यजन तथा अन्त प्रयोग के लिए उपयोगी है ।

(११) वातजन्य शूल पर—जड की छाल का क्काथ गुड मिलाकर सेवन कराते है ।

(१२) उन्माद पर—पुष्यनक्षत्र के दिन इसकी जड

[1] लिंगवृद्धि या नपुसकता नाशार्थ जो मल्ल-तैल या जमालगोटा भिलावा आदि तीक्ष्ण द्रव्यो का लेप लिंग पर लगाया जाता है, उससे सर्पिका, अष्ठीलिका, शतपोनक, मांसपाक आदि व्याधिया लिंग या अण्डकोष पर पैदा हो जाती है । ये ही शूकदोप या शूक व्याधि कहलाती है ।



को शहद मे घिस कर अ जन करने से उन्माद का नाश होता है । (भै० र०)

(१३) गखक रोग पर[1]—दारुहल्दी, मजीठ, नीम-छाल, खस और पद्माख समभाग लेकर पानी के साथ पीस कर लेप करने से यह रोग शात होता है ।

कामला व पाडु पर—दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकटु और वायविडग का चूर्ण १-१ भाग तथा लोहभस्म, सब चूर्ण के बराबर लेकर एकत्र खूब घोटकर रखले । मात्रा २-३ मा० इसमे घृत ६ तो० व शहद २ तो० मिला सेवन से लाभ होता है । (यो० र०)

रसाजन (रसौत)—वर्षा के अन्त मे[2] इसके क्षुपो को काट कर कोई कोई पचाङ्ग के, तथा कोई मूल भाग एव निचले काण्ड भाग के छोटे छोटे टुकडो को कूट कर १३ गुने जल मे चतुर्थांश क्वाथ कर, छान कर मन्द आग पर गुड जैसा घन क्वाथ कर, पत्तो के दोनो मे भर देते हैं, जो ठडा होने पर दृढ होजाता है । यही बाजारू रसौत है, जिसमे छोटी २ लकड़ी, मिट्टी आदि मिली रहती है ।

शास्त्रो मे औषधि कार्यार्थ उक्त छने हुए क्वाथ मे समभाग गोदुग्ध या अजादुग्ध मिलाकर, घन क्वाथ कर रसाजन निर्माण का विधान है । किंतु व्यापारी-लोग बाजारू विक्रयार्थ रसाजन को दुग्ध मिला कर नही बनाते । इसमे उनके हित की हानि होती है, तथा दुग्ध मिलाकर बना हुआ बाजारू रसौत अधिक टिकाऊ भी नही होता, शीघ्र ही विकृत होता, एव उसमे सूक्ष्म कीटाणु पैदा हो जाते है ।

अत बाजारू रसौत को कूट कर ४ गुने गरम जल मे घोल कर कपडे से छान कर, उसे कुछ देर स्थिर रक्खे, जिससे मिट्टी नीचे बैठ जावे । फिर धीरे धीरे ऊपरी जल को निथार, शुद्ध कलई दार पात्र मे भर, ऊपर पतला कपडा बाध कर सूर्य के ताप मे रख देवे । प्रतिदिन इस पात्र को धूप में रखने से कुछ दिनो मे यह घन बन जाने पर, इस विशुद्ध रसाजन को चिकित्सा कार्य मे लावे । अच्छी विशुद्ध रसौत अफीम के समान काले रग की नरम होती है, पानी मे सब घुल मिल जाती एव पानी को एक दम पीला कर देती है ।

शास्त्र-विधान के रक्षार्थ उक्त ४ गुने गरम जल मे घोल कर, छने हुए, एव नियारे हुए जल मे दुग्ध मिलाकर मन्द आच पर घन क्वाथ कर लेवे या उक्त प्रकार से धूप मे सुखा लेवे ।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रसायन, कफ, विष एवं नेत्र-विकारो को दूर करने वाला स्वेदल, रक्तशोधक छेदक (पिण्डी भाव को प्राप्त हुए कफादिको को काट कर अलग करने वाला), व्रण सम्बन्धी दोषो को नष्ट करने वाला है, तथा अर्श, शोथ, ज्वर, पित्तप्रकोप, हिक्का, श्वास, आदि एव मुख-रोगो पर प्रयुक्त किया जाता है।

ज्वर, यकृत-प्लीहा वृद्धि, कामला, अर्श एव आमाशय या पक्वाशय के व्रणो आदि पर इसका आन्तरिक प्रयोग लाभकारी है तथा नेत्र-विकार, अर्श, प्राच्यव्रण (Oriental Sore), फोडे, फु सिया, कटे हुए भाग एव पुराने व्रणो आदि पर बाह्य-प्रयोग लाभदायक होता है । नये या पुराने-नेत्राभिष्यन्द मे इसे अफीम, या सेंधा-नमक या फिटकरी मिला कर लगाने से या अकेले इसी को पानी घोलकर पलको पर मे लगाने से बहुत लाभ होता है । रक्तार्श मे इसे २ से ८ रत्ती की मात्रा मे मक्खन के साथ खिलाते है, तथा इसके घोल से अर्श को धोते है । कपूर एव मक्खन के साथ इसे मिलाकर बनाया

---

[1] रक्त, पित्त व वात दुष्ट होकर शङ्ख प्रदेश (कनपटी) मे पहु च कर तीव्र पीडा, दाह, राग एवं दारुण शोथ पैदा कर देते हैं । यह शोथ विष की तरह बडे वेग से सिर मे व्याप्त होकर शीघ्र ही गले को रोक तीन दिन के बाद प्राणों को हर लेता है । किंतु इसके पूर्व पादचतुष्टय के ठीक होने पर रोगी बच भी जाता है । किंतु इन तीन दिनों में भी जवाब देकर ही चिकित्सा करनी चाहिए— (मा० नि० शिरोरोग)

[2] दारुहल्दी के किस क्षुप से रसौत निर्माण किया जाता है इस विषयमें मतभेद है । कई लोग कहते है कि यह केवल चत्रोई (B Lycium) के क्षुपों से ही प्राप्त किया जाता है । कोई किलमोरा (B Asiatica) के क्षुप से तथा कई इन दोनों क्षुपों से इसका निर्माण होना कहते हैं ।

हुआ मलहम फोडे, फुंसियो, फटे हुए भाग कठमाला एव जीर्ण दूपित व्रणो पर लगाते है । मुख के भीतर के व्रणो पर तथा अन्य व्रणो पर भी इसे शहद के साथ मिलाकर लगाते है । मुख रोग-मे इसके घोल से गण्डूष कराते है । शोथ पर इसका लेप करते है । प्रदर मे इसके घोल की उत्तरवस्ति देते हैं ।व्रणो को इसके द्रव से धोते है । रक्तविकार स्तनशोथ, फिरग-उपदश, गंड-माला, भगदर, विसर्प आदि मे इसका लेप करते है । रक्त-पित्त, रक्तार्श, तथा रक्तप्रदर मे इसे अकेले या अन्य स्तम्भन द्रव्यो के साथ देते है, इससे रक्त की रुकावट होती है । कुष्ठ पर भी यह हितकर है। विशिष्ट योगो मे दार्व्यादि कषायाष्टक देखे ।

वालको के लिए यह अति हितकर है । इससे दूध ठीक-ठीक पचकर शौच शुद्धि होती, उदर कृमि नष्ट होते, व नवीन कृमियो की उत्पत्ति नही होने पाती, तथा स्वास्थ्य-वढता है ।

गर्भाशय शैथिल्य, योनि-प्रदाह एव गुद भ्रंश रोगो मे इसकी उत्तरवस्ति तथा पिचकारी लगाने से गर्भाशय सकुचित, सुदृढ होता, योनि-प्रदाह शात होकर भीतर की दुर्गन्ध दूर होती तथा काच निकलना (गुदभ्रंश) वन्द हो जाता है ।

(१४) विपमज्वर पर—विपमज्वर के प्राय सर्व प्रकारो मे इसकी २-२ रत्ती की ४ गोलिया जल के साथ दिन मे ३ वार देने से आमाशय की उष्णता दूर होती, क्षुधा लगती, शौच-शुद्धि होती, व प्लीहा वृद्धि कम होती है ।विशेषत तृतीयक या चातुर्थिक ज्वर हो, तो इसके देने के पूर्व रेंडी-तैल, पचसकार आदि अन्य विरेचन औषधि देकर उदर-शुद्धि कर लेना आवश्यक है । फिर प्रात खाली पेट इसकी मात्रा १५ रत्ती तक (या १ से २ मा० तक) दिन मे ३ वार जल के साथ देवें और रोगी को खूब कपडे ओढाकर लेटा दे । कुछ देर वाद उसे अति तृषा लगती एव वेचैनी होती है, तथापि उसे जल न पीने देवें । लगभग १ घण्टा वाद उसे पसीना आने लगता व कमजोरी मालूम देती है, तब शरीर पोछकर लाजमण्ड या चावल का माण्ड या गरम दूध या सावूदाना या मोसम्बी का रस देवें । पश्चात् थोडे समय मे उसे वहुधा निद्रा आ जाती है । सोकर उठने पर उसकी प्रकृति स्वस्थ हो जाती है, तथा ज्वर की पाली टल जाती है ।

इस प्रकार रसाजन के प्रयोग मे एक दोष यह है कि, जिस रोगी को पहले रक्तातिसार या रक्तस्राव सहित पेचिश हुआ हो, तो वह फिर उमड आता है । अत जिसे रक्तातिसार, आमातिसार वार-वार दस्त होने की शिकायत हो उसे रसाजन की अपेक्षा दारु हल्दी का क्वाथ (देखो प्रयोग न० १) देना ठीक होता है ।

रसाजन या दारु हल्दी के क्वाथ के सेवन से यकृत् स्थित दूषित जीवाणु, जिन पर कुनैन का कुछ भी प्रभाव नही होता, वे नष्ट हो जाते है, कमजोरी नही होने पाती, प्लीहा या यकृत् वृद्धि दूर होती, तथा वल-वृद्धि होती है । तृतीयक या चातुर्थिक-ज्वरो मे ३-४ दिन तक लगातार दिन मे ३ वार इसका सेवन कराना चाहिये ।

आगे 'दार्वी अर्क' विशिष्ट योगो मे देखिये ।

१५ नेत्र-विकारो पर—नेत्राभिष्यन्द, नेत्रपाक, नेत्र-शोथ मे इसे २ रत्ती की मात्रा मे—२॥ तो० गुलाव-जल मे मिलाकर नेत्रो मे वार-वार टपकाते है । तथा इसके साथ अफीम[1], फिटकरी का फूला और शुद्ध जल मिलाकर, पीसकर थोडा गरम कर आखो पर लेप करते है । अफीम, फिटकरी व रसाजन को गुलावजल मे घोलकर शीशियो मे रक्खे । यह विलायती अक्रीफ्लेविन का कार्य करता है । इस आयुर्वेदिक मिश्रण को डॉक्टर लोग प्रथक्करण द्वारा कहते है कि यह अक्रेफ्लेविन ही है । इसकी कुछ वून्दे नेत्रो मे टपकाने से नेत्राभिष्यन्द, शोथ, नेत्र-पीडा, लालिमा आदि मे शीघ्र लाभ होता है । या इसे गोदुग्ध मे मिला आखो मे टपकाने से भी लाभ होता है । नेत्रो पर प्रदाहयुक्त सूजन हो, तो इसे अफीम,

---

१ ध्यान रहे, रोग-वृद्धि की दशा में अफीम का उपयोग करना ठीक नही होता। नेत्रपाक या नेत्राभिष्यन्द में शीत जल एवं शीत वायु से नेत्रो को बचाना चाहिये। नेत्रों को गरम पानी में पतला कपड़ा या रुई भिगोकर धोना चाहिये।

सेंधा नमक व पानी के साथ पीस कर लेप करनेसे शांति प्राप्त होती है। नेत्राभिष्यन्द में इसे फिटकरी का फूला और मक्खन के साथ मिलाकर नेत्रों पर लेप करने से भी लाभ होता है।

पोथकी (ट्रैकोमा Trachoma) या कुकरे, रोहे, कुथुआ का विकार हो, तो—रसौत, शंखनाभी, सहिजना के बीज, एलुवा, केशर, मैनसिल और चीनी समभाग जल के साथ पीसकर, वत्ती बना, छाया-शुष्क करले। इसे शहद में घिसकर नेत्रों में आंजे। अथवा—

रसौत, बहेडा की मीगी, शखनाभी, मेनसिल, सहिं-जना-बीज, पिप्पली और मुलहठी समभाग, बकरी के दूध में पीस, वत्ती बना, छाया-शुष्क कर, जल से घिस आजने से भी लाभ होता है।

हिताजन—रसौत १ भाग, त्रिफला क्वाथ में घोल-कर उसमे १-१ भाग काला व श्वेत सुरमा महीन पीस कर मिलादें, तथा ४ तो० की टिकिया बना धूप में सुखा ले। फिर उसे कपडे में लपेट, नीम की जड में एक गढा कर उसमें टिकिया रख, जड के गढ़े से जो बुरादा निकले उसीसे उसे भरकर गोवर से वन्द कर दें। ६ मास बाद टिकिया निकाल, केले की जड़ में गाढ दे। १ मास बाद निकाल छाया शुष्क कर, महीन पीस उसमे चतुर्थांश कपूर तथा कपूरसे छठा भाग कस्तूरी मिला महीन सुरमा बना ले। इसे आख में लगाने से अन्धता नहीं आती। —रसायनसार

१६ भगन्दर, दुष्ट नाडी-व्रण पर—दीर्घकाल से हुए, पूयस्रावयुक्त भगन्दर एव नाडी-व्रण में रसाजन को उडा थूहर व आक के दूध में मिला (रसाजन के अभाव में दारु-हल्दी की मूल-छाल का महीन कपड-छन चूर्ण लेवे), बारीक वत्तिया बना, छायाशुष्क कर रक्खें। एक या दो या जितने छिद्र हों उनमे एक-एक वत्ती डालकर ऊपर से रसौत का लेप लगा पट्टी बाधते रहने से पूय सह सडा मास निकल जाता है, कीटे नष्ट हो जाते तथा थोडे ही दिनों में व्रण भर जाते है। (गा० औ० र०)

प्राच्य व्रण पर—विशिष्ट योगो में—दार्वी-सत्त्व देखिये।

१७ कर्णपाक, मुखपाक तथा शोथ पर—कर्णपाक हो, उसमे से दूषित पूय-स्राव होता हो, तो इसका महीन चूर्ण कान में डालते है, पूयस्राव वन्द होकर रोग दूर हो जाता है। ध्यान रहे—कानों को ऐसी दशा में शीत जल एव शीत वायु से बचाना आवश्यक है, तथा मिष्ट-पदार्थ अधिक नहीं खाना चाहिये।

मुखपाक हो, मुख में पीडादायक छाले हो गये हों, तो इसमें जल मिला (घोल बना) या दारु हल्दी के क्वाथ से दिन में ३-४ बार कुल्ले करें।

शोथ—यदि साधारण हो, तो इसके लेप से ही शीघ्र नष्ट हो जाता है। तीव्र ग्रन्थि-शोथ (Boil) हो, तो इसे कपूर के साथ पीसकर मक्खन मिला मोटा-मोटा लेप करें। ग्रन्थि-व्रण यदि फूट गया हो, तो अकेले रसा-जन को पानी में घोलकर मोटा लेप करने से शीघ्र घाव भर जाता है।

कर्णस्राव में इसे स्त्री के दूध में घिसकर, शहद मिला कान में डालते हैं।

अर्श पर देखें विशिष्ट योगो में—दार्व्यादि वटी।

फल (जरिश्क या जरक)—यद्यपि भारतीय दारु-हल्दी के क्षुपों में भी ये फल आते हैं (इसका संक्षिप्त वर्णन प्रकरण के प्रारम्भ में कर आये है) तथापि इन फलों का विशेष आयात ईरान, खुरासान आदि देशों से यहा होता है। ये जरिश्क कुछ रक्ताभ-श्याम या काले रग के होते है, तथा ये ही उत्कृष्ट माने जाते हैं। पीताभ लाल रग का निकृष्ट माना जाता है।

यूनानी-चिकित्सा में यह एक प्रसिद्ध घरेलू औपधि रूप से विशेष प्रयुक्त होता है।

यह मधुराम्ल, शीतवीर्य, रोचक, पित्तशामक, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, रक्तशोधक, दीपन, पाचन, दाह-शामक, हृद्य, कफकर, रक्तोद्वेग-सशमन तथा वमन, अति-सार, नाडीव्रण, त्वग्रोग आदि निवारक है।

फलों का सिरका, शर्वत आदि बनाया जाता है। सिरका का प्रयोग पित्त-ज्वर, अरुचि, कामला, कफज-अतिसार, मोतीझरा एव अन्य विषैले ज्वरों पर तथ रक्तपित्त (स्कर्वी) आदि में किया जाता है।

१८ शर्बत का प्रयोग—कब्ज, कण्ठशोथ एवं स्वरभङ्ग पर लाभकारी है। फलों का स्वरस या शुष्क फलों को पानी मे भिगोकर निचोड़ा हुआ रस भोजन के शाक-दाल आदि मे स्वाद के लिये या पित्तिक रोगों की शांति के लिये डाला जाता है। इसके रस मे शहद तथा थोडा-नींबू का रस और शक्कर मिला, शर्बत की चाशनी कुछ गाढी अवलेह जैसी तैयार कर, दिन मे २-३ बार, १–२ तो० की मात्रा मे चटाते हैं, पित्तज अतिसार आदि उपद्रव एवं पित्तज हृद्विकार मे भी यह लाभकारी है। आगे विशिष्ट योगों मे शर्बत जरिश्क देखें।

१९ पित्त-ज्वर, वमन आदि पर—फलों को जल या अर्क-गुलाब मे पीस-छानकर पिलाते है। इससे यकृदामाशय की उष्णता, संताप दूर होकर वे सशक्त होते हैं। यकृत्काठिन्य मे इसे केशर के साथ देते हैं।

२० रक्तार्श, अत्यार्त्तव या प्रदर पर—इसे दालचीनी और शहद के साथ देते है। या उक्त शर्बत का सेवन कराते है। यह रक्त-प्रदर के वेग को शांत कर, आर्त्तव का अवरोध करता है। दूसरे या तीसरे मास मे जिन स्त्रियों को गर्भपात हो जाता है, उन्हे भी इसके सेवन मे लाभ होता है।

नोट—मात्रा-मूलत्वक् या काण्ठ या काण्ड की छाल की मात्रा-३ से ४ मा० तक। मूलत्वक् स्वरस या पानी में पीसकर निचोड़ा हुआ रस १ से ३ तो० तक। मूलत्वक् का चूर्ण-१० से १५ रत्ती तक, सुगन्धित द्रव्यों के साथ। क्वाथ-४ तो० तक, ४-४ घण्टे से। अर्क-आधे से १ ड्राम तक दिन में २-६ बार।

यह उष्ण प्रकृति के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ—बिरोजा या नारंगी का रस देते है। प्रतिनिधि—हल्दी है।

ध्यान रहे—असली दारुहल्दी के स्थान मे व्यापारी लोग बिधारा या समुद्र-शोष की लकडियों को हल्दी मे उबाल कर बेचते हैं, या आगे के प्रकरण मे वर्णित लता दारु हल्दी के काष्ठ के टुकडे देते हैं।

असली दारु हल्दी कडी कटी होती है, आसानी से नहीं टूटती। खूब कूटने पर इसका चूर्ण हल्दी के चूर्ण जैसा होता है। इसे या इसकी लकडी को चाहे कितना ही उबाला जाय इसका पीलापन दूर नहीं होता। यही इसकी पहिचान है।

रसाजन—मात्रा—½ से २ मा० तक। यह प्लीहा-विकार मे हानिप्रद है। हानि-निवारणार्थ अनीसून या सौंफ का सेवन कराते हैं। अतिसार या यकृत्प्रदाह की अवस्थाओं मे रसौत का उपयोग नहीं करना चाहिये।

फल (जरिश्क)—मात्रा–३ से ७ मा० तक। रस–६ तोले तक।

यह गुल्म-विकार के रोगी तथा कफ या वात-प्रकृति वालों के लिये हानिप्रद है। हानि निवारणार्थ—लौंग, विशेषत कफ-प्रकृति वालों के लिये तथा शक्कर या गुलकंद वात या खुश्क प्रकृति के लिये देते हैं।

इसका प्रतिनिधि—गुलाब के फूलों का जीरा और श्वेत चन्दन है।

विशिष्ट योग–

१ दार्वी सत्व (Berberine Sulphate)–नामक क्षारोद या अल्कलायड का एसिड सल्फेट लवण दारु हल्दी के त्वक्, काण्ड आदि से रासायनिक क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है। चमकीले पीले रंग के क्रिस्टल्स या गहरे पीले रंग के चूर्ण रूप मे यह अत्यन्त तिक्त सत्त्व होता है। यह जल तथा अल्कोहल (९०%) मे अत्यल्प मात्रा मे घुलता है।

इसका मुख्य उपयोग उष्णकटिबन्धीय लीशमन पिण्ड (Lishmania tropina) के उपसर्ग से होने वाले प्राच्यव्रण[१] (Oriental sore) या उष्ण कटिबन्धज-व्रण (Tropical Sore) या देहली व्रण (Delhi Boil) मे किया जाता है। यह त्वचा के नीचे की धातुओं एवं श्लैष्मिक कला के लिये स्थानिक रूप से सौम्य स्वापजनक होने के कारण वेदना-स्थापनार्थ इंजेक्ट किया जाता है। इससे इस व्रण को उत्पन्न करने वाले कीटाणु बढने नहीं पाते। इस सत्त्व के ० ५–१%

---

[१] इस व्रण के आस-पास तथा ऊपर भी, छोटी छोटी ग्रन्थियां लाल, पीली वर्ण की उठती हैं। यह एक प्रकार का शतपोनक (भगंदर) है। अन्तर इतना ही है कि शतपोनक गुदा के ऊपर होता है, और यह उष्णताजन्य पित्त-प्रकोप से शरीर मे कहीं पर होता है।

घोल की १ से २ सी० सी० मात्रा व्रण के किनारो पर अत्यन्त महीन सूचिका द्वारा ४, ५ जगह दी जाती है। यह इजेक्शन ७ दिन मे एक बार किया जाता है। एतदर्थ ६ सी० सी० मे ⅔ से १ ग्रेन इस सत्त्व का विलयन (घोल) प्रयुक्त होता है। किन्तु कभी-कभी अन्य उपद्रवो के कारण कई सप्ताहो मे यह अच्छा होता है। यदि एक से अधिक व्रण हो, तो एक दिन मे दो व्रणो से अधिक एव ७ दिन मे ४ व्रणो से अधिक (विशेषकर जब व्रण बडे हो) इजेक्ट नही करना चाहिये। इस इजेक्शन का का तैयार घोल ओरसॉल (Orisol) नाम से बिकता है। चिकित्सा-काल मे व्रण का बन्धन (व्रणोपचार Dressing) उचित रूप मे Hypertonic saline नामक लवण जल से करना चाहिये।

मेटेरिया मेडिका (डॉ० रामसुशीलसिंह)

२. दार्वी अर्क (टिंचर)–दारुहल्दी का चूर्ण १० भाग, मद्य (शराब) ६० %वाली ९० भाग दोनो को मिलाकर बोतल मे भर एक सप्ताह तक रहने दें। दिन मे ३-४ या अधिक बार बोतल को हिला दिया करे। फिर उसे छान ले। मद्य १०० भाग मे जितनी कम हो उतनी और मिलाकर छान लें। इस प्रकार २ औंस चूर्ण से १ पिण्ट (२० औंस) टिंचर या अर्क तैयार होता है। इसे (Tinct Berberidis) कहते है। यह कटु पौष्टिक (आमाशय पौष्टिक) रूप से ½ से १ ड्राम तक, तथा शीत ज्वर की पारी रोकने के लिए ६ ड्राम शीत लगने के २-३ घण्टे पहले दिया जाता है। इससे आन्त्र-शोधन होकर विष का निवारण होता है, एवं ज्वर सरलता से दूर हो जाता है।

सगर्भा की वमन पर इसके अर्क का या रसौत का सेवन कराते है। इससे वमन की निवृत्ति होती है।

(गा० औ० र०)

३ दार्वीक्वाथ–इसके जौकुट चूर्ण १५ तोले को १२० तो० जल मे मिट्टी बन्द पात्र मे भर मदाग्नि पर उबालें। लगभग–५० तो० जल शेष रहने पर, छानकर बोतलो मे भर लें।

पित्त प्रधान ज्वर (बार बार हृल्लास, वमन, अतिसार, सिरदर्द, अति थकावट, प्रस्वेद आना, बेचैनी एव प्यास अधिक लगना आदि लक्षण हो) मे यह क्वाथ विशेष लाभकारी है। यदि रोगी को कब्ज हो, तो दारुहल्दी के उक्त चूर्ण के साथ मे चिरायता (या चिरायता और कुटकी) मिला देना चाहिए।

अत्यार्त्तव–विशेषत. गर्भाशय शैथिल्य तथा प्रदर जन्य अत्यार्त्तव मे उपयुक्त औषध के साथ अनुपान रूप से इस क्वाथ को देने से रोग का निवारण होने मे अच्छी सहायता मिल जाती है। (गा औ र)

४. दार्वी प्रदरारि क्वाथ–रसौत, नागरमोथा, शुद्ध-भिलावा (भिलावे के वृक्ष की छाल लेना ठीक है), बेलगिरी, अडूसा की छाल और चिरायता, इनके क्वाथ को ठंडा कर उसमे शहद मिला सेवन करने से शूल-युक्त, पीला, श्वेत, काला व लाल प्रदर नष्ट होता है।

(यो र)

इस योग मे रसौत २ भाग, (अथवा दारुहल्दी-मूल ५) मोथा ३ भाग, भिलावा २ भाग, बेलगिरी ५ भाग, अडूसा ५ भाग तथा चिरायता ५ भाग लेकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, शहद ४ भाग मिलाते है। यदि भिलावा मिलाया हो तो क्वाथ को पीने से पूर्व मुखकुहर को घृतलिप्त कर ले। यदि भिलावा असह्य हो, तो उसके स्थान मे लालचन्दन ले। (यो र)

अथवा–रसौत, चिरायता, अडूसा, नागरमोथा, बेलगिरी, लाल चन्दन और आकडे के फूल समभाग लेकर क्वाथ सिद्ध कर ठण्डा होने पर शहद मिला सेवन करने से पीडा युक्त श्वेत रक्त प्रदर नष्ट होता है। (भा प्र)

५ दार्व्यादि कषायाष्टक–१ रसौत, २ नीम छाल व पटोल पत्र, ३ खैर सार, ४. अमलतास व कुडे की छाल, ५ त्रिफला, ६ सतौना (सप्तपर्ण) की छाल, ७ तिनिश या सादन वृक्ष की छाल, और ८ कनेर मूल यह आठ योग कुष्ठ नाशक है। इसका क्वाथ सेवन करें, इनसे पके हुए पानी से रोगी को स्नान करावे तथा इनसे सिद्ध किये हुए घृत और तेल का सेवन करना चाहिए। इनका ही लेप करे, इनके चूर्ण को देह पर मले, कुष्ठ पर इसका ही अवचूर्ण (Dusting) करें, तथा तैल-पाक

एव घृत पाक के योगो मे कुष्ठ की शांति के लिए इन्हे प्रयुक्त करे। (च० स० चि० अ० ७)

६ दार्व्यादि वटी (अर्श नाशक)—रसौत २॥ रत्ती, नीम-बीज की गिरी १ रत्ती, और बीज रहित मुनक्का ५ रत्ती इन्हे एकत्र घोट पीसकर ३ गोलिया बनावें। अर्श-नाशार्थ १ गोली प्रतिदिन रात्रि मे सोते समय सेवन करे। अथवा—

रसौत ६ तो और देशी शुद्ध कपूर ६ माशे लेकर एकत्र मूली के स्वरस मे ६ घण्टे तक खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बनाले। इन्हे बनाते समय दालचीनी के चूर्ण मे डालते जावें तथा पात्र को बार-बार हिलाते जाय, जिससे गोलिया परस्पर चिपके नही। २ से ४ गोली, दिन मे ३ बार जल के साथ देते रहने से रक्तार्श का रक्तस्राव बन्द होता, तथा नाडीव्रण, सगर्भा का वमन और ज्वर मे भी लाभ होता है।

७ दार्व्यादि रसक्रिया—दारुहल्दी, पटोलपत्र, मुलैठी नीम-छाल, पद्माख, नीलोफर, पुण्डरिया काष्ठ सबका जौकुट चूर्ण ४० तो को २ सेर जल मे पाक करे। चतुर्थांश (आधा सेर) शेष रहने पर छानकर पुन पकावे। गाढा होने पर नीचे उतार ले। शीतल हो जाने पर उसमे ८ तोला शहद मिला ले। उसके प्रलेप से नेत्र-दाह, अश्रुपात, लालिमा, नेत्रशोथ तथा शूल नष्ट होता हैं। (भै० र०)

८ दार्वी-नेत्रामृत—दारुहल्दी का मोटा चूर्ण ५ तो को २ सेर जल मे पकावे। आधा शेष रहने पर छानकर ५ तो शुद्ध शहद मिला यथाविधि फिल्टर करले। स्वच्छ बोतल मे भर ऊपर से उत्तम तुत्थ २ रत्ती पीसकर मिला दे।

यथाकाल २-२ बून्द नेत्रो मे टपकाने से नेत्रो के विकार—स्राव, कण्डू, आरम्भिक परवाल, कुकरे, रक्तिमा आदि दूर होते है। नूतन और चिरकालीन पोथकी (कुकरे, रोहे) रोग की यह श्रेष्ठ औषधि है। कार्स्टिक लोशन से जो दोष होते हैं और जिनसे रोगी आजीवन मुक्त नही होता, वे दोष इस प्रयोग से नही होते।

(गु० सि० प्रयोगाक धन्वन्तरि)

९ रसाजन मधु योग—(नेत्र विकारो पर)—आवला १६ तो० को १२८ तो० जल मे डाल, मिट्टी के पात्र मे उबालें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर कढाही मे भर इसमे रसौत और घृत २-२ तो० मिलाकर पुन पाक करें। गाढा होने पर उतार लें। शीत होने पर मधु मिला दे। यह वातज, पित्तज, वात पैत्तिक नेत्र रोगो मे, तथा तिमिर व पटल के रोगो मे उत्तम है।

(श्री मंगलप्रसाद निर्भीक, आयुर्वेदाचार्य सचित्रायुर्वेद से साभार)

१० दार्व्यादि तेल (कर्ण रोगो पर)—दारुहल्दी का जौकुट चूर्ण ५ सेर मे जल २५ सेर ४८ तो (२ द्रोण) मिला अर्धावशिष्ट क्वाथ कर अलग रखें। फिर दशमूल मिलित ५ सेर का मोटा चूर्ण, तथा जल २५ सेर ४८ तो का अर्धावशिष्ट क्वाथ कर अलग रक्खे। वैसे ही मुलैठी चूर्ण ५ सेर का उक्त प्रमाण से क्वाथ करे। केले की जड का रस ६ सेर ३२ तो. तथा कल्कार्थ कूट, वच, सहिजना की छाल, सोया या सोंफ, रसौत, देवदारु, यवक्षार, सर्जिका क्षार, बिडनमक, सेंधानमक मिलित ३२ तो का कल्क करे। उक्त तीनो-क्वाथ केले का रस और कल्क मे तिल तेल १२७ तो मिला तेल सिद्ध कर ले। इसे कान मे डालने से कर्णशूल, कर्णनाद, बहरापन, पूतिकर्ण, कर्ण-क्ष्वेड, कृमिकर्ण, कर्णपाक, कर्ण कण्डू, कर्ण प्रतिनाह, शोथ, स्राव आदि नष्ट होते हैं। (भै० र०)

नोट—दारुहल्दी के शेष प्रयोग हल्दी के प्रकरण मे देखे।

दारुहल्दी (लता) मलाबारी (*COSCINIUM-FENESTRATUM*)

गुड्ची कुल (Menispermaceae) की यह लता, वृक्ष के आश्रय से ऊपर को अपना विस्तार करते हुए बढती है, काड या तना काष्ठल, बेलनाकार १-४ इच व्यासका, जिस पर पीत वर्ण की खुरदरी, मोटी, नरम

छाल होती है। भीतर काष्ठ हरिताभ पीत वर्ण का कुछ चमकीला, दारुहल्दी की अपेक्षा बहुत कम कड़ा और पीतवर्ण मे भी उसमे हलका होता है। पत्र—करतलाकार खंडित होते है।

यह लता मलाबार के पर्वतो पर तथा पश्चिम भारत के जगलो एव पहाडो पर एवं सीलोन मे प्रचुरता से पाई जाती है। वैसे तो थोडी बहुत प्रायः समस्त भारतवर्ष में यह उपजती है।

इसका स्वरूप और गुणधर्म बहुत कुछ विलायती-(Calumba, Colombo root) के समान होने से यह उसकी उत्तम प्रतिनिधि है। कलम्बा का सचित्र विस्तृत वर्णन इस ग्रंथ के द्वितीय खंड मे देखिये।

दक्षिण भारत के बडे शहरो मे यह मलाबारी दारुहल्दी, या सीलोन कलम्बा नाम से सहज प्राप्त होती है। इसके गुणधर्म असली दारुहल्दी की अपेक्षा हीनदर्जे के है। यथापि यह असली दारुहल्दी के स्थान मे या उसमे मिश्रण कर दक्षिण के बाजारो मे बेची जाती है।

नाम—

सं०—लतादार्वी, कालीयक, कलम्बक इ। हि.-दारुहल्दी। मलाबारी, झाड की हल्दी। म.-झाडी हलद व०-हल्दीगाछ। अं०-ट्री टरमेरिक (Tree Turmeric) फाल्स कलम्बा (False Calumba) ले०—कोसीनियम फेनेस्ट्रेटम; मेनिस्परमम फेनेस्ट्रेटम (Menispermam Fenestratum)

रासायनिक संगठन—

इसमे बरबेरीन (Berberine) दारुहल्दी की अपेक्षा अल्पमात्रा मे, तथा सेपोनीन (Saponin) नामक सत्व पाये जाते है।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, वातनाशक, सडने गलने की किया को रोकने वाली, उदरजकृमिनाशक, खाने से मुखगत लाला स्राव एव आमाशयिक रस को बढाने वाली ज्वर प्रतिषेधक है।

सामान्य सतत एव विषम-ज्वरो तथा ज्वरोत्तर-कालीन सार्वदैहिक दौर्बल्य व कई प्रकार के अजीर्ण मे इसका शीतकषाय क्वाथ, फाट या टिंचर अति गुणकारी है।

इसके १ औंस जौकुट चूर्ण को १ पाइन्ट (लगभग ५३ तोला) शीतल जल मे (जल परिस्रुत डिस्टल्ड लेना चाहिए) आध घण्टा तक भिगोये रखकर (या रात को रख कर प्रात:) छान लेवे। यही शीत कषाय है। मात्रा ४-१२ ड्राम तक।

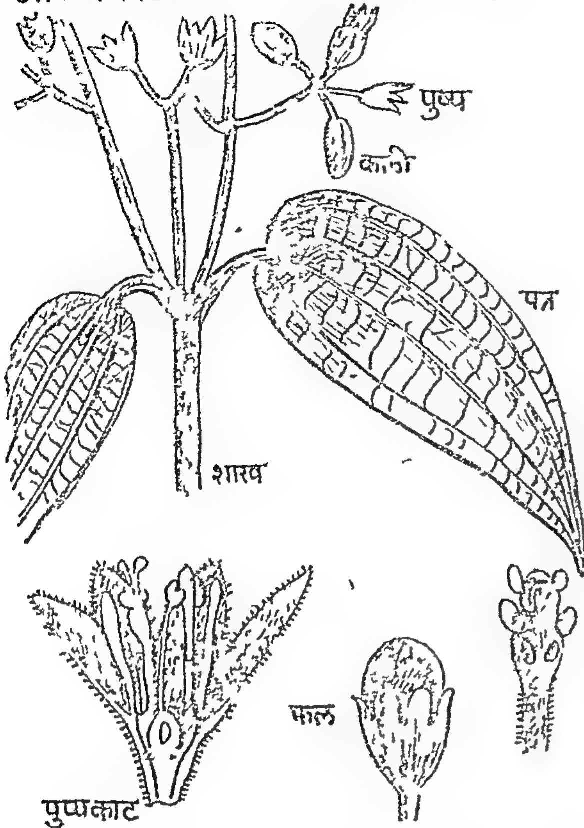
टिंचर के लिए १ भाग, इसके चूर्ण मे १० भाग मद्यार्क मिला ३-४ दिन बाद छान ले। मात्रा आधा से १ ड्राम तक।

क्वाथ चतुर्थांश की मात्रा १। से २॥ तो तक शीत-लतादायक औषधि की भांति शिर मे इसका प्रलेप करते है तथा घृष्ट, पिष्ट क्षतो पर भी इसका लेप लगाते है।

दालचीनी (Cinnamomum Zeylanicum)

कर्पूरकुल (Lauraceae) के इसके वृक्ष हरे-भरे, मध्यमाकार के, तज या तेजपात के वृक्षो से कुछ बडे, छाल—धूसरवर्ण की रक्ताभ, लगभग ½—१ इञ्च मोटी, चिकनी तेजपात की छाल से अधिक पतली, अधिक पीली एवं अधिक सुगधित होती है। इसी छाल को चीनी, सिलोनी (सिंहली) दालचीनी कहते है। यह तज (दालचीनी) या भारतीय दालचीनी की अपेक्षा गुणधर्मों मे श्रेष्ठ है। भीतरी काष्ठ—हलके लाल रग का, पत्र—अभिमुख, चर्मवत्, कडे, ३—८ इञ्च लम्बे, १॥—३ इञ्च चौडे, भालाकार, नुकीले, ऊपर से चिकने चमकीले, सूक्ष्म रोमश, ३ या ५ प्रधान सिराओ से युक्त जिनके बीच महीन जालीदार सिराए रहती है[1] पर्णवृन्त ½-१ इञ्च लम्बा, ऊपर से चपटा, पुष्प—वसतऋतु मे, लम्बे पुष्पदण्ड पर, गुच्छों मे, धूसर या श्वेत वर्ण के पुष्प, गुलाब पुष्प जैसे सुगधित, फल—वसत मे गहरे बेगनी

[1] ये तज के पत्ते (तेजपात) जैसे ही, किन्तु उनसे बडे होते है। सूखने पर इनसे लवङ्ग के समान सुगन्ध आती है।



रग के, गोल, लगभग १ इच लम्बे, करोदा जैसे किंतु छोटे, शुष्क या किंचित मामल होते हैं।

इन वृक्षो का आदि प्रमुख स्थान सीलोन तथा कोचीन, चीन, सुमात्रा, जावा है। किंतु दक्षिण भारत के मद्राम, मैसूर आदि स्थानो मे भी ये पाये जाते है।

इसकी कई जातिया है, किन्तु देश-भेद से निम्नाङ्कित तीन प्रकार की व्यवहार मे आती हैं—

(अ) सिंहली (सीलोनी)—सीलोन (लका) से आने वाली दालचीनी पतली छाल वाली सबमे श्रेष्ठ होती है। इसी के वृक्ष का ऊपर शीर्षस्थान मे दिया हुआ लेटिन नाम है। इसका तथा निम्न चीनी दालचीनी का मिलित वर्णन प्रमुखता से यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।

(आ) चीनी-दालचीनी—चीन, कोचीन, सुमात्रा आदि देशों से आता है। इसके वृक्ष को लेटिन मे सिनेमोमम् केशिया (Cinnamomum Cassia), छाल को हिन्दी मे तज, म ब. मे दालचीनी, अ—केशिया सिनेमोन (Cassia Cinnamon) या चाइनीज़ केशिया (Chinese Cassia) कहते हैं।

इसका वृक्ष हराभरा, चिकना, पत्र—आयताकार या भालाकार पतले ६–८ मि. मि लम्बे, लम्बाग्रयुक्त, चर्मवत्, अस्पष्ट सिराजाल से युक्त, पुष्प—छोटे, कुछ अधिक लम्बे पतले, पुष्प-वृन्त से युक्त, पत्र के अक्ष मे या छोटी शाखाओ के अन्त मे लगते है। फल—चिकने, अण्डाकार मटर के बराबर, कुछ रसदार होते हे। इसकी सूखी हुई छाल को चीनो दालचीनी कहते है, जो २–४० से मि लम्बी एव मुडी हुई, बाहर से हलके भूरे रग की, प्राय चिकनी तथा कुछ आडी झुर्रियो से युक्त, अन्दर से रक्ताभ भूरे रग की, रेशेदार होती है। इसकी गन्ध मनोहर, स्वाद मधुर एव उष्ण होता है (जीभ पर कुछ उष्णता प्रतीत होती हैं) इसमे उडनशील तैल ०·८%, जल एव रजक पदार्थ आदि पाये जाते है।

यह गुणधर्म मे उष्ण, वातानुलोमक, आमाशय-उत्तेजक, ग्राही एव अति आल्हादकारक है। इसमे सार्वदैहिक की अपेक्षा स्थानिक उत्तेजनाशक्ति अधिक है। इसका स्वतत्र प्रयोग कम किया जाता है, तथापि इसके फाण्ट या चूर्ण से हृल्लास दूर होता हे, तथा आध्मान मे भी लाभ होता है। अतिसार मे अन्य ग्राही औषधि के साथ एव अन्य अनेक मिश्रणो मे सहायक द्रव्य के रूप मे इसका व्यवहार किया जाता है। मात्रा—२½ से १० रत्ती तक।

(इ) भारतीय-दालचीनी—यह हिमालय प्रदेश मे ५–६ हजार फीट की ऊचाई पर मिलती है। यह उक्त चीनी दालचीनी की ही जाति की है। केवल स्थान भेद से इन दोनो मे कुछ अन्तर पाया जाता है। अन्यथा इन दोनो मे कोई विशेष भेद नही प्रतीत होता। इसे लेटिन मे सिनेमोमम तमाल (Cinnamomum Tamala) कहते है, जिसका वर्णन हम पीछे तेजपात के प्रकरण मे कर आये है। भाषा मे इसकी छाल को कही २ दालचीनी या तज ही कहते हे। यह सबसे मोटी, कम तीक्ष्ण तथा जल मे पीसने से लुआबदार हो जाती हे। इसका

मिश्रण प्राय. असली सिंहली दालचीनी मे कर दिया जाता है। क्योकि, सिंहली या सिंगापुरी दालचीनी बहुत महगी होने के कारण बाजार मे बहुत कम आती है। प्राय मोटी छाल को तज या तालुका (इसका लेपादि में बहुत व्यवहार किया जाता है) और पतली छाल को दालचीनी कहते हैं। तेजपत्र और तज एक ही वृक्ष के पत्र और छाल है। पत्र का वर्णन तेजपात के प्रकरण मे देखें।

इसके अपक्व फलो को अग्रेजी मे केसिया बड्स (Cassia buds) कहते है। इन फलो मे भी छाल (तज) जैसा ही किन्तु अधिक चरपरा स्वाद होता है। यूनानी मे इन्हे काला नागकेशर कहते हैं।

जगली दालचीनी–उक्त भारतीय दालचीनी की ही जाति के अन्य पेड कोकण तथा मलाबार कोष्ट पर पाये जाते हैं, जिन्हे लेटिन मे सिनेमोमम् मलाबाथरम (C. Malabathrum), अग्रेजी मे कट्री सिनेमन (Country Cinnamon) तथा भाषा मे जगली या कडु दालया करुआ कहते हैं। इसका आदिस्थान वास्तव मे दक्षिण व उत्तरी कनाडा प्रदेश है। इसकी छाल काली दाल के नाम से तथा फल जो उक्त दालचीनी के फल की अपेक्षा बडा होता है, काला नागकेशर नाम से बिकता है। इसके सुगन्धित पत्र और छाल से एक प्रकार का तैल निकाला जाता है, जो शिरपीडा आदि मे उपयोगी है। इसके शुष्क अपक्व फलो को या बीजो को पीसकर शहद या शक्कर के साथ बालको के अतिसार या कास आदि कफ विकारो मे देते है। अन्य उपयुक्त द्रव्यो के साथ यह ज्वर पर भी दिया जाता है। छाल का उपयोग कढी, साग आदि मे मसाले के रूप मे विशेष किया जाता है। इसकी ताजी अन्तर छाल उत्तम सुगंध एव स्वादयुक्त होती है।

सुश्रुत के एलादिगण मे तथा शिरोविरेचन मे प्रस्तुत प्रसग की दालचीनी का उल्लेख है।[1] त्रिजातक व चातुर्जात की कल्पना, जिसमे दालचीनी की प्रधानता है, भावप्रकाशकार की यथायोग्य की गई है।

छाल सग्रह—इसका वृक्ष ३ वर्ष का हो जाने पर इसकी छाल को निकाल कर सुखाई हुई अथवा इस वृक्ष की शाखाओ को या झाडियो को काटने के बाद उत्पन्न नवीन प्ररोहो की सूखी हुई अन्दर की छाल को ही सिंहली या सीलोनी दालचीनी कहते है। यही सर्वोत्तम एव औषधिकार्यार्थ ली जाती है। यह छाल एक दूसरे पर इकहरी या दुहरी लिपटी हुई, ३-४ फुट तक लम्बी तथा १ से मी तक व्यास की, बाह्य भाग मटमैला पीताभ भूरे रंग का अनेक हल्की लहरदार धारियो (सूक्ष्म रेखाए) से एव इतस्तत छोटे २ चिन्ह या छिद्रो से युक्त होता है। अन्तरतल उक्त बाह्य तल की अपेक्षा गाढे रग का एव अनुलम्ब दिशा मे सूक्ष्म रेखाओं के जाल से युक्त होता हैं। यह छाल प्राय ½ मिलिमिटर मोटी तथा तोडने पर आसानी से टूट जाती है। तज की अपेक्षा पतली गदले लाल रग की, मधुर, सुगंधित एव तीक्ष्ण होती है। इसका सग्रह सूखी एव ठडी जगह मे किया जाता है।

इसका चूर्ण भी मटमैला पीताभ भूरे रग का होता है। इसमे कम से कम ०.७% उडनशील तैल होता है। इसे अच्छी तरह डाट बन्द पात्र मे रखना चाहिए, जिससे इसका प्रभावशाली तैल उडने न पावे। चूर्ण के पात्र को भी ठडी जगह मे सुरक्षित रखना चाहिये। एलोपैथी मे यह चूर्ण अनेक सुगंधित औषधिप्रयोगो मे (जैसे Aromatic powder of chalk, Aromatic powdered chalk with opium आदि) पड़ता है।

नाम–

सं०–त्वक् (छाल का ही विशेष प्रयोग होने से), उत्कट (तीक्ष्ण होने से), गुडत्वक, त्वक्स्वाद्वी (मधुर रस होने से) तनुत्वक (पतली छाल वाली), दारुसिता इ०। हि०–दालचीनी, तज, कलमी दारचीनी, किर्फा इ०। म गु०–दालचीनी, तज। बं०–दारुचिनि, गुडत्वक। अं–Cinnamon bark सिनामान बार्क। लें०–सिनेमोमम् जिलेनिकम् (वृक्ष का नाम), छाल का नाम-सिनेमोमी कोरटेक्स (Cinnamomi cortex)।

रासायनिक सङ्गठन–

छाल मे एक उड़नशील तैल ०.५ से १% टेनिन,

[1] दालचीनी तेजपात व इलायची इन तीनों के सम भाग मेल को त्रिजात या त्रिसुगंध कहते है। इनमे नाग केशर मिलाने से चातुर्जात कहाता है।

पिच्छिल द्रव्य गोंद आदि पाये जाते है।

उक्त तैल को दालचीनी का तैल, गेगन दालचीनी अंग्रेजी मे सिन्नेमम आयल (Cinnamom oil) तथा लेटिन मे ओलियम सिन्नेमोमाई (Oleum Cinnamomi (ol cinnam) कहते है। यह तैल परिस्रवण (Distillation) द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसमे ५५ से ६८% तक सिन्नेमिक एल्डिहाइड (Cinnamic aldehyde), लगभग १०%, यूजीनाल (Eugenol), तथा अल्प मात्रा मे मेथिल-एन-अमिल कीटोन methyl-n-amyl ketone), पी साइमीन (p cymene) आदि रसायनिक द्रव्य पाये जाते है। यह तैल ताजी अवस्था मे हलके पीले रग का रहता है, जो पुराना होने पर लाली लिए हुए भूरे रग का हो जाता है। इसका स्वाद व गध दालचीनी जैसा ही होता है। इस तैल को अच्छी तरह डाट बन्द पात्रो मे ठडी जगह पर रखना चाहिये तथा प्रकाश से बचाना चाहिए। इस तैल का आपेक्षिक गुरुत्व १०-३० तक होता है, यह पानी मे डालने से डूब जाता है। ८० पौंड दालचीनी से २½% उडनशील तैल तथा ५½% स्थिर तैल प्राप्त किया जाता है।

छाल (दालचीनी) के अतिरिक्त इस वृक्ष की पत्तियो और मूल मे भी तैल प्राप्त किया जाता है। पत्तियो का तैल किंचित गहरे रग का उडनशील होता है। यह उक्त छाल के उडनशील तैल से बिलकुल भिन्न है, इसमे कुछ लवग जैसी तीव्र गध आती है, तथा इसमे ७०—९५% यूजेनाल रहने के कारण दालचीनी तैल मे इसकी मिलावट की जाती है, जिसकी पहचान उसमे बढी हुई यूजेनाल की मात्रा एव घटी हुई सिन्नेमिक-एल्डिहाइड की मात्रा से की जा सकती है। इस परीक्षण के असफल करने के लिये, इसमे रासायनिक विधि द्वारा निर्मित सिन्नेएल्डि को मिला देते है, तथापि इसकी पहचान उसके हरितवर्ण (वर्णोरीन की उपस्थिति), एव घटे हुए विशिष्ट गुरुत्व आदि से हो जाती है। यह पत्तो का तैल लवग के तैल जैसा उपयोग मे लाया जा सकता है, तथा आमवातादि में मालिश के लिये विशेष उपयोगी है।

मूल का तैल पीले रग का तथा पानी से हलका होता है। यह पानी पर फैल जाता है या ऊपर ही उतराता रहता है। इसके फलो का तैल काले रग का होता है। पुष्पो से अर्क तथा इत्र निकालते है।

प्रयोज्याङ्ग—त्वक (छाल) पत्र और तैल।

गुण-धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, मधुर, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफवातशामक, पित्तवर्धक (किंतु-जिस छाल मे मधुरता अधिक होती है, वह पित्त शामक है), दीपन, पाचन, वातानुलोमन शुक्रजनक, यकृदुत्तेजक, साधारण ग्राही, वस्तिशोधक, स्तभन, रक्तोत्क्लेशक (रक्त मे श्वेत कण वर्धक) वेदना स्थापन, लेखन, कठ शोधक, मूत्रल, यक्ष्मानाशक, गर्भाशय-सकोचक, वाजीकर, कामोद्दीपक, तथा नाडी दौर्बल्य, आध्मान, आक्षेप, हिक्का, कास, श्वास, हृद्रोग, पक्षाघात, अरुचि, अग्निमाद्य, मुख-शोष, तृषा, आमदोष, उदर शूल, ग्रहणी, अर्श, आन्त्रिक ज्वर, कृमि, पीनस, कण्डू, मूत्रकृच्छ, पूयमेह, रजोरोध, गर्भाशय-शैथिल्य, नपुसकता, कैंसर आदि विकारो मे यह प्रयुक्त होता है।

त्वक (छाल)—उक्त गुण धर्म प्राय छाल के ही है। यह उत्तम दीपन, पाचन होने से आमाशय के विकारो पर विशेष हितकारी है। इससे आमाशय की श्लैष्मिक कला को उत्तेजना मिलकर आमाशयिक-रस की वृद्धि होती, आहार का ठीक पाचन होना, सचित वायु निकल जाती उदर मे वायु की विशेष उत्पत्ति नही होने पाती है।

यह अपने ग्राही वातानुलोमन आदि गुणो से जीर्णातिसार, ग्रहणी आदि आन्त्र विकारो पर उपयोगी है। इसे उपयुक्त अन्य द्रव्यो के साथ सेवन से वात का सचय या वृद्धि नही हो पाती, तथा शौच क्रिया नियमित होने लगती है। जीर्णातिसार, आध्यमान एव अन्त्राक्षेप आदि मे यह अफीम और चाक मिट्टी के साथ दी जाती है। इसमे एव इसके तैल मे सिनेमिक एल्डिहाइड नामक एसिड के होने से यह कफ कास, कठ रोग, राजयक्ष्मा तथा तज्जन्य कीटाणुओ से उत्पन्न विकारो मे इसका सत्वर असर पड़ता है, तथा रक्तपित्त मे भी लाभकारी है, एतदर्थ ही सितोपलादि चूर्ण का सेवन कराया जाता है। इसका क्वाथ रक्तस्राव को बन्द करता है; फुफ्फुस

तथा गर्भाशय के रक्तस्राव मे इसका प्रयोग करते हैं।

मुख-शोधन, मुख दुर्गन्ध नाशन एव दातो की मजबूती के लिये इसे मुख मे रखते व चवाते है। इससे वमन एव उत्क्लेश मे भी लाभ होता है।

इसका लेप न्यच्छ व्यङ्ग, आदि चर्म रोगो मे तथा नाडी शूल, शिर शूल, तथा शोथ वेदना युक्त स्थानो पर किया जाता है।

वाजीकरणार्थ इसे अन्य उपयुक्त द्रव्यो मे मिला कर तैल निकाला जाता है, जिसे शिश्न पर मर्दन करते हैं। तथा इसे अन्य वाजीकर द्रव्यो के साथ पीस कर लेप भी करते हैं।

(१) अतिसार पर—त्वक् चूर्ण व राल चूर्ण १॥-१॥ माशा, वेलगिरी चूर्ण ३ मा० इन तीनो को गुड मिले दही के साथ देने से शूलसहित नूतन आमातिसार मे सत्वर लाभ होता है। अथवा उदर मे दूषित मल सग्रहीत न हो, तो दस्त वद करने के लिये त्वक चूर्ण और श्वेत कत्थे का चूर्ण ६-६ रत्ती, मिलाकर दस्त लगने पर शहद या जल के साथ दिन मे २-३ वार दे। अतिसार वन्द हो जाता है। यदि मधु के साथ देना हो, तो मात्रा ३-३ रत्ती वारवार देवें। (गा० औ०र०)

अथवा त्वक चूर्ण ४ मा० और कत्था १ तो० मिला कर पीस कर उसमे २५ तो० खौलता हुआ जल मिला ढाक कर रक्खें। २ घटे बाद, छान कर २ या ३ भाग कर दिन मे २-३ वार पिलावे।

मन्दाग्नि, अजीर्ण व कोष्ठवद्धता पर—भोजन के पूर्व त्वक्, सोठ और इलायची ५-५ रत्ती पीस कर खाते रहने से मदाग्नि व अजीर्ण मे लाभ होता है।

कोष्ठवद्धता विशेष हो, तो त्वक् चूर्ण ४ मा० और हरड का चूर्ण १६ मा० इन दोनो को एकत्र कर, १० तो० पानी मिला १० मिनट तक आग पर पका कर, छान कर पिलावे। दस्त साफ होकर कोठा साफ हो जाता है। आध्मान हो तो रात्रि के समय त्वक् का क्वाथ पिलावें।

(३) वमन पर—पित्त प्रकोप जन्य वमन या उत्क्लेश हो, तो त्वक् का फाण्ट या अर्क दिया जाता है। अथवा त्वक् और लौग का क्वाथ या फाण्ट देते है। या त्वक् चूर्ण को ही थोडा मधु मिलाकर चटाते हैं।

(४) शिर शूल पर—कफ या शीतजन्य सिर दर्द हो, तो त्वक् को जल के साथ पीस कर, कुछ गरम कर सिर पर लेप या इसके तैल का मर्दन करे। एक कटोरी पर भीना वस्त्र बाध कर उस पर त्वक् चूर्ण को रख चूर्ण पर अभ्रक का पत्रा रक्खे और उस पर आग रख देने से कटोरी मे जो इसका अर्क या तैल सग्रहीत हो उसे शीशी मे रख ले। इसे सिर पर लगाने से शीघ्र ही दर्द दूर होता है —(व०गु०)

(५) इन्फ्लुएजा पर—त्वक् ४ मा०, लौग ५ रत्ती, और सोठ १५ रत्ती इन तीनो को जौ कुट कर, १ सेर पानी मे पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर ५-५ तो० की मात्रा मे ३-३ घटे से पिलाने से शरीर की धडकन, वेचैनी, सिर पीडा आदि दूर होकर ज्वराश हल्का पड जाता है। रोगी को आराम मिलता है।

(६) कास आदि कफ-विकार-पर—त्वक् चूर्ण ४ मा०, सोफ चूर्ण २ मा०, मुलैठी चूर्ण, वीज रहित मुनक्का ४-४ मा०, मीठे वादाम गिरी १ तो०, कडुवे वादाम की गिरी और शक्कर ४-४ मा० इन सवको एकत्र थोडे जल के साथ खूब घोट, पीस कर ३-३ रत्ती की गोलिया वनाले। दिन रात मे कई वार १-१ गोली मुख मे रख कर चूसते रहे। इससे शुष्क कास पर शीघ्र लाभ होता है। प्रतिश्याय की प्रारभिक-अवस्था मे चाय के साथ त्वगादि चूर्ण (आगे विशिष्ट योगो मे देखें) १॥-१॥ माशे डाल कर पिलाने से विशेष लाभ होता है।

७ प्रसूति रोग, तथा अत्यार्त्तव आदि गर्भाशय के विकारो पर—प्रसव-काल मे पीडा वढने पर तथा गर्भाशय शैथिल्यजन्य अति रज स्राव मे गर्भाशय की मासपेशियो के शैथिल्य को दूर करने के लिये त्वक्चूर्ण, पीपलामूल और भाग के साथ दिया जाता है। अत्यार्त्तव मे इसे अशोक छाल के क्वाथ या फाण्ट के साथ देते है। सूतिका को प्रारम्भ मे, वात-प्रकोप से एव दूषित कीटाणुओ से बचाने के लिये कुछ दिनो तक इसके चूर्ण मे पीपलामूल-चूर्ण मिलाकर सेवन कराते

है। गर्भाशय की मासपेशियों के क्षीण हो जाने से प्रसव-काल में विलम्ब हो जाने पर इसका अर्क का सेवन कराते है। आगे विशिष्ट योगो मे त्वगर्क देखे।

नोट—आगे प्रयोग नं० १४ से त्वक् के शेष प्रयोग देखिये।

तैल—

वातानुलोमक, उत्तेजक, वेदना-नाशक, वातहर, रक्तस्रावरोधक, आध्मान, अरुचि, वमन, अतिसार मे लाभकारी, व्रणशोधक एव रोपक, यक्ष्मानाशक, कृमिनाशक है।

८ राजयक्ष्मा मे इसे कैपसूल मे भरकर खिलाते या इजेक्ट करते हैं। तैलान्तर्गत सिनेमिक एसिड क्षय के दण्डाणुओं को नष्ट कर देता है। यक्ष्मा के इन कीटाणुओं से उत्पन्न व्रण पर तैल का फाया या तैलयुक्त पुल्टिस को बांधते रहने से वह शुद्ध होकर शीघ्र आराम होता है।

९ आध्मान, मरोड, आमाशयिक शूल तथा वमन पर इस तैल को मिश्री के साथ खिलाते है।

१०. आन्त्रिक-ज्वर (टायफाईड) मे आन्त्र प्रतिदूषक औषध के रूप मे, अन्य औषधो के साथ सेवन कराते है।

११ प्रतिश्याय तथा इन्फ्लुएन्जा मे इसे मिश्री के साथ या कैपसूल में भरकर खिलाते है, तथा रूमाल पर इसे डालकर सूंघने को देते है।

१२ वाजीकरणार्थ—इस तैल १ भाग मे ३ भाग जैतून तैल मिला इन्द्री पर मर्दन करते है, तथा शीत-जल से उसे बचाते है।

१३ कृमिदन्त आदि पर—तैल के फाये को कृमि-दूषित दांत के गढे मे रखने से, उस स्थान की शुद्धि होकर दर्द दूर होता है।

कफज सिर-दर्द पर—तैल को ललाट व कनपटी मे मर्दन करते हैं।

आन्त्र संकोच पर—इसे पेट के नीचे मलते हैं।

कर्णबाधिर्य पर—इसे कान मे टपकाते हैं।

वात के विकारो पर—इसकी मालिश करने से लाभ होता है।

मासिक धर्म मे—अधिक रज स्राव के निरोधार्थ तैल को मिश्री के साथ सेवन कराते है।

त्वक् के शेष प्रयोग—

१४ हैजे मे होने वाली हाथ-पैरो की ऐंठन पर—त्वगाद्युद्वर्तन त्वक्, तेजपात, रास्ना, अगर, सहेजना-छाल, कूठ, वच, और सोये का समभाग मिश्रित चूर्ण काजी मे पीस मलने से विषूचिकाजन्य ऐंठन दूर होती है। इन औषधियो से सिद्ध किया हुआ तैल भी ऐसा ही गुणकारी है। —भा० भै० र०

१५ पित्तज शिरोरोग—त्वक् पत्रादि नस्यम्-त्वक्, तेजपात और खाड को चावलो के धोवन के साथ पीसकर नाक मे टपकाने से लाभ होता है। —व्र० से०

१६ वातरोग पर—त्वगाद्या गुटिका-त्वक्, इलायची, शुद्ध गधक इनका चूर्ण तथा शुद्ध गूगल समभाग लेकर, अण्डी के तैल मे घोटकर १ से ३ मा० तक की गोलिया बना ले। १-१ गोली गरम जल से सेवन करने से वात रोग नष्ट होता है। —भा० भै० र०

१७ गले की काग वृद्धि पर—प्रातःकाल मे शौच मुख-मार्जन आदि क्रिया से निवृत्त होने के बाद त्वक्चूर्ण ६ रत्ती को पानी के साथ खूब महीन पीसकर, इसका लेप, दाहिने हाथ के अगूठे से काग पर करे, तथा मुख खोलकर लार टपकने दे। दो दिन ऐसा करने से कागवृद्धि दूर होती व कास नष्ट होती है।

(१८) अरुचि पर—त्वक्, नागरमोथा, इलायची और धनिया इनका चूर्ण, अथवा—त्वक्, अजवायन और दारु हल्दी इनका चूर्ण जिह्वा पर मलने तथा शहद मे मिला कर चाटने से मुख का शोधन होता तथा सर्व प्रकार की अरुचि दूर होती है।

(१९) श्वेत-प्रदर व प्रमेह पर—त्वक् ६ मा०, सालम मिश्री १ तो० और सीप भस्म २ तो०, महीन चूर्ण ६ मा० की मात्रा मे, जल से देवे।

—यूनानी ग्रन्थ से

नोट—पत्तो के गुणधर्म व प्रयोग तेजपात मे देखिये।

विशिष्ट प्रयोग—

१. त्वक्पानीय (Aqua Cinnamomi) या

अर्क—त्वक्-चूर्ण को १० गुने जल मे मिला नलिका यन्त्र द्वारा अर्क खीच लेवें। तैल से भी यह तैयार किया जाता है—इसका तैल १६ बून्द, मेगनेशिया कार्बोनेट ५६ ग्रेन और वाष्प जल ६० औंस लेकर, प्रथम तैल को मेगनेशिया के साथ खरल मे मिलाले। फिर शनै-शनै जल मिला, चलाकर त्वक् पानीय बनाले। उसे छानकर उपयोग मे लावें। मात्रा—१ से २ औंस।

गर्भाशय की मासपेशिया क्षीण हो जाने से प्रसवकाल मे विलम्ब होने पर यह अर्क ४-४ घटे के अन्तर से देते रहने से गर्भाशय सकुचित होकर लाभ होता है।

—गा० औ० र०

वमन, अतिसार, आदि कई विकारो पर यह दिया जाता है।

२ त्वगादि चूर्ण—त्वक्, छोटी इलायची के दाने, और सोंठ समभाग महीन चूर्ण करलें। मात्रा—५ से ३० रत्ती। अग्निमाद्य, आमप्रकोप एव कीटाणु नाशक तथा मथर ज्वर मे लाभप्रद है।

नूतन प्रतिश्याय मे यह चूर्ण १½ मा० की मात्रा मे चाय के साथ पिलाने से विशेष लाभ होता है।

—गो० औ० र०

३. त्रिजात चूर्ण—दालचीनी (त्वक्), तेजपात और छोटी इलायची के मिश्रण का चूर्ण ३ मा० की मात्रा (बालको को ½ से १ मा० तक) मे भोजन के पूर्व शहद के साथ लेते रहने से अग्निमाद्य, अरुचि दूर होकर क्षुधा प्रदीप्त होती, आमता नष्ट होती एव वमन, हृल्लास (जी मिचलाना) और अपचन की निवृत्ति होती है। इस चूर्ण से मजन तथा इसके क्वाथ से कुल्ले करने से दात की पीडा शमन होती, जिह्वा की जडता या शून्यता, मुख का वेस्वादपन दूर होता तथा मुख व कण्ठ की शुद्धि होती है। नित्य दन्त-मजन मे इस चूर्ण को मिला देने से, दातो की दूषित कीटाणुओ से रक्षा होती है।

इस त्रिजात या त्रिगन्ध चूर्ण मे नागकेशर मिला देने से चतुर्जात कहाता है। यह रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, कुछ पित्तकारक, वर्ण्य (शरीर की कान्ति को बढाने वाला), रुचिकारक और पित्त-कफ नाशक है।

—शा० स०

त्रिजात के कई उत्तमोत्तम प्रयोग शास्त्रो मे देखने योग्य है।

४ त्वगासव—त्वक्-चूर्ण १ भाग मे मद्य (७० से ९०%) ५ भाग मिला, बोतल मे भर मजबूत कार्क बन्द कर रक्खे। ७ दिन बाद अच्छी तरह फिल्टर कर शीशियो मे भर ले। ½ से ४ मा० तक की मात्रा मे, जल मिश्रण कर सेवन करने से अतिसार, आमातिसार, अग्निमाद्य, अजीर्ण तथा अन्य उदर-रोग दूर होते हैं। अथवा—

त्वक् का मोटा चूर्ण ७ तो० और रेक्टिफाइड-स्प्रिट ५० तो० उक्त विधि से मद्यासव निर्माण कर लें। यह भी उक्त प्रकार से लाभदायक है। मात्रा—३० बूंद तक। यह उत्तेजक, वातहर, पाचक और स्तम्भक है।

और भी अन्य प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह मे देखिये।

नोट—मात्रा-त्वक-चूर्ण ५-१५ रत्ती। तैल—१-५ बूंद। पित्त-प्रकृति वालो को अधिक मात्रा मे यह सिर-दर्द पैदा करता, तथा वृक्क व मूत्राशय को हानिदायक है। हानिनिवारणार्थ, कतीरा, श्वेत चदन, खमीरा-बनफशा आदि देते हैं।

गर्भवती स्त्री को भी इसे अधिक मात्रा मे नही देना चाहिये। गर्भपात होने की सभावना है।

बडी मात्रा मे इसका उपयोग कैंसर के उपचार मे किया जाता है।

दारसी (*FLUEGGEA MICROCARPA*)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इसके क्षुप, १।। फुट ऊचे, छाल श्वेत या बादामी रग की, पत्र—पतले लम्बे गोल २ ५ से० मी० तक चौडे, पुष्प—पु व स्त्री केशरयुक्त, कुछ गुलाबी छटा लिये हुए छोटे-छोटे, फल—छोटे-छोटे जिनमे श्वेत सरसो जैसे श्वेत बीज होते हैं। ये बीज पशुओ को खिलाये जाते है। दुष्काल

के अवसर पर मनुष्यो ने भी इन बीजो की रोटी बनाकर खाया है।

ये क्षुप भारत मे प्राय सर्वत्र वर्षाकाल मे उगते है।

नाम—

स०--धूसरी पाडुफली इ०। हि०--दालसी, पटाला। म०-पाढरफली। गु०--शाणवी। ले०--क्ल्यूगिया माइक्रोकार्पा।

इसमे एक क्षारतत्त्व होता है, जो मछलियो के लिए विष है।

गुणधर्म व प्रयोग---

शीतवीर्य, मधुर, वृष्य, पौष्टिक है, तथा मूत्राघात, पित्त-प्रकोप, मूत्रकृच्छ्र, कृमि एव रक्त-विकार नाशक है।

कुचले के विष पर—इसके पत्तो का रस पिलाते है। दुष्ट व्रण के शमनार्थ—पत्तो को या पत्र-रस को तम्बाकू के साथ मिलाकर एक लेप तैयार किया जाता है, व्रण के दूषित कृमि को नष्ट कर व्रण को ठीक कर देता है।

दियार—दे०—देवदारु। दीर्घपत्रा—दे०—बेंत।

दुकू (*PEUCEDANUM GRANDE*)

गर्जर या मण्डूकपर्णी कुल (Umbelliferae) के इसके क्षुप सोया या सौफ के क्षुप जैसे पत्र एव पुष्पयुक्त होते है। बीज (फल)—गुच्छो मे, कुलथी जैसे कुछ चिपटे, भिन्न-भिन्न आकार के ⅕ इञ्च लम्बे, ⅛ इञ्च चौडे, किनारे दतुर, मध्य मे कुछ उन्नतोदर, रक्ताभ पीतवर्ण, के, पृष्ठभाग पर उभरी हुई ७ रेखाओ से युक्त, स्वाद मे तीक्ष्ण (गाजर जैसे किंतु अधिक तीक्ष्ण), गन्ध मे नीबू के गन्ध जैसे होते है। इन बीजो को ही दुकू कहते है। औषधि कार्यार्थ बीज ही लिये जाते है। ताजे, पीले बीज श्रेष्ठ माने जाते है। क्षुप की जड गाजर के समान ही मोटी होती है। इसे जगली-गाजर कहते हैं।

ये क्षुप पश्चिम भारत की पहाडियो, पश्चिम घाट, कोकण आदि मे तथा ईरान मे विशेष पाये जाते है।

दक्षिण के कोकण आदि प्रान्तो मे इसके कोमल पत्तो को तथा फलो को कतर कर पानी मे बफारते है, तथा उसमे चने की दाल, नमक व मिर्च मिला छौक देते है। यह साग स्वादिष्ट होती है। ताजे बीजो को पीसकर तक्र की कढी या रायते मे मिलाने मे वह सुगंधित, स्वादिष्ट होता है। बीजो को अचार मे भी डालते है।

नाम—

स०--हिगुपत्री। हि०--दुकू, दूकू, डाकू, जगली गाजर। म०--रानफली। अ०--वाईल्ड कॅरट (Wild Carrot)। ले०--प्युसीडनम् ग्रेंडी।

बीजो मे एक हलका पीतवर्ण का प्रभावशाली तैल होता है।

गुणधर्म व प्रयोग--

तीक्ष्ण, कषाय, उष्ण, रूक्ष, रोचक, सुगधी, दीपन, पाचन, मूत्रल, कफ-वात शामक, आमनाशक, पथ्य, वातानुलोमन, मूत्रार्त्तव जनन, वाजीकर तथा वस्ति-पीडा, विबन्ध, अर्श गुल्म, अश्मरी, प्लीहा, शोथ, मेदोरोग आदि विकारो मे प्रयुक्त होता है।

१ मेद या वात की फुलावट मे वातापकर्षण, दीपन एव उत्तेजनार्थ बीजो का फाण्ट—१ भाग बीज-चूर्ण में १० भाग खौलता हुआ जल मिलाकर बनाया हुआ १¼ तो० से २½ तो० की मात्रा मे दिया जाता है। इससे आध्मान, आन्त्रविकृति एव ग्यास्ट्रिक पीडा मे भी लाभ होता है।

२ बच्चो के उदर-विकारो मे—विशेषत. जिसमे पेट फूलता हो, पीडा होती हो—बीजो को दूध मे या पान के रस मे या जल मे पीस कर पिलाते है।

३ वात-विकार नाशार्थ तथा वाजीकरण के लिये—बीज-चूर्ण को शहद के साथ सेवन करते है।

४ कास, अजीर्ण और उदर-शूल पर—इसका तैल लगभग ५ बू द तक शक्कर के साथ देवे।

बीजो का तथा अजवायन का चूर्ण एकत्र मिला

जल के साथ देने से उदर-पीडा शीघ्र दूर होती है।

५. कृमि पर—बीजो को दूध के साथ पीसकर पिलाते है।

६. कफज-शोथ एव कफज पार्श्वशूल पर—बीजो को पानी मे पीसकर, गरम कर प्रलेप करते है।

मात्रा—बीज चूर्ण ३ से ५ मा० तक। अधिक मात्रा मे विशेषत. उष्ण प्रकृति वालो को, एव यकृत् और वृक्को के लिये हानिकारक है। यह उष्ण प्रकृति वाल की पौरुष शक्ति को हान कर देता है।

हानि-निवारणार्थ—वसलोचन, कतीरा, बबूल का गोद, या मस्तगी का सेवन कराते हैं।

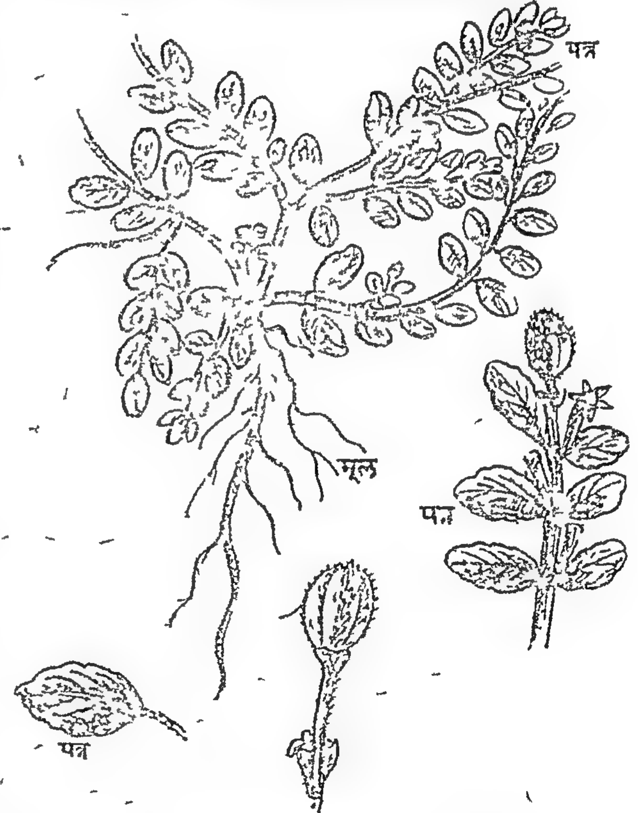
इसका प्रतिनिधि—गाजर-बीज, अजमोद, अजवायन, सोया या सोफ है।

दुद्धि (छोटी) (*EUPHORBIA THYMIFOLIA*)

गुडूच्यादि वर्ग एवं एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इसके वर्षायु क्षुप बहुत छोटे छत्ता मे रक्ताभ या ताम्र वर्ण के जमीन पर फैले हुए, बहुशाखायुक्त, पत्र-अभिमुख सूक्ष्म, द्विपंक्ति मे, पृष्ठ भाग हरा, ऊपरी भाग लाल, तिर्यक आयताकार या गोल या गोल दन्तुर भी होते हैं, फूल और फल भी बहुत बारीक गोल टहनियों पर प्रत्येक, गाठ व पत्रो के बीच मे होते हैं। इसके शुष्क क्षुप या पत्रों से चाय के समान गध आती, स्वाद मे यह कुछ कसैली होती है। यूनानी मे दूधीखुर्द के नाम से यह प्रसिद्ध है।

यह भारत के प्राय. सभी मैदानी एव छोटे पहाडी स्थानो पर गर्मी के दिनो मे प्रचुरता मे प्राप्त होती है। उत्तर-प्रदेश, बिहार आदि मे सर्वत्र, किंतु आर्द्र स्थानो या अधिक वर्षा जहा होती है, ऐसे स्थानो मे अधिक होती है। यह भूमि पर ही छाई हुई रहती है।

यद्यपि ऐसी कई वनस्पतिया हैं, जिनके तोडने से दूध जैसा स्राव इससे भी अधिक परिमाण मे निकलता है, किंतु आश्चर्य है कि दुद्धि, दुधिया ये शब्द इसी एक खास बूटी के लिए रूढ हो गये है। अस्तु-इसके निम्न भेद है—



१. छोटी दुद्धि (लाल छोटी दुद्धि (Euphorbia Microphylla)—इसका क्षुप लाल (छोटी) दुद्धि जैसा ही भूमि पर फैला हुआ या खडा हुआ भी, श्वेतवर्ण का, न्यूनाधिक रोमश होता है। कांड—कोमल, पत्रमय, अनेक शाखायुक्त लगभग ४-१० इच लम्बा, पत्र—छोटे, गोल-लम्बे श्वेत हरितवर्ण के, अग्रभाग पर कभी-कभी दन्तुर होते हैं। फूल व फल—शीतकाल के अन्त मे, छोटे-छोटे, बीज-चिकने, नीलवर्ण के होते है। यह भारत के प्राय समस्त उष्ण प्रदेशो मे विशेषत दक्षिण भारत, मध्य-भारत और बगाल मे अधिक पायी जाती है।

(आ) छोटी दुद्धि—हजारदाना दूधमोगरा (E Hypericifolia) का क्षुप कोमल, वर्षायु, एक बित्ता ऊचा होता है। पत्र—अभिमुख, लम्बगोल, अण्डाकार।

पुष्प बहुत छोटे, श्वेत गुलाबी रग के। फल—छोटे, तीन खडयुक्त, नीलाभ हरे रङ्ग के होते है। इसे कही कही दूध-मोगरा भी कहते हैं। इस पर रोम नहीं होते। यह बडी दुद्धि जैसी दिखाई देती है, किन्तु बडी-दुद्धि इससे कडी व रोमश होती है। इसमे फेनालीय द्रव्य, सुगन्धित तेल तथा क्षाराभ (Alkaloid) पाया जाता है। यह सग्राही शोथहर एव मादक है। बच्चो के उदरशूल मे—इसका पत्र-स्वरस दूध के साथ दिया जाता है। स्राव, अतिसार, अत्यार्त्तव, तथा श्वेत प्रदर पर इसके शुष्क पत्तो का फाट देते है। चर्म-कील पर इसका दूध लगाते है। यह भी भारत के प्राय. समस्त उष्ण भागो मे, तथा ४५०० की ऊचाई तक हिमालय पर पाई जाती है।

२ बडी दुद्धि-इसका वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिये। यहा केवल उक्त छोटी दुद्धियो का ही वर्णन किया जाता है।

आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थो मे इसका कोई विशेष उल्लेख नही पाया जाता है।

नाम—

सं०—लघु या क्षुद्र दुग्धिका, स्वादुपर्णी, विक्षीरिणी हि०—छोटी दुद्धि, दोधक, दुधियाघास, निगाचूनी, राई-वूटी। म०—लहान नायटी। गु०—नहानी दुधेली। बं०—केरुई, रक्तकेरू, दुधिया। ले०—यूफोर्बिया थाइमिफोलिया, यू० मायक्रोफिल्ला (E Microphylla), यू हायपेरिसीफोलिया (E Hypericifolia)।

रासायनिक संघटन—

इसमे क्वेरसेट्रिन (Queretrin) नामक या इसके जैसा ही एक स्फटकीय क्षार तत्व पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पचाग

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, मधुर, कटु-विपाक, उष्ण वीर्य, कफपित्तहर, वातवर्धक, अनुलोमन, मूत्रल, भेदन, उत्तेजक, रक्तशोधक, वृष्य, आर्त्तवजनन, गर्भकारक, पारदबन्धक, तथा कृमि, कास-श्वास, कुष्ठ, उदर-रोग, विबन्ध, प्रवाहिका, हृद्दौर्बल्य, उपदश, पूयमेह, रक्त-विकार, मूत्रकृच्छ्र, योनिस्राव, शुक्रतारल्य, रजोरोध, विष आदि पर प्रयुक्त की जाती है।

यूनानी मत से—यह गर्मी के विकारो, नकसीर आदि मे गुणकारी है। नेत्रविकार, रतौंधी आदि मे परम लाभदायक है। यह वीर्य को गाढा कर शुक्रमेह को दूर करती है। इसके पचाग को छायाशुष्क कर महीन चूर्ण कर समभाग मिश्री मिला ६ माशा की मात्रा मे दूध के साथ प्रात सेवन से जीर्ण शुक्रप्रमेह तथा अतिसार मे भी शीघ्र लाभ होता है। अथवा पचाग के उक्त चूर्ण के साथ समभाग बडा गोखरू और श्वेत जीरा का चूर्ण तथा सबके समभाग चीनी मिला, दिन मे ३ बार दूध के साथ सेवन से उसी दिन लाभ होता है।

इसका स्वरस वस्तिशोधक, रक्तविकार, कुष्ठ, कफ-विकार, कृमिरोग, जलोदर एव सुजाक नाशक है। इसके शुष्क पचाग का जौकुट चूर्ण १ भाग मे ८ या १० भाग पानी मिला, १२ घण्टे बाद भबके से अर्क खीच ले। यह अर्क रक्ताल्पता मे तथा यकृत शोथ एव जलोदर रोगी को पानी के स्थान मे पिलाते रहने से विशेष लाभ होता है। पचाङ्ग के कल्क की ५ तोले की एक टिकिया बना ५ तोले तिल-तेल मे जला लें। टिकिया के जल जाने पर तैल की मालिश मे वातज सधिशूल मे शीघ्र लाभ होता है। ध्यान रहे इसका उपयोग गोली के रूप मे करने से यह आमाशय मे शोथ पैदा कर देती है। इसके चूर्ण या सत फाट क्वाथ या अर्क का ही प्रयोग निर्दोष लाभकारी होता है। इसकी जड २ मा० पान मे रखकर धीरे धीरे चबावे तथा पीक निगलते जावें, तो हकलापन मे अधिक लाभ होता है। यदि एक वर्ष तक प्रतिदिन १ तो तक इसका चूर्ण सेवन करे तो बाल श्वेत न हो। इसका दूध मधुर, गर्भ सस्थापक और वीर्यवर्धक है। इसकी जड को कान मे बाधने से तिजारा आदि बारी वाला ज्वर छूट जाता है। इससे कई धातुओ की भस्मे प्रस्तुत की हुई उत्तम गुणकारी होती हैं।

आधुनिक मत से—उत्तरी भारत मे यह मृदुरेचक एव उत्तेजक मानी जाती है। कोकण मे इसे दाद पर लगाते है। तामलनाड मे कृमि तथा बच्चो के उदर विकार मे इसके पत्र और बीज का उपयोग करते है। सथाल लोग इसकी जड से अल्पार्त्तव की चिकित्सा करते है।

(आर एन चोपडा)

यह सर्व प्रकार के श्वास रोग मे हितकर है, श्वास को कम करती है। हृदय, श्वासोच्छ्वास की क्रिया तथा ज्ञानतन्तुओ के केन्द्रो पर शामक प्रभाव कर यह दमा को कम करती है। किन्तु इस वनस्पति को अत्यन्त सावधानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। अन्यथा श्वासोच्छ्वास की कमी होकर मृत्यु का भय है।

(डा वा ग. देसाई)

इसके शुष्क पत्र और बीज का चूर्ण-तक के साथ शिशुओ के उदर विकार, कृमि व सुजाक मे दिया जाता है। रजस्राव निरोध की दशा मे स्त्री को, इसकी जड का चूर्ण २॥ से १० रत्ती की मात्रा मे दिया जाता है अथवा इसका क्वाथ २॥ तो० से ५ तो की मात्रा मे दिया जाता है। एवं चर्मरोग पर इसका रस मद्य मे मिलाकर लगाने से लाभ होता है। मद्य के साथ यह रस सर्पादि विषैले जतुओ के दश पर पिलाया जाता है। तथा दंशित स्थान पर लगाया भी जाता है। पलित मे (बालो के श्वेत होने मे) इसे नौसादर के साथ पीसकर लगाते है। — (डा० नाडकर्णी)

(१) अर्श पर—रक्तार्श के रक्तस्रावनिरोधार्थ छोटी या बडी दुद्धि तथा वनगोभी १-१ तोला, कालीमिर्च १ माशा इनको ५ तोले पानी मे पीस छानकर, कुछ गरम कर उसमे १ तो० मिश्री या शक्कर मिला, प्रात साय पिलाने से १-२ दिन मे ही, रक्तस्राव बन्द हो जाता है। वनगोभी न मिले तो केवल दुद्धि का ही प्रयोग उक्त प्रकार से करे। इससे मूत्रकृच्छ्र या सुजाक मे भी लाभ होता है। लगभग १५ दिन तक सेवन करावे। अथवा—

ताजी दुद्धि १० तोले, रसौत ५ तोले, दोनो को पानी के साथ महीन पीस झरबेरी के समान गोलिया बनाले। दिन मे ३ बार १-१ गोली पानी से सेवन करें।

यदि वातज अर्श हो, तो—दुद्धि ताजी १० तो० और शुद्ध कुचला ५ तो० दोनो को पानी के साथ महीन कूट पीसकर मिर्च जैसी गोलिया बनाले। दिन मे ३ बार १-१ गोली दूध या पानी से लेवे। अथवा—

१ पाव ताजी दुद्धि को कूटकर लुगदी बना (लुगदी का रस निचोड कर रस को फेंक दे) लुगदी के बीच मे १० तो लाल फिटकरी को रख, किसी मृत्पात्र मे बन्द कर साधारण कपडमिट्टी कर, निर्वात स्थान मे ४ सेर उपलो मे फूंक दें। शीतल होने पर निकाल लें। उसमे की काली भस्म को फेंक दे। वह खराब होती है। केवल श्वेत भस्म को महीन पीस कर शीशी मे सुरक्षित रखे। मात्रा—२ मा तक। ग्रीष्म काल मे मक्खन के साथ तथा शीतकाल मे बताशा के साथ सेवन करे। वातार्श के लिये रामबाण है। यदि रक्तार्श हो, तो इस श्वेत-भस्म मे १ तो. कहरुवा (तृणकान्तमणि) का योग कर लेवे। मात्रा—रक्तानुसार।

—हकीम दलजीतसिह जी

अर्शांकुरो पर-मलहम—शुष्क दुद्धि ५ तो०, कुचला अशुद्ध, श्वेत कत्था १ तो और तूतिया १½ मा सबको महीन पीस, रेंडी-तैल ६ तो. मे मिला कर घोटें। इसे मस्सो पर लगाते रहने से वे समूल नष्ट हो जाते हैं।

श्री प. अनन्तदेव जी दीक्षित (धन्वन्तरि से)

(२) प्रमेह पर—दुद्धी सूखी १० तो, बबूल फली १० तो. और मिश्री १ पाव सबको बारीक पीस कर रखलें। मात्रा—१ तो. अनुपान गोदुग्ध। सर्व विधि प्रमेह को नाश करता है। अथवा—

दुद्धिताजी, गिलोय और आमले ताजे २०-२० तो कूट पीस कर ३ सेर पानी मे भिगो २४ घटे बाद मल कर छान ले। फिर पानी नितार कर बहादे, नीचे जमे हुए सत को सुखा कर रखले। मात्रा—१-१ मा प्रात साय शहद से सेवन करें। कठिन से कठिन प्रमेह का नाश होता है। श्री पं अ. देव जी दीक्षित

शुक्रमेह (स्वप्न-प्रमेह या स्वप्नदोष) हो, तो — ताजी दुद्धि, व दामगिरि, शखाहुली बूटी, १-१ तो. और काली मिर्च १० नग, सबको जल के साथ घोट पीस कर ठडाई बना, मिश्री मिला, प्रात साय पीवे। इससे दिल का गरमी, धातु जाना, जिरयान (शुक्रप्रमेह) भी नष्ट होता है। अथवा— (विशिष्ट योगो मे वग भस्म देखें)

दुद्धि और वनगोभी बूटी का पचाङ्ग दोनो समभाग खूब महीन पीस, छोटे बेर जैसी गोलिया बनावे। प्रात साय १-१ गोली ताजे जल से लेवे। खटाई, स्त्रीसग, गुड़, लाल मिर्च, तैल की वस्तु, गर्म चीजो से परहेज करे। १ सप्ताह मे इसके गुण को देखे। यदि ४० दिन

सेवन करे तो प्रत्येक वीर्य विकार नष्ट होकर बलवृद्धि होती है। अथवा–दुद्धि १ तोला के साथ कालीमिर्च १० दाने घोट पीस कर नित्य पिया करे, वीर्यविकार, जिरयान तक को १ मास मे काफी फायदा करेगा।

मधुमेह मे—दुद्धि, गुडमार बूटी, जामुन के बीज और अजवायन खुरासानी समभाग चूर्ण कर दुद्धि के ही स्वरस मे घोटकर, बेर जैसी गोलिया बना, प्रात साय ताजे जल से या अन्य योग्यानुपान से दे। शीघ्र लाभ होता है। श्री प शालिग्रामजी (धन्वन्तरि से)

(३) वस्तिवलवर्धक योग—इसके छायाशुष्क पचाङ्ग के साथ समभाग गोंद कतीरा, और श्वेत मूसली महीन चूर्ण कर, समभाग मिश्री मिला ले। प्रात साय ६-६ मा गोदुग्ध से सेवन करे।

(४) पूयमेह (सूजाक)—दुद्धि सूखी १० तो, श्वेत सुरमा, कत्था, गोंद बबूल, हजरूल जहूद पत्थर और गिलेअरमनी मिट्टी ५-५ तो लेकर सबको महीन पीस कर, दुद्धि स्वरस (या इनके क्वाथ) मे घोटते-घोटते सुखा दे और चूर्ण कर रक्खे। या झरबेरी जैसी गोलिया बना ले। १-१ मात्रा गोदुग्ध से लेवे। शीघ्र लाभ होता है। —श्री पं अ दे दीक्षित।

विशिष्ट योगो मे श्वेत सुरमा भस्म देखे।

अथवा—प्रात काल, ताजी दुद्धि (विशेषत हजार दानी छोटी दुद्धि) पचाङ्ग महिन ३ तो मिश्री मिला, छानकर पी जावें। इसके बाद टहले, लेटे, चाहे जो काम करें, किंतु बहुत धूप मे न फिरे। पथ्य मे–दूध, चावल या खिचडी (दाल मूग की छिलके सहित हो) लेवे। नमक बहुत कम लेवे। रोग यदि नवीन हो, तो केवल ३ दिन मे ही पूर्ण लाभ होता है। दिन मे १ बार वह भी प्रात दवा सेवन करना काफी है। रोग पुराना होने पर दिन मे दो बार प्रात साय ७ दिन तक सेवन करने से रोग जड से जाता रहता है। ध्यान रहे, उपरोक्त पथ्य को छोड अन्य किसी वस्तु का सेवन न करें। प्यास लगने पर ताजा पानी पीवे। दूध गाय का ही लेवें, भैंस आदि का नहीं। रात्रि मे सोते समय लाल रग की बकरी का दूध वह भी एक उबाल दिया हुआ पी सकते है। श्रद्धा एव विश्वासपूर्वक इसके सेवन से अवश्य लाभ होगा। भूल मे अधिक मात्रा मे भी पी लेने मे कोई अहित नहीं होता।

—श्री हकीम दलजीतसिंह जी वैद्यराज। (सचित्रआयुर्वेद से)

(५) हृदय के विकारो पर—ताजी दुद्धि १ तो. पीसकर १ पाव दूध और १० तो पानी मिला पकावे। दूध मात्र शेष रहने पर, छान कर, थोडी मिश्री मिला सेवन करने से हृदय की धडकन और दाह दूर होती है।

हृद्दौर्बल्य, कम्प तथा पीडा पर दुद्धि २५ तोला को १½ सेर पानी मे चतुर्थाश क्वाथ सिद्धकर, छानकर उसमे १ सेर मिश्री मिला, शर्बत की चाशनी तैयार करलें। फिर उसमे इलायची छोटी, वसलोचन व सत गिलोय १-१ तो महीन पीसकर डाल दे। प्रात साय २-२ तो मात्रा, गोदुग्ध के साथ सेवन करें।

(६) उपदश–दुद्धि और हिंगुल शुद्ध १-१ तोला तथा आमला ६ माशा सबको महीन पीस १-१ मा की टिकिया बना सुखा लें।

सेवन-विधि–त्रिफला समभाग जोकुट किया हुआ १ तोला लेकर कोरी चिलम मे रख, उस पर उक्त १ टिकिया रख, सायंकाल मे धूम्रपान करे, फिर दूसरी चिलम इसी प्रकार तैयार कर अर्धरात्रि मे पीवे, फिर तीसरी इसी प्रकार ब्राह्ममुहूर्त (४ बजे) मे पीवें। सारी रात्रि जागरण करे। एक ही रात्रि मे लाभ होगा तथा घाव पूरित हो जावेगे। यदि कसर रह जाय तो तीसरी रात्रि मे फिर जागरण करे और उक्त प्रकार से धूम्रपान करे तो आराम होगा।

उपदशज घावो पर मरहम–दुद्धि सूखी २ तो, मस्तंगी व कत्था १-१ तो, कपूर देशी ३ मा और गेरू ६ मा सबको महीन पीसकर, गोघृत ७ तो (धुला-हुआ) मिला मरहम बना ले। इसे लगाने से व्रण शीघ्र भर कर अच्छे हो जाते हैं।

(श्री० प० अ० दे० दीक्षित वैद्यशास्त्री)

(७) गर्भस्थापक योग—ताजी दुद्धि का पचाग, श्वेत कटेरी की जड व शिवलिंगी बीज समभाग चूर्णकर ऋतु स्नान के बाद ३ दिन तक नित्य प्रात सूर्योदय के

समय ३ मा चूर्ण गाय के ताजे दूध से सेवन करे, अवश्य गर्भ ठहरेगा। किसी कारण न ठहरे तो तीसरे माह भी २-३ दिन अवश्य सेवन करे, अनुभूत है।

—श्री० पं० शालिग्राम जी वैद्यराज (धन्वन्तरि से)

पुत्रोत्पादक योग—दुद्धि पचाग चूर्ण ६ मा के साथ समभाग प्रवाल भस्म, मुक्ता (या मुक्ता-शुक्ति भस्म), सगयशव भस्म व जहरमोहरा खताई इन सबको खरल कर रक्खे। गर्भ रहने पर गर्भिणी को १½ रत्ती दवा प्रतिदिन गोदुग्ध के साथ नीहार मुह सेवन करावें। बिना नागा निरंतर ८ मास तक यह सेवन क्रम चालू रखे। ईश्वर कृपा से पुत्र-उत्पन्न होता। —श्री० हकीम दलजीतसिंह जी वैद्यराज (सचित्रआयुर्वेद से)

इससे नियमित होने वाले-अत्यधिक रज स्राव मे तथा नासागत रक्तपित्त (नकसीर) में भी लाभ होता है।

(१०) कास तथा ज्वर पर—पचाग को मटकी मे भर कर कपडमिट्टी कर, गजपुट मे फूंक दें। मात्रा १ मा० अनुपान शहद के साथ सेवन करें। इससे प्रमेह, प्रदर और अतिसार में भी लाभ होता है।

(११) मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पित्ताश्म और निवन्ध निवारणार्थ-पचाग १८ मा० को पीसकर, ५ तो० जल मे छानकर उसमे मिश्री १ मा. मिला केवल, नित्य प्रात ३ दिन तक पिलावे। इस योग से स्त्रियों को गर्भ धारणा भी होती है।

(२१) बाल शोष (सूखा रोग) पर—ताजी दुद्धि और कालीमिर्च समभाग महीन पीसकर मिर्च जैसी गोलिया बनालें। १-१ गोली प्रात साय माता के दूध व जल से देते रहे। अथवा—दुद्धि ताजी २॥ तो., छोटी इलायची २ तोला, सुहागा चौकिया भुना हुआ ३ मा. और मोती भस्म ४ रत्ती लेकर सबको महीन पीसकर उसमे दुद्धि के रस की एक भावना देकर मूंग जैसी गोलियां बनालें। १-१ गोली माता के दूध या पानी से देवे। आगे विशिष्ट योगो मे शोषहर तैल और 'नागार्जुनी तेल' देखे।

अथवा निम्न—ज्वर नाशक अर्क ४-४ मा की मात्रा मे मधु या मिश्री थोडी मिलाकर सेवन करावे। बालरोगो पर 'सुहागा भस्म' आगे विशिष्ट योगो मे देखे।

(१३) ज्वर नाशक अर्क—गिलोय, नीमछाल, और दुद्धि-ताजी प्रत्येक ½ सेर, पित्तपापडा, धनिया, सोठ, व करंजगिरी ५-५ तो. लेकर सब जौकुट कर १६ सेर जल मे सायकाल भिगो, प्रात ६ बोतल अर्क खीच लें। मात्रा २ तो० तक, मिश्री या मधु के साथ, प्रात साय सेवन से सर्व प्रकार का ज्वर नष्ट होता है। बालको के शोष रोग पर भी इसे देते है। आगे विशिष्ट योगो में—नागार्जुनी तेल देखे।

अथवा ज्वर पर वटी—दुद्धि ताजी ३ तो०, कालीमिर्च व छोटी पिप्पली १-१ तोला तीनो को महीन पीस दुद्धि के स्वरस में घोट कर मिर्च जैसी गोलिया बना, १ १ गोली प्रात साय शहद से सेवन करे। सर्व ज्वरो का नाश होता है।

विषम ज्वर मे—भूतनाथ वटी—दुद्धि ५ तो०, कालीमिर्च, करजगिरी, तुलसी पत्र व कुटकी २-२ तो० सबको दुद्धि के क्वाथ में महीन पीस कर मिर्च जैसी गोलिया बनाले। १ गोली ज्वर से दो घटा पूर्व शहद से खावे, फिर १ घटा बाद और १ गोली खाले। ज्वर शर्तिया रुक जाता है।

(१४) कास पर—ताजी दुद्धि ५ तो कालीमिर्च व लौग भुनी हुई १-१ तो, मुलैठी, गोद, बबूल और कत्था २-२ तो. सबको महीन पीस पानी से चना जैसी गोलिया बनाले। दिन रात मे १० गोली (प्रत्येक बार १-१ गोली) मुख मे रखकर चूसते रहे। कसी भी खराब खासी हो नष्ट होगी। श्री पं० अ दे. दीक्षित वैद्यशास्त्री।

(१५) नेत्र के विकारो पर—नेत्रामृत अर्क—दुद्धि और मिश्री ५-५ तोला, फिटकड़ी गुलाबी ६ मा०, अर्क गुलाब ३० तोले। सबको महीन पीस अर्क मिला छान ले। दिन मे कई बार १-१ बूंद डालने से दुखती आख शीघ्र आराम होती है, सुरखी, दाना खुजली, ढरका आदि रोग शात होते है।

सुरमा काला—काले सुरमा की डली ५ तोला को दुद्धि की लुगदी मे रख पुट मे फूक दें। फिर दुद्धि स्वरस मे घोट सुखा लें। फिर केले के रस की १ भावना देकर उसके साथ समुद्रफेन १ तोला भीमसेनी, कपूर १॥ मा

मिला खूब बारीक पीसलें। इसके लगाते रहने से तिमिर, जाला, मुर्खी, परवाल, धुन्ध, नजला आदि दूर होकर, नेत्र शांत एवं शीतल होते हैं। नेत्रो में तरावट आती है।

(श्री० पं० अनन्त देव जी शर्मा वैद्यशास्त्री)

रात्र्यन्ध (रतौंधी) पर—दुद्धि के पौधे को काटने पर जो दूध निकलता है, उसे सलाई के सिरे पर लगाते जाय, जब सलाई के दोनो सिरे दूध से तर हो जाय (यदि दो व्यक्ति हो तो सरलता होगी, क्योकि एक व्यक्ति सलाई के एक सिरे को तर करेगा, और दूसरा व्यक्ति दूसरे सिरे को) तब रतौंधी के रोगी की आंखो में भली भांति सलाई को फेर दे। कुछ देर बाद नेत्रो में असह्य कष्ट एवं वेदना होगी, किन्तु चिन्ता न करे, घबड़ावे नहीं। नेत्रो को जल से न धोवे और न मले, प्रत्युत धैर्य धारण करे। एक प्रहर बाद वेदना आदि दूर हो जावेगी। केवल एक बार के इस प्रयोग से आजन्म के लिये रतौंधी से मुक्ति मिल जावेगी। यह प्रयोग परीक्षित एवं गुप्त योगो में से है।

—श्री हकीम दलजीतसिंह जी वैद्याचार्य (सचित्रायुर्वेद से)

(१६) पागल कुत्ते के काटने पर—दुद्धि पचाङ्ग २ तो पीसकर २ तो शहद मिला खिलावे। दूसरे दिन भी इसी प्रकार खिलाने से कुत्ते का काटा हुआ उसके विष से मर नहीं सकता। —स्व भगीरथ स्वामी जी।

अथवा—इसके पचाङ्ग २ तो को कालीमिर्च ६ दाने के साथ पीसकर थोड़े जल के साथ पिलावे। दंशस्थान पर भी इसी का लेप करे। ७ दिन तक। सियार, बन्दर आदि के दंश पर भी यह योग लाभकारी है।

(१७) मुखपाक आदि मुख के विकारो पर—दुद्धि शुष्क के समभाग कत्था मिलाकर पीस ले। इसे मुख में डालते रहने या लगाने से सर्वप्रकार के मुख पाक रोग दूर होते हैं।

मुख के छालो पर—दुद्धिताजी और अमलतास का गूदा ५-५ तो दोनो का एकत्र कूटकर उसमें गुलाबजल १५ तो मिला, थोड़ी देर बाद निथार ले। इस जलको मुख में लगावे या कुल्ला करे। शीघ्र लाभ होता है।

(श्री० पं० अ० दे० शर्मा वैद्यशास्त्री)

(१८) नाड़ी व्रण (नासूर) पर—पचाङ्ग-कल्क २ तो० की टिकिया बना ४ तोला घृत में पकावे। जलने न पावे। टिकिया लाल हो जाने पर नीचे उतार कर, खरल में पीस, पुनः आग पर रख, उसमें मोम ६ माशा मिलाकर रख लें। इसकी बत्ती बना ७ दिन तक नासूर में रक्खे अवश्य लाभ होता है।

(स्व श्री पं भगीरथ स्वामी जी)

(१९) खुजली, दाह, उकौत, छाजन आदि पर दुद्धि ताजी (अभाव में पानी में आर्द्र की हुई सूखी) २ तो महीन पीसकर इसमें १ तोला गाय का ताजा मक्खन (अभाव में भैंस का मक्खन) पानी में खूब धुला हुआ, मिला दें, इसे खुजली के स्थान पर प्रातः-सायं लेप की भाँति लगाकर, ३-४ घंटे बाद किसी अच्छे साबुन से धो डाला करे। कुछ दिनो में सर्व प्रकार की खुजली दूर होती है। परीक्षित है।

(हकीम श्री दलजीत सिंह जी वैद्यराज)

सर्व शरीर पर कण्डू हो तो इसके पत्तो को पीसकर लगावे और थोड़ी देर बाद स्नान करे। इस प्रकार २-३ बार करें।

दाद पर—पत्तो को या जड़ को पीसकर लगावे। अथवा—इसके पचांग २ तो और गंधक लोनिया १ तो को महीन पीस, मिट्टी के तैल में मिला लगाया करे। शीघ्र लाभ होता है।

उकौत या छाजन पर—इसका दूध लगाया करें।

(२०) पार्श्व पीड़ा पर—इसके पचांग के महीन चूर्ण को पीड़ा स्थान पर मर्दन करे। यह कटि पीड़ा, सिर पीड़ा पर भी उपयोगी है।

(२१) गाय या भैंस के दुग्ध वृद्धि के लिये—दुद्धि १ पाव और शतावर १० तो० दोनो को कूट पीस कर पानी में मिला कर पिलावे या आटे की लोई में मिला कर खिलावे। डेढ़ गुणा दुग्ध की वृद्धि होती है। पशुओ के अतिसार में भी यह लाभकारक है।

-श्री पं० अ० दे० शर्मा वैद्यशास्त्री

नोट-मात्रा—स्वरस १/२-१ तो०। क्वाथ-२-४ तो०। छोटी या बड़ी दोनो-दुद्धि फुफ्फुस के लिये अहित कर है। हानि निवारणार्थ -शहद का सेवन करावें।

छोटी के अभाव में बडी एव बडी के अभाव मे छोटी-दुद्धि ली जाती है। ये दोनो परस्पर मे प्रतिनिधि है। किंतु छोटी गुण धर्म की दृष्टि से विशेष प्रशस्त है।

विशिष्ट योग—

(१) दुद्धि आदि (नागार्जुनी) तैल—ताजी दुद्धि, पीपल की लाख और पीपल की छाल २०-२० तो०, छरीला ५ तो० इनको कूट पीस कर बकरी का दूध ३½ सेर तथा काले तिल का तैल ३½ सेर मे मिलाकर मन्द आग पर तैल सिद्ध करलें। (बकरी के दूध के अभाव मे गोदुग्ध लेवें)। यह तैल सर्व ज्वर नाशक, बलकारी, विशेषत जीर्ण ज्वर नाशक तथा बालशोष को दूर करने वाला है। (तैल मे दो गुना पानी मिलाकर तैल-सिद्ध करें)

(२) शोषहर तैल—दुद्धि स्वरस २० तो०, छोटी इलायची, जायफल, बालछड, तालीस पत्र २-२ तो इनको कूट पीस कर गोदुग्ध ½ सेर, तिल तैल ½ सेर (तथा तैल मे चौगुना पानी) मिला कर मन्द आंच मे तैल सिद्ध कर लें। इसकी मालिश बालक के सर्वाग मे करे। शोष रोग अतिशीघ्र नष्ट होता है।

—श्री०प०अ०दे०शर्मा वैद्यशास्त्री

दुद्धि के योग से कतिपय धातुओं की उत्तम भस्मे निर्माण की जाती है—जैसे—

(३) रजत भस्म—१ तो० चादी का दुअन्नी जैसा मोटा पत्र बनाकर दुद्धि के रस मे १४० वार बुझावे। पुन २० तो० दुद्धि की लुगदी के भीतर इस पत्र को बन्द कर अच्छी तरह लपेट कर, दीमक की मिट्टी से कपड-मिट्टी कर गजपुट अग्नि देवे। भस्म हो जावेगा। २ तो० रजत भस्म १२ तो० पारा को शोषित करेगा। नीबू के रस से घोट कर गोलिया बनावें। यदि सेवन योग्य बनाना हो, तो दोबारा दुद्धि के रस मे खरल कर गजपुट मे फूक दे। मात्रा-½ रत्ती। यह उत्तमाग बलप्रद, बल्य एव हृत्स्पन्दन-निवारक है।

(४) ताम्र भस्म—१ तो० उत्तम तावा लेकर, रुपये से बडा पत्र बना, शुद्ध कर ले। फिर दुद्धि के पाव भर लुगदी मे रख, कपडमिट्टी कर २५ सेर उपलो की अग्नि दे। एक दो बार मे आसमानी रग की भस्म प्रस्तुत होगी। यदि न हो, तो दूसरी अग्नि मे भस्म कर ले। अवश्य भस्म उत्तम हो जावेगी। मात्रा-१-२ चावल, भर मक्खन या मलाई आदि से सेवन करे।

—श्री०हकीम दलजीत सिह जी वैद्यराज

अथवा—शुद्ध ताम्रपत्र कटकवेधी १० तो० दुद्धि की लुगदी २५ तो० मे रख कर, गधक आवलासार १ तो० की बुरकी पत्र पर डाल कर लुगदी से बन्द कर (लुगदी उपलो पर ही रक्खे) गजपुट मे फूक दे। काली भस्म मिलेगी। पुन दुद्धि के स्वरस की भावना देकर टिकिया बना सुखा कर, पूर्ववत् फूक दें। इस प्रकार ३ बार फूकने से उत्तम श्वेत भस्म तैयार होगी। सर्व कार्यों मे योजित कर —श्री०प०अ०दे शर्मा दीक्षित वैद्यशास्त्री

(५) वग भस्म—दुद्धि को छायाशुष्क कर, कूट कर साफ कपडे के ऊपर फैला दे। इस पर शोधित वग के टुकडे कर तह जमादें। फिर दुद्धि का तीन अगुल मोटा चूर्ण उस पर जमा दे। उसी प्रकार तह के ऊपर तह रख कर कपडे को भली भाति लपेट, उसपर १ सेर और साफ कपडे लपेट दें—(इसके लिये टाट आदि का मोटा कपडा ले सकते है)। फिर इस गोले को निर्वात स्थान मे रख, चारो ओर २-३ सेर उपले डाल कर अग्नि देवे। शीतल होने पर सावधानी से राख को हटा कर देखें। रांगे के कण खिले हुए प्राप्त होगे। उन्हे खरल कर सुरक्षित रक्खे। ध्यान रहे कि वग के बहुत छोटे-छोटे टुकडे न हो, अन्यथा भस्म होकर राख मे मिल जावेंगे। मात्रा-१ रत्ती, मक्खन मे रख प्रात नीहार-मुह सेवन करे। शुक्र प्रमेह, शीघ्र-स्खलन, स्वप्नदोष एव उष्णता आदि मे बहुत गुणकारी है।

(६) अभ्रक भस्म—कृष्णाभ्रक को आग पर खूब गरम कर ७ बार गोमूत्र मे बुझा कर कूट डालें। काले चमकीले कण हो जाते है। इसे ५ तो० लेकर १० तो० दुद्धि के रस के साथ घोल कर सकोरा मे रख, ५ सेर घरेलू उपलो की आग मे फूक दे। शीतल होने पर निकाल कर पुन १० तो० दुद्धि के रस मे घोट कर सकोरे मे डाल कर, फिर ५ सेर उपलो की आच दे।

इसी प्रकार २१ अग्नि देकर सुरक्षित रक्खे । सर्वोत्तम भस्म प्रस्तुत होगी। यह बल्य, स्तम्भक, शुक्र प्रमेहहर एव ज्वरघ्न है। उचित अनुपान से कास, श्वास तथा अन्यान्य रोगो का नाशक है ।

(७) श्वेत सुरमे की भस्म—श्वेत सुरमा १ तो० की समूची डली लेकर, ५ तो० दुद्धि की लुगदी मे रख, ५-सेर उपलोकी आग मे फूक दे। शीतल होने पर निकाल कर महीन पीस शीशी मे रख ले । ४ रत्ती की मात्रा मे, दूध की लस्सी के साथ दिन मे ३ बार सेवन से ७ दिन मे सुजाक का पूर्णतया उन्मूलन हो जाता है ।

—श्री०हकीम दलजीत सिंह जी वैद्यराज

इसी प्रकार दुद्धि के योग से और भी कई धातु, उपधातु आदि की भस्मे तैयार की जाती है ।

दुद्धि बड़ी (लाल) नागार्जुनी (Euphorbia Pilulifera)

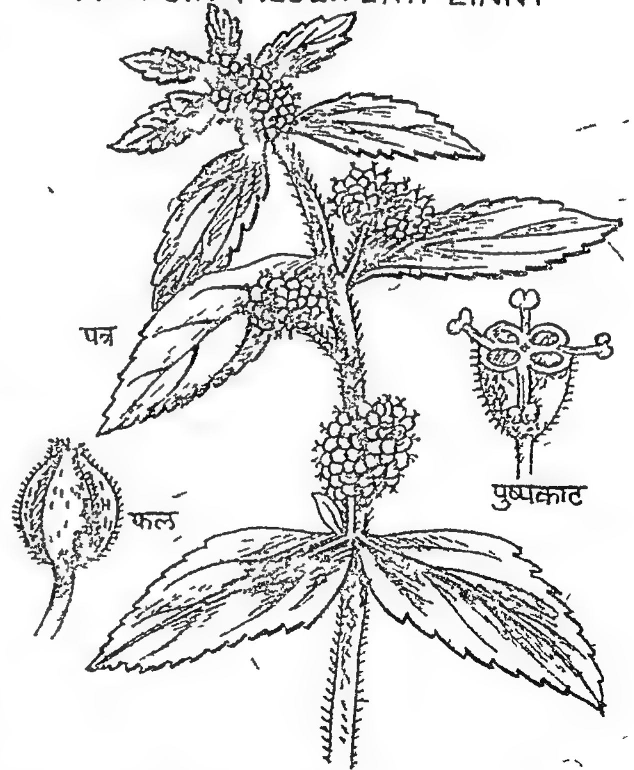
इसके क्षुप वर्षायु, खडे या झुके हुए, रोमश, २ फुट तक ऊचे, काण्ड और शाखाएं प्राय चतुष्कोणी, लाल रग की, रोमश, पत्र- काण्ड या शाखा के दोनो ओर, अभिमुख, युग्मभाव से, तीक्ष्ण दन्तुर-किनारे वाले (नीम पत्र जैसे) अण्डाकार, आयताकार $\frac{3}{4}$ से $1\frac{1}{2}$ इंच तक लम्बे, तीक्ष्ण या संकुचित अग्रवाले, मध्य शिरा के दोनो ओर छोटे-बडे खण्ड युक्त, पुष्प—प्राय गुलाबी रंग के $\frac{1}{2}$ इंची, कोमल रोमयुक्त, गुच्छो मे; फल या बीज कोष बाजरा जैसा गोल $\frac{1}{24}$ इंची, लोम युक्त, बीज—फीके धूसर वर्ण के, सूक्ष्मकोणी, गोल होते है । क्षुप मे छोटी-छोटी रस ग्रंथिया भी होती हैं। ये क्षुप प्राय बारहो मास आर्द्र भूमि मे प्राप्त होते हैं। इसके फूल व फल शीतकाल मे आते है ।

युनानी मे इसे दूधी-कला कहते है। यह भारत के समस्त उष्ण भागो मे, प्राय वर्षा के अन्त में, नाज के खेतो मे, पटती जमीन मे, रास्तो के किनारे प्राय सब स्थानो मे देखी जाती है।

चरक मे इसका (नागार्जुनी का) उल्लेख अर्श एव खालित्य के प्रकरण मे किया गया है। अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे इसके विशेष प्रयोग नहीं मिलते ।

छोटी दुद्धि के प्रकरण के प्रारम्भिक वक्तव्य मे जिस हजारदाना दुद्धि (E Hypercifolia) का हमने संक्षिप्त विवरण दिया है, उसे उसी बडी दुद्धि का एक भेद माना जाता है। शायद इसी को यूनानी मे 'काजी-दस्तार' कहते हैं। इसका क्षुप एक बित्ता से आधा गज तक ऊंचा, शाखाएं मोटी, लालरग की, पत्र भी किंचित लाल वर्ण के २–३ इन्च लम्बे व १–$1\frac{1}{2}$ इन्च चौडे होते हैं। प्रत्येक शाखा के सिरे पर एक गुच्छा लगता है जिसमे छोटे-छोटे बीज होते हैं। पतझड के समय पत्र एव शाखाएं एकदम लाल रग की हो जाती हैं।

बडी दूधीलाल (नागार्जुनी)
EUPHORBIA PILULIFERA LINN.



नाम—

सं०—नागार्जुनी, पयस्विनी, दुग्धिका, स्वादुपर्णी आदि। हि०—बडीदुद्धि, दुधिया, लाल दूधी, दोधक इ०।

म०-मोठीनायरी, गोवर्धन। गु०-नागलादुधेली, राती। बं०—बराकेरू। अं०-स्नेक वीड, अस्ट्रेलियन आस्थमा वीड, कैट्सहेअर (Snake weed, Australian Astma weed, Cats hair)। ले०—यूफोर्बिया पिलुलिफेरा; यू. हिर्टा (E. hair)।

रासायनिक संघठन—

इसमे एक गोद जैसी राल, कुछ क्षाराभ तत्व, गेलिक एसिड (Gallic acid), केर्सेटिन (Quercetin), फिनालीयद्रव्य (Phenolic substance), ग्लाइकोसाईड, शर्करामोम आदि पाये जाते हैं। औषधिकार्यार्थ क्षुप मे पुष्प एवं फल आने पर इसे सुखाकर रखते है।

प्रयोज्याङ्ग—पञ्चांग, पत्र, रस आदि।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके गुणधर्म व प्रयोग प्राय छोटी दुद्धि के समान हैं। जैसा कि छोटी दुद्धि के प्रकरण मे आधुनिक मतानुसार कह आये है तैसा ही हृदय एव श्वसनक्रिया पर इसका भी अवसादक प्रभाव पडता है। श्वासनलिका की सकोचविकास की विकृति के हेतु से (आक्षेप से) उत्पन्न श्वास रोग मे बडी दुद्धि उत्तम लाभदायक हैं। श्वास के आक्षेप या दौरे में इससे कमी आ जाती है। श्वासनलिका प्रदाह (पुरानी खांसी), फुफ्फुस का फूल जाना, वर्षाऋतु मे होने वाला श्वास का दौरा आदि मे इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है। किसी भी कारण से उत्पन्न श्वास एव आक्षेप (दौरे) पर यह दी जाती है। इससे श्वासोच्छ्वास मे कष्ट तथा श्वास की घबराहट (बेचैनी) दोनो दूर होते हैं। यह वृद्धो को भी दे सकते हे। इससे कफ गिरने मे विशेष सहायता मिलती हो ऐसा प्रतीत नही होता। अत दौरा कम होने पर कफ को गिराने वाली औषधि (कटेरी आदि) देनी चाहिये।

—डा वा. ग देसाई।

ध्यान रहे—इसका रस उदर मे जाने पर आमाशय के भीतर कुछ अश मे दाह होता है, जिससे जम्हाई आने लगती हैं। ऐसा उपद्रव न होने पावे, एतदर्थ ही इसका प्रयोग भोजन के पश्चात् अधिक जल के साथ थोड़ी मात्रा में करना चाहिये। अधिक मात्रा मे उत्क्लेश, वमन आदि होकर श्वासोच्छ्वास एव हृदय की क्रिया बन्द होकर मृत्यु भी हो सकती है।

जीर्ण कफविकारो एव तमक श्वास मे इसका क्वाथ देते हैं। क्वाथ—ताजी दुद्धि २।। तो या सूखी १। तो. को ४० औस जल मे मिला अर्धावशेष क्वाथ करे। छान कर इसमे २ औस शराब मिला किंचित् गरम करे। मात्रा—५ तो तक दिन मे ३-४ बार दे। यह क्वाथ ४८ घण्टे तक बिगडता नहीं। इसके साथ अन्य कफनिस्सारक द्रव्य देना आवश्यक है। रक्तमिश्रित प्रवाहिका (आव) तथा उदरशूल में इसका रस दिया जाता है। बच्चो के कृमिविकार, उदरविकार तथा कफविकारो मे इसे देते है। वमन रोकने के लिये इसका जड का प्रयोग किया जाता हैं। चर्मकील (मस्से) तथा दद्रु पर इसका दूध लगाते हैं।

(१) श्वास पर—ताजी दुद्धि (बडी) को पानी के साथ पीस कर रस निचोड लें। मात्रा—१ चम्मच (चाय का चम्मच) लेकर उसमे उतना ही शहद मिला पिलावे। दिन मे २–३ बार आवश्यकतानुसार देने से श्वास की सब दशाओं मे लाभ होता है। इसका टिंचर या मद्यार्क भी देते हैं। विधि—शुष्क दुद्धि १ भाग को उत्तम देशी शराब ७ भाग मे मिला ७ दिन तक बोतल को हिलाते रहे। फिर ५ भाग मे कम हो उतनी शराब मिला ले। मात्रा—१० से २० बूंद तक, ४-६ औंस पानी के साथ भोजन के बाद लेवे।

—स्व प. ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य जी।

(२) रक्तार्श पर—इसका पत्ररस लगभग ४ या ५ ग्रा समभाग ताजे मक्खन (या घृत) और मिश्री के साथ ४–६ दिन तक नित्य प्रात देते रहने से दाह एव रक्तस्राव युक्त अर्श मे विशेष लाभ होता है।

(३) बच्चो को ऊपरी दूध पिलाने से जो पेट मे सुद्दे जम जाते है, तथा मल की गाठ सी बध जाती है, पेट फूलता है—इसकी जड को ताजे गोदुग्ध या मातृदुग्ध मे घिसकर पिलावें।

—व गुणादर्श।

(४) विस्फोटक—शरीर पर छोटे २ जहरी फोडे होने पर—इसके रस को रेंडी-तैल मे मिलाकर दिन मे दो बार लेप करते रहने से विष शमन होकर फोड़े मिट

जाते हैं।

(५) दतकृमि पर—इसकी जड को चबाकर, रस को मुह मे २–४ मिनट रखने पर कृमि नष्ट होकर वेदना शमन होती हैं।

(६) दाद पर—प्रथम गोबरी (कण्डे) के टुकडे मे, दाद के स्थान को घिसकर इसके रस का लेप करते रहने मे दाद दूर हो जाती है। —गा औ र

(७) हकलाहट (तोतलापन) पर—जड़ २ मा तक पान मे रख कर चूसते रहे।

(८) काटा चुभने पर—इसे पीस कर लेप करने से काटा सरलता से निकल जाता है।

नोट-मात्रा—स्वरस-१० से २० बूद। शुष्क चूर्ण २ से ४ रत्ती। इससे होने वाली हानि निवारण छोटी दुद्धि के समान है।

दुधली (Taraxacum Officinale)

भृगराज कुल (Compositae) के इसके बहुवर्षायु क्षुप वनगोभी या कासनी सदृश, पत्र—विनाल, मूल स्तभ मे निकले हुए ३–८ इच लम्बे, अनियमित रूप से खडित, खड रेखाकार या त्रिभुजाकार, तीक्ष्णाग्र, दन्तुर अधोमुख, पुष्प—३–४ इ ची लम्बे पुष्पदण्ड पर, जिह्वाकार पीतवर्ण के पुष्प मजरी मे होते हैं। पुष्पो के झड जाने पर बारीक बीज प्रकट होते है। मूल—मूली जैसी गुलगुली, कुछ चिपटी सी, बाहर से ऊदे रग की, भीतर पीताभ, हल्की गधवाली तथा स्वाद मे अति तिक्त होती है। इस वनस्पति के सर्वाङ्ग से एक प्रकार का गधरहित कडुवा, श्वेत गाढे दूध जैसा चिकना पदार्थ निकलता है। इसलिये इसे दुग्धफेनी कहते है।

यह वनस्पति समस्त हिमालय, तिब्बत, उटकमड की पहाडी, नीलगिरि आदि स्थानो मे, तथा यूरोप और उत्तरी अमेरिका मे होती है।

प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे इसका उल्लेख नही मिलता। निघण्टुओ मे केवल राजनिघण्टुकार ने गुणधर्म विषयक इस पर केवल एक श्लोक दिया है।[1]

यह सन् १९१४ के फॉर्माकोपिया (B P) मे ऑफिशल औषधि थी, तथा पाश्चात्य चिकित्सा मे इसका अधिकतर उपयोग यकृदुत्तेजनार्थ एव पित्तविरेचनार्थ किया जाता था। सम्प्रत् यह आफिशयल नही मानी जाती। तथापि यह यकृत व्याधियो के लिये परमोपयोगी एव महत्व की औषधि है।

हिन्दी मे 'लवलव' नाम को (Hedra Helix)



दुधली (कनफूल)
TARAXACUM OFFICINALE WEBER

एक भिन्न कुल की वनौषधि को भी कही २ दुधली कहते है। इसका वर्णन यथास्थान 'लवलव' के प्रकरण मे देखिये।

[1] दुग्धफेनी कटुस्तिक्ता शिशिरा विषनाशिनी। व्रणापसारिणी रुच्यायुक्त्या चैव रसायनी॥

नाम—

सं०—दुग्धफेनी, कर्णफूल। हि०—दुवली, दुवल, दुधेली, जंगली कासनी कनफूल, वरन। म०—याथुर उंदरावकान। अं०—डेण्डीलायन (Dandelion, पत्रों के गंभीर दन्दाने सिंह के दांतों के समान होने से) Canbellon ले०—टेरेक्सेकम[1] आफिसिनेल, टे. डेन्स्लेयोनिस (T Densleonis)।

रासायनिक संगठन—

इसके दूधिया रस में टेरेक्सेसिन (Taranacin) नामक एक तिक्त पदार्थ, टेरेक्सेसरीन (Taraxacerin) नामक एक स्टकीय तत्व, तथा पोटासियम, कैलशियम रालदार (Resinoid) और सरेशी (Glutinous) पदार्थ पाये जाते हैं। जड में इन्युलीन (Insulin), २५% तथा पेक्टिन, शर्करा, लेव्युलिन (Levulin) और जलाने पर भस्म ५ से ७% होती है।

प्रयोज्याङ्ग—ताजी या शुष्क जड़ (यह जड अधिकांश बाहर यूरोप आदि से आती है। यद्यपि इस विदेशी जड़ से देशी जड कुछ छोटी होती है, किन्तु गुणधर्म में श्रेष्ठ होती है।)

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य (पहले यह शीतवीर्य मानी जाती थी—राजनिघण्टुकार ने उसे शिशिरा लिखा है—किंतु विशेष प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि यह उष्ण है), कटु-विपाक, कफपित्तहर, दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, रेचन, मूत्रल, रक्तशोधक, कटु-पौष्टिक, स्वेद-आर्त्तव एवं स्तन्य-जनन, ज्वरघ्न, विषघ्न, व्रणशोथहर तथा अग्निमांद्य, यकृद्विकार कामला, विबन्ध, उदररोग, कृमि, रक्तविकार, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, चर्मरोग, जीर्ण ज्वर, सामान्य दौर्बल्य आदि में प्रसिद्ध होती है।

उत्तेजक तथा यकृद्विकार नाशक रूप में, इसकी जड को पीस कर १० से १५ ग्रेन तक की मात्रा देते हैं। या इसका अर्क या क्वाथ १½ तो० से २½ तो० तक की मात्रा में देते हैं, उससे पांडु, कामला, यकृद्विकार और अजीर्ण में भी लाभ होता है।

पाश्चात्य प्रणाली में क्वाथ कल्पना इस प्रकार है—जड का जौकुट चूर्ण २॥ तो० (१ औंस) को २४ औंस (१२ छटाक) जल में १५ मिनट तक उबाल कर छान लें। फिर आवश्यकतानुसार इसमें परिस्रुत जल (२० औंस तक) मिला कर क्वाथ का अभीष्ट परिमाण बनालें। आयुर्वेदिक-प्रणाली से भी इसका क्वाथ निर्माण कर सकते हैं। (उसकी मात्रा ५ तो० तक)—मे० मेडिका (डॉ० रामसुशीलसिंह जी कृत)।

योनि तथा गर्भाशय के शोथ पर—इसके स्वरस में कपड़ा भिगोकर योनि या गर्भाशय के भीतर स्थापन करते हैं।

आंखों की फूली पर—इसका दूध लगाते हैं। फूली कट जाती है।

बिच्छू, बर्रं आदि जंतुओं के दंश पर—जड को पानी के साथ पीसकर, लेप करते हैं।

नोट—मात्रा-चूर्ण ५-१० रत्ती तक। क्वाथ-२॥ से ५ तो० तक। घनसत्व-२ रत्ती से १ मा० तक। प्रवाही घन सत्व आधी से १ फ्लुइड औंस (१। रु० भर से २॥ रु० भर तक)। स्वरस—जड़ को कुचलकर रस निकाल लें, उसमें अल्कोहल (मद्यार्क) ६० प्रतिशत वाली मिलाकर ७ दिन तक रखा रहने देवें। फिर छानकर काम में लावें। मात्रा—१ से २ फ्लुइड ड्राम। शुष्क जड़ हो तो जौकुट कर अष्टमांश क्वाथ कर, फिर उक्त मद्यार्क मिलावें।

ध्यान रहे, अधिक मात्रा में यह वृक्कों के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ—सिकंजबीन देवे।

इसके अभाव में कासनी लेवे।

दुधाली—दे०—शकाकुल मिश्री। दुधियावच—दे०—वच में। दुपहरिया—दे०—गुल दुपहरिया। दुमकी मिर्चा (दुमदार मिर्च)—दे०—कबाब चीनी। दुर्गन्ध खर—दे०—अरिमेद। दुरालभा—दे०—धमासा। दूकू—दे०—दुकु। दूधमोगरा—दे०—वाराही कन्द में। दूधिया कलमी—दे०—निसोथ में नोट नं० २। दूधिया वच्छनाग—दे०—कलिहारी।

---

[1] Taraxacum शब्द, ग्रीक भाषा में Taraxit से व्युत्पन्न होना सम्भव है, जिसका अर्थ होता है नेत्राभिष्यन्द। प्राचीनकाल में नेत्रशोथ के लिये इस बूटी का स्वरस प्रयुक्त होता था।

दूधिया लता (*OXYSTELMA ESCULENTA*)

अर्क कुल (Asclepiadaceae) की सदैव हरी-भरी रहने वाली इस दुग्ध-प्रचुरा, बहुशाखायुक्त, रोमश, वर्षायु, वृक्षारोही लता के पत्र ४-६ इञ्च लम्बे, ½ से १ इञ्च तक चौडे, बहु शिरायुक्त, बर्छी के आकार के, पतले फीके हरितवर्ण के, पत्र-वृन्त ⅓ इञ्ची अतिशय अवनत, पुष्प—कुछ बडे आकार के, श्वेत वर्ण, गुलाबी एव बैंगनी रग की शिराविशिष्ट, बहुत सुन्दर गोल; फल—२-३ इञ्ची, लम्ब-गोल, तीक्ष्ण नोकदार, जिसमे अनेक बीज ⅓ इञ्ची, डिम्बाकृति, चिपटे होते है। वर्षा के अन्त मे फूल तथा शीत के प्रारम्भ मे फल आते है। इसके किसी भी अङ्ग को तोडने से दूध जैसा रस निकलता है।

यह लता दक्षिण तथा मध्यभारत, उत्तर-पूर्व बगाल आदि के पहाडी स्थानो एव मैदान मे भी जल के किनारे पाई जाती है।



नाम—

स०-दुग्धिका, तिक्त दुग्धा। हि०-दुधिया लता, दूधी, किरनी, घारोटे इ०। म०-दुधनी, दुधेरी। गु०-जलदूधी। ब०-दूध लता। ले०-ऑक्सिस्टेलमा एस्क्युलेन्टा, एस्कुलेपियास रोक्सिया (Asclepias Ro ea)।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, तिक्त, कटु, रूक्ष, उष्ण वीर्य, विवन्धकर, मूत्रल, कामोद्दीपक, कृमिनाशक, श्वित्र, वातनलिका-प्रदाह, जीर्ण प्रमेह, पूयमेह, कास, बालातिसार एव ज्वर आदि मे उपयोगी है।

मुख के छाले एव गले के सूक्ष्म व्रणो की शाति के लिये इसके पत्तो के क्वाथ के कुल्ले कराते है।

कण्डू (खुजली) मे—इसके रस मे तारपीन-तैल मिलाकर लगाते है। इसके दूधिया रस को फोडो पर प्रलेप करते है। इसकी ताजी जड कामला, पाडु रोग मे व्यवहृत होती है।

इसके पुष्प—तिक्त, पौष्टिक एव कफ-निस्सारक है।

धन्वन्तरि

[वनौषधि विशेषांक परिशिष्टाङ्क]

वर्ष ३९ अङ्क ३
मार्च १९६५

दूधिया हेमकन्द (*MAERUA ARENARIA*)

वरुण कुल (Cappaiidaceae) की इसकी लता अत्यन्त कड़ी, ऊ चे वृक्षों एव वाडो पर वहुत ऊंची चढने वाली, शाखा—श्वेताभ, पत्र—लम्व-गोल चिकने ३½ इञ्च लम्बे, २½ इञ्च तक चौडे, फली—२-५ इञ्च लम्वी, काली मिर्च की मजरी जैसी (चार डोरी से गु थी हुई माला जैसी), वीज—भूरे रङ्ग के, छोटे, मध्य भाग मे संकुचित से होते है। इस वेल की जड मे एक वहुत वडा कन्द निकलता है, जो वजन में अधिक से अधिक दो सेर तक होता है, इसे ही हेमकन्द कहते है। कद की ऊपरी छाल बहुत पतली, भूरे रग की होती है, भीतर यह श्वेत होता है। गंध मे पीसी हुई राई जैसाउग्र और स्वाद मे प्रथम मधुर फिर चरपरा होता है।

इस कन्द को यदि वैसे ही लाकर रख दिया जाय तो यह शीघ्र सड जाता हे। अत जंगली लोग इसकी गोल-गोल पतली चकतिया काट कर, सुखाकर वाजारो मे वेचने लाते है। सग्रह करने वाले इन्हे वातरहित, शुष्क स्थान मे रखते हैं। इसका अर्क भी निकाल कर रख लिया जाता है। इस लता की मूल मे कई उपमूलें शकरकद जैसी, उ गली से लेकर हाथ की कलाई जैसी मोटी-मोटी होती है। इनके भी टुकडे कर लिये जाते है।

यह लता मध्य भारत की रेतीली भूमि मे, तथा पजाव, सिन्ध, गुजरात, कच्छ आदि प्रान्तो मे खेती की या वागो की वाडो पर तथा जगल की झाड़ियों में फैली हुई देखी जाती है।

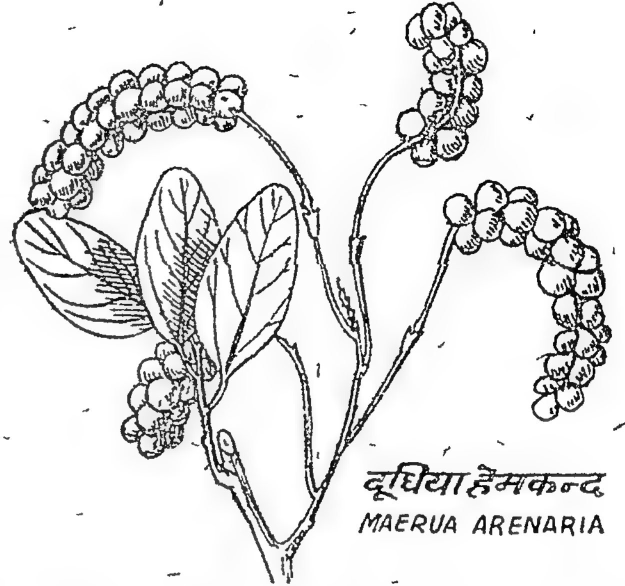
नाम—

स०--दुग्धकन्द, हेमकन्द, सुरहरी (मूर्वा) धवल-कन्द, विसर्प वैरी। इ०। हि०--दूधिया हेमकन्द। म०--विकट, काठीधोली, हेमकन्द। गु०--दूधियो हेमकन्द, वाका, मिरीआल। अ०--अर्थ शुगर रूट (Earth sugar root) ले०--मेरुआ एरीनेरिया।

प्रयोज्याग--कन्द और फल।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, मधुर, उष्ण वीर्य (कोई शीत वीर्य मानते हैं), वेदना एवं वेगशामक, रक्तशोधक, शोथघ्न, कफघ्न, विसर्प आदि चर्म-रोग नाशक है। श्वास, कास, जीर्ण-ज्वर, क्षयजन्य ज्वर एव स्वेद तथा दौर्वल्य आदि पर यह प्रयोजित हैं। इसके सर्वसामान्य गुणधर्म प्राय मुलहठी के समान हैं।



दूधिया हेमकन्द
MAERUA ARENARIA

१. वालको के प्रतिश्याय मे—कन्द को दूध मे पीस-कर छाती पर लेप करते है। कफवृद्धि विशेष नही होने पाती। यदि ज्वर भी हो, तो दूध मे घिस पिलाये।

२ कास-श्वास पर—कन्द के चूर्ण को शक्कर के साथ देते है। कफ ढीला पडकर सरलता से निकल जाता है। कफ-प्रधान तमक श्वास मे इसका चूर्ण १½ मा० की मात्रा मे (वालको को १ मा० तक) सुखोष्ण जल के साथ, दिन मे २-३ वार पिलाते है। या इसके अर्क या टिंचरका सेवन कराते हैं। टिंचर या अर्क का प्रयोग नीचे योग नं० ३ मे देखे।

३ रक्त-विकृति पर—यह सारसापरेला से अधिक प्रभावशाली है। इसके क्वाथ का सेवन कराते या टिंचर इस प्रकार वनाकर सेवन कराते हैं—

कन्द चूर्ण १० तो० को रेक्टीफाइड स्प्रिट या मद्यार्क लगभग ५३ तो० मे मिला, मजवूत कार्क वाली वोतल मे ७ दिन तक वन्द रखते है। प्रतिदिन २-३ वार वोतल

को अच्छी तरह हिला देते है। फिर मसलकर, ब्लाटिंग-पेपर मे छानकर रखते हैं। इसे ४ माशा तक (१ ड्राम) की मात्रा मे दूध वा शक्कर के साथ देते है।

४ विसर्प (रतवा) पर—इसे १½ से २ मा० तक की मात्रा मे पानी मे (या गुड के पानी मे) घिसकर विसर्प के स्थान पर लेप करते है। उक्त टिंचर या अर्क का भी सेवन कराया जाता है। बालक को १ मा० तक की मात्रा मे दूध में घिसकर पिलाते है। शीघ्र विसर्प दूर होता है।

५ यक्ष्मा रोग (क्षय)—की दूसरी या तीसरी अवस्था मे रोगी को रात्रि के समय जो अत्यधिक पसीना आता है, उसके निवारणार्थ इसका चूर्ण १॥ से २ मा० की मात्रा मे जल के साथ सेवन कराने से प्रस्वेद कम हो जाता है, तथा निर्बलता नही बढने पाती।

६ जीर्ण ज्वर पर—इसका चूर्ण १½ मा० की मात्रा मे, दिन में दो बार गिलोय-सत्त्व और शहद के साथ ७ दिन सेवन से ज्वर दूर हो जाता है। —गा० औ० र०।

७ बालको के अपचन पर—दूध न पचता हो, वमन या श्वेत दस्त होते हो, तो इस लता की फली को दूध मे घिसकर पिलावें। अथवा—फली को बीज सहित जला, भस्म कर उसे दूध मे मिलाकर पिलाने से अपचन शीघ्र दूर हो जाती है। मूल और फली के अभाव मे इसकी डडी, पत्र या फूल भी व्यवहृत किये जाते हैं।

—गा० औ० र०

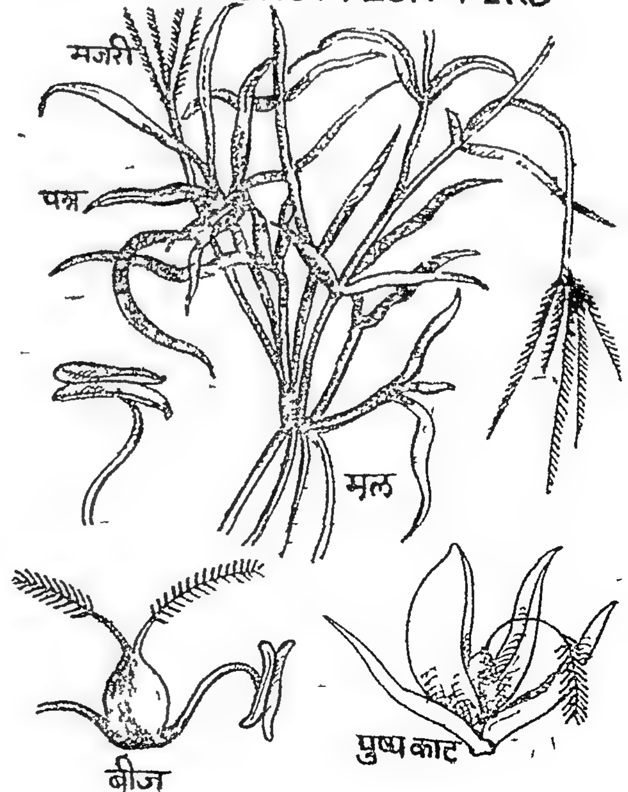
दूधी—दे०—कद्दू न०१ (लौका)। दूधी काली श्यामलता—दे०—सारिवा में (कृष्ण सारिवा)।
दूधीवेल—दे०—सारिवा मे।

दूब (Eynodon Dactylon)

गुडूच्यादिवर्ग एव यवकुल (Graminae) की जमीन पर प्रसरणशील इस लतारूपी घास के काड प्रतान एव ग्रथियुक्त होते हैं। प्रत्येक ग्रथि से इसकी मूल निकल कर जमीन से लगी हुई रहती है। पत्र—लगभग ¾ इच से ४ इच तक लम्बे, १⁄२० से १⁄८ इच तक विस्तृत रेखाकार; पुष्प—१ से २ इची पुष्पदण्ड पर पुष्प हरित, बेगनी रग के, तथा बीज अत्यन्त सूक्ष्म १⁄२४ इची लम्बे होते हैं।

यह अमर दूब (तृण) समस्त भारत मे, सर्वत्र जमीन पर छाई रहती है। जलाशयो के किनारे तो प्रचुर परिमाण मे होती है। पददलित होती, प्रचड सूर्यताप को सहन करती, किंतु समूलनष्ट नही होती। इसमे अनन्त जीवनशक्ति है।

इसके नीली (हरी) और श्वेत ऐसे दो भेद माने जाते हैं। किंतु वास्तव मे ये दोनो एकदम भिन्न नही



हैं। नीली या हरी दूब-पर जब किसी कारण सूर्य की प्रत्यक्ष किरणें नहीं पड़ती, तब वही श्वेत वर्ण की हो जाती है, तथा इसका अधिक विस्तार नहीं हो पाता। यह अधिक दाहशामक मानी जाती है। विशेष गुणधर्म दोनों में प्राय समान ही हैं। तथापि औषधि-कार्य में इसकी अधिक मान्यता एवं प्रशंसा है।

दूब की ही एक जाति विशेष 'गण्डदूर्वा' (गाडर दूब) है, जो सर्वसामान्य दूब से बहुत बड़ी, एवं कास के क्षुप जैसे २-३ फुट ऊँचे क्षुप वाली होती है। इसके काण्ड या उण्डी मोटी होती है। ग्रंथि (गाँठें) भी मोटी होती हैं। यह जलाशयों के किनारे ही अधिक पैदा होती है। पत्र-दूर्वा पत्र से बहुत बड़े होते हैं। यह छप्पर छाने के कार्य में भी ली जाती है।

(२) चरक के वर्ण्य गण में 'सिता-लता (सिता-श्वेत और लता नीली दूर्वा) नामों से, तथा [1]प्रजास्थापन गण में शतवीर्य, सहस्रवीर्य नामों से इसकी गणना की गई है। मालूम होता है, कि लता के समान ही अधिक विस्तार होने से नीली श्याम या हरी दूर्वा को ही (दूर्वा-लता का संक्षिप्त) लता नाम दे दिया गया है। अन्यथा केवल लता शब्द से ही दूर्वा का बोध नहीं होता।

नाम—

सं०-दूर्वा, शतपर्वा, सहस्रवीर्य, अनन्त, भार्गवी, शतवल्ली आदि नीलदूर्वा के तथा शतवीर्या, गोलोमी आदि श्वेत दूर्वा के नाम हैं। हि०-हरीदूब, दूबड़ा, सफेद दूब। म०—नीली (काली) दूर्वा, पांढरी दूर्वा। गु०—नीलाध्रो, धोलोध्रो। बं०-नीलदूर्वा, सादा दूर्वा। अं०-कौच ग्रास (Coachgrass)। क्रीपिंग साइनोडन (Creeping Cynodon) ले०-साइनोडन डैक्टिलन, पेनिकम डेक्टिलन (Panicum Dactylon)।

दूब में व्हिटामिन 'ए' और 'सी' प्रचुर परिमाण में होता है। ज्ञानोदय शर्मा नाम के एक सज्जन ने अपने अनुभवपूर्ण लेख में लिखा है, कि दूर्वा में सर्व प्रकार के व्हिटामिन होते हैं। इसकी परीक्षा के लिये मेरी पत्नी जो गत कई वर्षों से अस्वस्थ थी, तथा मैं भी अस्वस्थ था, मैं एक बाग से अच्छी हरी २ दूब उखाड़ लाया और हम दोनों उसकी पत्तियां चुनकर, अच्छी तरह धोकर और काटकर टमाटर तथा प्याज के साथ मिला कर खाने लगे। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि दूब बेस्वाद लगने के बजाय स्वादिष्ट लग रही है, और उसके खाने में किसी प्रकार की दिक्कत नहीं है। फिर हम इसे दाल व तरकारियों में भी मिलाकर खाने लगे। हम जिस किसी चीज में दूब मिला देते वह हमें अधिक स्वादिष्ट लगती। फिर कुछ अच्छी दूर्वा हमने कपड़े में रखकर सुखा ली, तथा कूटकर बोतल में रख लिया। उसे हम चटनी की तरह बना कर खाने के आटे में डालकर रोटी बनाते इत्यादि अनेक प्रकार से इसका प्रयोग करते। हमारा तो ख्याल है कि कोई भी ऐसा खाद्य नहीं है, जिसमें यह न मिलाई जा सके और उसका स्वाद और गुण न बढ़ाया जा सके। इस तरह ३-४ सप्ताह तक दूब का व्यवहार करते रहने के बाद मेरी स्त्री के स्वास्थ्य में उन्नति होनी आरंभ हुई। उसके पेट का दर्द व कब्ज तो करीब २ शुरू में ही चला गया था। उसका सिरदर्द उसे एक सपना-सा लगने लगा, और धीरे-धीरे उसमें वह स्फूर्ति आई कि जो जीवन में पहले उसे कभी प्रतीत नहीं हुई थी। मुझे अपना स्वास्थ्य भी निश्चित रूप से उन्नत प्रतीत हुआ। अब मैं पहले की तरह शीघ्र नहीं थकता इत्यादि।

—आरोग्य (वर्ष १६ अंक ४) से साभार संक्षिप्त उद्धरण

प्रयोज्य अंग—पंचाङ्ग, विशेषत मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, कषाय, तिक्त, मधुर, विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोषहर, विशेषत कफपित्तशामक, दाहशामक[1] तृप्तिकारक, तृषा, वमन, रक्तदोष, श्रम, मूर्छा, अरुचि, विसर्प

---

[1] जिस औषधि के प्रभाव से गर्भाशय के दोष दूर होकर दीर्घायु निरोगी सन्तति होती है, तथा गर्भस्राव आदि विकार नहीं हो पाते उसे प्रजास्थापन कहते हैं।

[1] यह दिव्य लता महान दाहनाशक एवं शान्तिदायक होने से, वेदों में इसके स्तुति पर कई सूक्त हैं। उदाहरणार्थ यजुर्वेद का निम्न सूक्त कर्म काण्ड में प्रसिद्ध है।

"काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ति परुषःपरुषस्परि। एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥" (हे दूर्वे! आप कठिन से कठिन स्थान पर फैलती है तथा अपने प्रत्येक काण्ड से

नोट—मात्रा-स्वरस-आधे से १ या २ तो० तक। चूर्ण--१ से ३ मा० तक। मूल -३ से ६ मा० तक। क्वाथ--५ से १० तो० तक।

यह कफ प्रधान आमाशय के लिये हानिकारक है। हानि-निवारणार्थ—काली मिर्च, शहद या मिश्री देते हैं।

विशिष्ट योग—

१ दूर्वादि घृत (रक्तपित्त पर)—दूब, अनार का फूल, मजीठ, कमल का केसर, गूलर फल, खस, नागरमोथा, श्वेत चन्दन, पद्माख, अडूसे के फूल, केशर, गेरू व नागकेसर १-१ तोला, सबका महीन चूर्ण कर, जल मे पीस, उसमे बकरी का घी, बकरी का दूध, पेठे का (कूष्माण्ड) स्वरस, आयापान का स्वरस और चावल भिगोया हुआ जल प्रत्येक ६४-६४ तो० मिला, मदी आच पर पकावें। घृत सिद्ध हो जाने पर, छानकर शीशी मे भर लें। मात्रा—½ से १ तो० तक, समभाग मिश्री का चूर्ण मिलाकर दे।

यह घृत मुख से रक्त आता हो तो मिश्री चूर्ण मिला पिलावे, नाक से रक्त आता हो, तो केवल घृत का नस्य दे, कान या आख से रक्तस्राव हो, तो उनमे डालें। तथा शिश्न, योनि या गुदा स रक्त आता हो, तो उत्तर-वस्ति या अनुवासन-वस्ति मे देना चाहिए।

—सिद्धयोग संग्रह (स्व० श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य।

नोट—उक्त घृत के भैषज्य रत्नावली के पाठ मे—कल्क द्रव्य केवल १० ही दिये हैं—अनार फल, गूलर-फल, अडूसा-पुष्प, केशर और गेरू उसमें नहीं है। उनके स्थान मे एलवालु, खाड (मिश्री), लाल चन्दन, तथा शेष ७ द्रव्य उक्त पाठानुसार ही हैं। सेवन-विधि भी उक्तानुसार ही है। केवल इतना विशेष है, कि—रोमकूपों से यदि रक्तपित्त-प्रवृत्त हो तो इस घृत का अभ्यंग (मालिश) हितकर है।

(इस घृत को पिलाने के लिये अनुपान मे बकरी का गरम करके ठंडा किया हुआ दूध मिश्री मिला कर देना और भी प्रशस्त है।)

२ दूर्वादि घृत न० २ (ज्वर,-विसर्पादि पर)—दूब, बड़ की छाल, गूलर-छाल, जामुन-छाल, सालवृक्ष की छाल, सतवन (सतोना) की छाल और पीपल वृक्ष की छाल, सब समभाग मिलाकर १।। सेर ले। जौकुट कर १२ सेर पानी मे पकाकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें तथा छानकर उसमे उक्त द्रव्यों का कल्क १० तो० तथा घृत ६० तो० मिला घृत सिद्ध करलें। यह घृत उचित मात्रा मे यथोचित अनुपान के साथ देने से ज्वर, दाह, पाक, विस्फोटक एव शोफयुक्त विसर्प को नष्ट करता है।

—भा० मै० र०

३ दूर्वादि तैल—दूब, मुलहठी, मजीठ, दाख, श्वेत चन्दन, दोनो प्रकार की सारिवा और करज २-२ तो० लेकर कल्क करे। उसमे ईख का रस २ सेर, तिल-तैल २ सेर, और दूध ८ सेर मिला, तैल सिद्ध करले। इस तैल की मालिश से रक्तपित्त तथा वायु नष्ट होता, और सौन्दर्य की वृद्धि होती है। —व० से०

४ -दूर्वामलकी योग—दूब और आमला दोनो को ताजा लेकर पानी मे धोकर, कूट कर रस निकाल, इस मे थोडा शहद मिला शीशी मे भर ले। २ तो० की मात्रा मे दिन में ३-४ वार सेवन से सर्व प्रकार के वीर्य-विकार, दाह, भ्रम, मूत्र से जलन होना, खुजली, रक्त-विकार आदि विकार दूर होते हैं। यह बच्चे, बूढ़े, स्त्री सबको समान रूप से लाभ करता है। सूखे बच्चे इसके सेवन से सुन्दर, स्वस्थ एव हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं।

—परीक्षित प्रयोग (जन आयुर्वेद से)

५ दूर्वारिष्ट—उत्तम शुद्ध स्थान की ५ सेर हरी दूब मूल सहित, पानी से धोकर साफ कर, काट कर कुचल लें। फिर जामुन छाल, शीशम छाल, गूलर-छाल, आम की छाल ये सब ताजी छाले १-१ पाव (यदि सूखी हो, तो १०-१० तो०), खस, कुश, कास की जडे हरी हो तो १०-१० तो० (सूखी ५-५ तो०) इन सब को जौकुट कर, उक्त दूब के साथ १ मन २४ सेर पानी मे पकावें। १६ सेर शेष रहने पर, मलकर छान ले। इसमे ६½ सेर खाड या गुड डालकर, चिकने मिट्टी के पात्र मे भर उसमे श्वेत दूर्वा, नागरमोथा खस, छोटी इलायची के बीज, श्वेत चन्दन बुरादा, देवदारु, श्वेत जीरा, धनिया, नीलोफर, गुलाब फूल ५-५ तो० चूर्ण कर मिलादे। ११ दिन तक मुख सधान कर, छानकर बोतलो मे भर ले।

यह असाध्य संग्रहणी को दूर करता है। यह प्रयोग भैषज्य-मणिमाला का है। प्रमेहादि पर भी उत्तम लाभ कारी है। —मिश्र बलवन्त शर्मा वैद्यराज

रक्तपित्तादिनाशक दूर्वासव का अत्युत्तम प्रयोग तथा अन्य आसवारिष्ट के प्रयोग हमारे 'वृहदासवारिष्ट संग्रह' में देखिये।

देवकाडर—दे०—जलधनिया या जल-पिपली मे। देवकुसुम—दे०—लवङ्ग। देवडंगरी—दे०—बन्दाल।

देवदार (Cedrus Deodara)

कर्पूरादिवर्ग एवं अपने स्वकुल देवदारु कुल[1] (Coniferae) के इसके, बहुवर्षायु, सबसे अधिक ऊंचे (१६० से २५०' फुट ऊंचे) सुन्दर समूहबद्ध होकर लगे हुए, काण्ड—सीधे, मोटे, प्रायः ३६ फुट व्यास के जड में मोटे तथा क्रमशः पतले पुच्छाकार, शाखाएं—चारो ओर समान रूप से फैली हुई, सघन, नीचे की ओर झुकी हुई, ऊपर की ओर क्रमशः छोटी होती जाती वृक्ष दूर से कोणाकृति मालूम देती है। छाल—मोटी, दरारों से युक्त या फटी हुई सी दिखाई देने वाली, पत्र—लम्बी टहनियों पर, एक ही स्थान से बहुत से पेचदार, त्रिकोणयुक्त, सूच्याकार, ¾ इंच से 1½ इंच तक लम्बे, एवं एक ही टहनी पर कई स्थानों से निकले हुए, तथा छोटी टहनियों पर गुच्छो मे निकले हुए, स्वाद मे कुछ अम्ल कसैले, पुष्प—गुच्छो मे, एरण्ड पुष्प जैसे, किन्तु हरिताभ पीत-वर्ण के; फल—शाखाओं पर एकाकी, ४-५ इंच लम्बे, ३-४ इंच मोटे, रामफल या शरीफा के फल से मिलते जुलते, पकने पर काले पड जाने वाले, बीज—फल के प्रत्येक कोष्ठ मे एक बीज, जिस पर एक ओर से पतला पंख सा निकला हुआ, त्रिकोणाकार या अर्धचन्द्राकार, ¾ इंच तक लम्बा होता है। फूल व फल मई जून से लेकर अक्टूबर मास तक आते है, तथा एक वर्ष बाद फल पकते हैं। इसके वृक्ष पश्चिमोत्तर हिमाचल प्रदेशो मे ७ से ६ हजार फीट की ऊंचाई पर होते है। अफगानिस्तान व उत्तर बलूचिस्तान मे भी यह होता है।

इसकी लकडी (काष्ठ-सार) भारी, सुगन्धयुक्त, पीताभ बादामी रंग का, स्निग्ध चिकनी होती है। इसे स्निग्ध देवदार कहते हैं। इसके बुरादे को धूप मे डालते है तथा हवन-सामग्री मे भी मिलाते हैं यह धूप नाम से बाजारो मे बिकता है। (धूप सरल इससे भिन्न है, चीड का प्रकरण देखें) इसकी लकडी से तख्ते, किवाड तथा अन्य उपयोगी वस्तुएं बनती है। जिस मकान मे इसकी लकडी लगती है तथा अन्य उपकरण इसके बने हुए रहते है, वहा एक प्रकार की भीनी, मन मोहक सुगन्ध प्रसारित होती रहती है।

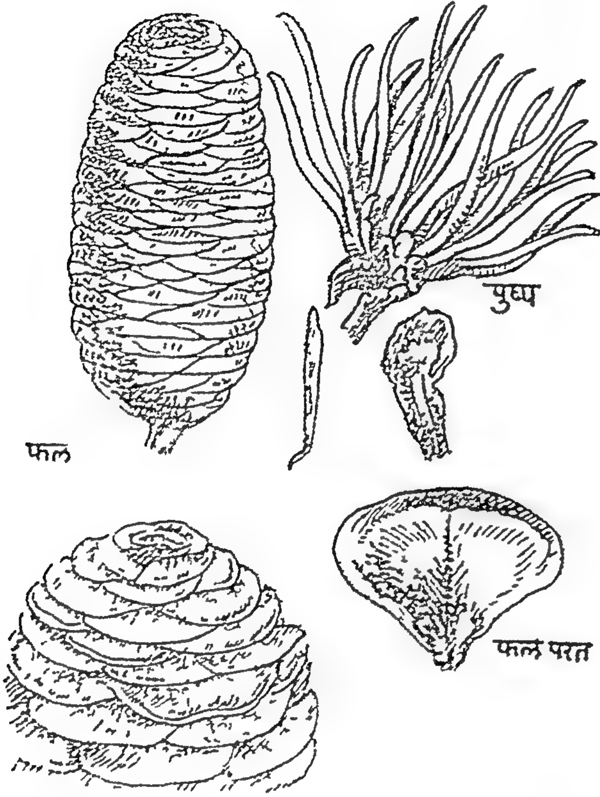
पश्चिम और उत्तर बंगाल मे होने वाले, तथा प्रायः चारो ओर भारत के शहरो मे, बाग या रास्ते के किनारे लगाए हुए वृक्षो को, (जिसकी पत्तियां उत्सव के अवसर पर तोरण द्वार पर लगाई जाती है तथा जिसका वर्णन हम अशोक-नकली के प्रकरण मे (भाग १ मे) कर आये है,) काष्ठ देवदारु कहा जाता है। तथा कई स्थानो पर उक्त स्निग्ध देवदारु के स्थान मे इसी का प्रयोग किया जाता है। किन्तु इसमे सुगन्ध और उतने उत्कृष्ट गुणधर्म नही पाये जाते। वास्तव मे यह देवदारु कुल का नही है।

उक्त वर्णित स्निग्ध देवदार जैसे ही उसी के कुल के प्रायः एक ही स्थान मे पैदा होने वाले C Libani और C Atalantia (पहाडी केली) नाम के देवदार के वृक्ष होते है। इनमे गोंद, कोलेस्ट्रीन (Cholesterin) और प्रभावशाली तैल होता है। इनके गुणधर्म प्रस्तुत प्रसंग के देवदार जैसे ही है। ज्वर, मेदोरोग, जलोदर, आमवात, अर्श, वृक्काश्मरी एवं सर्व विष पर विशेष उपयोगी है। बाजारो मे प्रायः प्रस्तुत देवदार काष्ठ के साथ मे इन दोनो के काष्ठ मिश्रित रहते है।

एक कोका कुल (Erythroxylaceae) का देवदार होता है, जिसे कनाडी मे गवगिरी, दक्षिण मे—नट का देवदार; अंग्रेजी मे बास्टर्ड सेडल, देवदार (Bastard

[1] इस कुल के वृक्ष सपुष्प, द्विबीज वर्ग, संयुक्त कोष, पत्र-सरस, सरल, सकडे, पतले, नोकदार होते हैं।

देवदारू
CEDRUS LIBANI BARREL.



Sandal, Deodar) तथा लेटिन मे एरिथ्रोझिलॉन मोनो गायनम (Erythrozylon Monogynum) कहते है।

इसके वृक्ष दक्षिण के पहाडी प्रान्तो मे, कर्नाटक, मद्रास तथा सीलोन मे विशेष रूप से पाये जाते हैं।

इसकी लकडी और छाल का शीतनिर्यास जठराग्नि को बढाने वाला, स्वेदल, व मूत्रल है। जीर्ण ज्वर व अजीर्ण रोगी मे लाभकारी है। अविराम ज्वर मे लाभकारी है। जलोदर मे अन्य औषधियो के साथ यह दिया जाता है। इसके पत्र ज्वर एवं तृष्णाशामक है। इसके पत्तो मे उपक्षार अल्प मात्रा मे पाया जाता है।

इसमे एक प्रभावशाली तैल और कोकीन होता है। यह बल्य है।

चरक के स्तन्य शोधन, अनुवासनोपग, कटुकस्कन्ध तथा सुश्रुत के वातसंशमन गणों में देवदारु की गणना की गई है। तथा अनेक रोगो के प्रयोगो मे यह लिया गया है।

नाम —

सं०-देवदारु (देवताओं के प्रदेश हिमालय मे होने वाली लकडी), दारु, भद्रदारु, सुरभूरुह इ० हि०-देवदारु केलोन, केलु, दियार इ०। म, गु बं—देवदार, देवदार अ०-देवदार, हिमालयन सीडार (Daedar Himalyan Deodar)। ले०-सेड्रस देवदार, से लिबानी (C Libani) [पाईनस देवदार (Pinus Deodara)।

रासायनिक सङ्गठन—

इसमे एक गाढे रग का तेल और अम्ल राल (Alcoresin) पाई जाती है। इसका यह काले रंग का कुछ गाढा सा तैल, जो अस्वच्छ टर्पेन्टाईन सदृश होता है, इसकी लकड़ी को जलाकर विनाशीय बाष्पीकरण (Destructive distillation) द्वारा निकाला जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—काण्डसार, तैल, पत्र व फल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, कटु विपाक, कफ-वात शामक, दीपन, पाचन, लेखन, अनुलोमन, रक्त-प्रसादन, कफनिस्सारक, मूत्रल, हृदयोत्तेजक, स्थौल्यापकर्षक, कृमिघ्न, शोथघ्न, श्लेष्मपूतिहर, हिक्कानिग्रहण, प्रमेहघ्न, मूत्र गत अनेक दोषनाशक, गर्भाशय शोधन, वेदना स्थापन, स्वेदजनन, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, व्रणशोधन-रोपण, तथा आध्मान, विबन्ध, जीर्णसंधिवात, आमवात, गृध्रसी, शिर शूल, हृदौर्बल्य, रक्तविकार, गलगड, श्लीपद, जलोदर, जीर्णकास-श्वास, पीनस, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, पूयमेह, स्तन्यदोष, अश्मरी, सूतिका रोग, मेदरोग, जीर्ण ज्वर आदि मे प्रयुक्त होता है।

सन्धिवात आदि शोथ के वेदनायुक्त रोगो मे एव विविध चर्म रोगो मे, इसका लेप तथा तैल लगाते हैं।

शोथ या कफजन्य ज्वर मे इसके प्रयोग मे प्रस्वेद आकर तथा मूत्र का प्रमाण बढ कर, शोथ कम हो जाता और कफ की दुर्गन्धि दूर होकर कफ भी कम हो जाता तथा ज्वर शात हो जाता है।

श्लीपद मे—इसे सरसो के तैल के साथ या गोमूत्र के साथ पिलाते तथा चित्रक के साथ इसे गोमूत्र मे पीस कर लेप करते है। वातज हृद्रोग मे—इसे सोंठ के साथ पीस कर पिलाते हैं। हृदय की अति धडकन एवं शूल दूर होता है।

अण्डवृद्धि मे—इसके क्वाथ में गोमूत्र मिला पिलाते हैं।

उरुस्तम्भ मे—इसे पानी के साथ पीसकर गरम कर लेप करते हैं।

वक्ष पीडा (छाती के दर्द) मे—इसका चूर्ण २ मा. और गुड ५ माशे दोनो को एकत्र घोटकर (१ मात्रा है) गोली बना सेवन कराते हैं।

प्रसूता स्त्री के विकारो पर—देवदार्वादि क्वाथ उत्तम है। (विशिष्ट योगो मे देखें)

१. सिर की पीडा पर—इसके साथ तगर, वेल, खस और सोठ को एकत्र कांजी मे पीसकर तथा तेल मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। (वृ. मा)

अथवा—केवल इसी को पानी मे घिस कर लेप करने से भी पीडा शात होती है।

(आगे विशिष्ट योगो मे देवदार्वादि घृत मे देखें)

२. जीर्ण-शोथ रोग पर—देवदार, पुनर्नवा और सोठ से सिद्ध किया हुआ दूध कुछ दिन सेवन करावे, अथवा इसी योग मे थोडी हरड मिला, कल्क बना गरम पानी मे सेवन करावें। सर्व प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं। (यो० र०)

लेपार्थ—इसे हल्दी और गूगल के साथ पानी मे पीस गरम कर लेप करें।

३ हिक्का और श्वास पर—इसका क्वाथ पिलाते है। देवदार, खरैटी और बालछड समभाग पानी के साथ घोट-पीसकर बत्तिया बनालें। इनको घृत मे भिगोकर धूम्रपान करने से भयङ्कर श्वास भी नष्ट होता है। (भा० प्र०)

४. प्लीहा एव यकृत विकार पर—देवदार, सेंधा-नमक, व आमलासार गंधक समभाग एकत्र घोटकर, सरावसपुट कर पुट मे फूक दे। स्वाग शीत होने पर, निकाल कर खरलकर, २-३ माशे तक की मात्रा मे यथोचित अनुपान के साथ सेवन करावें। (भा भै र)

५ आध्मान तथा उदावर्त्त पर—देवदार, नागर-मोथा, मूर्वा, हल्दी व मुलैठी समभाग चूर्ण कर, ६ मा तक की मात्रा मे वर्षा जल (या वाष्प जल) के साथ सेवन करावे। (भा. भै. र)

६ मूत्राघात पर—उक्त चूर्ण प्रयोग मे हल्दी के स्थान पर हरड मिला (मात्रा—३-४ मा) मद्य, दूध या पानी से सेवन करावे। (व भ)

७ जलोदर—देवदार, सहेजना की छाल (अथवा—तालमखाना की जड की छाल) अपामार्ग ६-६ मा एकत्र गोमूत्र मे पीसकर पिलाने से मूत्र द्वारा दूषित जल निकलकर रोगी को स्फूर्ति प्रतीत होती है। (व च)

८. कफज गलगण्ड रोग में—देवदार और इन्द्रायण की जड को (गरम पानी मे) पीसकर लेप करना तथा, वमन विरेचन और शिरोविरेचन कराना हितकारी है। (व० से.)

९ कफज कास श्वास पर—देवदार, कचूर, रास्ना, धमासा और काकडासिंगी समभाग चूर्ण कर, तेल व शहद मे मिलाकर चाटने से कफज खासी नष्ट हो जाती है। (व० से०)

अथवा—देवदार, खरैटी, रास्ना, त्रिकटु त्रिफला, पद्माक और वायविडङ्ग १-१ भाग तथा खाड या शक्कर सबके बराबर लेकर चूर्ण करे। इसे (३-४ मा की मात्रा मे) शहद से चाटने से सर्व प्रकार की खासी दूर होती है। (व० से०)

अथवा—देवदार, वच, भारङ्गी, सोठ, पोखरमूल और कायफल का क्वाथ सेवन से श्वास, कास शीघ्र नष्ट हो जाते है। (व० से०)

१० उदर व्याधि पर—देवदार, सहजने की छाल और मसूर समभाग एकत्र मिला गोमूत्र मे पीसकर पिलाने से शोथोदर एव उदर के कृमि आदि नष्ट होते हैं। (च० द०)

यदि उदर व्याधि के कारण अजीर्ण हो तो देव-दार, वच, मोथा, सोठ, अतीस और हरड का क्वाथ सेवन करावें। सर्व प्रकार के अजीर्ण दूर होते हैं। (व० से०)

उदर-व्याधि मे – देवदार, ढाक की छाल, आक की छाल, गजपीपल, सहेजना, छाल, और असगन्ध को गोमूत्र मे पीस पेट पर लेप करना हितकर है। (वा० भा०)

११ ज्वर पर—देवदार, कचूर, रासना और सोंठ १-१ भाग तथा गिलोय दो-भाग लेकर यथाविधि क्वाथ सिद्ध कर उसमे गूगल (शुद्ध २ मा तक) मिलाकर सेवन करने से सन्निगत सतत ज्वर शमन होता है। (भा० प्र०)

चातुर्थिक ज्वर हो तो—देवदार, हरड, आमला, शालपर्णी—(सरिवन), अडूसा और सोंठ के क्वाथ मे शहद व मिश्री मिलाकर सेवन से लाभ होता है। (वैद्य-जीवन)

१२ पाषाणगर्दभ (हनुसंधि-ठोडी की संधि—मे-वात कफ जन्य, अल्पपीडा युक्त होने वाली स्थिर कडी सूजन Adenoma) पर—प्रथम बफारा देकर देवदार, मन-सिल और कूठ (एकत्रकर जल मे पीस गरम कर) का लेप करे। (च० से०)

१३ नेत्र विकार (पटलगत विकार रतौंधी) पर—इसके चूर्ण को २१ बार बकरी के मूत्र मे घोटकर (२१ भावनाये देकर) खूब महीन-सुरमा के समान-घोटकर सुरक्षित रखे। इसे सलाई से आंजते रहने से अवश्य लाभ होता है। (भा भैं र.)

१४ कर्ण-शूल पर—देवदार, वच, सोंठ, सोया, कूठ व सेंधानमक समभाग (५ तो कल्क कर ½ सेर तेल व २ सेर बकरे का मूत्र मिला पकावे) तेल सिद्ध होने पर कान मे डाले। (च० स०)

तैल—देवदार का तैल—चीड के तैल-तारपीन तैल-जैसा ही किंतु कुछ न्यून गुणधर्म वाला है। तथापि यह तारपीन का उत्तम प्रतिनिधि है। यह वेदनानाशक, व्रण शोधन रोपण है। इसका विशेष प्रयोग कुष्ठ, कफ, कास तथा त्वग्रोगो मे किया जाता है। कुष्ठ मे बहुत लाभदायक माना जाता है, इसे कुछ अधिक मात्रा मे देना पडता है। जीर्ण त्वचा के विकारो मे इसका आभ्यन्तर एव बाह्य प्रयोग किया जाता है। जीर्ण एव दुर्गन्धयुक्त व्रण ठीक हो जाते हैं। कफज कास मे इसे त्रिकटु और यवक्षार के साथ दिया जाता है। यह उत्तम कृमिघ्न है। घोडे आदि पशुओ की खुजली पर इसे लगाते है। यह तेल कान मे डालने से कर्णशूल शीघ्र ही नष्ट होता है।

१५. कर्ण-शूल आदि पर—तैल निष्कासन विधि-[illegible] इस प्रकार है—

देवदार की लकडी के ८-८ अंगुल के लम्बे टुकडे कर सबको एकत्र बांध कर, या अलग-अलग रेशमी कपडे मे लपेट कर, तिल तैल मे अच्छी तरह तरकर उनमे एक सिरे से आग लगा दें। दूसरे सिरे को चिमटे आदि से पकडकर उल्टा लटकाये रखें। जो तैल टपके उसे कांच या चीनी आदि के पात्र मे सञ्चित कर ले। उस तैल को थोडा गरम कर कान मे डालने से कर्ण पीडा दूर हो जाती है। उपरोक्त विकारो मे भी यही काम मे लावे। यह 'दीपिका तैल' विधि चक्रदत्त आदि ग्रन्थों की है। इसी विधि से वृहत पञ्चमूलों का तैल निकाला जाता है।

१६ पारे के विकारो पर—तैल की मात्रा १० से ४० बूंद तक दूध १० या २० तोले में मिला पिलाने से पारद के उपद्रव, रक्त विकृति एव अन्य चर्म रोगो मे लाभ होता है।

नोट—मात्रा—चूर्ण १ से [illegible] माशा तक। तैल १० से ४० बूंद।

पत्र—देवदार के पत्र—शोथ और ग्रंथि नाशक हैं। शोथ तथा क्षय जन्य गण्ड ग्रंथियो पर पत्तो को पानी के साथ पीसकर थोडा गरम कर लेप करते हैं।

फल—उष्ण एव वातशामक है। सिर और गले के समस्त विकारो के शमनार्थ—फलो का कल्क कर दो गुना तिल-तैल तथा ४ गुना घोडे की लीद के रस मे मिला मन्द आग पर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखलें। इस तेल की केवल नस्य लेने से ऊर्ध्वजत्रुगत विकार दूर होते है। (राजमार्त्तण्ड)

विशिष्ट योग—

(१) देव दार्वादिक्वाथ—देवदार, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, हरड, गजपीपल, धमासा, गोखरू, जवासा, कटेली, अतीस, गिलोय, काकडासिंगी व काला जीरा समभाग जौकुटकर रखले। प्रतिदिन २ तोले चूर्ण ३२ तोला पानी मे अष्ट-माश क्वाथ कर, छानकर उसमे २ रत्ती हीग और १॥

मात्रा सेंधा नमक मिला सेवन कराने से प्रसूता स्त्री का शूल, काम ज्वर, श्वास मूर्च्छा, शरीर कम्प, सिर पीडा, प्रलाप, तृष्णा, दाह, तंद्रा, अतिसार एवं वमनयुक्त प्रसूत रोग (चाहे किसी भी दोषजन्य हो) नष्ट हो जाते हैं। (भा० प्र०)

(२) देवदार्वादिघृत, हल्दी, नागरमोथा, कचूर, पोखरमूल, इन्द्रजौ, पिप्पली, कूठ, लोध, चव्य और जवासा समभाग (किंतु देवदार का प्रमाण कुछ अधिक लेना ठीक होता है) एकत्र जौकुट कर १ सेर लेकर ८ सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर छान लें। तथा कल्कार्थ गूगल, सोंठ, सेंधानमक, त्रिफला समभाग १० तोला मे पीसकर उक्त क्वाथ मे मिलावें और इसमे १ सेर मक्खन, १ सेर दूध तथा २ सेर दही मिला पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर ठंडा कर उसमे (१ पाव) खाड मिला दें।

इसकी नस्य लेने से सिर दर्द, सिर के अन्य विकार, भ्रू, ललाट, भुज एवं अंस प्रदेश की पीडा, अर्धविभेदक तथा कर्ण रोग नष्ट होते है। (हा० स०)

(३) देवदार्वासव—कास, वातादिनाशक—देवदारु का बुरादा ५ सेर लेकर १ मन १२ सेर जल मे पकावे। १३ सेर क्वाथ जल शेष रहने पर छानकर मुख सन्धान कर पात्र में भर कर ठंडा हो जाने पर उसमे शहद १० सेर शुद्ध गुगल ८ तो, धाय पुष्पो का चूर्ण १३ छटाक तथा रास्ना, काकडासिंगी, धमासा, त्रिफला, त्रिकटु और वायविडङ्ग प्रत्येक का ४-४ तो. चूर्ण मिला, एक मास तक अच्छी तरह सन्धान कर रक्खें। फिर छान कर बोतलो मे भर दे। मात्रा—१ से २ तो तक, समभाग गरम जल मिला सेवन से सर्व प्रकार की खासी, श्वास, सधिगतवात, सतत ज्वर आदि मे लाभ होता है।

देवदार्वासव के अन्य प्रयोग हमारे वृ० आसवारिष्ट सग्रह मे देखे।

देवडाली—दे०—बदाल। देवधान—दे०—चावल मे। देवमंजरी—दे०—पोदीना मे। देशीबादाम—दे०—बादाम मे।

दोड़क (Senchus Gleraceus)

भृंगराजकुल (Compositae) के इसके वर्षायु, क्षुद्र कंटकयुक्त छोटे-छोटे क्षुप खेतो तथा उपजाऊ भूमि मे बहुत पैदा होते है। इसकी पोली मोटी डंडियो को तोडने से दूध जैसा रस निकलता है, जो सूखने पर भूरे रग का हो जाता है। इस पौधे पर पीले रग के बहुत फूल छोटे-छोटे आते हैं।

इसके क्षुप प्राय. सारे भारतवर्ष मे पाये जाते हैं।

नाम—

हिन्दी (पजाबी) दोड़क, दितालिया। म०—म्हातारा। गु०—दुधाली सोनकी। अं०—सोथिसल (Sowthistle),

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग तथा शुष्क दुग्ध।

गुणधर्म व प्रयोग—

उष्णवीर्य, बल्य, ज्वरनाशक तथा तीव्ररेचन या भेदक है। इसका शुष्क दुग्ध १ से २ रत्ती की मात्रा मे देने से तीव्र पानी जैसा रेचन होता है। यह यकृत तथा आन्त्र मे अन्तिम भाग (duodenum) पर इन्द्रायण जैसा बहुत प्रभावशाली कार्य करता है। जलोदर एव शरीर मे सचित दूषित जल को निकालने के लिये इसका महत्वपूर्ण उपयोग होता है। किन्तु यह सनाय की तरह ऐंठन और एलुए की तरह दाह या जलन पैदा करता है। इस दोष के तथा आन्त्र के श्लैष्मिक त्वचा पर होने वाले इसके तीव्र प्रभाव के निवारणार्थ इसकी योजना गजगवीन (झावुक शर्करा या यवास शर्करा), सौंफ और मेगनेसिया कार्बोनेट या अन्य सौम्य उत्तेजक एव सुगधित द्रव्यो के साथ करनी चाहिये।

इसकी जड और पत्तो का फाट ज्वरनाशक तथा बल्य है। पचाग का क्वाथ या फाट उदररोग, यकृत-विकार एव पाचन-नलिका के जीर्ण विकारो मे सुगधित द्रव्यो के साथ दिया जाता है। इसकी योजना से प्रारम्भ मे रेचन तो होता है, किंतु अन्त मे लाभ ही होता है।

दोडी—दे०—जीवन्ती न० १। दोपातीलया—दे०—विधारा मे। दौना—दे०—तुलसी मे दवना।
द्राक्षा—दे०—अगूर मे। द्रोणपुष्पी—दे०—गूमा।

धतूरा(काला व श्वेत) (Datura Stramonium, & D Alba)

गुडूच्यादिवर्ग एव कण्टकारी कुल (Solanaceae) के इसके वर्षायु क्षुप सर्वसाधारण श्वेत धतूरा के क्षुप जैसे ही लगभग २-४ फुट ऊचे, काण्ड-हरित, जामुनी रग के या काले, पत्र—लगभग ७ इच लम्बे, अण्डाकार ५ इच चौडे, हल्के हरितवर्ण के, चिकने (कोमल पत्र कुछ रोमश), लहरदार या गहरे विच्छेदो से युक्त किनारे वाले, नोकदार उग्रगन्धी, स्वाद मे कडुवे, अरुचिकारक पुष्प—लगभग ३-६ इच लम्बे घटाकार बेगनी आभायुक्त श्वेतभूरे, पाच विभागयुक्त, फल—अण्डाकार, लम्बे, कडे, चार खण्डवाले, ऊर्ध्वमुख, छोटे कटको से युक्त, एव बहुबीजयुक्त, बीज—कृष्णाभ भूरे रग के, वृक्काकार लगभग ३ मि मि लम्बे, २ मि मि चौडे, १ मि मि. मोटे, खुरदरे, अल्पगन्धवाले, स्वाद मे कडुवे होते हैं। प्राय सर्वजाति के धतूरे के पौधे वसन्तऋतु मे अकुरित, चैत्र-वैसाख मे फूलते फलते तथा ज्येष्ठ मे इनके फल पकने पर तडकते या फूट जाते है। अन्दर के बीज नीचे बिखर जाते हैं।

इसके क्षुप हिमालय के मन्द कटिबन्ध मे काश्मीर से लेकर सिक्किम तक ९ हजार फुट की ऊचाई तक, तथा मध्य भारत के पहाडी प्रदेशो मे, दक्षिण मे, एव शिमला, अफगानिस्तान, ईरान आदि अन्य प्रदेशो मे भी पाये जाते हैं।

सुवर्ण वाचक सभी शब्द सस्कृत मे धतूरे के लिये प्रयुक्त होते है। उनमे से 'कनक' तो चरक मे कई स्थानो पर आया है, किन्तु धुत्तूर, धत्तूर या धुस्तूर शब्द कही नही मिलता। तथा चरक के टीकाकारो ने 'कनक' शब्द से, उन स्थानो पर धतूरा नहीं लिया है (स्वर्ण, गूगल, केशर, कचूर आदि लिया है)। तथा विष के प्रकरण (च चि अ १३) मे भी कई स्थावर विषो के नाम, विष प्रभाव एव चिकित्सा दी गई है, उनमें धतूरे (जो एक प्रसिद्ध उपविष है) का या कनक का उल्लेख नही है। मालूम होता है कि अफीम, गाजा आदि के समान यह भी एक सर्वप्रसिद्ध उपविष होने से इसका स्पष्ट उल्लेख चरक ने नही किया है - अस्तु, प्राचीन आचार्यों में केवल 'सुश्रुत' ने ही सर्वप्रथम पागल कुत्ते के विष (अलर्क-विष) पर इसके उपयोग का स्पष्ट उल्लेख किया है।[१] हारीत सहिता के अर्श प्रकरण मे इसका वर्ति प्रयोग है "गृहधूम च सिद्धार्थं धुस्तूरकदलानिच–

(हा. चि अ १२)

निघण्टु ग्रथो मे से राजनिघण्टुकार ने इसके श्वेत, नील, कृष्ण, रक्त व पीत ऐसे ५ भेद, तथा उनमे कृष्ण पुष्प वाला अधिक गुणकारी माना है।[२] तथा उन्होने 'कनक' शब्द सामान्य एव कृष्ण दोनो धतूरो के लिये दिया है। भावप्रकाश तथा धन्वन्तरि-निघण्टु मे इसके ४ या ५ भेदो का उल्लेख नही है।

यद्यपि श्वास (तमक श्वास) पर इसका उपयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है, तथापि आश्चर्य है कि चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन सहिताकारो ने इस विषय का कोई स्पष्ट उल्लेख नही किया है।

पाश्चात्य चिकित्सा मे जिसका वर्णन ऊपर दिया है, उस काले धतूरे (राजधतूरे D Stramonium) का विशेष उपयोग पाया जाता है। तथा आधुनिक विद्वानो ने इसके कई भेदो का सोपत्तिक वर्णन किया है। किन्तु विस्तारभय से तथा उनके गुणो मे विशेष अन्तर न होने से, हम उनमे से प्रमुख भेदो का सक्षिप्त वर्णन एक साथ ही प्रस्तुत प्रसग मे दे रहे है।

(अ) उक्त काले धतूरे का ही उपभेद एक डहूरा टेदुला (D Tatula) है। इसके क्षुप उपरोक्त के समान ही होते हैं। कोई इसे ही राजधतूरा, पिशाचफल आदि कहते हैं। भेद इतना ही है कि इसके काण्ड, पर्णवृन्त

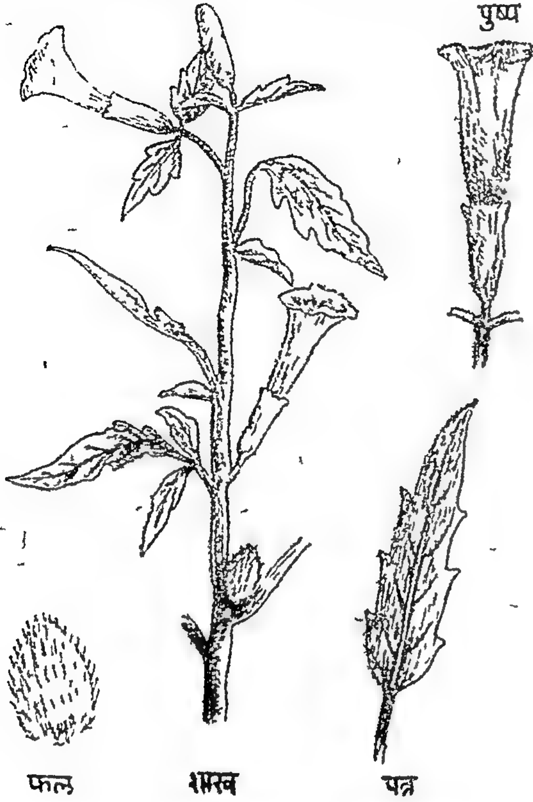
---

१ श्वेतां पुनर्नवां चास्य दद्याद्धत्तुरका युताम्"। तथा 'मूलस्यशरपुखाया कर्षधतूरकाधिकम्" इत्यादि (उन्मत्तक शब्द भी यहा इसी के लिये आगे आया है)।

(सु. क अ ७, श्लोक २२, २३, २४)

२ "सितनील कृष्ण लोहित पीत प्रसवाश्च सन्ति धत्तूरा। सामान्यगुणोपेतास्तेपु गुणाढ्यस्तु कृष्ण कुसुमः स्यात्॥"

राजधतूर (कालाधतूरा)
DATURA STRAMONIUM LINN



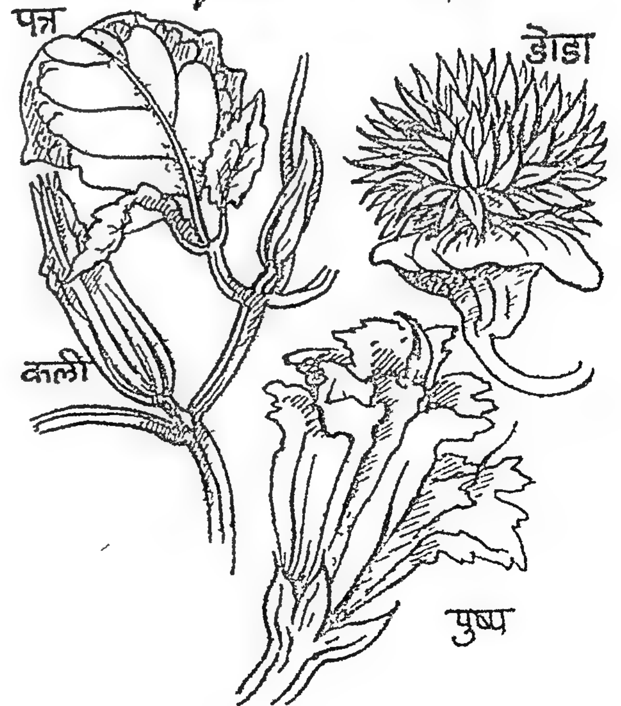
तथा पत्तो की प्रधान शिराए कुछ लालिमा लिये हुए होती हे। पत्र कुछ विशेष गहरे हरितवर्ण के, तथा पुष्प श्वेत, पुष्पदल-पत्र ताजी अवस्था मे बेंगनी आभायुक्त नीले रग के, जो शुष्क होने पर कुछ भूरे हो जाते है। इसका फल पकने पर बराबर ४ भागो मे स्फुटित होता है। तथा उक्त काले धतूरे का फल आडा टेढा फटता है।

रासायनिक संघटन--

उक्त दोनो प्रकार के काले धतूरे के पत्तो एव पुष्प युक्त अग्रभाग मे क्षाराभ (डेटुरीन daturine नामक विषैले अल्कलॉयड alkaloid) की मात्रा-० ४७ से ० ६५% होती है, जिसमे मुख्यतया हायोसायमीन (Hyoscyamine) तथा अल्पप्रमाण मे अट्रोपीन (Atropine) और हायोसीन (Hyoscine) पाये जाते है। इसके अतिरिक्त इसमे क्लोरोजेनिक नामक क्षार (Chlorogenic acid) तथा गहरे रग का एक उडनशील तैल ० ०४५% पाया जाता हे। इनके बीजो मे उक्त क्षाराभ की मात्रा लगभग ०.२% तक रहती है, जिसमे उक्त हायोसायमीन अधिक एव अट्रोपीन और हायोसीन अल्प मात्रा मे रहते है। बीजो मे स्थिर तेल भी १५-३०% तक होता है।

(आ) काले या श्वेत धतूरे का ही एक भेद डटुरा फेस्टुग्रोसा (D Fastuosa) है। इसके क्षुप १-५ फुट ऊचे, काण्ड का अग्रभाग कुछ बेगनी रग का, पत्र-३-८ इच लम्बे, लट्वाकार, नोकीले, २-४ इच चौडे, किनारे लहरदार या कुछ दन्तुर, तथा मध्य शिरा के दोनो ओर के भाग असमान, पुष्प--६-७ इच लम्बे, दोहरे या तिहरे जिनका आभ्यन्तर दल का बाह्य भाग नीलाभ रक्तवर्ण का या कुछ-कुछ बैंगनी रग का एवं भीतरी भाग श्वेत, फल--गोल १¼ इच व्यास के, प्राय अधोमुख, सूक्ष्म काटो या कुठित प्रवर्धनो से आच्छादित, तथा परिपक्व होने पर स्फुटित आडाटेढा, अनियमित,

कालाधतूरा
Datura fastuosa Linn.



बीज–कुछ पीताभ भूरे रग के, चिपटे, अण्डाकार, ४-६ मि मि लम्बे होते है। ये बीज उक्त काले या राजधतूर के बीजो जैसे काले नही होते। केवल काण्ड एव पुष्पादि के रग के कारण ही इसे काला धतूरा कहते है। इसके क्षुप प्राय सब प्रान्तो मे विशेषत कूडे कचरे या परती भूमि मे अधिक पाये जाते है। वास्तव मे यह श्वेत धतूरे डदुरा आल्बा (D Alba) का ही एक उपभेद है। श्वेत



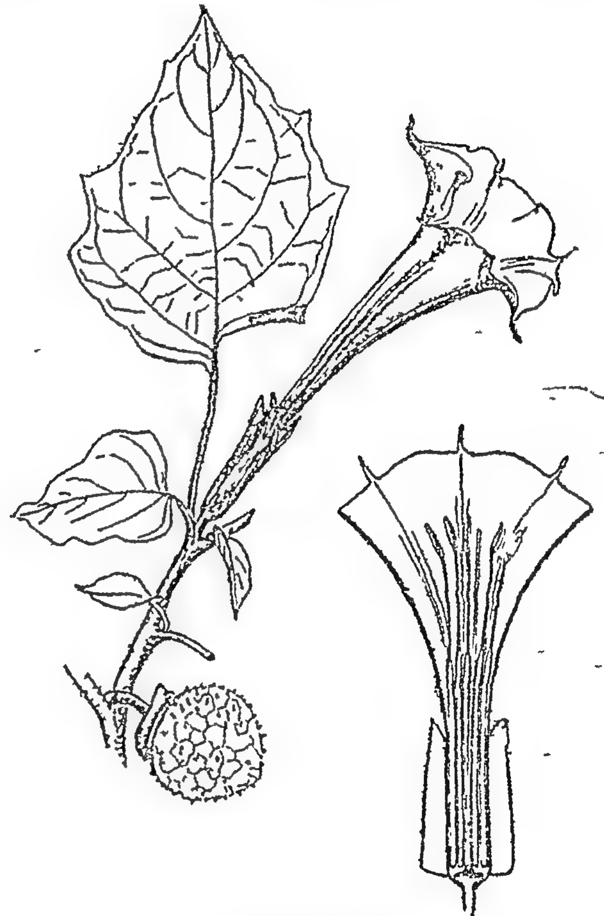
धतूरे से और इसमे इतना ही अन्तर है कि श्वेत धतूरे के पुष्प अन्दर से तथा बाहर से एकदम श्वेत तथा पत्र कुछ गुलगुले, नरम होते है।

रासायनिक संगठन–

इन काले नामधारी धतूरे और श्वेत धतूरे के बीजो मे क्षारो की मात्रा ०.२२% रहती है, जिनमे लगभग दो भाग हायोसायमिन और एक भाग हायोसीन, एव अल्पमात्रा मे एट्रोपीन होता है। इन दोनो के पत्रो मे ०.१% क्षार होता है, जिनमे अधिकतर मात्रा केवल हायोसीन की रहती है।

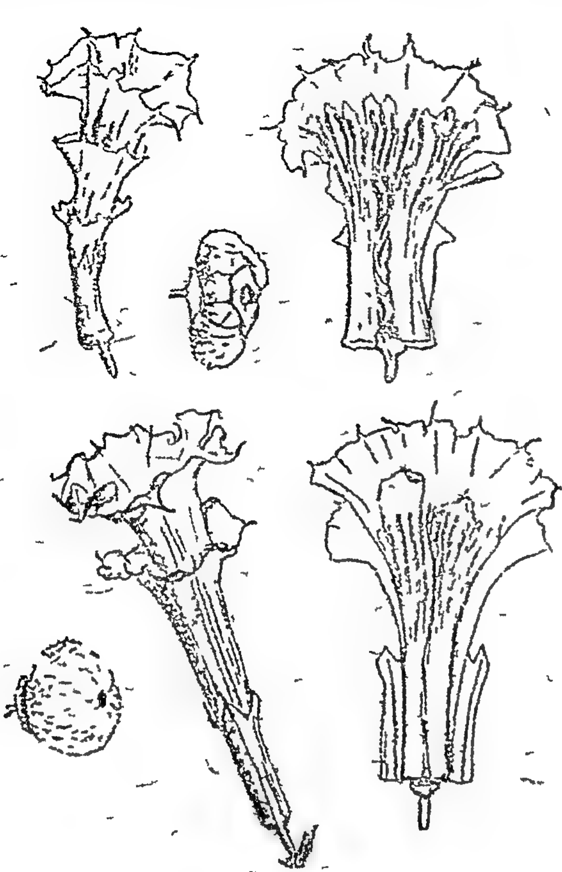
श्वेत धतूरा सर्वत्र अत्यधिक प्रमाण मे पाया जाता है। इसके बीज भूरे या खाकी रग के होते है।

(इ) इनके अतिरिक्त एक धूसर, हरा धतूरा और होता है। जिसे लेटिन मे डदुरा मेटल (D Metal)

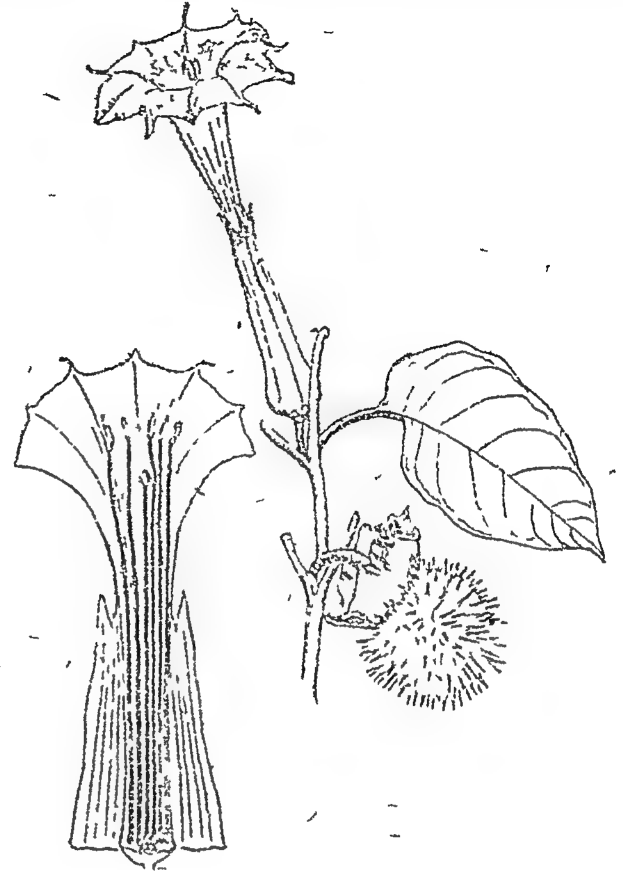


धतूरा (*DATURA METAL*)

कहा जाता है। यह भी काले धतूरे के अन्तर्गत है। इसका क्षुप उक्त (आ) के जैसा ही ३-५ फुट ऊचा एव चिकना, काण्ड–नीलाभ हरितवर्ण का, मखमल जैसा मुलायम, कुछ चमकीला, पत्र––अरपखडित, पक्षकल्प (Pinnatifid), अण्डाकार या भालाकार, नोकीले, वृन्त की ओर असम, पतले, नीचे और ऊपर चिकने, अकेले या युग्म, जिनमे एक बडा ७–८ इंची और एक छोटा प्राय ४ इची, एव ३ इच चौडे, पुष्प–सीधे ६-७ इंच लम्बे, अन्दर से श्वेत पीताभ और बाहर से नील लोहित, पुष्प मुकुट (carolla) उन्नत गोलाकार,



Datuia Metal L deffeience forms
(1) Corola tiibile (2) Corola Double



Datu-a Innoxia mill

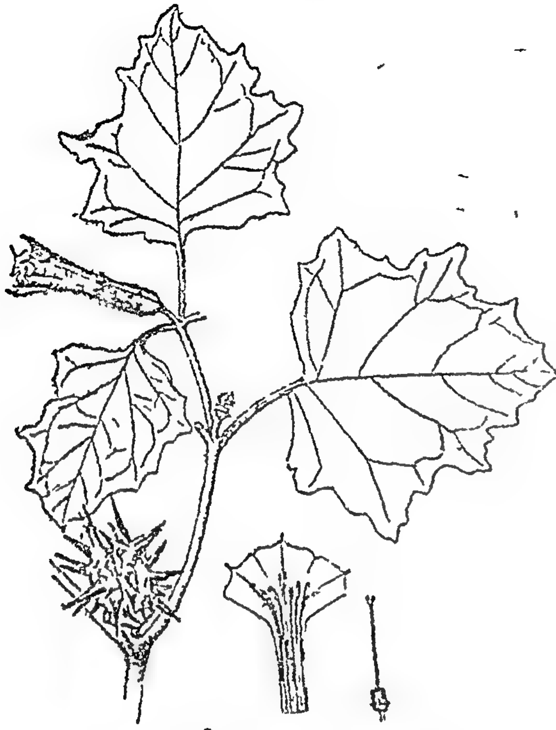
पु केसर–मृदुलोमश, फल–गोल १¼ इ च व्यास के लटकते हुए छोटे-छोटे ग्र थि सदृश अनेक कांटो से युक्त, पकने पर अनियमित फूटने वाले, बीज—कर्णाकृति, चिपटे ४-५ मि. मि लम्बे, ३-४ मि मि चौडे, एवं १ मि मि मोटे, किनारा लहरदार, मोटा एव ३ धारियो से युक्त, वाह्य भाग पीताभ या भूरा तथा कुछ गढ़ेदार, गन्ध रहित एव स्वाद मे कडुवे होते हे। इसके क्षुप भी प्राय सर्वत्र परती जमीन मे पाये जाते हे।

(ई) उक्त (इ) का ही एक भेद डद्दूरा इन्नोक्सिया (D Innoxia) हे। इसके क्षुप उपरोक्तानुसार, किन्तु मृदुरोमश, पत्र–अखण्ड या अल्प विच्छेदी, पुष्प–श्वेत, पुष्पकोश ११ सें० मी० लम्बा, कडा, १० कोणो से युक्त, पुष्प–मुकुट–शक्वाकार (Conical), पु केसर-मुलायम, फल–गोल, कमजोर काटो से आच्छादित, बीज–भूरे-रंग के मुलायम होते है। यह मेक्सिको का आदिवासी है, किंतु भारत मे अब बहुत पैदा होता है।

रासायनिक संघटन—

उक्त इ और ई के पत्तो मे क्षाराभ की मात्रा ० २५ से ०.५५%तक होती है, जिसमे हायोसायमीन अधिक तथा हायोसीन अल्प प्रमाण मे रहता है। 'इ' के बीजो मे हायोसीन ० २%एव अल्पमात्रा मे हायोसायमीन होता है। इसके अतिरिक्त राल व तैल भी इसमे पाया जाता हे।

(उ) इनके अतिरिक्त डद्दूरा क्वेरसीफोलिया (D Quercifolia) नामक एक नूतन उपजाति का पता लगा हे। यह भारत के दक्षिण प्रातो मे बहुत होता है। क्षुप लगभग ६० से० मि० ऊचा, शाखा—द्विधाभूत व मुलायम, पत्र—१२-१५ सें० मि० लम्बे, ११-१३ से०-



Datura Quercifolia

मि०, अण्डाकृति, साधारणत समखडित, निम्न भाग मे असमान, पर्णवृन्त १ से० मि० लम्बा, रेखाकित, पुष्प—श्वेत, पुष्पकोश ३-४ से० मि० लम्बा, साधारण सीधा धारीदार, पुष्प-मुकुट-नताग्र, फल-लम्ब गोल, लम्बे अल्प काटो से युक्त, बीज—चपटे १ ५ से २ मि० मि० के भूरे, कृष्णाभ, गाठदार होते हैं। इस धतूरे मे तथा उक्त न० १ के काले धतूरे मे बहुत कुछ साम्य है।

कुछ लोग स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) को पीला धतूरा कहते है। किंतु स्वर्णक्षीरी इससे भिन्न कुल की है। यथास्थान सत्यानाशी का प्रकरण देखें।

नाम—

सं०—धत्तूर, धूर्त्त, उन्मत्त, कनकाह्वय, शिवप्रिय। हिं०—धतूरा। म०-धोत्रा। गु०—धतुर, धतुरो। अं०-डतूरा (Datura) थार्नेपल (Thornapple)। ले०-डट्यूरा स्ट्रैमोनियम; ड आल्बा, ड निलहुम्मातु (D Nil-Hummatu), अन्य लेटिन नाम ऊपर के नोट मे देखें।

प्रयोज्यांग—पत्र, बीज, मूल, फल और पचाङ्ग। (वर्षा मे पुष्प आ जाने पर औषधिकार्यार्थ पत्रो को तोड कर छायाशुष्क कर सुरक्षित रखना चाहिए। पत्र और बीज पुराने होने पर प्रभावहीन हो जाते हैं। पत्तों और बीजो की वीर्यशक्ति प्राय समान होती है।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, कसैला, कडुवा, कटु विपाक, उष्णवीर्य, वातवर्धक, दीपन, मदकारक, कांतिवर्धक, निद्राजनक, श्वास,-कास, ज्वर, कुष्ठ, व्रण, कफ विकार, चर्मरोग, जू लीक आदि कृमि नाशक, वेदनाशामक, सकोच विकास-प्रतिबन्धक, शोथघ्न, वामक, स्तम्भक, आक्षेपहर है। इसका वातवर्धक गुण अधिक मात्रा मे सेवन से उन्माद आदि-रूप मे प्रकट होता है। किंतु अल्प मात्रा मे यह वातजित है। यह स्वय एक उग्र उपविष होते हुए भी पागल कुत्ते शृगाल आदि के विष को नष्ट करने से इसे विषनाशक कहा जाता है।

इसकी क्रिया इडापिंगला की सूक्ष्म नाडिया जो उदर प्रदेश मे फैली हुई है, उन पर होता है। सज्ञावह एव सचालन-नाडियो पर नही होती। पूर्ण मात्रा मे यह हृदय की गति को अनियमित करता तथा प्रबल प्रलाप उत्पन्न करता है। सूचीबूटी (बेलाडोना) के सदृश यह नेत्रो की कनीनिका को प्रसारित करता है। आक्षेपशामक रूप से यह यकृत मे शूल, स्वरयन्त्र मे विकृति जन्य कास बालको का धनुर्वात, वाणी की विकृति आदि पर व्यवहृत होता है। पीडितार्तव, वातशूल, अर्दित का आक्षेप और गृध्रसीवात मे आक्षेप एव वेदना-शमनार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। स्त्रियो का कामोन्माद (Nymphomania) तथा आत्महत्या की इच्छा वाली प्रसूता का उन्माद इन दोनो पर यह सफल औषधि है।

(डा० खोरी)

श्वासनलिका के सकोच विकास की विकृतिजन्य श्वास, श्वासनलिका शोथ, फुफ्फुसो की विकृति आदि मे यह बहुत उपयोगी है। उदरशूल, पित्ताश्मरीशूल एव वृक्कशूल आदि मे वेदनाहर तथा उद्वेष्टन निरोधी रूप मे इसका उपयोग किया जाता है।

अण्डशोथ, आमवात, सन्धिशोथ, आध्मान, नाडीशूल, फुफ्फुसावरणशोथ एव गृध्रसी आदि मे इसके पत्तो

का लेप, पत्र-क्वाथ से बफारा या सेक, पत्र बन्धन या इसके सिद्ध तैल की मालिश करने से वेदना एवं शोथ शमन होती है।

शोथ युक्त अर्श तथा गुदविकार मे इसका मलहम उपयोगी है। स्तनशोथ मे हल्दी के साथ इसका पुल्टिस बाधने से शोथ एवं दुग्ध कम होता है। इससे सिद्ध तैल का उपयोग अनेक वातविकारो तथा चर्मरोगो मे किया जाता है।

पत्र प्रयोग—

(१) श्वास – विशेषत तमक श्वास मे उद्वेष्टन निरोधार्थ इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। पत्र-चूर्ण २ तोले, सोफ चूर्ण १ तोले और कलमीसोरा १ तो, एकत्र चूर्ण कर रक्खें। श्वास के दौरे के समय इसकी बीडी बनाकर धूम्रपान करने से शीघ्र ही कफ सरलता से बाहर निकलकर लाभ होता है। तमाखू का व्यसनी-धत्तूर पत्र, अजवायन और धमासा समभाग चूर्ण कर ४ से ६ रत्ती चूर्ण तमाखू के साथ मिलाकर धूम्रपान कर सकता है।

अथवा —पत्तो को खूब पीसकर लेई सी बना, एक कोरे कागज के टुकडे पर लेप करले। सूख जाने पर ४-४ इंच के टुकडो को काटकर, सिगरेट-बनाले, तथा आवश्यकता के समय धूम्रपान करे। कुछ ही देर मे जोर से खासी आकर अन्दर का जमा हुआ कफ निकल कर श्वास का दौरा शात हो जाता है। अथवा—

इसके पत्र, भाग पत्र और कलमीसोरा समभाग चूर्ण कर इसकी १ चुटकी आग पर डालकर, धूम्रपान करें। शीघ्र ही लाभ होता है। (हकीम मो मो अ साहब)

उक्त प्रकार से धूम्र का सेवन कर धत्तूर अर्क या कनकवटी (आगे विशिष्ट योगो मे देखे) का कुछ दिनो तक करने से यह रोग हमेशा के लिए छूट जाता है।

ध्यान रहे—इसके पत्रो का धूम्रपान करने पर १० मिनिट में श्वास का दौरा शात न हो तो अधिक से अधिक १५ मिनट रुक देख कर दूसरी बार धूम्रपान करे। यदि इससे भी कुछ लाभ न हो तो समझ लेवे कि उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। इससे सिर मे चक्कर, गले मे जलन तथा मुख मे खुश्की आने लगती है। अत. वह इसका धूम्रपान न करे। जिसे यह अनुकूल हो जाय उसे भी इसका सदैव धूम्रपान नही करना चाहिये अन्यथा इसका व्यसन पडकर हानि होने की सभावना है। श्वास का वेग प्रारभ होते ही इसको बीडी या सिगरेट पीवे। इसे भी धीरे-धीरे न पीकर २-३ फूंको मे ही पूरी कर दें। पहली फूक लेने के साथ ही अन्दर का चिकना कफ छटना शुरू होकर छाती हलकी पड जाती है। पत्तो की अपेक्षा इसके बीजो का असर चौगुना होता है। अत. जिन्हे पत्रो से लाभ न हो, उन्हे बीजो का चूर्ण चिलम मे पिलाया जाता है।

श्वास वेग चढने के बहुत देर बाद इसके धूम्रपान से जैसा चाहिये वैसा लाभ नही होता। —व० च०।

धूए के लिये—इसकी पत्ती, कलमी सोरा, काले चाय की पत्ती, लोवेलिया एव अनीसी (सौफ) का तैल-इनसे बना हुआ मिश्रण (पल्व लोवेलिया कम्पाउण्ड) मिलता है, जिसमे से १ या २ चुटकी चूर्ण को कमरे मे जलाते हैं।

अथवा—इसके शुष्क पत्र १ तो०, कलमी सोरा और सोफ २-२ तो० चूर्ण कर, आवश्यकता के समय, कोयलो की आग पर इसकी १ चुटकी डालकर, किसी नली आदि द्वारा नाक मे धूम्र प्रविष्ट करावें। १ या २ चुटकियो से ५ मिनिट मे कफ स्राव होकर लाभ होता है। बन्द जुकाम से हुआ सिर-दर्द भी शीघ्र दूर होता है। २ चुटकियो से अधिक न डालें।

उक्त धत्तूर पत्र-धूम्रपान तीव्र आक्षेप युक्त जीर्ण शुष्क या कुक्कुर-कास मे भी लाभकारी होता है। किंतु इससे भ्रम, शैथिल्य आदि कोई अनिष्ट परिणाम हो, तो तत्काल ही इसका सेवन बन्द कर देना चाहिये।

२ शोथ पर—तीव्र वेदनायुक्त ग्रन्थि-शोथ हो तो पत्तो को गरम कर बाधने से या इसके ताजे पत्तो को थोडे जल मे पीस कर, उसमे समभाग चावल का आटा मिला, आग पर पका कर बनाई हुई पुल्टिस बाधने से, बेलाडोना प्लास्टर के समान लाभ होता है। अथवा—

पत्तो पर शिलाजीत का लेप कर शोथ पर चिपका देने से (यदि शोथ-स्थान पर बाल हों तो उन्हे पहले निकाल डालना चाहिए) लाभ होता है। आगे प्रयोग

न० २७ देखे ।

उक्त उपचार से अण्डशोथ, हड्डियो पर चोट लगने मे आई हुई सूजन, घुटने की सूजन, गृध्रसी, उदर-शोथ, स्तन-शोथ, सुजाक-जन्य सधिशोथ, पार्श्वशूल, नेत्राभिष्यन्द जन्य नेत्र-शोथ, अर्श-शोथ आदि पर शीघ्र लाभ होता है ।

आमवातज या गठिया की शोथ हो, तो पत्र-स्वरस २ तो० मे पुनर्नवामूल का सूक्ष्म चूर्ण १ तो० और अफीम १ मा० मिला गरम कर लेप करने से लाभ होता है । अथवा—वेदनायुक्त कोई भी शोथ हो, तो पत्र-रस मे कली का चूना मिलाकर गरम कर लेप करें, या चूने की उग्रता सहन न हो, तो उस स्थान पर पत्र-रस मे गूगल पीस कर, गरम कर लेप करें ।

स्तन-शोथ पर—पत्तो को हल्दी और थोडी अफीम के साथ थोडे पानी मे पीस, कुछ गरम कर लेप करे। पीडायुक्त शोथ दूर हो जाती हैं । अथवा—

शोथ की प्रारम्भिक दशा मे ही कुछ पत्तो पर तिल-तैल चुपड कर, लोहे के तवे पर रख, गरम कर, साधारण गर्म-गर्म पत्ते स्तन पर रख बाध दें । विना कष्ट के आराम हो जाता है ।

—हकीम मौलाना मो० अ० साहब ।

जिसके स्तन ढीले होकर लटक गये हो, वह यदि इसके पत्तो को गरम कर स्तनो पर कस कर बाधा करे, तो कुछ दिनो मे वे अपनी ठीक दशा मे आकर, उनमे कडापन आ जाता है ।

अण्ड ग्रन्थि-शोथ पर—पत्र को तैल मे चुपड़ कर, लगोट के नीचे २-३ दिन बाधने से पूर्ण लाभ होता है । लगोट के ऊपर से साधारण सेक करते रहे । जब सूजन कम होती है, तब उस स्थान पर खुजली होती है, किन्तु खुजलाना नही चाहिए । परीक्षित है—

डा० सत्यनारायण जी खरे, प्रा० आचार्य,
ककवारा (झासी)

३ अलर्क विष (पागल कुत्ते के विष) पर—कुत्ता काटने पर देह के भीतर उसके विष का सचय होने लगता है । फिर लगभग ८० दिन के बाद वह व्यक्ति पागल या कुत्ते की तरह चेष्टा करने लगता है । इस प्रकार पूर्ण विष के प्रकोप की अवस्था मे तो कोई भी औषधि लाभ नही पहुँचा सकती । अत विष की सचयावस्था मे १० से २० दिन के भीतर, या शीघ्र से शीघ्र ही रोगी को प्रथम प्रात काल लकडी के कोयले का चूर्ण १¼ तो० लेकर जल मे घोल कर पिला दे, फिर ½ घटे बाद काले धत्तूर का पत्र-रस २½ तो० पिला दे । वमन होकर रस न निकलने पावे, एतदर्थ ताड़ का या खजूरी का रस (नीरा), या गुड का शर्बत या अन्य मधुर पेय पिलावे, तथा रोगी को खुले स्थान मे, धूप मे ४-५ घटे बाध रक्खे । ऐसा करने से धीरे-धीरे अलर्क विष प्रकुपित होकर रोगी उन्मत्त होकर पागल कुत्ते जैसी चेष्टा करने लगता है (यह पागल कुत्ते के काटने का एव उसके पूर्णतया ठीक हो जाने का स्पष्ट प्रमाण है) । फिर शाम को उसके सिर पर शीतल जल की धारा कराते रहे, या कई घडे शीत जल सिर पर डाले । रोगी जब अत्यधिक त्रस्त होकर, और खूब छटपटा कर शिथिल हो जाय, तथा जल-सिचन का क्रोध या विनय-पूर्वक विरोध करे, अर्थात् होश मे आ जाय तब जल-सिचन बन्द करे, तथा उसे थोडी विश्रान्ति देकर मिश्री मिला निवाया दूध या हलका भोजन दे । (नाडकर्णी ने नमक मे भूनी हुई मछली, बेगन, चना आदि खिलाने को लिखा है, तथा कहा है कि तब रोगी को खतरे से मुक्त समझ कर साधारण लघु भोजन देवे) पुन दूसरे दिन यही प्रयोग करे । यदि पागल कुत्तो की जैसी चेष्टा वह न करे तो प्रयोग बन्द करे, अन्यथा कुछ दिन उक्त प्रकार का उपचार करना आवश्यक है ।

विष के तीव्र प्रकोप होने पर रोगी की चिकित्सा करने के अवसर पर प्रथम उसके मस्तिष्क के अग्रभाग के बाल निकलवा कर तेज छुरे से इस प्रकार खरोच दें कि थोडा रक्त निकाल आवे । फिर उस स्थान पर काले धत्तूर-पत्र का रस या पत्रो का कल्क घिसदें, तथा उपरोक्त विधि से पत्र-रस पिलावें ।

—डा० नाडकर्णी ।

सुश्रुत के अनुसार चिकित्सा-विधि इस प्रकार है—

दश स्थान को दबाकर रक्त निकाले, फिर घी से

उस स्थान को जलावे, अगदो का लेप करे, तथा पुराना घृत पिलावे।

अर्क दुग्धयुक्त विरेचन देवे। धतूरे के साथ श्वेत अपराजिता (कोयल) तथा पुनर्नवा का सेवन करावे। तिलकल्क, तिल तैल, अर्क दुग्ध तथा गुड का सेवन करावे।

विशेष प्रयोग–शरपुंखा मूल १ तो०, धतूरा-पत्र या मूल ६ मा० दोनो का कल्क कर प्रात १ पाव चावलो के आटे मे मिला, चावलो के जल मे घोल कर रख दे। इस घोल मे थोडा सेंधा नमक और हल्दी या गुड मिला लेने से, इसके बने हुए पूए या कचौडी को रोगी सरलता से खा लेगा।

शाम को घी से चुपडे हुए धत्तूर-पत्रो पर फैला कर, आग पर एक पात्र मे जल भर, ऊपर चलनी रख उस पर इन पत्रो को रख दे, तथा ऊपर ढक्कन से ढाक दे, इस प्रकार वाष्प द्वारा पककर १०-२० मिनट मे उक्त धत्तूर पत्रो पर फैले हुए पुए फूल जाते है, इन्हे शाम को रोगी को खिलावे। अथवा––उपरोक्त द्रव्यो के कल्क या पिट्ठी को धत्तूर-पत्रो मे लपेट सूत से बाध कर घृत मे कचौडी की तरह पका कर खिलावे। और उसे जलरहित शीतल कमरे मे बन्द कर दे। या बाध दे। औषधि के पचने पर वह उन्मत्त कुत्ते के जैसी ही चेष्टा करने लगता है। ३-४ घण्टे बाद विष प्रकोप के शमन होने पर, दूसरे दिन प्रात. स्नान करा शाली या साठी के भात को गरम दूध से भोजनार्थ देव। तीसरे अथवा पाचवे दिन (अथवा ३ से ५ दिन तक) यही उपचार रोज शाम को अर्ध मात्रा मे करे। कुत्ते के सदृश चेष्टा बन्द होने पर उपचार बन्द कर दे। ध्यान रहे जिस रोगी के शरीर मे विष स्वय कुपित हो जाता है, वह नही बचता। अत विष स्वय कुपित हो उसके पूर्व ही (कुत्ता काटने के १० दिन बाद एव २० दिन के भीतर ही) उक्त प्रकार से उसे प्रकुपित कर देना ही ठीक होता है। ("कुप्येव स्वय विष यस्य न स जीवति मानव। तस्मात् प्रकोपयेदाशु स्वय यावत् प्रकुप्यति" सुश्रुत कल्प-स्थान अ० ७) आगे और भी उसी स्थान मे रोगी के स्नान का प्रकार, बलि मत्र एव तीक्ष्ण सशोधन के विषय मे लिखा है। पाठक वही देख ले। आगे प्रयोग न० २८ को भी देखे।

(४) मलेरिया-ज्वर पर–पत्र-रस ३ से ६ मा० तक, ४ तो० दही मे मिला, ज्वर-वेग से १ घण्टा पूर्व पिलाने से, २ या ३ पालियो के बाद तिजारी या चौथिया ज्वर दूर हो जाता है। ––अ० तन्त्र।

अथवा––इसके १ पत्र को दो इञ्च तक चौकोर कतर खाने के पान मे रख खिला देने से भी लाभ होता है। किन्तु जब तक पाली का समय न टल जाय तब तक कुछ भी न खावे। हो सके तो उस दिन चाय पर रह जाय। —गा० औ० र०।

अथवा––इसकी २॥ नग कोपले गुड मे लपेट कर गोली बना कर खिलावे। अवश्य ही ज्वर न होगा। अनेक बार का अनुभव किया हुआ है।

––ह० मौ० म० साहब।

अथवा––इसके पत्तो का अर्क, ज्वर आने से २ घटा पूर्व, २ बूद की मात्रा मे, मिश्री या बताशा मे डालकर खिलावे। आगे विशिष्ट योगो मे अर्क-विधि देखे।

इसके पत्र-रस २ तो. खूब खरल करते-करते गोली बनाने योग्य हो जाय तो ½ रत्ती की गोलिया बनाले। ज्वर वेग के २ घटा पूर्व २ गोलिया पानी से खिलावे। यदि ज्वर आने से पूर्व १-१ घटे से १-१ गोली दी जाय तो सभव है, प्रथम ही दिन रुक जावे। अन्यथा दूसरे दिन थोडा रेचन देकर फिर गोलियो का सेवन करे।

–ह० मौ० मो० अ० साहब।

अथवा–धत्तूर पत्र २ तो. के साथ कालीमिर्च-चूर्ण ८ तो मिला, गोंद कतीरे के पानी से अच्छी तरह खरल कर ½ से १ रत्ती तक की गोलिया बना, छाया शुष्क कर ले। दिन मे ३ बार १-१ गोली ठडे जल से देने से पुराना विषमज्वर तथा श्वास, कास मे भी लाभ होता है।–स्वानुभूत।

अथवा—इसके पत्र और बगला पान देशी २-२ तो तथा पिप्पली-छोटी १ तो सबको खूब खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना ले। ज्वर वेग से ६ घटा पूर्व १-१ गोली डेढ-डेढ घटे के अन्तर से पानी के साथ देने से जाडा देकर होने वाला मलेरिया ज्वर निःसदेह विन-

ष्ट होता है। पूर्ण परीक्षित है।

—मलेरिया आयुर्वेद चिकित्सा पुस्तक से-साभार

ज्वर पर आगे-बीज, फल एव क्षार के प्रयोग देखे।

(५) वात-विकारो पर—गठिया (आमवात) पर—पत्र रस यदि १ सेर हो, तो उसमे तिल तैल २० तो मिश्रण कर, मन्द आच पर तैल सिद्ध कर, इसकी मालिश रात्रि के समय सन्धियो पर कर गरम कपडा ओढाकर रोगी को सुलादे। कुछ दिनो के प्रयोग मे सधियो की जकडन एव वात विकार दूर हो जाता है।

(इस तैल को सिर पर लगाने से जुए, लीख आदि नष्ट हो जाते हैं।)

अथवा-इसके पत्तो पर एरण्ड तैल चुपड कर जोड़ो की सूजन पर बाध कर, ऊपर से नमक की गरम पोटलियो का सेंक करने से भी विशेष लाभ होता है।

पत्र स्वरस के साथ पुनर्नवामूल और थोडी अफीम पीस कर गरम कर लेप करने से वात-वेदना तथा हाथ पैर का शोथ नष्ट हो जाता है।

धनुर्वात—जो विशेषत दूषित जखम के कारण हुआ हो, रोगी के जबडे बैठ जाते (Lock-Jaw) हो, तथा बार-बार आक्षेप होते हो, तथा अन्य कोई विशेष चिकित्सा अनुपलब्ध हो, ऐसी अवस्था मे प्रथम जखम या घाव को गरम-सुहाते हुए-जल से या जन्तुनाशक औषधियो से अच्छी तरह धोकर, उस पर इसके पत्तो की पुल्टिस बनाकर बाध दें या केवल पत्तो को ही गरम कर बाध दें। यह क्रिया दिन मे ३-४ बार करें। तथा आभ्यन्तर प्रयोगार्थ धतूरे का अर्क या टिंचर १० से ३० बून्द तक जल के साथ दिन मे ३-४ बार पिलावें। यह मात्रा, उसके परिणामानुसार बदलते जावे। जब रोगी के नेत्रो की कनीनिकाए विस्तृत हो जाय, तथा चित्त-भ्रम, चक्कर, भ्रम आदि लक्षण होने लगें तब दवा देना बन्द कर दे। यदि इस उपचार से धनुर्वातजन्य आक्षेपो मे कुछ कमी हो, अर्थात् वे (फिट्स) बहुत देर बाद आने लगें, तथा विशेष पीडादायक न हो, और न वे बहुत देर तक टिकें, तब दवा की मात्रा कुछ कम करे, तथा कुछ देरी के अन्तर से देते रहे; यह तब तक जारी रखें जब तक कि आक्षेपो का दौरा एकदम बन्द न हो जाय। किन्तु दवा शुरु करने के बाद, उसका विशिष्ट कार्य शरीर पर (उक्तानुसार) होने पर भी आक्षेपो मे कोई लाभ न हो, तो यह उपचार फौरन बन्द कर दे। अन्यथा हानि होने की सभावना है।

उक्त उपचार के साथ ही साथ धतूरे का मलहम या लिनिमेन्ट (यह बेलाडोना के लिनिमेन्ट जैसा ही बनाया जाता है) की मालिश या मर्दन रोगी की रीढ की हड्डियो पर दिन मे कई बार करते रहना आवश्यक है। ध्यान रहे यह उपचार सुदक्ष चिकित्सक के द्वारा ही कराना ठीक होता है—नाडकर्णी।

(६) पत्र रस और तिल तैल १०-१० तो मिश्रण कर कलईदार पात्र मे मन्दाग्नि पर पकावे। लगभग आधा रस जल जाने पर, ७ नग आक के पत्ते लेकर, मीठे तैल से चुपड, तथा उन पर थोडा नमक छिडक कर उक्त पकाते हुए तैल मे डाल कर जला डाले। फिर उतार, मोटे वस्त्र से छान कर सुरक्षित रखे। इसे आवश्यकता के समय सुखोष्ण कर कुछ बूदे कान मे डालने से कर्ण पीडा, कर्णस्राव आदि कर्ण विकार दूर हो जाते हैं।

कर्ण बाधिर्य या कम सुनाई देने पर उक्त तैल की २-३ बून्दे, सुखोष्ण, कानो मे प्रतिदिन डालते रहने से कुछ दिनो मे यह विकार दूर हो जाता है, अच्छा सुनाई देता है। इस तैल के प्रयोग से कर्ण कृमि भी नष्ट हो जाते है।

—भा०ज०बूटी

कर्णशूल पर—रस की १-२ बूदे डालने से भी बहुत लाभ होता है। कान के पीछे की सूजन मे पत्तो का गाढा लेप करते रहने से लाभ होता है।

कर्णस्राव पर—इसके ताजे फलो को हाथो से मसल कर कान मे कुछ रस (१-२ बूद) डालकर ऊपर से थोडा सिंदूर छोडते है। अथवा—इसके ४०० ग्राम पत्र रस मे समभाग सरसो तैल, तथा ४० ग्राम हल्दा चूर्ण व ८० ग्राम गधक चूर्ण मिला, मन्द आच पर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर शीशी मे रखे। कर्णस्राव, कर्णपीडा व बाधिर्य पर विशेष लाभकारी है। कानो को साफ कर इसकी ४-५ बूदे डालते

रहे। खाड, गुड, नेम की फली आदि न खावे । शीत जल से स्नान न करें। --गुध्‌त (मासिक पत्र)

कान के नाडी व्रण (नासूर) पर—पत्र-रस मे हल्दी और अगर ४-४ तो पीसकर, इसके पत्र-रस १२८ तो. मे मिला दे और उसमे ३२ तो सरसो तैल मिला कर तैल सिद्ध कर ले। इसकी २-२ बूदें कानो मे दिन मे २ बार डालते रहने से लाभ होता है।—भा भै र

यह तैल वेदना-युक्त कर्णपाक मे भी लाभदायक है।

(७) व्रण, विद्रधी गलग्रथि, नारु आदि पर—यदि किसी भी व्रण, फोडे या विद्रधि के प्रारम्भ काल मे इसके पत्तों को गरम कर बाध दिया जाय तो शीघ्र ही वह बैठ जाता है। यदि फोडा उठ आया हो, तो इसी प्रकार पत्तो को बाधने से वह शीघ्र ही पक कर फूट जाता है। तथा इसी को बाधने से व्रण शीघ्र ही रोपण होता है।

अथवा—ताजे पत्तों को पीस कर लगभग २० तो कल्क को १ सेर तक की चरबी मे मिला मन्द आग पर गरम करे। पतला हो जाने पर छान लें। इस मलहम के लगाने से कारबकल एव अन्य जख्मो पर बडा लाभ होता है।

कखौरी (कछराली–काख या बगल मे उठने वाली ग्रथि) पर इसके पत्तो पर तिल तेल चुपड कर गरम कर बाध दे। पत्ते ठडे हो जाने पर और बदलते रहे। इससे पीडा उसी समय बन्द हो जाती है। यदि गाठ पिघलने योग्य हो तो वह पिघल कर दब जाती है, या फूट जाती है।

उक्त प्रयोग एडी के दर्द को (जो प्राय वृद्धो को हुआ करता है, जिससे वे चलते समय कुछ लगडाते से चलते हैं) भी दूर कर देता है। उन्हे रात्रि के समय उक्त-प्रकार से पत्तो पर तैल चुपड कर गरम कर बाघते रहना चाहिये।

व्रण या घावो के चिन्हो को मिटाने के लिये—व्रण ठीक हो जाने पर जो भद्दे चिन्ह हो जाते है उन पर इसके पत्र-रस को वैसलीन या किसी उत्तम क्रीम मे मिलाकर चिन्ह के स्थान पर मालिश करते रहने से वे कुछ दिन मे मिट जाते है। —ह मी मो अ. साहब।

गलग्रंथि या गलगंड पर—प्रथम जमीन को लीप कर उसपर अरण्य कडे जलाते है। कण्डे जल जाने पर वहा से सब राख हटाकर, उस तप्त भूमि पर श्वेत धतूर-पत्तो का रस डालते है। उस रस मे जल के बुलबुले से उठते हैं। तब उस रस का गलगण्ड या ग्रंथि पर गरमा-गरम लेप करते है।

नारु (नहरुवा) पर—कृष्ण धतूर पत्र-रस ६ मा तथा घृत २ तो एकत्र कर पिलावे। दिन भर कुछ खाने को न दे। सायकाल दही भात खिलावे। यदि नारु बडा होकर फोडे के रूप मे प्रकट हो, तो उसे फोडकर धत्तूर-फल को बारीक पीस, टिकिया सी बना नित्य ३ दिनो तक बाधे और नित्य पत्ता धतूरे का ढाई पान के पत्तो पर रख खिलावे। —अ तत्र। इसके हरे पत्तो को गोघृत से चुपड कर, गरम कर नारू पर रख पट्टी बाध दे। इस प्रकार कुछ दिन बार-बार बाधने से कीडा निकल जाता है।

काटा को गलाकर बहाने के लिये—कठोर से कठोर काटा चाहे किसी अग मे लगा हो। धतूर-पत्र को गुड मे लपेट कर खिला देने से, काटा गलकर पानी की भाति बह जाता है। —भा ज बूटी।

बिच्छू के दश स्थान पर—पत्तो की लुगदी लगाने तथा पत्र-रस को मलने से शाति मिलती है।

(८) छाजन (उकौत-एक्जीमा) तथा श्लीपद पर—धतूरे के ताजे पत्तो का रस २० तो, धतूर-पत्र की लुगदी या कल्क १¼ तो और गोघृत ५ तो इन तीनो को मद आच पर पका घृत-मात्र शेष रहने पर छान कर रख ले। उकवत पर इसे, रुई के फाहे से या चिडिया के पंख से दिन मे २-३ बार लगावे।

यदि उकौत मे पीली या श्वेत फुन्सियाँ हो गई हो, तथा उनसे चेप निकलता हो, तो प्रथम चिकनी मिट्टी से उकौत को धोकर, कपडे से पोंछ लेने के बाद उक्त घृत को लगावे। शीघ्र लाभ होता है।—सिद्ध मृत्युजय योग

श्लीपद चाहे जीर्ण एव दुस्साध्य हो गया हो तो भी उस पर—धत्तूर-पत्र, एरण्ड-मूल, सभालु के पत्ते, पुनर्नवा, सहजने की छाल और सरसो समभाग पीस कर लेप करते रहने से वह नष्ट हो जाता है। व सेने, शा स।

(९) नेत्र-विकारो पर—इसके पत्तो के स्वच्छ रस मे थोडी अफीम और रसौत घोटकर नेत्रो मे डालने से भयकर नेत्राभिष्यन्द मे आराम होता है। आख आने पर रात्रि के समय अधिक वेदना होती हो, तो इसके पत्तो की पुल्टिस या घी लगा हुआ इसका पत्र बाधने से वेदना शात हो जाती है।

काले धत्तूर-पत्र को रगडने से जो पीला सा जल निकलता है, उसे सूर्योदय से पूर्व सलाई द्वारा आखो मे आजना दुखती आख को लाभकारी है।

पत्र-रस को थोडा गरम कर दुखती हुई आख के विपरीत कान मे (जिस ओर की आख मे पीडा हो उससे दूसरी ओर के कान मे) डालने से अवश्य आराम होगा।
—ह मौ मो. अ साहब।

पलके झडना, परवाल आदि पर—पत्र-रस मे रुई को भिगोकर ३ बार सुखाते हैं। फिर गोघृत मे बत्ती बना, जलाकर काजल तैयार करते हैं, तथा इसमें कुछ फिटकरी का फूला और अत्यल्प मात्रा मे तुत्थ का फूला मिला कर सलाई से लगाते हैं। इससे नेत्रस्राव मे भी लाभ होता है।

(१०) उदर-कृमि, तथा उदरशूल पर—श्वेत धत्तूर पत्र-रस २ रत्ती, सत-अजवायन ½ रत्ती, शहद १ तो मे मिलाकर (यह १ मात्रा है) दिन मे ३ बार देकर, दूसरे दिन प्रात अरवचोली रस से विरेचन देने से सब कृमि निकल जाते है। परीक्षित है।

—शेख फैयाजल्ला विशारद (अ यो माला से)

अथवा—इसके पत्र-रस की २ से ८ बूदें, थोडे मट्ठे में मिलाकर पिलाने से पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं।
—अ. तत्र।

उदरशूल—पित्ताश्मरीजन्य हो या मूत्र पिण्डो की पीडा से हो, इसे अफीम के साथ अथवा जहा अफीम देना उपयुक्त न हो वहा खुरासानी अजवायन के साथ उसका प्रयोग करे।

(११) प्रवाहिका, अतिसार तथा विसूचिका पर—१० या २० तो. दही मे पत्र-रस या अर्क की ४ बूदें मिलाकर एक, दो या तीन बार पिलाने से शीघ्र दस्त व मरोड बन्द हो जाते है, चाहे वे कितने ही अधिक क्यो न हो। हैजा मे भी इससे लाभ होता है। बच्चो को शक्ति एव आयु के अनुसार १ बूद या उससे भी कम देना चाहिये।
—ह मौ मो अ साहब।

(१२) योनिशूल पर—काले धतूरे के २-३ पत्ते महीन पीस कर १ पत्ती मे सेधा नमक और घृत मिला बारीक कपडे मे बाध, लम्बी सी पोटली बना योनि मार्ग मे रखने से सर्व प्रकार का योनिशूल नष्ट होता है।
—अ०तत्र

(१३) दन्त विकारो पर—पत्र रस ५ तो मे सेंधा नमक ५ तो मिला कर, बडे सकोरे या कूजे मे बन्द कर कपरौटी कर, १० सेर उपलो की आच मे फूक दे। स्वाग शीतल हो जाने पर भीतर का नमक निकाल कर पीस कर रख ले। इसके मजन से दातो का दर्द, मैला-पन, दुर्गन्ध आदि दूर होकर दात मोती के समान हो जाते है।
—ह०मौ०मो०अ० साहब।

दन्त कृमि—दातो मे कृमि लगजाने मे जो पीडा होती है, इसके निवारणार्थ पत्र रस डाल कर पकाये हुए तैल का फाहा रखा जाता है।

बीज—धत्तूर बीज की क्रिया, पत्र की अपेक्षा विशेष तीव्र एव प्रभावशाली होती है। इसके सशोधन की विशेष आवश्यकता है। अन्यथा विषबाधा हो जाती है। शोधन करने से इसकी उग्रता कम होकर यह मानव-शरीर के लिए अधिक सौम्य एव हितकारक हो जाता है।

बीजो को कम से कम १२ तथा अधिक से अधिक ३ दिन गो मूत्र या मट्ठे मे (गो मूत्र मे १२ घटे भिगो-रखना काफी है) भिगो रक्खे। मट्ठा प्रतिदिन बदलते रहे। चौथे दिन (गोमूत्र मे भिगोया हो तो १२ घटे बाद) पानी मे धोकर कपडे पर फैला दे। कुछ शुष्क हो जाने पर, कूट कर सूप से फटक कर भुसी अलग कर दे। बीज शुद्ध हो जाते है। अथवा—आधुनिक सरल विधि तो यह है कि बीजो को कपडे की पोटली मे बाध, एक हाडी मे गोदुग्ध भर, एक प्रहर तक दोलायन्त्र से स्वेदन कर गरम पानी से सुखाकर तथा कूटकर काम मे लावे। निम्न प्रयोगो मे शुद्ध बीजो की ही योजना करनी चाहिए। तथा ध्यान रहे कि गोमूत्र, गोदुग्ध आदि द्रव्यो के गुण-

धर्मों का विचार कर तत्तच्छुद्ध बीजों को विविध प्रयोगार्थ काम मे ल ना उत्तम होता है। जैसे ज्वरघ्न योगो मे या कफ तथा आमानुबन्धी रोगो के प्रयोगार्थ गोमूत्र-शुद्ध बीजो को और पित्त, रक्त, शुक्र सम्बन्धी विकारो मे गोदुग्ध शुद्ध बीजों का उपयोग यशस्कर एव प्रशस्त होता है।

(१४) मलेरिया ज्वर पर—ज्वर वेग के ३ घण्टा-पूर्व बीज चूर्ण १ रत्ती को मट्ठा या दही मे मिलाकर सेवन कराते हैं। इससे कभी-कभी ज्वर की पाली टल जाती है। या ज्वर जन्य कष्टो-(शरीर मे जलन होना, अङ्गो का दुखना, सिरदर्द आदि) मे कमी हो जाती है। किंतु इससे मलेरिया जड से नही जाता। बीजो को सराव सपुट कर भस्म करले। १ से ४ रत्ती तक की मात्रा मे पानी के साथ देवे। या बीज ६ तो, रेवदचीनी ४ तो, सोठ २ तो, बबूल गोद २ तो घोटकर मू ग जैसी गोलिया बना ज्वर से ३ घण्टा पूर्व देवे। अन्य उत्तम प्रयोग पीछे पत्र-प्रयोगो मे या आगे फल प्रयोगो मे देखिये।

विषम तथा अन्यान्य ज्वरो पर—कनकवटी आदि विशिष्ट योगो मे देखे। मृत्यु जय रस शास्त्र मे देखें।

(१५) स्तम्भन एव वाजीकरणार्थ—इसके बीज, अकरकरा और लौंग समभाग खूब महीन खरलकर पानी के साथ मू ग जैसी गोलिया बना ले। १ या २ गोली दूध के साथ लेने से वीर्य गाढ़ा होकर वाजीकरण शक्ति बढती है। अथवा—

शुद्ध पारद और शुद्ध गधक की कज्जली कर उसमे समभाग धत्तूर बीजो का चूर्ण मिला,धत्तूर बीजो के तैल से मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बना, प्रात १ गोली शक्कर मे रख खाने से वीर्य वृद्धि होती, स्तम्भन शक्ति बढती है तथा सर्व प्रमेह दूर होते है। (अ० तत्र)—अथवा

धत्तूर बीज (काले धतूरे के हो तो उत्तम) ५ तोले पीसकर १० सेर दूध मे जोश देकर जमा दे। फिर बिलो कर मक्खन निकाल घृत तैयार करले। इस घृत को इन्द्री पर लेप करे तथा १ से २ रत्ती तक की मात्रा मे लगाकर सेवन करने से ध्वजभग दूर होकर कुछ दिनो मे ही यथेष्ट कामशक्ति की जागृति होती है। —अ यो. मा.

विशिष्ट योगो मे कामिनी दर्पघ्नरस तथा फल के प्रयोग देखिये। बीजो का तेल (पाताल यन्त्र से निकाला हुआ) पैर के तलुवो पर मालिश कर स्त्री सभोग करने से बहुत स्तंभन होता है। आगे प्रयोग न० १८ देखिये।

(१६) नजला, जुकाम, कास, श्वास पर—बीज (काले धतूर के) ६ तो०, अजवायन खुरासानी १½ तोले दोनो को ४० तोले पानी मे औटावे। दो भाग पानी जल कर शेप १ भ ग रहने पर छानकर रखदे। जब गाद सी पानी की तली मे बैठ जाय तब पानी को निथार कर उसमे बीजरहित २० तो० मुनक्का मिला, मन्द आग पर पकावे। करछी से उलट-पलट करते रहे। जिससे सब पानी मुनक्को मे ही शुष्क हो जाय तथा मुनक्के न जलने पर पावे। फिर उन्हे निकाल धूप मे सुखा ले। १-१ मुनक्का प्रात साय खाने से नजला जुकाम तो १-२ दिन मे ही तथा पुराना ६-७ दिनो मे समूल नष्ट हो जावेगा। (ह मी मो अ साहब

विशिष्ट योगो मे माजून-जीवन दाता देखें)।

कास पर—इनके बीजो के समभाग छोटी पीपल लेकर दोनो का महीन चूर्ण कर उसमे बबूल के गोद का लुआब मिला खरलकर सरसो जैसी गोलिया बनालें। प्रात साय १-१ गोली खावे। खुश्की करे तो मिश्री मलाई खाना उचित है। (स्व प० भगीरथ स्वामी जी)

श्वास पर—बीजो का पाताल यन्त्र द्वारा खीचे हुए तेल की एक सीक पान के पत्ते पर लगाकर रात्रि को सोते समय खिलाते हैं। तथा रोगी को हलुवा खिलाते है।

(१७) उन्माद और अपस्मार पर—बीज और कालीमिर्च समभाग महीन चूर्ण कर जल के साथ खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना, मात्रा १ से २ गोली तक प्रात और रात्रि मे २-२ तो० मक्खन के साथ या दही के घोल के साथ सेवन करावे। भोजन मे लाल मिर्च आदि उत्तेजक पदार्थ न देवे। ७ दिन के सेवन से नवीन उन्माद रोग जो मानसिक आघात, शराब, गाजा, सूर्य के ताप मे भ्रमण आदि से या प्रसूतावस्था मे हुआ हो, जिसमे निद्रा न आती हो, शमन हो जाता है।

मस्तिष्क शात हो जाता है ।—गा ग्रो र । मधुमेह मे ये गोलिया सौंफ के अर्क के साथ दी जाती हैं ।

उन्माद की उग्र अवस्था मे शुद्ध पारद, गधक व मैनसिल समभाग तथा इन तीनो के समभाग इसके बीजो का चूर्ण लेकर वच के क्वाथ की और ब्राह्मी के रस की ७-७ भावनायें देकर रख ले । १ से ४ रत्ती तक की मात्रा मे ब्राह्मी अथवा वच के स्वरस और घृत के साथ केवल गोघृत के साथ देने से यह उन्माद गज केशरी रस-उग्र उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद एव उग्र विषम ज्वर को शान्त कर देता है । (भै० र०)

काले धत्तूर बीज के यथोचित मात्रा मे पित्त पापडा के रस मे घोटकर पिलाने से भी यह रोग शात होता है—(भै र आगे प्रयोग न० ३० देखे)

रोगी को शास्त्रोक्त पथ्यापथ्य का पालन कराना आवश्यक है । विशिष्ट योगो मे—उन्मत्त रस देखें ।

अपस्मार (मिरगी) मे—इसके बीज के साथ केसर और मिश्री समभाग खूब महीन पीसकर, दौरे के समय रोगी की नाक मे फूकने से बेहोशी शीघ्र दूर होजाती है। दौरा रुक जाता है तथा अर्द्धाङ्गवात मे बीजो के तेल की मालिश की जाती है ।

(१८) स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि पर—बीजो को चीनी मिट्टी के प्याले मे रख उस पर पोस्त का पानी इतना डाले कि बीज ठीक तरह डूबे रहें, फिर ढाक कर रख दें । सपूर्ण पानी शुष्क हो जाने पर फिर तर करे । इस प्रकार ७ भावनाये दे, शुष्क कर बीजो के समभाग बिनौले की गिरी, श्वेत जीरा व धनिया मिला पीस ले । फिर त्रिफला-क्वाथ से महीन खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना ले । सोते समय १ से २ गोली तक आध पाव दूध या जल के साथ निगल लिया करें । शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, खासी, नजला के लिए अक्सीर गोलिया हैं ।

अथवा— बीज ५ तो०, जायफल, केशर १-१ तो० शुद्ध शिलाजीत २ तो० इन्हे एकत्र खरल करले । फिर ३ सेर गोदुग्ध को कलईदार पात्र मे आग पर उबाले । जब दूध उबलने लगे तब उसमे उक्त कल्क को मिला, चमचा से धीरे-धीरे हिलाते रहे । पककर खोये के समान हो जाने पर उतार कर १ पाव खाड मिलादे तथा चने जैसी गोलिया बना उन पर सोने या चादी के वर्क चढा दें । मात्रा २ से ४ गोली तक दूध के साथ, सोते समय सेवन करने से वीर्य की दुर्बलता आदि उक्त विकार दूर होते हे । एव कुछ ही दिनो मे अद्भुत शक्ति और स्तभन पैदा होता है । इसके अतिरिक्त मूत्राधिक्य, कमर का दर्द, खासी, नजला व जुकाम मे भी लाभ होता है । शीतकाल मे २१ दिन से अधिक सेवन न करे ।

(हृ० मौ० मो० अ० साहब)

(१९) पाददारी, हाथ-पैरो का फटना तथा विपादिका कुष्ठ पर—हाथ या पैर मे फटकर दरारे पड गई हो, वेदना होती हो तो बीजो के साथ सेंधानमक पीसकर लुगदी बना लुगदी से चौगुना पानी और लुगदी के समभाग सरसो तेल मिला, मन्द आग पर पकावे । पानी के जल जाने पर तैल सहित लुगदी को फटे हुए स्थानो पर लगावे । (अ० मत्र)

विपादिका (यह एक कुष्ठ भेद विचर्चिका है, पैरो मे खाज दाह तथा वेदनायुक्त पिडिकाये होती है । इसे वैपादिक कुष्ठ (Chilblain) कहते है । पर इसके बीजो के कल्क और मानकन्द के क्षार के पानी के[1] साथ सरसो तेल को सिद्ध करे । यह तेल विपादिका का शीघ्र नाश करता है । (भै० र०) इसका नाम उन्मत्त तेल है ।

कुष्ठ-हर लेप—इसके बीजो का चूर्ण तथा पारा, गन्धक और अभ्रक भस्म समभाग लेकर चौगुने सरसो-तेल मे घोटकर मलहम बना ले। इसके मर्दन से कुष्ट रोग नष्ट होता है । (अ० तन्त्र)

(२०) आधा शीशी पर—बीजो के साथ समभाग कालीमिर्च, कपूर, अफीम व सोया-बीज एकत्र बकरी के दूध मे खरल कर, सिर के अर्ध भाग पर, बार-बार गाढा लेप करने से भयकर अर्धावभेदक शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है । —आरोग्य ।

---

१ मानकन्द की राख मे ६ गुना पानी मिला २१ बार कपडे से छाना (टपकाकर) हुआ पानी ८ सेर, सरसों तेल २ सेर और बीजों का कल्क २० तोला लेकर एकत्र पका तेल सिद्ध करलें । मानकन्द यह अरई या सूरन के कुल का कन्द है । इसे कहीं कहीं महाराक्षस करते हैं । यथास्थान मानकन्द का प्रकरण देखिये ।

फल के प्रयोग—

२१. नपुंसकता पर—काले धतूरे के फलो की वोडी मे बडा छिद्र कर उसके भीतर, एक जायफल को मध्य-भाग मे छेद कर किंचित् अफीम भरकर, डाल दे और फल का छिद्र गीले आटे से बन्द कर, कण्डो की आग मे पकाये। आटा सूनकर जलने लगे, तब बाहर निकाल, आटा दूर करदे। और जायफल सहित फल की वोडी को खरल मे घोट, चने बराबर गोलिया बना लें। नित्य १ गोली खाकर ऊपर से भैंस या गाय का पका हुआ दूध पीवे। इस प्रकार २१ दिन के सेवन से नपुंसकता दूर होती एंव वीर्य-वृद्धि होती है। —अ० तत्र

२२ ज्वर पर—आवश्यकतानुसार फलो को लेकर, मटकी मे रख, शराव संपुट एवं कपरौटी कर १०-१२ सेर उपलो की आग मे जलावें। शीतल होने पर भस्म को पीस कर शीशी मे भर ले। ज्वर-वेग के १ घटा पूर्व, २ से ६ रत्ती तक की मात्रा में, आयु के अनुसार, न्यूनाधिक पान मे रख, पान के अभाव मे पानी के घूट से खिला दे। ज्वर न आवेगा यदि पहले दिन ज्वर हो भी जावे, तो दूसरे दिन देने से लाभ होगा। पित्त-ज्वर, कफ-ज्वर, कम्प-ज्वर, तिजारा, चौथियारा के लिये यह रामवाण है। —हृ० मौ० मो० अ० साहब

२३ श्वास पर—पके हुए धत्तूर-फलो को खाली कर (अन्दर के बीजो को दूर कर) उनमे काला नमक भर, ऊपर डोरा लपेट, मिट्टी के पात्र मे भरकर, कपरौटी कर अग्निदग्ध करे। जितने फल हो, उतने सेर उपलो के अनुमान से अग्नि आवश्यक है। स्वाग शीत होने पर, फलो सहित नमक की भस्म को पीसकर रख ले। शक्ति बलानुसार ४ रत्ती से १ माशा तक, पान मे देने से, भोजन को पचाकर, पुरानी खासी और यक्ष्मा मे लाभ होता है। अथवा—

फलो के कुछ बीज निकाल कर उनमे कच्ची हल्दी कूट-पीस कर भर दे। फिर कपड-मिट्टी कर अग्नि मे पुटपाक विधि से तैयार कर, पीस कर रख ले। मात्रा—१ से १½ रत्ती, शहद के साथ देने से श्वास मे विशेष लाभ होता है। दौरा तत्काल रुक जाता है। आगे प्रयोग न० ३२ मे देखे। —अ० यो० माला

अथवा—अच्छे परिपक्व फलो के बीज न निकालते हुए, और न उनमे नमक, हल्दी आदि भरते हुए, वैसे ही लगभग १ पाव (२० तो०) फलो को मटकी मे डाल कर, ढक्कन से मुह बन्द कर कपड-मिट्टी कर गजपुट मे फूक दे। एक ही पुट मे अन्तर्धूम दग्ध काली भस्म हो जावेगी। उसे कूट-पीस कपडछान कर रख ले। १ से २ रत्ती तक साधारण दशा मे, प्रात-साय १-१ मात्रा, एव रोग के विशेष आक्रान्त दशा में ४ ४ रत्ती प्रति घटे पर १-१ मात्रा शहद मे मिलाकर सेवन करावे। २ रत्ती इसकी पूर्ण मात्रा है। बच्चो तथा दुर्बलो की मात्रा, वय व बलानुसार कल्पना कर देनी चाहिये।

—अनुभूत योग भाग २

२४. इन्द्रिय शैथिल्य पर—इसके १५ फलो का चूर्ण गौदुग्ध १० सेर मे मिला, दूध को जमा दे। दूसरे दिन दही को मथकर मक्खन निकाल, घृत बनाले। इस घृत की मात्रा २ रत्ती तक पान के बीडे मे लगाकर सेवन करने से, नपुसकता दूर हो जाती है।

२५ अर्श पर—विशेषत पित्तार्श मे—इसके पके फल के साथ छोटी पीपल, हरड, नेत्रवाला (सुगधवाला) और गुड समभाग चूर्ण कर, ८ रत्ती तक की मात्रा मे, नित्य रात्रि के समय, मिश्री, शहद और घृत १।-१। तो० मे मिलाकर सेवन कराते है।

२६ कर्णशूल पर—इसके ½ सेर फल के छोटे-छोटे टुकडे कर १ सेर तिल-तैल मे मिला कर मन्द आच पर पकाते हैं। तथा जब फल के टुकडो का रग बादामी हो जाता है, तब तैल को छानकर उसमे १ तो० अफीम को घोट कर मिला देते हैं। यह कान की पीडा पर लाभकारी है।

२७ ग्रन्थि-शोथ पर—इसके १ फल के साथ, कुचला-बीज १ नग, तथा काला जीरे का चूर्ण, एलुवा (मुसब्बर) व मोचरस १-१ तो० एकत्र सेहुण्ड के दूध मे खूब खरल कर, बत्ती बनाने योग्य गाढा हो जाने पर ३-३ माशे की बत्तिया बनाले। इस बत्ती को साफ पत्थर पर जल के साथ घिसकर लेप करने से शीघ्र ही भयकर ग्रन्थि-शोथ मिट जाता है। दिन मे २-३ बार इसका

लेप करना चाहिए। इसे 'ग्रन्थि-शोथहर-वर्त्तिका' कहते है ।

२८ पागल कुत्ते के काटने पर—इसके फल को शहद मे भलीभाति खरल कर, काटे हुए स्थान पर लेप कर देने से, कुछ बार के लेप से, विष का प्रभाव दूर होकर पागल होने की सम्भावना न रहेगी ।

—ह० मौ० मो० अ० साहब ।

मूल—

२९ उपदंश पर—धतूरे की जड को छायाशुष्क कर, महीन चूर्ण करले, शीशी सुरक्षित रक्खे । आवश्यकता के समय इसमे से १ रत्ती (२ चावल) की मात्रा मे, पान मे रख कर खिलाया करे । कुछ मात्राओ के सेवन से रोग समूल नष्ट हो जावेगा ।

३० उन्माद पर—श्वेत धतूरे की उत्तर दिशा को गई हुई जड की छाल (लगभग १२ रत्ती) का चूर्ण आध सेर जल मे घोलकर, इसमे ५ तो० पुराने चावलो को पकावे । फिर उसमे १ सेर गोदुग्ध तथा आध पाव गुड (गुड के स्थान में मिश्री लेना ठीक होगा) एव २।। तो० गोघृत मिला, खीर तैयार कर सेवन करने से समस्त दोषज उन्मादो की शाति होती है ।

—चक्रदत्त ।

३१ शूल (शारीरिक पीड़ा)—इसकी एक बित्ते की जड, अगुली की तरह मोटी लेकर, उसके चारो ओर १। तो० लालमिर्च को डोरे से बाध दे । फिर धुला कपडा चौथाई गज, एक तख्ते पर फैला कर उसके ऊपर ३ मा० सखिये का चूर्ण छिडक दें, और उसी कपडे मे मिर्चा लिपटी हुई उक्त जड को लपेट कर एक पलीते की तरह बनाले । कपडे को होशियारी से इस प्रकार लपेटना चाहिये, जिससे उसके ऊपर छिडका हुआ सखिया-चूर्ण इधर-उधर न हो जाय । उस पलीते को, १० तो० कडुए तैल (सरसो तैल) मे अच्छी तरह चुपड कर चिमटे से पकड आग लगादें । उसमे से जो तैल टपके, उसे एक कटोरी मे इकट्ठा करते जाय । तैल टपकना बन्द हो जाने, एव पलीता तैल के बिना बुझ जाने पर, कटोरी मे इकट्ठा किया हुआ तैल शीशी मे रख लें। ध्यान रहे यह तैल जहरीला है, अत इसके धुए से आखो को बचाना, तथा तैल बना लेने या व्यवहार कर लेने के बाद हाथो को गोबर या मिट्टी से अच्छी तरह मलकर साफ कर लेना आवश्यक है ।

दर्द वाली जगह पर इस तैल की मालिश कर सेकना चाहिये । ज्यादा कष्ट की दशा मे, दिन-रात मे ३-४ बार इसका मर्दन किया जा सकता है । दर्द मे शीघ्र लाभ होता है । (अनुभूत योग भा० २)

३२ श्वास पर शर्बत—जड की छाल ५ तो० जौकुट कर ४० तो० जल मे पकावे । १० तो० जल शेष रहने पर, छानकर उसमे आधा सेर शक्कर या चीनी मिलाकर शर्बत की चाशनी तैयार करलें। मात्रा—६ मा० तक, एक से तीन बार तक श्वास रोगी को देने से विशेष लाभ होता है । आगे प्रयोग न० ३८ देखे ।

३३ गर्भनिरोधार्थ तथा गर्भ-रक्षार्थ और स्वप्न-दोष पर—इसकी जड़ पुष्य-नक्षत्र मे (कृष्णपक्ष की १४ तिथि को) उखाडी हुई, स्त्री अपनी कमर मे बाधकर सभोग करे तो गर्भ नही रहता । राड वैश्यादि स्त्रिया प्राय ऐसा ही करती हैं।[1]

यही योग गर्भ-रक्षक भी है । गर्भावस्था मे इसकी जड़ को कमर मे बाध लेने से गर्भ-पतन नही होता । पूर्ण समय व्यतीत होने के बाद बच्चा पैदा होने पर या गर्भ की अवधि पूर्ण होने पर जड़ को खोल देना चाहिए ।

स्वप्न दोष पर भी यही योग काम देता है । लगभग ३ या ६ मा० का, काले धतूरे की जड का टुकड़ा कमर मे बाधे रहने से वीर्यस्राव नही होने पाता ।

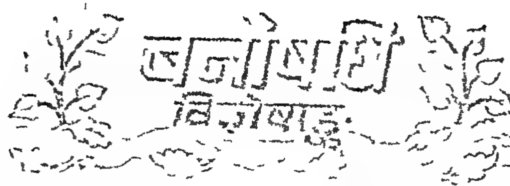
(३४) सिध्म कुष्ठ (सेहुआ, सफेद छीप (Pityriasis Versicolor)—काले धतूरे की जड का चूर्ण और शुद्ध आमलासार गंधक समभाग एकत्र खरल कर, जम्बीरी नीबू के रस मे घोटकर लेप करने से सिध्म दूर हो जाता है ।

—रसेन्द्रसारसग्रह ।

(३५) नेत्रान्ध्य की दशा मे—धूर्त लोग पैसा कमाने की दृष्टि से, अन्धे की आखो मे, इसकी जड को पानी मे घिस कर सलाई से लगा देते है । तत्काल आंख

---

[1] "धत्तूर-मूलिका पुष्ये गृहीता कटिसंस्थिता । गर्भनिवारयत्येव रण्डा वेश्यादि योषिताम् ।" —यो० त०



की पुतली फैलकर क्षण भर के लिये अन्धे को धुंधला सा दीखने लगता है। किन्तु जब दवा का प्रभाव जाता रहता है, तो अन्धे की दशा पूर्ववत् हो जाती है। ऐसे धूर्तों से सावधान रहना चाहिये। नेत्र जैसे कोमल अग मे इसका इस प्रकार का प्रयोग उचित नही है।

ह. मौ. मो. अ. साहब।

(३६) शोथ पर—जड के साथ तना व पत्तो को जल मे पीस किंचित उष्ण कर शोथ से पीड़ित स्थान पर लेप करने से शोथ नष्ट होती है। यदि फोडा भी उठ रहा हो, तो प्रारंभिक अवस्था मे दब जाता है। परीक्षित है। यह योग पशुओ के शोथ पर भी लाभकारी है। श्री डॉ सत्यनारायण खरे आयुर्वेदाचार्य ककवारा (झासी)

फूल--

(३७) वीर्यस्तम्भनार्थ—धत्तूर-पुष्पो के भीतर का जीरा लेकर, छाया मे सुखा लें और सम्भोग करने के १ घण्टा पूर्व (२ चावल की मात्रा मे) हलुवा मे रख कर (या पान मे रखकर) खिलावे। अत्यधिक स्तंभन होता है। ह. मौ मो. अ साहब।

(३७) गर्भधारणार्थ—जिन स्त्रियो को गर्भ न रहता हो, उनकी मासिक धर्म की विकृति को प्रथम उचित उपचार से ठीक कर, छायाशुष्क धत्तूर पुष्पो का चूर्ण १ रत्ती को घृत और शहद ६-६ मा. मे मिला, ऋतुस्नान के पश्चात् ७ दिन तक देवें। —अ यो माला।

श्वास आदि पर—विशिष्ट योगो मे धत्तूर-पुष्पासव देखें।

पचाङ्ग—

(३९) कास, श्वास और हिक्का पर—धतूरे के पूरे पौधे के पचाग को पीसकर लुगदी बना उसमे देशी अजवायन और काला नमक २-२ तो मिला हाडी के भीतर रख, कपरौटी कर १० सेर उपलो की आच मे फूक दे। बिल्कुल शीतल हो जाने पर अन्दर की भस्म निकाल लें। १ रत्ती की मात्रा मे पान मे रख कर खिलाया करें। कफजन्य कास के लिये अत्यन्त अचूक एव प्रभावकारी औषधि है। पहली मात्रा मे ही रोगी को लाभ होता है। —ह मौ. मो. अ. साहब।

काले धतूरे के छाया शुष्क पचाग का चूर्ण चिलम मे रख या उसकी बीडी बना पिलाने से भी कास, श्वास में विशेष लाभ होता है। इससे कफ छूट कर छाती हलकी होती, बहुत कफ निकलता है। किन्तु थोडी देर मे चक्कर आने लगते, जी मिचलाता तथा नशा आता है, कभी २ वमन भी होती है। जिसे ऐसे विकार हो तथा जिस व्यक्ति के मुख एव नेत्रो के आसपास सूजन हो उसे यह प्रयोग कदापि नही कराना चाहिये।

हिक्का या हिचकी मे भी चूर्ण की बीडी या सिगरेट बनाकर धूम्रपान कराने से शीघ्र ही हिचकी बन्द हो जाता हैं। चिलम या हुक्का मे भी इसे रख कर पिलाया जा सकता है, किंतु मात्रा बहुत कम होनी चाहिये, अन्यथा हानि की सभावना है।

श्वास मे इसका प्रयोग इस प्रकार विशेष लाभकारी है। पंचाङ्ग के महीन चूर्ण को कलमी सोरा के पानी से भावित कर सुखाकर तथा उसमे थोडा अड्डसा-पत्र चूर्ण मिलाकर रख लें। ६ रत्ती चूर्ण की बीडिया बना धूम्रपान करने से दमा का वेग तत्काल बैठ जाता है तथा कफ बाहर निकलता है। —स्वानुभूत।

दमे का सिगरेट इस प्रकार बनाते हे—काले धतूरे का पचाङ्ग ५ तो के साथ भाग ५ तो. मिला कर कूट कर तार की चलनी से छान लें। फिर इसे तामचीनी, काठ या पत्थर के किसी पात्र मे रख, कलमी सोरे के जल के छीटे मार कर अच्छा मुलायम करलें। सिगरेट बनाने के कागज मे थोडा चूर्ण रख लेई या अरारोट के जल से उसे साट दे। इसके व्यवहार से दम का दौरा रुक जाता है और रोगी को नीद आ जाती है। ध्यान रहे, जिस समय दमे का दौरा हो एव वह जोर पकड रहा हो, उस समय एक सिग्रेट पीकर ऊपर से पाव आध पाव गाय का गुनगुना दूध पीने से इस धूम्रपान की खुश्की या गरमी के कारण रोगी बेचैन नही होने पाता।

—अनुभूत योग भा २।

उक्त धूम्रपान की गरमी दूर करने के लिये रोगी को प्रतिदिन मक्खन या घृत तथा मिश्री १-१ तो मे १ मा काली मिर्च का चूर्ण मिला कर सेवन करना हितकर है।

(४०) वात पीडा पर—इसके पचाङ्ग के रस मे समभाग सरसो तैल मिलाकर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर शीशी मे भर रखे। इसकी मालिश कर ऊपर रेंडी-पत्र वाध देने से पीडा दूर हो जाती है। इस तैल से सूखी खाज भी मिट जाती हे। —अथवा

उक्त रस मे—तिल तैल सिद्ध कर मालिश करे और धतूर पत्र वाध देने से भी लाभ होता है।

(४१) मलेरिया ज्वर पर—पचाग का क्षार, क्षार विधि से निकाल कर शीशी मे सुरक्षित रखे (विशिष्ट योगो मे धत्तूर क्षार देखे) आवश्यकता के समय रोगी को केवल १ रत्ती से २ रत्ती तक खाड मे रख कर खिलावें। कुनैन की वेजोड की औषधि है।

—ह मौ मो. अ साहव।

(४२) पामा-खुजली पर—विशेषत. हाथो की उगलियो पर पूयमय पीले फोडे हो, जिसमे वहुत खुजली चलती है उस पर इसके पचाग को जलाने पर, धुआ निकल जाने पर किसी पात्र से ढक दें। काली राख हो जाती हे, उसे घृत मे मिलाकर लगाने से लाभ होता है। इसकी काली राख ही लेनी चाहिये श्वेत राख नही।

—गा औ र

(४३) अफीम का प्रतिनिधि—इसके पचाङ्ग का जौकूट चूर्ण १ सेर लेकर, १० सेर पानी मे भिगो दें, तथा आक के १ सेर फून किसी अलग पात्र मे १० सेर पानी मे भिगोकर ४८ घटे वाद दोनो जलो को एक कढाई मे पकावें। केवल २ सेर पानी शेष रहने पर, उतार कर, ठडा होने पर मसलकर छान ले। और इस पानी को पुन पकावें। अफीमची को अफीम के चतुराश के वरावर खिलावें। पूरा नशा देगी। फिर धीरे २ कम करते जावें और छोड दें। अफीमची की अफीम छूट जावेगी। दूध घी खूव खिलावें जिससे कोई हानि न पहुंचे। यदि इस योग मे आक के फूल न मिलावें और उक्त विधि से तैयार कर लें, तो वह धतूरे का घनरस होगा, जो कि वहुत ही काम की वस्तु है। वैद्य इससे मनमाना लाभ उठा सक्ते है। ह. मौ मो अ साहव

नोट—मात्रा-पत्र-चूर्ण १/२ से १1/2 रत्ती। धूम्रपानार्थ पत्र-चूर्ण ५ से १५ रत्ती। वीजचूर्ण १/४ से १/२ रत्ती। सत्त्व १/४ ग्रेन। बीजो का टिंक्चर ५ से १५ बूंद। पत्र-स्वरस ५ बूद से ३ मा. तक, किन्तु पागल कुत्ते या सियार के काटने पर अधिक मात्रा १/२ तो से १ तो तक दी जा सकती हे।

जिस रोगी के वृक्क(मूत्रपिण्ड) सदोप होने से नेत्र के चारो ओर शोथ हो, या जिसे हृदय की कोई व्याधि हो, उसे इसका धूम्रपान आदि किसी प्रकार का भी सेवन कराना हितकारी नही है। यदि उसे धत्तूर प्रधान कोई औषधि देनी हो, तो अति कम मात्रा मे तथा सम्हाल पूर्वक देवें। ध्यान रहे क्षत या व्रणो पर इसकी पुल्टिस वाधने से या इसके रस के मसलने से, उसका असर रक्त मे हो जाता है, जो अधिक होने पर नशा ला देता है।

गा औ. र।

अधिक मात्रा मे यह प्रलाप और उन्माद पैदा करता है। इसके निवारणार्थ-दूध, मक्खन, घृत, कालीमिर्च और सौफ का सेवन कराते हैं।

धतूरे से जो डेट्यूरिन नामक उपक्षार प्राप्त किया जाता है, उसकी मात्रा—१/६० ग्रेन से १/२० ग्रेन तक है। सव प्रकार के धतूरो मे प्राय उक्त प्रमुख विषघटक एक समान होता है। किन्तु वीजो मे अधिक होता है। पत्र, फूल, फल व मूल इनमे प्रात काल विप की अधिकता होती है। अत इन्हे प्रात लाकर उपयोग मे लाना ठीक होता है। तथा ये अङ्ग ताजी गीली अवस्था मे ही श्रेष्ठ होते हैं। किंतु गीले, ताजे वीजों की अपेक्षा शुष्क वीज अधिक विषाक्त होते हैं।

प्रतिनिधि—धतूरे का प्रतिनिधि-खुरासानी अजवायन, वेलाडोना या अफीम है।

घातक मात्रा—वीज ५ रत्ती, सत २1/4 से ५ रत्ती तक तथा पत्र-रस २ तो घातक मात्रा है। वीजो का या पत्तियो और डालियो का क्वाथ भी इसी परिमाण मे घातक हो सकता हे। इससे कम मात्रा होने पर केवल वेहोशी होगी। प्राय प्रतिशत २ से ४ तक मृत्यु होती है। शेप उपचार करने पर अच्छे हो जाते है।

वगाल और पजाव की ओर के धतूरे मे विष अधिक होता है। वहा प्रतिशत २० मनुष्य इसके नशे से मर जाते हैं।

धतूरे के लगभग १०० बीजो का वजन १० रत्ती या २० ग्रेन होता है ।

विषाक्त प्रभाव तथा उपचार—अधिक मात्रा मे या अशुद्ध बीजो का प्रभाव बेलाडोना जैसा ही उन्मादकारी होता है । विशेषता यही है कि इसका प्रभाव श्वास-नलिका पर अधिक होता है । श्वासनलिकाये शिथिल हो जाती है । इसका विष किसी भी प्रकार से उदर मे पहुचने पर प्राय १० मिनट से ३० मिनट के भीतर ही बेहोशी होने लगती है, गला सूखना, प्यास खूब लगती, गले मे सूजन, सिर मे चक्कर आना, मुखमण्डल उष्ण एव लाल हो जाना, स्वर मे विकृति, नेत्रो की पुतलिया फैल जाना, नाडी तीव्र चलती, किन्तु कुछ समय बाद दुर्बल या मन्द हो जाती है । शरीर की त्वचा सूख जाती, तापक्रम बढते जाना १०२ से १०७ डिग्री तक बढ जाता है । प्रलाप करता, कभी हसता, कभी रोता, कल्पित वस्तुओ को पकड़ने के लिये दौडता, हाथो को इधर उधर बार-बार चलाता (यह इसके विष का मुख्य-लक्षण है) है । पूर्ण पागल जैसा वर्त्ताव करने लगता है । फिर गले का सूखना यहा तक बढ जाता है कि वह कोई वस्तु निगल नही सकता । कुछ समय बाद निश्चेष्ट हो जाता, तापक्रम साधारण से भी कम हो जाता, त्वचा शीतल कुछ स्वेदयुक्त हो जाती, नाडी अतिमन्द हो जाती है । किसी २ के सारे शरीर मे ऐंठन एव आक्षेप होने लगता है । ऐसी अवस्था होने पर भी उचित उपचार से कोई अच्छे हो जाते हैं । मृत्यु प्राय हृदय श्वास-क्रिया के अवरोध से होती है । दीपक के प्रकाश मे इसका विष और अधिक जोर पकडता है ।

उपचार—इसके विष से सहसा मृत्यु नही होती, उचित उपचार से प्राण रक्षा हो सकती है । विष से आक्रान्त व्यक्ति को प्रारभ मे ही तुरन्त वमन या उदर प्रक्षालन द्वारा आमाशय साफ करें । वमनार्थ रीठा फल की छाल का घोल, या सेंधानमक का गर्म पानी का घोल, राई चूर्ण का घोल, या नीम-पत्र का क्वाथ, या जिंक सल्फास का घोल या इपीकेकुआना का गरम पानी मे घोल या एपोमार्फीन $\frac{1}{20}$ रत्ती को वाष्पोदक मे घोलकर इजेक्शन लगावें । और पोटाशियम परमेगनेट के घोल से उदर पम्प द्वारा प्रक्षालन करे ।

यदि देरी हो जाने से विष का प्रभाव पाकस्थली तक पहुँच गया हो, तो उक्त वमन एव उदर प्रक्षालन की क्रिया के कुछ देर बाद ही विरेचन करावे । खुश्की अत्यधिक बढ जाने के कारण साधारण विरेचक औषधिया इसमे काम नही करती । या विरेचन की क्रिया ठीक प्रकार से नही हो पाती । अत शुद्ध एरण्ड तैल ५ तो से २० तो तक पिलाया जा सकता है, इससे विरेचन के साथ ही साथ खुश्की भी दूर होगी ।

फिर इसके विष प्रभाव के नाशार्थ तुरन्त ही—

(अ) बिनौली की मीगी २ से ४ तो. तक १० या २० तो जल मे घोट छानकर उसमे सुहागा की खील २ मा. मिलाकर पिलावे । यह इस विष का सर्वोत्कृष्ट अगद है ।

धतूरा और कपास के पौधो मे गुण की दृष्टि से प्राकृतिक वैपरीत्य देखा जाता है । धतूरा के प्रत्येक अङ्ग के विष प्रतिकार की सामर्थ्य कपास के प्रत्येक अङ्ग मे है, जैसे धत्तूर-बीज के विष-प्रतिकारार्थ कपास बीज की मीगी लगभग ४ तो. पानी मे घोट छान कर पिलाने से, धत्तूर पत्र विष के नाशार्थ कपास पत्र पीस कर पिलाने से, धत्तूर-मूल के विष पर कपास की जड, फूलो का विष दूर करने को कपास के फूल, फल का विष हो तो कपास के बोंड (कच्चे फल) पीस कर पिलाने से लाभ होता है । यदि निश्चय न हो, कि धतूरे के किस अंग का विष-प्रयोग किया गया है, तो कपास के पौधे का पचाग पीस कर पिलावे ।—अथवा—

(आ) शखाहूली (शख पुष्पी) की जड को घोट छान कर मिश्री मिला कर पिलावे । या गौदुग्ध १ सेर तक लेकर उसमे ४ तो गौघृत और ८ तो मिश्री मिला-कर पिलावे । या पेठे के २० तो रस मे कुछ गुड मिला-कर पिलावें ।

(इ) पाश्चात्य वैद्यक के अनुसार-फाइसोस्टिग्मीन या पाइलोकार्पीन ($\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ ग्रेन) का इजेक्शन प्रयोग बहुत सावधानीपूर्वक किया जा सकता है । यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इंजेक्शन लगाते है । उत्ते-जनार्थ-कार्डियाजोल या मकरध्वज देते हैं । शरीर की

उष्णता के रक्षार्थ उष्णोदक से भरी बोतलो का सेक करे। श्वासावरोध की अवस्था मे कृत्रिम श्वास क्रिया करावे।

विशिष्ट योग—

(१) धत्तूरार्क—बीजो का अर्क निकालने के लिए—राजधत्तूर (काला या श्वेत धत्तूर) बीजो का चूर्ण ५-औंस, ऊंची शराब या स्पिरिट ४० औंस इन दोनो को मिला, काच की बोतल मे काग लगाकर ८ दिनो तक रख छोडें। उसे बीच २ मे हिला दिया करें। फिर छान कर बीजो को दबा कर सब अर्क निकाल ले। (पर्कोलेशन यंत्र द्वारा अर्क टपकाले)। तथा ४० औंस भरे तब तक उसमे शराब डाल कर ४० औंस तक पूरा कर दे। बोतल कुछ खाली रहे। मात्रा ५ बूंद से क्रमश १० से १५ बूंद तक दे सकते है। इस अर्क की १० बूंदे, आधी रत्ती अफीम के समान कार्यकारी होती है। यह अवसादक और मादक है। अफीम के सत्वार्क या मार्फिया के स्थान मे इसका उपयोग हो सकता है।

धत्तूर-पत्रो का स्थायी सत्वार्क निर्माणार्थ—छाया-शुष्क ताजे पत्र २० भाग, १०० गुना देशी शराब मे ८ दिन रख छोडे। बीच बीच मे बोतल को खूब हिला दिया करें। पश्चात् छानकर या पर्कोलेशन यंत्र द्वारा अर्क निकाल कर उसमे १०० गुना पूर्ण होने तक और भी शराब मिला, बोतल मे भर रक्खें। मात्रा-५ बूंद से १५ बूंद तक आवश्यकतानुसार देवें।

(२) सत्व (घन) धत्तूरा—४० भाग धतूरे के बीजो के चूर्ण को ९० भाग अलकोहल मे मिलाकर (या १२३/४ तो बीज चूर्ण को शराब (७०%) ५० तो मे मिलाकर) पर्कोलेशन यंत्र द्वारा दबाकर सत्व निकाल लें, तथा छान कर सुखाकर गाढा कर ले। इसकी मात्रा १ चावल से ४ चावल तक है।

(३) धत्तूर-टिंक्चर और आसव—इसके छाया शुष्क २० पत्तो के चूर्ण को १० तो० अल्कोहल मे भिगो कर पर्कोलेशन विधि से टिंचर तैयार किया जाता है। इसकी मात्रा-५ से १५ बूंद तक है।

बीजासव—इसके बीज ८ तो० मोटा चूर्ण कर उसमे ऊंची शराब (७० से ९०%) ५० तो. मिला, बोतल मे मजबूत कार्क लगा कर ८ दिन तक रहने देवें। प्रतिदिन कम से कम एक बार हिला दिया करें। पश्चात् फलालेन द्वारा छानकर सब अर्क निचोड लें। यदि ५०-तो. से कम उतरे तो और भी उक्त शराब मिला ले। यह उक्त न०१ का धत्तूरार्क ही है। मात्रा १५ बूंद तक। यह शीघ्र वेदनाशामक, ज्वरघ्न और मादक है। स्नायु का शिथिल करना तथा श्वासमार्ग के विकारो (कास, श्वासादि) पर अत्यंत लाभदायक है। इसे अंग्रेजी मे टिंक्चर स्ट्रामोनियम कहते है। इसे यदि अहिफेनासव और विजयासव के साथ दिया जाय तो श्वास का दौरा तत्काल कम हो जाता है। अनेक प्रकार के शूल, अनिद्रा, ग्रहणी, अतिसार, उन्माद, अपस्मार एव नपुंसकत्व आदि मे भी इसकी योजना विशेष लाभ-दायक होती है।

इसके आसव के अन्य प्रयोग (कनकासव आदि) हमारे वृहत् आसवारिष्ट संग्रह मे देखिये। कनकासव का सरल प्रयोग इस प्रकार है—इसके पचाङ्ग को तथा अडूसे की जडके छिलके को कूट कर १६-१६ तो, मुलठी, पिप्पली, छोटी कटेरी, नागकेशर, सोठ, भारंगी, तालीस पत्र ८ ८ तो, धाय के फूल ६४ तो, द्राक्षा १ सेर, जल १ मन ११ सेर, खाड ५ सेर, मधु २३/४ सेर, इन्हे मिश्रित कर, संधान पात्र मे बन्द कर १ मास तक रहने दे। आसव तैयार होने पर छान कर, मात्रा ३/४ से २ तो तक मे समभाग जल मिला, भोजन के बाद दोनो समय सेवन से श्वास, कास, यक्ष्मा, क्षतक्षय, जीर्णज्वर, रक्त-पित्त, उर क्षत आदि रोग नष्ट होते हैं। —(भैं०र०)

फुफ्फुस विकृतिजन्य श्वसनकज्वर (ब्राकोनिमोनिया) ग्रस्त-बालक को, चाहे ज्वर १०१ से १०३ तक भी हो तो भी इस आसव की मात्रा-१ चाय के चम्मच भर मे १० बूंद मधु और थोडा जल मिलाकर देने से लाभ होता है।
—डा० नाडकर्णी।

(४) धत्तूर पुष्पासव (इन्जेक्शनार्थ)—काले धत्तूर के पुष्प १ तो को काच या चीनी के शुद्ध खरल मे खूब घोट कर १ औंस मद्यार्क या रेक्टिफाईड स्प्रिट

मे मिला, शीशी मे बन्द कर ७ दिन बन्द रखा रहने दे । पश्चात् फिल्टर-पेपर द्वारा छान कर शीशी मे पुन: ५ औंस उत्तम सुरा या मद्यार्क मिला कर शीशी मे अच्छी तरह सुरक्षित रक्खें । मात्रा २ से ५ बूद । इसका बाहुमूल मे हायपोडर्मिक इजेक्शन दिया जाता है। इसका विशेष प्रभाव श्वासनलिका, फुफ्फुस, वातसंस्थान-नाडी मंडल पर होता है । सुषुम्ना तथा मस्तिष्क पर भी यह प्रभाव करता है । इसके प्रयोग से श्वास, कास, क्षयकास, कफवृद्धि, कंठ मे घुर-घुर या सांय-सांय शब्द होना पूर्णरूप से दूर होता है । शीतकाल मे इसका इंजेक्शन ४ थे दिन तथा उष्णकाल मे प्रति सप्ताह दिया जाता है । विषाक्त होने के कारण इससे दुर्गुण होने पर ठडे जल से स्नान कराना, दूध पिलाना, तथा बिनौला (Cotton seeds) का इंजेक्शन देने से सब अहितकर प्रभाव दूर हो जाता है । पथ्य मे केवल दूध, साबूदाना, सेव, अनार आदि देवे ।

५ धत्तूर-क्षार—इसके पचाङ्ग को छायाशुष्क कर, जला कर राख हो जाने पर उसे एक मिट्टी के कूंडे मे डाल, आठ गुना पानी मिला, दिन मे ३-४ वार धतूरे की लकड़ी से हिला दिया करें । २० दिन के बाद, ऊपर का साफ निथरा हुआ पानी लेकर पकावें । सब पानी जल जाने पर इसका जो श्वेत-क्षार प्राप्त होगा, उसे शीशी मे सुरक्षित रक्खें ।

मात्रा—१ रत्ती, मक्खन या मलाई मे रखकर देते रहने से आधाशीशी, ज्वर, शीघ्रपतन, इन्द्रिय-शैथिल्य, गठिया, आमाशय की दुर्बलता तथा खासी के लिये विशेष लाभदायक है । यह मलेरिया-ज्वर नाशार्थ कुनैन का प्रतिनिधि है, केवल १ से २ रत्ती तक खाड मे रखकर खिलावे । —हृ० मौ० मो० अ० साहब ।

६. धत्तूर-तैल—इसका पचाग का जौकुट चूर्ण २ सेर को १६ सेर पानी में पकावे । चतुर्थांश क्वाथ शेष रहने पर, छानकर उसमे १ सेर सरसो-तैल और ६ तो० ८ मा० धतूरे का कल्क मिलाकर पुन पकावे । तैल सिद्ध हो जाने पर छानकर रख लें । यह तैल मर्दन एव नस्य द्वारा आवश्यकतानुसार प्रयुक्त करने पर सन्निपात ज्वर, कफज-शोथ, शिर शूल, दाह, कर्णरोग तथा अस्थि-सधिग्रह (सधियो की जकडन) को दूर करता है । इसके लगाने से जू, लीक आदि भी नष्ट हो जाते हैं । —भै० र०

७ कनक वटी—धत्तूर-बीज (काले धतूरे के हो तो उत्तम या साधारण भी ले सकते है) १२ भाग, रेवन्दचीनी ८ भाग, सोठ (बगैर रेशे की) ७ भाग, फिटकरी की खील, सुहागा खील और गोद-बबूल, ६-६ भाग, सबका चूर्ण कर, धत्तूर पत्र स्वरस की भावना देकर उडद या चने जैसी गोलिया बनाले ।

दिन मे केवल १ वार, रोगी के बलानुसार १ से २ गोली तक, ज्वर-वेग के २ घण्टे पूर्व, जल के साथ देने से ज्वर रुक जाता है । कभी कभी सदैव के लिये नष्ट हो जाता है । वात-श्लेष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएन्जा) मे भी इसका अच्छा प्रभाव होता है । वहा इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है । इस प्रयोग मे रेवन्दचीनी के स्थान पर रेवन्द खताई का योग करने से इसमे सरलतापूर्वक विरेचन शक्ति भी आ जाती है । यह वात-कफ-प्रधान रोग प्रतिश्याय, मन्यास्तम्भ आदि की अद्वितीय प्रभावजनक अव्यर्थ महौषध है । सहस्रश अनुभूत है । —अनुभूत योगचर्चा भाग १

अथवा—उक्त धत्तूर-बीज १ तो०, रेवन्दचीनी ४ तो०, बिना रेशे की सोठ २ तो० इनका महीन चूर्ण कर बबूल-गोंद मिला पानी या शहद के मिश्रण से काली मिर्च जैसी गोलिया बनालें । १ से २ गोली तक पानी के साथ रात्रि के समय लेने से मासिक धर्म की अनियमितता, कास, श्वास, ज्वर आदि मे लाभ होता है । आधाशीशी दर्द प्रारम्भ होने से २ घटा पूर्व २ गोलिया और फिर १ घटा बाद २ गोली देने से शीघ्र लाभ होता है । —हृ० मो० म० अ० साहब ।

कनक वटी न० २—पका हुआ धतूरे का डोडा (फल) लेकर ऊपर-ऊपर से ४ फाक कर, उसके बीच मे लोहे की कील से कुचले, तथा उस डोडे के समान वजन मे लौग लेकर जितने लौग उसमे समा जावे, उतने भर कर, ऊपर धत्तूर-पत्र लपेट सूत से बाध दें । ऊपर

मिट्टी का लेप कर, वाटी की तरह (कण्डो की आच पर) सेक लेवे। मिट्टी लाल हो जाने पर, डोंडे को निकाल कर, पहले जो लाग भरने के समय बच गये हो, वे भी मिलाकर ३ घण्टे तक धत्तूर-पत्र रस मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया वनाले। प्रात-साय दिन मे दो वार जल के साथ १ से २ गोली तक देने से जीर्ण-ज्वर, जीर्ण कास, कफ-प्रधान श्वास रोग और निद्रा-नाश पर लाभ होता है। —गा० औ० र०।

८ वातपन्नग वटी—धतूरे के पके हुए डोडे २ सेर, सोठ के टुकडे १ सेर और अजवायन ½ सेर लेकर, प्रथम एक मिट्टी के घडे मे कुचले हुए डोडे १ सेर बिछाकर, ऊपर सोठ तथा उस पर अजवायन फैला, सब पर शेप १ सेर डोडे कुचल कर विछादे। फिर ४ अगुल ऊपर रहे उतना जल भर कर ढक्कन ढक, चूल्हे पर चढा मद-मद अग्नि देवे। लगभग ६ घण्टे बाद जल सूख जाने पर, सोठ को निकाल छायाशुष्क कर महीन चूर्ण कर ले। इस चूर्ण मे २ तो० शुद्ध हिगुल व १ तो० कपूर मिला, पोदीने के रस मे ६ घटे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया वनाले। १ से २ गोली दिन मे २ वार जल के साथ सेवन से अफारा, अग्निमाद्य, उदावर्त्त एव उदर-वात दूर होती है। आमाशय और अन्त्र की उग्रता शात होती है। नये व पुराने रोगो मे भी तत्काल प्रभाव होता है। —रस तत्रसार भा० २

९ कामिनी दर्पघ्न रस—शुद्ध पारद, गधक १-१ तो० मिलाकर, १ दिन (१२ घटे) धत्तूर-बीजो के तैल मे घोटकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा—½ रत्ती, खाड के साथ (या मिश्री युक्त दूध के साथ) सेवन करने से समस्त प्रमेह नष्ट होते, वीर्य पुष्ट होता, कामेच्छा उत्तेजित होती व वीर्य स्तम्भन होता है। यह उत्तम स्त्री-द्रावक है। —भै० र०

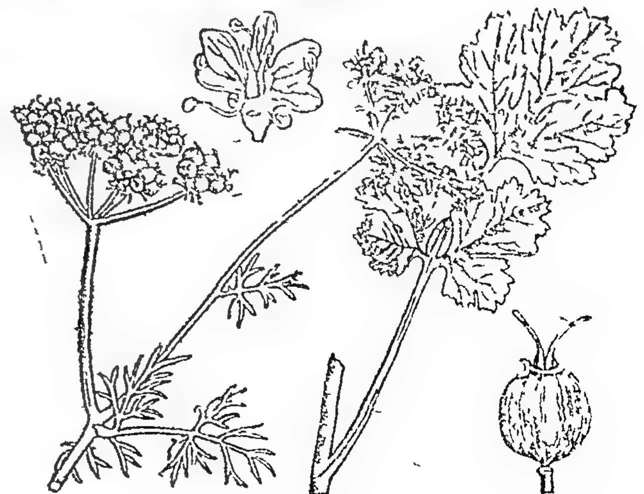
इसे ग्रन्थान्तरो मे 'मानिनी मानमर्दन रस' व विलासिनीवल्लभ रस आदि कहा गया है।

नोट—धतूरे के योग से-ताम्र, वंग, हरताल, हिंगुल, मल्ल, अभ्रक आदि की भस्में भी निर्माण की जाती है। तथा रसशास्त्र में-मृत्युञ्जय रस, सन्निपात भैरव, कनकसुन्दर रस, अगस्तसूतराज, उन्मत्त रस, खेचरी गुटिका आदि कई प्रयोगो मे धतूरे की योजना कीगई है। जो सब विस्तार-भय से हम यहा नहीं लिख सकते।

धनबहेडा—दे०—अमलतास। धनमरवा—दे०—सर्पगन्धा। धन्वन—दे०—धामिन।

धनियाँ (Coriandrum Sativum)

हरीतक्यादि वर्ग एवं शतपुष्पाकुल (Umbelliferae) के इस वर्षायु, अनेक कोमल शाखा प्रशाखायुक्त, सुगधित १ से २ फुट तक ऊचे क्षुप के पत्र—विषमवर्ती, जड के निकट के पत्ते गोलाकार ३-४ या ५ भागो मे विभक्त, प्रत्येक भाग कटे किनारे एव कगूरेदार, तथा शाखाओ के पत्र कुछ लम्बे से, सोआ या सौफ के पत्र जैसे, फूल—कुछ नीलाभ श्वेत वर्ण के, छतरीदार, फल—दो कोष्ठयुक्त, गोलाकार, रग मे पीताभ भूरे या हरे, गुच्छो मे छत्राकार होते है। फलो को ही धनिया कहते हैं। हरी-ताजी दशा मे पत्र, फूल फलादि को कोथमीर कहते है। कोथमीर चटनी आदि तथा सूखी (धनिया) मसाले आदि के काम मे आती है। इससे मिर्च की तेजी कम हो जाती है।



यह प्रायः समस्त भारतवर्ष में, रबी की फसल, चना गेहूं आदि धान्यों के साथ बोई जाती है, तथा उन्हीं धान्यों के साथ यह भी पक कर तैयार हो जाने पर काट ली जाती है, इसी से या इसके बीज क्षुद्र धान्य सदृश होने से या धान काटने के बाद उसी क्षेत्र में बोई जाने से धान्यक, धानक या धनिया कही जाती है।

नोट—(१) चरक के तृषानिग्रहण तथा शीतप्रशमन एवं सुश्रुत के गुडूच्यादि गणो में इसकी गणना की गई है।

(२) एक वन्य या वनधनिया होती है, जिसे जल-

देवकांडर (जलधनियां)

Ranunculus sceleratus Linn.



धनिया कहते हैं। इसका वर्णन जलधनिया के प्रकरण में देखिये। प्रस्तुत प्रसंग की धनिया से मिलती जुलती एक और वनधनिया होती है जिसे मराठी में 'परिपाठ' कहते हैं। इसके पौधे लगभग १ हाथ ऊंचे, वर्षाकाल में नैसर्गिक खेतों में या नदी आदि जलाशयों के किनारे, दक्षिण के महाराष्ट्र प्रान्तों में बहुत देखे जाते हैं। पत्र—धनिया के पत्र जैसे ही किंतु कुछ बारीक व लम्बे से तथा फल—धनिया जैसे ही गोल होते हैं। यह सूखने पर काली पड जाती है। यह शीतवीर्य, ज्वर एवं दाहशामक, कटु-पौष्टिक तथा किंचित् रेचन गुण विशिष्ट है। पित्त पापडा के स्थान में इसका उपयोग किया जाता है। पित्त एवं वातप्रधान ज्वरों में यह दी जाती है। कण्ठ तथा श्वास-नलिका के शोथ पर इसका शुष्क चूर्ण चिलम में रख कर धूम्रपान करने से लाभ होता है। यकृत् के विकारों पर इसके पंचाङ्ग का क्वाथ उपयोगी है। हाथ पैरों की जलन पर इसके स्वरस का मर्दन करते हैं। खुजली में इसकी काली राख नारियल तेल में मिलाकर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।[1]

---

[1] एक वनधनियां और होती है, जो प्रायः इसी नाम से बिहार उत्तर, प्रदेश आदि स्थानों में बारहों मास मिलती है, किंतु ग्रीष्मकाल में अधिक देखने में आती है। इस तृणजातीय वनौषधि के पौधे हाथ डेढ़ हाथ ऊंचे, जंगल, झाड़ी, बाग, बगीचे एवं सड़कों के किनारे पाये जाते हैं।

पत्र—४ या ४॥ इंच लम्बे, अण्डाकार व कंगूरेदार, प्रत्येक गांठ पर प्रायः ३-३ पत्र शाखाओं के चारों ओर लगे रहते हैं। गांठों के ही चारों ओर छोटी-छोटी सींकें निकलती हैं, जिन पर नन्हें नन्हें श्वेत वर्ण के पुष्प आते हैं। पुष्प-दल के गिर जाने पर धनिये के आकार के फल लगते हैं।

इसके पत्र, फल व पचांग औषधि-कार्य में आते हैं। यह शीतल, मधुर तथा तृषा व क्षुधानाशक है।

धूप से व्याकुल तृषित व्यक्ति यदि इसकी २-४ पत्तियां मुख में डालकर चूस लेवें तो तुरन्त प्यास शांत हो जाती व मुख मीठा हो चित्त प्रसन्न हो जाता है। उसे कफ-प्रकोप या प्रतिश्याय आदि (जो कि उक्त अवस्था में शीत जल के पी लेने से होता है) नहीं होने पाता। क्षुधा-नाशार्थ-इसकी १ पाव पत्तियों को या पंचांग को इच्छानुसार सिल पर महीन पीस, लुगदी बनाकर खालेने से ५ सेर क्षुधा नहीं सताती है। शुक्रमेह तथा अर्श पर—फलों को पान के बीड़े के साथ सेवन करने से शुक्रमेह में लाभ होता है तथा अर्श के काली मिर्च के साथ सेवन से अर्श का नाश होता है—वनस्पति विज्ञान—रच. श्री रूपलाल जी वैश्य के 'अभिनव बूटी दर्पण' से साभार।

नाम–

सं०–धान्यक, धानक, छत्रा (छत्राकार पुष्प एवं फलों के गुच्छे होने से) कुस्तुम्बुरु (कुत्सितं रोग समूह तुम्बति अर्दयतीति-रोग समूह नष्ट करने वाली होने से), वितुन्नक (विगतं तुन्न दु समस्मात्-जिसके सेवन से रोग दूर होते है)। हि०–धनिया, कोथमीर। म०–धणे, कोथिंबीर। गु०–धाणा, कोथमीर। व०–धने। अं०–कोरिअन्डर (Coriander) ले०–कोरिएण्ड्रम सेटिवम्, किरिएण्ड्री-फ्रुक्टस (Coriandri Fructus)

रासायनिक संघटन–

हरी धनिया के पत्रो मे ८७ ९%पानी, ११ ७ खनिज पदार्थ, ३ ३% प्रोटीन, ० ६%वसा, ६ ५%कार्बोहाइड्रेट, ० १४ कैलशियम, ० ०६%फासफोरस, १० मिलीग्राम%ग्राम लोहा, तथा कुछ प्रमाण मे 'विटामिन ए, और वी (काफी प्रमाण मे) तथा सी भी पाया जाता है।

फलो मे—एक उडनशील तेल १%तक, जिसमे कोरिएन्ड्राल (Coriandrol) तथा कुछ अन्य पदार्थ रहते है। इसके अतिरिक्त स्थिर तेल १३%, वसीय पदार्थ १३ %, पिच्छिल द्रव्य, टेनिन, मेलिक एसिड, तथा क्षार ५ % पाये जाते हे।

प्रयोज्याङ्ग–फल, पचाग तथा तेल को आर्द्रता रहित ठण्डे स्थान मे रखना चाहिए। अन्यथा यह खराव हो जाता है। इसके चूर्ण को भी ठण्डे स्थान मे अच्छी तरह डाट वन्द शीशी मे रक्खे, जिससे उसका उडनशील तैल उडने न पावे।

गुणधर्म व प्रयोग––

लघु, स्निग्ध, कपाय, तिक्त, मधुर, कटु, मधुर-विपाक, उष्णवीर्य (यह शीत भी है, इसके मूत्रल गुण के कारण मूत्र द्वारा शारीरिक उष्णता वाहर निकल जाने पर इसका शीत वीर्य प्रकट होता है। अन्य दीपन-पाचन द्र०यो के साथ इसका मेल होने पर यह उष्ण हो जाती है। यूनानी मत से भी यह उष्ण और शीत है। इसे खाने पर मुलायमियत के कारण, मेदे मे पहुचते-पहुँचते शारीरिक गर्मी इसकी गर्मी को नष्ट कर देती है, जिसमे इसका शीत गुण प्रकट होता है। किंतु इसके बाहरी लेप से गर्मी की तासीर मालूम होती है, क्योकि शारीरिक वाह्य उष्णता इसकी उष्णता को नष्ट नहीं कर सकती। इसके पत्तो मे अल्पांश उष्णता तथा अधिकांश शैत्य होता है। जब तक यह हरी-भरी रहती है, तब तक उसमे शीतलता अधिक रहती है। सूखने पर कम हो जाती है) यह त्रिदोषहर, दीपन, पाचन, रोचन, ग्राही (कुछ रेचन), तृष्णानिग्रहण, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, मूत्रल, मूत्र-विरजनीय (मूत्र के रग को सुधारने वाली), कफघ्न, शुक्र धातु क्षीणकरक, मस्तिष्क के लिये वल्य, मल को गाढा करने वाली, ज्वरघ्न व स्रोतो को शुद्ध करने वाली है। तथा अरुचि, वमन, अग्निमाद्य, अजीर्ण, अतिसार, प्रवाहिका, उदरशूल, अर्श, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, पैत्तिक प्रमेह, कामोन्माद, पैत्तिक-शोथ, विसर्प, गण्डमाला व भल्लातक जन्य शोथ आदि पर इसकी योजना की जाती है।

पाश्चात्य वैद्यक मे इसका प्रयोग विशेषत इसके सौगंधिक गुण एव वातानुलोमन होने के कारण किया जाता है। रेचक औषधियो के साथ इसे ऐंठन आदि उपद्रवो को कम करने के लिए पिलाते हैं।

तीनों दोषो के विकृति-नाशक गुण की इसमे विशेषता है। अर्थात् अपथ्य या दूषित आहार के कारण रसोत्पत्ति के समय आमाशय या पक्वाशय मे वात-विकृति जन्य शूल आदि हो तो इसका तैल उन्हे दूर कर देता है। यदि दाहक आहार से पित्तज विकृति मिचलाहट, वमन आदि हो तो यह अपने मधुर तथा शीत गुण से उन्हे शात कर देती है।

हरी धनिया, विविध भोजन–सामग्री मे मिलाने पर उसे स्वादु, सुगन्धयुक्त एव हृद्य वना देती है। यह मधुर रसयुक्त शीत गुण प्रधान होने से, विशेषत पित्तशामक एव दाह-प्रशमन है। शेष गुण उक्तानुसार ही हैं।

शिर शूल, पैत्तिक शोथ, विसर्प, गण्डमाला, भिलावे के शोथ, दाह आदि पर हरी धनिया का लेप किया जाता है। सिर-दर्द मे सूखी का भी लेप करते हे। मुख-पाक तथा गले के रोगो मे हरी धनिया के रस से कुल्ले कराते हैं। रक्तपित्त मे विशेषत नासा से रक्तस्राव (नक्सीर) होने

की दशा मे इसके रस का नस्य कराते तथा पत्तो को पीसकर मस्तिष्क पर लेप करते हैं।

शुष्क धनिया—मसाले के रूप मे तथा अनेक औषधियो को सुगधित करने के लिये और विरेचक औषधियो (सनाय, रेवन्दचीनी आदि) से मरोड न हो एतदर्थ काम मे लायी जाती है। प्याज खाने से होने वाली मुख की दुर्गन्ध, इसके चबा लेने से दूर हो जाती है। आमाजीर्ण-शूल मे एव वस्ति-शोधनार्थ—धनिया और सोठ का क्वाथ या फाण्ट देने से लाभ होता है (वं० से०)। कफ-प्रधान श्लीपद रोग में हरी या सूखी धनिया को पीस कर गाढा लेप करने मे लाभ होता है (वाग्भट)। निद्रानाश या मानसिक चिन्ता के कारण अन्न-पाचन न होता हो, तो इसकी गिरी चबायी जाती है। इसकी गिरी की प्रक्रिया वि० योगो मे देखें। उदर-कृमि पर—धनिया का सेवन लाभकारी है। हिक्का (हिचकी) मे—मिट्टी की कोरी चिलम मे इसे भर कर, हुक्का पर रख कर धूम्रपान कराते हैं। उद्गार-बाहुल्य मे—(डकारें बहुत आती हो तो) इसके साथ जौ का आटा व चन्दन का बुरादा जल के साथ महीन पीस कर आमाशय पर लेप करते हैं। छीकें अत्यधिक आती हो, तो हरी धनिया का रस सुघाते या नस्य देते हैं। कण्ठ या गले के दर्द मे इसकी गिरी को चबाते हैं। कडी सूजन या जहरवात पर—इसके ताजे पत्तो को पीस, उसमे चने का आटा और गुलरोगन मिला कर लगाते हैं। शीतपित्त पर—इसके पत्र-रस मे गुलरोगन और शहद मिलाकर लगाते, तथा पत्र-रस मे उन्नाव का क्वाथ व शक्कर मिलाकर पिलाते हैं। आम-पाचनार्थ—धनिया व सोठ के क्वाथ मे एरण्ड-मूल-चूर्ण मिलाकर सेवन कराते है।

(१) तृष्णा-निग्रहणार्थ—ज्वर की गरमी से या साधारण अवस्था मे बढी हुई प्यास की शाति के लिये—शुष्क धनियां २ तो० कूटकर मिट्टी के पात्र मे, ½ सेर जल मे भिगो कर, प्रात स्वच्छ कपडे से छान, रोगी को थोड़ा-थोडा पिलाते है। यदि साधारण अवस्था मे अत्यधिक तृष्णा हो तो उक्त हिम मे थोड़ी शक्कर और शहद मिला कर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

(२) अरुचि पर—इसके साथ जीरा, काली मिर्च, पोदीना, सेधा नमक व किशमिस मिला, नीबू के रस मे पीस, चटनी बना ले। इसे भोजन के साथ लेने से भोजन मे रुचि उत्पन्न होती है। वि० योगो मे धनिया की गिरी देखें।

अथवा—धनिया, इलायची और काली मिर्च के चूर्ण को घृत और शक्कर के साथ बार-बार चटावे।

(३) दाह पर—धनिया और जीरा १-१ तो० जौकुट कर रात्रि के समय २० या ३० तो० जल मे भिगो, प्रात मसलते हुए छानकर शक्कर मिला पिलावे। इस प्रकार ४-६ दिन पिलाने से कोष्ठ-दाह शमन हो जाता है। हाथ-पैरो की जलन भी इससे दूर होती है। अथवा केवल धनिया को ही भिगोकर प्रात छानकर खाड मिलाकर पीने से भी अत्यन्त-प्रवृद्ध अन्तर्दाह तुरन्त शान्त होता है—(भा० प्र०)।

कफयुक्त पित्तज्वर मे दाह-शाति के लिये—धनिया और परवल के पत्तो के क्वाथ-सेवन से लाभ होता है।

अथवा—धनिया, अडूसा, आमला, काली दाख और पित्तपापडा इनको साधारण कूटकर, २ तो० चूर्ण को मटकी मे, रात्रि के समय पानी २० तो० मे डाल कर रख दे। दूसरे दिन छानकर इस पानी को थोडा-थोडा पिलाने से दाह तथा तृषा दूर हो जाती है—

इस धान्यकादि हिम के सेवन से दाहयुक्त पित्तज ज्वर, रक्तपित्त तथा शोष रोग मे भी लाभ होता है।
—(भा० प्र०)

ज्वरो पर—सर्व प्रकार के ज्वरो की प्रथमावस्था मे आम के पाचनार्थ धनिया मिश्रित अमृतादि-क्वाथ (गिलोय मे देखें) या कटकार्यादि क्वाथ (कटेरी के प्रकरण मे देखें) दिया जाता है। अथवा धनिया और सौफ का क्वाथ देने से आम-पाचन हो दाह, तृषा, मूत्र-जलन व बेचैनी दूर होती तथा पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। यदि आम-प्रकोप के कारण ज्वर कम न होता हो, तो धनिया व मिश्री १-१ तो० मिला ५ तो जल मे ३ घण्टे तक भिगो, फिर मसल-छानकर पिला देने से ज्वर प्रथम २ डिग्री लगभग बढकर, फिर २ घटे बाद स्वेद आकर कम हो जाता है। यह हिम बालक प्रसूता और वृद्धो को भी दिया जा सकता है—(गा.औ र)

अथवा—सर्व-ज्वर नाशक धान्य पटोल क्वाथ—धनिया और परवल के पत्र १-१ तोला कूटकर ३२ तोला जल मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर सुखोष्ण पिलाने से अग्निदीप्ति, कफनाश, वात एव पित्त का अनुलोमन, आन्त्रो मे मल के अध प्रेरणार्थ तरगवत् गति, तथा पित्त का आहार—पाकार्थ निसरण, ज्वर-नाश, आमदोष एव आमरस का परिपाक हो मलबन्ध का नाश होता है। यह क्वाथ सर्व ज्वरो मे दिया जा सकता है। यह तृष्णा को भी कम करता है।

(भै० र०)

अथवा सर्वज्वरनाशक 'धान्यकाद्यरिष्ट' का योग आगे विशिष्ट योगो मे देखिये।

पित्त ज्वर—सूखी धनिया को गिलोय के स्वरस (या क्वाथ) मे ७ बार फुला-फुला कर शुष्क कर चूर्ण कर रक्खे। गरमी के बुखार मे यह चूर्ण ६ मा मुनक्का ६ मा तथा अदरख ३ मा एकत्र ५ तो पानी मे पीस छान कर कुछ गरम कर, १ तो मिश्री मिला, प्रात साय पिलाने से ज्वर दूर होता है। इस ज्वर मे भोजन नही करना चाहिये। (भा गृह चिकित्सा)

पित्तज्वर के प्रवृद्ध अन्तर्दाह की शाति के लिये अधकुटा धनिया २ तो को १२ तो जल मे मिला, मिट्टी के पात्र मे रात्रि भर रक्खे। प्रात इसे छानकर ३ मा खाड मिला पिलाने मे विशेष लाभ होता है। यह धान्यशर्करा योग अत्यन्त प्यास और कब्ज होने पर दिया जाता है। (भै र) अथवा—'धान्यकादि हिम' विशिष्ट योगो मे देखें। अथवा—

धनिया और चावलो को पानी मे भिगो कर दूसरे दिन प्रात उसी पानी मे मदाग्नि पर पकाकर पतली पेया बना, ठडी कर पिलावे। (व गु)

तरुणज्वर (ज्वर की प्रथमावस्था) मे—धनिया, लाग और सोठ का समभाग मिश्रित चूर्ण (मात्रा—२-३ मा) मन्दोष्ण जल के साथ सेवन करने से विशेष लाभ होता है। इन्ही तीनो द्रव्यो का क्वाथ अग्निमाद्य, श्वास, अजीर्ण, विषम-ज्वर और वात-प्रकोप—नाशक है।

(वृ नि र)

कफज्वर मे—धनिया ३, सोठ २, अदरक या सोठ १, चिरायता १ तथा मिश्री ३ भाग का एकत्र चूर्ण ३ मा की मात्रा मे प्रात साय शहद से चटाते है।

वातपित्त ज्वर मे—धनिया, मुलैठी, रास्ना, हरड, दाख, सौफ, गिलोय, पित्तपापडा और सनाय समभाग १-१ तो० एकत्र जौकुट कर ६४ तोला जल मे, अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर छानकर इसमे १ तोला खाड मिला, बलाबलानुसार सेवन करने से घोर वातपित्तज्वर नष्ट होजाता है। (भै० र०)

वातकफ ज्वर या इन्फ्युएन्जा मे—धनिया और सोठ १-१ तोला कूटकर विधिवत् क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने से लाभ होता है। इससे शूल और अतिसार भी नष्ट होता है। (भै० र०) यह क्वाथ पाचनशक्तिवृद्धिकारक है। धनिया, सोठ, वेलगिरी, मोथा व नेत्रवाला का क्वाथ दीपन, पाचन, ग्राही एव आमशूल-नाशक है। यह प्राय: ज्वरातिसार मे दिया जाता है।

आतपज्वर या लू तथा पित्त-प्रकोप के प्रतिकारार्थ लगभग १ तो० धनिया को साधारण कूट कर लगभग २० तो० जल मे १ या ½ घटा भिगो, खूब मसलते हुए छानकर उसमे शक्कर मिला थोडा थोडा वार वार पिलावे। किसी भी तीव्र दाहकारी औषध के सेवन से उत्पन्न दाह पर भी यह पाचक व उपयोगी है। इसमे थोडा शहद मिलाकर देने से शुष्क-कास पर उत्तम लाभ होता है। पित्तप्रकोप की शान्ति के लिए धनिया को महीन पीस कर उसमे उचित प्रमाण मे चीनी का शर्बत मिला, तथा कपूर आदि सुगधित शीतल द्रव्यो से सुगधित कर नूतन मिट्टी के पात्र मे रख दे। इच्छानुसार पीने से यह यह पित्त को अत्यन्त नष्ट करता है। (भा प निघण्टु)

(५) अग्निमाद्य एवं अजीर्ण पर—नित्य प्रात ६ मा धनिया को उबाल (फाट या चाय के रूप मे) थोडी शक्कर और दूध मिलाकर सेवन करते रहने से जठराग्नि तीव्र हो जाती व पाचन—शक्ति मे सुधार होता है। कोई कोई इसमे पोदीना और सोठ भी मिला लेते हैं—

(गा औ र.)

अथवा—धनिया ५ तो०, काली मिर्च व सेधा नमक २-२ तो एकत्र महीन चूर्णकर, ३-३ मा की मात्रा मे भोजन के बाद लेते रहने से मदाग्नि दूर होती है।

आहार ठीक-ठीक पचकर समय पर टट्टी होती है।

अजीर्ण पर—तुष रहित धनिया (इसे थोडे पानी से आर्द्र कर ओखली में मूसल से कूटने से तुष अलग हो जाता है) १ सेर को १६ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर क्वाथ जल को छान उसमे १ सेर घृत और ७ तो धनिया का कल्क मिला घृत सिद्ध करले। यह धान्य-घृत उचित मात्रा मे सेवन से त्रिदोषज अजीर्ण नष्ट हो जाता है। (व० से०)

धानाचूर्ण—धनिया, लोग, निसोथ और सोंठ में समभाग महीन चूर्ण (मात्रा २ मा) को उष्णजल से सेवन करने से अग्निमाद्य अजीर्ण मे तो लाभ होता ही है, साथ ही यह चूर्ण श्वास रोग और विषमज्वर मे भी लाभकारी है।

भूख कम लगती हो, तो इसके हरे पत्रो का रस १ से २ तोला तक ३-४ दिन पिलावे।

(६) अतिसार तथा संग्रहणी पर—बार बार अपचन होने से आमाशय एवं आंत्र निर्बल होकर पतले दस्त होते रहते हैं। मल मे आम भी जाता है। ऐसी अवस्था मे धनिया मे १-१ तोले का फांट दिन मे २ बार देने से आम का पाचन होकर मल बंध जाता तथा उसकी दुर्गन्ध दूर होती है। यदि मल का रंग श्वेत हो, उसमे आम एवं दुर्गन्ध भी हो, तो उक्त क्वाथ मे ६-६ माशा सोंठ भी मिला दी जाती है। आमाजीर्ण तथा शूल के लिए भी यह उत्तम प्रयोग है। इससे मूत्र शुद्धि भी हो जाती है। यह क्वाथ बालको के शूल, आम, अपचन एवं अतिसार मे भी दिया जाता है। (गा औ र) ऊपर प्रयोग नं० ४ के वातकफज्वर मे दिया हुआ धनिया-सोंठ क्वाथ का प्रयोग देखे। अथवा—

धनिया को गरम रेत मे भूनकर महीन चूर्ण कर ६ माशे की मात्रा मे दही, छाछ या पानी के साथ दिन मे २-३ बार देने से अतिसार शीघ्र बन्द हो जाता है।

कभी कभी भोजन के पश्चात् तुरन्त ही दस्त की शिकायत हो जाती है एतदर्थ धनिया और काला नमक का चूर्ण २ मा की मात्रा मे भोजन के बाद लिया करे।

रक्तातिसार पित्तातिसार हो तो—धनिया १ तो को जल के साथ पीस छानकर मिश्री मिला पिलावें। शीघ्र लाभ होता है। अथवा—धनिया, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, बेलगिरी और सोंठ के क्वाथ के सेवन से पुराना अतिसार, रक्तातिसार, आमशूल और ज्वर नष्ट होता है। यह क्वाथ पाचन भी है। (यो र)

तृष्णा और दाहयुक्त अतिसार मे धनिया और सुगंधवाला का हिम पिलावें तथा धनिया, सुगन्धवाला और पाठा के पानी से आहार बना कर देना चाहिए। यहा समान भाग मिली हुई औषधे १। तो पानी २ सेर, तथा शेष क्वाथ १ सेर लेवें। (भा भै र)

पीडायुक्त पित्तातिसार मे—धान्यकघृत—धनिये का कल्क १० तो, गोघृत १ सेर तथा जल ४ सेर एकत्र मिला घृतसिद्ध करले। मात्रा—१ तो गोदुग्ध के साथ लेवे। यह घृत दीपन, पाचन है। (व से)

आमातिसार या प्रवाहिका पर धनिया का मोटा चूर्ण २ तो को ६४ तो. पानी मे पकावें। ८ तो शेष रहने पर प्रातः सायं सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

वातज संग्रहणी पर—धनिया, बेलगिरी, खरैटी, सोंठ और सरिवन (शालपर्णी) सबका एकत्र चूर्ण १। तो. पानी २ सेर मे पकावे। १ सेर क्वाथ जल शेष रहने पर, इसके साथ आहार पकाकर रोगी को देवे तथा प्यास लगने पर यही क्वाथ जल पिलावे। (ग नि)

विशिष्ट रोगो मे—धान्यपंचक एवं धान्यचतुष्क और धान्यकासव देखिये।

(७) मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात पर—मूत्राशय मे दाह होकर मूत्रावरोध होने तथा दाह सह थोडा थोडा मूत्रस्राव होने पर धनिये के हिम का सेवन अति हितकारक है। यदि आमाशय का पित्त अधिक अम्ल होगया हो, तो चावल, मट्ठा व दही का सेवन नही करना चाहिए। यदि यकृत निर्बल होने पर भी अधिक घृत का सेवन होता रहेगा तो मूत्र रचना दूषित होकर मूत्राशय की मूत्ररोकने की शक्ति कम हो जाती है। इनमे से जो कारण हो उसे भी दूर करना चाहिए। आमाशय के पित्त की अम्लता को भी धनिया कम करती है। ऐसी अवस्था मे

(उक्त हिम मे) थोडी शक्कर मिला दी जाती है।
(गा औ र)

धनिया ६ मा पानी मे घोटकर छान ले, और इसमे मिश्री तथा बकरी का दूध मिला पेट भर पिलादे। दिन मे दो बार पिलाने से २-३ दिन मे ही पेशाब की जलन, दाह दूर हो जायगी। (मौ ह मु अ. साहब)

उत्तम शास्त्रीय प्रयोग 'धान्य-गोक्षुर घृत' का इस प्रकार है—

धनिया तथा गोखरू १-१ सेर कूटकर १६ सेर जल मे पकावे। ४ सेर क्वाथ शेष रहने पर छान कर उसमे १ सेर घृत (गोघृत हो तो उत्तम) तथा धनिया व गोखरू का समभाग मिश्रित कल्क ६ तो० ८ माशा मिला घृत सिद्ध करले। (मात्रा ६ माशे से १ तोले तक दूध के साथ प्रात साय, इसे सेवन करने से मूत्राघात, मूत्र कृच्छ्र तथा भयकर शुक्रदोष नष्ट हो जाते-है—भा प्र। (यह प्रयोग—मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह और अश्मरी इन ४ प्रकार के मूत्रदोषो के लिए उत्तम लाभकारी है) यदि उक्त घृत सिद्ध न कर सको तो धनिया गोखरू के क्वाथ मे घृत मिला पीवें।

विशिष्ट योगो मे—'धान्यकासव' देखे।

(८) स्त्री रोग तथा वमन पर—अत्यार्त्तव (मासिक धर्म का रक्त अत्यधिक आने पर)—कुटी हुई धनिया ६ मा. को आध सेर जल मे, कलईदार पात्र मे पकावे। आधा शेष रहने पर छानकर, मिश्री १ या २ तो मिला, सुखोष्ण पिलावें। इस प्रकार ३-४ दिन पिलाने से लाभ हो जाता है।—अथवा

धनिया का चूर्ण ३ मा० और शक्कर १ तो० दोनो को चावलो के धोवन मे घोट छानकर थोडा थोडा बार-बार पिलावे। इससे सगर्भा स्त्री के प्रात काल होने वाले वमन आदि (Morning Sickness) विकारो मे भी लाभ होता है। वमन के साथ थोडा रक्त भी आता हो, तो भी इससे लाभ होता है। यह हृद्य भी है। (व० गु०)

सगर्भा के तीव्र वमन विकार पर—धनिया, नागरमोथा व मिश्री २-२ तो० तथा सोठ ६ माशा इनको आध सेर पानी मे पका, आधा शेष रहने पर दिन मे ४ बार पिलाने से थोडे दिनो मे ही वमन की निवृत्ति हो जाती है।
(गा० औ० र०)

सगर्भा स्त्री के आठवें मास मे गर्भवेदना उपस्थित होने पर धनिये को पीसकर चावल के धोवन (या तण्डुलोदक की विधि चावल के प्रकरण मे देखें) के साथ सेवन कराने से गर्भशूल नष्ट होता एव गर्भ स्थिर होता है। मात्रा २ मा०। (भैं० र०)

गर्भवती को सन्तानोत्पत्ति के समय अत्यन्त कष्ट होता हो, तो प्रसव-पीडा के समय उसकी जाघ पर धनिया के हरे पत्तो को या उसकी जड को बाध देने से से बालक आसानी से पैदा होता है।

वमन— साधारण वमन विकार चाहे किसी को भी हो, और किसी उपाय से बन्द न हो तो, धनिया का हिम थोडे थोडे अन्तर से १-१ घूट पिलावे। अथवा—१ तोला धनिया को पानी के साथ पीस छानकर मिश्री मिला घूट घूट पिलाने से शीघ्र ही लाभ होता है।
(हकीम मौ मु अ साहब)

(९) बाल-रोगो पर तथा कास पर—शूल, आध्मान और अजीर्ण के निवारणार्थ, धनिया व सोठ का क्वाथ, थोड़ा थोडा पिलावे। केवल उदर शूल हो, तो १ मा. धनिया को पानी मे पीस छानकर पिलावे। बालक को वमन और अतिसार हो, तो—धनिया, अतीस, काकडासिंगी और बडी पीपल (गजपीपल) के समभाग मिश्रित महीन चूर्ण को (१ से २ मा तक) शहद के साथ चटाने से लाभ होता है। (व से)

शुष्ककास और श्वास पर—धनिया १ मा चावलो के धोवन मे पीस, थोडी मिश्री, मिला थोड़ा बार बार पिलावे। (व० से०)

शुष्क कास बडो या छोटो को मुद्दतीज्वर दीर्घकाल तक स्थायी रहने से उष्ण औषधियो से तथा मिर्च, सोठ, चाय, तमाखू आदि के अधिक सेवन से होती है। योग्य-उपचार न करने पर यह जीर्ण दु खदायी बन जाती है, और वेगपूर्वक बार-बार आती रहती है। किसी-किसी को अधिक निर्बलता आ जाती एव थोडे परिश्रम से श्वास भर जाता है। ऐसे रोगियो के श्वसन यन्त्र की उष्णता तथा शुष्कता को दूर करने एव कास वेग को शमन करने के लिये कुछ दिनो तक धनिया और मुलैठी

का क्वाथ दिन मे ३ बार देते रहने से रोग-निवृत्ति हो जाती हैं। (गा औ. र)

अथवा-धनिया की गिरी और चावलो को खूब महीन पीसकर रखले। उसमे से ½ से १½ मा. तक ६ मा. शहद के साथ चटाते रहने से गरमी मे उठने वाली खासी दूर हो जाती है। (हकीम मौ मु अ. साहब)

बालक के मुख मे छाले हो, मुखपाक हो तो धनिया के महीन चूर्ण, को बार बार छिडकने से लाभ होता है।

नेत्राभिष्यन्द मे—धनिया की पोटली बनाकर तथा पानी मे भिगोकर नेत्रो पर बार बार फिराते रहे। तथा धनिया को कूट कर पानी मे उबाल कर उस पानी को कपडे से छान कर नेत्रो में टपकाने से विशेष लाभ होता है। ध्यान रहे-नेत्राभिष्यन्द की प्रारंभिक अवस्था मे प्रथम १ बूद स्वच्छ रेंडी का तैल आखो में डाल देने से आखो का गदला पानी, कीच आदि बाहर निकल जाता तथा जलन व किरकिरी कम हो जाती है। तत्पश्चात् उक्त धनिया का पानी(धनिया के साथ थोडी हल्दी और मिश्री मिलाकर उबाला हुआ पानी और भी श्रेष्ठ लाभकारी है) डालें। यदि पलको पर बहुत सूजन हो, तो रसौत को दूध या पानी मे मिला कर लेप लगाना चाहिये। आगे प्रयोग न० १० देखे।

चेचक की अवस्था मे—धनिया के उक्त पानी को (हरा धनिया हो तो उसके रस को) आखो मे टपकाते रहने से चेचक का दाना आखो मे नही निकलता, निकला भी हो, तो सरलता से शमन हो जाता व आखे सुरक्षित रहती हैं।

चेचक निकल आने के बाद, शारीरिक उष्णता की शांति के लिये रात्रि के समय धनिया और जोरे को चौगुने जल मे भिगोकर, प्रात मसल छान कर मिश्री मिला पिलाते रहने से कोष्ठान्तर्गत उष्णता दूर हो जाती है। ४-५ दिन देना चाहिये।

(१०) नेत्र-विकारो पर-नेत्रो से जल अश्रु या पूय का स्राव होता हो व लाली दाह और वेदना हो, या आख आने पर ये सब विकार हो, तो-धनिया के फाट की बूंदे डालते रहने से लाभ होता है। साथ साथ-धान्यकावलेह (देखे विशिष्ट योगो मे) का सेवन कराते रहे, पुराना अभिष्यन्द, तथा उक्त विकार दूर होकर नेत्र-ज्योति सबल बनती है-(गा०औ०र०)। केवल हरी धनिया का पत्र-रस हफ्ते मे २-३ बार नेत्रो मे डालते रहने से-नेत्रो की रक्षा होती है।

नेत्र-शूल पर—यह शूल या पीडा गरमी के कारण हो, (अर्थात् ग्रीष्म काल मे पीडा हो, तथा कोई स्राव न होता हो, नेत्रो मे गरमी या जलन हो) तो धनिया १ तो., कपूर १ मा० दोनो को महीन पीस, मलमल के स्वच्छ कपडे मे पोटली बाधकर अर्क गुलाब या पानी मे डुबोकर नेत्रो पर फेरते रहे। इसकी बू दे नेत्रो के अन्दर जाने से ठीक ही होता है, नेत्रो मे शीतलता आ जाती है। —अथवा—

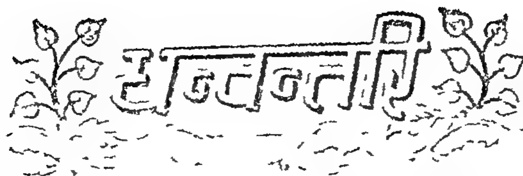
हरी धनिया का रस और स्त्री का दूध समभाग मिला कर नेत्रो मे डालने से भी पीडा शीघ्र दूर होती है।

नेत्रो के आगे अ धेरा छाजाने पर—गरमी या मस्तिष्क-दौर्बल्यादि कारणो से नेत्रो के आगे अ धेरा सा छा जाता हो। कभी काले या पीले रग का पर्दा सा तन जाता हो। तो ऐसी अवस्था मे-धनिया १ तो कूट छानकर मिश्री मिला पकावें। जब गाढा हो जाय तब उतार कर, प्रतिदिन ७ मा० की मात्रा मे चटाया करें।

—हकीम मौ०मु०अ० साहब।

सिर की पीडा और गज पर—गरम वस्तुओ के सेवन या धूप मे चलने फिरने या आग के पास अधिक बैठने से होने वाले पित्त-प्रकोप जन्य सिर-दर्द के लिये-यदि हरी धनिया मिले तो पत्तो का रस निकाल कुछ बू दें कान व नासिका मे डालें व पत्तो को पीसकर मस्तक एव कनपटियो पर लेप करे। इसके साथ ही साथ धनिया ६ मा०और आवला ३ मा० दोनो को कूट कर रात को मिट्टी के पात्र मे १ पाव पानी मे भिगो, प्रात रगड कर छान कर मिश्री मिला पिलावें। लेप के लिये हरी धनिया न मिले तो शुष्क को ही पानी के साथ पीस कर लेप कर सकते है।—अथवा—

धनिया और किसमिस २-२ तो मोटा-मोटा कूट



कर ४० तो जल मे भिगो, १ घटे बाद मसल छान, मिश्री मिला पिला देवे। यह योग आधाशीशी पर भी लाभकारी है। (गा॰ औ॰र॰)

विशिष्ट योगो मे तैल-धनिया देखें।

सिर के गज पर—धनिया को महीन पीसकर प्रतिदिन लेप करे, या हरी धनिया का रस सिर पर लगाया करे।

(१२) चक्कर (भ्रम) और निद्रानाश पर—धनिया, खसखस और बिनौला की गिरी १-१ भाग चूर्ण कर उसमे दो भाग खाड मिला (३ से ६ मा॰ की मात्रा मे) गुलाबजल से दिन मे दो बार पिलाने से चक्कर मे शीघ्र लाभ होता है (इलाजुल गुर्बा)

अथवा—हरी धनिया का रस प्रतिदिन ३ तो॰ तक मिश्री मिला पिलावे। हरी के अभाव मे शुष्क को ६मा लेकर ठडाई की तरह पीस छान कर मिश्री मिला पिलावे।

निद्रानाश पर शर्बत—हरी धनिया के रस मे सम-भाग मिश्री या खाड मिला पकावे। शर्बत की चाशनी कर शीशी मे भर रक्खे। प्रतिदिन (२ से ४ तो॰ तक) पानी मे मिलाकर पिलाते रहे। कुछ दिनो के सेवन से अच्छी नीद आने लगती है।—हकीम मौ मु अ साहब

(१३) रक्तार्श पर—यदि रक्त काले रग का हो तो उसे बन्द करने का प्रयत्न न करे। जब लाल रग का रक्त निकलने लगे तो-६ तो धनिया को १० तो जल मे घोट-छान कर उसमे ३ तो मिश्री और २० तो बकरी का दूध मिला, आग पर औटा कर, ठडा कर पिलावे। शीघ्र लाभ होता है। —हकीम साहब।

अर्श के मस्सो की पीडायुक्त शोथ के शमनार्थ -हरी धनिया को पीस कर गरमकर पोटली मे बाध कर मस्सो पर थोडा-थोडा सेक करने से आराम होता है।

(१४) रक्तपित्त पर—धनिया, दाख (या किसमिस) और बीहदाना समभाग एकत्र कूट कर रात के समय पानी मे भिगो रखे। प्रात इस हिम मे शक्कर मिला दिन मे ३ बार देते रहने से शीघ्र ही सब प्रकार के रक्त-पित्त मे लाभ होता है। यह प्रयोग शामक, शीतल एव स्निग्धताकारक है। इसमे विटामिन 'सी' विशेष परिमाण मे है। (गा औ र)

यदि केवल नकसीर या नाक से रक्तस्राव होता हो, तो हरे पत्तो के रस को नाक मे टपकाने से और सिर पर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है। इसमे यदि थोडा कपूर मिला लिया जाय तो विशेष फायदा होता है।

(१५) कट-पीडा और कठमाला पर—धनिया की गिरी चबाने से गले का दर्द दूर होता है।

कठमाला के लिये—धनिया और जौ का आटा सम-भाग एकत्र पानी मे अच्छी तरह पीस कर ऊपर लेप करते हैं। सदैव इस प्रकार लेप करने से आराम हो जाता है। अथवा—

इसके ताजे पत्ते पीसकर चने का आटा और गुलाब जल मिला लेप, प्रति दिन करते रहने से भी कठमाला को आराम होजाता है। —हकीम मौ मु अ साहब।

(१६) हृद्रोग पर—धनिया के चूर्ण मे समभाग मिश्री चूर्ण मिला, प्रतिदिन ७ मा की मात्रा मे ताजे जल से सेवन करने से अथवा धनिये का फाट शक्कर और दूध मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से हृदय की दुर्बलता, धडकन, बेचैनी आदि दूर होती हैं।

(१७) वीर्य-विकार तथा स्वप्नदोष पर—उक्त धनिया व मिश्री के समभाग चूर्ण को ६ मा की मात्रा मे प्रात ताजे जल से सेवन करने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता व वीर्यस्राव बन्द हो जाता है। गरम वस्तुओ से परहेज रखना तथा सयम पूर्वक रहना आवश्यक है।

मन मे अश्लील विचार न उठने पावे ऐसे सयम-पूर्वक रहने के लिये—धनिया १ तो, देशी कपूर व बबूल का गोद २-२ मा इनको महीन पीसकर, थोडे जल मे खरल कर चने जैसी गोलिया बना ले। ३ से ४ गोली तक, प्रात साय, खाकर ऊपर से १ तो धनिया, ठडाई की भाति पीसकर मिश्री मिला कर पिया करे। ८-१० दिन के प्रयोग से मन मे गन्दे विचार आना बिल्कुल बन्द हो स्वप्नदोष नही होने पाता।

—हकीम. मौ. मु अ. साहब।

पित्तप्रकोप जन्य शीघ्रपतन मे—धनिया शुष्क ५ मा, इसबगोल ७ मा और खुरफा बीज १०॥ मा सबका महीन चूर्ण ४३ मा की मात्रा मे प्रात सेवन करे।

(यूनानी योग)

(१८) अम्लपित्त पर—आमाशय मे पित्त खट्टा होकर दूषित खट्टी डकारे आती हो, उवाक (जी मिचलाना, हृल्लास) होती हो, तथा तृषा अधिक लगती हो, तो धनिया और मिश्री का क्वाथ कर, दिन मे ३ बार देते रहने से २-४ दिन मे ही नया अम्लपित्त शमन हो जाता है। (गा औ र)

अथवा—धनिया, श्वेत चन्दन, नागरमोथा और इन्द्रजौ के समभाग मिश्रित चूर्ण को (१ से ३ मा तक की मात्रा मे दिन मे २-३ बार) शहद के साथ चटाने से अम्लपित्त, अरुचि और ज्वर नष्ट होता है। (भ भैं र.)

(१९) शोथ, जखम के रक्तस्राव और मुख-रोग पर—शरीर के किसी अग पर या शरीर पर सूजन आ गई हो, जिसमे जलन सी पड़ती हो, तो शरीर के विशिष्ट स्थान पर धनिया को सिरके मे बारीक पीसकर लेप करते रहने से शीघ्र ही सूजन दूर हो जाती है। शरीर की उक्त प्रकार की सूजन पर धनिया के रस मे कपडा तर कर शोथ-स्थान पर रख दें और जब सूख जावे तो और रस या धनिये का पानी डालकर तर कर दें। अत्यन्त लाभदायक है।

जखम के रक्तस्राव को बन्द करने के लिये इसके बीजो को आग पर सेक कर, पीसकर बुरकने से, या धनिया को खूब महीन पीस कर लगा देने से रक्त शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

मुख-रोग पर—मुख मे छाले पड जाना, जलन होना, राल निकलते रहना आदि विकार जो आमाशय की उष्णता या पित्तज्वर के कारण होते है, उनके निवारणार्थ धनिया के महीन चूर्ण को मुख के अन्दर लगाने से अत्यन्त लाभ होता है। अथवा—

१ तो धनिया कूटकर ½ सेर पानी मे उबाल, १० तो. पानी शेष रहने पर, छान कर, शीतल होने पर, उससे कुल्ले करें। अथवा—

हरी धनिया के रस को दिन मे कई बार छालो पर रगडा करें। अत्यन्त लाभप्रद है।

रोगी को गरम खाद्य पदार्थो व गरिष्ठ-भोजन से परहेज रख दूध, चावल आदि सुपाच्य भोजन करना चाहिये। —हकीम मो मु अ साहब।

(२०) जमालगोटा (जैपाल) के विकारो पर—प्राय अशुद्ध या अधिक मात्रा मे जमालगोटा के खाने से पेट मे जलन, दस्त तथा वमन, ऐंठन, घबडाहट आदि उपद्रव होने लगते है, ऐसी अवस्था मे शीघ्र ही धनिया २ तो खूब महीन पानी के साथ पीसकर, उसमे ५ तो पानी मिला छानकर, २० तो दही और ५ तो मिश्री मिला, दो बार मे पिला दे। यदि इतने से शान्ति न हो, तो और इतना ही पिलावें। दस्त, वमन, जलन आदि शान्त हो जावेगे। पीछे जमालगोटे का प्रकरण देखें।

उक्त प्रयोग को दो बार मे या एक ही बार मे, आवश्यकतानुसार १-१ घटे पर ४-६ बार पिलाने तथा मुख मे बर्फ के टुकडे रखने से विष-शमन हो जाता है। यदि दही न प्राप्त हो, तो गाढी छाछ के साथ भी इसे दे सकते हैं।

(२१) बर्र (ततैया) के काटने पर—धनिया के कुछ दाने ठडे जल से चबाने से शीघ्र शान्ति होती है। यदि शाति न हो, तो हरी धनिया का रस, सिरके मे मिलाकर लगाते हैं।

धनिया का तैल—(Oil Coriander) यह उडनशील रगहीन या हलके पीतवर्ण का, स्वाद व गध मे धनिया जैसा ही तैल, धनिया के शुष्क एव पके हुए फलो से परिस्रवण-क्रिया (डिस्टिलेशन) द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह ३ भाग अल्कोहल (७०%) मे विलेय होता है। इसे अच्छी तरह डाटबन्द शीशियो मे, ठण्डे प्रकाशहीन स्थानों मे रखा जाता है। प्रकाश मे रखने से या पुराना होने पर यह बेस्वाद एव प्रभावहीन हो जाता है।

यह तैल आध्मानयुक्त उदरशूल, गठिया (सधिवात) तथा मज्जातन्तु की व्यथा (Neuralgia) व उदरकृमि आदि पर विशेष लाभकारी है। मात्रा—१ से ३ या ४ बूद तक, शक्कर या शर्बत के साथ।

उदरकृमि मे—इसे मिश्री शक्कर या अन्य औषधो के साथ थोडे दिन देते रहने से कृमि नष्ट हो जाते है। यकृत सबल होता, तथा कृमियो की उत्पत्ति फिर नही होने पाती। बच्चो के आध्मान-युक्त शूल पर भी यह इसी प्रकार दिया जाता है।

पाश्चात्य वैद्यक के–एक्स्ट्रैक्ट सेन्नी लिक्विडम् (Extr Sennae Liquidum), एलिक्सिर करकरा सगरेडा (Elixir casa Sagr) आदि आफिशल योगो मे यह मिलाया जाता है ।

नोट-मात्रा-पत्र या हरी धनिया १॥ तो तक। शुष्क-बीज१ तो० तक । चूर्ण-३-६ मा० । हिम २-४ तो. । पचाङ्ग स्वरस १-२ तो० । तैल १-४ बूंद तक। श्वासरोगी के लिये बीजों का या पत्तों का अधिक मात्रा में प्रयोग अहित कर है। इससे स्त्री का मासिक धर्म रुक जाता तथा मनुष्य की इन्द्रियशक्ति (कामशक्ति) कम हो वीर्य कम उत्पन्न होता है। हानिनिवारणार्थ–शहद दालचीनी और अण्डे की जर्दी दें।

हरी धनिया–अधिक मात्रा मे शिरोभ्रमणकारक एव विस्मृतिजनक है। हानिनिवारक–सिकजवीन, विही-दाना और शहद । प्रतिनिधि––काहू और पोस्त का पत्र-स्वरस। शुष्कबीज–अधिक मात्रा मे–शुक्र-नाशक है। हानिनिवारणार्थ–बीजो को भून कर उपयोग मे लावें, अथवा––सिकजवीन और विहीदाना का सेवन करें। प्रतिनिधि–पोस्त के दाने (खसखस) या काहू के बीज।

विशिष्ट योग—

(१) धान्यकादिहिम–धनिया, आमला, अडूसा, दाख (मुनक्का) और पित्तपापडा समभाग जौकुट कर २ तो चूर्ण को, १२ तो पानी मे रात को मिट्टी के पात्र मे भिगो कर, प्रात छानकर ४ तो तक की मात्रा मे सेवन करने से रक्तपित्त (ऊर्ध्वग), पैत्तिकज्वर, दाह, तृष्णा और शोथ रोग (धातु शोथ जन्य क्षय) दूर होता है। (भै र)

(२) धान्य पचक और धान्यचतुष्क—धनिया, सोठ, नागरमोथा, खस और बेलगिरी समभाग, जौकुट कर, २ तो की मात्रा मे ३२ तो जल मे पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर दिन मे २ बार सेवन से आम एव शूलयुक्त अति सार (दूषित डकारो का आना, वमन, आन्त्रदौर्बल्य, आ-ध्मान) अपचन दूर होते है यह उत्तमपाचन-दीपन एव ग्राही है। सर्व प्रकार के अतिसार मे यह दिया जा सकता है। किंतु पित्तातिसार व रक्तातिसार मे देना हो, तो इसमे से सोठ निकाल देते हैं, तब यह योग धान्यचतुष्क कहलाता है।

सोठ के स्थान मे सौंफ डालकर इसका प्रयोग पित्ता-तिसार मे सफलतापूर्वक कर सकते है। इस क्वाथ का अकेले या महागन्धक योग आदि के अनुपान रूप मे प्रयोग करे। (भै र तथा सिद्ध योग संग्रह)

(३) धान्यकावलेह—धनिये को मूसल मे कूट कर, ऊपर के छिलके दूर कर, भीतर का मगज २४ तो और छोटी इलायची के दाने २ तो दोनों का कपडछान महीन चूर्ण करें। फिर उसमे १ तो चादी के वर्क मिला, खरल करें। पश्चात् ४० तो गुलकन्द मिला, अच्छी तरह मसल कर अमृतवान (चीनीमिट्टी के पात्र) मे भर रखें।

मात्रा—१ से २ या ३ तो तक, रात्रि मे शयन के २ घटे पहले खिलाते रहे। यह नेत्र-रोगी के लिये अति हितकारी है। थोडे ही दिनो मे नेत्रो की लाली, बार-बार आखो का आना (नेत्राभिष्यन्द), जलस्राव होता रहना, दाह, भारीपन कुकूणक (क्षीर दोषजन्य बाल वर्त्मगत विकार (OPhthalmia in children) आदि दूर हो जाते है। इसके सेवन से आमविष नष्ट होता, पाचनक्रिया सुधरती एव उदरशुद्धि होती रहती है। फिर उष्णता शमन होती, नेत्रज्योति सबल बनती तथा मस्तिष्क शात होता है। यह प्रयोग प्राय हर प्रकृतिवालो को अनुकूल रहता है। किन्तु मद्यपान, सिगरेट, बीडी आदि का धूम्र-पान, सूर्य के ताप मे अधिक भ्रमण, गरम-गरम चाय, अधिक मिर्च और दाहक पदार्थो का सेवन, जो मस्तिष्क मे उष्णता पहुँचाते है, उनसे यथाशक्ति दूर रहना आव-श्यक है। (रस तन्त्रसार से साभार)

(४) धनानी दाल—धनियें को लगभग १२ घटे पानी मे भिगोकर सूर्यताप मे शुष्क कर, लकडी के मूसल से कूट तथा सूप मे फटककर ऊपर का भूसा दूर कर दे। फिर नीबू के रस मे सेंधानमक और हल्दी–चूर्ण मिला, उसमे उक्त दाल या गिरी को १२ घटे भिगो दे, तथा भुनी हीग, कालीमिर्च, अजवायन, पीपल, दालचीनी, लौंग आदि मसाला किंचित् प्रमाण मे मिला कर, उसे कपड़े पर फैला दें। थोडा सूखने पर मिट्टी के पात्र मे, मद आच पर थोड़ा सेंक लें। इसे अच्छी डाट वाली शीशी मे भर रखे। यह स्वादिष्ट दाल पाचक, दीपक, तथा क्षुधावर्धनीय है। निद्रानाश, मानसिक, चिन्ता के कारण अन्नपाचन न होता हो, तो यह गिरी चबाई जाती है। (गा औ र) इसे साग, दाल आदि मे भी डालते हैं। इसे

भोजन के वाद या अन्य समय मे खाने से मुख का फीका पन दूर होता, रुचि उत्पन्न होती तथा आहार सरलता से पच जाता है।

(५) धान्यक घृत—तुपरहित स्वच्छ धनिये का भीतर की गिरी लगभग ३½ सेर, जौकुट कर १३ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर, छान कर उसमे १ सेर घृत और ३२ तो. जीरे का कल्क मिला मदाग्नि पर घृत सिद्ध करलें। यह घृत अग्निवर्धक, हृद्य, कफ-नाशक, तथा आमशूल, गुदशूल, वक्षणशूल, योनिशूल, आमवात, उदावर्त्त, अर्श एव वातपित्त-नाशक है। (मात्रा ६ मा से १ तो तक)। (ब से)

(६) अतरी-फल कशनीजी—हरड (पीली, काबुली या बडी व काली हरड़), गुठली निकाला हुआ आमला, वहेडे का वकला तथा शुष्क धनिया ५ ५ तो एकत्र महीन चूर्ण कर, ५ तो वादाम के तैल मे मर्दन कर, तिगुने शहद में मिला कर काच या चीनी के पात्र मे सुरक्षित रक्खें। मात्रा ७ मा अर्क गावजवान १२ तो के साथ (या पानी के साथ) रात को सोते समय लेवें। यह आमाशय से ऊपर को उठने वाले दूषित वातजन्य वाष्प के लिये विशेष गुणकारी है। तथा उसके उपद्रव रूप सिर, कान, नेत्रो के शूलो पर लाभकारी है। नेत्राभिष्यद मे भी विशेष हितकर है तथा मस्तिष्क व नेत्रो को बल-दायक, कोष्ठबद्धतानाशक, प्रतिश्याय और अर्श मे भी लाभप्रद है। (यूनानी योग सग्रह)

(७) तैल-धनिया—हरी धनिया का रस ½ सेर मे समभाग तिल-तैल मिला, कलईदार पात्र में, तैल सिद्ध करलें। इसमें, तैलो में मिलाये जाने वाला कोई भी सुगधित रग इच्छानुसार मिलाया जा सकता है। इसे सिर पर लगाने से मस्तिष्क शात रहता है। सिर दर्द या जलन, हाथ पैर की हथेलियो या तलुओ की जलन इसकी मालिश से शात हो जाती है। लू लग जाने पर जो शरीर मे ज्वर, दाह या जलन होती है वह भी इससे शीघ्र ही दूर ज्वर उतर जाता है।

(हकीम मौ मु अ. साहब।)

(८) धान्यकासव—सूजाक पर—हरे धनिये का स्वरस १० तो०, (हरी धनिया के अभाव मे ५ तो. सूखी धनिया को रात के समय ३० तो पानी में भिगो कर प्रात पकाकर १० तो शेष रहने पर उतार कर छान ले) वाडी या शुद्ध मद्य २ तो और चन्दन का तैल ६ मा. तीनो को शीशी मे भर, मुख बन्द कर, ७ दिन बाद छान कर काम मे लावे। मात्रा—१ तो. तक, दिन मे ३ बार सेवन से पेशाव की जलन, मवाद, पीव या खून आना वन्द होता है। सूजाक के लिये अति हितकारी है। मिश्र जी ने इस यूनानी प्रयोग को आसव का रूप दे दिया है। वास्तव मे इसे ७ दिन तक रखने की भी आवश्यकता नही है। उक्त द्रव्यो के मिश्रण से ही अर्क सूजाक नामक यूनानी योग तैयार हो जाता है। यह केवल दिन में २ बार प्रात साय दिया जाता है।

(मिश्र वलवन्त शर्मा वैद्यराज)

धान्यकाद्यासव—अतिसार, सग्रहणी आदि नाशक। धनिया २ सेर, अलसी, वेलगिरी तथा महुये के फूल १-१ सेर, जौकुट कर, १३ सेर जल में भिगो, शुद्ध चिकने मटके मे भर, उसमे मिश्री ४ सेर, धाय के फूल १३ छटाक और शहद १० सेर मिला, अच्छी तरह मुख-मुद्रा कर १५ दिन तक सुरक्षित रक्खें। पश्चात् छानकर वोतलो मे भर कर रक्खें।

वच्चो को २ मा से १ तो तक और वड़ो को ४ तो तक, दिन मे ४-५ वार दें। बच्चो के गरमी से होने वाले वार-वार दस्तो की शाति होती है। वडो की सग्रहणी और अतिसार व्याधियो पर भी यह लाभ-दायक है।

शेष इसके आसवारिष्ट के प्रयोग हमारे वृहदासवारिष्ट सग्रह ग्रन्थ में देखिये।

धमगजरा—दे०—पित्तपापडा।

धमासा (Fagonia Arabica

गुडूच्यादिवर्ग एवं गोक्षुरकुल (Zygophyllaceae) के इस फीके हरितवर्ण के वहुशाखायुक्त १-३ फुट ऊचे

क्षुप के पत्र–मनाय के पत्र जैसे पतले, लगभग १–१२ इन लम्बे, प्रत्येक पत्र के पास दो तीक्ष्ण काटे, पुष्प— शरद ऋतु मे, हलके नारा रग के, पत्र-कोण मे निकले हुए, फल–पच कोणयुक्त एव ऊपर एक नन्हा तीक्ष्ण काटा होता है। इस क्षुप की शाखाओ मे दो पत्र ४ काटे तथा एक पुष्प या फल, स्थान-स्थान पर लगातार होते हैं। मूल—दूर तक जमीन मे घुसी हुई, ताम्रवर्ण की होती है, अत इसे ताम्रमूली भी कहते है। इसके काटे शरीर में चुभने से बहुत पीडा होती है।

यह अफगानिस्तान, खुरासान एव अरब प्रदेश का मूलनिवासी है। यह भारत के दक्षिण प्रदेशो के खेतो में तथा सिंध, पजाब, कच्छ, राजपूताना के रेतीले मैदानो मे बहुत होता है। बाजार में इसके बारीक टुकड़े कुछ हरे रग के मिलते हैं, स्वाद मे लुआबदार, तथा जल में डालने पर चिपचिपे हो जाते है।

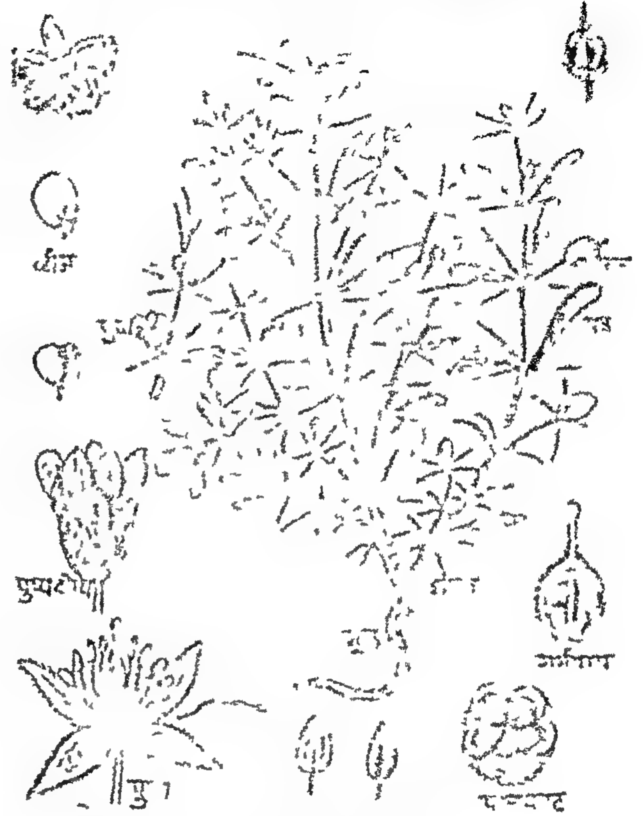
यह जवासा की ही एक जाति विशेष, किन्तु उससे भिन्न कुल एव भिन्न उपरोक्त स्वरूप की है। इसे मरु-स्थल का जवासा कहा जाता है। गुणधर्म में दोनो बहुत कुछ समान होंने से, कोई २ इसे ही जवासा मान लेते हैं। किंतु वास्तविक जवासा इससे भिन्न है। इसके धन्व-यास दुरालभा, समुद्रान्ता, गान्धारी आदि नाम भी इसकी भिन्नता प्रकट करते हैं। पीछे जवासा का प्रकरण देखिये।

चरक के तृष्णानिग्रहण तथा अर्शोघ्न गणो में इसका उल्लेख है।

नाम—

स०-धन्वयास(मरुभूमिज यवास), दुरालभा (कठिनता से प्राप्त होने वाला), समुद्रान्ता-(समुद्र पार या समुद्र-समीप पाया जाने वाला), गान्धारी (कंदहार-गांधार-अफगानिस्तान में अधिक होने वाला), कच्छुरा (काटों से पूर्ण), अनन्ता (मूल जमीन में गहरी जाने से), हरि विग्रहा (प्रत्येक ग्रंथि पर ४ काटों से युक्त चतुर्भुज हरि-विष्णु के समान), दुस्पर्शा आदि। हि०-धमासा, धमाह, दमहत, हिंगुणा, उस्तरखार इ। म०-धमासा। गु०-धमासो। ब०-दुरालभा। अ०खुरासान थार्न (Khorasan thorn) ले०-फैगोनिया अरबिका, फै० मैसोरेन्सिस(F Mysorensis) फै० कें टिका (F,Cretica) फै०ब्रु गुइरी (F Bruguieri)

धमासा
FAGONIA CRETICA LINN.



प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग, तथा मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, मधुर, तिक्त, कटु विपाक, शीत-वीर्य, कफपित्तशामक, स्तंभन, दाहप्रशमन, ज्वरनिःसारक, शोथप्रशमन, व्रणशोधन, मस्तिष्क के लिये हृद्य, रक्त-स्तंभक, रक्तप्रसादन, कफनिःसारक, तृषाशामक, मूत्रल, त्वग्दोषहर, कटुपौष्टिक तथा भ्रम मूर्च्छा, वमन, प्रमेह, विसर्प, अर्श, रक्तपित्त, वातरक्त, प्रतिश्याय, कास, श्वास, प्रलाप, फुफ्फुसशोथ, जलोदर, मूत्रकृच्छ्र, मसूरिका, गुल्म, कुष्ठ, विषमज्वर आदि नाशक है। सामान्य दौर्बल्य विशेषत अतिसार के बाद हुई दुर्बलता को दूर करता है।

पित्तजन्य विकारो पर विशेष लाभकारी है। दाह, ज्वर, कण्डू आदि मे फाण्ट या क्वाथ का सेवन तथा अङ्गो का परिषेक करते है। यह शोधनीय (एन्टीसेप्टिक) होने से किसी भी विकार मे इसके क्वाथ की योजना की

जा सकती है। मुखपाक या गले के विकारो मे इसके क्वाथ का गण्डूष (कुल्ले) हितकर है। व्रणों को क्वाथ से धोते हैं, जिससे राध, सड़ान, कृमि आदि नही हो पाते। श्वास मे इसका धूम्रपान करते है। ज्वरो मे यह अधिक प्रयुक्त होता है।

अदिष्ट व्रण या काखकल की सूजन पर इसे दूध मे पका कर लेप करते हैं। गले की सूजन पर-इसका फाण्ट, गरम-गरम, थोडा २ पिलाते हैं। इसका क्वाथ, शीतपित्त, मूत्राघात, हरताल के विष पर भी दिया जाता है। हिक्का पर-इसके क्वाथ मे शहद मिलाकर पिलाते हैं। कठमाला पर-इसे पीस कर लेप करते है।

अर्श, दाह, वमन, भ्रम, प्रलाप, विषमज्वर और रक्तपित्त मे इसके हिम का प्रयोग किया जाता है। यह हिम मसूरिका का प्रतिबन्धक हैं।

गले और फुफ्फुस के विकारो पर-इसके रस (या क्वाथ) को ईख के रस के साथ पकाकर, अवलेह बना सेवन कराते हैं।

अन्तर्विद्रधि मे-इसकी जड़ को चावल के धोवन मे पीस, शहद मिला पिलाते हैं।

(१) विबन्ध (मल व मूत्र के अवरोध), जलन एव वेदनायुक्त मूत्रकृच्छ्र पर-इसके साथ हरड, अमलतास की गिरी, गोखुरु, और पाषाण भेद समभाग का यथा विधि चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, ४ तो की मात्रा मे, शहद ६ मा मिला सेवन कराने से लाभ होता है। (शार्ङ्गधर)

अश्मरीयुक्त मूत्रकृच्छ्र हो, तो- इसके साथ दशमूल, और कास-मूल मिला, क्वाथ सिद्ध कर शहद मिला पिलावे।

मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि पर विशिष्ट योगो मे 'दुरालभादि-कषाय' का प्रयोग देखे। मूत्रावरोधजन्य उदावर्त्त मे-इसके स्वरस मे थोड़ा सेंधानमक मिला पिलावें। (व०से०)

(२) ज्वरो पर-धमासा, सुगन्धवाला, कुटकी, नागरमोथा और सोठ के जौ कुट चूर्ण २ तो मे ३२ तो. जल मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, ४ तो प्रात एव ४ तो साय पीने से समस्त प्रकार के ज्वर दूर होते तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है। क्वाथ को कुछ उष्ण, सुहाता हुआ सेवन करे (ग०नि०) तथा केवल धमासे के क्वाथ का बफारा देवें। वात पित्तज्वर हो, तो-उक्त क्वाथ मे सोठ के स्थान पर-गिलोय मिला क्वाथ बना सेवन करावे।

वातज्वर हो, तो-धमासा और गिलोय का क्वाथ-सेवन करावे। (ग०नि)

पित्त ज्वर तथा लू लगने पर—इसके ½ से १ तो० तक चूर्ण का हिम पिलावें, और इसी प्रकार हिम अधिक प्रमाण मे बनाकर उससे रोगी के शरीर का प्रक्षालन करें। इससे प्यास कम होकर शरीर की जलन तथा कण्डू भी दूर होती है। ज्वर के साथ अतिसार हो, तो मुनक्का के साथ इसका क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावे।

(३) भ्रम, मूर्च्छा पर-इसके क्वाथ १० तो मे गोघृत (गोघृत के अभाव मे सामान्य घृत) १ तो मिला पिलाने से लाभ होता है। (व०से०)

(४) कास पर-विशेषत वातज कास मे-धमासा, कचूर, छोटी पीपल, मुलैठी, और खाड या शक्कर समभाग चूर्ण कर शहद के साथ २-३ मा की मात्रा में चटाने से लाभ होता है। (व०नि०)

चरक तथा वाग्भट मे-धमासा, सोठ, कचूर, मुनक्का, काकडासिगी और मिश्री के समभाग चूर्ण को तैल मे मिला कर चाटने के लिये लिखा है।-अथवा-

धमासा, मुलैठी, अडूसा और मिश्री का क्वाथ सेवन करावें। इसके पचाग का धूम्रपान भी कास पर लाभप्रद है।

(५) मसूरिका तथा अन्य विस्फोटक रोगो पर-पित्त कफज मसूरिका मे धमासा, पित्तपापडा, पटोल-पत्र और कुटकी का क्वाथ सेवन करावें। (व० से०)

उक्त क्वाथ मे कालीमिर्च और शुद्ध गूगल (१० तो. क्वाथ मे १-१ मा० मिर्च चूर्ण और गूगल मिलावे) मिला कर सेवन कराने से विस्फोटक रोग (Bullous errup-tions or Pemphigus) नष्ट होता है। (व से)

(६) तृष्णा और विसर्प रोग पर-धमासा, पित्त-पापडा, गिलोय और सोठ (६-६ मा लेकर) जौकुट कर

रात्रि को पानी (१२ तो) मे मिट्टी के पात्र मे भिगो, प्रात मसल छान कर पिलाने से ये दोनों रोग नष्ट होते है। (यो र)

(७) कठ और हृदय की दाह, मूर्छा, कफ व अम्ल-पित्त पर—धमासा, हरड, छोटी पीपल, दाख और मिश्री। इनके चूर्ण का शहद के साथ लेह बनाकर चाटने से लाभ होता है। (यो र)

(८) गिलायु वृद्धि (टांसिल्स) पर—इस गिलायु नामक रोग मे कफ एव रक्त दोष जनित आवले की गुठली बराबर स्थिर, अल्प-पीडाकारक एक गाठ भी पैदा होती है। यह प्राय. शस्त्रसाध्य होती है। इस विकार मे धमासे का क्वाथ शहद मिलाकर थोडा-थोडा पिलाने से बहुत कुछ लाभ होता है

(९) सामान्य दौर्बल्य पर—इसके जौकुट किये हुए चूर्ण १ भाग मे १६ भाग पानी मिला १२ घटे रख कर मसल छानकर ५ तोला से १० तोला तक की मात्रा मे दानो समय सेवन कराते हैं।

नोट—मात्रा—चूर्ण ½ से १ तो अनुपान मे जल, मधु, गन्ने का रस इ । चूर्ण प्राय हिम के रूप मे दिया जाता है। मूल का चूर्ण—१ से २ माशा। फाण्ट-४ से ८ तो, क्वाथ २-६ तो०।

विशिष्ट योग—

(१) दुरालभादि क्वाथ या कषाय—(तृष्णा, रक्त-पित्तादिनाशक) धमासा, पित्तपापडा, फूलप्रियगु, चिरायता, नागरमोथा, और कुटकी का (एकत्र जौकुट चूर्ण २ या २॥ तो० मे ३२ तोले पानी मिला) क्वाथ (चतुर्थांश) सिद्धकर खाड या शर्करा (२ तो तक) मिलाकर सेवन करने से तृष्णा, रक्तपित्त, दाहयुक्त पित्तज्वर, तथा साधारण बढा हुआ दाह शांत होता है। (भै र)

क्वाथ न० २—धमासा, सोठ, चिरायता, पाठा, कचूर, नागरमोथा और रेंडी की जड का क्वाथ विधिपूर्वक बना सेवन करने से शूलयुक्त वातज ज्वर, आम और दस्त नष्ट होता है। (वृ नि र)

क्वाथ न ३ (मूत्रकृच्छ्रादि नाशक) धमासा, पाषाणभेद, [illegible], कटेरी (छोटी), मुलैठी और धनिया इनके क्वाथ मे मिश्री मिलाकर सेवन से मूत्रकृच्छ्र, मूत्राव-रोध, मूत्र की दाह और शूल अतिशीघ्र नष्ट हो जाते है—(द्रव्यो का एकत्र चूर्ण २ तो पाकार्थ जल ३२ तो शेष क्वाथ मे मिश्री १ या २ तो० मिलादे) (भै र)

(२) दुरालभादिक्षार—(बल, वर्ण, अग्निवर्धक) धमासा, दोनो करज (वृक्ष करज व लताकरज) की छाल, सतौने की छाल, कुडाछाल, बच, मैनफल, मूर्वा-मूल, पाठा और अमलतास की छाल समभाग चूर्णकर, सबके वजन के बराबर गोमूत्र मिला, मटकी मे बन्दकर, कपड-मिट्टी कर, उपलो की आग मे अन्तर्धूम भस्म या क्षार करले। (मात्रा—४ रत्ती से १ मा० तक, घृत या तक्र के अनुपान से) इस क्षार के सेवन से बल, वर्ण व अग्नि की वृद्धि होती है। यह ग्रहणी के बल को बढाता है। (च० स० चि० अ० १५)

(३) दुरालभादि घृत—(ज्वर, दाहादि नाशक)—क्वाथ—धमासा, गोखुरू, शालपर्णी (सरिवन), पृश्नि-पर्णी (पिठवन), मुगवन (मुद्गपर्णी), वन उडद (माष-पर्णी), खरेटी की मूल छाल, और पित्तपापडा ४-४ तो इनका जौकुट चूर्ण ४ सेर पानी मे पकावे। ३२ तोले जल शेष रहने पर छान ले।

कल्कार्थ—कचूर, पोहकरमूल, पिप्पली, त्रायमाण भुईआमला, चिरायता, कटुपरवल, इद्रजौ, और सारिवा (अनन्तमूल) १-१ तो० सबको जल के साथ पीसले। फिर घृत ६४ तो (या १ सेर) दूध २ सेर और जल २ सेर तथा उक्त क्वाथ व कल्क एकत्र मिला, यथाविधि घृत सिद्ध करले। मात्रा ½ तो से २ तो० तक, सेवन से ज्वर, दाह, भ्रम, कास, कन्धो की पीडा, पसली का दर्द, शिर शूल, तृष्णा, वमन और अतिसार दूर होता है। (च० स० चि० अ० ८)

(४) दुरालभासव (सग्रहणी, पाडु आदि नाशक) धमासा १ सेर १० छटाक, आमला १३ छटाक, चित्रक मूल और दन्ती ८ ८ तो० तथा उत्तम वजनदार १०० हरड, जौकुट कर १ मन १२ सेर जल मे पकावे। १३ सेर शेष रहने पर छानकर, ठडा हो जाने पर आसव पात्र मे भर उसमे गुड १० सेर तथा शहद, फूल प्रियगु,

पिप्पली, व वायविडङ्ग चूर्ण प्रत्येक १६-१६ तोले मिला पात्र का मुख सन्धान कर १५ दिन रक्खे। फिर छानकर रखे। मात्रा—१-१ तोले तक सेवन से सग्रहणी, पाडु, अर्श, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, रक्तपित्त, एव कफ का नाश होता है। स्वर, वर्ण (काति) का सुधार होता है। (चरक)

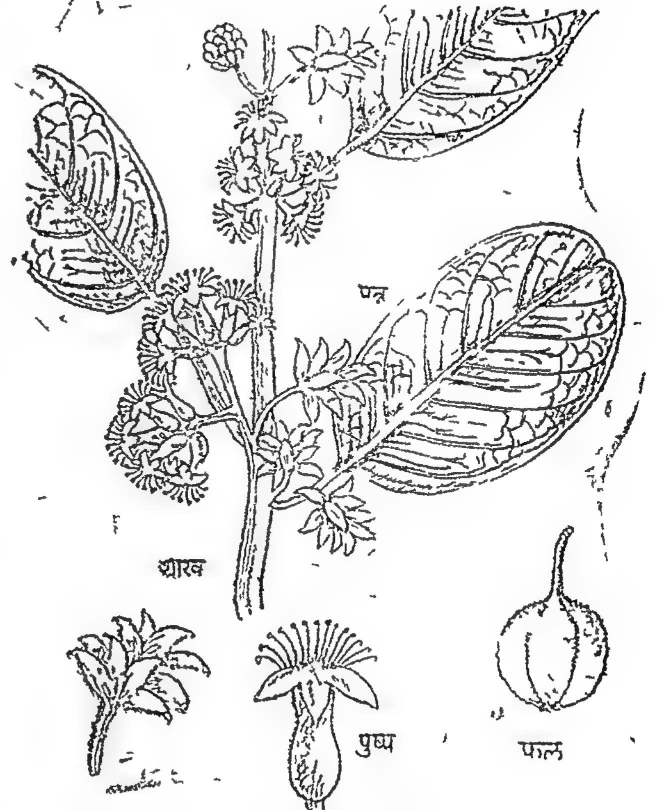
शेष इसके आसवारिष्ट प्रयोग हमारे वृ आसवारिष्ट संग्रह ग थ मे देखे।

धव (Anogeissus Latifolia)

वटादिवर्ग एव हरीतकी कुल (Combretaceae) के इस बडे सुदृढ ८० फुट तक ऊ चे वृक्ष की छाल—हरिताभ-श्वेत, वाह्यकाण्ठ-पीताभ, भीतरी काण्ठ-श्वेत, पत्र-अमरूद या शरीफा के-पत्र जैसे-१½ से ४ इंच तक लम्बे १ से २½ इच तक चौडे, चिकने, पतले, पुष्पो के आने पर प्राय झड जाने वाले, पुष्प-ग्रीष्म या वर्षाकाल मे, छोटे-छोटे ½ इच व्यास के, गुच्छो मे, फल-शीतकाल मे नन्हे-नन्हे जवाकार, गोल, पकने पर चमकीले व चिकने होते हैं। इस वृक्ष से एक स्वच्छ, श्वेत निर्यास (गोद) निकलता है, जो वहुत उपयोगी होता है। इसकी लकडी मजवूत व कुछ लचीली होने से इसके गाडी के धुरे वनाये जाते हैं। भारत मे प्राय यह सर्वत्र पहाडी प्रदेशोमे पाया जाता है।

नोट—कोई-कोई इसी को धाय, धापटी मानते हैं। किंतु धाय इससे भिन्न है। आगे धाय का प्रकरण देखिये।

सुश्रुत के सालसारादि, मुष्ककादि गणों मे तथा वाग्भट ने असनादि और मुष्ककादि गणो मे इसकी गणना की है।



नाम—

सं०--धव, गौर, नदितरु, धुरधर, दृढतरु इ०। हि०-धव, धो, धाकडा, बाकली इ०। म०—धावडा, धापोडा। गु०--धावडो। व०--डाओया। अ०--घाटी गम (Ghati-gum), बट्टन ट्री (Button tree)। ले०--एनोजीसस लैटिफोलिया।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, पुष्प, निर्यास (गोद)।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, मधुर, कटु-विपाक, शीतवीर्य, कफपित्त शामक, दीपन, स्तभन, शोणितास्थापन, मूत्र-सग्रहणीय, रक्तरोधक, व्रणरोपण, शोथहर, कुष्ठघ्न, रसायन, विषघ्न, तथा अतिसार प्रवाहिका, प्रमेह, पाडु, रक्तार्श, रक्तविकार, दौर्बल्य नाशक है।

पुष्प—मलरोधक हैं। फल—किंचित् मधुर, शीतल, रूक्ष, विबन्धकारक, धातुवर्धक एव कफपित्तनाशक हैं।

गोद—पौष्टिक, कामोद्दीपक है।

क्षत, व्रण और शोथ मे इसकी छाल को पानी मे पीस कर लेप करते है, तथा इसके क्वाथ से प्रक्षालन करते है।

व्रण पूरणार्थ—छाल के वस्त्रपूत महीन चूर्ण को घोडे के मूत्र मे मिला लेप करते हैं।

अर्श, अति रज स्राव व गुदभ्रंश मे—रोगी को छाल के क्वाथ मे बैठाते हैं।

प्रमेह मे—काडसार का क्वाथ देते हैं।

उदरविकृति, अतिसार मे—पुष्पो को जायफल और मिश्री के साथ सेवन कराते हैं।

रक्तार्श मे रक्तस्राव निवारणार्थ—लगभग २ तो० फूलो को पानी मे भिगोकर मलछान कर, २ तो० तक मिश्री मिला पिलाते है।

अग्निदग्ध पर— फूलो को जलाकर, सरसो तेल में मिला लगाने से शांति प्राप्त होती है।

पुष्टि के लिये इसके गोद को बबूल गोद के साथ घृत मे भून कर चूर्ण कर मिश्री या शक्कर के साथ मोदक बना सेवन करते है।

बिच्छू या सर्प के विष पर–गोद का लेप करते हैं।

नोट–मात्रा—क्वाथ–५-१० तोले। गोद–५ से १० रत्ती।

विशिष्ट योग-

धवादि क्वाथ–धव, अर्जुन, कदम्ब, सिरस और बेरी की छाल का क्वाथ पीने से आम और विसूचिका का शूल दूर होता है। (हा० स०)

हारीत संहिता मे इसके क्वाथ के और भी प्रयोग हैं, किंतु उनमे कई द्रव्य होने से विस्तार भय से यहा नहीं दिये जा सकते।

धवई–दे०–धाय। धवलटाक–दे०–फरहद। धवलपेड़–दे०–पिंडार। धवलवरुआ–दे०–सर्पगन्धा। धातु-पुष्पी–दे०–धाय। धान–दे०–चावल मे।

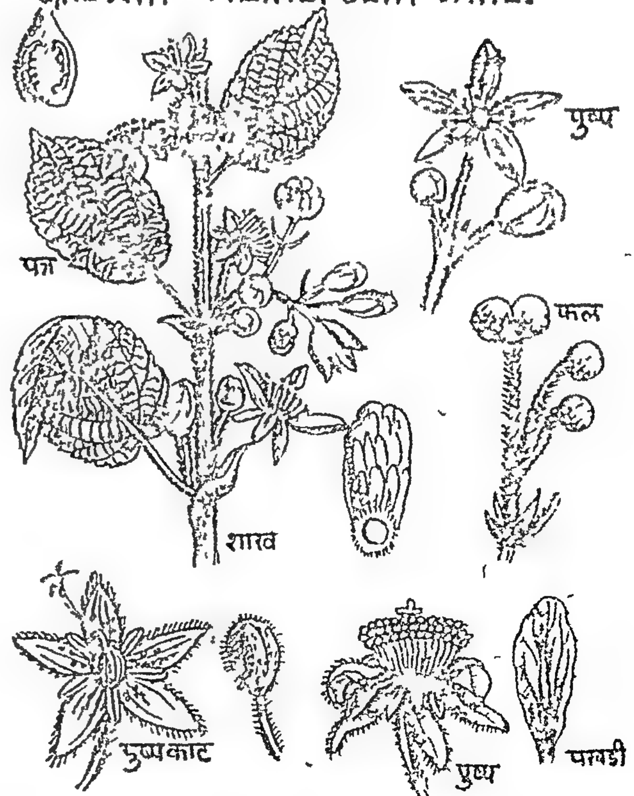
धामन (*GREWIA TILIAEFOLIA*)

वटादि वर्ग एवं परुषक (फालसा) कुल (Tiliaceae) के इस मध्यमाकार के २०-४० फुट ऊंचे वृक्ष का काण्ड-गोल २-५ फुट व्यासका, शाखा साधारण गोल, छाल-आधा इंच मोटी खुरदरी फटीसी, बाहर से हरिताभ भीतर से श्वेत, पत्र—एकान्तर, रोमश फालसा के पत्र जैसे किंतु छोटे, या बेर के पत्र जैसे किंतु बडे रोमश लगभग २-५ इंच लम्बे, १-२ इंच चौडे; नुकीले, बारीक कंगूरेदार, पुष्प–गुच्छो मे पंखुडीयुक्त छोटे-छोटे ऊपर से श्वेत भीतर पीताभ, फल-मासल, मटर जैसे, पकने पर काले रंग के, मूल-साधारण, ग्रंथियुक्त मोटी होती है।

ये वृक्ष शुष्क, उष्ण प्रदेशो के जंगलो मे पश्चिम भारत, वर्मा, सीलोन आदि स्थानो मे पाये जाते है।

नोट—एक श्वेत धामन वृक्ष होता है, जिसे खटखटी कहते हैं।

चरक के अम्ल स्कन्ध, आसवयोनि फलगणो मे इसका उल्लेख है।



नाम—

सं०—धन्वन, धन्वग, धनुर्वृक्ष (शाखायें दृढ होने से उनका धनुष बनाने मे उपयोग होता है) गोत्र वृक्ष इ०। हि०–धामन, धामिन। म०-गु०–धामण। ब०–धमनागाछ। ले०–ग्रीविया टिलिफोलिया।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, पत्र, फल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, पिच्छिल, कषाय, मधुर, कटु-विपाक, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, कफनि सारक, बल्य, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक) रक्तस्तंभन, कण्डूघ्न, संधानीय व व्रणरोपण है तथा रक्तातिसार, रक्तपित्त, दाह, शोथ

कंठरोग, हृद्रोग आदि मे प्रयोजित है।

छाल-स्तम्भन है। काष्ठ-चूर्ण-वामक है।

फल—मधुर, कषाय, कफवातशामक है।

रक्तातिसार मे—छाल का रस १ से २ तो० की मात्रा मे पिलाते है।

प्रवाहिका मे—छाल को पानी मे भिगोकर मसलने से जो लुआब उत्पन्न होता है, उसे देते हैं।

दौर्बल्य तथा कृशता मे—उक्त लुआब मे—मिश्री मिला कर सेवन कराते है।

व्रण और क्षतो मे—इसका पत्र स्वरस लगाते है या छाल को पीसकर लेप करते है।

कोच (कपिकच्छू) के शरीर मे लगने से जो दाह एव खुजली होती है, उसके शमनार्थ छाल को पानी मे घिसकर लगाते है।

अफीम के विष पर—इसकी लकड़ी के चूर्ण को या उसके कोयलो के चूर्ण को पानी के साथ पिलाते हैं। वमन होकर विष निकल जाता है।

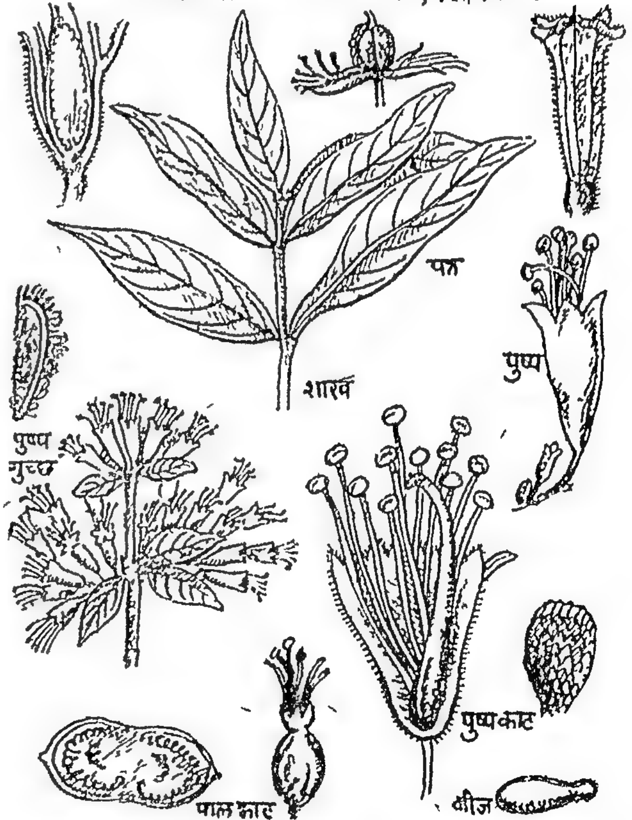
धाय (Woodfordia Floribunda)

हरीतक्यदिवर्ग एव मदयन्तिका (मेंहदी) कुल (Latheraceae) के इस गुल्मजातीय, अनेक लम्बी, विस्तृत, सघन, झुकी हुई शाखायुक्त ५ से १२ फुट तक ऊंचे क्षुप के पत्र-अभिमुख, (कहीं कहीं ३-३ पत्र एक साथ) अनार-पत्र जैसे किन्तु कुछ पीताभ खुरदरे २-४ इंच लम्बे, ऊपरी भाग मे कुछ काले बिन्दु युक्त, वृन्त-रहित, निम्नभाग सूक्ष्म रोमश, स्वाद कुछ अम्ल, पुष्प—४-६ इंच लम्बी सीकों पर, पुष्प प्रत्येक सीक पर ५-१५ संख्या मे, लौंग के आकार के, नलिकाकार, गुच्छों मे, पुष्प का बाह्य पुट लगभग ½ इंच लम्बा, लाल तथा कुछ टेढ़ा, आभ्यन्तरपुट बाह्य पुट के भीतर श्वेत ६ दल-पत्रो से युक्त; बीज-कोष (फल)—छोटा, हरिताभ भूरा चिकना ¼–½ इंच लम्बा अनेक बीजो से युक्त; बीज—धूम्रवर्ण के चपटे लम्बे पीताभ, चिकने होते हैं। पुष्प-शीतकाल मे माघ मास से चैत्र तक तथा फल वर्षा मे आते हैं। इसके क्षुप मे एक प्रकार का गोंद निकलता है, जो प्रायः रंगने के काम मे आता है। फूलो से रेशम रंगने के लिये एक लाल रंग निकालते है।

इसके क्षुप प्राय समस्त भारत के पहाडी प्रदेशो मे होते है। बिहार, छोटा नागपुर, उत्तर बंगाल मे विशेष पाये जाते हैं।

नोट—चरक के पुरीषसंग्रहणीय, मूत्रविरजनीय, सधानीय एवं आसवयोनि तथा सुश्रुत के प्रियंग्वादि, अम्बष्ठादि गणों में इसका उल्लेख हैं।

इसके पुष्पो का प्रयोग प्रायः ९०% आसवारिष्टो के सधान-कार्य मे किया जाता है। इसके योग से सधान क्रिया ठीक होती, रंग भी ठीक उतरता, तथा वे खट्टे नही होने पाते।



सं—धातकी, धातुपुष्पी, वन्हिज्वाला (पुष्परक्तवर्ण आग की लपटें जैसे होने से), ताम्रपुष्पी इ०। हि०-धाय, धाई, धानी, धावा इ०। म०—धायटी धावस। गु०-धावडी ब०धाई फूल। अं०-डाऊनी ग्रिस्ली (Downy Grislea)। लै०-वुडफोर्डिया फ्लोरिबण्डा, वुड फ्रुटिकोजा (Wood fordia Fruticosa), लिथ्रम फ्रुटिकोज्म (Lythrum Fruticosum), ग्रिस्ली टोमेण्टोसा (Grislea Tomentosa)

रासायनिक संगठन--
पुष्पो मे टेनिन २०% होता है।
प्रयोज्याङ्ग–पुष्प तथा पत्र।

गुण-धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य, कफपित्तशामक स्तंभन, संधानीय, संग्राहक, उत्तेजक, मदकर, दाहप्रशमन, रक्तस्रावरोधक, मृदुकारक, मूत्रविरेचनीय (पित्तप्रकोपजन्य मूत्रगत पीत, रक्तादि विविधवर्णो को दूर करने वाला), गर्भस्थापक, विषघ्न, व्रणशोधक एव रोपक है। अतिसार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, ज्वरातिसार, संग्रहणी, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, रक्तपित्त, पैत्तिकप्रमेह, पैत्तिकज्वर, अर्श, यकृद्विकार, विसर्प तथा अन्य चर्मरोगो पर प्रयुक्त होता है।

दाह, रक्तस्राव और व्रणो मे पुष्पो का अवचूर्णन या प्रदेह करते हैं। दुर्गन्धयुक्त व्रणो एव विस्फोटो पर-स्राव को कम करने के लिये तथा व्रण-पूरणार्थ पुष्प-चूर्ण को बुरकते है। तथा पुष्पो के क्वाथ से प्रक्षालन करते हैं।

रक्तार्श तथा श्वेतप्रदर या रक्तप्रदर मे–फूलो का शर्बत सेवन कराते हैं।

(१) अतिरज स्राव, रक्तार्श और गुदभ्रंश मे–रोगी को पुष्पो के क्वाथ मे बैठाते व पुष्पचूर्ण सेवन कराते हैं। गुदभ्रंश मे पुष्पचूर्ण को गुदस्थान पर बुरककर लगोट कस देते हैं।

(२) अतिसार, प्रवाहिका पर–फूलो का चूर्ण ७३ तो तक की मात्रा मे तक्र के साथ या शहद के साथ देवे। अथवा–इसके पुष्प और राल १-१ भाग तथा शक्कर २ भाग, सबका महीन चूर्णकर १ से ३ मा. की मात्रा मे, २-३ बार जल के साथ देवे। अथवा–

इसके पुष्प, बेलगिरी, लोध की छाल, सुगधवाला, और गजपीपल समभाग जौकुट चूर्ण २ तो का ३२ तो पानी मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, उसमे शहद (२ तो तक) मिला कर पिलाने या उक्त द्रव्यो के चूर्ण को शहद मिलाकर चटाने से अतिसार विशेषकर बालको का सर्वप्रकार का अतिसार नष्ट होता है। (शार्ङ्गधर)

विशिष्ट योगो मे धातक्यादि चूर्ण देवे।

यदि प्रवाहिका (पेचिश) विशेष जोर पर हो, तो इसके फूल, बेरी के पत्र और लोध के कल्क को कैथ के स्वरस और शहद मे मिला, दही के साथ सेवन करावे। (वं. से)

अफीम खाने वालो के अतिसार पर–इसके पुष्प और राल दोनो समभाग महीन चूर्ण कर ३ मा मे १ तो तक की मात्रा मे गर्म किये हुए लोहे से बुझाई हुई छाछ के अनुपान से देवे। (यूनानी योग)

गर्भवती के अतिसार पर–इसके पुष्प, मोचरस और इन्द्रजौ का समभाग चूर्ण मात्रा २ मा. जल के साथ देवे। अथवा–पुष्प-चूर्ण को शक्कर व शहद के साथ देवें और ऊपर से चावलो का धोवन पिलावे। यदि रक्तातिसार हो तो इसके पुष्प १ तो और खस ६ मा एकत्र मिला क्वाथ कर शहद और शक्कर मिला सेवन कराने से ३ दिन मे लाभ होता है। प्रसूता के लिये भी यह प्रयोग लाभकारी है। (गा औ र)

ज्वरातिसार पर–इसके फूल, वेलगिरी, धनिया, लोध इन्द्रजौ और सुगधवाला के समभाग मिश्रित चूर्ण को (½ से १ मा तक दिन मे ३-४ बार) शहद मिला चटावे। इससे बालको का ज्वरातिसार और वमन भी दूर होता है। (भै. र)

शूलयुक्त ज्वरातिसार हो, तो इसके पुष्पो के क्वाथ मे सोठ के कल्क से बनी हुई पेया मे अनार का रस मिला-पिलावे –(व०से०)।

(३) प्रदर पर—इसके तथा सुपारी के फूलो का क्वाथ, ३ दिन तक पिलाने से प्रदर अवश्य नष्ट होता है। (यो० र०)

अथवा—इसके पुष्प चूर्ण ६ माशा मे समभाग शक्कर मिला, प्रात साय दूध के साथ १७ दिन तक देवे, तीव्र पीडा युक्त प्रदर हो, तो मात्रा १ तो सेवन करावे।

इससे अनियमित मासिक धर्म मे भी लाभ होता है। केवल श्वेत प्रदर हो तो पुष्प चूर्ण युक्त मात्रा मे शहद के साथ या चावल के धोवन के साथ देते हैं।

अथवा–इसके पुष्प के साथ सुपारी-पुष्प, मोचरस, व मोलश्री का गोद प्रत्येक ६-६ मा० खाड २ तो० सबका चूर्ण मात्रा–६ माशा जल से देवे।

योनिविकारो पर–विशिष्ट योगो मे-धातक्यादि तेल

देवें।

(४) गर्भधारणार्थ—इसके पुष्प और नील कमल के साथ मिश्रित चूर्ण को, ऋतुकाल में शहद के साथ सेवन करनेसे स्त्री शीघ्र ही स्त्री गर्भ धारण कर लेती है। (ग० नि०)

(५) ज्वर पर—विशेषत पित्तज्वर पर दक्षिण महाराष्ट्र के वैद्य ज्वरी के मुख में तिल तेल धारण करा, सिर पर इनके पत्र-रस का लेप करते है। इनसे मुखस्थ तेल पीतवर्ण का हो जाता है, तब उसे थुकवाकर, दूसरी बार तेल मुख में धारण कराते हैं, तथा सिर पर पत्र-रस का लेप करते हैं। इस प्रकार २-३ बार कराने से पित्त निकल जाने से फिर तेल पीले रंग का नहीं होता, तथा ज्वर शांत हो जाता है। पैत्तिक शिर शूल मे—भी यह उपचार लाभकारी होता है।

वातपित्त ज्वर मे—इसके पत्र और सोंठ का क्वाथ शक्कर मिलाकर पिलाते हैं।

विषमज्वर पर—इसके पुष्प, गिलोय और आमले के क्वाथ में शहद मिला सेवन करावे। (वैद्यजीवन)

(६) बालक के दंतोद्गम के विकारशमनार्थ—बालक के दांत जब निकल रहे हों, तब इसके पुष्प और पिप्पली के समभाग मिश्रित चूर्ण को आमले के रस में या शहद में मिला उसके मसूढों पर मलने से दांत शीघ्र निकल आते हैं, तथा कोई विकार नहीं होता। (यो र)

(७) अग्निदग्ध पर—पुष्प चूर्ण को अलसी या तिल तेल में घोटकर लगाने से दाह शांत होती तथा अन्य कोई उपद्रव नहीं हो पाते।

यही प्रयोग विसर्प, कीटव्रण, लूताव्रण एवं दुष्ट नाडीव्रण या नासूर पर भी लाभकारी होता है। नासूर पर उक्त मिश्रण में ¼ उत्तम शहद मिला कर लगाने से और भी उत्तम एवं शीघ्र लाभ होता है।

नोट—मात्रा—पुष्प चूर्ण—अवस्थानुसार १ से ८ माशे तक। अति मात्रा में यह कृमिजक है। निवारक अनार का रस।

विशिष्ट योग—

(१) धातक्यादि चूर्ण (अतिसार नाशक) धाय-पुष्प, बेलगिरी, मोचरस, नागरमोथा, लोध, इन्द्रजौ, और सोंठ समभाग महीन चूर्ण करले। इसे १।।-२ मा० तक की मात्रा में गुड़ मिश्रित तक्र के साथ सेवन करने से प्रबल अतिसार नष्ट होता है। (वृ० नि० र०)

(२) धातक्यादि तैल—(योनिव्यापन्नाशक)—धाय-पुष्प, आमला के पत्र, जलवेत (वेद), मुलैठी, नीलकमल, जामुन व आम की गुठली की गिरी, कसीस (हीराकसीस) लोध, कायफल, तेंदु की छाल, सोरठी मिट्टी या फिटकरी अनार छाल, गूलर छाल (या कच्चे गूलर) और बेल-गिरी १-१ तो० लेकर सबको पानी के साथ पीस कल्क बना ले। फिर तैल १२८ तो० तेल से दोगुना बकरी का मूत्र तथा उतना ही बकरी का दूध तथा उक्त कल्क एकत्र मिला पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान ले।

इस तेल की योनि मे उत्तरवस्ति देवे इसका पिचु (फाया तेल में भिगोकर) योनि मे रखने, तथा कमर, पीठ व त्रिकसंधि पर मालिश करने और गुदा मे स्नेहवस्ति देने से पिचपिची, स्रावयुक्त, विप्लुता, उत्ताना (ऊर्ध्वमुखी या अन्तर्मुखी, उन्नता) उन्नता (ऊंची उठी हुई या सूची मुखी), सूजी हुई, तथा जिसमे विस्फोट (फोडे या छाले हो) और शूल होता हो ऐसी योनिया शीघ्र विकार रहित हो जाती है। (च० चि० अ० ३०)

योनि-शैथिल्य पर—इसके पुष्प तथा त्रिफला के महीन चूर्ण को जामुन के रस में पीस, योनि में लेप करने से योनि संकुचित एवं कड़ी होती है।

(३) धातक्यासव—(प्रमेह नाशक)—इसके पुष्प १ सेर, कूट कर ३२ सेर जल मे, चतुर्थांश क्वाथ कर छान कर सन्धान पात्र मे भर कर, ठंडा होने पर उसमें शहद ३ सेर, दालचीनी, छोटी इलायची, और तेजपत्र का चूर्ण ५-५ तो० हल्दी-चूर्ण १२ तो०, तथा शिलाजीत २० तो० मिला। पात्र का मुख सन्धान कर १५ दिन सुरक्षित रखें। पश्चात् छान कर शीशियो मे भर ले। मात्रा १ से २½ तो० तक, थोडे जल के साथ सेवन से सर्व प्रकार के प्रमेह दूर होते है।-(वृहदासदारिष्ट संग्रह)

इसका प्रदर-नाशक आसव उक्त संग्रह ग्रंथ मे देखे।

धारा कदम्ब—दे०—कदम्ब मे। धाराफल—दे०—कमरख। धारू—दे०—उस्तोखुद्दूस। धीपेन (धीवेन)—दे०—आमगुल। धूपवृक्ष—दे०—साल हुरा। धूप सरल—

दे०—चीड । धूलिकदम—दे०—हल्दु । धूलियागर्जन—दे०—गरजन मे ।

धोल

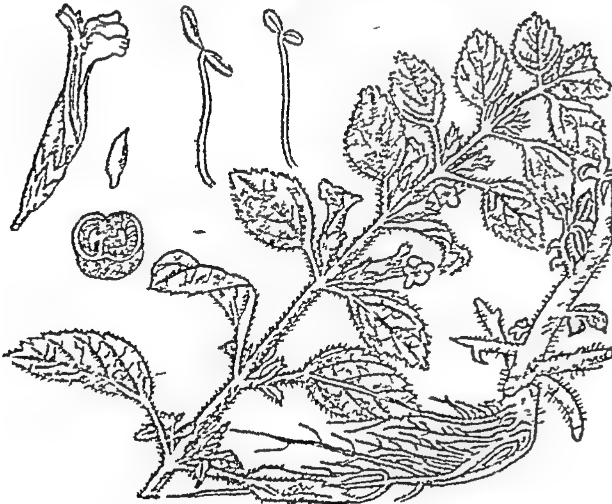
(*LINDENBERGIA URTICAEFOLIA*)

तिक्त (कुटकी)-कुल (Scrophulariaceae) के इस वर्षायु, प्राय सर्वाङ्ग रोमश, ४ से १० इंच लम्बे क्षुप के पत्र १-१½ इंच लम्बे,-गूमा के-पत्रजैसे, बहुसिरा-युक्त, किनारे कंगूरेदार, काण्ड के दोनो ओर एकान्तर या अभिमुख, पुष्प–काण्ड की प्रत्येक गाठ पर १-१ फूल, छोटा, गोल, चमकीला पीतवर्ण का, फल (बीज कोप) --रोमश, छोटी-छोटी कलियो के रूप मे होते हैं ।

वर्षा से शीतकाल तक प्राय हर समय इसके पुष्प व फल देखे जाते है ।

धोल

LINDENBERGIA URTICAEFOLIA LEHM



इसके क्षुप प्राय समस्त भारतवर्ष मे वर्षा के अन्त मे पुरानी दीवारो, देवालयो तथा नदी, नाले व तालावो के किनारे बहुतायत से होते है। उत्तर भारत मे कही-कही पैदा होते है ।

नाम-

हि०-धोल । म०-डॉल, घॉक, गजधर । गु०-पथरचट्टी, भीत चट्टी, । झामर वेल । व०-गाजडार, ज्वलदेवन्त । ले०-लिंडन बर्गिया अर्टिसीफोलिया ।

गुणधर्म व प्रयोग—

साधारण तिक्त, सुगंधित, कफ, काम, चर्मरोग-नाशक, व विषघ्न है ।

इसका पत्र-रस पुरानी खासी, फेफडो की सूजन (ब्राकायटिस)में उपयोगी है । फुन्सी, दाद, खुजली आदि चर्मरोगो पर–इसके रस मे हरी धनिये का रस मिलाकर लगाते या इसके बीजो को पीस कर बांधते हैं। ज्वर रोगी को इसके पत्तो को पानी मे उबालकर बफारा देते है । विषैले कीटक-दश पर–पत्र–रस लगाते है ।

धोर—दे०—भिविरा ।

धौरा (*ZIZYPHUS RUGOSA*)

वदर (वेर) कुल (Rhamnaceae) के इस करोदा वृक्ष जैसे वृक्ष के पत्र वेर-जैसे, पुष्प- गुच्छो मे छोटे-छोटे श्वेत-वर्ण के, फल-वेर जैसे, पकने परपीताभ,व खाने मे स्वादिष्ट होते है । मार्च से मई मास तक फलो की भरमार रहती है । दक्षिण के पश्चिमी घाट के निवासीयों के जीवन-निर्वाह का यह एक साधन है ।

नाम—

हि० धौरा, चूरन, बेरभांड। म०-तोरन, चूरन । बं०-शियाकुल। ले०-झिझिफस रुगोसा,झि०ग्लेब्रा(Z,Glabra)

गुणधर्म व प्रयोग——

लघु, अम्ल, दीपक, उष्णवीर्य, पित्तकारक, व ग्राही है।पके फल–मधुर, कषाय, स्निग्ध, कफ वात नाशक हैं।

(१) श्वेत प्रदर या अतिरज-स्राव पर–इसके फलो के समभाग नागरवेल (खाने के) पानो के डंठ और इन दोनो का वजन १ तो० हो तो ३ मा० चूना मिला खरल कर चने जैसी गोलिया बना श्वेत प्रदर मे शीत जलसे, तथा रक्तप्रदर या अतिरज स्राव मे घृत से प्रात साय १-१ गोली देते हैं ।

(१) मुख-रोग, जीभ मे छाले हो जाने पर-फलो को खाने से लाभ होता है । कठ या गले मे कफ भर जाने पर इसके पत्तो को चबाते हुए धीरे-धीरे रस के निगलने से गला साफ हो जाता है ।

(६) चेचक की प्रारंभिक दशा मे-पत्तो को भैस के ताजे दूध मे पीस कर पिलाने से चेचक की तीव्रता कम हो जाती है ।

(४) व्रण-रोपणार्थ–पत्र-क्वाथ सेप्रक्षालन करने से शीघ्र व्रणरोपण होता है । इससे त्वचा के चट्टे भी दूर होते है । —(व०गु०)

नोट–इसके वृक्ष पूर्वीय हिमाचल प्रदेश, दक्षिण भारत, पश्चिम घाट तथा सीलोन मे बहुत होते हैं ।

वनौषधि-विशेषांक (तृतीय भाग)

की

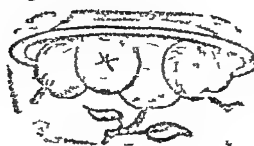
सन्दर्भ-सूची

(अकारादि क्रमानुसार)

नोट—विस्तार भय से कई वनौषधियो के अन्य भाषा के नाम तथा कई रोग-प्रयोगो की सूची नही दी जा सकी है।

झ

फ-ब



INDEX

LATIN AND ENGLISH NAMES

A-B

C

D-E

संस्थापित १८६८



धन्वन्तरि कार्यालय

विजयगढ़ (अलीगढ़)

की

प्रामाणिक आयुर्वेदिक औषधियां

एवं

चिरपरीक्षित सफल पेटेन्ट औषधियां

(केवल रजिस्टर्ड चिकित्सको के लिए)

हम गत ६६ वर्षों से शास्त्रोक्त-विधि से अत्युत्तम द्रव्यो द्वारा योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियो की देख-रेख मे पूर्ण प्रभावशाली आयुर्वेदिक औषधियो का निर्माण कर भारत के प्रतिष्ठित चिकित्सको को उचित मूल्य पर सप्लाई करते है। हम अपनी औषधियो का अन्य फार्मेसियो की तरह धुआधार प्रचार नही करते, लेकिन हमारी औषधिया अपने गुणों के कारण उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रचार प्राप्त करती हैं। आपसे भी साग्रह निवेदन है कि हमारी औषधियो को एक बार व्यवहार करके उनकी परीक्षा अवश्य करें।

आवश्यक निवेदन

इस समय हर प्रकार की वस्तुओ की उत्तरोत्तर महगाई के कारण विवशत. हमको औषधियो के भाव बढ़ाने पड़े है तथा आगे भी कब बढाने पड जाय, नही कहा जा सकता। अस्तु जब जैसा भाव होगा उसी के अनुसार औषधिया भेजी जायेंगी।